संस्कृतनाट्यकोश

डॉ॰ रामसागर त्रिपाठी



॥श्रीः॥

व्रजजीवन प्राच्यभारती ग्रन्थमाला
६९

संस्कृत-नाट्य-कोश

(प्रथम खण्डः नाटक-कोश)

लेखक

डा. रामसागर त्रिपाठी

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

३८, यू.ए. बंगलो रोड, जवाहर नगर

दिल्ली-११०००७

प्रकाशक

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)

३८ यू.ए., जवाहर नगर, बंगलो रोड

पो॰बा॰ नं॰ २११३, दिल्ली-११०००७. दूरभाष : २३६३९१

प्रथम संस्करण १९९४.

मूल्य : ४००-००

अन्य प्राप्तिस्थान

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

के॰ ३७/११७, गोपालमन्दिर लेन

पो॰बा॰ न॰ ११२९, वाराणसी २२१००१. दूरभाष : ३३३४३१

प्रधान वितरक

चौखम्बा विद्याभवन

चौक (बनारस स्टेट बैंक भवन के पीछे)

पो॰बा॰ नं॰ १०६९, वाराणसी २२१००१

दूरभाष : ३२०४०४

लेज़र टाईपसैटिंग

स्क्रिप्शन्स

क्यू.यू. २७० ए, उत्तरी पीतमपुरा

दिल्ली-११००३

मुद्रक

ए.के. लिथोग्राफर, टैगोर गार्डन, नई दिल्ली

THE

VRAJAJIVAN PRACHYABHARATI GRANTHAMALA

69

SANSKRIT NĀṬYA KOŚA

(VOL. I : NĀṬAKA KOŚA)

By

DR. RAMSAGAR TRIPATHI

CHAUKHAMBA SANSKRIT PRATISHTHAN

38, U.A., Bungalow Road, Jawaharnagar,

DELHI-110007

(Oriental Publishers & Distributors)

38, U. A., BUNGALOW ROAD, JAWAHARNAGAR,

DELHI-110 007

First Edition : 1994

Also can be had of

CHAUKHAMBA SURBHARATI PRAKASHAN

K. 37/117, Gopal Mandir Lane

Post Box No. 1129

VARANASI 221001

Telephone : 333431

Sole Distributors

CHOWKHAMBA VIDYABHAWAN

Chowk (Behind the Banares State Bank Building)

Post Box No. 1069

VARANASI - 221001

Telephone : 320404

समर्पण

डा. नगेन्द्र के चरणों में
जिनके वदान्य आशीर्वाद ने मुझ जैसे परःशत
लेखको को साहित्य-साधना में प्रवृत्त किया है ।

संकेताक्षर

अनु.	—	—	अनुवाद/ अनुवादक
इति. पा.	—	—	इतिहास पात्र
ना.अनु.का.	—	—	नाट्य अनुवादकार
ना.अभि.	—	—	नाट्य अभिनेता
ना.आ.	—	—	नाट्य आश्रय
ना.उप.	—	—	नाट्य उपजीव्य
ना.उ.पा.	—	—	नाट्य उपयोगीपात्र
ना.का.आ.दा.	—	—	नाट्यकार आश्रयदाता
ना.का.सं.	—	—	नाट्यकार सम्बन्धी
ना.कृ.	—	—	नाट्यकृति
ना.कृ.सं.	—	—	नाट्यकृति संवलित
ना.टी.का.	—	—	नाट्य टीकाकार
ना.त.यो.	—	—	नाट्यतत्व योजक
ना.द.	—	—	नाट्यदर्पण
ना.पा.	—	—	नाट्यपात्र
ना.प्र.ऋ.सू.	—	—	नाट्यप्रयोजक ऋकसूक्त
ना.प्र.भा.	—	—	नाट्यप्रसारभारती
ना.व.	—	—	नाट्यवस्तु
ना.वि.	—	—	नाट्यविधा
ना.सं.	—	—	नाट्य संग्रह
ना.सा.	—	—	नाट्य साहित्य
ना.सा.पा.	—	—	नाट्य सामान्य पात्र
ना.सा.सं.	—	—	नाट्य साहित्य संकलन
ना.स्थ.	—	—	नाट्यस्थल
वे.सा.	—	—	वेद साहित्य
वे.सू.	—	—	वेद सूक्त
शि.भू.	—	—	शिंगभूपाल
शृ.प्र.	—	—	शृङ्गार प्रकाश
स.	—	—	सन् (ईसवी)
सं.	—	—	संवत्/ संख्या
सा.का.	—	—	साहित्यकार
सा.ना.पा.	—	—	सामान्य नाट्यपात्र

अपनी बात

बात १०-१२ वर्ष पुरानी है डा. नामवर सिंह के निर्देश पर भरत के नाट्य शास्त्र पर कार्य करने के लिये एक परियोजना बनाई गई थी और उसके लिये यू.जी.सी. ने अनुदान देना भी स्वीकार कर लिया था। किन्तु बाद में अधिक आयु के व्यक्ति को इतनी बड़ी योजना प्रारम्भ करना उचित नहीं समझा गया और वह स्वीकृति वापस ले ली गई। अनुदान की स्वीकृति की सूचना मिल जाने पर प्रारम्भिक तैयारी के रूप में वर्णानुक्रम से कुछ सामग्री सङ्कलित कर ली गई। किन्तु योजना के अस्वीकृत हो जाने पर उस कार्य को आगे नहीं बढ़ाया जा सका। वह सारी सामग्री उपेक्षित पड़ी रही। पिछले वर्ष कुछ मित्रों के परामर्श से उस अधूरे कार्य को पुनः हाथ में लिया गया और निश्चय किया गया कि उसे कोश-ग्रन्थ के रूप में सम्पादित कर प्रकाशित कराने का प्रयत्न किया जाय। समस्त कार्य को एक साथ पूरा करने में अधिक विलम्ब और फलतः उसके बीच में ही रुक जाने की सम्भावना थी। अतः निश्चय किया गया कि सम्पूर्ण कार्य को तीन खण्डों में प्रकाशित किया जाय– (१) संस्कृत नाटक परक, (२) नाट्य शास्त्रीय पारिभाषिक शब्दावली और (३) नाट्यशास्त्रोपयोगी उपरंजक कलायें। इसी योजना के आधीन साहित्य मर्मज्ञों की सेवा में प्रथम खण्ड प्रस्तुत करते हुये संकलनकर्ता (लेखक) प्रसन्नता का अनुभव कर रहा है। दूसरे खण्ड की भी तत्कालीन संकलित लगभग २० प्रतिशत सामग्री विद्यमान है। यदि परमपिता ने अवसर और सुयोग प्रदान किया तो लेखक दूसरे खण्ड को लेकर भी साहित्यज्ञ-समाज के सम्मुख उपस्थित होने का प्रयत्न करेगा ऐसी आशंसा है।

संस्कृत साहित्य का प्रभावी विस्तार हजारों वर्षों की सीमावधि में फैला हुआ है जिसके संरक्षण की प्राचीन काल में कोई व्यवस्था नहीं रही। हजारों की संख्या में प्राचीन पुस्तकों की हस्तलिखित पाण्डुलिपियाँ राजघरानों के पुस्तकालयों में भरी पड़ी हैं। उन्हें व्यवस्था देना श्रमसाध्य कार्य है। पाश्चात्य विद्वानों और उनके पदचिन्हों पर चलने वाले कतिपय भारतीय अनुसन्धाताओं ने इस दिशा में कुछ कार्य किया है। किन्तु फिर भी अनेकशः निश्चयात्मकता का अभाव बना हुआहै। कवियों और कलाकारों का व्यक्तित्व, उनका समय, उनकी कृतियों का विस्तार आदि सभी कुछ अतीत के गर्भ में विलीन हो गया है। कहीं केवल पुस्तकों का नाम शेष रह गया है; कहीं पुस्तकें तो मिलती हैं किन्तु उनके लेखक का पता नहीं। कहीं अधूरी पुस्तकें मिलती हैं। जो साहित्य उपलब्ध भी हैं उनके अधिकांश लेखकों का समय निश्चित नहीं है। सभी कुछ अनुसन्धान सापेक्ष है। अनेकशः वास्तविकता के निकट पहुंचने के लिये कल्पना और सम्भावना का सहारा लेना

पड़ता है। संरक्षण की व्यवस्था बन जाने के कारण आधुनिक कृतियों के विषय में ऐसी सन्देह की स्थिति नहीं के बराबर है। प्रस्तुत कृति में संस्कृत नाटकों के विषय में जो भी सामग्री सुलभ है उसका संकलन कर दिया गया है। जो रचनायें साहित्य जगत में प्रतिष्ठित हो चुकी हैं उनका कुछ अधिक विस्तृत परिचय दिया गया है और उनके प्रमुख पात्रों की चरित्रगत विशेषताओं का भी यथास्थान संक्षिप्त परिचय दे दिया गया है। परिशिष्ट में रचनाओं की रचना एवं प्रस्तुतीकरण प्रक्रिया एवं भूमिका में सामान्य सर्वेक्षण प्रस्तुत किया गया है।

प्रस्तुत कृति के प्रस्तुतीकरण में लेखक को प्रशस्त सहयोगी डा. अशोक गांगुली एवं डा. पी.सी. जैन से प्रोत्साहन के साथ साहित्य सामग्री की भी सुविधा प्राप्त हुई है। डा. हरदयाल ने परामर्श से लेखक को कृतार्थ किया है। लेखक अन्तस्तल से इन अकारण बन्धुओं का अभारी है। समय समय पर प्रतिवेशी डा. विद्याभूषण भरद्वाज एवं उनकी पत्नी डा. स्वर्ण कान्ता के साथ विचार विमर्श हुआ है। पौत्री कु. ज्योति त्रिपाठी से भी यत्किञ्चित् सहायता प्राप्त हुई है। ये सभी व्यक्ति लेखक के धन्यवाद के नहीं आशीर्वाद के अधिकारी हैं। प्रकाशन की त्वरा के लिये चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान के अधिकारी श्री वल्लभ देव भी प्रशंसा और धन्यवाद के पात्र हैं। लेखक आशंसा करता है कि संस्कृत नाटक साहित्य के जिज्ञासु इससे कुछ सन्तोष लाभ अवश्य कर सकेंगे।

– रा.सा. त्रिपाठी

भूमिका

संगीत, नृत्य, कहानी, अभिनय, नाट्य का उदय मानव की जन्मजात प्रवृत्ति से ही होता है। किसी भी भावनाप्रवण कविता को सस्वर पढना और सुनना ही पसन्द किया जाता है, जब कोई मनोवाञ्छित सूचना मिलती है या घटना सामने आती है और मन किसी भावना से भर जाता है तब पैर स्वतः थिरक उठते हैं; कहानी का कहा और सुना जाना मानव की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। बचपन से लेकर परिणतआयुपर्यन्त प्रत्येक व्यक्ति कहानी कहने और सुनाने में आनन्द लेता है। जब कोई व्यक्ति किसी प्रकार ऐसी घटना को सुनाता है जिसका उसकी भावना पर प्रभाव पड़ा है और वह सुनने वालों पर वही प्रभाव डालना चाहता है तब उसके हाथ पैर नेत्र इत्यादि अंग स्वतः अभिनय में प्रवृत्त हो जाते हैं। ऐसी घटना सुनाने वाला कहने वाले की आवाज बनाकर उसकी नकल करता है। कहने वाले ने जो हाथ के इशारे किये होंगे, जिस प्रकार वह चला होगा इस सबकी नकल करेगा। जिन शब्दों का उसने प्रयोग किया होगा उन्हीं का सुनाने वाला अनुकरण करेगा। आशय यह है कि अनुकरण अथवा अभिनय मनुष्य की जन्मजात प्रवृत्ति है। ये सभी एकाकी तत्त्व सौन्दर्य की सृष्टि करने वाले तत्त्व हैं जो आनन्द साधना में कारण होते हैं। नाट्य इन सबका संघात है। यह दृश्य और श्रव्य दोनों रूपों में आनन्द की सृष्टि करता है। समस्त ललितकलाओं में काव्य मूर्धन्य माना जाता है। काव्य में भी नाट्य का अधिक महत्व है। वामन ने कहा है– 'सन्दर्भों में दशरूपक (नाटक इत्यादि) श्रेष्ठ हैं, क्योंकि सभी गुणों से परिपूर्ण होने से वहाँ (नाटक इत्यादि) चित्रपट के समान विचित्र रूप वाला है।'[१] पाश्चात्य विद्वान् ग्रोस ने भी कुछ ऐसे ही विचार व्यक्त किये हैं। उनके अनुसार 'पिछड़ी जाति की प्रत्येक कहानी एक नाटक होती है, क्योंकि कहानी कहने वाला साधारण रूप में कहानी सुनाकर ही सन्तुष्ट नहीं होता, किन्तु वह अंगसञ्चालन, भावव्यञ्जक स्वरलय इत्यादि से वाणी को नवीनता देकर अपने वर्णन में जीवन का सञ्चार करना चाहता है। वह घटना को नाटक बना देता है। बच्चे और अशिक्षित व्यक्ति भी इस स्थिति में नहीं होते कि किसी भावना को बिना उस प्रकार की आकृति बनाये और उसी प्रकार की चेष्टायें किये व्यक्त कर सकें।' इस प्रकार सभी प्रकार की कविता का मूल उद्‌गम नाट्यकला से ही होता है। एक अमेरिकन विद्वान ने विभिन्न राष्ट्रों के प्रगीतों का अध्ययन कर निष्कर्ष निकाला था और स्पष्ट किया था कि सभी प्रगीतों का वाचन मौलिक रूप में सर्वदा संगीत और नाटकीय नृत्य से समन्वित होता है। अतः यह कथन सत्य प्रतीत होता है कि, लोकप्रिय नाटक का विकास सर्वदा संगीत और नृत्य से होता है। गोटेस्कल ने

१. (सन्दर्भेषु दशरूपक श्रेय; १-३-३० तद्धि चित्रं चित्रपटवद्विशेषसाकल्यात् १-३-३१ काव्यसूत्र)

कहा है कि नाटक कविता की कली है; प्रगीत और कथा साहित्य का मेल है, वास्तविक घटना की सतत गतिमान प्रफुल्लता है जो आने वाली पीढी की भावना के मेल में स्वयं को विकसित कर लेती है।[१]

भारतीय नाटक साहित्य का सीमा विस्तार

भारतीय साहित्य का ही नहीं विश्व साहित्य का सर्वप्राचीन काव्यसंकलन, ऋग्वेद माना जाता है। जैसा कि उक्त विवेचन से सिद्ध है कि प्रत्येक प्रगीत नाट्यमूलक या नाट्यपर्यवसायी होता है। अतः नाटक साहित्य का भी उद्गम ऋग्वेद से ही माना जाता है। उस समय से लेकर आज तक अप्रतिहतगति से संस्कृत नाटकों की रचना हो रही है। इस प्रकार नाटक साहित्य का परिणाह सैंकड़ों नहीं हजारों वर्षों की कालावधि में व्याप्त है। सुविधापूर्वक इस नाटक साहित्य परम्परा को तीन कालों में विभाजित किया जा सकता है– (१) आदिकाल– वैदिक युग से ईसवी सन् के प्रारम्भ तक; (२) मध्यकाल– ईसवी सन् के प्रारम्भ से १९वीं शताब्दी के अन्त तक और (३) आधुनिक काल– बीसवीं शताब्दी।

आदिकाल अथवा अन्धयुग

इस काल की कोई पूर्ण नाट्यकृति प्राप्त नहीं होती। ऐसा स्वाभाविक भी है। जैसाकि मैक्समूलर ने कहा है भारतीय और यूनानियों की मनोवृत्तियां विरोधी दिशाओं में जाने वाली थीं। भारतीय लोग जीवन को असार, असत्य मानते थे तथा जीवन का उनका अन्तिम लक्ष्य मोक्ष प्राप्त करना था जबकि यूनानी लोग जीवन को पूर्ण सत्य मानते थे और भौतिक उन्नति को सर्वाधिक महत्व देते थे। यही कारण है भारतीय भावुक कवि-समाज अपनी रचनाओं के साथ अपना नाम सुरक्षित रखने के लिये उत्सुक नहीं था। उसे केवल अपनी रचना को सुरक्षित रखने की चिन्ता थी। अतः वह अपनी रचनाओं को समाज में महत्ता प्राप्त महान लेखकों के नाम से प्रसिद्ध करता था जिनके लिये उसका विश्वास था कि उसकी रचना प्रतिष्ठित रहेगी और चलती भी रहेगी। यही कारण है कि वेदव्यास के नाम पर चारो वेद, सभी पुराण, उपपुराण आदि अनेक रचनायें प्रसिद्ध हैं। यह साहित्यराशि इतनी विशाल है कि एक व्यक्ति की जीवन साधना तो हो ही नहीं सकती किसी एक युग में भी इतना साहित्य लिखा नहीं जा सकता। इसका आशय यह नहीं है कि यह साहित्य उच्चकोटि का नहीं है। इस विषय में मैकडानल का यह कहना महत्वपूर्ण है कि किसी भी पाश्चात्यसाहित्य में किसी एक विषय में १० अच्छी कवितायें संकलित करना कठिन हो जायेगा जबकि वैदिक साहित्य में उषा इत्यादि किसी भी प्राकृतिक तत्व के विषय में बात की बात में ५०० उच्चकोटि की कविताओं को संकलित कर देना एक साधारण सी बात होगी। वेदों की उच्चकोटि की रचनाओं पर सारा साहित्यसमाज मन्त्रमुग्ध है, यहां तक कि पाश्चात्य विचारकों को वेदों की इतनी प्राचीनता पर भी सन्देह

१. (दे. विण्टर नित्ज 'हिष्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर' तृतीय भाग पृ. १७९)

होने लगा है। इन लोगों का कहना है कि सहृदयता और भावुकता से ओतप्रोत भारतीयमानस वेदों की रचना के बाद हजारों वर्ष मौन रह ही नहीं सकता था। निश्चित ही यह रचना उतनी पुरानी नहीं हो सकती जितनी की भारत में समझी जाती है। आशय यह है कि उस काल में नाटक के क्षेत्र में कितना साहित्य लिखा गया था इसका निश्चयात्मक उत्तर देने का साहित्य जगत के पास कोई साधन नहीं है।

भारत में समस्त ज्ञान, विज्ञान, धर्म, दर्शन इत्यादि का मूलस्रोत वेद माना जाता है। जिस प्रकार हम अनेक प्रचीन उपाख्यानों का मूल वेद में तलाश करते हैं और पुराणों, बौद्धों, जैनों के अनेक कथानकों का सातत्य वहीं से स्वीकार करते हैं उसी प्रकार नाटकों का मूल भी वेदों में ही होना चाहिए। वेदों को संहिता कहा गया है जिसका अर्थ होता है संकलन। ज्ञात होता है वेद में विखरी हुई ललित काव्यराशि का संकलन किया गया है। संकलन का स्वभाव होता है कि छांटकर अच्छे भाग को संकलित कर दिया जाता है और साधारण भाग की उपेक्षा कर दी जाती है। वेदों में जो अनेक संवाद सूक्त पाये गये हैं उनके विषय में कल्पना की गई है कि ये वस्तुतः किसी नाटक के अंग होंगे जिनमें पद्यों और गीतों के साथ गद्य भी समाविष्ट रहा होगा। संकलन कर्ता ने गद्य भाग छोड़ दिया, केवल पद्यों का संकलन कर दिया। सम्भवतः ये सूक्त किसी नाटक का अंग रहे होंगे।[१] यह स्वाभाविक भी प्रतीत होता है। इसे हम आज के सन्दर्भ में भली भांति समझ सकते हैं। टेलीविजन के चित्रहार में विभिन्न फिल्मों के संकलित भाग दिखलाये जाते हैं जिनमें गद्य की प्रायः उपेक्षा ही की जाती है, केवल पद्य भाग का संकलन किया जाताहै। ओल्डेन वर्ग की सम्मति में आख्यानक सूक्तों की व्याख्या गद्यपद्यात्मक कथानक की ओर लौटकर ही उस कथानक के प्रकाश में ही की जा सकती है संकलन में जिसका पद्यभाग ही हम तक पहुंचा है और उस पद्य के आधार पर ही पूरे कथानक का उन्नयन करना पड़ता है।इस प्रकार के कथानक कुछ तो ब्राह्मण ग्रन्थों में मिलते हैं; पुराणों, जैन साहित्य और बौद्ध साहित्य में कभी कभी इन प्रगीत सूक्तों की पृष्ठभूमि प्राप्त हो जाती है। एस.लेवी, जे. हर्लेट और वाना एल.वी. श्रोडर के मत में ये संवाद सूक्त प्रगीत कमोवेश पूर्ण नाटक हैं।[२] विण्टनित्ज का कहना है कि हो सकता है ये संवादसूक्त वास्तविक पूर्ण नाटक न हों फिर भी ये आदिकालीन मानव के अविकसित प्रारम्भिक नाटक हों। वास्तव में ये आख्यान सूक्त हैं और उन्हें आदिमानव के नाटक या प्रगीत काव्यमात्र कहा जा सकता है। पुरुरवा उर्वशी सूक्त की व्याख्या शतपथ ब्राह्मण में आये तत्संवद्ध कथानक के परिशिष्ट रूप में ही की जा सकती है।

ऋग्वेद के संवादसूक्तों का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। उनमें पुरुरवा उर्वशी सूक्त शृङ्गार रसात्मक रचना है; यमयमी सूक्त शृङ्गाररसाभासव्यञ्जक रचना है। सरमापणि सूक्त

---

१. (दे. विण्टनित्ज का हिष्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर भाग ३ पृ. १८०)
२. (वही. पृ. १८०)

कूटनीति परक है, अग्नि के खेद, विवाद, मनोरंजन इत्यादि अनेक भावनाओं का इनमें समावेश है। ऋग्वेद के इन सूक्तों के अनुकरण पर ही बाद में अथर्ववेद में भी (५.११) पर एक संवादसूक्त आया है। वैदिक युग के समाप्त होने के समीप भी इस प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं जिनमें गद्य के अन्दर इस प्रकार के पद्यखण्ड जोड़ दिये गये हैं। गद्य और पद्य की भाषा में भेद है। पद्य की भाषा ऋग्वेद की परवर्ती भाषा से मिलती जुलती है। इस प्रकार के परवर्ती सूक्तों में ब्राह्मण ग्रन्थों मे सुपर्णाध्याय आता है जिसमें महाभारत में आई हुई कद्रू, विनता और गरुड की कथा का प्रतिरूप पाया जाता है। इसी प्राकर ऐतरेय ब्राह्मण में शुनः शेष की कथा आती है। निरुक्त एवं उपनिषदों में भी कई छोटे छोटे कथानक मिलते हैं। निरुक्त में वैदिक सूक्तों के सन्दर्भ में इस प्रकार के कथानक दिये गये हैं।

यदि यह कल्पना सही मानी जाय कि अनेक सूक्त नाटक रचनाओं से संकलित किये गये हैं तो उसके लिये संवाद सूक्तों तक सीमित रहना ही उचित नहीं होगा। अनेक अन्य सूक्तों की भी इसी प्रकार की व्याख्या की जा सकती है जिनमें उच्चकोटि की कविता और पारिवारिक परिस्थितियों का चित्रण किया गया है। उषा अनेक रूपों में हमारे सामने आती है। यह द्यौः की चमकीली कन्या एवं काली रात्रि की प्रभाशालिनी बहन है। यह अपने प्रेमी के प्रकाश से प्रकाशित होती है। सूर्य उसके पीछे से उसके मार्ग पर प्रकाश रश्मियां विकीर्ण करता है और उसके पीछे इसी प्रकार चलता है जैसे एक तरुण पुरुष किसी तरुणी के पीछे उसका पदानुसरण करता है। वह एक नर्तकी है जो शृङ्गार कर पूर्व में आकर खड़ी होती है और अपने स्तनों का प्रदर्शन करती है। विवाह विषयक सूक्त सामाजिक जीवन पर अच्छा प्रकाश डालता है। चन्द्रमा सूर्य की पुत्री सूर्या का प्रेमी है! सूर्या स्वयं चन्द्रमा को पति रूप में चाहती है। विवाह का प्रस्ताव लेकर अश्विन पिता सूर्य के पास जाते हैं। सूर्य उस प्रस्ताव को स्वीकार कर लेते हैं और पुत्री को उसके चाहे हुये पति के घर भेज देते हैं। उसको ले जाने के लिये दो पहियों वाली गाड़ी पुष्पों से सजाई जाती है। विवाह विधि में यज्ञाग्नि के चारों ओर परिक्रमा की जाती है। तब वरयात्रा पर आशीर्वादों में आशंसा की जाती है और यह आकांक्षा व्यक्त की जाती है कि नवविवाहित दम्पत्ति बहुत अधिक सन्तान प्राप्त करें, सम्पन्नता, दीर्घजीवन और रोगों से निर्मुक्ति का आनन्द लें। तब वधू का हाथ वर के हाथ में दिया जाता है। वर वधू का हाथ पकड़ते हुये कहता है–

गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्याजरदष्टिर्यथासः।
भगो अर्यमा सविता पुरन्धिर्मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः॥

[हम तुम्हारा हाथ पकड़ रहे हैं जिससे हमें अच्छा सौभाग्य प्राप्त हो। मुझ पति के साथ तुम वृद्धावस्था प्राप्त करो, भग, अर्यमा, सविता, पुरन्धि इन सव देवताओं द्वारा मेरे घर में भाग लेने के लिये तुम मुझे प्रदान की गई हो।]

इसके बाद प्रदान करने के लिये (कन्यादान करने के लिये) अग्निदेव को बुलाया जाता है– 'हे अग्निदेव प्रकाशमान सूर्या को पहले उन लोगों ने वधू समूह के साथ तुम्हारे सम्मुख उपस्थित किया; इसलिये अपनी वारी में पति को पत्नी प्रदान करो और साथ ही उसे सन्तति परम्परा का आशीर्वाद दो।'

इसके बाद विदा और पति के घर में प्रवेश का अवसर आता है– 'यहीं रहो; वियुक्त मत हो, विस्तार कर और अपने पुत्रों पौत्रों के साथ खेलते हुये अपने ही घर में आनन्द भोगते हुये जीवन को दिये हुये पूरे विस्तार को प्राप्त करो।'

उषा की बहन निशा भी एक महत्वपूर्ण युवती है। उषा को सूर्य चमकाता है। किन्तु निशा नक्षत्रों से अपना शृङ्गार स्वयं करती है। वह सूर्य के अदृश्य हो जाने पर स्वयं को सजाती है और अपने पास से उषा को भगा देती है। अदिति देवताओं की मां है। उसका पुत्र शक्तिशाली वरुण है। वरुण की भांति ही उसमें भी शारीरिक यन्त्रणाओं और नैतिक अपराधों से छुटकारा देने की शक्ति है। वह मां जो ठहरी! सरस्वती भी उच्च देवियों में एक है।

पारिवारिक जीवन के अतिरिक्त सामाजिक राजनैतिक और युद्ध सम्बन्धी सूक्त भी पाये जाते हैं। राजनैतिक और युद्ध सम्बन्धी सूक्तों में वीर रस की प्रधानता है। सरमापणि संवाद कूटनीति विषयक हैं। यह पणिनामक असुरों द्वारा अपहृत गायों के विवाद को लेकर इन्द्र की दूती सरमा और पणियों के बीच हुआ है। कवीलों के जातीय संघर्ष की छाया भी ऋग्वेद के सूक्तों में पाई जाती है। पांच जातियां– पुरु, तुर्वश, यदु, अनु और द्रुह्यु निरन्तर जातीय संघर्ष में लिप्त रहती थीं। इनका प्राय: वर्णन इस रूप में किया गया है कि इनमें चार जातियों ने त्रित्सुओं के राजा सुदास के प्रतिकूल संगठन बना लिया था और अन्य कुलों के कतिपय अन्य राजाओं का सहयोग लेकर १० राजाओं ने परुष्णी नदी के तट पर महायुद्ध लड़ा था। परुष्णी नदी की धारा को पार करने और उसमें अवरोध उत्पन्न करने के प्रयत्न में त्रित्सुओं ने दस राजाओं की संगठित सैन्यशक्ति को पराजित कर दिया था; उन्हें पीछे ढकेल दिया था। इस युद्ध में त्रित्सुओं ने १० राजाओं की संगठित सैन्य शक्ति का महाविनास किया था।

पुरुजाति सरस्वती के तट पर रहती थी। ऋग्वेद में उनके राजा त्रसदस्यु का उल्लेख किया गया है जो पुरुकुत्स के पुत्र थे। ऋग्वेद में उनके शक्तिशाली राजकुमार तुक्षी का उल्लेख किया गया है। तुर्वश लोगों के साथ यदु भी सम्मिलित थे। अनु लोग परुष्णी के तट पर रहते थे। ज्ञात होता है कि कण्व लोगों का पुरोहितों का परिवार तुर्वश से सम्बद्ध था और भृगुओं का परिवार अनुजाति वालों का पुरोहित था। उन लोगों का निकटवर्ती सम्बन्ध द्रुह्यु लोगों से भी था। ऋग्वेद में मत्स्य जाति का भी उल्लेख किया गया है। त्रित्सु लोगों के शत्रुओं में उनका भी उल्लेख किया गया है। महाभारत के अनुसार मत्स्य लोग यमुना के तट पर रहते थे।

सुदास के शत्रुओं में सर्वधिक शक्तिशाली भरत लोग थे। विश्वामित्र ने अपनी प्रार्थनाओं से विपाशा नदी के जल में त्रित्सुओं द्वारा उतरने योग्य बाँध बना दिया था। बाद में त्रित्सुओं के सहायक पुरोहित वशिष्ठ हो गये और भरत लोगों का साथ विश्वामित्र ने दिया। इसी प्रसंग में वशिष्ठ और विश्वामित्र एक दूसरे के प्रतिद्वन्दी बन गये। युद्ध में वशिष्ठ की मन्त्रणा से संरक्षित त्रित्सु लोग विजयी हुये थे। विश्वामित्र के पूर्वज कुशिक भरतों से निकट रूप में संबद्ध थे। भरतों का यही प्रदेश ब्रह्मावर्त और कुरुक्षेत्र नाम से प्रसिद्ध हुआ।

दस राजाओं के संगठन ने परुष्णी को पश्चिम की ओर से पार करने का प्रयत्न किया था जिसको त्रित्सुराज सुदास ने ५ राजाओं के सहयोग से रोका था। सुदास के सहयोगियों का उल्लेख नहीं किया गया है। सम्भवतः सृञ्जय उनके सहयोगी थे। ऋग्वेद में पाञ्चालों का उल्लेख नहीं है। कुरुओं का भी प्रत्यक्ष उल्लेख नहीं पाया जाता। महाभारत का युद्ध कुरु पांञ्चाल युद्ध ही कहा जाता है। ये दोनों जातियां अत्यन्त प्रतिष्ठित हैं। इन जातियों का उत्थान बाद में हुआ। ऋग्वेद की महत्वपूर्ण जातियां त्रित्सु, तुर्वश इत्यादि बाद में लुप्त हो गईं। ऋग्वेद काल की कई जातियां या तो दूसरे नाम से प्रसिद्ध हो गईं या उनका समावेश दूसरी जातियों में हो गया। ऋग्वेद में भरत और कुरु पृथग् जातियां जो महाभारत काल तक आते आते एक हो गईं और उनके नाम पर ही कुरुराज्य की स्थापना हुई। यह भी असम्भव नहीं है कि त्रित्सुओं का विलय भी कुरुराज्य में हो गया हो। पाञ्चाल का निर्माण भी अनेक जातियों के मिलन से बना था। पाञ्चाल का अर्थ ही है ५ जातियों के मेल से बनी जाति। वैदिककाल की कुछ जातियाँ महाभारत काल तक स्वतन्त्र सत्ता बनाये रहीं जिनमें उशीनर सृञ्जय, मत्स्य और चेदि प्रमुख हैं। महाभारत काल तक यदु जाति यादव रूप में अपनी सत्ता बनाये रही जिसमें कृष्ण का अवतार हुआ था।[१]

ऋग्वेद में जातीय संघर्षों का उल्लेख किया गया है। यदि विचारकों के इस कथन में सत्य का अंश है कि ऋग्वेद के अनेक सूक्त नाटकों के गीतों से लिये गये हैं तो हो सकता है कि क्षेत्र की और इस काल की कतिपय नाट्यकृतियां विद्यमान रही हों जिनमें आये हुये गीतों का सूक्तों के रूप में इस संकलन में समावेश कर दिया गया हो। विण्टरनित्ज ने स्वीकार किया है कि अन्य देशों की भांति भारत में भी नाटक की गहरी जड़ें धार्मिक सम्प्रदाय में गड़ी हुई हैं। वैदिक कर्मकाण्डविधि में ऐसी अनेक व्यवस्थाओं का वर्णन किया गया है जिनको सीधे तौर से नाटक का एक प्रकार माना जाता है।

वैदिक काल के बाद नाटक का सम्बन्ध इन्द्रध्वज महोत्सव से जुड़ गया। यह उत्सव वर्षाकाल की समाप्ति के बाद मनाया जाता था। सम्भवतः यह उत्सव उसी समय होता था जिस समय हम आजकल दीवाली का उत्सव मनाते हैं। कृष्ण का इन्द्रपूजा को हटाकर गोवर्धनपूजा स्थापित करना इसी तथ्य की ओर संकेत करता है। इसके बाद इन्द्र

१. (उक्त विवरण मैक्डानल के आधार पर लिखा गया है।)

की पूजा के स्थान पर ब्रह्मा, विष्णु, महेश की पूजा प्रचलित हो गई और नाट्यकला में इन्हीं त्रिदेवों का प्राधान्य हो गया। इनमें प्रमुख स्थान कृष्ण को प्राप्त हुआ। विष्णु पुराण और श्रीमद्भावगवत में कृष्ण लीला के अन्तर्गत रास पञ्चाध्यायी में इस वास्तविकता के दर्शन होते हैं। श्रीमद्भावगवत में कथा इस प्रकार है–

'शरत् काल था; मल्लिकायें खिली हुई थीं; उद्दीपक वेला थी उसी समय प्राची दिशा के मुख को लाल करिणों से रंगता हुआ चन्द्रोदय हो गया। कृष्ण ने रमण की इच्छा से सुमधुर वंशी बजाई जिसमें मानो कामदेव का बीजमन्त्र ही फूंक दिया हो। उस वंशी की ध्वनि से आकर्षित होकर झुण्ड के झुण्ड रमणियां अपना गृह कार्य छोड़ कर कृष्ण के पास एकान्त में जा पहुंची। पहले तो कृष्ण ने उन्हें सदाचार का उपदेश दिया फिर उनका विशेष आग्रह देखकर नृत्य करना प्रारम्भ कर दिया। कुछ समय नृत्य चलता रहा फिर अवसर देखकर युवतियों में कामदेव ने प्रवेश किया। कृष्ण यह देखकर एक गोपी को लेकर अन्तर्ध्यान हो गये। (सम्भवतः यह गोपी राधा थी) उस गोपी को अपने सौभाग्य पर गर्व हुआ उसने थक जाने का बहाना किया। तब कृष्ण ने उसको कन्धे पर बैठने के लिये कहा और जब वह कन्धे पर बैठने की चेष्टा ही कर रही थी कि कृष्ण वहाँ से अन्तर्ध्यान हो गये। इधर गोपियां कृष्ण को तलाश करती हुई भटक रही थीं। उसी समय वह गोपी भी आकर उनसे मिल गई। अब गोपियों ने मिलकर कृष्ण लीला का अभिनय प्रारम्भ कर दिया। एक गोपी कृष्ण बनी दूसरी पूतना, एक गोपी शकटासुर बनी दूसरी कृष्ण। इस प्रकार सभी गोपियां कृष्ण लीला का अभिनय करने लगीं। उसी अभिनय के बीच में मुस्कुराते हुए कृष्ण ने प्रवेश किया।

वेदेतर साहित्य और नाटक

व्याकरण

पाणिनि ने दो नटसूत्रकारों का उल्लेख किया है– शिलाली और कृशाश्व।[1] शैलानि ब्राह्मण के नाम पर एक वैदिक शाखा भी बतलाई जाती है। सम्भवतः यही शिलाली है जिन्होंने नटसूत्रों की रचना की। ए.बी. कीथ का कहना है कि पाणिनि के समय के नटसूत्रकारों पर अविश्वास इसलिये होता है कि पाणिनि ने 'नटसूत्र' शब्द का तो प्रयोग किया है नाटक शब्द का प्रयोग नहीं किया। पाणिनि के पास नाटक वाचक कोई शब्द है ही नहीं। दूसरी बात यह भी है कि भरत ने पाणिनि का उल्लेख नहीं किया है और न शिलाली एवं कृशाश्व के बारे में कुछ कहा है। किन्तु ये दोनों एतराज विचित्र हैं। पाणिनि नाट्यशास्त्र की नहीं शब्दशास्त्र की रचना कर रहे थे। शिलाली और कृशाश्व शब्दों से उनके सूत्रों के अध्येताओं के लिये शैलालिन और 'कृशाश्विनः' इन शब्दों की रचना में कुछ विलक्षणता हैं 'शैलालिनः' में 'इ' को वृद्धि होती है 'कृशाश्विनः' में 'ऋ' को वृद्धि नहीं होती। इस

१. (पराशर्यशिलालिभ्यां भिक्षुनट-सूत्रयोः ४.३.११० कर्मन्दकृशाश्वादिनिः ४.३.१११)

वैषम्य को सिद्ध करने के लिये पाणिनि को दो सूत्र बनाने पड़े। नाटक के विषय में तो कोई विशेषता थी नहीं, उसमें तो सीधे 'नट' धातु से 'ण्वुल' प्रत्यय होकर यह शब्द बन ही जाता। भरत द्वारा उल्लेख करना भी कोई सवल तर्क नहीं है। पाणिनि भरत से बहुत पहले हुये थे। इतने लम्बे समय में उन नट सूत्रों का गुम हो जाना कोई आश्चर्यजनक बात नहीं थी। वे नटसूत्र विद्यमान भी रहे हों किन्तु उनकी ओर भरत का ध्यान न गया हो यह भी असम्भव नहीं है। अतः इन तर्कों के आधार पर इतना बड़ा निष्कर्ष निकाल लेना तर्क संगत नहीं कहा जा सकता कि 'उस समय तक नाट्य कला विकसित हुई ही नहीं थी; अतः नटसूत्रों का क्षेत्र मूकाभिनय तो हो सकता है; सामान्य अभिनय नहीं।' इसमें यह निष्कर्ष निश्चित रूप से निकलता है कि उस समय तक नाटक रचना इस स्तर तक पहुंच चुकी थी कि उसको शास्त्रीयता के घेरे में बांधने की आवश्यकता भी अनुभव की जाने लगी थी और नटसूत्र लिखे जाने लगे थे।

व्याकरण के दूसरे महान आचार्य पतञ्जलि के कथन से तत्कालीन नाट्यरचना की सत्ता अधिक स्पष्टता से सिद्ध हो जाती है। भाष्यकार ने दो नाटकों का नाम लिया है– कंसवध और वलिबन्ध। वहां यह प्रश्न उठाया गया है कि ये दोनों घटनायें बहुत पहले हो चुकी है उनमें वर्तमान काल का प्रयोग कैसे संगत हो सकता है। इसका उत्तर दिया गया है कि वर्तमानकालता तीन रूपों में सिद्ध होती है– (१) शौभिक जो रंगमञ्च पर प्रत्यक्ष रूप से कंस का वध करते हैं या बलि-बन्धन करते हैं क्योंकि वह प्रत्यक्ष रूप में होता है अतः उसमें वर्तमानता संगत हो जाती है। (२) यही बात चित्र में होती है चित्र में कृष्ण द्वारा कंस का वध दिखलाया जाता है, वहां उठाये एवं तैयार किये और गिराये जाते हुये प्रहार दिखलाये जाते हैं जिससे वर्तमानकालता आ जाती है और (३) गृन्थवाचक लोग मानव-समूह (श्रोताओं) के सामने कथा कहते हैं। तब वे जो भी वर्णन करते हैं उससे वर्तमानता आ जाती है। इस प्रकार इन तीनों साधनों से कंस की उत्पत्ति से लेकर मृत्युपर्यन्त उनका व्यक्तित्व की एक धारणा जनता की बुद्धि का विषय बन जाती है और जनता उसे प्रत्यक्ष दृष्टिविषय मानने लगती है। यहां कृष्ण और कंस के दो विरोधी स्वरूप मिश्रित रूप में बुद्धिगत हो जाते हैं। कुछ लोग कृष्णभक्त होते हैं; कुछ लोग कंसभक्त। उनके रंग का अन्तर भी बुद्धिगत हो जाता है– कोई कालामुख बनाकर आते हैं कोई लाल मुख। इस बुद्धिगत तत्व से सभी व्यवहार संगत हो जाते हैं। इसी लिये व्यवहार में तीनों काल भी संगत हो जाते हैं, जैसे– 'अब जाकर क्या करोगे कंस तो मार डाला गया' (भूतकाल) 'जल्दी जाओ कंस मारा जा रहा है' (वर्तमान) 'कंस मारा जायेगा।' कहा भी गया है–

'शब्दोपहितरूपांश्च बुद्धेर्विषयतां गतान्
प्रत्यक्षमिव कंसादीन् साधनत्वेन मन्यते'

[जिनका स्वरूप शब्दों द्वारा समीर्पत कर दिया जाता है और जो बुद्धि का विषय बन जाते हैं उन कंसादिकों को (परिशीलक) वध इत्यादि का साधन मान लेता है।]

अन्यत्र भी आचार्यों ने व्यञ्जनों के स्वर के साथ सम्बन्ध के विषय में लिखा है कि व्यञ्जनों की स्थिति नटी जैसी है। जिस प्रकार नटी रंगमञ्च पर जाकर जिसकी पत्नी का अभिनय करती है उसी की बन जाती है; उसी प्रकार व्यञ्जन भी जिल स्वर के साथ मिलते हैं उसी के उच्चारण में स्वयं को मिला देते हैं। पतंजलि ने दो नाटकों का उल्लेख तो किया है, नटों और नट्याचार्यों की हीनदशा का भी विवरण दिया है। उसमें रंगोपजीवियों और रुपाजीवा स्त्रियों का भी उल्लेख है।

इस प्रकार व्याकरण का साक्ष्य इस बात का पूरा प्रमाण है ईसवीं शती के प्रारम्भ होने के पहले भारत में नाट्यकला विकसित थी और इस दिशा में अनेक नाट्यकृतियों की रचना भी हो चुकी थी।

पौराणिक साक्ष्य

महाभारत में नाट्यसम्बन्धी नट, सूत्रधार, शैलूष इत्यादि शब्द तो मिलते हैं; किन्तु उसमें पाश्चात्य विद्वानों की मान्यता के अनुसार इस विषय में कोई निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि महाभारतकार नाट्यकला से परिचित था या नहीं। इस विषय में महाभारत के परिशिष्ट हरिवंश में स्पष्ट रूप में नाट्यकला के विषय में कई अध्याय व्यय किये गये हैं। हरिवंश पुराण नाटक की सत्ता से ही नहीं उसके कतिपय भेदों से भी परिचित है। इसमें विष्णुवर्व के ८८,८९,९३-९७ अध्याओं में नाट्यकला का उल्लेख किया गया है। प्रद्युम्न प्रभावती विवाह के प्रसंग में रामायण का नाट्यरूपान्तरण प्रस्तुत किया गया। उसमें वाल्मीकि का नामोल्लेख तो नहीं है किन्तु रामायण में प्राप्त सभी विशिष्ट घटनाओं का नाटकीय विवरण है और उसमें राम के विष्णु का अवतार होने का भी चित्रण किया गया है। रामावतार का उद्देश्य राक्षसराज रावण का वध बतालाया जाता है। साथ ही दशरथ द्वारा लोमपाद को पुत्री शान्ता के प्रदान किये जाने, शान्ता द्वारा महान मुनि शृङ्गी-ऋषि के लाये जाने, चरित्र के अनुसार चारो भाइयों और ऋङ्गी ऋषि के वस्त्राभरण धारण कर नटों और नर्तकों द्वारा अभिनय किये जाने का समावेश है। इस अभिनय में छलिक (हल्लीसक) नृत्य का भी प्रदर्शन किया गया जिसमें शृङ्गार और वीर तथा ताण्डव और लास्य दोनों का योग रहता है। इस उत्सव और नाट्य प्रयोग में कृष्ण-रुक्मिमी, वलराम रेवती ने भी अभिनेताओं के रूप में भाग लिया। नारद ने वीणा बजाई, कृष्ण ने वंशी बजाई, अप्सराओं ने मृदंग बजाया। देव गन्धर्वों ने नृत्य गीत में योगदान दिया। इस अभिनय में रामकालीन वेषविन्यास नेपथ्य विधान, क्रियाकलाप, पात्रों के संस्कार इत्यादि को देखकर उसकी सफलता पर सारा समाज मन्त्रमुग्ध हो गया। नाटक की सफलता पर जो प्रतिक्रियायें व्यक्त की गई वे भी महत्वपूर्ण थीं। दर्शकों ने उठ उठ कर अभिनन्दन किया। अभिनय की सफलता पर प्रसन्न होकर दर्शक भावावेश में वस्त्राभरण इत्यादि पुरस्कार में प्रदान करने लगे। इसमें आकाशचारी विमान और हाथी भी पुरस्कार में दिये

गये। रामायण के नाटकीकरण के अतिरिक्त कौवेररम्भामिसरण के अभिनय का भी उल्लेख किया गया है–

रामायणं महाकाव्यमुद्दिश्य नाटकीकृतम्।

रम्भाभिसारं कौवेरं नाटकं ननृतुस्तदा॥

हरिवंश के अतिरिक्त, मत्स्य, विष्णुधर्मोत्तर पुराण मार्कण्डेय पुराण इत्यादि दूसरे पुराणों में भी नाट्यसामग्री उपलब्ध होती है। भागवत में अभिनय का उल्लेख किया ही जा चुका है। मत्स्य पुराण और विष्णुधर्मोत्तर पुराणों में नाट्यमण्डपों के निर्माण पर भी प्रकाश डाला गया है। अग्निपुराण में नगरनिर्माण एवं वास्तुकला के विवरण में नटों, नर्तकों, वेश्याओं आदि के निवास के लिये नगरों के दक्षिण में व्यवस्था का निर्देश किया गया है। आशय यह है कि यद्यपि हमें तत्कालीन पूर्ण नाटक के दर्शन नहीं होते किन्तु पुराणों में जिस प्रकार का नाट्य सम्बन्धी विवरण प्राप्त होता है उससे स्वभावतः अनुमान लगाया जा सकता है कि उस समय किसी परिमाण में नाट्य रचनायें हुई होंगी जो कालक्रम से लुप्त हो गई।

नाट्य और धर्म

नाट्य की उत्पत्ति और उसका विकास मूलरूप से धार्मिक वातावरण में हुआ। भरत के दिये हुये उपाख्यान के अनुसार उसकी उत्पत्ति में चारों वेदों और तीनों देवों का योगदान है। इसका प्रथम अभिनय इन्द्रध्वज महोत्सव में हुआ था जिसमें सर्वप्रथम ब्रह्मा के द्वारा लिखे हुये नाटकों के अभिनय की ही योजना की गई–

वेदोप्वेदैः संबद्धो नाट्यवेदो महात्मना।

एवं भगवता सृष्टो ब्रह्मणा सर्व वेदिना।

उत्पाद्य नाट्यवेदं तु ब्रह्मोवाच सुरेश्वरम्॥

इतिहासो मया सृष्टः स सुरेषु नियुज्यताम्॥ ना.शा.१-१८-१९.

अभिनय में प्रवृत्त होने वाले (अभिनेताओं) की भी प्रमुख विशेषता धार्मिक जीवन, वेद के रहस्य को समझना और साधना इत्यादि गुण ही माने गये थे। वे ही इसके ग्रहण और धारण में समर्थ थे–

य एते वेदगुह्यज्ञा ऋषयः शंसितव्रताः

एतेऽस्य ग्रहणे शक्ताः प्रयोगेधारणे तथा॥

विघ्नों के अपसारण के लिये जर्जर का निर्माण किया गया और सभी देवताओं ने अपनी अपनी विशेषतायें नाट्यकला को प्रदान कीं। दिशाओं विदिशाओं में विभिन्न देवताओं को रक्षा के लिये नियुक्त किया गया। नाटक के उद्घाटन में पूजा का महत्व माना गया और कहा गया कि नाट्य की सफलता के लिये पूजा विधि अनिवार्य है–

वलिप्रदानैर्होमैश्च मन्त्रौषधिसमन्वितैः।

भोज्यैर्भक्ष्यैश्चपानैश्च वलिं समुपकल्प्यताम् ॥१.१२१

नर्तकोर्थपतिर्वापि यःपूजां न करिष्यति।

न कारयिष्यत्यन्यैर्वा प्राप्नोत्यपचयंतु सः॥

यथाविधि यथादृष्टं यस्तु पूजां करिष्यति।

स लप्स्यते शुभानर्थान् स्वर्गलोकं च यास्यति॥

इस प्रकार नाट्य की उत्पत्ति और उसके प्रचलन में पूजा एवं धार्मिकता का प्रमुख स्थान है। महाभाष्य में कंसवध और बलिबन्ध का उल्लेख किया गया है। दोनों नाटकों की धार्मिकता असन्दिग्ध है। इसमें कृष्णोपासना की प्रधानता है। रासमण्डल का प्रचलन इसका स्पष्ट प्रमाण है। धार्मिकयात्राओं में कृष्णलीला के दृश्य दिखलाये जाने की आम प्रथा है। कृष्ण के समान ही नाट्यकला में शिव और राम का भी महत्वपूर्ण स्थान है। वर्षाकाल के उपरान्त नगरों और गावों में रामलीला की योजना नाट्यकला में राम के महत्व की परिचायक है। नाट्य की स्वरूपस्थिरता में शिव-पार्वती के युग्म का महत्वपूर्ण स्थान है। इनके द्वारा प्रचलित लास्य और ताण्डव के समावेश से नाट्य प्रयोग में परिपूर्णता आती है। नाट्य और नृत्य के उद्भव और विकास में शिव के नटराज रूप की अभ्यर्थना की जाती है।

लिङ्गपूजा अनेक शताब्दियों से प्रचलित रही है। यूरोपीय विद्वानों ने ग्रीक और मैक्सिकों में प्रचलित लिंगनृत्यों के आधार पर भारतीय नाटकों का उद्भव भी लिंगपूजा से माना है। लिंगपूजा किसी रूप में वैदिक काल में भी प्रचलित रही है जिसका आर्यविरोधियों के रूप में ऋग्वेद में उल्लेख मिलता है। लिंगपूजा सृष्टि की प्रक्रिया का एक रूप है जो प्रकृति और पुरुष के मिलन का प्रतीक है। प्राचीन साहित्य की अनुपलब्धि में कहा नहीं जा सकता भारतीय आर्यों को लिङ्गपूजा की इस असंस्कृत भावना ने किस सीमा तक प्रभावित किया। ऋग्वेद के प्रतिषेधात्मक विवरण को देखते हुये सम्भव तो यही लगता है की आर्य जाति ने यदि कभी शिव के रूप में नाट्यकला को अपनाया होगा तो वह आनन्दात्मक नटराज रूप ही होगा। वही रूप रसानुकूल है; लिङ्गपूजा उसके अनुकूल नहीं पड़ती।

बौद्ध और जैन साहित्य में प्रारम्भ में नाट्यकला और उसकी उपरंजक कलाओं नृत्य गीत इत्यादि के प्रति वितृष्णा ही पाई जाती है-

सर्वं विलपितं गीतं सर्व नाट्यं विडम्बितम्।

[सभी गीत विलाप हैं और सभी नाट्य विडम्बना हैं।]

किन्तु यह प्रतिरोधी भावना धीरे धीरे दबती गई और बौद्ध साहित्य तथा जैनागमों में उसके प्रति झुकाव कुछ बढता गया। दिव्यावदान, अवदानशतक जैसे बौद्धग्रन्थों में

भगवान बुद्ध के गुणों में उन्हें नाट्यगुणालंकृत भी कहा गया है। ललितविस्तर में भी हास्य, लास्य, नाट्य इत्यादि सभी कलाओं में मूर्धन्य बुद्ध ही है।[१] नाट्य साहित्य के क्षेत्र में बौद्ध और जैन साहित्य का योगदान उपेक्षणीय नहीं हो सकता।

नाट्यशास्त्र साक्ष्य

शास्त्र का काम सर्वदा लक्ष्य की व्यवस्था करना और उसे समीक्षा पूर्वक नये प्रतिमानों द्वारा बुद्धि गम्य बनाना होता है। लक्ष्य कभी भी कल्पित नहीं होता। उदाहरण के लिये भाषा एक स्वाभाविक प्रवाह में सतत गतिमान स्वाभाविक व्यवहार की वस्तु है। पाणिनि ने उसी प्रचलित भाषा को अपने सिद्धान्तों द्वारा परिष्कृत रूप में प्रस्तुत कर व्यवहर्ताओं के लिये बोधगम्य बनाया। भौतिक द्रव्यों और औषधियों में रोग निवृत्त करने की स्वाभाविक शक्ति है; आयुर्वेदज्ञ उसमें उस शक्ति का आधान नहीं करते; किन्तु आयुर्वेद-शास्त्रकार उन औषधियों को उपयोगी बनाने के लिये उनकी व्यवस्था और व्याख्यामात्र करने के श्रेय के अधिकारी है। प्रतिभा एक जन्मजात गुण है। उसके प्रकाश में जो अनुपम कलाकृतियां निर्मित होती हैं उनमें आनन्द देने की स्वाभाविक शक्ति सन्निहित होती हैं। कलाकार की उन्हीं कृतियों को शास्त्रकार सैद्धान्तिक व्यवस्थाओं में बाँध कर परिशीलकों के लिये सुज्ञेय बनाने का प्रयत्न करते हैं। काव्यशास्त्र के मूर्धन्य आचार्य आनन्दबर्धन ने स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि शास्त्रप्रवृत्ति लक्ष्यपरीक्षा पर आधारित होती है।

ईसा की प्रथम शताब्दी के आसपास भरत का महान् ग्रन्थ नाट्यशास्त्र परिशीलकों के सामने आता है। निश्चित है कि नाटकों को जो शास्त्रीय रूप भरत ने दिया है उसके लक्ष्य ग्रन्थ अवश्य रहे होंगे। स्वभावतः प्रश्न पैदा होता है अर्थप्रकृतियों सन्धियों सन्ध्यङ्गों एवं अर्थोपक्षेपकों, पूर्वरंग और प्रस्तावना की जो व्याख्या और व्यवस्था भरत ने प्रस्तुत की है उस सबका आधार क्या था; क्योंकि उसकी पृष्ठभूमि में कुछ न कुछ कृतियां अवश्य रही होंगी। उनके अभाव में इस प्रकार के शास्त्र की रचना सम्भव ही नहीं थी। केवल इतना ही नहीं भरत की कृति को देखकर स्पष्ट प्रमाणित हो जाता है उनके पहले भी नाट्यशास्त्र पर बहुत कुछ लिखा जाता रहा है। वर्तमान नाट्य शास्त्र के प्रथम अध्याय में भरत ने १०० शिष्यों का उल्लेख किया है जिनमें कई ऐसे हैं जिनका उल्लेख भरत के अतिरिक्त कई अन्य आचार्यों ने भी किया है और उनके नाम पर कतिपय सिद्धान्तों का भी निर्देश किया है। ऐसे आचार्यों में कोहल, दत्तिल, शालिकर्ण, वादरायण, नखकुट्ट, अश्मकुट्ट इत्यादि का नाम लिया जा सकता है। स्वयं भरत ने कहीं कहीं वंश परम्परागत (आनुवंश्य) श्लोकों के और कहीं कहीं सूत्रानुबद्ध आर्याओं के उद्धरण दिये हैं। इसमें लक्ष्यग्रन्थों के साथ शास्त्रीयग्रन्थों की भी परम्परा प्रमाणित होती है। नाट्यशास्त्र स्वयं में एक विश्वकोश (इन्साइक्लोपीडिया) जैसा ग्रन्थ है जिसमें नृत्य, नाट्य, नाट्यवृत्तियां, रूपक-

१. (बौद्ध नाट्य साहित्य के विषय में देखिये प्रस्तुत कृति का बौद्ध नाट्य साहित्य स्तम्भ)

भेद, विभिन्न प्रदेशों के रहन सहन, पहिरावा उढावा, नायक-नायिका भेद, उनके सहायक, संगीत अभिनय इत्यादि नाट्योपयोगी सभी तत्वों का समावेश कर उसे अभिनेताओं और नर्तकों सभी के लिये अपरिहार्य ग्रन्थ बना दिया गया है।

भारतीय नाट्यकला पर ग्रीक प्रभाव की बहुत कुछ चर्चा की जाती है किन्तु भरत ने नाट्यविद्या के भेदोपभेदों में जिस मौलिक चिन्तन का परिचय दिया है वह सर्वथा नई तथा सर्वाङ्ग पूर्ण दिशा है। ग्रीक साहित्य में नाटक के केवल तीन प्रकार माने गये थे- त्रासदी, कामदी और उभयमिश्रण। किन्तु भारतीय भेदोपभेद कल्पना में सामाजिक, सांस्कृतिक आर्थिक इत्यादि का भी रसास्वादन के साथ विचार किया गया है। नाट्यशास्त्र के आचार्य ने नाट्य के प्रारम्भ, वस्तु के विकास बीज, फल, पताका, प्रकरी, पताका स्थानक, अर्थोपक्षेपक इत्यादि नाट्यरचना के विभिन्न उपयोगी सिद्धान्तों पर[1] विस्तार पूर्वक विचार कर सबका उद्देश्य रसास्वादन निश्चित किया है उसके लिये वस्तु, नेता और रस की विविध व्याख्या प्रस्तुत की और सिद्धान्तित किया कि जिन नाट्यप्रयोगों में पूर्ण रसास्वादन के लिये सबका यथोचित मात्रा में सन्निवेश उचित बतलाया गया और यह सिद्धान्तत किया गया कि जिन नाट्य प्रयोगों में पूर्ण रसास्वादन की सम्भावना हो वे ही पूर्ण नाटक कहे जाने के अधिकारी हैं। वे ही प्रधान रूपक कहे जाते हैं। किन्तु इस प्रकार के नाटकों लिये जिन संविधानकों की आवश्यकता होती है वे कष्टसाध्य और व्ययसाध्य होते हैं। उनके लिये अधिक समय देना पड़ता है; खर्चीली रंगशालायें बनवानी पड़ती हैं। यह व्यवस्था बड़े शहरों और श्रीमानों के लिये तो सुलभ है उनसे आम जनता का व्यापक परिमाण में अनुरञ्जन नहीं हो सकता। सर्वसाधारण के अनुरञ्जन के लिये छोटे छोटे सरल नाट्यों की योजना आवश्यक होती है जिनमें अपेक्षाकृत व्यय भी कम हो और रंगशालायें भी इतनी छोटी हों कि या तो थोड़े समय में ही जमाई जा सकें या उठाकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाई जा सकें। साथ ही अभिनय के लिये छोटे छोटे कथानक होने चाहिये जिनमें समय भी कम लगे और उनके लिये प्रशिक्षण और अभ्यास (रिहर्सल) भी कम अपेक्षित हो। इसी उद्देश्य से भारतीय आचार्यों ने प्रधान रूपकों के साथ छोटे छोटे अप्रधान रूपकों की भी कल्पना की। कहा जाता है पिछले दिनों यूरोप में भी लघुनाटक आन्दोलन चला था।

नाटक शब्द की निष्पत्ति णट् धातु से हुई है जिसका अर्थ है नृति या नाचना। वस्तुतः इसका सम्बन्ध 'नृती गात्रनिक्षेपे' धातु से है जिसका अर्थ होता है अंग संचालन अर्थात् आङ्गिक अभिनय। इस प्रकार 'नाटक' का विशेष सम्बन्ध नृत्यकला से है। नृत्य के साथ संगीत का भी उपकार्योपकारक भाव सम्बन्ध है। एक दूसरी धातु 'नट' अवस्पन्दन अर्थ में भी है जिसका अर्थ है द्रवित होना। इस प्रकार 'नट' के क्रियाकलाप को नाटक की संज्ञा दी जाती है। नट के क्रिया कलाप से नृत्य, गीत, अभिनय, हृदय के द्रवित हो

१. (इन पर विचार संस्कृत नाट्यकोश के दूसरे खण्ड का विषय है। सुविधा के लिये परिशिष्ट में इन विषयों का संक्षिप्त परिचय दे दिया गया है। वहीं देखना चाहिये।)

जाने का भाव ये सब तत्व सम्मिलित हो जाते हैं। अभिनय में वेषभूषा भी आ जाती है। आशय यह है कि नाटक शब्द में ही चारो प्रकार के अभिनय सम्मिलित हो जाते हैं- कायिक, वाचिक, सात्विक और आहार्य। शास्त्रीय पारिभाषिकता के अनुसार नाटक एक प्रकार की विधा है या एक विशिष्ट प्रकार है। अतः आचार्यों ने सामान्य अर्थ में एक नये शब्द 'रूपक' को अपनाया है जिसका अर्थ है रूप का आरोप कर अभिनय में प्रवृत्त होना। कुछ रूपक ऐसे होते हैं जिनमें सभी प्रकार के अभिनयों का अवसर होता है; इस प्रकार के अभिनयप्रधान रूपकों को सामान्य रूपक कहा जाता है इनके अतिरिक्त कतिपय अन्य प्रकार के रूपक ऐसे भी होते हैं जिनमें सामान्य अभिनय की नहीं नृत्य गीत की प्रधानता होती है। इस प्रकार के रूपकों को उपरूपक की संज्ञा दी जाती है। रूपक दो प्रकार के होते हैं- सभी नाट्यांगों का संघात रूप में अभिनय और आस्वादन। इन्हें प्रधान रूपक कहा जाता है। जिन रूपकों को परिपूर्ण बनाने की चेष्टा नहीं की जाती और न उनका आयाम विस्तीर्ण होता है उन्हें अप्रधान रूपक कहा जाता है। इस भांति रूपक तीन प्रकार के हो जाते हैं- प्रधान रूपक, अप्रधान रूपक और उपरूपक।

प्रधान रूपक

अभिनय का उद्देश्य है रसास्वादन। कवि और अभिनेता दर्शकों को प्रेम, क्रोध, भय, उत्साह इत्यादि किसी भाव का आस्वादन कराना चाहता है। किन्तु यों ही तो आस्वादन हो नहीं सकता। उसके लिये परिस्थिति बनानी पड़ती है और किसी व्यक्ति या व्यक्तियों पर उसे ढाल कर दिखलाया जाता है। व्यक्ति तो बहाना मात्र होते हैं; सत्य तो एक मात्र भाव ही होता है। उस भाव के परिणाम स्वरूप जो सुख, दुःख इत्यादि प्रदर्शित किये जाते हैं उन्हीं के प्रभाव में वहकर दर्शक उन भावनाओं का आनन्द लेता है। कवि या अभिनेता ऐसे आवरण में भाव का प्रदर्शन करता है कि सुखमय भावनाओं से जितना आनन्द आता है उतना ही या उससे अधिक दुःखात्मक भावनायें आनन्द देने वाली बन जाती हैं। इसीलिये दुःखात्मक भावनाओं का प्रदर्शन करने वाले रुपक अधिक पसन्द किये जाते हैं और लोग अत्यन्त उत्कण्ठा के साथ उन्हें देखने में प्रवृत्त होते हैं।

जिन पात्रों पर ढालकर भावना प्रदर्शित की जाती है वे पात्र दो प्रकार के होते हैं या तो वे परिचित होते हैं या अपरिचित परिचित पात्रों के विषय में दर्शकों की भावनायें बनी बनाई होती हैं, अतः उन्हें बढ़े चढ़े रूप में प्रदर्शित करने में कवि को भी आसानी होती है और दर्शक भी उस जानी मानी भावना का अपने संस्कारों की सहायता से अधिकाधिक आनन्द ले सकते हैं। राम, कृष्ण, रावण, कंस इत्यादि इतिहास पुराण पात्रों के प्रति दर्शकों को नई भावना का परिचय प्राप्त नहीं करना पड़ता। कवि को भी उसके निर्माण में सुविधा रहती है। दूसरे प्रकार के पात्र काल्पनिक होते हैं। उनके विषय में कवि, पाठक और दर्शक सभी को भावना और उसके चरित्र के स्वरूप के विषय में

मनोवृत्ति बनानी पड़ती है। उसके निर्वाह में भूलों की भी सम्भावना रहती है और विचारों में भी असामञ्जस्य उद्‌भूत हो सकता है। अतः इसकी रचना में कवि को विशेष सावधान रहना पड़ता है। जिन रूपकों में परिचित पात्रों का उपादान किया जाता है उनको नाटक की संज्ञा दी जाती है और जिन रूपकों में काल्पनिक पात्र अपनाये जाते हैं उन्हें प्रकरण कहा जाता है।

नाटक

इसका प्रारम्भ कलात्मक रूप में होता है। प्रारम्भ को प्रस्तावना या आमुख की संज्ञा दी जाती है। इसका उद्देश्य होता है अनियन्त्रित जन समुदाय को नियन्त्रण में लाकर रसास्वादन के लिये तैयार करना और सर्वप्रथम मङ्गलाचरण के रूप में किसी देवता की स्तुति कर जन समाज को आशीर्वाद देना। उसमें पद्य या गीत प्रस्तुत किया जाता है उसमें कुछ तो काव्य सौन्दर्य होता है, कुछ पद्य में अभिनेय होने की पात्रता और कुछ संगीत लहरी। इस सबसे जनता आनन्द लाभ करती है अतः इसे नान्दी कहा जाता है। नान्दीपाठ कर जब सूत्रधार चला जाता है तब दूसरा अभिनेता आकर कवि काव्य इत्यादि की सूचना देता है। यह सूचना भी नाट्य का एक कलात्मक खण्ड होती है जिसमें नृत्य होता है ऋतु वर्णन पर गीत होता है, संवाद होता है; किन्तु आंगिक अभिनय नहीं होता। केवल वाचिक अभिनय चलता है। इसीलिये यह भाग भारतीवृत्ति तक सीमित रहता है, वैसे इसमें वीथी और प्रहसन के अंगों के समावेश का विधान है। कलात्मक शैली में पात्र प्रवेश करता है और प्रस्तावना समाप्त हो जाती है।[१]

नाटक में अत्यन्त प्रसिद्ध कथावस्तु का उपादान किया जाता है जो एक अत्यन्त उच्चकोटि के नायक के विषय में होती है। यह नायक या तो प्रतिष्ठाप्राप्त राजर्षि होता है जैसे अभिज्ञानशाकुन्तल का नायक दुष्यन्त है या कोई दिव्यपात्र होता है, अथवा ऐसा पात्र नायक के पद पर प्रतिष्ठित होने का अधिकारी होता है जो दिव्य होते हुये मानवत्व का अभिमानी हो जैसे भगवान् राम। इन पात्रों की भी प्रसिद्ध कथायें ही नाटक का विषय बन सकती हैं। इन पात्रों के विषय में काल्पनिक कथायें नाटक की कोटि में नहीं आतीं। जो कथायें रामायण महाभारत बृहत्कथा, इतिहास पुराण इत्यादि में अत्यधिक प्रसिद्ध हों वे ही नाटक की कथवस्तु बनती हैं। नायक धीरोदात्त तथा अत्यन्त प्रतापी होना चाहिये। नीतिशास्त्र में जिन गुणों का वर्णन किया गया है नाटक के नायक में उन सभी गुणों की सत्ता दिखलाई जानी चाहिये। वह कीर्ति की इच्छा करने वाला धर्म सेतु का पालक हो और अपने महान गुणों से सभी पर छा जाने की क्षमा रखता हो। देवता भी उसकी सहायता के लिये तत्पर रहें। उसके लोकोत्तर कार्यों से कथानक ओतप्रोत रहे चाहे वे सफलतायें युद्ध भूमि की हों चाहे प्रेम प्रसंग की। कथानक की परिणति सफलताओं में

१. (प्रस्तावना के विषय में देखिये— परिशिष्ट)

ही होनी चाहिये।

नाटक की सफलता नाटक का अनिवार्य तत्व है इसीलिये पाश्चात्त्य परम्परा में स्वीकृत त्रासदी से इसका पृथक्करण हो जाता है। इसमें न तो नायक की पराजय दिखलाई जाती है, न युद्ध भूमि से पलायन, न विवशता जन्य सन्धि। वस्तुतः नाटक का चरम उद्देश्य नायक की विजय और उसकी सम्पन्नता ही है जिसके अभाव में नाटक अपनी संज्ञा से ही च्युत हो जायेगा। यदि कहीं मध्य में नायक की पराजय का भी प्रश्न उपस्थित हो तो उसकी सूचना भर दे दी जाती है। रंगमञ्च पर उसका प्रदर्शन नहीं किया जाता, मृत्यु की तो सूचना भी नहीं दी जाती। कुछ लोग भारतीय नाटकों को कामदी (पाश्चात्य कमेडी) कहने के आदी हैं। किन्तु अपने ठीक अर्थ में भारतीय नाटक को कमेडी कहना उसके प्रति न्याय नहीं होगा। कमेडी तो बहुत ही नीचे स्तर की वस्तु है। उसका जीवन और वास्तविकता से सम्बन्ध नहीं होता। वह एक मजाक की वस्तु है। किन्तु भारतीय नाटक जीवन के वास्तविक अनुकरण हैं और सर्वथा गम्भीर प्रकृति के हुआ करते हैं। प्रति नायक के शौर्य और शक्ति का बड़े विस्तार से वर्णन किया जाता है और शत्रुओं के प्रतिरोध से उत्पन्न कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करने में नायक को पर्याप्त संकटों का सामना करना पड़ता है। अनेकशः उसकी सफलता संदिग्ध हो जाती है। यह दूसरी बात है कि अन्तिम सफलता नायक को ही मिलती है और वह समस्त प्रतिरोधों को पार कर लेता है। भारतीय मनीषी इस विषय में अत्यन्त जागरूक है कि अच्छाइयों की विजय दिखलाना चरित्र-निर्माण के लिये अधिक उपयोगी है। बुराइयों का दुष्परिणाम किसी सीमा तक कृतकार्य हो सकता है; किन्तु बुराइयों का अत्यधिक प्रदर्शन स्वयं बुरा है और उसका अवाच्छनीय परिणाम भी हो सकता है।

नाटक की कथावस्तु प्रख्यात होती है और किसी प्रसिद्ध ग्रन्थ से ली जाती है। इसका अर्थ यह नहीं है कि नाटककार की वृत्तियां परम्परागत कथानक से सर्वथा कस जाती हैं। नाटक कोई इतिहास नहीं है; इसलिये इतिहासकार की भांति नाटककार प्रामाणिक इतिवृत्त लिखने के लिये बाध्य नहीं है। उसे यह अधिकार होता है कि मूल कथा में जो तत्व नायक या रस के प्रतिकूल हो और अपनी योजना से मेल न खाता हो उसे आवश्यकतानुसार बदल ले। इसके लिये वह नई कल्पना भी कर सकता है, नई कथा का प्रवर्तन भी कर सकता है, परम्परागत कथा की नई योजना भी कर सकता है और घटनाओं का क्रमव्यत्यय भी कर सकता है। किन्तु इसके लिये उसे लोक रुचि का ध्यान रखना अत्यन्त आवश्यक है; अन्यथा असत्यता का प्रतिभास या अनौचित्य स्फुरण में उसका कथानक जनमानस में वितृष्णा ही उत्पन्न करेगा। जिन पात्रों के विषय में जनमानस में जो धारणा बनी हो उसका पूर्ण व्याघात उचित नहीं होता। आचार्य शुक्ल के अनुसार ऐसे विषयों में खिलवाड़ की अपेक्षा नई कल्पना कर लेना अधिक उपयुक्त कहा जा सकता है। नाट्यवर्जनाओं का भी कथानक में ध्यान रखने का आचार्यों ने निर्देश दिया है।

कथावस्तु का निर्वाह

कथावस्तु का निर्वाह इस रूप में किया जाना चाहिये कि कोई भी अंग अधिक बड़ा और कोई छोटा प्रतीत न हो। नाटक में ५ सन्धियां होती हैं। उसी के अनुसार कम से कम ५ अंकों का विधान है। यदि एक अंक में एक सन्धि की योजना की जाय तो पूरा नाटक सन्तुलित हो जायेगा। किन्तु यह कोई अनिवार्य नियम नहीं है। फिर भी इतना ध्यान रखना चाहिये कि नाटक इतना बड़ा न बन जाये कि दर्शक ऊबने लगें। अतः नियम बनाया गया है कि किसी नाटक में १० से अधिक अंक नहीं होने चाहिये। अंक में असम्बद्ध कई घटनायें दृश्यों के नाम पर दिखलाने की जो पाश्चात्य परम्परा है वह भारतीय आचार्यों को मान्य नहीं है। अंक के अन्तर्गत पूर्ण रूप से संबद्ध एक ही घटना दिखलाने की परम्परा है। छोटी छोटी अन्य घटनायें अर्थोपक्षेपकों द्वारा दिखला दी जाती है। यद्यपि भारतीय नाट्यशास्त्रकारों ने संकलनों का विवेचन नहीं किया है जैसाकि स्थल, कार्य और काल संकलन की परम्परा पाश्चात्य साहित्य में है, फिर भी एक दिन में निर्वर्त्य कथा को एक अंक में दिखलाने और शेष अंश को सूच्य बनाने का निर्देश भारतीय नाट्य को भी संकलनों के पर्याप्त निकट लाता है। इसी प्रसंग में अर्थोपक्षेपकों का भी विवेचन किया गया है।

प्रकरण

यह पूर्ण नाटक का दूसरा प्रकार है जिसमें रचना की सभी प्रवृत्तियों का नाटक के अनुसार ही निर्वाह किया जाता है। कथानक और पात्र कल्पित एवं अपरिचित होते हैं; किन्तु उनकी अन्तरात्मा अपरिचित नहीं होती। वे पात्र हमारे साथ रोज चलने फिरने उठने बैठने वालों के समकक्ष ही होते हैं। अतएव उनसे आत्मीयता बना लेने में कठिनाई नहीं होती। अचिरात् उनकी भावनायें परिशीलकों की भावनायें बन जाती हैं और परिशीलक उस आत्मीयता के प्रभाव से रसास्वादन में सक्षम हो जाता है। वस्तुतः नाटक के आदर्श-पात्रों की अपेक्षा प्रकरण के पात्र लोकवृत्त के अधिक निकट होते हैं। प्रकरण का नायक ब्राह्मण, बनियां, अमात्य इत्यादि में कोई भी होता है। नायिका कुलवती भी होती है और वेश्या भी अथवा दोनों का मिलाजुला रूप होती है। तरंगदत्त में वेश्या नायिका है, पुष्पदूषितक में कुलवती स्त्री और मृच्छकटिक में दोनों ही। किन्तु उनके भी अपने आचार और मर्यादायें होती हैं। प्रकरण के नायक में नाटक के नायक जैसी उदात्तता नहीं होती। कुछ लोगों के मत में निम्नजाति की स्त्री भी नायिका हो सकती है। नायक अधिकतर धीरशान्त होता है किन्तु कुछ लोग उसे धीरोदात्त रखने के भी पक्षपाती हैं। जिस प्रकरण में विट, चेट, कितव, शकार इत्यादि पात्र होते हैं वह संकीर्ण प्रकरण कहा जाता है।

नाटक और प्रकरण दोनों पूर्ण नाटक के प्रकार हैं; किन्तु रस निष्पत्ति और रसास्वादन के सुकर होने के कारण नाटक का महत्त्व अधिक है। समाज के अधिक निकट होने और

यथार्थ चित्रण की विशेषता के कारण प्रकरण नाटक की अपेक्षा पाश्चात्त्य मनोवृत्ति के अधिक अनुकूल पड़ता है।

अप्रधान रूपक

भरत ने ८ अप्रधान रूपक माने हैं। दो प्रधान रूपकों को मिलाकर रूपकों की संख्या १० हो जाती है। ये ही १० रूपक परवर्ती आचार्यों को भी मान्य रहे और प्रायः सभी नाट्य शास्त्रकारों ने इस संख्या को महत्व दिया। इन ८ अप्रधान रूपकों में ५ एकाङ्की होते हैं– व्यायोग, अङ्क, प्रहसन भाण और वीथी; समवकार में तीन अंक होते हैं तथा डिम एवं ईहामृग में चार चार अंक होते हैं। इनमें चार रूपक प्रसिद्ध कथावस्तु को लेकर चलते हैं और तीन में काल्पनिक कथा होती है। प्रख्यात कथावस्तु को लेकर चलने वाले नाटक हैं– व्यायोग, अङ्क, डिम और समवकार तथा कल्पित कथावस्तु को लेकर लिखे जाने वाले नाटक हैं– भाण, प्रहसन और वीथी। ईहामृग में मिश्र कथावस्तु होती है। इन सबके अतिरिक्त ४ अंकों की नाटिका का भी भरत ने उल्लेख किया है जो १० रुपकों के अतिरिक्त हैं। परवर्ती आचार्यों में कतिपय इसे रूपकों में स्थान देते हैं कतिपय उपरूपकों में। इनका संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जा रहा है–

(१) **नाटिका**– इसमें सन्धि, सन्ध्यङ्ग इत्यादि सभी कुछ नाटक के समान ही होता है; किन्तु दोनों में कतिपय अन्तर भी हैं– एक तो इसकी पूर्ति ४ अंकों में होती है; दूसरे इसमें केवल शृङ्गार रस का और वह भी सीमित दिशा में प्रवृत्त होने वाले शृङ्गार रस का आस्वादन किया जाता है। न वस्तु की विविधता होती है न रसास्वादन का सीमाविस्तार यद्यपि इसमें आस्वादन की गहराई कम नहीं होती। इसके पात्र बंधी बंधाई लीक पर चलने वाले होते हैं। एक अन्तर यह होता है कि इसकी कथावस्तु न पूर्णतः ऐतिह्य होती है न पूर्णतः काल्पनिक। नायक ऐतिह्य होता है और कथावस्तु काल्पनिक।

(२) **डिम**– दशरूपक में टीकाकार धनिक ने डिम का अर्थ माना है संघात जिसका अर्थ समूह भी है और जोरदार घातप्रतिघात भी है। इस रुपक में अनेक पात्र कार्य प्रवृत्त होकर घात प्रतिघात और दांव पेंच से कथावस्तु को आगे बढ़ाते हैं।

भरत के अनुसार इसकी कथावस्तु प्रख्यात होती है और इसका नायक बहुत प्रसिद्ध व्यक्ति होता है। इसमें अङ्गीरस रौद्र होता है। शृङ्गार और हास्य को छोड़कर ६ रसों का प्रयोग किया जाता है। शान्तरस को रसरुपता प्रदान करने पर इसमें उसका भी निषेध समझा जाना चाहिये। इसमें ऐसी वस्तु का उपादान किया जाता है जो दीप्त रसों के अनुकूल हो तथा ऐसे भावों तथा मनोवैज्ञानिक तथ्यों का समावेश रहता है जो कठोर रसों के अभिव्यञ्जक हों। विजली की कड़क, ग्र्यचन्द्र के ग्रहण, उल्कापात, भूकम्प, प्रचण्ड वायु, घनघोर युद्ध, पैदल युद्ध, प्रहार और क्रोध पूर्ण उक्ति प्रत्युक्तियों की भरमार रहती है। माया और इन्द्रजाल बहुत बड़ी मात्रा में दिखलाये जाने का विधान है। बहुत से व्यक्ति

शक्तिशाली युद्ध की तैयारी में लगे रहते हैं जिनमें परस्पर फूट के दृश्य भी सम्मिलित रहते हैं। १६ पात्रों का समावेश विहित है जो अधिकतर देव, असुर, राक्षस, भूत, नाग, यक्ष इत्यादि होते हैं। रचना सात्वती और आरभटी वृत्ति में होती है। दशरुपककार ने भारती वृत्ति को भी सम्मिलित किया है। भारती एक सामान्य वृत्ति है। अतः उसका सम्मिलित करना भरत की मान्यता के विरुद्ध नहीं जाता। साहित्य दर्पण कार ने इसमें शान्त रस को भी स्वीकार किया है। विमर्श को छोड़कर सब सन्धियां होती हैं।

भरत ने इसके नायक का उदान्त चरित्र बतलाया है जो इसके उद्धत कथानक से मेल नहीं खाता। नाट्यदर्पण कार ने इसकी संगति इस प्रकार बैठाई है कि इसके पात्र यक्ष, राक्षस, भूत प्रेत इत्यादि होते हैं। ये मानव के लिये उद्धत हो सकते हैं किन्तु अपने वर्ग की दृष्टि से इनके उदात्त होने में कोई विरोध नहीं। अपने वर्ग में तो इनका चरित्र तुलनात्मक दृष्टि से उदात्त हो ही सकता है। इसके उदाहरण हैं त्रिपुरदाह, तारकोद्धरण, वीरभद्रविजय, मन्मथोन्मथन इत्यादि।

(३) **ईहामृग–** यह चार अंकों का नाटक होता है। इसमें वस्तु आंशिक रूप में प्रख्यात तथा आंशिक रूप में कल्पित होती है। कथावस्तु का मूल ढांचा और पात्र प्रख्यात होते हैं; किन्तु उनका निर्वाह काल्पनिक ढंग से किया जाता है। अंकों की संख्या में समानता होते हुये भी इसमें गर्भ सन्धि नहीं होती, केवल तीन सन्धियां होती हैं। साहित्यदर्पणकार का कहना है कि कुछ लोग इसे एकाङ्की नाटक मानते हैं।

ईहामृग का अर्थ है भेड़िया। यह जीव अपने छल कपट और चालाकी के लिये प्रसिद्ध है। इस रुपक में इसी प्रकार के छल कपट किये जाते हैं इसीलिये इसका यह नाम पड़ा है। धनिक ने इसका अर्थ किया है ईहा मे जो मृग (जंगली जीव); जिस प्रकार जंगली जीव ऐसी स्त्री की कामना करता है जिसका प्राप्त करना अशक्य होता है उसी प्रकार इस नाटक में भी नायक ऐसी नायिका की कामना करता है जिसका प्राप्त हो सकना उसके लिये कठिन होता है। नाट्यदर्पण कार ने अर्थ किया है जिसमें मृगों के समान केवल स्त्री की कामना की जाय। इसमें प्रतिनायक की ऐसी चेष्टा रहती है कि नायक अपनी प्रेयसी प्राप्त न कर सके। नायिका प्रायः दिव्य स्त्री होती है। प्रतिनायक अनेक प्रकार के छल कपट के द्वारा नायक को वञ्चित करना चाहता है। ऐसी परिस्थिति ला देता है कि युद्ध अनिवार्य हो जाता है।

भरत ने ईहामृग की विशेषतायें बतलाते हुये लिखा है कि इसमें देव पुरुष स्त्रियों के लिये युद्ध में प्रवृत्त रहते हैं, किन्तु परवर्ती आचार्यों ने इस नियम में परिवर्तन कर मर्त्यपात्र को को भी इस प्रकार के कथानक का पात्र बनने का अधिकार दे दिया है। दशरूपक के अनुसार नायक और प्रतिनायक में कोई एक मर्त्य हो सकता है, या दोनों मर्त्य हो सकते हैं या दोनों देव। नाट्यदर्पण कार का कहना है कि प्रधान नायक तो दिव्य ही होना चाहिये किन्तु उसमें अनेक उद्धत मानव दिखलाये जाने चाहिये। किन्तु इसमें

सभी एक मत हैं कि संग्राम जिस स्त्री के लिये हो वह दिव्य ही होनी चाहिये। पात्रों के उद्धत स्वभाव के विषय में भी मतभेद नहीं है। इसमें स्त्रियों का परिदेवन और क्रोध भी कुछ आचार्यों ने स्वीकार किया है। इसकी दूसरी विशेषतायें हैं– इसकी सुसंबद्धता अर्थात् प्रत्येक अंक की कथा परस्पर संबद्ध एवं सुगठित होनी चाहिये। इसमें अविश्वास ही विरोध का मूल कारण होता है। युद्ध और संग्राम का मूल कारण वास्तविकता को न समझना भी हो सकता है। इसमें विशेष रूप में संक्षोभ, विद्रव, रोष-भाषण, भेद, अपहरण, अवमर्दन इत्यादि का अभिनय किया जाता है। कुछ लोग इसमें १० पात्र स्वीकार करते हैं; कुछ १२ और कुछ ६ पात्रों में ही इसे सीमित रखना चाहते हैं। कुछ लोगों की सम्मत्ति में भेद, दण्ड, वध इत्यादि का हेतु स्त्री के अतिरिक्त अन्य भी हो सकता है। इसमें शृङ्गार तथा शृङ्गाराभास दोनों दिखलाये जा सकते हैं। भरत का कहना है कि व्यायोग में जिस प्रकार के पुरुष जिस प्रकार के रस और जिस प्रकार की वृत्तियां दिखलाई जाती हैं ईहामृग में भी वही सब होता है। इसमें भेदक केवल इतना है कि इसमें देवस्त्री का अभिनय किया जाता है।

विश्वनाथ ने इसके उदाहरण के रुप में 'कुसुमशेखरविजय' का उल्लेख किया है। कीथ ने रुक्मिणी हरण को ईहामृग माना है। इसके अतिरिक्त वत्सराज का भी एक ईहामृग प्रसिद्ध है।

(४) **समवकार**– तीन अंकों का एक मात्र रूपक। इसका कथानक प्रख्यात होता है जिसमें किसी देवता या राक्षस का सम्बन्ध दिखलाया जाता है।

दशरूपक के अनुसार इस शब्द की व्युत्पत्ति है– 'समवकीर्यन्तेर्था अस्मिन्निति' अर्थात् जिसमें काव्य प्रयोजन विखरे रहते हैं। आशय यह है कि समवकार का भेदक तत्व है प्रयोजनों की अनेकविधता। इसमें प्रयोजन अनेक होते हैं– अन्य रूपकों की भांति केवल एक प्रयोजन नहीं। नाट्यदर्पण कार मानते हैं कि त्रिवर्ग के जो पूर्व प्रसिद्ध उपाय होते हैं उन्हीं का इसमें समावेश किया जाता है। ये उपाय विखरे हुये भी हो सकते हैं और परस्पर संबद्ध भी। इसमें विमर्श सन्धि को छोड़कर चार सन्धियां होती हैं। प्रथम अंक में मुख, प्रतिमुख ये दो सन्धियां होती हैं शेष दो अंकों में एक एक क्रमशः गर्भ और निर्वहण सन्धि होती है। इसमें सभी तत्व (सन्धियों को छोड़कर) तीन तीन ही दिखलाये जाते हैं। तीन उपद्रव– (१) युद्ध या जलप्लावन जन्य (२) वायु, अग्नि या गजेन्द्रजन्य और (३) नगर के उपरोध से उत्पन्न। नाट्यदर्पणकार जीव, अजीव और उभयजन्य ते तीन उपद्रव मानते हैं। छल भी तीन प्रकार के दिखलाये जाते हैं– वञ्चकों अर्थात् योजना में अपने लोगों का छल कपट, शत्रु द्वारा जाल का फैलाव या दैव वश किसी अन्य ओर से। शृङ्गार तीन प्रकार का होता है– धर्म शृङ्गार, अर्थ शृङ्गार और काम शृङ्गार। धर्म में अधिष्ठित रहते हुये और धार्मिक नियमों का पालन करते हुये यदि अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति हो जाय तो वह धर्म शृङ्गार होता है। जहां अर्थ प्राप्ति के प्रलोभन से काम प्रवृत्ति देखी

जाय वह अर्थ शृङ्गार होता है; जहां उपभोग की आकाङ्क्षा और वासना की प्रेरणा से कामोपबोग में प्रवृत्ति देखी जाय वह कामशृङ्गार होता है। धर्म शृङ्गार का फल होता है पर स्त्री वर्जन और दानादिधर्म। इस प्रकार स्वपत्नी विषयक शृङ्गार का हेतु होता है धर्म और फल भी धर्म ही होता है। अर्थशृङ्गार वेश्याओं और रूपवान पुरुषों के लिये धन रूप फल का देने वाला होता है। काम शृङ्गार की नायिका होती है परस्त्री या कन्या।

समवकार में तीन अंकों में तीन तत्व पृथक् पृथक् दिखलाये जाते हैं। प्रत्येक अंक में एक धर्म, एक कपट और एक उपद्रव दिखलाया जाता है। नाटक में प्रहसन भी होता है और वीथी के अंगों का भी समावेश रहता है। यह नाटक सब से लम्बा होता है। ७ घण्टे १२ मिनट लगते हैं। पहले अंक में १२ दूसरे में चार और तीसरे में दो नाडियां होती हैं। पात्रों की संख्या १२ होती है। कुछ लोग प्रत्येक अंक में १२ पात्र मानते हैं। कुछ लोग कुल मिलाकर १२ मात्र मानते हैं। नायक और प्रतिनायक तथा दोनों का एक एक सहायक, इस प्रकार प्रत्येक अंक में चार पात्र होते हैं। इस प्रकार पूरे नाटक में तीन अंकों में १२ पात्र होते हैं। प्रत्येक अंक की कथा अपने में पूर्ण होती है; किन्तु सम्पूर्ण समवकार का एक प्रयोजन होता है जिससे अंकों के प्रयोजन संबद्ध रहते हैं। रचना का क्रम इस प्रकार रहता है पहले आमुख दिखलाया जाता है; फिर तीनों अंकों के उपक्षेपक बीज की रचना की जाती है; प्रथम और द्वितीय दोनों अंकों के कथानक का पल्लवन किया जाता है। फिर तीसरे अंक की संयोजना इस प्रकार की जाती है कि प्रथम दो अंकों का भी समन्वय हो जाता है। अनुसन्धानात्मक बुद्धि से अध्ययन करने पर समवकार दर्शकों को त्रिवर्ग साधन में व्युत्पन्न भी बनाता है। सारांश यह है कि समवकार में हास्यमिश्रित शृङ्गार रहता है, कपट, युद्ध और उपद्रव का समावेश रहता है। दैवी शक्ति की भी सहायता प्राप्त होती है। अनेक विषयों को एक में जोड़कर कथानक का निर्माण किया जाता है।

शास्त्रीय ग्रन्थों में समवकार का उदाहरण अमृतमन्थन बतलाया जाता है। इसी नाटक को अब्धिमन्थन, पयोधिमन्थन नामों से भी याद किया जाता है। कीथ ने भास के पञ्चरात्र को भी समवकार का उदाहरण बतलाया है।

(५) **व्यायोग**– यह एकाङ्की होता है; व्यायोग शब्द का अर्थ है– 'विशेषेणआ समान्तात् युज्यन्ते कार्यार्थं संरभन्तेत्रेति व्यायोगः' अर्थात् विशेष रूप से चारो ओर से कार्य के लिये युक्त होते हैं या प्रयत्न करते हैं उसे व्यायोग कहा जाता है। इस व्युत्पत्ति से ज्ञात हो जाता है कि इसमें कथावस्तु ऐसे नायकों से संबद्ध होती है जो फल प्राप्ति की आतुरता में अपने कार्यकलाप में निरन्तर संल्लग्न रहते हैं। इसमें केवल एक दिन की घटना को ही नाट्यविषय बनाया जाता है। इसीलिये इसे एकाङ्की रखने का निर्देश है। इसका नायक अत्यन्त उद्धत होता है और अपने अभीष्ट फल को यथा सम्भव शीघ्र ही प्राप्त कर लेना चाहता है। इसका नायक प्रख्यात व्यक्ति होता है और कथानक भी प्रख्यात ही होता है।

नायक उद्धत होता है और शीघ्र अभीष्ट फल प्राप्त कर लेना चाहता है। इसीलिये बीजोपन्यास के बाद प्रयत्न दिखलाते हुये फल तक पहुंच जाया जाता है। इसमें तीन सन्धियां होती हैं– मुख, प्रतिमुख और निर्वहण। भरत का मत है कि इसका नायक कोई राजर्षि होता है; दिव्यपात्र नायक नहीं हो सकता। किन्तु साहित्यदर्पण में दिव्य पुरुष का भी नायक होना स्वीकार कर लिया गया है। युद्ध या पुरुष का भी नायक होना स्वीकार कर लिया गया है। युद्ध या संघर्ष का कारण कोई स्त्री नहीं हो सकती। इसीलिये इसमें स्त्री पात्र (नायिका) का होना अनिवार्य नहीं माना गया है। कथानक के औद्धत्य के अनुसार ही ओजगुण, दीप्तरस और आरभटी वृत्ति का इसमें प्राधान्य बतलाया गया है। भास का मध्यमव्यायोग और वत्सराज का किरातार्जुनीय इसके उदाहरण हैं।

(६) अङ्क (उत्सृष्टिकाङ्क) – अंक नाम से ही इसका एकाङ्की होना सिद्ध हो जाता है। नाटक इत्यादि में रचना के खण्डों को भी अंक नाम दिया गया है। उस अंक से यह अंक बड़ा भी होता है और भिन्न भी। इसकी शब्द की व्युत्पत्ति साहित्यदर्पण में वह बतलाई गयी है– 'उत्क्रान्ता विलोमरूपसृष्टिर्यत्र' अर्थात् जिसमें सृष्टि विलोम रूप हो। किन्तु इसका आशय क्या है यह समझ में नहीं आता। नाट्यदर्पण में व्युत्पत्ति इस प्रकार की गई है– 'उत्क्रमणोन्मुखासृष्टिर्यत्र उत्सृष्टिकाः शोचन्त्यः स्त्रियः ताभिरङ्कितत्वात् उत्सृष्टिकाङ्कः' अर्थात् उत्सृष्टिका ऐसी स्त्रियों को कहा जाता है जिनका जीवन उत्क्रमण की ओर जा रहा है अर्थात् विलाप करने वाली स्त्रियां उनसे अंकित होने के कारण उसे उत्सृष्टिकाङ्क कहा जाता है। स्त्रियों का विलाप प्रलाप ही इसकी सामान्य विशेषता है। सामान्य रूप से इसका वृत्त इसकी सामान्य विशेषता है। सामान्य रूप से इसका वृत्त ख्यात (प्रसिद्ध) होता है। किन्तु भरत ने कहीं कहीं अख्यात वृत्त में भी इसकी सत्ता स्वीकार की है। साहित्य दर्पण के अनुसार प्रसिद्ध इतिवृत्त को ही कवि अपनी बुद्धि से प्रपञ्चित कर उसे नया रूप दे देता है। इसमें जय, पराजय दिखलाये जाते हैं। शौर्यमद से अवलिप्त लोग परस्पर दोषों की घोषणा करते हुये वाग्युद्ध भी करते हैं। किन्तु यह वाग्युद्ध होता उन्हीं का है जो शोक-परायण होते हैं। अतः इसमें करुण रस की प्रधानता होती है। वैसे शोक के अंग रूप में निर्वेदजनक वचनों का समावेश होता ही है और व्याकुल लोगों की नाना चेष्टाओं का वर्णन भी किया जाता है। मुख्य विषय स्त्रियों का परिदेवन ही होता है जिसके कारणरूप में संघर्ष और युद्ध का चित्रण किया जाता है। संघर्ष और युद्ध का कथन मात्र होता है। उसका प्रदर्शन रंगमञ्च पर नहीं किया जाता।

इसके पात्र अधिकांश प्राकृत जन ही होते हैं। दिव्य पात्रों को विलाप-प्रलाप करते हुये दिखलाना उचित नहीं माना जाता। इसमें सात्वती, आरभटी और कैशकी वृत्तियां नहीं होतीं। कीथ का कहना है कि इस विधा का प्रयोग रूपक के अन्तर्गत रूपक को दिखलाने के लिये होता है। कहीं कहीं इस प्रकार के अन्तर्वर्ती अंक को प्रेंक्षणक भी कहा गया है। भास का उरुभंग इसका उदाहरण है।

(७) **भाण**– यह भणधातु से बना शब्द है जिसका अर्थ है कथन करना। इसमें जनता का मनोरंजन कह कर किया जाता है अभिनय बहुत कम होता है। इसीलिये इसमें भारती वृत्ति की प्रधानता होती है। वह रंगमञ्च पर आकर या तो अपनी वीरता या शृङ्गारिक चेष्टाओं का वर्णन करता है या दूसरों की वीरता इत्यादि का वर्णन करताहै। इसीलिये इसमें शृङ्गार और वीर की प्रधानता रहती है। अन्य रस अंगरूप में आते हैं। इसका मुख्य उद्देश्य लोकानुरंजन होता है क्योंकि इसमें विट, धूर्त, कुट्टिनी इत्यादि का वर्णन किया जाता है। इन बातों का ज्ञान तो सामान्य स्तर से ऊंचे राज पुरुषादि को भी अभीष्ट है। इसमें कोई धूर्त रंगमञ्च पर आता है और विभिन्न घटनाओं का वर्णन इस रूप में करता है कि उपस्थित जनता उसमें अनुरंजन प्राप्त करती है। वह या तो बदमाशों, वेश्याओं, व्यभिचारिणी औरतों, कुट्टनियों और दूतियों का वर्णन कर वातावरण को शृङ्गारमय बना देता है या धूर्तों चोरों जुआरियों के साहस पूर्ण कृत्यों का वर्णण कर वीररस की सृष्टि करता है। गणिकायें, मेष युद्ध, मुक्केबाजी, दो प्रतिद्वन्दियों के झगड़े, मदन महोत्सव इत्यादि सामान्य विषय हैं जिनका समावेश भाण में होता है। सुनाने वाला व्यक्ति किसी कल्पित व्यक्ति से वार्तालाप करता है और आकाश की ओर देखकर सुनने का अभिनय करते हुये उसकी उक्तियों को देहराता जाता है तथा उसकी ओर से भी उत्तर प्रत्युत्तर करता जाता है। इसमें सभी कुछ वाचिक होता है; इसलिये केवल भारती वृत्ति उसमें रहती है। यद्यपि वीर और शृङ्गार का इसमें उपादान किया जाता है फिर भी इसमें न कैशिकी मानी जाती है न सात्त्वती और न आरभटी। चतुर्भाणी चारभाणों का एक संकलन है। इसका प्रचार बहुत हुआ है और इसकी अनेक कृतियां उपलब्ध होती हैं।

(८) **प्रहसन**– यह एक अन्वर्थ संज्ञा है; इसका मुख्य प्रवृत्ति निमित्त मजाक उड़ाना है। भरत के अनुसार यह दो प्रकार का होता है– शुद्ध और संकीर्ण। भरत का संकीर्ण दशरुपककार का विकृत है और संकीर्ण एक नवीन भेद है। शुद्ध प्रहसन में किसी बौद्ध सन्यासी, किसी शैव, वैष्णव या भगवद्‌भक्त की हंसी उड़ाई जाती है। इसी प्रकार कोई तापस भिक्षु, श्रोत्रिय या ब्राह्मण भी प्रहसन में हास्य का विषय हो सकता है। विकृत प्रहसन में वेश्या, चेट, नपुंसक, धूर्त वदमाश, कुट्टिनी, दूती इत्यादि का मजाक उड़ाया जाता है। यदि इसमें वीथी के अंगों का साङ्कर्य हो जाय तो यह संकीर्ण प्रहसन कहा जाता है। इसमें अभिनेता जिसकी हंसी उड़ाना चाहता है उसकी जैसी बोली, वेश, चेष्टा इत्यादि बनाकर लोगों को हंसाता है, उसकी भांति चाल चलता है और उन्ही की हास्यजनक वस्तुओं को दिखलाता है। इसमें एक या अधिक पात्र अभिनय करते हैं। इसका प्रधान रस हास्य होता है तथा दूसरे रस भी हास्य पर्यवसायी ही होते हैं। विश्वनाथ के अनुसार यह दो अंकों का भी हो सकता है। इस विधा की सुदीर्घ परम्परा भारतीय साहित्य में रही है और प्रहसन परक कई कृतियां उपलब्ध होती हैं। मत्तविलास इसका पुराना उदाहरण है। लटकमेलक दो अंकों में लिखा प्रहसन है। धूर्तसमागम एक अन्य प्रहसन है।

(९) **वीथी-** इसका अर्थ है मार्ग। इसके १३ अंग बतलाये गये हैं जो नाटकादि सभी रूपकों में होते हैं। इस प्रकार यह एक मार्ग है जिससे होकर नाटक की अन्यविधाओं तक पहुंचा जा सकता है। नाट्यदर्पण में वीथी का अर्थ टेढा मेढा मार्ग कर इसमें वक्रोक्ति की प्रधानता बतलाई गई है। कीथ ने एक अन्य मत का भी उल्लेख किया है कि वीथी का अर्थ होता है माला। माला में जिस प्रकार अनेक रूपों के पुष्पों का समावेश होता है उसी प्रकार वीथी में भी अनेक रस सम्मिलित रहते हैं। इसमें भी भाण के समान आकाशभाषित का प्रयोग होता है। इसका नायक उत्तम, मध्यम या अधम कोई भी हो सकता है। या तो कोई एक पात्र आकाश भाषित करता है या दो तीन पात्र संवाद का प्रयोग करते हैं। क्रमशः सभी रस प्रयुक्त हो सकते हैं। अन्य सब बातें भाण के समान ही होती हैं। कतिपय आचार्य वीथी में कैशिकी वृत्ति को स्वीकार करते हैं। किन्तु नाट्यशास्त्र में इसे स्वीकार नहीं किया गया है। इसमें एक ही अंक में कई अर्थप्रकृतियां होती हैं। सन्धियां केवल दो ही होती हैं मुख और प्रतिमुख। इसका कोई प्रतिष्ठित उदाहरण नहीं मिलता। विश्वनाथ ने मालविका नामक वीथी का उल्लेख किया है।

छोटे रुपकों के उक्त ८ भेद केवल ऐतिहासिक महत्व रखते हैं। अब इनका प्रचलन साहित्य जगत में विल्कुल नहीं है। पुराने उदाहरण भी बहुत कम पाये जाते हैं। कुछ प्रकार तो ऐसे हैं कि उनका एक भी उदाहरण नहीं मिलता। यह सच है कि अधिकांश प्राचीन साहित्य लुप्त हो गया है। सम्भव है किसी समय इन सभी की परम्परा विद्यमान रही हो। यह भी सम्भव है जैसा कुछ लोग मानते हैं कि एक ही रचना को लेकर इन प्रकारों के लक्षण बना दिये गये हों और इनका नामकरण कर दिया गया हो। वस्तुतः उपलब्ध साहित्य तो ऐसी ही कहानी कहता है। कुछ प्रकारों के अधिक उदाहरण मिलते हैं।

उपरूपक

नृत्य और संगीत नाट्य की उपरंजक कलायें हैं। नाटकों में इन कलाओं का अनिवार्य उपयोग होता है। भरत का कथन- 'नृत्य और गीत का इतना अधिक विस्तार नहीं करना चाहिये कि कथानक बहुत दूर पड़ जाय और न वस्तु का इतना विस्तार करना चाहिये कि नृत्यगीत का अवसर ही न रहे। यह कथन स्वयं में इस बात का प्रमाण है कि नाट्य का नृत्य और गीत से अविच्छेद्य सम्बन्ध है। वैसे तो प्रत्येक नाट्यकृति में नृत्य का योगदान रहता ही है किन्तु कतिपय नाट्यकृतियों में वस्तु बहुत थोड़ी होती है- अधिक विस्तार नृत्य का ही होता है उनका उद्देश्य नृत्य का आनन्द देना ही होता है; कथानक तो योजना के लिये सम्मिलित कर लिया जाता है। इस प्रकार के रूपकों को विश्वनाथ ने उपरूपक की संज्ञा दी है यद्यपि उनकी परम्परा विश्वनाथ के बहुत पहले चल रही थी।

नृत्त, नृत्य और नाट्य– नृत्यकला के ये तीन पारिभाषिक शब्द हैं। नृत्त और नृत्य शब्द 'नृती' गात्रविक्षेपे धातु से बने हैं जिसका अर्थ होता है अंग सञ्चालन। नाट्य शब्द नट् धातु से बना है जिसका अर्थ है अवस्पन्दन अर्थात् अंगों का किञ्चित संचलन। 'नृत्त' में किसी प्रकार की भावाभिव्यक्ति नहीं होती। इसमें भाव का नहीं ताल और लय का अनुसरण किया जाता है। ताल और लय के अधीन हाथ, पैर, नेत्र, गर्दन इत्यादि का इस प्रकार चलाना जिसमें एक सुन्दरता उत्पन्न हो जाय नृत्त कहलाता है। नर्तकियां रंगमञ्च पर आकर अंग सञ्चालन के द्वारा दर्शकों के मन को खींच लेती हैं यही 'नृत्त' है। यह दर्शन की वस्तु है, सुनने के लिये हाथ की ताली (ताल) का द्रुत, मध्यम और विलम्बित लय से शब्द मात्र होता है। यह नृत्त संसार के प्रायः सभी देशों में प्रचलित है और नाट्य के उद्‌भव में इसका बहुत बड़ा योगदान रहा है। धार्मिक उत्सवों, त्योहारों, मेला दशहरा आदि समारोहों, फसल की कटाई वोआई आदि अवसरों पर हर्ष को प्रकट करने के लिये नृत्त की योजना की जाती है। विवाह पुत्र जन्म इत्यादि हर्ष के अवसरों पर इसका आयोजन मन को खींच लेता है; दुःख के अवसरों पर इसको वर्जित किया गया है। नाट्य में इसका बहुत अधिक योगदान है। ग्रीक नाट्य का उद्‌भव इस प्रकार के नृत्यों से ही हुआ है। अंग्रेजी नाट्य के प्रारम्भ में इस प्रकार की परम्परा विद्यमान थी।

अंग सञ्चालन का दूसरा प्रकार है नृत्य। इसमें पदार्थाभिनय किया जाता है। पानी भरने, घड़े को सर पर रखने शीशा देखकर शृङ्गार करने इत्यादि की क्रियायें हाथों के संकेत से प्रकट करते हुये जो अंग संचालन किया जाता है जिसमें पदार्थामिनय के साथ पैर निरन्तर गतिशील रहते हैं और नेत्र इत्यादि अंगों की चेष्टायें भी चलती रहती हैं।

नृत्त और नृत्य दोनों के दो दो भेद होते हैं– कोमल नृत्य जिसे लास्य कहा जाता है और कठोर नृत्य जिसे ताण्डव की संज्ञा दी जाती है। तीसरा स्तर नाट्य का आता है। यह रसाश्रित होता है। रस निष्पत्ति के लिये विभाव अनुभाव इत्यादि के परिशीलन की आवश्यकता होती है जिनका परिज्ञान वाक्यार्थ के द्वारा होता है। अतः वाक्यार्थामिनय को नाट्य कहा जाता है। इस प्रकार गात्रविक्षेप मात्र नृत्त, भावामिनय नृत्त्य और वाक्यार्थाभिनय नाट्य कहलाता है। नृत्त का आश्रय नृत्य में और इन दोनों का आश्रय नाट्य में लिया जाता है। दशरुपक नाट्य के प्रकार हैं जिनमें प्रधानता वाक्यार्थाभिनय की रहती है।

रसाश्रित उक्त भेदों के अतिरिक्त नृत्य के आश्रित भी कुछ भेद होते हैं जिन्हें विश्‍वनाथ ने उपरूपक की संज्ञा दी है और अब सामान्यतः यह संज्ञा स्वीकार की जाती है।

उपरूपक भेदों का सर्वेक्षण

उपरूपक नामकरण तो सम्भवतः विश्‍वनाथ का ही दिया हुआ है किन्तु इनके भेदों

की परम्परा पुरानी है। भरत ने तो इनका उल्लेख नहीं किया है– सम्भवतः भरत के समय तक नृत्य के आधार पर अभिनय भेदों की परम्परा का प्रचलन नहीं हुआ था। कोहल के समय तक ये नृत्य रूपक कुछ कुछ स्वरूप लेने लगे थे। कुछ लोग कोहल को ही इस विधा का प्रवर्तक मानते हैं। किन्तु इनका सर्वप्रथम व्यवस्थित उल्लेख धनञ्जय ने दशरूपक में किया। इन्होंने सम्भवतः सर्वप्रथम प्रश्न उठाया है कि जबकि डोम्बी, श्रीगदित इत्यादि नृत्य पर आधारित ७ भेद और पाये जाते हैं तब रूपकों की संख्या १० मानना कहां तक ठीक है और इसके नृत्त, नृत्य और नाट्य के भेद समझाते हुये कहा है कि नृत्याश्रित रूपकों का स्वरुप ही भिन्न होता है। वे रसाश्रित न होकर ताल लय या भावाश्रित होते हैं। अतः उन्हें रूपकों में सन्निविष्ट नहीं किया जा सकता। धनञ्जय के माने हुये नृत्याश्रित ७ रूपक हैं– डोम्बी, श्रीगदित, भाण, भाणी, प्रस्थान रासक और काव्य। इस विचारधारा को उनके कनिष्ठ समसामयिक अभिनवगुप्त ने आगे बढाया। इन्होंने ८ भेद स्वीकार किये जिनमें श्रीगदित और काव्य को छोड़कर ५ भेद तो धनञ्जय के ही स्वीकार किये; उनमें तीन और जोड़ दिये– प्रेक्षणक, रासाक्रीड और हल्लीसक। हेमचन्द्र ने १० नृत्यरूपकों का उल्लेख किया– जिनमें अभिनवगुप्त के ८ धनञ्जय का श्रीगदित और अपना गोष्ठी नामक एक भेद और जोड़कर १० की संख्या पूरी की। हेमचन्द्र के बाद रामचन्द्र गुणचन्द्र ने इस संख्या को १३ तक पहुंचाया। इनमें डोम्बी को छोड़कर ६ भेद धनञ्जय से, हल्लीसक और प्रेक्षणक अभिनवगुप्त से, गोष्ठी हेमचन्द्र से तथा ४ अपने सट्टक, दुर्मिलिता, शय्या और नाट्यरासक जोड़कर (६ + २ + १ + ४) १३ की संख्या पूरी की। इनका नाट्यरासक अभिनव का रासाक्रीड ही है। अग्निपुराण में १७ भेद किये गये और शारदातनय ने इनकी संख्या २० कर दी। इनमें रामचन्द्र गुणचन्द्र के शय्या और भाण को छोड़कर १३ में ११ भेद जिनमें दुर्मिलिता को दुर्मल्लिका और रासक के स्थान पर लासक कर दियागया। धनञ्जय द्वारा निर्दिष्ट डोम्बी और हर्ष द्वारा उल्लिखित तोटक शामिल कर लेने से १३ भेद बन गये। इनमें ७ भेद और जोड़ दिये गये– नाटिका, संल्लाप, शिल्पक, उल्लाप्यक, मल्लिका, कल्पवल्ली और पारिजातक। इस प्रकार शारदातनय के २० भेद हो गये। विश्वनाथ के समय तक आते आते नृत्य रुपकों की यही स्थिति थी। विश्वनाथ ने इन्हें उपरूपक की संज्ञा प्रदान की और उनकी संख्या १८ मानकर उन्हें परिनिष्ठित कर दिया। विश्वनाथ द्वारा मान्य संख्या और उनका स्वरूप ही साहित्य जगत में प्रतिष्ठित है और उसे ही अन्तिम माना जाता है। विश्वनाथ ने शारदातनय के २० भेदों में शय्या, भाण, मल्लिका, कल्पवल्ली और पारिजातक ये ५ भेद छोड़ दिये। इस प्रकार शारदातनय के १५ भेद स्वीकार कर लिये तथा तीन अपनी ओर से जोड़ दिये विलासिका, प्रकरणी और भाव। वस्तुतः प्रकरणी की कल्पना नाटिका के आधार पर की गई है; क्योंकि प्रधान रूपक दो ही हैं– नाटक और प्रकरण। अतएव नाटिका के समान ही प्रकरणी भी एक भेद मान लिया गया। नाटिका और प्रकरणी में वही भेद हैं जो नाटक

और प्रकरण में हैं। वस्तुतः ये दोनों भेद रूपक भेदों के निकट पड़ जाते हैं; अतः इन्हें पूर्णरूप से उपरुपकों में सम्मिलित नहीं किया जा सकता। दूसरी बात यह है कि भरत ने रूपक के १० भेदों के साथ ११वें भेद नाटिका का भी उल्लेख कर दिया। इनका कथानक भी परिमाण में कुछ अधिक ही होता है।

नाटिका का रूप बंधा बंधाया होता है। इसका प्रधान नायक प्रख्यात व्यक्ति होता है तथा कथानक कल्पित होता है। नायिका कुलवती राजकुमारी होती है; वह अभीष्ट नायक के अन्तःपुर में किसी न किसी प्रकार पहुंच जातीहै। अधिकतर राजा का मन्त्री किसी राजकुमारी के विषय में यह सुनकर कि ज्योतिषियों के कथानुसार उसका पति चक्रवर्ती सम्राट होगा किसी न किसी प्रकार उसे अपने राजा के अन्तःपुर में ले आताहै जहां किसी विपत्ति में फंस जाने के कारण उसे राजा के अन्तःपुर में प्रच्छन्न रुप में रानी की दासी बनकर रहना पड़ता है। संयोगवश राजा का उससे प्रच्छन्न प्रेम हो जाता है जिसमें विदूषक और उसकी एक सहेली का भी योगदान रहता है। तब रानी की ओर से विघ्न लगते हैं जिससे छुटकारा पाने के लिये राजा को प्रयत्न करने पड़ते हैं। अन्त में उसका राजकुमारी होना सिद्ध हो जाता है जो अधिकतर रानी की ही कोई रिश्तेदार होती है। तब रानी उसे राजा से विवाह करने की आज्ञा दे देती है। इस प्रकार प्रसिद्ध नायक और कल्पित कथानक के कारण नाटिका में नाटक और प्रकरण दोनों का मिला जुला रूप होता है। प्रकरणिका भी नाटिका के समान ही होती है। अन्तर यह होता है कि प्रकरणिका में नायक कोई प्रख्यात राजर्षि नहीं होता अपितु कोई सार्थवाह या बनियां होता है। वैसे प्रकरणिका में कोई ऐसी बात नहीं होती जिससे उसे पृथक् रूप में एक भेद मान लिया जाय।

विश्वनाथ द्वारा माने गये १८ भेदों में नाटिका और प्रकरणिका को छोड़ देने से १६ भेद शेष रह जाते हैं जिनमें १० एकाङ्की हैं और ६ अनेक अंकों वाले। नाटिका और प्रकरणिका में तो ४ अंक होते ही हैं। शेष का संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जा रहा है।

(अ) अनेक अंकों वाले उपरूपक

(१) **प्रस्थान**– दो अंकों का रूपक। इसका नायक दास और नायिका दासी होती है। उपनायक हीन जाति का होता है। भारती और कैशिकी ये वृत्तियां होती हैं और इसमें पूर्वराग, मान, प्रवास का अभिनय रहता है और वसन्त का उत्कण्ठा पूर्ण वर्णन किया जाता है। चार खण्डों में बांटकर नृत्य किया जाता है। अन्त में वीर रस का भी निबन्धन रहता है। अभीष्ट अर्थ का उपसंहार सुरापान के द्वारा किया जाता है। ताल और लय का मिश्रण और विलास की अधिकता इसकी विशेषतायें हैं। उदाहरण– शृङ्गारतिलक।

(२) **शिल्पक**– चार अंकों का उपरूपक। इसमें चारों वृत्तियां होती हैं। शान्त और हास्य को छोड़कर सभी रस होते हैं। ब्राह्मण नायक होता है; उपनायक हीन प्रकृति का

व्यक्ति होता है। श्मशान इत्यादि का वर्णन रहता है। आशंका, तर्क, सन्देह, ताप, उद्वेग, प्रसक्ति, प्रयत्न इत्यादि २७ अंगों में इसकी रचना की जाती है। उदाहरण- कनकावती।

(३) **संलापक**- यह तीन या चार अंकों का उपरूपक होता है। इसका नायक कोई पाखण्डी व्यक्ति हुआ करता है, करुण और शृङ्गार को छोड़कर अन्य रस होते हैं। नगरोपरोध, छल, उपद्रव का अभिनय किया जाता है। इसमें न तो कैशिकी वृत्ति होती है न भारती। उदाहरण मायाकापालिक।

(४) **दुर्मल्लिका**- नाट्यदर्पण में इसका नाम दुर्मिलिता माना गया है। किन्तु दोनों के लक्षणों में पर्याप्त अन्तरहै। नाट्यदर्पण की सम्मति में कोई दूती अश्लील कथाओं द्वारा युवक, युवतियों के चौर्यरत का वर्णन करती है औरउसकी बातें ग्राम्यकथाओं से भरी होती हैं। नीच जाति होने से धन मांगती है तथा मिल जाने पर और अधिक मांगती है। साहित्य दर्पण के अनुसार इसमें चार अंक होते हैं- वृत्तियां कैशिकी और भारती होती हैं। इसमें गर्भ सन्धि नहीं होती, नागरिक व्यक्ति इसके पात्र होते हैं जिनकी संख्या बहुत कम होती है। पहला अंक ६ घड़ी का होता है जिनमें विट की हंसी मजाक चलती है; दूसरा अंक १० घड़ी का होता है जिसमें विदूषक की हंसी मजाक दिखलाई जाती है; तीसरे में पीठमर्द का विलास रहता है जो कि १२ घड़ी तक चलता है, चौथा अंक २० घड़ी तक चलता है जिसमें नायक की क्रीडा दिखलाई जाती है। उदाहरण- बिन्दुमती।

(५) **त्रोटक**- इसका उल्लेख भाव प्रकाशन में भी हुआ है। इसमें ५,७,८ या ९ अंक हो सकते हैं। इसका नायक दिव्य मानव होता है और विदूषक प्रत्येक अंक में रहता है। इसीसे सिद्ध होता है कि इसका अंगी शृङ्गार रस ही हो सकता है। इसके उदाहरण हैं- विक्रमोर्वशी, स्तम्भितरम्भक, मदलेखा, मेनकानहुष।

(६) **सट्टक**- इसमें अंको की संख्या नियत नहीं होती। इसके अंको को जवनिका कहा जाता है। न तो प्रवेशक होता है न विष्कम्भक, अद्‌भुत रस की मात्रा बहुत अधिक होती है। सभी बातों में यह नाटिका के समान होता है। उदाहरण- आनन्दसुन्दरी, कर्पूरमञ्जरी।

(आ) एकाङ्की उपरूपक

जैसा कि बतलाया जा चुका है इनकी संख्या १० होती है। इनमें अधिकांश में कैशिकी वृत्ति की प्रधानता होती है और स्त्री पात्रों का आधिक्य रहता है। अधिकांश एकाङ्की उपरूपकों में हास्य और शृङ्गार का प्राधान्य रहता है। कई उपरूपकों के उदाहरण नहीं पाये जाते, क्योंकि वास्तविक रूपक की अपेक्षा इनमें गीत नृत्य, वाद्य की प्रधानता रहती है और कहीं कहीं मूल नाट्य भी रहता है। कथा का व्याज बहुत क्षीण होता है। कुछ ही भेद ऐसे हैं जिनमें उदात्तता पाई जाती है, अन्यथा मनोरञ्जन परक नृत्य इसमें अधिक रहते हैं। १० उपरूपकों का परिचय नीचे दिया जा रहा है-

(१) **गोष्ठी**– इसमें कुल मिलाकर १५,१६ पात्र होते हैं, ९ या १० पुरुष पात्र और ५,६ स्त्री पात्र! सभी पात्र जन साधारण से लिये जाते हैं और सामान्य जनजीवन का अभिनय प्रस्तुत करते हैं। इसके संवाद अधिकतर हल्के फुल्के होते हैं जिनमें उदात्तता नहीं होती। इसमें मुख, प्रतिमुख और निर्वहण ये तीन सन्धियां ही होती हैं क्योंकि संघर्ष अधिक नहीं होता। इसमें प्रधानता कामशृङ्गार की होतीहै और कैशिकी वृत्ति का विशेष आश्रय लिया जाता है। साहित्य दर्पण में इसका उदाहरण दिया गया है– रैवतमदनिका।

(२) **नाट्यरासक**– इसका उल्लेख भावप्रकाशन, नाट्यदर्पण और साहित्यदर्पण में किया गया है। नाट्यदर्पण में इसकी परिभाषा अत्यन्त संक्षिप्त दी गई है– वसन्त आने पर स्त्रियां प्रेम के आवेश में भरकर जब राजाओं के चरित्र को नृत्य गीत के द्वारा प्रस्तुत करती हैं तब उसे नाट्यरासक की संज्ञा दी जाती है। साहित्यदर्पण में कुछ अधिक विस्तार से प्रकाश डाला गया है। इसके अनुसार इसमें किसी उदात्त चरित्र का नायक के रूप में उपादान किया जाता है और पीठमर्द (नायक के समान तथा उससे घट कर गुणों वाला) उपनायक (सहायक) के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। इसमें ताल और लय तथा संगीत अधिक मात्रा में होता है। हास्य रस अंगी होता है और पुष्कल रुप में शृङ्गार का समावेश किया जाता है। नायिका वासकसज्जा होती है अर्थात् एक स्त्री नायिका के रूप में शृङ्गार करके नायक के आने की प्रतीक्षा करती है और दूसरी नृत्य के साथ अभिनय करती हुई उसी के चारो और घूमती है। इसमें प्रतिमुख सन्धि का अभाव होता है। कभी कभी मुख सन्धि के बाद निर्वहण सन्धि आ जाती है और कभी कभी अन्य प्रासङ्गिक कथा का समावेश कर दिया जाता है जिससे गर्भ और विमर्श सन्धियों का भी समावेश हो जाता है। लास्य के सभी अंग इसमें आ जाते हैं। नर्मवती नाट्यरासक में दो सन्धियों का उपादान हुआ है और विलासवती में चार अंकों का। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने भारतदुर्दशा की रचना नाट्यरासक के रूष में की थी। किन्तु शास्त्रीय लक्षणों से उसका मेल नहीं बैठता। सम्भवतः भारतेन्दु की नाट्यशासक विषयक कल्पना कुछ भिन्न थी। किन्तु इसका उन्होंने उल्लेख नहीं किया।

(३) **उल्लाप्य**– इसका निरूपण भावप्रकाशन में किया गया है। साहित्य दर्पण में इसका परिचय इस प्रकार दिया हुआ है– इसमें दिव्य वस्तु का उपादान होता है और इसका नायक उदात्त होता है। शिल्पक नामक उपरूपक में जो २७ अंग बतलाये गये हैं वे इसमें भी होते हैं। इसमें तीन रसों का समावेश होताहै– हास्य, शृङ्गार और करुण; संग्राम बहुत अधिक दिखलाया जाता है; आंसुओं का भी समावेश रहता है और संगीत जन्य मनोहरता भी रहती है। इसमें चार नायिकायें होती हैं। इसका उदाहरण है 'देवी महादेवम्' कुछ लोगों के मत में इसमें कभी कभी ३ अंक भी होते हैं।

(४) **काव्य**– इसका उल्लेख नृत्यपरक रूपक भेदों में दशरूपकम् में भी किया गया है। इसके अतिरिक्त अग्नि पुराण, भाव प्रकाशन में भी इसको स्थान दिया गया है। इसमें

हास्य और शृङ्गार का बाहुल्य होता है। इसकी नायिका कुलटा वेश्या होती है। इसमें आरभटी को छोड़कर तीन वृत्तियां होती हैं अर्थात् विषय वस्तु में कठोरता नहीं होती। इसमें भग्नताल, मात्रा और लास्य का बहुत प्रयोग होता है। विदूषक और विट का प्रयोग भी आवश्यक है। नायिका उच्च गुणों वाली दिखलाई जाती है। इसका उदाहरण है- यादवोदय।

(५) **प्रेक्षण या प्रेङ्खण-** इसमें सभी वृत्तियां होती हैं। कोई हीन पात्र इसके नायक के रूप में दिखलाया जाता है। न इसमें सूत्रधार होता है, न विष्कम्भक न प्रवेशक। गर्भ और विमर्श सन्धियां भी नहीं होतीं। इसमें युद्ध भी दिखलाया जाता है और क्रोध पूर्ण वार्तालाप भी। नेपथ्य में नान्दीपाठ किया जाता है और प्ररोचना का भी प्रयोग होता है अर्थात् कवि और काव्य की प्रशंसा भी आरम्भ में की जाती है। इसका उदाहरण है वालिवध; इसका उल्लेख अभिनव गुप्त ने भी किया है और नाट्यदर्पण, भाव प्रकाशन, काव्यानुशासन में भी इसका निरूपण किया गया है। नाट्यदर्पण में लिखा है कि गलियों में, समूह में, चौराहों पर मद्यशालाओं में जो बहुत से पात्र मिलकर विशेष प्रकार के नृत्य के द्वारा किसी वस्तु का प्रदर्शन करते हैं वह प्रेङ्खण कहलाता है। भाव प्रकाशन में त्रिपुरमर्दन और नृसिंहविजय ये दो उदाहरण दिये गये हैं।

(६) **रासक-** इसका उल्लेख दशरुपक में भी किया गया है और अभिनवगुप्त ने भी इसे स्वीकार किया है। इसके अतिरिक्त नाट्यदर्पण, भावप्रकाशन और काव्यानुशासन में भी इसका निरुपण है। नाट्यदर्पण के अनुसार १६,१२ और ८ नायिकायें पिण्डीबन्ध इत्यादि विन्यास से जिसमें नृत्य करती हैं उसे रासक कहा जाता है। साहित्यदर्पण में नृत्य के अतिरिक्त अभिनय भी सम्मिलित कर दिया गया है। इसके अनुसार रासक में ५ पात्र होते हैं और मुख तथा निर्वहण ये दो सन्धियां होती हैं। कुछ लोग प्रतिमुख सन्धि का होना भी स्वीकार करते हैं। भारती और कैशिकी ये दो वृत्तियां होती हैं। इसमें अनेक भाषाओं और उपभाषाओं तथा अनेक प्रकार की प्राकृतों का प्रयोग किया जाता है। सूत्रधार का अभाव होता है किन्तु नान्दीपाठ किया जाता है। वीथी के सभी अंग रहते हैं। विभिन्न कलाओं का प्रयोग किया जाता है। इसकी नायिका प्रख्यात होतीहै और नायक मूर्ख। उदाहरण मेनकाहितम्।

(७) **श्रीगदित-** इसका उल्लेख दशरूपक के समय से ही प्रारम्भ हो जाता है, अभिनवगुप्त, रामचन्द्रगुणचन्द्र, शारदातनय प्रभृति अनेक आचार्यों ने इसे मान्यता दी है। नाट्यदर्पण के अनुसार जिसमें कोई कुलाङ्गना अपने पति के शौर्य, त्याग, औदार्य प्रभृति गुणों का गति के माध्यम से अपनी सखी के सामने उसी प्रकार वर्णन करती है मानो लक्ष्मी विष्णु का वर्णन कर रही हो; फिर पति के द्वारा वियुक्त होने पर गीत का स्वर क्रमशः उपालम्भ परक होता जाता है उस रूपक को श्रीगदित की संज्ञा प्राप्त होती है। साहित्यदर्पण के अनुसार इसकी वस्तु प्रख्यात होती है, नायक प्रख्यात और उदात्त होता

है। नायिका भी प्रसिद्ध होती है। गर्भ और विमर्श सन्धियां इसमें नहीं होती। पदार्थ के स्थान पर पद का अभिनय किया जाता है। अतः इसमें भारती वृत्ति की प्रधानता होतीहै। कीथ के अनुसार इसमें श्रीशब्द का प्रायः उल्लेख किया जाता है और श्रीरूप धारिणी कोई नटी बैठकर पद गाती है। साहित्यदर्पण में इसका उदाहरण दिया गया है क्रीडारसातल और कीथ ने माधव रचित सुमद्राहरण को एकमात्र इस भेद की रचना कहा है।

(८) **विलासिका–** इसका एकमात्र उल्लेख साहित्य दर्पण में ही है। इसमें शृङ्गार की अधिकता होती है; लास्य के दसों अंग विद्यमान रहते हैं। विदूषक, पीठमर्द और विट इसमें विशिष्ट पात्र होते हैं, नायक निम्नकोटि का होता है; वस्तु बहुत बड़ी होती है। किन्तु वेषभूषा और नेपथ्य तथा नाचगान की अधिकता होती है; गर्भ और विमर्श ये दो सन्धियां नहीं होतीं। कुछ लोग इसे लासिका की संज्ञा प्रदान करते हैं जिसका दुर्मल्लिका में अन्तर्भाव हो जाताहै। इसका कोई उदाहरण उपलब्ध नहीं होता।

(९) **हल्लीस–** इसका वर्णन नाट्यदर्पण, काव्यानुशासन, भाव प्रकाशन इत्यादि ग्रन्थों में भी पाया जाता है और अभिनवगुप्त ने भी इसका उल्लेख किया है। यह एक प्रकार का नृत्य है जिसमें ८, १० स्त्रियां मण्डल बनाकर तथा एक साथ नायक को मध्य में रखकर उसी प्रकार नाचती हैं जिस प्रकार व्रजभूमि में गोपी कृष्ण नृत्य की परिपाटी है। इसमें कैशिकी वृत्ति की प्रधानता होती है नायक की वाणी उदात्त होती है तथा ताल और लय का बाहुल्य होता है। मुख और निर्वहण दो सन्धियां होती हैं। इसका उदाहरण है– केलिरैवतकम्।

(१०) **भाणिका–** इसका उल्लेख अनेक आचार्यों ने किया है। यह भाण का सजातीय उपरूपक है। इसमें नेपथ्य विधान अत्यन्त मनोरम होता है; मुख और निर्वहण ये दो सन्धियां होती हैं; कैशिकी और भारती ये दो वृत्तियां होती हैं। नायिका कोई उच्चकोटि की स्त्री होती है और नायक हीन कोटि का पुरुष। इसके ७ अंग माने गये हैं जिनमें इसकी वस्तु का विश्लेषण हो जाता है। इसमें प्रसंगवश कार्य का वर्णन किया जाता है (उपन्यास); निर्वेदपूर्ण कथन किये जाते हैं (विन्यास); भ्रान्ति का नाश होता है (विबोध); मिथ्या कथन किये जाते हैं (साध्वस); क्रोध और पीडा से उपालम्भ दिये जाते हैं (समर्पण); कोई दृष्टान्त दिया जाता है (निवृत्ति); और अन्त में कार्य का समापन किया जाता है (संहार) इन्हीं सात अंगों में भाणिका की योजना की जाती है।

शारदातनय ने चार अन्य उपरूपकों का वर्णन किया है जो साहित्य दर्पण में उल्लिखित नहीं हैं– (१) पारिजात या पारिजातलता– उदाहरण गंगातरंगिका; (२) कल्पवल्ली उदाहरण माणिक्यवल्लिका; (३) डोम्बिका उदाहरण गुणमाला, चूडामणि; (४) भाण उदाहरण नन्दिमती शृङ्गारमंजरी।

मध्य युग अथवा दरवारी कविताकाल

ईसापूर्व प्रथम शताब्दी से लेकर १९वीं शताब्दी के अन्त पर्यन्त लगभग २००० वर्षका सुदीर्घ काल भारतीय साहित्य साधना के प्रायः प्रत्येक क्षेत्र का और विशेषकर ललित साहित्य का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण काल है। नाट्यसाहित्य के क्षेत्र में भी इस काल में इतनी बहुमूल्य कृतियां प्रस्तुत की गई जिन्हें विश्व साहित्य में केवल स्थान ही नहीं मिला अपितु उन्हें विश्व की मूर्धन्य कृतियों में गिना गया और पाश्चात्य जगत् उनके कला सौन्दर्य पर मुग्ध हो गया। इस काल की अधिकांश रचनायें विभिन्न राजघरानों के संरक्षण में हुई। कलाकार अधिकतर किसी राजघरानें के आश्रय में रहकर रचनायें प्रस्तुत करते थे और उन पर पुरस्कार प्राप्त करते थे। अनेक राजा लोग स्वयं कलाकार थे और उनकी कृतियों ने पर्याप्त प्रतिष्ठा प्राप्त की थी। इन कृतियों की संख्या सहस्रों में है जिनका केवल एक अंश अबतक प्रकाश में आया है। हजारों की संख्या में इस प्रकार की कृतियां रजघरानों के व्यक्तिगत पुस्तकालयों में सुरक्षित पड़ी हैं। इस विषय में पाश्चात्य विद्वान धन्यवाद के पात्र हैं कि उन्होंने मनोयोगपूर्वक इन ग्रन्थों को खोज निकाला है तथा इसके लिये खोज की दिशा उन्मीलित की है जिससे प्रोत्साहित होकर भारतीय विचारकों ने इस दिशा में स्तुत्य कार्य किया है। इस साहित्य और इस पर राजघरानों के योगदान के विषय में सरसरी तौर से प्रकाश डालने के पहले दो प्रश्नों पर विचार कर लेना अत्यन्त आवश्यक है एक तो रचनाओं की अनिश्चित स्थिति दूसरे ग्रीक साहित्य का भारतीय नाट्यकला से सम्बन्ध जिस समस्या से भारतीय नाट्य साहित्य पर विचार करने वाले प्रत्येक व्यक्ति को दो चार होना पड़ता है।

भारतीय साहित्य का दुर्बल बिन्दु उसके इतिहास का अभाव है। इस विषय में मैक्समूलर का कहना है– भारत में इतिहास का सर्वथा अभाव है; इसका कारण यह है कि इतिहास की सुरक्षा का उत्तरदायित्व ब्राह्मण वर्ग पर था जिसने संसार की नश्वरता को समझ लिया था और जो परमतत्व को ही महत्व देता था। इसके प्रतिकूल यूनानी लोग सांसारिक व्यक्ति थे और वे भौतिक सुख सुविधा और सम्पन्नता को जीवन का परम ध्येय समझते थे। इसीलिये यूनानी लोग इतिहास को सुरक्षित रख सके जबकि भारतीय इस दिशा में उदासीन रहे। मैकाडनल ने भी ऐसे ही विचार व्यक्त किये हैं– 'इतिहास भारतीय साहित्य का एक दुर्बल बिन्दु है। वस्तुतः इसकी सत्ता ही विद्यमान नहीं है। ऐतिहासिक बुद्धि का अत्यन्ताभाव इसका एक ऐसा लक्षण है कि संस्कृत साहित्य का सम्पूर्ण मार्ग इस दोष की छाया से आक्रान्त होकर अन्धकाराच्छन्न हो गया है। यह साहित्य ठीक तिथि निर्धारण की पूर्ण अनुपस्थिति से पीडित है और इसकी पीडा भोग रहा है। यह इस सीमा तक सच है कि भारतीय कवियों में सबसे बड़े कवि कालिदास का समय बहुत समय तक एक हजार वर्ष की सीमाओं के अन्तर्गत विवाद का विषय बना रहा और अब भी एक या दो शताब्दियों की सीमा के बीच सन्देह से भरा हुआ है। इस प्रकार

संस्कृत लेखकों की तिथियां अत्यधिक संख्यक विषयों में सन्निकटता के मोटे अनुमान पर आधारित हैं। पारस्परिक निर्भरता के अप्रत्यक्ष प्रमाण, उद्धरण या सन्दर्भ, संकेत भाषा के विकास या शैली के द्वारा इन तिथियों का अनुमान लगया जाता है।'

संस्कृत साहित्य के कलाकारों का निश्चित प्रमाण न मिलने का एक बहुत बड़ा कारण है ई.पू. का साहित्य उपलब्ध नहीं है जिसके आधार पर भरत ने नाट्यशास्त्र की रचना की थी। जिन साहित्यों में साहित्य भाषा थोड़े थोड़े समय में बदलती रहती है और ऐतिहासिक शासकों में परिवर्तन होता रहताहै तथा सामयिक परिस्थितियों और प्रवृत्तियों में नई नई धारायें प्रवर्तित होती रहती हैं उनमें यदि ऐतिहासिक उल्लेख न हो तो भी स्वयं साहित्य से उसकी रचना का परिज्ञान हो जाता है। उदाहरण के लिये हिन्दी साहित्य को लीजिये। इस सहस्राब्दी के प्रारम्भ में राजपूतकाल में जो अपभ्रंश मिश्रित राजस्थली डोगरी चल रही थी मुस्लिम साम्राज्य के स्थापित हो जाने पर असहाय हिन्दू जाति ने भक्ति का मार्ग पकड़ा और भक्ति के लिये आराध्य देव राम कृष्ण की उपासना के लिये अवधी और व्रजभाषायें अपनाई गई। फिर जब हिन्दू जाति मुस्लिम साम्राज्य के लिये आदी हो गई और साहित्य सिद्धान्तों (रीतियों) की चर्चा चल दी तब शृङ्गार रस का प्राधान्य हो गया और शृङ्गार रस के अधिदेवता भगवान् कृष्ण ही साहित्य क्षेत्र में प्रतिष्ठित रहे तब भाषा तो व्रज ही रही किन्तु कृष्ण का शृङ्गार प्रमुख हो गया। फिर अंग्रेजी राज्य की स्थापना के साथ जब मुस्लमानों द्वारा अपनाई गयी उर्दू के नाम पर खड़ी बोली का प्रभुत्व बढ़ा तब ब्रजभाषा भी छूट गई और खड़ी बोली में कविता होने लगी। इस शताब्दी की कविता पर भी यदि ध्यान दिया जाय तो काव्य की विषयप्रवृत्ति दशाब्दियों में बदलती रही। इस प्रकार ऐसे साहित्य में यदि ऐतिहासिक देशकाल सुरक्षित न रह सका हो तो भी भाषा और विषय के आधार पर कविता स्वयं अपना देशकाल व्यक्त कर देगी। किन्तु ऐसी सुविधा संस्कृत में नहीं है। संस्कृत भाषा तो अपरिवर्तन शील है ही जो प्राकृत भाषायें नाटकों में प्रयुक्त होती हैं उनका भी देशकाल सर्वजन संवेद्य नहीं है। शास्त्रकारों ने उन भाषाओं को भी लगभग परिनिष्ठित बना दिया है। विषय भी सामान्यतः जाने माने ही हैं और शैली भी परम्परागत रूप में ही अपनाई जाती रही है। अतः किसी कृति को देखकर उसके देशकाल का निर्णय करना सरल नहीं है। परिणाम यह हुआ है कि यदि १२वीं शताब्दी की कृति को कोई ६ठी शताब्दी की बतला दे और उसके लिये कुछ तर्क भी प्रस्तुत कर दे तो कोई पाठक आसानी से उस पर अविश्वास नहीं कर सकेगा। किसी साहित्यिक कृति के काल निर्धारण के लिये तर्क का सहारा लेना पड़ता है जिस पर स्वयं विश्वास नहीं होता–

हस्तस्पर्शादिवान्धेन विषमे पथि धावतः।
अनुमानप्रमाणेन विनिपातो न दुर्लभः॥

[अनुमान को प्रमाण मानकर चलने वाले (तर्क के आधार पर वस्तुतत्व का निर्णय

करने वाले) की वही दशा होती है जैसे कोई अन्धा व्यक्ति हाथ से टटोलकर किसी ऊबड़ खाबड़ मार्ग पर दौड़ रहा हो ऐसे व्यक्ति का गिर जाना दुर्लभ नहीं होता।] आशय यह है कि तर्क के आधार पर निर्णय की हुई बात पर पूर्ण विश्वास नहीं किया जा सकता। इस प्रकार अनेक कलाकारों का समय निर्धारण सन्दिग्ध ही रह जाता है। अनेक विषयों में तो पाश्चात्य विद्वानों में भी मतभेद बना रहता है।

सामान्य रूप से निर्णायक तत्व हैं विदेशी यात्रियों के उल्लेख, किसी कवि, कलाकार, शास्त्रकार या किसी अन्य लेखक द्वारा उल्लेख, गणित सम्बन्धी ऐसी वास्तविकता जो किसी निश्चित कालावधि से भिन्न नहीं हो सकती थी, किन्हीं उपलब्ध सिक्कों, ताम्रपत्रों स्तम्भ लेखों द्वारा निर्णय एवं अन्य साधनों से निर्णय। भारतीय पुरातत्व का निर्णय करने वालों ने निर्णय करने की चेष्टा की है कतिपय तत्व प्रकाश में आये भी हैं फिर भी उन पर पूर्ण विश्वास करना सर्वथा असन्दिग्ध नहीं हो सकता।

पूर्ण रूप से निश्चित तिथि ईसा से ३२६ वर्ष पूर्व भारत पर सिकन्दर का आक्रमण था। उस समय से ग्रीक लोगों के साथ भारत का सम्पर्क हुया। उस समय से विभिन्न ग्रीक लोग भारत में रहने लगे। मगध राज्य में राजदूत के रूप में मेगस्थनीज ई.पू. ३०० के आस पास पटना में रहता रहा था। यह सम्भवतः चन्द्रगुप्त मौर्य का शासनकाल था। अनेक शताब्दियों बाद चीनी यात्रियों का भरत दर्शन प्रारम्भ हुआ जिनमें फाह्यान (३९९ ई.) हुयेन सांग (६३० से ६४५ ई.) और इत्सिग (६७१ से ६९५ ई.) के यात्रा विवरण प्राप्त होते हैं। इनसे भारतीय इतिहास पर कुछ प्रकाश पड़ता है। किन्तु भारतीय कवियों और नाटककारों के विषय में इन यात्रियों में हुयेन सांग को छोड़कर अन्य यात्रियों ने बहुत कम लिखा है। इन विवरणों से भारतीय साहित्य पर कुछ प्रकाश पड़ता है। इसके कतिपय शताब्दियों बाद ११वीं शताब्दी के मध्य में अल्वरूनी ने 'हिन्दुस्तान' नामक पुस्तक में भारतीय समाज और संस्कृति का परिचय दिया है। कवियों और कलाकारों के उल्लेख से इतना तो सिद्ध हो जाता है कि जिसका उल्लेख किया गया है वह उस लेखक से पहले हो चुका था जिसने उसका उल्लेख किया है; किन्तु यह ज्ञात नहीं होता कि वह कितना पहले हुआ था। एक कठिनाई यह भी है कि अनेक लेखकों ने अपनी अच्छी कृतियों को भी पूर्ववर्ती किसी लेखक के नाम पर और प्रायः उनकी कृति में सन्निविष्ट कर इस आशा से प्रचारित करने की चेष्टा की कि इससे उसकी कृति का सम्मान अधिक होगा। इस प्रवृत्ति के सबसे बड़े प्रमाण हैं- ८००० श्लोकों का जय नाम इतिहास कालान्तर में एक लाख से अधिक श्लोकों का महाभारत बन गया। सैकड़ों वर्षों के अन्तराल में होने वाले कवियों को भोज प्रबन्ध में एक साथ होने वाला बतला दिया गया। वेदव्यास को वैदिक साहित्य के संकलन, महाभारत और समस्त १८ महापुराणों और उपपुराणों की रचना का श्रेय दे दिया गया। महानाटक के रचनाकार ने अपने नाम का मोह छोड़कर उसे हनुमन्नाटक के रूप में हनुमान की कृति के रूप में प्रसिद्ध हो जाने दिया यद्यपि

लेखकों ने दामोदर मिश्र और मधुसूदन नामों द्वारा संकलन और उद्धारकर्ता के रूप में अपना नाम भी चलने दिया।

ऊपर जो कुछ कहा गया है उसका आशय यह नहीं है कि साहित्य के अनुसन्धान की दिशा में जो कुछ निर्णय किये गये हैं वे सब अविश्वसनीय ही हैं। उसका आशय केवल यही है कि इस दिशा में किये गये अनुसन्धानों पर विवेक के साथ विश्वास करना चाहिये। इसमें कुछ आग्रह का अंश भी वाधक हो जाता है। सामान्य भारतीय व्यक्ति जिन घटनाओं को लाखों वर्ष पुराना मानता है उन्हें ही पाश्चात्य विचारक अधिक से अधिक परवर्ती सिद्ध करने की चेष्टा करता हैं। उनका एक आग्रह यह भी रहता है कि भारत में जो कुछ उत्तम और महत्वपूर्ण है वह सब यूरोप की देन है। आर्यों का आदिदेश भी इसी विवाद में उलझा हुआ है। इन सब बातों के होते हुये भी पाश्चात्य विचारकों ने हमारे साहित्य के विषय में जो अनुसन्धान किये हैं हमें निस्सन्देह उनका आभारी होना चाहिये। उन लोगों ने जो दिशा उन्मीलित की है वह हामारी पथ प्रदर्शक अवश्य है। इसमें सन्देह नहीं।

भारतीय नाट्यकला पर यूनानी प्रभाव[१]

मैकडानल के अनुसार भारत का पाश्चात्य देशों से सम्पर्क ५वीं शताब्दी ई.पू. से ही चल रहा था जबकि आर्क मेनिड वंश का शासन था, किन्तु वास्तविक सम्पर्क सिकन्दर के आक्रमण के साथ चौथी शताब्दी ई.पू. मे स्थापित हुआ। श्रीवेवर और श्रीविंडिश ने मत व्यक्त किया है कि सिकन्दर के साथ कलाकारों का एक दल भी आया था जो सिकन्दर के लौट जाने के बाद यहीं स्थिर हो गया। ई.पू. तीसरी शताब्दी में यूनानीशासक भारतीय जीवन में सम्मिलित होने लगे थे। सेल्यूकस ने मीडिया और पर्शिया में साम्राज्य स्थापित कर लिया था चन्द्रगुप्त की शक्ति को पराजित करने में स्वयं को असमर्थ पाकर सन्धि कर ली और पुत्री का विवाह चन्द्रगुप्त से कर दिया। इसके साथ ही यूनानी मेगस्थनीज को राजदूत के रूप में चन्द्र गुप्त के दरवार में छोड़ दिया। मेगस्थनीज ने निकट से देश का अध्ययन कर 'टा इण्डिया' नामक पुस्तक की रचना की जो किसी विदेशी द्वारा भारत के विषय में लिखा गया पहला अभिलेख होने के कारण अधिक महत्वपूर्ण है।

वेवर और विंडिश का मत है कि भारत के पश्चिम में यूनानी शासकों ने अपनी साम्राज्य सत्ता स्थापित कर ली थी। वे अपने अधीनस्थ राज्यों में यूनानी नाटकों का अभिनय करवाया करते थे। उनके अनुकरण पर संस्कृत साहित्यकारों ने भी नाटकों की रचना प्रारम्भ कर दी। सिकन्दर नाट्यकला का शौकीन था। उसके अभियान में नाट्यमण्डलियां भी साथ में आई थीं। अपने विजित प्रदेशों में वे नाटकीय प्रदर्शनों का आयोजन करते थे। उस प्राचीन काल में अलेक्जेड्रिया से भारत का व्यापार भी होता

१. भारत के साथ पाश्चात्य सम्पर्क के विषय में देखिये मैकडानल का संस्कृत साहित्य का इतिहास अध्याय१६

था। इन सब सम्पर्कों से भारतीय समाज पर यूनानी प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था और इसी के साथ भारतीय नाट्यकला का उद्भव हुआ। इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि भारतीय नाटकों में परदे के लिये यवनिका शब्द का प्रयोग किया जाता है जिसका अर्थ होता है यवन देश से आया हुआ। वेवर का कहना है कि 'यवनिका' के अतिरिक्त अन्य कोई समानता भारतीय और यूनानी नाटकों में नहीं है। किन्तु विंडिश एक कदम और आगे बढ़ गये। उन्होंने सिद्ध करने की चेष्टा की कि मृच्छकटिक में एटिक की सुखान्तिका का प्रभाव खोज निकाला जा सकता है। कतिपय विचारकों ने यह भी प्रतिपादित करने की चेष्टा की है कि नाट्य की विषयवस्तु भी मेलखाती है। दोनों में राजा एक युवती से प्रेम करता है; उसमें विघ्न उपस्थित होते हैं फिर सुखान्त मिलन होता है। दोनों में मिलन के दृश्य दिखलाये जाते हैं; वियोग होता है वियोग वेदना का चित्रण होता है, निशानी भेजी जाती है; डाकुओं द्वारा नायिका का अपहरण किया जाता है, प्रवहण भंग होता है, नायिका कष्ट में पड़ती है, फिर उसका उद्धार हो जाता है। यह साम्य सिद्ध करता है कि भारतीय नाटक का विकास यूनानी नाटकों के अनुकरण के आधार पर हुआ है।

साम्य के जो बिन्दु बतलाये जाते हैं वे इतने सामान्य हैं कि किसी भी नाट्यपद्धति में पाये जा सकते हैं। उस समय राजतन्त्र तो यूनान और भारत दोनों देशों में था; राजकीय चरित्र ही नाट्य के विषय बनते थे। प्रेम, उसमें विघ्न, विरह, वेदना, मिलन ये इतने सामान्य तत्व हैं कि इनका उपादान कहीं भी पाया जा सकता है। उसमें आदान प्रदान का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। स्वयं पाश्चात्य विद्वान इस विषय में एकमत नहीं हैं। मैकडानल का कहना है कि जितना साम्य यूनानी नाटकों के साथ भारतीय नाटकों का पाया जाता है उससे कहीं अधिक साम्य सेक्सपियर के नाटकों और भारतीय नाटकों में पाया जाता है। यह केवल कल्पना है कि भारत में सिकन्दर के आगमन के बाद यूनानी नाटकों का भारत में प्रचलन हो गया था। यहां के रंगमञ्च पर यूनानी नाटक दिखलाये जाते थे पहले तो यही बात प्रमाणित नहीं है। रह गई यवनिका की बात– विद्वानों का कहना है कि परदों की प्रथा यूनानी नाटकों में थी ही नहीं। फिर उनके अनुकरण का प्रश्न ही पैदा नहीं होता। यवनिका इस नामकरण का अन्य कारण भी हो सकता है। भारतीय नाटकों में यूनान की लड़कियों का सेविका के रूप में उल्लेख किया जाता है। यूनानी साहित्य में भी उस समय यूनानी लड़कियों को भेंट के रूपमें भारत को भेजने का उल्लेख प्राप्त होता है। हो सकता है परदों के उठाने गिराने पर यूनान की लड़कियां नियुक्त की जाती हों और इसलिये परदों का भी उन्हीं के नाम पर प्रचलन हो गया हो।

साम्य की अपेक्षा यूनानी नाटकों के साथ भारतीय नाटकों का वैषम्य अधिक है। पहले तो उद्देश्य में भी भिन्नता है। यूनानी नाटकों का उद्देश्य ही भारतीय नाटकों के उद्देश्य से भिन्न हैं। यूनानी नाटकों में शोकान्तिका का महत्व हैं; उसमें यथार्थवाद पर जोर दिया जाता है। जीवन के घृणित सच्चे चित्र दिखलाकर दर्शकों और आम जनता

को उन बुराइयों से दूर करने की चेष्टा की जाती है जबकि भारतीय उद्देश्य आदर्श चरित्र दिखलाकर उसी प्रकार का चरित्र बनाने का प्रयत्न करना माना जाता है। यहां यह भी ध्यान रखना चाहिये कि भारतीय सुखान्तिकाओं को 'कमेडी' कह कर जो गर्हणा की जाती है वह भी पक्षपातपूर्ण विचार ही है। भारतीय नाटक पाश्चात्य कमेडी जैसे हास परिहास प्रधान नहीं होते। उनमें जीवन्त गम्भीर तत्वों का पर्याप्त समावेश होता है। संघर्ष की उनमें कमी नहीं होती। किन्तु सङ्घर्ष मध्य में दिखलाया जाता है जिसका परिणाम अच्छे पक्ष की विजय के द्वारा आनन्द में होता है। महाभारत का जैसा संघर्ष विश्व साहित्य में शायद ही कहीं देखने को मिले। यह कहना सर्वथा दुस्साहस होगा कि रामायण में संघर्ष नहीं है। यह बात अवश्य है कि भारतीय नाटकों में एक मात्र संघर्ष ही उद्देश्य नहीं होता। कोई भी समस्या नाट्य प्रवर्तक हो सकती है। भारतीय नाटकों में यूनानी नाटकों के समान चरित्र चित्रण की प्रधानता नहीं होती और न चरित्रचित्रण उसका उद्देश्य होता है। यहां रस निष्पत्ति और रसास्वादन नाटक का उद्देश्य होता है। इसीलिये ज्ञात चरित्र वाले पात्रों से सम्बन्धित नाटक सर्वातिशायी माने जाते हैं; क्योंकि उनके चरित्र पहले से विद्यमान दर्शक भावना को आस्वाद्य बनाने का सरल साधन हैं। कौतूहल वृत्ति की प्रधानता वाले नाटक इतने उच्चकोटि के नहीं माने जाते। सारांश यह है कि जब उद्देश्य में भेद जब फल में भेद, जब प्रक्रिया में भेद तब एक दूसरे के अनुकरण से उद्‌भव के सिद्धान्त को मानना किसी प्रकार समचीन नहीं कहा जा सकता। वैसे कला के क्षेत्र में आदान प्रदान स्वाभाविक ही है। गेटे ने अपनी कृति फाष्ट लिखने में प्रस्तावना की योजना में अभिज्ञानशाकुन्तल की प्रस्तावना से प्रेरणा प्राप्त की। सेक्सपियर के नाटकों के साथ इस प्रकार की समानताओं पर पाश्चात्य विद्वानों का ध्यान गया है। इस प्रकार का आदान प्रदान अप्रत्याशित नहीं कहा जा सकता। इस विषय में मैक्डानल का कथन है– 'दूसरी बात यह है कि सबसे पुराने संस्कृत नाटकों की विद्यमानता में यूनानी काल से ४०० वर्ष का व्यवधान है। भारतीय नाटक का पूर्णरूप से स्वराष्ट्रीय विकास हुआ है और यद्यपि उसका प्रारम्भ अन्धकार के आवरण में ढका हुआ है फिर भी उसकी अपने देश में ही उत्पत्ति की व्याख्या सरलता से की जा सकती है।'

राजाश्रय

इस काल की कविता (नाटक) को दरवारी काव्य की संज्ञा दी गई है। कारण यह है कि इसका काव्य और नाट्य राजा लोगों के आश्रय में ही पनपा है। राजा लोग कवियों को आश्रय देनें में गौरव का अनुभव करते थे। कविता सुनने और नाटक देखने का उन्हें शौक था। भरत ने लिखा है नाटक में दी जाने वाली पताका का अन्तिम निर्णय राजा लोग ही करते थे। इसका आशय यह है कि राजा लोगों से इतना प्रवीण होने की आशा भी की जाती थी। अनेक राजा स्वयं कवि हुये हैं; अनेक राजाओं ने नाटक भी लिखे हैं। ऐसे भी उल्लेख पाये जाते हैं कि राजा लोग पुष्कलधन देकर कवियों की रचनाओं

को स्वयं खरीद लेते थे और उन्हें अपने नाम से प्रकाशित कर देते थे। ऐसे नाटकों की संख्या बहुत अधिक है जिनका उल्लेख नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थों में उदाहरण के रूप में पाया जाता है। कहीं नाटक का नाम है। कहीं उनसे उद्धरण दिये गये हैं; कहीं कथानक की उदाहरणों से संगति बैठाई गई है। कई नाटक ऐसे भी हैं कि नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थों के विवरण से उनका परिचय प्राप्त किया जाता है। ऐसे ग्रन्थ राजघरानों के पुस्तकालयों में सुरक्षित पड़े हैं जिनके अनुसन्धान की आवश्यकता है। कवियों के राजाश्रय का यथास्थान यथासम्भव परिचय दे दिया गया है। राजकीय पुस्तकालयों के अतिरिक्त कलकत्ता, मद्रास, बंगलौर, तंजौर, बम्बई, पूना, बनारस, दिल्ली इत्यादि अनेक बड़े शहरों में उच्चकोटि के पुस्तकालयों में पाण्डुलिपियों की सूची बनी हुई है; अनेक खोज रिपोर्टें विद्यमान हैं। निस्सन्देह इन सबका स्वतन्त्र अनुसन्धान भारतीय कला और संस्कृति पर महत्व पूर्ण प्रकाश डाल सकेगा लेखक की यह वलवती आशंसा है। खेद इस बात का है कि विदेशी शासन में इस दिशा में जो गति विधि चल रही थी वैसा उत्साह अब इस दिशा में मन्द पड़ गया है। यह भारत की अपार सम्पत्ति है जिसका अनुसन्धान नितान्त अपेक्षित है।

आधुनिककाल २०वीं शताव्दी

२०वीं शताब्दी का भारतीय इतिहास अपने स्वरूप में समस्त प्राक्तन इतिहास से पृथक् दृष्टिगत होता है। यों तो विदेशों से भारत का सम्पर्क ई.पू. ५वीं शताव्दी से किसी न किसी रूप में चलता रहा; शक, हूण, यवन, कुशाण आदि जातियां भारत में आती रहीं; हिन्दू सम्प्रदाय की उदार मनोवृत्ति के कारण वे यहां की निवासी ही नहीं बनती गई अपितु हिन्दू समाज में समाहित भी होती गईं। मुस्लमानों का आगमन उन जातियों के आगमन से इस अर्थ में भिन्न रहा कि मुसल्मान साम्राज्य स्थापना का मंशा लेकर एक विजेता के रूप में भारत में आये और असंगठित हिन्दू जाति पर विजय प्राप्त कर यहां शासन स्थापित कर लिया। मुसल्मनों का उद्देश्य धर्म प्रचार करना भी था और इसमें वे कभी कभी अत्याचार की नीति भी अपनाते थे। किन्तु सब बातों के होते हुये भी वे यहां के निवासी बन गये थे और भारतीय समाज से भाई चारा भी स्थापित कर लिया था। शताब्दियों तक दोनों सम्प्रदाय घुलमिल कर भाईचारे के साथ रहते रहे। यद्यपि यवन इत्यादि जातियों के समान उनका अपनी धार्मिक मान्यताओं के साथ हिन्दू समाज में पूर्ण विलय तो नहीं हुआ; किन्तु प्रशासकीय स्तर पर उनका किसी अन्य देश से सम्पर्क न होने के कारण वे शुद्ध भारतीय रूप में यहां के निवास बन गये। उनकी संस्कृति, उनके आचार विचार यद्यपि हिन्दू जाति से सर्वथा पृथक् बने रहे; भारतीय समाज की आत्मसात करने की वह प्रक्रिया नहीं अपनाई जा सकी जिसने भारतीय समाज को अक्षुण्ण बनाये रक्खा और विभिन्न विचार धाराओं को आत्मसात् करने से उसके कलेवर की अभिवृद्धि की। दोनों समाजों में विभेद को दूर नहीं किया जा सका। सात आठ सौ वर्ष की लम्बी अवधि में उदार मनोवृत्ति के मुस्लिम शासक भी हुये और क्रूर स्वभाव के अत्याचारी

शासक भी। प्रथम कोटि के शासक हिन्दुओं की श्रद्धा भी अर्जित कर सके और उनके शासनकाल में साहित्य और कला की अभिवृद्धि भी हुई। दूसरे प्रकार के शासकों ने विद्रोह को जन्म दिया। इस प्रकार उठते गिरते, मिलते लड़ते मुस्लिम और मुगल शासन सूर्य के अस्त होने का समय आ गया।

यूरोप के कई देशों ने भारत में व्यापार बढाने की योजना के आधीन व्यापारिक कम्पनियों को भारत भेज दिया। यहां आकर विदेशियों ने अनुभव किया कि हिन्दू मिस्लिम वैमनस्य का सहारा लेकर भारत में शासन सत्ता स्थापित करने के अच्छे अवसर हैं। उधर छोटे छोटे राजघराने भी परस्पर संघर्ष निरत थे। इन सब संघर्षों का सहारा लेकर यूरोपीय कम्पनियों ने परस्पर होड़ लगाकर साम्राज्य स्थापित करने का प्रयत्न प्रारम्भ कर दिया। अंग्रेज जाति अधिक निपुण और छल कपट में अधिक प्रवीण थी। अतः सफलता उनके हाथ लगी। वे प्रत्येक दिशा में भारत के भाग्य विधाता बन गये। साम्राज्य शक्ति हाथ में आ जाने से उनके मुख्य लक्ष्य व्यापार और अर्थोपार्जन में भी पर्याप्त सहायता मिली। धीरे धीरे भारत की सम्पत्ति से विदेशों के कोश भरने लगे और भारतीय जनता दीन हीन जीवन विताने पर विवश हो गई।

अब अंग्रेजों के सामने सब से बड़ी समस्या थी अपने छल कपट से प्राप्त राज्य को स्थायित्व प्रदान करना। इसके लिये अनेक उपाय किये गये– जमीन्दारी प्रथा कायम कर शासन स्तम्भ तैयार कर दिये गये; अंग्रेजी शिक्षा के द्वारा शिक्षित जनता से आत्मीयता स्थापित करने की चेष्टा की गई, कड़े कानून बनाकर भारत का रोजगार चौपट किया गया, आयात निर्यात के नियम अपने अनुकूल बनाकर आम जनता को भुखमरी के कगार पर पहुंचा दिया गया जिससे आम जनता में सर उठाने की शक्ति नहीं रही; अदालतों की व्यवस्था ऐसी बना दी गई कि जनता परस्पर लड़ती रहे और न्याय प्राप्त न कर सके।

जन समाज के लिये यह विचित्र स्थिति थी। अभी तक ऐसा कभी नहीं हुआ था कि शासन के लिये कानून सात समुद्र पार बनाये जायं और इस देश में लागू किये जायें; प्रशासकों की नियुक्ति विदेश में हो; अभी तक शासक और शासित घुलमिल कर रहते थे; शासक अपना कर्तव्य समझकर शासितों के कष्ट निवारण के लिये तत्पर रहते थे, उनके सुख, दुःख को स्वयं देखते थे उनके आमोद प्रमोद में शामिल रहते थे। अब अंग्रेज जाति स्वयं को शासक समझती थी और भारतीयों से मिलना आत्मसम्मान के प्रतिकूल समझती थी। वादशाह तो दूर साधारण अंग्रेज भी आतंक स्थापित करने में गौरव का अनुभव करता था।

हिन्दू जनता ने जैसे तैसे मुसल्मान शासकों से आत्मीयता स्थापित कर ली थी और 'कोउ नृप होय हमैं का हानी' के आदर्श पर चलने लगे थे। अब नई परिस्थिति ने उनकी भावनाओं को झकझोर कर रख दिया। अंग्रेजों ने नई शिक्षा नीति के अन्तर्गत अंग्रेजी को माध्यम दो दृष्टिकोणों से बनाया था सरकारी मशीनरी के सञ्चालन के लिये

पुर्जों के रूप में अल्प शिक्षितों को तैयार करना और उच्च शिक्षा प्राप्त करने वाले व्यक्तियों द्वारा आत्मीयता स्थापित करना। 'अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त करने के बाद भारतीय लोग कहने सुनने के लिये हिन्दुस्तानी होंगे, किन्तु हृदय से अंग्रेज होंगे।' भारतीयों ने अंग्रेजी शिक्षा को इसलिये अपनाया कि इस शिक्षा के माध्यम से अंग्रेजों के रहस्य को जानकर एक दिन पार्लियामेण्टरी सिष्टम अपने यहां भी स्थापित कर सकेंगे। वस्तुतः दोनों उद्देश्य सही सिद्ध हुये।

अंग्रेजी साम्राज्य सत्ता की स्थापना सर्वप्रथम में बंगाल हुई थी और बंगाल में ही नवचेतना का उदय हुआ। राजा राममोहन राय इस नवचेतना के सूत्रधार बने। उच्चकोटि के ज्ञान के अधिकारी होते हुये भी हिन्दू समाज पतन के गर्त में गिरा, पहले मुसल्मानों के और बाद में अंग्रेजों के आधिपत्य में आना क्या यही हिन्दूजाति की नियति है। समझ लिया गया कि यदि इस पतन की अवस्था से त्राण पाना है तो पहले समाज में आई हुई बुराइयों को दूर करना पड़ेगा; समाज को उनके अतीत गौरव की याद दिलानी होगी और उन्हें शक्तिशाली बनाकर दस्युओं के हाथ से देश को मुक्त कराना होगा। बंगाल में यह उत्तरदायित्व ब्रह्मसमाज ने लिया और हिन्दी भाषी प्रदेश पंजाब और गुजरात में स्वामी दयानन्द ने समाज सुधार का भार अपने कन्धों पर लेकर आर्य समाजं की स्थापना की। जाति को वैदिक ज्ञान का उपदेश दिया, उन्हें उनका गौरव समझाया। आर्य सन्तान को झकझोर कर उठाया, समाज में आई हुई बुराइयों को दूर करने की चेष्टा की और इतर धर्मों की अपेक्षा अपने वैदिक धर्म को अधिक वरिष्ठ सिद्ध किया। जो काम हिन्दी भाषी क्षेत्र में स्वामी दयानन्द ने किया वही बंगाल में स्वामी रामतीर्थ स्वामी विवेकानन्द और अरविन्द घोष ने किया। उन्होंने ब्रह्मवाद ने नाम पर सारी जाति को संगठित करने की चेष्टा की। हिन्दू जनता की अनुक्रिया बड़ी जवरदस्त थी। सारी जाति अकर्मण्यता की आत्मा पर जमी हुई परतों को झटक कर एक दम कर्म क्षेत्र में कूद पड़ी। समाज सुधार के अनुपद ही राजनैतिक आकाङ्क्षायें सामने आने लगीं। सर्वप्रथम सन् १८५७ का सशस्त्र विद्रोह हुआ जो असफल हो गया। फिर अनेक पक्षों की ओर से स्वराज्य का आन्दोलन चल निकला। कभी हिंसात्मक, कभी अहिंसात्मक, कभी वैधानिक कभी अवैधानिक, कभी प्रत्यक्ष, कभी भूमिगत कभी प्रकट और अप्रकट मिला जुला कभी राष्ट्रीय कभी अन्तर्राष्ट्रीय, अनेक विध आन्दोलन चलता रहा। अंग्रेजों का दमन चक्र, कूटनीति और फूट नीति भी प्रचलित रही। अनेक संस्थायें धर्म के नाम पर अंग्रेजों का साथ भी देती रही। महात्मा गान्धी के नेतृत्व में अहिंसात्मक आन्दोलन भारत मे चल रहा था; सुभाषचन्द्र बोस ने विदेशों में जाकर स्वतन्त्रता के लिये संघर्ष किया। अन्त में सभी के पुण्य प्रताप से भारत को अभीष्ट स्वतन्त्रता प्राप्त हुई। स्वतन्त्र भारत को भी अनेक उलझी समस्याओं का सामना करना पड़ा, देश का विकास हुआ, जन-जीवन में स्वाभिमान की एक झलक दिखलाई दी। रहन सहन के स्तर में सुखद परिवर्तन के दर्शन हुये और निराशा तथा त्रास के

बादल छंट गये।

भारत की प्रायः प्रत्येक भाषा के साहित्य ने स्वतन्त्रता के आन्दोलन में अपना उचित सहयोग प्रदान किया। प्रत्येक प्रदेश में अनेक प्रकार की काव्यात्मक रचनायें हुई और गीत लिखे गये जिनसे वातावरण के निर्माण में पर्याप्त सहायता मिली। संस्कृत भाषा भी इस दिशा में पीछे नहीं रही और इस दिशा में अनेक नाटकों की भी रचना हुई। अंग्रेजी राज्य जहां गरीबी और विपन्नता का अभिशाप लेकर उपस्थित हुआ था वहां उसके कतिपय वरदान भी थे। छापा खाने के प्रचलन से प्रचार कार्य में सुविधा हो गई; अनेक पत्र पत्रिकायें प्रकाशित होनें लगीं। लेखकों को परिशीलक जनता तक अपनी रचनायें पहुंचाने में परेशानी दूर हो गई और रचना के स्थायी संरक्षण की समस्या भी हल हो गई। दो संस्कृतियों और साहित्यों का सम्मिलन एक दूसरे को प्रभावित करता ही है। भारतीय साहित्य भी अंग्रेजी शैली से प्रभावित होने से बचा नहीं रहा और नाट्य रचना पद्धति भी प्रभावित हुई। संस्कृत नाटककार पुराने कैंड़े की रचनायें तो करते ही थे प्रवर्तमान परिस्थिति से भी वेखहर नहीं थे और अंग्रेजी साहित्य के सम्पर्क ने प्रभाव डाला था उसको अपनाने के लिये भी तत्पर थे। समस्त रचनाओं पर ध्यान देने से वर्तमान राष्ट्रीय समस्याओं पर रचना करना ही इस साहित्य की सामान्य विशेषता थी। निम्न पंक्तियों में वर्गीकृत रूप में तत्कालीन कतिपय रचनाओं पर संक्षिप्त प्रकाश डाला जा रहा है–

(१) **प्रविधि पर प्रभाव–** अंग्रेजी साहित्य में नाटक खण्डों का विभाजन अंकों में नहीं दृश्यों में करने की परम्परा थी। छोटे नाटकों का दृश्यों में विभाजन युक्ति युक्त है। अतः प्राचीन परम्परा के साथ कई अर्वाचीन नाटककारों ने अपनी कृतियों का विभाजन दृश्यों में भी किया। इसके दोनों प्रकारों का उपयोग किया गया– नाटक का मूल रूप में दृश्यों में विभाजन या अंकों में विभाजन कर अंकों का दृश्यों में विभाजन। अंकों के नये नामकरण की भी परम्परा चल दी अंकों के स्थान पर लोक, उत्साह, कुसुम कल्लोल इत्यादि नामों का भी प्रयोग किया जाने लगा। विश्वेश्वर विद्यभूषण ने चाणक्यविजयम् नाटक में अंकों के स्थान पर दृश्यों का प्रयोग किया है। अर्थोपक्षेपक का प्रयोग नहीं किया गया है। इसी प्रकार पद्मनाभाचार्य ने ध्रुवतापसम् में, घनश्याम ने नवग्रहचरित नामक सट्टक में प्रस्तावना के स्थान पर सूच्यार्थ, विष्कम्भ के स्थान पर काल और अंक के स्थान पर प्रपञ्च शब्द का प्रयोग किया है। रमा चौधरी ने पल्ली कमल में दृश्य शब्द का प्रयोग किया है; हरिदास सिद्धान्त वागीश ने मिबारप्रताप में और प्रभुदत्त शास्त्री ने संस्कृत वाग्विभवम् में अंकों का दृश्यों में विभाजन किया है।

(२) **अंग्रेजों की राज्यस्थापना में कूटनीति–** मथुरा प्रसाद दीक्षित के नाटक 'भारतविजयम्' में अंग्रेजों की साम्राज्य स्थापित करने में कूटनीति का स्पष्ट चित्रण किया गया है। अंग्रेज भारत में आते हैं; राजनीति में दखल देने लगते हैं। नवाब सुराजुद्दौला

के खिलाफ उनके सेनापति मीरजाफर से सन्धिपत्र लिखवाते हैं। मीर कासिम उसका विरोध करते हैं। युद्ध होता है; मीर कासिम पराजित होता है। नन्दकुमार को अन्याय के साथ फांसी दी जाती है। कांग्रेस का आन्दोलन चलता है। आन्दोलन की विजय होती है और भारत स्वतन्त्र होता है। इस नाटक की रचना सन् १९३६ में हुई थी। तत्कालीन अंग्रेज सरकार ने उसे जप्त कर लिया था जिसको स्वतन्त्रता के बाद उन्मुक्त किया गया।

कम्पनी के हाथ से अंग्रेज सरकार के हाथों में राज्य चले जाने के बाद स्वतन्त्र राज्य भी अंग्रेज सरकार की दस्तंदाजी के सामने पंगु बन गये थे। रेजीडेण्ट ही राज्यों का कर्ताधर्ता था। इस आशय का एक नाटक गोपीनाथ का लिखा माधवस्वातन्त्र्यम् है। जिसमें जयपुर में मन्त्री का चुनाव होना है। काफी उखाड़ पछाड़ चल रही है तब विक्टोरिया के हस्तक्षेप से माधव को नियुक्त किया जाता है और उसे सारे प्रशासनिक अधिकार दे दिये जाते हैं।

(३) नव जागृति (रिनेशां) - भारत पूर्ण रूप से विदेशी चंगुल में फंसा हुआ था। सबसे पहले बंगाल में ही साम्राज्य का सूत्रपात हुआ था और बंगालियों ने सबसे पहले अंग्रेजी शिक्षा अपनायी थी। अतः बंगाल में ही सबसे पहले नवचेतना का उदय हुआ और उसके सूत्रधार राजाराममोहन राय बने। इस विषय में रमा चौधरी ने एक 'भारतपथिक' नाटक की रचना की जिसमें राजा साहब द्वारा ब्रह्मा समाज की स्थापना, सती प्रथा का उन्मूलन, अंग्रेजी शिक्षा का प्रसार इत्यादि सामाजिक सुधारों का प्रयत्न किया गया। ब्रह्म- समाज की स्थापना के द्वारा हिन्दू जाति के उच्च आदर्श और महान शक्ति का परिचय कराया गया।

इसी परम्परा में बंगाल में कई महत्व पूर्ण व्यक्तित्वों का आविर्भाव हुआ जिनमें सर्वप्रमुख नाम रामकृष्ण परमहंस और उनके शिष्य विवेकानन्द का लिया जा सकता है। इनका व्यापक प्रभाव समस्त भारत पर पड़ा। इनके जीवन और कार्य कलाप पर आधारित कई नाटक लिखे गये जिनमें डा. रमा चौधरी लिखित 'युगजीवनम्' शीर्षक नाटक उल्लेख्य है जिसमें रामकृष्ण परमहंस के जीवन एवं कार्यकलापों को नाट्य विषय बनाया गया है। डा. रमा चौधरी ने ही रामकृष्ण परमहंस के शिष्य अभेदानन्द के विषय में एक दूसरा नाटक लिखा। यतीन्द्र विमल चौधरी का भारत विवेक शीर्षक एक अन्य नाटक प्रकाश में आया है जिसमें स्वामी विवेकानन्द के जीवन और उनके देश विदेश के कार्यकलाप का चित्रण किया गया है। यतीन्द्र विमल चौधरी ने ही रामकृष्ण परमहंस की पत्नी सारदामणि के विषय में दो नाटक लिखे एक रामकृष्ण परमहंस के जीनव काल में ही 'शक्तिसारदम्' शीर्षक नाटक और दूसरा रामकृष्ण की मृत्यु के बाद लिखा 'मुक्ति सारदम्' शीर्षक नाटक।

भारतीय नवोत्थान का प्रभाव बंगाल तक ही सीमित नहीं रहा। पश्चिम में भी समाज सुधार का काम स्वामी दयानन्द ने अपने हाथ में लिया। उनका सन्देश था भारत का सर्वोत्तम ज्ञान विज्ञान वेदों से ही उद्भूत हुआ है और वेद ही भारत के सभी आचार

विचार एवं क्रिया कलाप के उन्नायक ईश्वर प्रदत्त महाग्रन्थ हैं। उनको भूलकर ही भारतीय जाति पराभव के गर्त मे गिरी है। भारतीय जनता का उद्धार वेदों की ओर पुनः जाने से ही सम्भव होगा। सत्यव्रत ने स्वामी जी के चरित्र और उनके उपदेशों पर 'महर्षिचरितामृत' नामक एक नाटक की रचना की जिसमें ५ अंक हैं– शिवरात्रिव्रत, प्रबोध, गुरुदक्षिणा, पाखण्डखण्डन और मृत्युञ्जय।

समाजसुधार के जिन तत्वों को लेकर ये उन्नायक चले थे उनमें प्रमुख थे बालविवाह, वृद्धविवाह, दहेजप्रथा, छुआछूत, वर्णव्यवस्था के कठोर नियम इत्यादि। इन विषयों को लेकर भी संस्कृत साहित्य में कतिपय नाटकों की रचना की गई। उनमें कतिपय निम्न लिखित है–

(अ) **विवाहविडम्बनम्**– जीवन्यायतीर्थ लिखित वृद्ध विवाह से सम्बन्धित नाटक। इसमें ६० वर्ष के एक ऐसे वृद्ध का चित्रण किया गया है जो कन्या के पिता की गरीवी का लाभ उठाकर उससे विवाह करने के लिये आतुर है। कुछ नवयुवक उसे छकाने की योजना बनाते हैं– वे वृद्ध से २००० कन्या के पिता को देने के लिये १००० विवाह व्यय के लिये १५०० जेवरों के लिये और कुछ राशि तरुणों का मुख बन्द करने के लिये वृद्ध से ले लेते हैं और उसी पैसे से उस गरीब कन्या का विवाह कर देते हैं।

(आ) **मिथ्याग्रहणम्**– इसमें बहुपत्नी प्रथा का मजाक उड़ाया गया है। यह लीलाराव दयाल की रचना है। बहुपत्नी प्रथा मुसल्मानों में विशेष रूप से प्रचलित है। अतः मुसल्मानों के प्रसंग में ही इसे दिखलाया गया है। इसमें पति के बहुपत्नीत्व से मुहम्मद की पत्नी अमीना की दयनीय दशा का चित्रण किया गयाहै।

(इ) **बालविधवा**– लीलाराव दयाल की कृति जिसमें बाल विधवा के पतन का चित्रण किया गया है। वह एक नवयुवक के प्रेमजाल में फंस जाती है। लेखक का सन्देश है कि ऐसी कम आयु की विधवाओं को सारा जीवन नारकीय दशा में रहने के लिये छोड़ देने की अपेक्षा यह अधिक अच्छा है कि उनका विवाह कर दिया जाय; अन्यथा उनके पतन की सर्वदा सम्भावना बनी रहती है।

(ई) नाटककारों ने विधवाओं के सामने भी एक योजना रक्खी है। केवल विवाह ही नहीं जीवन की सफलता के लिये दूसरे क्षेत्र भी हैं। डा. रमा चौधरी के लिखे नाटक **रसमय रासमणि** में एक विधवा रासमणि की ऐसी ही कहानी है जो अपने वैधव्य जीवन को अंग्रेजों द्वारा सताई गई महिलाओं के संरक्षण में अपने जीवन को सफल बनाती है।

(उ) **चामुण्डा**– नामक नाटक में एक ऐसी ही विधवा का कथानक है जो अपने वैधव्य जीवन को शिक्षा में लगा देती है। विलायत जाकर डाक्टरी शिक्षा प्राप्त करती है। जब लौटकर स्वदेश आती है तब समाज उसे स्वीकार नहीं करता और मजाक उड़ाता है। किन्तु जब वह प्रधान की बहू को रोगमुक्त कर देती है तब समाज में सम्मानित पद

प्राप्त कर लेती है।

(ऊ) लीलाराव दयाल की रचना **गणेश चतुर्थी** में अन्धविश्वासों की हंसी उड़ाई गई है।

(ए) दहेज के अभिशाप पर कपिल देव द्विवेदी ने **'परिवर्तनम्'** शीर्षक नाटक लिखा है। कन्या का पिता पुत्री की शादी के लिये मकान इत्यादि बेच देता है और स्वयं आजीविका के लिये बम्बई चला जाता है। घर में निर्वाह एक कुआं और सीढी के बल पर होता है। मालिक के बम्बई से लौटने के पहले ही एक सेठ कुआं और सीढी पर भी अधिकार कर लेता है। अदालत में मुकदमा जाता है- न्यायाधीश सेठ का पक्ष लेकर फैसला उसके हक में दे देता है। तब आकाशवाणी के निर्देश पर मामला पंचायत में जाता है जहां उसे न्याय मिलता है।

(ऐ) युवक युवतियों का अन्धे होकर पाश्चात्य सभ्यता की ओर भागना भी इस समय की एक समस्या थी। इस विषय को लेकर रमानाथ मिश्र का **'समाधानम्'** नामक नाटक प्राप्त होता है। इसमें छात्र छात्राओं द्वारा पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित होकर गान्धर्व विवाह कर लेने से जो समस्यायें उत्पन्न होती हैं उनपर प्रकाश डाला गया है।

(ओ) **बसुमती परिणय-** जगन्नाथ लिखित नाटक। इस रचना का उद्देश्य है राजाओं को सत्यथ पर लाना और राजनीति एवं आर्थिक योजनाओं के हित में यवनों से राष्ट्र को बचाने के लिये हिन्दूजाति में एकता स्थापित करना।

(औ) इस काल की एक बहुत बड़ी समस्या थी जमीन्दारों और पूंजीपतियों द्वारा गरीब जनता का उत्पीडन और जनता के त्राण के लिये किसी उदार देशभक्त का तैयार हो जाना। सरकारी तन्त्र का पूंजीपतियों के प्रति पक्षपात। इस समस्त स्थिति का चित्रण करने के लिये ताराचन्द्रवन्द्योपध्याय ने एक बंगाली उपन्यास लिखा था **गणदेवता**। उस समय इस उपन्यास की पर्याप्त प्रतिष्ठा थी; इस पर पुरस्कार मिला था। अनेक प्रान्तीय भाषायों में इसके अनुवाद हो गये थे। डा. रमा चौधरी ने उक्त उपन्यास के कथानक को लेकर संस्कृत में इसी नाम के नाटक की रचना की।

प्राचीनों के आदर्श

सामयिक जनमानस को परिस्थिति के सुधार के पथ पर लाने के लिये आवश्यक साहित्य के साथ मुसल्मान और विशेषकर मुगलकाल के कर्मण्य वीरों के आदर्श प्रस्तुत कर समाज में चेतना भरने की चेष्टा की। यद्यपि मुसल्मान भारतीय नागरिक बन गये थे और उनका शासन अंग्रेजों का जैसा विदेशी नहीं रहा था फिर भी वे लोग अपनी संस्कृति, अपना आचरण अपने धार्मिक तीर्थ स्थलों आदि का भारतीय करण नहीं कर सके थे। अतः हिन्दुओं की दृष्टि में वे अब तक विदेशी ही बने रहे थे। जिन हिन्दुओं ने उनकी सत्ता को चुनौती दी वे हिन्दू जनता के आदर्श नेता कहलाये और उनका नाम जनता में

प्रोत्साहन देने वाला माना गया। ऐसे नेताओं में सर्वाधिक महत्वपूर्ण दो नाम हैं– महाराणा प्रताप और छत्रपति शिवाजी।

महाराणा प्रताप ने अकवर वादशाह की सत्ता को स्वीकार नहीं किया। उन्हें एक विदेशी को राजपूतों द्वारा अपनी लड़कियां दिया जाना जाति के स्वाभिमान के प्रतिकूल प्रतीत हुआ। मानसिंह आदि ऐसे राजपूतों से भी उन्हें घृणा हो गई जो मुगलों कों लड़कियां दे देते थे और रात दिन मुगल बादशाहों के चरण चुम्बन करते थे। आजीवन कष्ट सहकर, वन-वन भटककर और बच्चों की दयनीय दशा देखकर भी उनकी आत्मा विचलित नहीं हुई और वे आजीवन स्वाभिमान की रक्षा करते रहे। अन्त में स्वयं अकवर को झुककर उनके स्वाभिमान को स्वीकार करना पड़ा। महाराणा प्रताप के विषय में हरिदास सिद्धान्त वागीश ने **मिवारप्रताप** नामक नाटक की रचना कर भारतीयों को देश प्रेम की ओर झुकाने का प्रयत्न किया।

छत्रपति शिवाजी की स्थिति भिन्न थी। अकवर वादशाह तो कूटनीति से हिन्दुओं को दबाने और उनके स्वाभिमान की भावना को नष्ट करने का प्रयत्न करते थे, महाराणा प्रताप भी उनकी सत्ता को अस्वीकार कर स्वाभिमान की रक्षा करते थे। कभी कोई भयानक युद्ध नहीं हुआ जिसमें अकवर को हानि उठानी पड़ी हो; किन्तु शिवाजी का विरोधी औरंगजेब तो बलात् हिन्दुओं का धर्म परिवर्तन करता था और हिन्दुओं के देव मन्दिरों को ध्वस्त करता था। उसी के समान उत्तर देने के लिये शिवाजी मैदान में आ गये। उन्होंने धर्म राज्य स्थापना की प्रतिज्ञा की, युद्धों में विजय प्राप्त की; वीजापुर से सन्धि की; गिरफ्तार हो जाने के बाद दान की टोकरी में छिपकर बाहर आये; गुर्जर पर अधिकार, राजपद पर अभिषेक, धर्मराज्य की स्थापना उनके महत्वपूर्ण कार्य थे। शिवाजी के विषय में कई महत्वपूर्ण नाटक लिखे गये जिनमें कतिपय नाटकों का उदाहरण के रूप में उल्लेख किया जा सकता है–

(अ) **छत्रपति साम्राज्यम्**– यह मूलशंकर माणिकलाल का लिखा नाटक है जिसमें शिवाजी की शासन व्यवस्था उनके जीवन और क्रियाकलाप पर प्रकाश डाला गया है।

(आ) **शिवाभ्युदयम्**– श्यामवर्ण द्विवेदी लिखित शिवाजी के कार्यकलाप पर नाटक।

(इ) **श्री शिववैभवम्**– विनायक राव वोकील लिखित नाटक जिसमें शिवाजी की प्रशस्ति की व्यञ्जना की गई है।

(ई) **छत्रपति शिवराज**– लेखक रामभिकाजी वेलण्कर बीजापुर की विजय से लेकर राज्यारोहण तक की घटनाओं का चित्रण।

(उ) **शिवाजिचरित्रम्**– हरिदास सिद्धान्त वागीश लिखित नाटक। इसमें शिवाजी के चरित्र द्वारा नवयुवकों को देशभक्ति की शिक्षा दी गई है।

(ऊ) **शिवाजिविजयम्**– रंगाचार्य द्वारा लिखित नाटक। इसमें शिवाजी के बन्दी होने

से लेकर साधुवेष में राजधानी पहुंचने तक का चित्रण किया गया है।

राष्ट्रीय आन्दोलन की प्रगति

आल इण्डिया कांग्रेस कमेटी का २० वर्ष का प्रथम उत्थान काल १९०५ में समाप्त हो गया। इन बीस वर्षों में कांग्रेस प्रस्ताव पास करने और अंग्रेज सरकार से कुछ प्राप्त करने का असफल प्रयास करती रही। इसी बीच जापान की रुस पर विजय से भारतीय राष्ट्रीयता वादियों को एक झटका लगा। कुछ उग्रवादी तत्व अधिक आक्रमक रुख अपनाने लगे। अंग्रेजों ने भारतीय नेताओं की शक्ति को कम करने के लिये बंगाल को दो भागों में बांट दिया। १९०६ में ढाका में नवाब सलीमुल्ला के तत्वावधान में मुस्लिम लीग की स्थापना की गई जो प्रारम्भ से ही राष्ट्रीय आन्दोलन में अंग्रेजों का पक्ष लेकर चली थी और राष्ट्रीय आन्दोलन में विरोधी दल का कर्तव्य निभा रही थी। १९०९ में मिन्टोमार्लो रिपोर्ट में मुसल्मानों को पृथक् मताधिकार देकर विरोधी भावना अधिक बढ़ा दी गई।

बंगभंग के प्रतिकूल बंगाली नवयुवकों सुरेन्द्रकुमार बनर्जी, विपिनचन्द्रपाल, ए.रसूल, अश्विनी कुमार दत्त और अरविन्दघोष के नेतृत्व में आन्दोलन चल निकला जिसकी परिणति १९११ में हुई। १९०७ में कांग्रेस गरम दल और नरम दल में विभाजित हो गई। इसके बाद का स्वराज्य का आन्दोलन शासक जाति के विरोध रूप में चल दिया। इस आन्दोलन में देश के महान सपूत क्षेत्र में अवतीर्ण हुये और उनके पुण्य प्रयास से भारत विदेशियों के चंगुल से छूटने का सौभाग्य प्राप्त कर सका। संस्कृत नाटकों में विभिन्न नेताओं के विषय में कई कृतियां प्राप्त होती हैं जिनमें कुछ का परिचय नीचे दिया जा रहा है–

(अ) अरविन्द घोष– भारत के उन महनीय सपूतों में एक थे जिनको अनेक रूपों में जन समाज का अभिनन्दन प्राप्त हुआ था। वे अनन्य साधारण समाज सुधारक थे, प्रज्वलित राष्ट्रवादी नेता थे, अनुपम योगिराज थे जिन्हें साधना में ईश्वर दर्शन हुआ था, उच्चकोटि के कवि थे और योग साधना की नई पद्धति के जन्मदाता थे। सर्वप्रथम हमें उनके दर्शन बंगभंग आन्दोलन में सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, विपनचन्द्र पाल, अश्विनी कुमार दत्त के साथ नेता लोगों में होता है। फिर वे अराजकतावादी विद्रोहियों में शामिल हो जाते हैं। प्रथम विश्वयुद्ध १९१४ में भारतीय स्वतन्त्रता का एक अच्छा अवसर समझ कर इन्होंने जापान से शस्त्र सहायता का प्रयत्न किया। अलीपुर जेल में योग साधना प्रारम्भ की जिसका उद्देश्य भारतीय स्वाधीनता के लिये आध्यात्मिक शक्ति अर्जित करना था। बहन निवेदिता ने एक बार उन्हें पुलिस से बचाने के प्रयत्न में अपने यहां बन्दी बना रक्खा था।

उनके चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता थी सफलता प्राप्ति के बाद स्वयं को उधर से मुख मोड़ लेना और किसी भी सफलता का श्रेय स्वयं न लेना। जेल से छूटने के बाद वे उस समय के बंगाल के फ्रेंच उपनिवेश चन्द्र नगर चले गये। उनकी अन्तरात्मा

की पुकार थी और उन्होंने अनुभव कर लिया था कि वे कहीं अधिक उपयोगी विकास मूलक प्रक्रिया सिद्धान्त को प्रोत्साहित करने में समर्थ हैं। इसके लिये उन्होंने 'बन्देमातरम्' पत्रिका का सम्पादन निवेदिता बहन के सुपुर्द कर उससे विराग ले लिया। 'बन्देमातरम्' का गीत उन्हें सर्वाधिक प्रिय था; जिसने उन्हीं को नहीं समस्त राजनैतिक नेतृत्व को और जनसाधारण को प्रभावित किया था। स्थायी साधना के लिये बंगाल को छोड़ कर वे पाण्डिचेरी चले गये और अरविन्दाश्रम की स्थापना के साथ अनेक सैद्धान्तिक ग्रन्थों की रचना की, योग पद्धति को, दर्शन को और कविता को नई दिशा प्रदान कर अक्षयकीर्ति उपार्जित की। 'बन्देमातरम्' गीत को जो बंकिमचन्द्र के समय से चला आ रहा था कहा जाता है उन्होंने ही 'भारतमाता' का उद्घोष प्रदान किया।

यतीन्द्र विमल चौधरी ने उनके क्रियाकलाप और जीवन के विषय में '**भारत हृदयारविन्दम्**' नाटक की रचना की। भगिनी निवेदिता के चरित्र को लेकर डा. रमा चौधरी ने '**निवेदितनिवेदितम्**' नाटक की रचना की।

(आ) **झांसीरानी लक्ष्मीबाई** ने १८५७ के सशस्त्र विद्रोह में अंग्रेजी साम्राज्य का मुकाबला कर अक्षयकीर्ति उपार्जित की थी उनकी यशोगाथा का चित्रण कुमार विमलचौधरी के नाटक **भारतलक्ष्मी** में किया गया है।

(इ) **लोकमान्य बालगंगाधार तिलक** भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के मूर्धन्य नेताओं में एक थे। उनके विषय में दो नाटक प्राप्त होते हैं– (i) श्रीराम वेलण्कर लिखित **श्रीलोकमान्य स्मृति**– इसमें तिलक के अन्तिम जीवन का चित्रण किया गया है। (ii) **तिलक-यनम्**– यह भी श्रीराम वेलण्कर की ही रचना है जिसमें तिलक के मुकदमें का कोर्टसीन दिखलाया गाय है।

(ई) **महात्मागांधी** अनन्य नेता थे जिनका नाम लेकर और जयजयकार कर स्वतन्त्रता सेनानी आगे बढते थे; जिन्होंने भारत में ही नहीं दक्षिण अफ्रीका में भी स्वतन्त्रता की ज्योति जलाई थी। इनके विषय में प्रत्येक भाषा और साहित्य में बहुत कुछ लिखा गया है। संस्कृत में भी कई नाटक लिखे गये जिनमें कतिपय ये हैं– (i) मथुरा प्रसाद दीक्षित लिखित **गान्धी विजयम्** इसमें अफ्रीका और भारत में उनकी गतिविधियों का चित्रण किया गया है। (ii) **भारततातम्**– डा. रमा चौधरी लिखित गान्धी प्रशस्ति परक नाटक। गान्धी जी को राष्ट्रपिता की उपाधि दी गई है। इसी को लेकर इस नाटक का नामकरण किया गया है। (iii) **मुकुन्दलीलामृतम्**– गन्धी जी की तुलना उनके कार्य काल में प्रायः भगवान् कृष्ण से की जाती थी। कृष्ण को मोहन कहा जाता है और गान्धी जी का नाम मोहन दास था। इसी तुलना को लेकर विश्वेश्वर दयाल ने इस नाटक की रचना की थी। इसमें कृष्ण गान्धी रूप और कंस ब्रिटिशसरकार रूप माने गये हैं।

(उ) प्रथम कोटि के नेताओं में **सुभाषचन्द्र बोस** का नाम अत्यन्त गौरव के साथ लिया जाता है। पहले ये कांग्रेस के प्रथम कोटि के नेता रहे थे। जब द्वितीय विश्व युद्ध

छिड़ा तब देशभक्ति के लिये प्राणपण से समर्पित इस अनन्य सेनानी को प्रतीत हुआ कि गान्धी जी की अहिंसक नीति भारत को स्वतन्त्रता नहीं दिला सकेगी और यदि इस युद्ध का अवसर जाता रहा तो अनन्त काल तक ऐसा सुयोग कठिनाई से प्राप्त हो सकेगा। अतः अंग्रेज सरकार की आंखों में धूल झोंककर पहले पश्चिम में हिटलर से और बाद में जापान से मिलकर युद्ध के द्वारा देश को स्वतन्त्र कराने का प्रयत्न किया जबकि उद्योग सफल होने जा रहा था इस वीरवर का करुण अन्त हो गया। यतीन्द्र विमलचौधरी ने सुभाष चन्द्र की इसी वीरता का चित्रण **सुभाषसुभाषम्** नामक नाटक में किया है।

(ऊ) **राजेन्द्र प्रसाद** स्वतन्त्रता संग्राम के उच्चकोटि के नेताओं में एक थे। उनकी अध्यक्षता में भारत का संविधान बना और वे ही भारत के प्रथम राष्ट्रपति बने। उनके जीवन चरित्र को लेकर यतीन्द्र विमलचौधरी ने **भारत राजेन्द्र** नामक नाटक की रचना की। इसमें नमक सत्याग्रह, हिन्दू मुस्लिम एकता इत्यादि क्षेत्रों में उनके योगदान और राष्ट्रपति पद पर उनके निर्वाचन का चित्रण किया गया है।

(ए) **देशबन्धुः देशप्रियः**– नामक नाटक यतीन्द्र विमल चौधरी की रचना है। इसमें देशबन्धु चित्तरंजन दास की गौरवगाथा का चित्रण किया गया है।

(ऐ) **कैलासनाथ काटजू** की जब बंगाल के राज्यपाल के पद पर नियुक्ति हुई थी तब उनके स्वागत समारोह में **कैलासनाथ विजय** नामक नाटक की रचना एवं अभिनय किया गया था। इसकी रचना जीवन्यायतीर्थ ने की थी।

स्वतन्त्रता के आन्दोलन में महिलायें भी पीछे नहीं रहीं। इस विषय में दो नाटकों का उल्लेख किया जा सकता है– (क) **वीरभा**– यह लीलाराव दयाल की रचना है जिसमें एक युवती की देशभक्ति का चित्रण है जिसने यौवनजन्य सुख भोग को छोड़ दिया और सत्याग्रह संग्राम में कूद पड़ी तथा आन्दोलन की नेत्री बन गई। (ख) इन्हीं की दूसरी कृति **कटुविपाक** जिसमें एक ऐसे प्रशासकीय अधिकारी के मनस्ताप का चित्रण किया गया है जिसकी पुत्री सत्याग्रह में शहीद हो गई। ये दोनों नाटक काल्पनिक घटनायें हैं जो तत्कालीन स्त्री समाज के सत्याग्रह में योगदान का चित्रण करती हैं।

स्वातन्त्र्योत्तर समस्याओं पर नाटक

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद स्वभावतः नये प्रकार की समस्याओं ने जन्म लिया। इन समस्याओं पर भी साहित्य रचना हुई है। संस्कृत में विभिन्न विधाओं में लिखे गये साहित्य के साथ कतिपय नाटक भी इस दिशा में प्रकाश में आये हैं जिनमें कतिपय निम्नलिखित हैं–

(अ) पहली समस्या तो विभाजन की ही थी। चिरन्तन काल से भारत का जो स्वरूप चला आ रहा था उसका विभाजन कर देना निस्सन्देह एक अभूतपूर्व घटना थी जिसे सहसा सह लेना सामान्य व्यक्ति के लिये सम्भव नहीं था। एक आघात लगा यह

कड़ुआ घूंट इसलिये पी जाना पड़ा कि इसके बिना भारत के स्वाधीन होने की कोई आशा दिखलाई नहीं देती थी। फिर भी एक आशा बनी हुई थी कि देर सवेर भारत का एकीकरण पुनः होगा। इसी आशय को लेकर भरत पिशरौटी ने **एकभारतम्** की रचना की।

(आ) भारत की जीर्ण शीर्ण टूटी भूटी दशा के सुधार में भारत के सपूत पूर्ण संल्लग्नता के साथ प्रवृत्त हो गये और भारत सर्वङ्गीण विकास करने लगा। सर्वाधिक ध्यान बिजली और पानी पर दिया गया। जो नदियां प्रवाहित होती हुई अपना जल व्यर्थ ही समुद्र के सुपुर्द कर देती हैं उन्हें बांध लिया गया और उनसे बिजली के साथ पानी की आवश्यकता की भी पूर्ति की गई। इस आशय को लेकर यतीन्द्र विमल चौधरी ने **'महिमामयभारतम्'** शीर्षक नाटक की रचना की जिसमें वैदिक, पौराणिक, इस्लामी भारत की वर्तमान भारत से तुलना करते हुये नवनिर्माण पर प्रकाश डाला। दामोदर बांध, माइथन बांध, भाखरा नंगल, चंबल, नागार्जुनसागर, मुचुकुन्दयोजना, मत्स्यपालन आदि अनेक योजनाओं पर प्रकाश डाला गया है।

(इ) स्वतन्त्र भारत में काश्मीर समस्या सर्वाधिक उलझन लिये हुये सामने आई। अंग्रेजों ने कूट नीति से भारत के दो नहीं सैंकड़ों टुकड़े कर दिये थे। सभी रियासतों को स्वतन्त्र कर दिया था और उन्हें भारत या पाकिस्तान किसी भी देश में मिलने या स्वतन्त्र रंहने का अधिकार दे दिया था। भारत ने निपुणता के साथ बिना खून खराबे के सैकड़ों रियासतें मिला लीं। दोही चार शेष रह गई थी जिनमें कश्मीर भी एक थी। यह मुस्लिम रियासत थी किन्तु इसका राजा हरिसिंह हिन्दू था। वह राज्य को स्वतन्त्र रखकर एक सम्राट बने रहने का स्वप्न देख रहा था। अतः उसने पाकिस्तान और हिन्दुस्तान दोनों से अपनी स्वतन्त्रता स्वीकार कराने की प्रार्थना की। किन्तु पाकिस्तान ने वलात् हथियाने का प्रयत्न किया। उस समय परिस्थिति ने कुछ ऐसा मोड़ लिया कि हरिसिंह को भारत में विलय करने के लिये वाध्य होना पड़ा। पाकिस्तान सैनिक शक्ति से वलात् अधिकार करने की चेष्टा कर ही रहा था। मामला राष्ट्र संघ में भेजना पड़ा। सुरक्षा परिषद् की ओर से ग्राहम समझौता कराने भारत आये और सारी स्थिति का अध्ययन कर समझौते का एक फार्मूला तैयार किया जिसे भारत और पाकिस्तान दोनों ने स्वीकार किया। उसके अनुसार सर्वप्रथम पाकिस्तान को वह क्षेत्र खाली करना था जिस पर उसने अनुचित अधिकार किया था। पाकिस्तान आज तक उस पहली शर्त को ही नहीं निभा सका। काश्मीर का यह झगड़ा अब तक भारत और पाकिस्तान दोनों का सिरदर्द बना हुआ है। इस बीच श्यामाप्रसाद मुखर्जी की घटना सामने आई जो शेख अब्दूल्ला पर विश्वास नहीं करते थे। काश्मीर की घटना को लेकर नीर्पाजे भीम भट्ट ने **'काश्मीरसाधनसमुद्यम'** नाटक की रचना की। इसमें समझौते के लिये ग्राहम के आने, नेहरु शेख अब्दुल्ला से बातचीत अन्त में निर्णय, श्यामाप्रसाद मुखर्जी का शेख अब्दुल्ला पर अविश्वास, हरिसिंह के स्थान पर कर्णसिंह की राज्यप्रमुख पद पर नियुक्ति इत्यादि तथ्यों पर प्रकाश डाला गया है।

(ई) उस समय स्वतन्त्र भारत की अहम समस्या थी– हैदराबाद पर अधिकार करने की। हैदराबाद भारत का सबसे बड़ा राज्य था जिस पर निजाम का शासन था। उस समय वहां के प्रधान मन्त्री लायक अली खां थे। इसकी स्थिति काश्मीर से सर्वथा विपरीत थी। आबादी हिन्दुओं की थी और शासन मुसल्मान का था। वहां की समस्त शासन व्यवस्था पर एक अनधिकृत व्यक्ति रजाकार कासिम रिज्वी ने पूरा अधिकार जमा लिया था। निजाम और प्रधान मन्त्री दोनों उसकी उंगलियों पर नाचते थे। भारत सरकार के प्रतिकूल उसके वक्तव्य आते थे। वह नित्य लाल किले पर झण्डा फहराने का उत्साह प्रकट करता था और युद्ध की धमकी देता था। निजाम व्यक्तिगत रूपसे अंग्रेज सैन्य सञ्चालकों को नियुक्त करता था और धन के बल पर भारत से निपटने के लिये सैनिक शक्ति बढ़ा रहा था। भारत सरकार ने १ वर्ष का समय दिया था। किन्तु परिस्थिति ऐसी बदली कि भारत सरकार को समझौता तोड़कर पुलिस कार्यवाही करनी पड़ी और निजाम शरणागत हो गया तथा राज्य का भारत में विलय स्वीकार कर लिया गया। भारत सरकार ने अन्य राज्यों का विलय प्रिवी पर्स के आधार पर किया था। निजाम के शरणागत हो जाने और राज्य का विलय स्वीकार कर लेने पर भारत सरकार ने उसे भी प्रिवी पर्स दे दिया। इस घटना पर नीर्पाजे भीमभट्ट ने **'हैदराबादविजयम्'** शीर्षक नाटक की रचना की। इसमें रजाकारों के उपद्रव, नेहरु की अतिक्रमण के लिये स्वीकृति, कासिम रिजवी के कहीं भाग जाने, नेहरु द्वारा पटेल को बधाई दिये जाने आदि घटनाओं का चित्रण किया गया है।

(उ) नेहरु को अपने शासन काल में चीन से युद्ध की एक गम्भीर समस्या का सामना करना पड़ा था। नेहरु चीन के प्रति कुछ अतिरिक्त पक्षपाती थे। आन्दोलन काल में वहां के प्रधान मन्त्री चांकाई शेक उनके मित्र थे। किन्तु भारत के स्वाधीन हो जाने के कुछ ही समय बाद कम्यूनिष्टों के आक्रमण से चांकाई शेक को भाग कर फार्मोसा में शरण लेनी पड़ी और कम्यूनिष्टों का शासन स्थापित हो गया। अध्यक्ष माओत्सेतुंग और प्रधान मन्त्री चाऊ एन लाऊ बन गये। नेहरु ने नई सरकार से भी मैत्री बनाये रक्खी और तिब्बत पर चीन के विशेषाधिकार के समझौते को जारी रक्खा। चीन की तिब्बत के विषय में नियत साफ नहीं थी। वह तिब्बत के दलाई लामा को सब तरह से परेशान कर तिब्बत को पूर्ण रूप से निगल जाना चाहता था। दलाई लामा को विवश होकर दलवल के साथ भारत में शरण लेनी पड़ी और भारत ने अपनी चिरन्तन संस्कृति के प्रति सच्चाई प्रकट करते हुए उन्हें पूरा आश्रय प्रदान किया। उधर सिक्यांग को मुख्य भूमि से जोड़ने के लिये चीन ने भारतीय क्षेत्र में होकर सड़क बना ली जिस पर कुछ झड़पें शुरु हो गई। ये झड़पें अधिकतर पश्चिम तक ही सीमित थीं। अकस्मात् पूर्वीक्षेत्र में पूरी शक्ति से आक्रमण कर दिया गया और चीनी सेनायें आसाम के निकट वोमडीला तक आ गईं। यह भारत की बहुत बड़ी पराजय थी। किन्तु जिस प्रकार चीन ने अकस्मात्

भारत पर ऐसी दशा में आक्रमण किया था जब भारत प्रतिरोध या युद्ध के लिये बिल्कुल तैयार नहीं था उसी प्रकार अकस्मात् ही अपने विजित क्षेत्र को छोड़कर स्वयं वापस चला गया। क्यों उसने आक्रमण किया और क्यों वापस चला गया यह बात किसी की समझ में नहीं आई। इस घटना को लेकर श्रीराम भिकाजी ने **'कैलासकम्प'** शीर्षक नाटक की रचना की। इसमें चीन के आक्रमण से उत्पन्न समस्त हिमालय क्षेत्र के भय, हलचल, चन्द्र, आकाशगंगा आदि में सर्वत्र विक्षोभ के बाद भगवान शंकर की कृपा सब शान्त हो गया।

(ऊ) स्वतन्त्र भारत में एक महत्वपूर्ण घटना सम्पन्न हुई थी भारत और पाकिस्तान के संघर्ष में पाकिस्तान का दो भागों में विभाजन और बंगलादेश की स्थापना। युद्ध का कारण यह था कि पाकिस्तान पूर्व और पश्चिम दो भागों में बंटा था। दोनों पर पश्चिम से शासन होता था जिसमें पंजाब, सिन्ध, सीमाप्रान्त और बलोचिस्तान के प्रान्त सम्मिलित थे। उनमें भी पंजाबियों का वर्जस्व था। पूर्व में बंगाल का पाकिस्तानी भाग था। जहां की आबादी (चारो प्रान्तों को मिलाकर) पूरे पश्चिमी क्षेत्र की अपेक्षा अधिक थी। किन्तु शासन सत्ता पर पश्चिमी पाकिस्तान के लोग डटे हुये थे। बंगाल ने स्वयं को उपेक्षित एवं अपमानित समझा और एक प्रकार से सत्ता के लिये संघर्ष करने लगे। पाकिस्तान की सरकार ने निर्मम दमन करना प्रारम्भ कर दिया। बंगाल की जनता पीडित होकर भारत की ओर भागने लगी। देखते देखते शरणार्थियों की संख्या बहुत बढ गई। भारतीय प्रधान मन्त्री ने शरणागतों की रक्षा करना अपना धर्म समझा और शरणार्थियों को अपनी भूमि में पहुंचाने का प्रयत्न किया। पाकिस्तान ने उत्तेजना में आकर युद्ध छेड़ दिया जिसमें उसकी बहुत ही बुरी पराजय हुई। इस प्रकार बंगला देश की स्थापना हो गई और शरणार्थी अपने प्रदेश में लौट सके। इसी घटना को लेकर रामकृष्ण शर्मा ने **'बांगलादेशोदयम्'** नाटक की रचना की जिसमें बंगाल के सामाजिक, राजनैतिक जीवन पर भी प्रकाश डाला गया है।

(ए) बांगलादेश के उदय से ही सम्बन्धित **शरणार्थिसंवादः** शीर्षक एक अन्य नाटक भी लिखा गया जिसके रचनाकार हैं– वीरेन्द्र कुमार भट्टाचार्य। इसमें बंगला देश की स्थापना के बाद वहां की दशा का चित्रण किया गया है। छुटकारा दिलाने में भारत की सहृदयता और पाकिस्तान के अत्याचार का चित्रण किया गया है।

(ऐ) भारत की आन्तरिक समस्या भी कम जटिल नहीं थी। प्रान्तीय चुनाव में बंगाल में कम्यूनिष्टों को विजय मिली जो अपने सिद्धान्त के अनुसार सारी सम्पत्ति जनता की समझते थे। वे न केवल इसे सिद्धान्त तक ही सीमित रखना चाहते ते किन्तु मनमाने तौर से वे दूसरों के खेत एवं उगी हुई फसल पर भी अधिकार करने लगे। इस दिशा में बंगाल का नक्सलवाडी जिला आगे आया। इस प्रकार एक तरह की अराजकता पनपने लगी। अनेक उद्योगपति बंगाल छोड़कर भागने लगे। इन्दिरा गान्धी ने सफलता पूर्वक इसका सामना किया और जैसे तैसे इस प्रवृत्ति पर विजय प्राप्त की। वीरेन्द्र कुमार भट्टाचार्य

ने इस समस्या को लेकर **'लक्षणव्यायोग'** नामक एक नाट्यकृति की रचना। की। इसमें नक्सलवादी आन्दोलन की पृष्ठभूमि में तत्कालीन राजनैतिक स्थिति की चर्चा की गई है। इस आन्दोलन के कुछ चिन्ह अब भी आन्ध्रप्रदेश में दृष्टिगत होते हैं।

(ओ) स्वतन्त्रता के विकास के साथ मांगें मनवाने की नई विधियां प्रवर्तित की गई जिनमें वेष्टन (घेराव) भी एक है। इसको लेकर वीरेन्द्र कुमार ने **वेष्टन व्यायोग** नामक एक एकाङ्की की रचना की। संजय नायक है जिसके नेतृत्व में श्रमजीवी मांगपत्र लेकर श्रमाध्यक्ष और शिल्पाध्यक्ष के पास जाते हैं। मांगे न मानने पर श्रमजीवी अधिकारियों का घेराव कर देते हैं। विवश होकर अधिकारियों को उनकी मांगे माननी पड़ती हैं। तब कलियुग प्रकट होकर श्रमजीवियों को बधाई देता है। लेखक ने कर्तव्य की घोर अवहेलना, स्वतन्त्रता के भयानक दुरुपयोग और अनुशासन हीनता की प्रवृत्ति पर आक्षेप किया है।

(औ) इस काल में हड़ताल की प्रवृत्ति भी कर्तव्य हीनता अनुशासन हीनता और स्वतन्त्रता के दुरुपयोग का एक अच्छा निदर्शन है। इस विषय में वीरेन्द्र कुमार भट्टाचार्य ने **'शार्दूलशकटम्'** नामक नाटक की रचना की। परिवहन संस्था के कर्मचारी मांगों को लेकर हड़ताल करते हैं। समझौता हो जाता है। कुछ दिनों बाद गवर्नर और मैजिस्ट्रेट आकर परिवहन निगम के कर्मचारियों को संबोधित करने वाले हैं। इस समय का लाभ उठाकर कर्मचारी पुनः हड़ताल का ऐलान करते हैं। एक मजदूर मारा भी जाता है विवश होकर अधिकारियों को पुनः समझौता करना पड़ता है।

नवीन पद्धति की नाट्यकृतियां

आधुनिक संस्कृत नाट्यरचना में कथानक की नवीन पद्धति के भी दर्शन होते हैं। फिल्म जगत् की कई रचनाओं में यह पद्धति अपनाई जाती है कि नायिका का किसी युवक से प्रेम हो जाता है और दोनों प्रेम से प्रभावित होकर विवाह करना चाहते हैं। नायिका को प्राप्त करने के लिये कोई अन्य व्यक्ति भी आतुर है। वह नायिका के प्रेमी के मार्ग में अनेक प्रकार की कठिनाइयां उपस्थित करता है। संघर्ष छिड़ जाता है जो कुछ समय तक चलता रहता है। अन्त में सिद्ध होता है कि नायिका तो उस दूसरे व्यक्ति की बहन है जो बचपन में गुम हो गई थी। तब उसके वास्तविक प्रेमी से विवाह के मार्ग में कोई बाधा नहीं रहती और नायिका अपने वास्तविक प्रेमी को प्राप्त कर लेती है। डा. रमा चौधरी की कृति **पल्लीकमल** भी इसी प्रकार की रचना है। इसमें प्रविधि में भी नई शैली अपनाई गई है। नायिका कमलकलिका रुपंकुमार पर आसक्त है। परन्तु नायिका का पिता उसका विवाह मार्तण्ड से करना चाहता है। जब मार्तण्ड को पता चलता है कि नायिका रुप कुमार से मिलती जुलती है तब वह रूप कुमार को परेशान करना प्रारम्भ कर देता है। वह नायिका के पिता पर भी दबाव डालने की नीति अपनाता है और उस पर भूमिकर न देने का मामला चला देता है। जब नायिका का पिता रत्नमाला बेचने के

लिये मार्तण्ड के पिता प्रभञ्जन के पास जाता है तब वहां पता चलता है कि कमकलिका तो प्रभञ्जन की पुत्री एवं मार्तण्ड की बहन है जो बचपन में खो गई थी। नायिका का पिता ब्रह्मपद उसका पालक पिता मात्र है। अब कमलकलिका के रूप कुमार के साथ विवाह करने का मार्ग प्रशस्त हो जाता है।

इस नाटक में प्राग्दीप्ति (फ्लैशबैक) का भी प्रयोग किया गया है। इसी प्रकार अंक के स्थान पर दृश्य रक्खा गया है और संगीत का बाहुल्य है।

देशभक्ति परक नाटकों की भी एक सामान्य पद्धति है कि कोई व्यक्ति प्राणपण से देशरक्षा के कार्य में जुट जाता है। तब कोई अन्तस्तल से प्रेम करने वाली युवती उसका पदानुसरण कर उसी युद्धस्थल के निकट घायलों और रोगियों की सेवा करने लगती है। उसका प्रिय घायल होकर उसी के उपचार कक्ष में आता है। इसी आशय का डा. रमा चौधरी का लिखा **देशदीपम्** नाटक नवीन पद्धति पर लिखा गया है। इसमें देशरक्षा हेतु प्राणोत्सर्ग करने वाले वीरों के कार्यकलाप दिखलाये गये हैं। चम्पक वदन एक ब्राह्मण पुत्र है वह अपने मित्र अभ्रप्रतिम के साथ देशरक्षा का व्रत लेता है। दोनों मित्र सेना में भरती हो जाते हैं। चम्पक वदन पदाति सेना में भरती होता है और अभ्रप्रतिम वायुसेना में सम्मिलित हो जाता है। चम्पकवदन की बहन पंकजनयना भी भ्रातृप्रेम से प्रभावित होकर युद्ध क्षेत्र में घायलों की सेवा शुश्रूषा का कार्यभार सह्मल लेती है। चम्पक वदन घायल होकर उसी के परिचारण में आता है जहां उसका मित्र और उसकी बहन उसकी सेवा शुश्रूषा करते हैं किन्तु उसे बचा नहीं पाते और वह देश रक्षा के नाम पर बलिदान हो जाता है।

इस नाटक की रचना शैली भी नवीन है। अंकों के स्थान पर दृश्यों का प्रयोग तो किया ही गया है कार्यस्थली चयन इत्यादि भी नवीन शैली की ही है और गीतों का बाहुल्य उसे नवीनता प्रदान करता है।

कतिपय स्फुट विषय

इस काल के नाट्य साहित्य में कतिपय अन्य पुटकर विषयों का समावेश भी प्राप्त होता है। इस प्रकार के नाटकों में घनश्याम लिखित **नवग्रहचरित** एक महत्वपूर्ण रचना है। यद्यपि इसमें भी वर्तमान राजनैतिक संघर्ष की झलक पाई जाती है फिर भी पात्रों के सर्वथा वर्तमान से असंबद्ध होने के कारण इसे फुटकर नाटकों की श्रेणी में ही रखना ठीक होगा। इसमें आकाशचारी ग्रहों को पात्र के रूप में स्वीकार किया गया है। ग्रह नौ हैं और दिन सात ही; राहु और केतु के नाम पर कोई दिन नहीं हैं। इसी आधार पर लेखक ने संघर्ष की कल्पना कर ली है। ग्रहचक्र का स्वामी सूर्य नाटक का नायक है; मंगल उसका सेनापति है। राहु प्रतिनायक है जो केतु को लेकर संघर्ष के लिये तैयार हो जाता है। एक बुराई यह भी है कि राहु और केतु के पास कोई राशि नहीं है– १२

राशियों में ५ ग्रहों (मंगल, बुध, गुरु, शुक्र और शनि) का दो दो राशियों पर अधिकार है और सूर्य तथा चन्द्रमा के पास एक एक राशि है। यह विद्रोह इसी अन्याय को लेकर उठाया गया है। राहु और केतु का पक्ष है कि उन्हें भी कम से कम एक राशि अवश्य मिलनी चाहिये और उनके नाम पर भी कोई एक दिन अवश्य होना चाहिये। उनका सुझाव है कि शनैश्चर राशिचक्र को पार करने में सबसे अधिक (३० वर्ष) लगता है; उसी को दो फाड़ कर उसके लिये एक दिन की और एक राशि की व्यवस्था की जा सकती है। संघर्ष चलता है देवताओं के गुरु वृहस्पति और दैत्य गुरु शुक्र मिलकर समझौता कराते हैं कि राहु की उक्त मांगे तो मानना सम्भव नहीं है किन्तु उसे भी सूर्य के समकक्ष स्वर्भानु (स्वर्ग का सूर्य) की संज्ञा दी जा सकती है। राहु सन्तुष्ट हो जाता है और अपना आन्दोलन वापस ले लेता है।

इसी प्रकार का एक अन्य नाटक है जीवन्न्यायतीर्थ का लिखा **शतवार्षिकम्** इसमें आजकल की वैज्ञानिक खोजों को आधार बनाया गया है जिनमें चन्द्रमा इत्यादि ग्रहों पर पहुंचने की चेष्टा की जाती है। मानव विज्ञान के अनुसन्धानों द्वारा विनाश की ओर बढ़ रहा है इसी तत्व को लेकर नाटक की रचना की गई है। मर्त्यमणि नायक है जो राकेटों को अपने शरीर पर चिपका कर ब्रह्मलोक में पहुंचता है। वहां द्वारपाल भयभीत हो जाता है। चन्द्रमा दुःखी है कि बुरी तरह उसका अतिक्रमण किया गया है। मर्त्यमणि चैलेञ्ज की मुद्रा में कहता है कि अभी तो मंगल तक ही राकेट छोड़ा गया है शुक्र और बुध तक भी राकेट झोड़ने की योजना बन चुकी है। इस पर राहु को क्रोध आ जाता है; सभी ग्रह मर्त्यमणि को पकड़कर ब्रह्माजी के पास ले जाते हैं। ब्रह्माजी सबको शान्त कर कहते हैं कि मानव को या तो यान्त्रिकी पर अन्धाधुन्ध प्रयोग करने से विरत हो जाना चाहिये या १०० वर्ष में पृथ्वी का नाम निशान भी शेष नहीं रह जायेगा।

रूस के महाक्रान्तिकारी साम्यवादी नेता महाराष्ट्र के महासन्त तुकाराम एवं चैतन्य महाप्रभु पर रमा चौधरी की रचनायें; शाहजहां बादशाह की राजनीति पर हजारी लाल शर्मा की रचना इसी श्रेणी में आती है। पञ्चानन ने प्रताप के पुत्र अमर सिंह के विषय में **अमरमंगलम्** नामक एक नाटक लिखा था। राजसिंह राठौर पुत्री का विवाह मुगलबादशाह से करना चाहता है; अमर सिंह भी उसे चाहते हैं। रानी अमरसिंह के पक्ष में है। मानसिंह अनेक छल कपटों से अमरसिंह को मार डालना या कलंकित करना चाहते हैं। फिर भी अन्त में अनर सिंह को सफलता मिलती है और राजकुमारी उन्हें प्राप्त हो जाती है।

संस्कृत भाषा एक संस्करण सम्पन्न भाषा है जो लोकभाषा नहीं हो सकती। लोकभाषा का स्वभाव परिवर्तनशीलता है जो प्रवाहित होती हुई परिवर्तनों को ग्रहण करती चलती है। बोलचाल और उच्चारण में पिता और पुत्र की भाषा में कुछ अन्तर अवश्य होता है। यह अन्तर पीढियों में बदलते बदलते दो चार सौ वर्ष में भाषा इतना नया रूप धारण कर लेती है कि दूसरी भाषा जैसी प्रतीत होने लगती है। यह परिवर्तनशीलता साहित्य

पर भी प्रभाव डालती है और कुछ सौ वर्ष पहले लोकभाषा में लिखा साहित्य परवर्ती पीढी के लिये असंवेद्य हो जाता है। यह एक बहुत बड़ी हानि है। इससे साहित्य चिरन्तन नहीं बन पाता। इस हानि का प्राचीन आचार्यों ने अनुभव किया और एक ऐसी भाषा की आवश्यकता समझी जिसमें लिखा साहित्य असीमित काल तक सुरक्षित रक्खा जा सके। इसी उद्देश्य से भाषा का संस्कार किया गया और एक ऐसी जकड़ी हुई भाषा का स्वरूप स्थिर कर दिया जिसमें कालान्तर में परिवर्तित होने की प्रवृत्ति जाती रही। यह सच है कि संस्कृत सर्वसाधारण की भाषा नहीं हो सकी, क्योंकि यह नियमों से बंधी हुई है और नियमों का अतिक्रमण कर मनमाने ढंग से बोलने का इसमें अवसर ही नहीं है, साथ ही यह भी सच है कि यह स्थायी साहित्य के लिये सर्वथा उपयुक्त है। हिन्दी में चन्द्रवरदायी तथा उनके समय के दूसरे कवियों की भाषा असंवेद्य हो गई है। संस्कृत नाटकों में जिन प्राकृत भाषाओं का प्रयोग हुआ है उनको भी बिना संस्कृत छाया के समझना कठिन या लगभग असम्भव है। १४वीं १५वीं शताब्दी की भाषा भी आसानी से आज के नवयुवक की समझ में नहीं आती जबकि नियमों का ज्ञान प्राप्त कर लेने के बाद हजारों वर्ष पहले लिखी हुई व्यास और वाल्मीकि की भाषा इसी रूप में पढी जाती है जैसे वह आज ही लिखी गई हो। निस्सन्देह स्थायी साहित्य रचना का उद्देश्य संस्कृत भाषा पूरी सफलता के साथ पूरा करती जा रही है। यह प्रसन्नता की बात है कि वह आधुनिक साहित्य को भी आत्मसात किये हुये है। नाटक साहित्य ललित कला का सर्वोत्कृष्ट आकर्षक साधन है। किन्तु रचनाकारों की इस ओर प्रवृत्ति साधना में निपुणता प्राप्त कर लेने के बाद ही होती है। सर्वप्रथम मुक्तक में प्रवृत्ति होती है; फिर प्रबन्ध की ओर कवि अग्रसर होता है और प्रबन्ध में निष्णात होकर महाकाव्य लिखने का साहस करता है। नाटकरचना अत्यन्त परिनिष्ठित काव्यकलाजन्य प्रवृत्ति है जो रचनाकारों को सर्वोत्कृष्ट प्रतिष्ठा दिलवाने के कारण होती है। जो गौरव सेक्सपियर और कालिदास को प्राप्त है; कालिदास और भवभूति का जितने गौरव के साथ नाम लिया जाता है वह प्रतिष्ठा भारवि, माघ, मिल्टन, वाल्टर स्काट आदि को प्राप्त नहीं है। यह सन्तोष की बात है कि संस्कृत का आधुनिक नाट्य साहित्य भी किसी भी दिशा में पीछे नहीं है। इसमें पाश्चात्य नाटकों के अनुवाद हैं, आधुनिक प्रवृत्तियों की झलक है, आधुनिक नाट्य प्रक्रिया का अनुसरण है जबकि प्राचीनता का अंचल भी छूटा नहीं है। लेखक की आशंसा है इसी प्रकार अनन्तकाल तक संस्कृत नाट्यकला अपना पवित्र कर्तव्य निभाती हुई जनसाधारण को कृतार्थ करती रहे।

— रामसागर त्रिपाठी

अ

अकालजद— (ना.का.सं.) ख्यातनामा कलाकार एवं विचारक राजशेखर के बाबा थे। ये स्वयं एक अच्छे कवि एवं कलाकार थे। किन्तु अभी तक इनकी कोई रचना उपलब्ध नहीं होती। फिर भी यत्र तत्र इनकी प्रशस्ति पाई जाती है। जल्हण की सूक्ति मुक्तावली में इनके पद्य उद्धृत किये गये हैं और लिखा है कि कादम्बरीराम ने इनके पद्यों की चोरीकर अपने नाट्य में समाविष्ट किया है। सूक्ति मुक्तावली में एक पद्य आया है जिसका आशय है- 'अकालजलद एक ऐसा चन्द्रमा है जिसकी स्पृहणीय वचन-चन्द्रिका का उपयोग कवि-चकोर निरन्तर करते रहते हैं किन्तु उसकी समाप्ति नहीं होती। इन कथनों से प्रतीत होता है कि अकालजलद ने सम्भवतः नाटक रचना की होगी जिनकी सूक्तियों को लेकर कादम्बरीराम जैसे नाट्यकारों ने उन्हें अपनी रचनाओं में स्थान दिया।

अक्ष— (ना.पा.) रावण का पुत्र जिसे सीता की खोज के अवसर पर हनुमान ने मारा था। प्रसन्नराघव में विचित्र परिस्थिति दिखलाई गई है- जब प्रेम के ठुकराये जाने पर क्रुद्ध रावण सीता को मारने चलता है तभी उसे अपने मरे हुए पुत्र अक्ष का सर दिखलाई देता है।

अक्षयपत्र— (ना.कृ.) यह एक व्यायोग है जिसकी रचना दामोदरन् नम्बूद्रि (दे.) ने १९वीं शताब्दी में की थी।

अक्ष सूक्त— (ऋ.सू.) ऋग्वेद (१०.३८) में एक द्यूतकार द्यूत की बुराइयों का वर्णन करता है। अपनी दीन हीन दशा के लिये वह पश्चात्ताप कर रहा है क्योंकि द्यूत में सब कुछ यहां तक कि पत्नी को भी हार चुका है, उसकी पत्नी गैरों के साथ सोती है, वह द्यूत के दुष्परिणाम से पीड़ित है और उसके लिए पश्चाताप करता है। यह एकालाप

है जिसमें वक्ता स्वर बदलकर विभिन्न चेष्टायें प्रदर्शित करता है। कुछ विचारकों का कहना है कि इसके अभिनय में पाशों का चलना और उनका प्रभाव अभिनय के द्वारा दिखलाया जाता होगा। किन्तु इस विषय में कोई प्रमाण नहीं है।

अगस्त्य— (ना.पा.) रामायण के महत्वपूर्ण पात्रों में एक। वनवास में राम ने इन के आश्रम में शस्त्र विद्या का अभ्यास किया था और इन्हीं से राम को वह शस्त्र प्राप्त हुआ था जिससे रावण का वध किया गया। इन्हीं के निर्देश पर राम ने पञ्चवटी में आश्रम बना कर निवास किया था जहां सीताहरण किया गया। राम विषयक नाटकों में इस पात्र का प्रायः उपादान किया गया है। साथ ही कतिपय कवियों ने उक्त परिवेष से भिन्न परिस्थिति में भी इनका उपादान किया है। उदाहरण के लिए:-

(१) **उत्तररामचरित**— (दे.) में राम एक वार पुनः शम्बूक नामक शूद्र मुनि को मारने के लिये अगस्त्य के आश्रम के निकट आते हैं जहां राम के हाथों मरकर शम्बूक सद्गति को प्राप्त होता है और अपने उद्धारक को अगस्त्य-आश्रम में भेज देता है जहां पुराने स्थलों को देखकर राम की वियोग व्यथा अत्यन्त तीव्र हो जाती है। वहां देवियों की कृपा से सीता छाया रूप में राम को उनकी मूर्छाओं में साथ देती है।

(२) **उन्मत्तराघव**— (दे.) में जब दुर्वासा के शाप से सीता हरिणी बन जाती है और राम वियोग में उन्मत्त होकर इधर-उधर तलाश करते घूमने लगते हैं तब अगस्त्य तपोवल से सारा रहस्य जान लेते हैं और उनकी कृपा से सीता पुनः अपने रूप में आ जाती है तथा राम का वियोग दूर हो जाता है।

अगस्त्यलोथामुद्रा सूक्त— (ना.प्र.ऋ.सू.) यह एक संवाद सूक्त है। इस सूक्त (१.१७९) में अगस्त्य, लोपामुद्रा (पत्नी) और उनके पुत्र का वार्तालाप प्रहेलिका रूप में होता है। इसकी व्याख्या प्रजनन रूप में की गई है। औल्डेन वर्ग ने लोपामुद्रा का अर्थ किया है मोहर को तोड़ने वाली अर्थात सदाचार की मर्यादा का उल्लङ्घन कर रति का आनन्द लेने वाली। इसी प्रकार इसकी प्रजनन रूपता का निर्वाह करने की चेष्टा की गई है।

(१) **अग्नि**— (ना.पा.) ऋग्वेद में संवादसूक्तों में अग्नि और देवताओं में संवाद (१०.५१.३) का एक पात्र। अग्नि परेशान और क्रुद्ध है कि उसे देवताओं तक हवि ले जाने में कठिन परिश्रम करना पड़ता है। यह एक थकाने वाला कार्य है, देवता बड़ी कठिनाई से अग्नि को समझाबुझा कर राजी करते हैं। यह संवाद अत्यन्त विषद है।

(२) **अग्नि**— (ना.पा.) भास (दे.) लिखित नाटक अविमारक (दे.) में अग्नि अविमारक का पिता है और जब अविमारक प्रेयसी के वियोग में पीड़ित होकर आत्मदाह करना चाहता है तब अग्नि उसे जलाता नहीं अन्त में अविमारक प्रेयसी को प्राप्त कर लेता है।

(३) **अग्नि**— (ना.पा.) अभिषेक नाटक (दे.) का एक पात्र। सीता की अग्नि परीक्षा

के अवसर पर अग्निदेव स्वयं प्रकट होकर सीता को लक्ष्मी का अवतार बतलाते हैं और इस प्रकार सीता को अपनी गवाही से पूर्ण रूप से निर्दोष सिद्ध करते हैं।

अग्निमित्र— (ना.पा.) मालविकाग्निमित्र (दे.) का नायक। यह एक कामुक नायक के रुप में चित्रित किया गया है। उसकी प्रेमिका विदर्भ की राजकुमारी मालविका है जो पराजित भाई के साथ लुकती छिपती अग्निमित्र की राजधानी विदिशा पहुंच जाती है। राजा उसके रूप पर मुग्ध है किन्तु उन्हें अन्तःपुर के अनेक घात-प्रतिघातों का सामना करना पड़ताहै। अन्त में अपनी प्रेमिका को प्राप्त करने में राजा को सफलता मिल जाती है। यह एक दक्षिण नायक है जो अन्तःपुर की सभी रानियों को सन्तुष्ट रखना चाहता है और प्रेम प्राप्त करने के लिये दूसरी रानियों का अपमान नहीं करता।

प्रेमी स्वभाव के अतिरिक्त इनके अन्य गुणों का विकास नहीं हो पाया है। वह एक धीरललित नायक होकर ही रह जाता है। फिर भी उत्तर की विजय, अश्वमेघ यज्ञ और सिन्धु के किनारे यवनों पर विजय उसकी शासनकुशलता और उसकी वीरवृत्ति की ओर संकेत करने के लिये भी पर्याप्त है।

यह एक ऐतिहासिक पात्र है। पुष्यमित्र ने मौर्य राजा को सिंहासनच्युत कर १७८ ई.पू. जिस शुंगवंश की स्थापना की थी उसी में इसका जन्म हुआ था। यह पुष्यमित्र का पुत्र था। किन्तु इस नाटक में उसके राजकीय चरित्र की अपेक्षा कामुक रूप को नाटक का विषय बनाया गया है जिसमें प्राचीन भारतीय राजघरानों की चहल पहल के चित्रण में उसके राजकीय स्वरूप का अवमूल्यन हुआ है। वह एक कामार्त नायक के रूप में दृष्टिगत होता है। एक ओर युद्ध चल रहा है किन्तु उसे शृङ्गारचेष्टाओं से इतनी फुरसत नहीं मिलती कि वह युद्ध कि ओर भी ध्यान दे सके। अन्त में उसे विजय का समाचार दे दिया जाता है। यद्यपि इससे यह भी व्यक्त होता है कि उसने अपनी शासन कुशलता एवं मानवता के प्रभाव से अधिकारी वर्ग एवं प्रजा वर्ग को इतना समर्पित बना दिया है कि वे पूरी निष्ठा के साथ उसके कार्य का सम्पादन करते हैं और अपने राजा को जीवन का उन्मुक्त उपभोग करने की खुली छूट दे देते हैं। किन्तु सब बातों के होते हुये भी उसके स्वभाव का दक्षिण होना (सभी प्रेमिकाओं को प्रसन्न रखने की चेष्टा) ही उसकी सबसे बड़ी विशेषता है।

अग्निवीणा— (ना.कृ.) डा. रमा चौधरी लिखित नाटक। इसमें अग्निवीणा नामक बंगाली काव्य के लेखक नजरुल इस्लाम का चरित्र चित्रित किया गया है।

अघटघटम्— (ना.कृ.) उड़ीसा निवासी जोगीपट लिखित नाटक।

अघोरघण्ट— (ना.पा.) मालतीमाघव नाटक का एक प्रतिगामी पात्र। यह अपनी शिष्या कपालकुण्डला के साथ तन्त्र साधना में लगा है और इसीलिये चामुण्डा पर मालती की बलि चढ़ाना चाहता है। मालती के रोने की आवाज सुनकर माधव अवसर पर पहुंच

जाता है और अघोरघण्ट को मार डालता है। वह एक कापालिक है और उसके व्यवहार में क्रोध एवं क्रूरता की विशेषता है। उसके नाम के अन्त में घण्ट शब्द का प्रयोग किया गया है उससे कापालिक के नामकरण की शास्त्रीय मर्यादा का पालन हो जाता है।

नाटक में इस पात्र का समावेश एक विशेष मन्तव्य से हुआ है। इसके द्वारा कवि को विमर्श सन्धि के अंग संफेट (रोषभाषण) के प्रदर्शन का अवसर प्राप्त हो जाता है। साथ ही उसकी शिष्या कपालकुण्डला की प्रतिशोध की भावना के कारण कथानक को भी आगे बढने का अवसर मिल जाता है।

अंगद— (ना.कृ.) दे. दूताङ्गद।

अंगद— (ना.पा.) रामायण में वाली का पुत्र जो वालिवध के बाद वाली के आदेश पर ही राम के सहायक बन गये थे। इनका सर्वप्रधान कार्य है युद्धारम्भ से पहले राम का समझौता सन्देश रावण के दरवार में ले जाना और वहां शक्ति तथा शान्ति की समन्वय पूर्ण बातचीत द्वारा नीति निपुणता प्रदर्शित करना। इनकी इसी भूमिका का उपादान राम विषयक अनेक नाटकों में हुआ है जिनमें प्रमुख हैं- अभिषेक नाटक (दे.) दूताङ्गद (दे.) अद्‌भुत दर्पण (दे.) महावीर चरित (दे.)

(१) **अभिषेक**- नाटक में पिता की मृत्यु के बाद अंगद शोकपूर्ण अवस्था में दिखलाये गये हैं।

(२) **दूताङ्गद**- का नामकरण ही अंगद के दौत्यकर्म को लेकर किया गया है। जी. बुलहर ने भूभट लिखित जिस दूताङ्गद नामक नाटक का संकलन किया था उसकी अनेक प्रतियां पाई जाती हैं और पिशेल का कहना है कि जितनी प्रतियां हैं उतने ही दुताङ्गद हैं अर्थात् सभी प्रतियों में पृथक् पृथक् पाठ पाये जाते हैं। गुजरात काठियावाड़ कच्छ के प्राइवेट पुस्तकालयों में जो अनेक प्रतियां पाई जाती हैं उनका संकलन 'अंगद' नाम से किया गया है। कैटेलागस कैटेलागोरम (I.४) में भी इसका संकलित रूप विद्यमान है। किसी किसी प्रति में लेखक का नाम सुभट दिया गया है जो सम्भवतः भूभट का ही लेखक प्रमाद से बिगड़ा हुआ रूप है। (परिचय के लिये देखिये दूताङ्गद) किन्तु पाठभेद से अंगद के चरित्र पर कोई व्यतिरिक्त प्रकाश नहीं पड़ता। इस का अंगद के दौत्यकर्म की निपुणता में ही पर्यवसान होता है। रावण समझाना चाहता है कि सीता उससे प्रेम करती है, किन्तु अंगद मानने से इन्कार कर देता है और दौत्यकर्म असफल हो जाता है।

(३) **अद्‌भुतदर्पण**— रामचरित्र को लेकर लिखा गया नाटक है किन्तु इस का प्रारम्भ ही अंगद के दौत्यकर्म से होता है।

(४) **महानाटक**- में अंगद की वावदूकता और उत्तर प्रत्युत्तर की निपुणता प्रकट होती है। इस कथोपकथन की महत्ता इसी से प्रकट होती है कि हिन्दी के मूर्धन्य कवि गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरितमानस में इस संवाद का पूरा आश्रय लिया है। महानाटक

का यह खण्ड अन्य खण्डों की अपेक्षा अधिक नाटकीय है।

(५) **महावीरचरित-** में अंगद समझौते की दो शर्तें लेकर उपस्थित होता है और उस आधार पर समझौता कराना चाहता है, शर्तें हैं- सीता का प्रत्यर्पण और रावण का लक्ष्मण के चरणों में प्रणत होना। रावण शर्तों को ठुकरा देता है और अंगद को बन्दी बनाना चाहता है। किन्तु असफल होता है।

अङ्गुष्ठदानम्- (ना.कृ.) दे. राम किशोर मिश्र।

अजय पाल- (ना.का.आ.दा.) नाट्यकार रामचन्द्र (दे.) के आश्रय दाता। ये हेमचन्द्र के आश्रयदाता कुमार पाल के भतीजे थे। इसका समय १२वीं शताब्दी का उत्तरार्ध था। अजयपाल के नाम पर नानार्थसंग्रह नामक एक कोश ग्रन्थ भी बतलाया जाता है। हो सकता है वह उन्हीं की रचना हो।

अजितापीड- नवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में काश्मीर के राजा। इसके शासनकाल में शंकुक ने अपनी रचनायें साहित्य जगत् को प्रदान की थीं। नाट्यरस तत्व की व्याख्या करने में इनका महत्वपूर्ण स्थान माना जाता है।

अञ्जनापवनञ्जय- (ना.कृ.) हस्तिमल्ल लिखित सात अंकों का नाटक। इसकी रचना १३वीं शताब्दी में की गई थी। यह मैसूर की ओरियण्टल लायब्रेरी (सं २७२) में सुरक्षित है।

अण्णराय सुरपुरम्- (ना.का.) दे सुरपुरम् अण्णराय।

अण्णा शास्त्री- (ना.का.) इनका लिखा मीनाक्षीपरिणय (दे.) नाटक मैसूर की ओरियण्टल लायब्रेरी की संस्कृत पाण्डुलिपियों के अनुभाग में सं ०२७९ पर संकलित किया गया है।

अतन्द्रचन्द्रिका- (ना.का.) १७वीं शताब्दी के जगन्नाथ कवि द्वारा लिखित नाटक। फतेह शाह के दरवार में उपस्थित सामन्तों के मनोरञ्जन के लिये इसकी रचना की गई थी। इसका उल्लेख पेटार्सन की रिपोर्ट में किया गया है जो कि बम्बई क्षेत्र में पाण्डुलिपियों की खोज पर तैयार की गई थी। इस रिपोर्ट के चार खण्ड हैं जिनमें दूसरे खण्ड की २२वीं संख्या पर इस नाटक का उल्लेख है।

नाटक की रचना मालतीमाधव से प्रभावित ज्ञात होती है। इसमें भी दो युग्म हैं- चन्द्र और चन्द्रिका एवं सागर और चन्द्रकला। चन्द्र का प्रतिद्वन्दी एवम् तमिस्रा का पुत्र विमूढ़ कादम्बनी नामक सिद्धयोगिनी की सहायता से चन्द्र पर आक्रमण करता है परन्तु हार जाता है। तब कादम्बिनी चन्द्रिका का अपहरण करती है किन्तु चन्द्रिका की सखी शारदा उसे छुड़ाकर उसे चन्द्र से मिलाती है। दूसरे युग्म में चन्द्रकला विमूढ़ की बहन है जिनका संयोग कराने में कलावती प्रयत्नशील होती है। कलावती को चन्द्रिका के छद्मवेष में तैयार कर सानुमती नामक एक सिद्धयोगिनी ने विमूढ़ के साथ विवाह करा

दिया है। अन्त में चन्द्र और चन्द्रिका एवं सागर और चन्द्रकला दोनों युगम विवाह बन्धन में बंध जाते हैं।

अतिरात्रयज्वन्– (ना.का.) 'नीलकण्ठविजयचम्पू' के लेखक नीलकण्ठ दीक्षित के सगे भाई थे। इनका समय १७वीं शताब्दी है। ये तन्त्रविद्या और यज्ञविधियों के ज्ञाता एवं शैव सिद्धान्त के विशेषज्ञ थे। ये जन्मजात कवि एवं आलोचक थे। इन्होंने पांच अंकों के एक नाटककुशकुमुद्वतीयम्(दे.) की रचना की जिसमें राम के ज्येष्ठ पुत्र कुश के नागकन्या कुमुद्वती के साथ प्रणयसम्बन्ध का चित्रण किया गया है। कहा जाता है कि इसके अतिरिक्त इन्होंने एक काव्य और त्रिपुरविजयनामक चम्पू की भी रचना की थी। काव्य और चम्पू अभी तक प्रकाश में नहीं आये हैं।

कुशकुमुद्वतीय की प्रति पैलेस लायब्रेरी तंजौर में सुरक्षित है। जिसका कैटेलाग (VIII ३३७८) में उल्लेख किया गया है।

अथकिम्– (ना.कृ.) यह सिद्धेश्वर चट्टोपाध्याय (दे.) की एक नाट्यकृति है। इसकी रचना १९७० में हुई थी और इसका अभिनय संस्कृत साहित्य परिषद् के ५५वें अधिवेशन में प्रस्तुत किया गया था। इसका प्रकाशन उसी परिषद् में सन् १९७८ में कराया गया था। इसकी शैली आधुनिक है और इसमें सामाजिक विसंगतियों का उपहास उड़ाया गया है।

(१) **अथर्ववेद**– (ना.त.यो.) यह चतुर्थवेद है। भरत के अनुसार पञ्चम वेद नाट्यवेद की रचना करने में ब्रह्माजी ने इससे रस तत्त्व ग्रहण किया था।

अन्य वेदों के असमान अथर्ववेद अभिजातवर्ग के क्रिया कलाप के स्थान पर जनजीवन की प्रवृत्तियों उनके अन्धविश्वासों और उनके प्रयोग में आने वाले जादू टोना को लेकर चला है। नारियों का प्रेम प्राप्त करने, दाम्पत्य जीवन को सुखमय बनाने, इसके लिये उपकरण जुटाने के साथ शत्रुमर्दन, मारण, अभिचार, इत्यादि जन समाज की रूढ़ियों को इसमें वर्ण्य वस्तु के रूप में ग्रहण किया गया है। यह सभी रस सामग्री हैं। इसलिये अथर्व से रस ग्रहण की संगति बैठ जाती है। डा. नगेन्द्र के अनुसार नाट्यशास्त्र में कामशास्त्र से विषय के उपादान का जो निर्देश दिया गया है उसका आशय यही है कि अथर्ववेद से वस्तु का उपादान काम सूत्र में किया गया और कामसूत्र से नाट्य शास्त्र में आया है। इस प्रकार नाट्यशास्त्र काम सूत्र के माध्यम से अथर्ववेद से उपकृत हुआ है।

(२) **अथर्ववेद**– (ना.कृ.स.) ऋग्वेद में वैदिक सूक्त संग्रह की संवाद सूक्त परम्परा के अन्तर्गत अथर्ववेद में भी एक सूक्त (५-११) आता है जो संवादसूक्त है। ऋत्विज की कामना एक गाय प्राप्त करने की है। वह इसके लिये देवता अथर्वा से प्रार्थना करता है किन्तु देवता उसकी अभिलाषा पूरी करने को तैयार नहीं है। अन्त में देवता द्रवित हो जाता है और वह उसकी प्राप्य वस्तु प्रदान करने के साथ ही उसके साथ स्थायी मैत्री भी

स्थापित करने का वचन देता है। अथर्व वेद के कतिपय अन्य सूक्तों में भी संवाद का समावेश है, किन्तु उनमें या तो संवाद नगण्य हैं या आख्यानपर्यवसायी है जिन्हें अभिनय की श्रेणी में लाना दुष्कर है।

अथर्वा– (ना.पा.) अथर्व वेद के एकाकी संवादसूक्त में ऋत्विज गाय के लिये अथर्वा देव से प्रार्थना करता है। पहले तो अथर्वा उस प्रार्थना को ठुकरा देता है किन्तु बाद में स्वीकार कर लेता है। इस सूक्त में अथर्वा वैदिक ऋषि के रूप में नहीं एक अनुग्राहक देवता के रूप में आये हैं; अतः उन्हें नाट्यपात्र के रूप में स्वीकार किया जा सकता है।

अदिति– (ना.पा.) ऋग्वेद (४-८) सूक्त का एक पात्र। यह एक संवाद सूक्त है जिसमें इन्दु, अदिति और कामदेव भाग लेते हैं। इसमें अदिति संवाद परायण एक पात्र है।

अदितिकुण्डलाहरण– (ना.कृ.) कादम्बरीराम (दे.) (रामकृष्णकादम्बरी राम) लिखित नाटक। इस रचना में ७ अंक हैं। नरकासुर ने देवमाता अदिति का कुण्डल चुरा लिया है। इन्द्र इसकी सूचना कृष्ण को देते हैं। श्री कृष्ण विभिन्न प्रदेशों के राजाओं को एकत्र कर नरकासुर को पराजित करते हैं और इस प्रकार अदिति का कुण्डल प्राप्त हो जाता है। इस समस्त गतिविधि में कृष्ण के साथ सत्यभामा भी रहती हैं।

इसकी रचना १९वीं शताब्दी में हुई थी। इसमें वर्णाश्रम धर्म की महत्ता, सत्य परायणता, मिथ्या एवं अन्ध विश्वास का प्रतिषेध इत्यादि मानवीय गुणों पर विशेष बल दिया गया है। दाशरथि महोत्सव में इसका प्रथम अभिनय किया गया था। इसकी प्रति सिन्धिया ओरियण्टल इंस्टीट्यूट उज्जैन के पाण्डुलिपि अनुभाग में प्राप्त की जा सकती है।

अद्भुतदर्पण– (ना.कृ.) महादेव (दे.) का लिखा १० अंकों का नाटक। इसमें लंका पर राम की विजय का अंकन किया गया है। इसमें यह दिखलाने का प्रयत्न किया गया है कि अद्भुत रस ही सब रसों का सिरमौर है। इसके पात्रों में मानव के साथ वानर, भालू, राक्षस जैसे रामायणप्रसिद्ध पात्रों का तो रंगमञ्च पर अवतरण दिखलाया ही गया है लंका में मायावी घटनायें भी घटित होती हुई दिखलाई गई हैं। नाटक का कथानक हनुमान के लंका से लौट आने के बाद प्रारम्भ होता है और राम के राज्याभिषेक पर्यन्त दिखलाया गया है। इसमें विदूषक का भी समावेश किया गया है जो राम विषयक नाटकों में प्रायः नहीं देखा जाता।

अंगद के दौत्यकर्म के असफल हो जाने पर जब युद्ध अनिवार्य हो जाता है रावण लंका में मायावी शक्तियों को एकत्र कर लेता है जिनमें शम्बर अन्यतम मायावी है। वह वानर वेष में वानर सेना में प्रवेश करता है किन्तु जाम्बवन्त द्वारा सन्देह में पकड़ लिये

जाने पर अदृश्य हो जाता है। जाम्बवन्त वास्तविक बानर दधिमुख को शम्बर समझ कर पकड़ लेता है। उधर शम्बर दधिमुख का रूप धारण कर राम के सामने प्रकट होता है और बतलाता है कि अंगद रावण से मिल गया है, इसके साथ ही शम्बर अंगद का वेष धारण कर सुग्रीव का सर राम के सामने रख देता है; किन्तु लक्ष्मण इस बात पर विश्वास नहीं करते कि सुग्रीव वास्तव में मारा गया है। इतने में सुग्रीव वहां आ जाते हैं और सारा सन्देह दूर हो जाता है। रावण का सेनापति अंगद वेष में शम्बर को वास्तविक अंगद समझ कर बन्दी बना लेता है; शम्बर सेनापति को अपनी वास्तविकता बतलाता है तब जाम्बवन्त सुन लेता है और उसे पुनः पकड़ लेता है।

रावण के ससुर ने रावण को एक ऐसा दर्पण भेंट में प्रदान किया था जिसमें तीन योजन की सारी घटनायें प्रतिफलित हो जाती थीं। वह दर्पण संयोग से विभीषण के हाथ लग गया था जिसे विभीषण ने राम को प्रदान कर दिया था। राम युद्ध का सारा दृश्य उसी दर्पण में देखते हैं। रावण पक्ष के सभी वीर मारे जाते हैं युद्ध का परिणाम राम के पक्ष में जाता है। तब मायासुर की माया चलती है। वह राम का रूप धारण कर सीता के सामने प्रकट होता है और सीता से कहता है कि परगृह में वास करने के कारण दूषित हो चुकी हो, अतः 'मैं तुम्हें स्वीकार नहीं कर सकता।' सीता दुःखित होकर अग्नि प्रवेश करती है कि एकदम आकाश वाणी होती है कि सीता शुद्ध है उनमें कोई दोष नहीं। आकाश से ही दशरथ भी आशीर्वाद देते हैं।

इस नाटक की रचना १६६० में हुई थी। तंजौर लायब्रेरी में सं. VIII ३५३४ पर यह प्राप्त की जा सकती है। इसका प्रकाशन काव्यमाला सीरीज से हो गया है।

अद्‌भुतपञ्जर– (ना.कृ.) यह १८वीं शताब्दी के नारायण दी. (दे.) की शृङ्गार एवं वीर रस प्रधान रचना है। इसका कथानक रत्नावली, मालविकाग्निमिन्न जैसी रचनाओं से मेल खाता है। तंजौर के शाहजी की महाराणी ने सुन रक्खा है कि उसकी मैसेरी बहन लीलावती के विषय में ज्योतिषियों ने भविष्यवाणी की है कि उसका पति सार्वभौम सम्राट् होगा। रानी को अपने विषय में भी भविष्यवाणी ज्ञात है कि उसकी सौत का पुत्र युवराज का पद प्राप्त कर उसका आज्ञाकारी बनेगा। परिस्थितियां कुछ ऐसी बनती हैं कि उसके राज महल में उसकी वही मौसेरी बहन लीलावती सारसिका के नाम से आ जाती है। रानी सावधानी के साथ राजा से उसका प्रत्यक्षीकरण बचाती है। किन्तु दोनों एक दूसरे को देख ही नहीं लेते परस्पर प्रेमजाल में भी फंस जाते हैं। जब रानी को इसका पता चलता है तब वह क्रुद्ध होकर उसे लकड़ी के पिंजड़े में बन्द कर देतीहै। जब उसे पता चलता है कि सारसिका तो वास्तव में उसकी मौसेरी बहन लीलावती है तब वह प्रयत्न पूर्वक राजा से उसका विवाह करा देती है।

इस नाटक की रचना १८वीं शताब्दी में हुई थी। इसका प्रथम अभिनय १७०८ में महामखोत्सव में सम्पन्न हुआ था। इस नाटक को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि

यह सामयिक ऐतिहासिक घटना पर आधारित है किन्तु वास्तव में इसका कोई सम्बन्ध सामयिक घटनाओं से नहीं है।

अद्भुतरंग– (ना.कृ.) हरिजीवन मिश्र (दे.) का लिखा एक प्रहसन। राजा मदनांक-विक्रम एक वैष्णाव से नाराज हो जाता है। वैष्णव का नाम गूढ़रस मिश्र है। राजा विधवा-विध्वंसक नामक आचार्य से उसे कामाग्निकुण्ड में तप्त होने का दण्ड दिलवाता है। कुण्ड दहन के लिये वेश्या के साथ आचार्य की पत्नी भी आती है। किन्तु अन्त में ज्ञात होता है कि विदूषक ही विधवाविध्वंसक की पत्नी है।

इसका रचनाकाल १७वीं शताब्दी है।

अद्भुतराघवम्– (ना.कृ.) वनमाली मिश्र लिखित नाटक।

अद्भुतार्णव– (ना.क.) यह कवि भूषण लिखित १२ अंकों का नाटक है। कैटेलागस कैटेलागोरम् (१११.२) में इसका उल्लेख किया गया है।

अद्भुतांशुक– (ना.कृ.) जग्गूआलवार आयंगर उपनाम जग्गू वकुलभूषण लिखित ६ अंकों का नाटक। यह वेणीसंहार का लगभग उपक्रम है। इसकी विशेषतायें हैं– रंगमञ्च पर रथ का आना, कृष्ण का मृगवेष धारण करना, चीर हरण का दृश्य, भीमसेन का स्त्री वेष, पात्रों का एक साथ रंगमंच पर एकत्रित होना। इस नाटक में छायातत्व का भी समावेश किया गया है और एकोक्तियों एवं सूक्तियों का बाहुल्य है।

इस नाटक की रचना १९३१ में हुई थी और १९३२ में बंगलौर से इसका प्रकाशन हो गया। इसका प्रथम अभिनय यदुगिरि के भगवान् संपत्कुमार के हरिकिरीटोंत्सव के अवसर पर किया गया था।

अनंगजीवन– (ना.कृ.) वारदाचार्य लिखित भाण। मद्रास की ओरियण्टल लायब्रेरी के विवरणात्मक उपखण्ड सं. XXI ८३४७ एवं तंऔर पुस्तकालय के पाण्डुलिपि उपखण्ड के सूची पत्र सं. VIII ३५६६ पर इसका उल्लेख किया गया है।

(१) **अनंगतिलक–** (ना.कृ.) यह एक भाण है जिसकी रचना श्रीनिवास के पुत्र रंगनाथ ने की थी। यह मद्रास ओरियण्टल लायब्रेरी के पाण्डुलिपि अनुभाग में सं. III ८१७३ पर प्राप्य है।

(२) **अनंगतिलक–** (ना.कृ.) युवराज (दे.) लिखित भाण। इसकी पाण्डुलिपि विजगापट्टम की आर्षलायब्रेरी में प्राप्त की जा सकती है।

अनङ्गदाप्रहसन– (ना.क.) यह एक प्रहसन है जिसकी रचना जग्गू श्री वकुलभूषण ने सन १९५८ में की थी। इसकी नायिका वेश्या है जो अंगदान किये बिना ही पैसा पैदा करती है। एक परिवार में दो भाई हैं; पहले एक भाई आता है जो वेश्या को एकावली देता है। इतने में बड़ा भाई बाहर दरवाजा खटखटाता है। तब वह वेश्या छोटे भाई का मुंह काला कर उसे अन्दर के कमरे में छिपा देती है। बड़ा भाई जब अन्दर आता है तब

उससे भी देह व्यापार का शुल्क लेकर उसी प्रकार कमरे में छिपा देती है। छिपाने के पहले दोनों भाइयों से एक ही बात कहती है– 'तुम अन्दर चलो- मैं पुरुष वेष में आकर तुम्हें मिलूंगी, अब दोनों भाई एक दूसरे को वेश्या समझकर प्रणय निवेदन करने लगते हैं। बाद में रहस्य खुलने पर दोनों लज्जित होते हैं।

जयपुर से प्रकाशित होने वाली भारती पत्रिका में इसका प्रकाशन हो चुका है।

अनंगब्रह्मविद्याविलास– (ना.कृ.) वरदाचार्य (दे.) लिखित भाण। मद्रास की ओरियण्टल लायब्रेरी के कैटेलाग आफ संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट्स में इसका उल्लेख XXI ८३४५ संख्या पर किया गया है। एक उत्सव में प्रदर्शन के लिये इसकी रचना की गई थी।

अनङ्गमङ्गल– (ना.कृ.) सुन्दर लिखित एक भाण जिसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम में संख्या १.१२ पर किया गया है।

अनङ्गमञ्जरी– (ना.पा.) शृङ्गार भूषण भाण की नायिका है जिससे मिलने नायक विलासशेखर गणिकाओं के मुहल्ले में आता है। गणिकाओं में यह प्रमुख है जिसके साथ विलासशेखर की प्रणय लीलाओं का चित्रण किया गया है।

अनंगलतिका– (ना.कृ.) एक भाण जिसका उल्लेख लेवी ने किया है। यह लक्ष्मी नरसिंह की रचना बतलाई गई है।

अनंगलेखा– (ना.कृ.) यह अज्ञात नामा कवि की लिखी हुई अनुपलब्ध कृति है। इसका उल्लेख जयरथ ने अलंकार सर्वस्व की टीका में किया है जिसका प्रकाशन काव्यमाला संस्करण के १९वें भाग में किया गया है।

अनंगवती– (ना.कृ.) यह अज्ञातनामा लेखक की नाटिका है जिसका उल्लेख नाट्य दर्पण एवं शृङ्गार प्रकाश में किया गया है।

(१) **अनङ्गविजय**– (ना.कृ.) यह एक भाण है जिसकी रचना कोचुन्नि तंविरान नाम से प्रसिद्ध कविसार्वभौम उपाधिधारी रामवर्मा (दे.) ने की थी। इसका उल्लेख कृष्णमाचार्य ने हिष्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर में किया है। यह सुकोमल भावनाओं से भरी एक रचना बतालाई जाती है।

(२) **अनंगविजय**– (ना.कृ.) जगन्नाथ (दे.) लिखित भाण। इसका उल्लेख तंजौर की पैलेस लायब्रेरी के पाण्डुलिपि अनुभाग में खण्ड ७ की सं. ३०२९१ पर किया गया है।

(३) **अनङ्गविजय**– (ना.कृ.) यह एक भाण है जिसकी रचना गौतम गोत्र के शिवराम कृष्ण ने की थी। इसको मद्रास की औरियण्टल लायब्रेरी के विवरणात्मक पाण्डुलिपि अनुभाग सं. XXI ८३४७ पर संकलित किया गया है। इसकी रचना चिक्कदेवराय के पुत्र नरेश महिपाल के आग्रह पर वमलूर में अभिनय के लिये की गई थी।

(४) **अनङ्गविजय**– (ना.कृ.) यह रामवर्मन युवराज का लिखा हुआ भाण है जिसमें मनोरम रसाभिव्यक्ति के दर्शन होते हैं। इसका प्रकाशन त्रिचूर से हो गया था।

अनङ्गशेखर– (ना.पा.) यह शृङ्गरशेखर भाण का नायक है जो अनङ्गमञ्जरी गणिका से मिलने गणिकाओं के मुहल्ले में जाता है और आकाशमाषित के द्वारा अनेक दृष्टिओं से तत्कालीन परिस्थिति का चित्रण करता है।

अनङ्गसर्वस्व– (ना.कृ.) यह लक्ष्मीनृसिंह लिखित भाण है। तंजौर के राज पुस्तकालय में पाण्डुलिपि अनुभाग (VII ३५७८) ये इसका उल्लेख किया गया है।

अनंगसेना– (ना.पा.) धूर्त समागम प्रहसन (दे.) की नायिका। जो भी देखता है उसे चाहने लगता है। गुरु, चेला, धर्माधिकरण में नियुक्त ब्राह्मण, विदूषक सभी उस पर एकाधिकार करना चाहते हैं। वह न्याय को पसन्द करने वाली दिखलाई गई है। जब कभी कोई विवाद उठता है वह न्यायकारी के पास निपटारे के लिये भेज देती है यह दूसरी बात है कि न्यायकारी स्वयं उसे अपने पास रखने के लिये लालयित हो जाता है और फैसला होने तक अपने पास ही रखने का निर्णय देता है।

अनङ्गसेना हरिनन्दिनी– (ना.कृ.) शक्तिवासकुमार लिखित प्रकरण। इसका उल्लेख रामचन्द्र गुणचन्द्र के नाट्य दर्पण में किया गया है।

अनंगहर्ष मात्रराज– (ना.का.) ये चेदि प्रदेश के कल्चुरि वंशीय राजा थे। दक्षिणी बिहार और उत्तरी मध्यप्रदेश को लेकर जो एक राज्य बनाया गया था उसी को चेदि राज्य की संज्ञा दी जाती थी। जिसकी राजधानी माहिष्मती थी और इस पर हैहय या अनूप देश के अधिपति पौराणिक कार्तवीर्यार्जुन का राज्य था। माहिष्पती का आधुनिक नाम महेश्वर या महेश है। बाद में इन राजाओं की राजधानी जवलपुर के निकट त्रिपुरी (आधुनिक तेवर) चली गई। अनंगहर्ष मात्रराज के पिता का नाम नरेन्द्रवर्धन था।

अनंगहर्ष के विषय में कई धारणायें हैं– कुछ लोग इनकी उपाधि मात्रराज मानते हैं और कुछ लोग (एम.आर. कवि) इन्हें मायुराज से अभिन्न बतलाते हैं। मायुराज प्राकृत (माउराज) का एक रूप प्रतीत होता है। कुछ लोगों का विचार है कि अनंगहर्ष मात्रराज और मायूराज ये दो पृथक् कवि थे। एम.एल. मेहता का विचार है कि महाराज हर्ष को ही अनंगहर्ष की संज्ञा दी जाती है क्योंकि एक पद्य में उन्होंने अनंग शब्द का प्रयोग किया है। सोड्ढल ने इनका उल्लेख वाक्पतिराज और विशाखदेव के साथ किया है। कुट्टिनी मत में इनकी मृत्यु पर शोक प्रकट किया गया है।

इन्हें महाराज हर्ष से अभिन्न मानना संगत प्रतीत नहीं होता। ज्ञात होता है कि इनका समय महाराज हर्ष से पहले का है। महाराज हर्ष और इन्होंने उदयन चरित्र विषयक जो नाटक लिखे हैं उनमें इन्होंने हर्ष की परम्परा नहीं निभाई है। इनकी परम्परा सुबन्धु, भास और शूद्रक से सम्बन्ध रखती है। इनके तद्विषयक नाटक में उदयन की दूसरी रानी

पद्मावती बतलाई गई है जोकि प्राचीन परम्परा का परिचय देती है जबकि हर्ष ने दूसरी रानी का नाम रत्नावली लिखा है जो परवर्ती परम्परा है। इससे ज्ञात होता है कि इनका समय महाराज हर्ष से पहले का है। इनका उल्लेख अभिनवगुप्त, भोजराज, धनिक, हेमचन्द्र, रामचन्द्र-गुणचन्द्र, कुन्तक और सर्वानन्द ने किया है तथा इसकी रचनाओं के उद्धरण भी दिये हैं।

इनके दो नाटक प्रसिद्ध हैं- उदात्तराघव (दे.) और तापस वत्सराज (दे.)। विण्टरनित्ज, कीथ इत्यादि कई इतिहासकारों का विचार है कि अनंगहर्ष या मात्रराज और मायुराज ये दो पृथक् व्यक्तित्व थे। इनके अनुसार तापस वत्सराज की रचना अनंगहर्ष ने और उदात्तराघव की रचना मायुराज ने की थी।

(१) **अनन्त-** (ना.का.) इनको अनपोतनायक नाम से भी जाना जाता है। ये संगीत नाट्य शास्त्र के आचार्य एवं आन्ध्र मण्डलाधिपति ख्यातनामा शिंगमूपाल के पिता थे। इनका उल्लेख रसार्णव सुधाकर में भी किया गया है। इनका लिखा रामकथा परक नाटक अभिरामराघव (दे.) प्रकाश में आया है।

(२) **अनन्तदेव-** (ना.का.) मनोनुरंजनम्' नाटक के लेखक। इनका समय १६वीं शताब्दी का उत्तरार्ध है। इनके गुरु स्वामी रामतीर्थ थे। उक्त नाटक के अतिरिक्त इनकी एक रचना हरिभक्तिचन्द्रिका भी प्राप्त होती है जिसमें शृङ्गार मूलक हरिभक्ति की प्रधानता है।

(३) **अनन्तदेव-** (ना.का.) इनकी लिखी कृष्णभक्ति चन्द्रिका (दे.) कृष्ण विषयक नाटक है। इनका उल्लेख चयनिकाओं में किया गया है। सम्भवतः अनन्तदेव सिलहार राज कवि ही प्रस्तुत अनन्त देव है जिनके अनुदान की तिथि १०१६ शक संवत् (सन् १०९४ ई.) दिया हुआ है।

(४) **अनन्त पण्डित-** (ना.का.) स्वानुभूति नाटक के लेखक। ये १७वीं शताब्दी के कवि हैं और इनका निवास स्थान बनारस था।

(५) **अनन्तराम-** (ना.का.) इनका लिखा नाटक स्वानुभूत्यभिधा एक प्रतीक नाटक है। इसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम में १.७५२ पर किया गया है।

अनपोत नायक- (ना.का.) दे. (१) अनन्त एवं (२) अभिराम राघव।

अनयसिन्धु- (ना.पा.) हास्यार्णव (दे.) नामक हास्य नाटक का नायक। इसकी परेशानी यह है कि लोग वेकार की मर्यादाओं में बंधे हैं- स्त्रियां पतिव्रता है और पुरुष एक पत्नीव्रत। आखिर वह मन्त्री को अपनी परेशानी बतालता है और मन्त्री समाधान के लिये बन्धुरा कुट्टिनी के पास भेज देता है जहां उसे सभी प्रकार के अपने मनोनुकूल व्यक्ति मिल जाते हैं जो उसके नाम अनयसिन्धु (अन्याय का समुद्र) से ठीक रूप में मेल खा जाते हैं। बन्धुरा भी पूरा न्याय करती है। वह वृद्धों को नवयुवती लड़कियां भेंट

करती है और नवयुवकों को वृद्धाओं से सन्तोष करना पड़ता है।

अनर्घ नलचरित- (ना.क.) सुदर्शन (दे.) लिखित नाटक। इसका प्रकाशन चौखम्भा प्रकाशन बनारस से हो चुका है।

अनर्घराघव- (ना.कृ.) मुरारि कवि (दे.) रचित ७ अंकों का नाटक। इसमें रामचरित को नाट्य का विषय बनाया गया है। कवि का दावा है कि इस नाटक में उदात्त, वीर और अद्‌भुत रसों का पूरा आस्वादन प्राप्त किया जा सकता है। विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा, सीता स्वयंवर, परशुराम संवाद, रामवनगमन, सीताहरण, वालिवध, रावणवध, के बाद राम का अयोध्या आगमन तथा राम का राज्याभिषेक इत्यादि राम कथानक की प्रतिष्ठित घटनाओं का समावेश किया गया है। इस नाटक में कथोपकथन अत्यधिक संख्या में है और अनेक घटनाओं को सून्य ही रक्खा गया है। विश्वामित्र के दो शिष्यों शुनःशेप और पशुमेढ्र के संवाद से, वाली, रावण, जामवन्त हनुमान और ताड़का के इतिहास पर प्रकाश पड़ता है। संवादों के माध्यम से प्रकृति चित्रण भी किया गया है। जामवन्त और श्रमणा के संवाद से राम के वन गमन की पूरी जानकारी प्राप्त हो जाती है। राम और वालि के युद्ध का परिचय लक्ष्मण और गुह निषाद के संवाद के माध्यम से दिया गया है। इसी प्रकार रावण के चरों सारण और शुक के वार्तालाप मे राम के सेतुबन्धन और लंका गमन की सूचना मिलती है। दो विद्याधरों रत्नचूड़ और हेमाङ्गद के वार्तालाप के द्वारा राम रावण युद्ध का वर्णन किया गया है।

प्रतिष्ठित कथानक में अनेक नवीन उद्‌भावनायें भी दृष्टि गत होती हैं। रावण का मन्त्री माल्यवान रावण का सीता से विवाह कराने के लिये आतुर है। निष्फल होकर वह शूर्पणखा को राम के वन जाने की योजना में लगा देता है। शूर्पणखा मन्थरा के रूप में कैकेयी का पत्र लेकर दशरथ के पास जाती है जिसमें दो वरदान मांगे गये है। राम का वनवास उसी पत्र के आधार पर होता है। लक्ष्मण मित्र गुह निषाद को बचाने के प्रयत्न में दुन्दुभि के अस्थिकंकाल को उलट देते हैं जिससे वालि क्रुद्ध होकर युद्ध करने आ जाता है और वालिवध का उपक्रम हो जाता है। इसी प्रकार की कई कल्पनायें की गई हैं। राम के वन से लौटने में विभिन्न प्रदेशों के वर्णन के प्रसंग में कल्पना का विचित्र सहारा लिया गया है। राम पहले सुमेरु और चन्द्रलोक का दर्शन करते हैं; फिर लंका से अयोध्या की ओर चलते हैं। मार्ग में मलय पर्वत, प्रस्रवण गिरि, गोदावरी, माल्यवान्‌शिखर, कुण्डिनपुर, काञ्ची, उज्जयिनी, माहिष्मती, यमुना, गंगा, वाराणसी, मिथिला होकर पश्चिम की ओर प्रयाग में आते हैं- फिर अपनी राजधानी अयोध्या की ओर प्रस्थान करते हैं।

मुरारि कवि की सबसे बड़ी विशेषता है उनकी शब्द प्रयोग की क्षमता। इसीलिये व्याकरण के ग्रन्थों में उनके उदाहरणों को अपनाया गया है। मुरारि की शब्द-योजना पर पण्डितों में अनेक सूक्तियां प्रसिद्ध हो गई हैं।

इसका प्रकाशन काव्यमाला सीरीज से १८९४ में हो गया था। इस पर टीकायें

हैं- पूर्ण सरस्वती (ओरियण्टल लायब्रेरी मद्रास की त्रैवार्षिक रिपोर्ट सं. III ३४४०), हरिहर (तंजौर लायब्रेरी III ३३१५), मानविक्रम (मद्रास ओरियण्टल लायब्रेरी की त्रैवाविर्षिक रिपोर्ट II २५४०), रुचिपतिदत्त (बम्बई से प्रकाशित), धर्मानन्द (मद्रास लायब्रेरी का डिस्क्रिप्टिव कैटेलाग XXI ८३५५), वरद के पुत्र कृष्ण (प्रतियां डिस्क्रिप्टिव कैटेलाग, मद्रास XXI ८३५७; तंजौर VIII ३३२२; शेष गिरि शास्त्री रिपोर्ट II ६७; २०९ त्रैवार्षिक रिपोर्ट II १४५०), लक्ष्मीघर उपनाम रामानन्दाश्रम (प्रतियां-त्रैवार्षिक रिपोर्ट XXI ८३५९, तंजौर VIII ३३१९), विष्णु पण्डित (डिस्क्रिप्टिव कैटेलाग XXI ८३६०), मुक्तिनाथ के पुत्र विष्णु भट्ट (वही ८३८१), लक्ष्मण सूरि (मद्रास से प्रकाशित), जिन हर्ष- गणि (पेटर्सन IV २५ श्री निधि), पुरुषोत्तम त्रिपुरारि (कैटेलागस १.१५), धनेश्वर (बम्बई संस्करण में उल्लिखित)।

अनसूया- (ना.पा.) अभिज्ञान शाकुन्तलम में शकुन्तला की दो सखियों में एक। दूसरी सखी प्रियम्बदा है। इन दोनों का और साथ में शकुन्तला का अटूट प्रेम है। राजा के शब्दों में तीनों की उमर, रूप और लावण्य एक जैसा है जिस एक रुपता को देखकर आश्चर्य हो जाता है। फिर भी शकुन्तला का रूप लावण्य अभूतपूर्व है और दोनों सखियां उसके सौन्दर्य पर गर्व करती हैं। दोनों सखियां विनीत हैं; वाक्पटु है; शिष्ट हैं और मधुर भाषिणी हैं। दोनों शकुन्तला की देख-रेख रखती हैं, दोनों रहस्य से परिचित हैं, दोनों राजा और शकुन्तला को मिलाने में समान रूप से प्रयत्नशील हैं, विदा की तैयारी में दोनों मिलकर कार्यक्रम पूरा करती है। इस प्रकार दोनों का सामञ्जस्य निस्सन्देह आश्चर्य जनक है।

साम्य के साथ दोनों का वैषम्य भी स्पृहणीय है। अनुसूया का व्यवहार कुछ इस प्रकार का है जैसे एक बड़ी बहन अपनी छोटी बहनों की सुख सुविधा के प्रति स्वयं को उत्तरदायी समझती है और अपने कर्तव्य का तत्परता से निर्वाह करती है। शृङ्गार भावना उसके अन्दर भी है किन्तु वह इस दिशा में हल्कापन कभी नहीं दिखलाती। यदि उसके सामने प्रियम्बदा शृङ्गार विषयक बातचीत करती है तो वह स्वयं उतनी सीमा तक ही शामिल होती है जितनी उसके बड़प्पन के अनुकूल है। किन्तु वह प्रियम्वदा को रोकती नहीं अपितु प्रोत्साहन ही देती है। प्रियम्वदा भी उसके बड़प्पन को मानती है और उत्तर-दायित्व की सारी बातें उसे ही करने देती है। राजा का स्वागत वही करती है, राजा के सत्कार के लिये फल इत्यादि लाने का शकुन्तला को वही आदेश देती है। जब राजा का प्रेम शकुन्तला से जुड़ जाता है तब शकुन्तला को समर्पित करते हुये बड़ी बहन के समान राजा से वही प्रार्थना करती है- 'सुना है राजाओं की अनेक प्रेमिकायें होती हैं; अतः इस मेरी सखी से ऐसा व्यवहार करना कि बाद में इसके बन्धु-बान्धवों को इसके लिये शोक न करना पड़े। जब राजा बुलाने का वादा कर चला जाता है तब अनसूया को चिन्ता लगी हुई है कि कहीं राजा धोखा तो नहीं दे गया; यदि राजा भूल गया और अपने अन्त;

पुर में रमने लगा तो बेचारी मेरी सखी क्या करेगी! किन्तु प्रियम्वदा को यह आशंका नहीं है क्योंकि उसकी दृष्टि में इस प्रकार की आकृति वाले बुरे चरित्र के व्यक्ति नहीं होते। इसके प्रतिकूल प्रियम्बदा को दूसरी आशंका है कि इस प्रकार मनमाने ढंग से गान्धर्व विवाह कर लेने को पता नहीं पिता जी किस भावना से ग्रहण करें। किन्तु यह आशंका अनसूया को नहीं है- उसकी दृष्टि में प्रत्येक लड़की का पिता यही चाहता है कि उसकी पुत्री अच्छे घर में जाय। यदि यह काम परमात्मा ही पूरा करदे तो गुरुजन को और क्या चाहिए?

अनसूया जितनी लौकिक व्यवहार में निपुण और गम्भीर है प्रियम्वदा उतनी ही चुलबुली और शृङ्गार चेष्टाओं में निपुण है। वह मौके बेमौके शकुन्तला को छेड़ती और मजा लेती रहती है। किन्तु उसे शकुन्तला के सौन्दर्य से न तो ईर्ष्या है और न उसके प्रति कोई दुर्भावना है। वह शकुन्तला को चिढ़ाकर नाराज करना और फिर मना लेना खूब जानती है। इतना ही नहीं वह प्रेम के जोड़-तोड़ में भी निपुण मालूम पड़ती है। जब उसे मालूम पड़ जाता है कि शकुन्तला राजा से प्रेम करने लगी है तब वह तत्काल राजा को मिलाने का उपाय सोच लेती है और पत्र भेजने के लिये तैयार हो जाती है; क्योंकि राजा की दशा देखकर उसने पहले ही अनुमान लगा लिया है कि राजा भी प्रेम वेदना से पीड़ित है। जब राजा शकुन्तला के पास आकर बैठ जाता है तब वही दोनों को एकान्त देने का मार्ग निकाल लेती है और निपुणता के साथ गौतमी के आने की भी सूचना देती है। इन बातों में अनसूया की गति बिल्कुल नहीं है। जब बड़ी होने के कारण उस पर शकुन्तला के जन्म का विवरण देने का उत्तर दायित्व आ पड़ता है तब- 'मेनका का रूप लावण्य देखकर विश्वामित्र ने...' इतना कह कर शरमा जाती है। वह विश्वामित्र के बाद के किये हुये कार्य का कैसे वर्णन करे? राजा स्वयं समझ लेते हैं। इस प्रकार दोनों सहेलियों का चित्रण दो रूपों में किया गया है। जिनके व्यवहार में साम्य भी हैं और वैषम्य भी।

अनसूया चरितम्- (ना.कृ.) विष्णु दत्त त्रिपाठी (दे.) लिखित नाटक; रचना काल २०वीं. शताब्दी।

(१) **अनादिमिश्र-** (ना.का.) मणिमाला नाटिका के लेखक, समय १२वीं शताब्दी का मध्य; इनकी अध्यापकी वृत्ति थी तथा इनके पूर्वज विद्वत्ता के लिये प्रसिद्ध अच्छे कवि एवं ग्रन्थकार थे। इनके पितामह मुकुन्द ने मुदितमाधव गीतिकाव्य की रचना की थी इनके एक अन्य पूर्वज कवि चन्द्रराय दिवाकर अनेक ग्रन्थों के निर्माता के रूप में प्रतिष्ठित हैं। स्वयं इनका अपनी विद्वत्ता के लिये पर्याप्त मान था। उत्कल प्रदेश के खण्डपारा के राजा नारायण मांगपारा ने आपका सत्कार किया था। मणिमाला नाटिका के अतिरिक्त इन्होंने राससंगोष्ठी और काव्यकेलिकल्लोलिनी की भी रचना की थी। कुछ लोगों का विचार है कि सम्भवतः रास संगोष्ठी के लेखक अनादि मिश्र कोई अन्य व्यक्ति थे।

(२) **अनादिमिश्र–** (ना.का.) इनका लिखा राससंगोष्ठी (दे.) उपरुपक प्राप्त होता है। रचनाकाल १८वीं शताब्दी।

(३) **अनादिमिश्र–** (ना.का.) प्रभावती नाटक के लेखक सम्भवत: ये मणिमाला के लेखक अनादि मिश्र एवं राससंगोष्ठी-लेखक अनादि मिश्र दोनों से भिन्न है।

अनारकली– (ना.कृ.) प्रसिद्ध ऐतिहासिक कथा को लेकर डा. वेङ्कटराम राघवन (दे.) ने सन् १९३१ में इसकी रचना की थी। इसमें अभिनय के लिये ५० से भी अधिक पात्रों का उपयोग किया गया है। पात्रों के कथन भी लम्बे-लम्बे हैं। ६ठे अंक में सलीम का एक कथन ६५ पंक्तियों का है। इस प्रकार यह नाटक अभिनय के लिये सर्वथा अनुपयुक्त है। फिर भी विश्वसंस्कृतसम्मेलन में मद्रास में दो वार और दिल्ली में एक वार इसका अभिनय किया जा चुका है। इसका प्रकाशन रचना के ४० वर्ष वाद सन् १९६२ में किया गया। मूल कथानक में यह परिवर्तन किया गया है कि अनारकली को मृत्युदण्ड नहीं दिया जाता। अकवर की हिन्दू बहू उसे बचा लेती हैं।

अनुकूलगलहस्तकण्ठ– (ना.कृ.) विष्णुपद भट्टाचार्य (दे.) का लिखा दो अंकों का हास्य प्रधान रूपक। इसकी विशेषता है लम्बे रंगनिर्देश और एकोक्तियों की प्रचुरता। इसका प्रकाशन १९५८ में मञ्जूषा में हुआ था। रचना २०वीं शताब्दी की है।

अनुभवचिन्तामणि– (ना.कृ.) यह घनश्याम (दे.) की रचना है। इसका उल्लेख १९०५ में प्रकाशित संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट की रिपोर्ट में किया गया है।

अनुमितिपरिणय– (ना.कृ.) १८वीं शताब्दी के भरद्वाज गोत्रीय नृसिंह (दे.) द्वारा लिखित प्रतीक नाटक। इसमें परामर्श की पुत्री अनुमिति के न्यायरसिक से विवाह का अंकन किया गया है। ओरियण्टल मैन्युस्क्रिप्ट्स लायब्रेरी मद्रास के डिस्क्रिप्टिव कैटेलाग आफ संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट्स में इसका परिचय दिया गया है।

अनुशासन पर्व– (ना.सं.) महाभारत का १३वां पर्व। महाभारत में नाट्य सामग्री का उल्लेख नहीं है। केवल परवर्ती भाग १२वें शान्ति पर्व और १३वें अनुशासन पर्व में विद्वानों ने नाट्यकलाविषयक संकेत का निर्देश माना है। प्रो. हिलब्राण्ड ने शान्ति पर्व (१२.१४०.२१) में नाट्यशिल्पी का निर्देश माना है और टीकाकार नीलकण्ठ अनुशासन पर्व (१३.३३.१२) में नटों और नर्तकों का निर्देश मानते हैं। कवि के अनुसार इन दोनों स्थलों पर मूक अभिनय और मूक अभिनेता का मानना ही ठीक है।

अन्तर्व्याकरण नाट्य परिशिष्ट– (ना.क.) देखो नाट्य परिशिष्ट।

अन्धक– (ना.स.) एक वंश जिसका पाणिनि के एक सूत्र (४.१.११४) में वृष्णियों और कुरुओं के साथ उपादान किया गया है। पतञ्जलि ने उग्रसेन (कृष्ण के नाना) और श्वफल्क (उद्धव) का इसके उदाहरण के रूप में उल्लेख किया है। भास के नाटकों में इस वंश के पात्रों का उपादान किया गया है।

अन्धैरन्धस्य दृष्टिः प्रदीयते– (ना.कृ.) यह एकाङ्की नाटक है। जिसका मञ्जूषा के जनवरी १९५५ के अंक में प्रकाशन हुआ था। इसके लेखक हैं– क्षितीशचन्द्र चट्टोपाध्याय इसमें मुकुन्दानन्द स्वामी जी की मज़ाक उड़ाई गई है जिसे गंजे राजा के बाल उगाने के लिए मन्त्रियों ने बुलाया है। राजा उसे कभी मोदकानन्द, कभी मोदक मुकुन्द कभी मदनानन्द कह कर पुकारते हैं जिससे वह चिढ़ता है। एक बार राजा द्वारा मान्यता दिये जाने पर वह प्रसन्नता से उछल पड़ता है और उसकी पगड़ी गिर जाती है; तब ज्ञात होता है वह स्वयं गंजा है; राजा उसे अपमानित कर भगा देते हैं।

अन्नदेवता– (ना.कृ.) डा. वनमाला (दे.) लिखित नाटक।

अन्यायराज्यप्रध्वंसन– (ना.कृ.) रामानुजाचार्य द्वी लिखित अंक या उत्सृष्टिकाङ्क।

अपरपञ्चरात्र– (ना.कृ.) यह रामदत्त पन्त (दे.) लिखित नाटक है। इसमें भास के पञ्चरात्र का अनुकरण किया गया है और उसी विषय को लेकर नाट्य रचना की गई है।

अप्पय या अप्पय्य दीक्षित– (ना.का.) प्रसिद्ध विचारक शास्त्रकार एवं साहित्यकार। ये प्रसिद्ध वैयाकरण भट्टोजिदीक्षित के गुरु थे और दर्शन के साथ ही इनका काव्यशास्त्र पर भी अधिकार था। इन्होंने छोटी बड़ी सब मिलाकर लगभग १०८ पुस्तकें लिखीं थीं। वेदान्त और मीमांसा दर्शनों पर इनका पूरा अधिकार था। इनके लिखे ग्रन्थों में वसुमतीचित्रसेनाविलास नामक एक नाट्य कृति भी है जिसकी पाण्डुलिपि मैसूर की ओरियण्टल लायब्रेरी से प्राप्त की जा सकती है।

इनका समय १६वीं शताब्दी का उत्तरार्ध था। इनके पिता भरद्वाज गोत्रीय रंगराज दीक्षित एवं बाबा अच्चान दीक्षित थे। पिता और बाबा दोनों ही प्रकाण्ड विद्वान एवं साहित्यकार थे। इनका समय वेल्लूर, विजयनगर और पाण्ड्य प्रदेश में व्यतीत हुआ था। ७२ वर्ष की आयु में चिदम्बरम् में इनका देवाहसान हो गया।

अप्पा दीक्षित– (ना.का.) इन्हें अप्पा शास्त्री या पेरिया अप्पा नाम से भी याद किया जाता है। ये श्रीवत्स गोत्रीय चिदम्बर के पुत्र थे जिनका उपनाम अन्नन शास्त्री भी है। ये विश्वनाथ के भाई थे। इनका निवास स्थान तंजौर के निकट किलापुर था। ये कृष्णानन्द के शिष्य थे जिनसे इन्होंने तर्कशास्त्र और काव्यशास्त्र की शिक्षा पाई थी और इन विषयों में प्रवीणता के उपलक्ष्य में कवितार्किक सार्वभौम की उपाधि प्राप्त की थी। ये तञ्जौर के शाह जी के कृपापात्र थे। इनकी दो नाट्यकृतियां प्रकाश में आई हैं– श्रृंगारमञ्जरी शाहजीय (दे.) और मदन भूषण (दे.) भाण। इनके अतिरिक्त इन्होंने एक चम्पूकाव्य की भी रचना की थी।

अप्पाशास्त्री– (ना.का.) दे. अप्पा दीक्षित।

अप्रतिमप्रतिमम्– (ना.क.) जग्गू वकुलभूषण (दे.) का लिखा रूपक। यह दो अंकों का रूपक है। धृतराष्ट्र ने भीम की लोह मूर्ति को चूर्णित कर दिया था उसी को लेकर

लेकर इस नाटक की रचना की गई है।

अब्धिमन्थन– (ना.कृ.) यह चतुर्मुख लिखित एक अपभ्रंश काव्य है जिसमें कतिपय नाटकीय तत्व विद्यमान है अतः कृष्णमाचार्य ने इसे नाटक के रूप में स्वीकार किया है। हेमचन्द्र के काव्यानुशासन में इसका उल्लेख किया गया है। भोजराज के शृङ्गार प्रकाश एवं शारदातनथ के भावप्रकाशनम् में भी इसका उल्लेख पाया जाता है।

अभयकुमार– (ना.पा.) प्रबुद्धरौहिणेयप्रकरण का एक पात्र। यह मगध के श्रेणिक का मन्त्री है और अपराधियों को पकड़ने के लिए नियुक्त होकर अपने उत्तरदायित्व का सफलता पूर्वक निर्वाह करता है।

अभयदत्त– (ना.पा.) मुद्राराक्षस का एक पात्र जिसने राक्षस के आदेश पर चन्द्रगुप्त को विष देने की चेष्टा की और रहस्य खुल जाने पर चाणक्य ने वह विष पीने के लिये उसे ही विवश कर दिया जिससे उसकी मृत्यु हो गई।

अभयदेव– (ना.आ.) गुजरात में कुमार पाल के उत्तराधिकारी चक्रवर्ती राजा। इनका समय १३वीं शताब्दी का मध्य भाग है। इनको अभयपाल भी कहा जाता है। मोहराज पराजय नामक प्रतांक नाटक के लेखक यशः देव के ये आश्रयदाता थे।

अभिज्ञान शाकुन्तलम्– (ना.कृ.) कालिदास (दे.) लिखित नाटक। सामान्य रूप से इसे शकुन्तला नाटक भी कहा जाता है। यह भारतीय साहित्य की सर्वोत्तम मणि और विश्व की सर्वोत्तम नाट्यकृतियों में एक है। पाश्चात्य जगत् जिन भारतीय रचनाओं पर मन्त्रमुग्ध हुआ है उनमें इस रचना का मूर्धन्य स्थान है। जर्मन विद्वान् एवं कलाकार गेटे ने इसे यौवन की कली को वृद्धावस्था की प्रौढ़ता से, स्वर्ग को मृत्यु लोक से मेल कराने वाला और मन को जादू जैसी शक्ति से बांधने वाला बतलाया है।

नाटक का स्रोत महाभारत है; किन्तु कवि ने इसमें यथेष्ट परिवर्तन कर इसे सर्वथा नया रूप दे दिया है। पद्म पुराण में इससे मिलती जुलती कथा पाई जाती है। दुष्यन्त शिकार खेलने मालिनी के वनों में जाते हैं और संयोग वश कण्व के आश्रम के निकट पहुंच जाते हैं जहां कुलपति कण्व अपनी पालिता पुत्री शकुन्तला को अतिथिसत्कार का भार सौंपकर तीर्थ यात्रा पर चले गये हैं। राजा छिपकर शकुन्तला और उसकी सखियों की बातचीत सुनता है। वह प्रथम दर्शन में ही शकुन्तला के रुप पर आसक्त हो जाता है। सखियों से उसे ज्ञात हो जाता है कि शकुन्तला ब्राह्मण पुत्री नहीं विश्वामित्र की मेनका से उत्पन्न क्षत्रिय पुत्री है। अतः राजा की वह उपभोग्या हो सकती है। उधर शकुन्तला भी राजा पर अनुरक्त हो जाती है। राजा तपोवन की रक्षा के बहाने कुछ दिनों के लिए वहां रुक जाता है। और बहाना बनाकर विदूषक को वहां से हटा देता है। राजा और शकुन्तला का प्रणय सम्बन्ध बढ़ जाता है और राजा शकुन्तला से गान्धर्व विवाह कर लेता है। शकुन्तला गर्भवती हो जाती है। राजा दो चार दिन में बुला लेने का वादा

कर वहाँ से चला जाता है।

शकुन्तला राजा की याद में खोई रहती है और अतिथि सत्कार के अपने कर्तव्य का भी ठीक रूप में पालन नहीं कर पाती। फलतः दुर्वासा के क्रोध और शाप की पात्र बनती है कि उसका प्रेमी उसे भूल जायेगा और याद दिलाने पर भी याद नहीं कर सकेगा। सखियाँ इस शाप को सुनती हैं और प्रार्थना करके शाप को सीमित करा लेती है कि राजा का विस्मरण तभी तक रहेगा जब तक वह कोई अपनी निशानी नहीं देखेगा। शकुन्तला इस शाप से सर्वथा अनभिज्ञ है। कण्व तीर्थ यात्रा से लौटते हैं; उन्हें शकुन्तला के गान्धर्व विवाह और गर्भ स्थिति का पता चल पाता है। वे प्रसन्नता पूर्वक स्वीकार कर लेते हैं और शकुन्तला को दो शिष्यों एवं गौतमी के साथ पति के घर को भेज देते हैं। मार्ग में एकतीर्थ में शकुन्तला की उंगली से अंगूठी गिर जाती है।

राजा शाप के प्रभाव से शकुन्तला को पहिंचानते नहीं। यद्यपि अभूतवूर्व सौन्दर्य पर वे रीझ अवश्य गये हैं किन्तु धर्मव्यतिक्रम के भय से वे उसका परित्याग कर देते हैं। लौटते समय शकुन्तला की माता मेनका शकुन्तला को गोद में लेकर अन्तर्ध्यान हो जाती है और उसे ले जाकर महर्षि कश्यप के आश्रम में रखती है जहां शकुन्तला पुत्र को जन्म देती है और उसका पालन पोषण वहाँ होता है।

इधर शकुन्तला की खोई हुई अंगूठी मछली के पेट से एक मछुये के हाथ लगती है। वह राजा की अंगूठी है और राजा के नामाक्षर उस पर मुद्रित है। अतः मछुआ उसें राजा के पास पहुंचा देता है। अंगूठी देखने से शाप का प्रभाव जाता रहता है और राजा को हर एक बात याद आ जाती है। राजा शकुन्तला के वियोग में तड़पने लगता है। इसी अवसर पर इन्द्र का सारथी मातलि राजा को दानवों पर विजय के इन्द्र के कार्य के लिये स्वर्ग लोक को ले जाता है। राजा विजय कर जब लौटते हैं तब हिमालय पर कश्यप के आश्रम में उतरते हैं। वहां उनका स्त्री पुत्र से सम्मिलन होता है। महर्षि कश्यप उन्हें शाप की बात बतलाते हैं जिससे राजा के प्रति शकुन्तला की शिकायत दूर हो जाती है और राजा की पश्चात्ताप की भावना जाती रहती है। दोनों का सुखमय सम्मिलन हो जाता है।

भाषा शैली, अलंकार, वस्तु, रस इत्यादि सभी दृष्टियों से शकुन्तला नाटक सारे भारतीय साहित्य का मास्टरपीस है। इस एक ही कृति में भारतीय संस्कृति का पूरा चित्र उजागर हो जाता है। गृहस्थ धर्म, वन्य जीवन, स्वर्ग का निवास, जीवन के विविध क्षेत्र, अनेक प्रवृत्तियां, अनेक विध सम्बन्ध इत्यादि प्रत्येक पक्ष का विशद चित्र प्रस्तुत कर दिया गया है। दुष्यन्त के चरित्र में धर्म भीरु और इन्द्रिय लोलुप दुराचारी दोनों विरोधी मनोवृत्तियों का इतनी निपुणता से गुम्फन किया गया है कि कहीं जोड़ का पता ही नहीं चलता। व राजा भी है और राजकीय कर्तव्यों के प्रति पूर्ण रूप से जागरूक है। शकुन्तला के चरित्र में एक अल्हड़ वालिका, एक प्रेमिका, एक विषयोपयोग परायण युवती, एक परित्यक्ता

धर्मशील महिला जो यातनायें सहती हुई मैके में पुत्र को जन्म देती है इत्यादि अनेक चित्र समाविष्ट कर दिये गये हैं। कहने को तो वह वनवासिनी भोली भाली हरिणी है किन्तु साथ ही उसका भरा-पूरा परिवार है- पिता है, माता है, सहेलियां क्या सहेली जैसी बहनें हैं, प्रेमी और रक्षा में समर्थ भाई हैं, मां है, मैका है, वृक्ष, लता, पक्षु पक्षी के रूप में ही सही सारा समाजिक वातावरण है, फिर एक योग्य पुत्र है। इस प्रकार हिन्दु समाज का पूरा चित्र केवल एक चरित्र में ही हमारे सामने आ जाता है। अच्छे घरानों में दो ही प्रकार के व्यक्ति होते हैं या तो गम्भीर चिन्तनशील मितभाषी या फिर दवंगी के साथ अपनी बात रखने वाले व्यवहार कुशल व्यक्ति, इसी प्रकार बहनों में भी दो ही प्रकार की होती हैं- या तो अपने बड़प्पन की मर्यादा में बंधी हुई छोटी बहनों के प्रति उत्तर दायित्व निभाने वाली या फिर हंसोड़-चुलबुली एंव प्रेम व्यवहार में बहनों का निपुणता से साथ देने वाली। इसी दृष्टि से कवि ने भाइयों और बहनों के युग्म कल्पित किये है। निस्सन्देह दुर्वासा के शाप की जबरदस्त कल्पना कवि की कला निपुणता का एक सशक्त निदर्शन है। विदा के अवसर का वन्य जीवन से भी कवि ने ऐसा वातावरण बना दिया है कि हम उसी बातावरण में खो जाते हैं। केवल एक एक पद्य में कवि ने समाज का परिपूर्ण लेखा जोखा प्रस्तुत कर दिया है- इसमें पुत्री को विदा करने वाले पिता के मनोभाव हैं, पुत्री की सदा को छूटने वाली अतीत जीवन की झांकी है, पिता का दामाद के प्रति निवेदन है और सुगृहणी के कर्तव्यों का उपदेश है। इस प्रकार कला, रस, चित्रण और व्यापक परिवेष सभी दृष्टियों से अभिज्ञानशाकुन्तल बेजोड़ है इसमें सन्देह नहीं।

अभिज्ञान शाकुन्तल पर लिखा गया साहित्य बहुत विशाल है जिसमें टीकायें हैं, समीक्षायें हैं, भाषान्तर हैं, परिचयात्मक लेख है। यह एक अत्यन्त विशाल साहित्य राशि है। शकुन्तला का प्रकाशन विश्व के अनेक भागों में हुआ है और होता जा रहा है। कतिपय टीकाकारों का नामोल्लेख किया जा सकता है- राघव (टीका बम्बई से प्रकाशित हुई है), कात्यवेम (बम्बई से प्रकाशित), घन श्याम (अंग्रेजी भूमिका के साथ त्रिवेन्द्रम से प्रकाशित), अभिराम (कैटेलागस कैटेलागोरम १.२३; II १८७; III ६), प्रेमचन्द्र (कलकत्ता से प्रकाशित), डी.वी. पन्त (कलकत्ता से प्रकाशित), विद्यासागर (कलकत्ता से प्रकाशित), वेङ्कटाचार्य (मद्रास से प्रकाशित), श्रीकृष्णनाथ; वालगोविन्द (त्रैवार्षिक खोज रिपोर्ट III ३९४२), दक्षिणावर्तनाथ,(वही III ३९४२), रामवर्मन और राम पिश रोटी (त्रिचूर से प्रकाशित), कृष्णानाथ पञ्चानन, चन्द्रशेखर, डमरु वल्लभ, प्राकृताचार्य, नारायण, रामभद्र, शङ्कर इत्यादि। इनके अतिरिक्त अनेक टीकायें ऐसी हैं जिनके लेखकों के नाम अज्ञात हैं।

अंग्रेजी में अनुवादक - सर डब्लू जोंस (कलकत्ता), एम. विलियम्स (लन्दन और बम्बई से प्रकाशित), के.के. भट्टाचार्य (कलकत्ता से प्रकाशित). कमल सत्यनाथन (मद्रास), टी.आर. रत्नम् अय्यर (मद्रास), के. वनर्जी (नदिया), जे.जी. जेनिंग (इलाहाबाद), आर. वासुदेव राव (मद्रास), रविदत्त (पद्यबद्ध अनुवाद कलकत्ता से प्रकाशित), ए.एम. राइट (स्प्रिंगफील्ड

पाण्डुलिपि), एस. राय (कलकत्ता), अन्य भाषाओं में अनुवादों का परिचय स्किलर ने दिया है (विब्लियोथेका)।

अभिज्ञान शाकुन्तलम पर प्रमुख परिचयात्मक एवं समालोचनात्मक कृतियां एम. स्किलर (बिव्लि ४८-५६), वी. मजूमदार (संस्करण की भूमिका), आर. पिशेल (संस्करण की भूमिका), पी.एन. पाटेकर (संस्करण की भूमिका - पूना), एन.सी. विद्यारत्न (संस्करण की भूमिका, कलकत्ता), टी.ई. श्रीनिवासाचार्य (संस्करण की भूमिका - कुम्भकोणम), टी. होल्म (संस्करण की भूमिका - लन्दन), एस. राय (संस्करण की भूमिका - कलकत्ता), आर.आर. रबे 'डे कालिदास शकुन्तला (ब्रेस्ल्यू), वी सरकार 'शकुन्तला रहस्य' टी लक्ष्मी नरसिंह राव 'शकुन्तला' (जर्नल आफ मिथिक सोसाइटी बंगलौर IX ६३), आर.कुलकर्णी 'ए यूनीवर्सिटी इन दि शकुन्तला' ए.सी. वनर्जी 'कालिदास हिज प्वइटरी एण्ड माइण्ड' (कलकत्ता), रवीन्द्र नाथ टैगोर 'शकुन्तला एण्ड इट्स इनर मीनिंग (बंगाली में), अंग्रेजी में अनुवाद (मद्रास रिव्यू IX) भारती III-२५)।

अभिनन्द- (ना.का.) शतानन्द के पुत्र एवं (१) भीम पराक्रम के लेखक। इनका लिखा रामचरित महाकाव्य अधिक प्रसिद्ध है जिससे, मम्मट, भोज, महिमभट्ट जैसे महान शास्त्रकारों ने उद्धरण दिये हैं। मद्रास की ओरियण्टल लायब्रेरी में इनके भीम पराक्रम नाटक की एक प्रति सुरक्षित है जिससे उनका इस नाटक का कर्तृत्व सिद्ध होता है। सोड्ढल ने इनकी और राज शेखर की प्रशंसा की है। इनकी जिस क्रम से प्रशस्ति लिखी गई है उससे ज्ञात होता है कि ये राज शेखर के पूर्ववर्ती थे। इन्होंने स्वयं हारवर्ष युवराज का उल्लेख किया है और लिखा है कि यह युवराज अपने सिंहासन पर स्थान देकर इनका सम्मान किया करते थे। इन्होंने और सोड्ढल ने हारवर्ष को कवियों के आश्रय दाताओं में विक्रम, हाल और हर्ष के समकक्ष रक्खा है। अभिनन्द का समय नवीं शताब्दी का पूर्वार्ध है।

अभिनव कालिदास- (ना.का.) वशिष्ठ गोत्रीय सर्वशास्त्री के पुत्र कृष्णमूर्ति स्वयं को अभिनव कालिदास कहते थे। उनका लिखा मदनाभ्युदय भाण प्राप्त होता है। जिसका उल्लेख मद्रास की ओरियण्टल लायब्रेरी पाण्डुलिपि अनुभाग में सं. II २०१३ तथा सं. III २८७३ पर किया गया है। इन्हीं की एक दूसरी कृति यक्षोल्लास भी प्राप्त होती है। इनका समय १७वीं शताब्दी माना जाता है। एक दूसरे अभिनव कालिदास के नाम पर कई चम्पू और काव्य ग्रन्थ प्राप्त होते हैं। कुछ लोग इन दोनों कवियों को एक ही मानते हैं। दूसरे अभिनव कालिदास ने अपना वास्तविक नाम नहीं लिखा है; किन्तु उनके शिष्य कविकुञ्जर ने उनको पिनाकिनी नदी तटवर्ती विद्यानगर के राजा राजशेखर का दरवारी कवि बतलाया है जिनका समय ११वीं शदाब्दी का मध्य भाग है। अतः दोनों कवियों का एकीकरण नहीं हो सकता। अनेक अन्य कवियों ने भी इस उपाधि को धारण करने की चेष्टा की है जिनमें भागवत चम्पू के लेखक गोपाल शास्त्री, नञ्जराजयशोभूषण के

लेखख नृसिंह कवि, संक्षेप शंकरविजय के लेखक माधव आदि सम्मिलित हैं। इसी प्रकार शृङ्गारशेखर या शृङ्गारकोश के लेखक ने भी कलियुगकालिदास की उपाधि धारण की थी।

अभिनवगोपालपुलिन्दिनीचरित– (ना.कृ.) यह एक संगीत रूपक है जिसमें बीच-बीच में संगीत का प्रयोग किया गया है। तंजौर लायब्रेरी के XII ७३५२ संख्या पर इसका उल्लेख किया गया है।

अभिनवभारती में उल्लिखित कतिपय नाटक– (ना.कृ.) अभिसारिका वञ्चितक; (अ XXI); उदात्तराघव (XIX); कृत्यारावण (XVII); गुणमाला (IV); चूडामणि डोम्बिका (IV); तापसवत्सराज (VI); दरिद्रचारूदत्त (XIX); देवी चन्द्रगुप्तम् (XVIII); द्रौपदीस्वयंम्बर (VI); पाण्डवानन्द (XIX); पादताडतक (XVI); पुष्पभूषितक (XVIII); प्रतिमानिरुद्ध (XIX); मायापुष्पक (XIII); मुद्राराक्षस (XVIII); राघवविजय (IV); स्वप्नवासवदत्तम् (I);

(१) **अभिनवराघव–** (ना.क.) क्षीरस्वामी (दे.) लिखित नाटक। हेमचन्द्र के शिष्य रामचन्द्र ने नाट्यदर्पण में इसका उल्लेख किया है और इससे उद्धरण भी दिया है। कुछ लोगों ने इस नाटक के क्षीरस्वामी द्वारा लिखे होने पर सन्देह व्यक्त किया है। यदि क्षीरस्वामी ही इसके लेखक हैं तो क्या ये वे ही क्षीरस्वामी हैं जिन्होंने अमर कोश की टीका क्षीरतरंगिणी की रचना की थी या कोई अन्य क्षीर स्वामी हैं इस विषय में निश्चयात्मक रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता।

(२) **अभिनवराघव–** (ना.कृ.) सुन्दरवीरराघव (दे.) का लिखा नाटक। इसमें रामायण कथा का नाटक के रूप में प्रस्तुतीकरण किया गया है। इस नाटक में ८ अंक है। शृङ्गाररस प्रधान है। पात्रों का वेष बदल कर रंगमञ्च पर आना इस नाटक की बहुत बड़ी विशेषता है। नायक अधिकतकर सामने नहीं आता। अन्य पात्रों के संवादों की भरमार है। यह नाटक पढ़ने योग्य तो है किन्तु अभिनय योग्य नहीं है। फिर भी इसका प्रथम अभिनय चैत्रयात्रा महोत्सव के अवसर पर रंगनगरी के रंगनाथ देवालय में किया गया था। इसमें काल्पनिक प्रसंगों की भरमार है, मूल कथानक विल्कुल बदल दिया गया है। या पात्रों की अधिकता के कारण कथानक जटिल हो गया है।

इसकी हस्तलिखित् प्रति सागरविश्वविद्यालय के पुस्तकालय में प्राप्त की जा सकती है। इसके अतिरिक्त ट्रायेनियल कैटेलाग आफ संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट्स इन ओरियण्टल लायब्रेरी मद्रास सं. III ३३८३ पर भी इसका उल्लेख किया गया है।

अभिनववेणीसंहार– (ना.कृ.) यह पुरुषोत्तमदेव महाराज (दे.) का लिखा रूपक बतलाया जाता है।

अभिमन्यु– (ना.पात्र) अर्जुन का पुत्र जो चक्रव्यूह में मारा गया था। यह कई नाटकों में एक पात्र के रूप में या उल्लेख रूप में आया है–

(१) **दूतघटोत्कच**- में इसकी मृत्यु पर पाण्डव समाज में शोक मनाया जा रहा है।

(२) **वेणी संहार**- में इसकी मृत्यु का उल्लेख किया गया है।

(३) **पञ्चरात्र**- में विराट पुर में इसकी गिरफ्तारी और सुभद्रा के साथ विवाह दिखलाया गया है।

(४) **धनञ्जय विजय**- में इसका सुभद्रा के साथ विवाह दिखलाया गया है।

अभिमन्युनाटक- (ना.क.) यह शालग्रामलिखित महाभारतविषयक नाटक है। इसमें पाण्डव पुत्रअभिमन्यु की कथा आई है। इसका प्रकाशन कलकत्ता से हो चुका है।

अभिरामचित्रलेखम्- (ना.कृ.) १० अंकों का यह विशाल प्रकरण कविवल्लभ का लिखा हुआ है। भुजंगराज की पुत्री चित्रलेखा के साथ अभिराम के विवाह का इसमें चित्रण है। कहा जाता है इसका प्रथम प्रस्तुतीकरण चैत्रोत्सव के अवसर पर श्रीरंगम् में किया गया था। यह मद्रास के प्राच्य पुस्तकालय संस्कृत पाण्डुलिपि अनुभाग में ट्रायनियल कैटेलाग (III ३९४५) संख्या पर अंकित है।

अभिराममणि- (ना.कृ.) यह सुन्दर मिश्र (जाज्जागिरि) द्वारा लिखा हुआ ७ अंकों का रामविषयक नाटक है। इसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम खण्ड १ सं. २६ पर किया गया है। इसकी रचना १५९९ में हुई थी और विल्सन द्वारा थियेटर में II ३९५ में इसका विश्लेषण किया गया है। इसका प्रथम अभिनय जगन्नाथपुरी में पुरुषोत्तम विष्णु के महोत्सव के अवसर पर किया गया था।

(१) **अभिरामराघव**- (ना.कृ.) यह राम कथा परक रचना है। इसके लेखक हैं अनन्त या अनपोत (दे.) जो शिंगभूपाल के पिता थे। इसका उल्लेख रसार्णवसुधाकर में किया गया है।

(२) **अभिरामराघव**- (ना.कृ.) यह रामविषयक नाटक है जिसकी रचना नैपाल के माणिक ने सन् १८९० में की थी।

अभिषेक- (ना.कृ.) भास (दे.) कृत रामविषयक नाटक। इसमें ६ अंक हैं। यह रामायण के किष्किन्धा, सुन्दर और युद्धकाण्डों पर आधारित है। इसका प्रारम्भ वालिवध से होता है और उसकी समाप्ति राम के राज्याभिषेक के साथ हो जाती है। कथानक अधिकांशतः प्रतिमा (दे.) के समरूप ही है। इस नाटक में भी प्रतिमा नाटक के समान मायिकता दृष्टिगत होती है। इसमें यथास्थान संगीत का भी प्रयोग किया गयाहै। प्रतिमा की अपेक्षा इस नाटक में कवि ने वाल्मीकि का अधिक अनुसरण किया है। किन्तु उनकी मौलिक कल्पनाशीलता भी इस नाटक में यत्र तत्र प्रस्फुटित हुई है, विशेष रूप से सेतुबन्ध के प्रसंग में। वाल्मीकि रामायण में कायदे से सेतु बांधने का वर्णन है जबकि इस नाटक में राम सेतु पर पुल नहीं बांधते। वरुण राम की अमोध शक्ति से भयभीत होकर सामने आते हैं; राम की प्रार्थना करते हैं और समुद्र को दो भागों में विभाजित कर देते हैं। बीच

में जो मार्ग निकल आता है उसी से सेना सहित राम समुद्र पार पहुंच जाते हैं। इसी प्रकार की कतिपय छोटी-मोटी कल्पनायें की गई हैं। इसकी भाषा मनोरम तथा प्रसादगुण पूर्ण हैं। उच्चकोटि की कल्पनायें और चित्रण की विशेषतायें इसे अधिक मनोरम बना देती हैं। इसमें राम को पूर्ण ब्रह्म का अवतार माना गया है और नाटक के अन्त में अग्निदेव सीता को लक्ष्मी का अवतार बतलाया गया है।

अभिसारिकावञ्चितक– (ना.कृ.) विशाखदत्त (दे.) लिखित नाटक। भोजराज ने विशाखदेव की कृति के रूप में इसका उल्लेख किया है। अभिवनगुप्त ने भी अभिनव-भारती में इसका उद्धरण दिया है। इन उद्धरणों और नामकरण पर विचार करने से इस नाटक के कथानक का उन्नयन इस प्रकार किया जा सकता है– 'भास (दे.) के स्वप्नवासवदत्तम् (दे.) के बाद का इसमें कथानक है। उस नाटक में यौगन्धरायण द्वारा वासवदत्ता को छिपाकर उदयन का पद्मावती से विवाह करा दिया गया था। इस नाटक में किसी शरारती व्यक्ति ने पद्मावती को उदयन की आंखों से गिराने के लिये यह प्रसिद्ध कर दिया कि पद्मावती ने सैतियाडाह के वशीभूत होकर पुत्र का वध किया है। हो सकता है उदयन का यह पुत्र वासवदत्ता से उत्पन्न हुआ हो। इस पर राजा को पद्मावती से घृणा हो गई। वे समझने लगे कि जिसे वे अप्सरा समझ रहे थे वह तो विष से भरी सर्पिणी निकली। पद्मावती ने समझ लिया कि राजा किसी प्रकार की सफाई भी नहीं सुनेंगे। अतः उसने एक योजना बनाई– वह शिकारी की पुत्री का रूप धारण कर वन में राजा को आकर्षित करने लगी। स्त्रियों के विषय में राजा बहुत कमजोर था ही। अतः वह पूर्ण रूप से उस शिकारीकन्या पर आसक्त हो गया और उसे अभिसारस्थल पर मिलने लगा। जब राजा पूर्ण रूप से रूपजाल में फंस गया तब वह अपने रूप में आ गई और राजा को सफाई दी जिसे राजा ने स्वीकार कर लिया।

अभिसारिका को वञ्चित करने के कारण इस नाटक का नाम अभिसारिकावञ्चितक रक्खा। भोजराज के इन शब्दों से– 'वत्सराजः सम्भावितपुत्रवधायै पद्मावत्यै क्रुद्धः' इस कथानक पर स्पष्ट प्रकाश पड़ता है। अभिनवगुप्त के ये शब्द भी कथानक के उन्नयन में सहायक होते हैं– 'विशाखदत्तकविकृतेअभिसारिकावञ्चितके वत्सेशस्य पद्मावतीभट्टशवरी वेशाद्याचरणरूपात् लीलाचेष्टितात् कामः प्रत्यानीतः।

कहीं कहीं इस पुस्तक का नाम अभिसारिकाबन्धितक भी मिलता है। यह नाटक अंगलीला द्वारा नष्टराग प्रत्यागमन का उदाहरण है।

अभिसारिकाबन्धितक– (ना.क.) (दे.) अभिसारिका वञ्चितक।

अभेदानन्द– (ना.क.) यह डा. रमाचौधरी लिखित १२ दृश्यों का रूपक है जिसमें राकृष्ण परमहंस के शिष्य अमेदानन्द का चित्रण किया गया है।

अमरचन्द्र– (ना.का.) वनमाला नाटिका (दे.) के लेखक। ये भी जैन कवि हैं किन्तु

जिनदत्त सूरि के शिष्य अनेक ग्रन्थों के निर्माता प्रसिद्ध अमर चन्द्र से ये भिन्न थे। इसी प्रकार काव्याम्नाय के लेखक अमरचन्द्र से भी ये भिन्न थे।

अमरमङ्गल– (ना.कृ.) पञ्चानन लिखित नाटक। इसमें माहराणा प्रताप के पुत्र अमर सिंह के जीवन को नाट्य विषय के रूप में स्वीकार किया गया है। इसकी रचना सन् १९१३ में हुई थी। यह ८ अंकों का नाटक है जिसमें कर्नल टाड ने 'एनाल्स आफ राजस्थान' का सहारा लिया गया है। राजसिंह राठौर अपनी पुत्री का विवाह मुगल बादशाह से करना चाहते हैं किन्तु उस पर अमर सिंह भी मुग्ध है। रानी पुत्री को अमर सिंह के पास भेज देती है। मानसिंह अनेक छलकपटों द्वारा अमरसिंह को नष्ट कर देना या उसे चरित्र भ्रष्ट कर देना चाहता है। किन्तु सारी पोल खुल जाती है। जिस वेश्या को अमर सिंह के चरित्र नाश के लिये प्रेषित किया गया था वह अमर सिंह के प्रभाव से स्वयं साध्वी बन जाती है। अन्त में मेवाड़ की विजय होती है और अमरसिंह का विवाह भी हो जाता है।

अमरसिंह माणिक्य– (ना.का.) वैकुण्ठ विजयम् नाटक के लेखक। समय १६वीं शताब्दी। ये नोआरवाली के राजा लक्ष्मण मणिक्य के पुत्र थे।

अमरमार्कण्डेय– (ना.कृ.) शङ्करलाल का लिखा नाटक। इस की रचना २०वीं शताब्दी के प्रथम चरण में हुई थी। मुनि मृकण्डु और पत्नी विशालाक्षी को शिव-पार्वती की कृपा से सर्वज्ञ पुत्र प्राप्त हुआ था; किन्तु वह उपमन्यु के उपदेश से मृत्युञ्जय मन्त्र जपकर एवं माता-पिता की साधना के प्रताप से चिरायु हो गया था। पहले यमदूतों को विमुख होना पड़ा। जब स्वयं यमराज महिष पर आरूढ़ होकर आये तब शिव से उनका युद्ध हुआ। यम मूर्छित हो गये और मार्कण्डेय की प्रार्थना पर शिव ने उन्हें सचेत कर दिया, वे यमलोक चले गये तथा मार्कण्डेय अमर हो गये।

इस नाटक में गद्य के स्थान पर भी पद्य का प्रयोग किया गया है और इसमें प्राकृत का प्रयोग विल्कुल नहीं है। छायातत्व का भी समावेश बहुत अधिक किया गया है। करुणा, भय, राजयक्ष्मा जैसे अमूर्त तत्वों का पात्ररूप में प्रवेश इसमें प्रतीक तत्व का परिचायक है।

अमरमीरम्– (ना.कृ.) यतीन्द्रविमल चौधरी लिखित नाटक। इसमें १२ अंक हैं जिनमें मीराबई के विवाह के बाद की घटनाओं को नाट्य विषय बनाया गया है। इसका प्रकाशन प्राच्यवाणी मन्दिर कलकत्ता से हो गया था।

अमर्षमहिमा– (ना.क) यह तिरुवेंकटाचार्य का लिखा रूपक है। रामचन्द्र को पत्नी पर क्रोध इसलिये आता है कि उसने स्वादिष्ट भोजन नहीं बनाया। आफिस में जाकर वह अपना क्रोध अपने अधीनस्थ अधिकारी पर उतारता है। वह अधनिस्थ अधिकारी घर जाकर अपनी पत्नी पर अपना क्रोध बुझाता है औरउसकी पत्नी नौकरानी को आड़े हाथों

लेती है।

अमियनाथ चक्रवर्ती– (ना.का.) ये बंगाल के साहित्यकार हैं। इन्होंने हुवली में संस्कृत परिषद् की स्थापना की थी। इनके पिता का नाम दुर्गानाथ था। इनकी मृत्यु १९७० में हो गई। इनकी कई पुस्तकें प्रकाश में आई हैं जिनमें हरिनामामृत, सम्भवामि-युगे युगे, धर्मराज्य (नाटक) श्रीकृष्ण चैतन्य एवं मेघनाद वध का उल्लेख किया जा सकता है।

अमीलिया गलन्ति– (ना.कृ.) जर्मन कवि लेसिंग के लिखे एमेलिया गैलेट्टी का संस्कृतानुवाद है। इसके अनुवादक आर. सामशास्त्री हैं जिन्होंने ११ दृश्यों में इसे भाषान्तरित किया था। मैसूर संस्कृत कालेज जर्नल में इसका प्रकाशन हो गया था।

अमूल्यमाल्यम्– (ना.कृ.) जग्गू कुल भूषण का लिखा दो अंकों का नाटक। प्रथम अंक कृष्ण के वाल्य काल के विषय में और दूसरा अंक उनके मथुरा में प्रथम प्रवेश के विषय में है। इसमें नृत्य गीत और चटपटे संवादों का समावेश हुआ है। कृष्ण की अलौकिक शक्ति का भी इसमें प्रदर्शन किया गया है। दधिभाण्ड नाम के एक गोप ने कृष्ण को एक गोपी की पकड़ से बचा लिया जब वे मक्खन चुरा कर भाग रहे थे। उसके पुरस्कार के रूप में कृष्ण ने उसे चतुर्भुज रूप में दर्शन देकर मोक्ष प्रदान किया। कृष्ण के कहने से एक गोप कन्या ने सोने का कंकण देकर जामुन खरीद लिये थे। वे जामुन सोने के हो गए। कृष्ण वेष बदल कर एक मालाकार से माला मांगने गये। उसने यह कहकर माला देने से इन्कार कर दिया कि ये माला तो कृष्ण के लिए है। उसे कृष्ण ने चतुर्भुज रूप में दर्शन देकर मोक्ष प्रदान कर दिया।

(१) **अमृतमन्थन**– (ना.कृ.) नाट्यशास्त्र ४.२ में इस समवकार का उल्लेख है। जब नवीन नाट्यगृह में रंगदैवत पूजन समाप्त हो गया तब भरत ने ब्रह्माजी से अग्रिम आदेश की प्रार्थना की। ब्रह्मा ने आदेश दिया कि अमृत-मन्थन का अभिनय करो। यह उत्साहजनक और देवताओं को आनन्द देने वाला है; मैंने इस समवकार की रचना की है। यह धर्म, अर्थ और काम का साधक है। जब उसका अभिनय किया गया तब कर्म और भावके अनुदर्शन से देवता अत्यन्त प्रसन्न हुये।

अमृतमन्थन की कथा महाभारत में आई है।

(२) **अमृतमन्थन**– (ना.कृ.) अमृतमन्थन की पौराणिक कथा को लेकर लिखा गया नाटक। ५ अंकों के इस नाटक के लेखक हैं वेङ्कटाचार्य। इसका रचनाकाल १२वीं शताब्दी का उत्तरार्ध है।

(३) **अमृतमन्थन**– (ना.कृ.) श्री निवासाचार्य (ईञ्चमवाडि) (दे.) लिखित एक अर्धनाट्यरचना। जयदेव के गीत गोविन्द (दे.) के समान यह भी नाटक और प्रगीत के मध्य की रचना है। यह नाट्यकृति की अपेक्षा प्रगीत काव्य अधिक है।

(४) **अमृतमन्थनम्–** (ना.कृ.) नारायणशास्त्री (दे.) लिखित ८ अंकों का नाटक।

अमृतशर्मिष्ठम्– (ना.कृ.) विश्वनाथ सत्यनारायण (दे.) लिखित नाटक। महाभारत की शर्मिष्ठा ययाति की कथा का नई भंगिमा के साथ इसमें उपादान किया गया है। शर्मिष्ठा यपाति के वियोग में मरणासन्न अवस्था में रोगशय्या पर पड़ी है। चिकित्सक वैशम्पायन आता है। शर्मिष्ठा पूर्वजन्म का हाल बतलाती है और कहती है कि अगली पूर्णमासी को वह चन्द्रमा में मिल जायेगी। वैशम्पायन उसे ययाति से मिला देता है जो कि चन्द्रवंशीय राजा है। यह नौ अंकों का नाटक है। इसमें एकोक्तियां पर्याप्त मात्रा में हैं। संवादों में चपलता के दर्शन होते हैं।

अमृतोदय– (ना.कृ.) यह गोकुलनाथ लिखित प्रतीक नाटक है। इसमे इन्होंने सृष्टि की उत्पत्ति से लेकर प्रलय तक की जीवात्मा की कथा लिखी है। इसमें श्रुति, आन्वीक्षिकी, कथा, पतञ्जलि, जावालि इत्यादि पात्रों का प्रवेश कराया गया है। इसका रचनाकाल १६९३ माना जाता है। इसका प्रकाशन काव्यमाला सीरीज बम्बई में १८९७ में हुआ था।

यह रचना दार्शनिक विषय को लेकर चलती है। प्रमिति (विशुद्ध ज्ञान) श्रुति की पुत्री है जिस पर सुगतागम (बौद्ध दर्शन) के सैनिक आक्रमण कर देते हैं तब आन्वीक्षिकी और तर्क उसकी रक्षा कर उसे पुरुष के पास पहुंचा देते हैं। उधर पुरुष पुरुषोत्तम के वियोग से पीड़ित हैं। पतञ्जलि उसका उपचार योग सिद्धि के द्वारा करतेहैं। तब वह स्वस्थ होकर पुरुषोत्तम में विलीन होने के लिये आतुर हो जाता है। बुद्धमत, जैनमत, पाशुपत वैष्णव मत सभी से आन्वीक्षिकी युद्ध करती है और सभी को पराजित करती है। अपवर्ग क्षेत्रज्ञ नगर का अधिपति बन जाता है जिसका अभिनन्दन सांख्य योग, मीमांसा, वेदान्त ये सभी करते हैं। यहीं पर नाटक समाप्त हो जाता है।

अमोघराघव– (ना.कृ.) राम विषयक एक लुप्त नाटक। इसका उल्लेख शिंग भूयल के रसार्णव सुधाकर में किया गया है। इसके लेखक का पता नहीं है।

अम्बरमाला– (ना.पा.) विद्धशालमञ्जिका (दे.) की एक पात्र। रानी मजाक करने के लिये अपने दास डमरुक को लड़की के कपड़े पहनाकर उसे अम्बर माला नाम दे देती है जिसका अर्थ होता है आकाशकुसुम। इसी प्रकार उसके और सम्बन्धियों का नाम तय कर लिया जाता है– पिता शशश्रृङ्ग अर्थात् खरगोश के सींग जो नहीं होते, माता का नाम है मृगतृष्णिका। विदूषक मूर्ख बन जाता है और उसका एक लड़के से विवाह करा देने से खूव मनोरंजन होता है। इस मजाक का बदला लेने में विदूषक भी पीछे नहीं रहता जिससे कथानक को आगे बढ़ाने में सहायता मिलती है।

अम्बिकादत्त व्यास– (ना.का.) इनका लिखा सामवतम् प्रकाश में आया है। इनका समय है २० वीं शताब्दी।

अम्बुजवल्लीकल्याण– (ना.का.) दे. श्रीनिवासाचार्य (४)

अम्भोधिमन्थनम्– (ना.क) दे. समुद्रमन्थनाम् (२)।

अम्मालभाण– (नाकृ) दे. वसन्त तिलक।

(१) **अम्मालाचार्य**– (ना.का) दे. वरदाचार्य।

(२) **अम्माल आचार्य**– (ना.का) इनका लिखा चोल भाण बतलाया जाता है। इनके पिता घटित सुदर्शनाचार्य थे। ये १७वीं शताब्दी के कलाकार थे।

अयश्चणकम्– (ना.कृ) नारायण शास्त्री १ (दे) लिखित ७ अंकों का नाटक।

अयोध्याकाण्डम्– (ना.कृ) यह एकाङ्की नाटक है जिसकी रनचा महालिंग शास्त्री ने की थी। यह एक प्रहसन है जिसमें परिवारिक विषमता का चित्रण किया गया है। नायिका चारुमती का चारुचन्द्र से विवाह होता है। परिवार में आने पर सास शतह्लदा और ननद सन्दीपिनी से परेशान होकर चारुमती फांसी लगाकर आत्महत्या करना चाहती है। जिसे पति चारुचन्द्र और ससुर शर्वरीश बचाना चाहते हैं। ससुर विवाद शान्त करने के लिये पुत्र और पुत्रवधू को पृथक् परिवार वसाकर रहने की आज्ञा दे देते हैं।

अय्यलुनाथ– (ना.का) ये आन्ध्रप्रदेश के निवासी थे। इन्हें तिरुमलनाथ तथा त्रिमलनाथ नामों से भी याद किया जाता है। ये वोम्मगन्ती (वोम्मकण्ठी) परिवार के गंगाधर के पुत्र थे। सन् १७५० में इन्होंने कुहनाभैक्षव (दे) नाम का एक प्रहसन लिखा था जो मद्रास की ओरियण्टल लायब्रेरी में ट्रायेनियल टैकेलाग सं. III ८२५१ पर प्राप्य है।

अय्या दीक्षित– (ना.का) दे. राम मद्र दीक्षित।

अय्याभाण– (ना.कृ) कुम्भकोणम् निवासी रामभद्र दीक्षित (दे) लिखित भाण। इसे शृङ्गारतिलक के नाम से भी जाना जाता है। कहा जाता है कि इनके एक मित्र वरदाचार्य (उपनाम अम्मालाचार्य) ने वसन्ततिलक भाण अथवा अम्माल भाण की रचना की थी उसी की प्रतिद्वन्दिता में रामभद्रदीक्षित ने इस भाण की रचना की। इसमें भुजंगशेखर और हेमाङ्गी की प्रेम लीला के साहसिक कार्यो का नाटकीय रूप में प्रस्तुतीकरण किया गया है। नायक भुजंगशेखर प्रेयसी हेमाङ्गी से वियुक्त हो जाने के कारण अत्यन्त दुःखी है। उसे आश्वासन मिलता है कि वह यद्यपि पति के घर चली गयी है फिर भी उनका मिलन फिर होगा। वह गणिकाओं की गलियों में घूमता है, आकाशभाषित करता है, सपेरों, देवताओं, ऐन्द्रजालिकों पर्वतों इत्यादि का वर्णन करता है। अन्त में उसका सम्मिलन हेमाङ्गी से हो जाता है।

यह एक नये प्रकार का भाण है जिसमें वेश्याओं के साथ भुजंग शेखर का शारीरिक व्यापार तो दिखलाया ही गया है कुलाङ्गनाओं के साथ भी प्रणय व्यापार चलता है। यह बात दूसरे पूर्ववर्ती भाणों में नहीं पाई जाती।

कीथ के अनुसार इसकी रचना मदुरा देवी के विवाहोत्सव में आयोजित उत्सव में प्रदर्शित करने के उद्देश्य से की गई थी। इस का प्रकाशन काव्यमाला श्रेणी में बम्बई से

हो गया था। रामचन्द्र ने इस पर टीका लिखी थी (दे.) कैटेलागस कैटेलागोरम् सं. १६६०) इसकी रचना १७वीं शताब्दी में हुई थी।

अरघट्टघट– (ना.कृ.) खोत स्कन्द शंकर लिखित लघु नाटक।

अरिष्ट– (ना.पा.) भास के बालचरित में अरिष्टासुर का युद्ध होता है जिसमें अरिष्टासुर मारा जाता है यह युद्ध भयानक था जिसे देखने के लिए कृष्ण ने गोप गोपियों को पहाड़ पर चढ़ जाने का आदेश दिया था।

(१) **अरुणगिरिनाथ प्रथम**– (ना.का.) ये गौतमगोत्रीय सोमवल्ली शाखा के राजनाथ प्रथम और अभिरामाम्बिका के पुत्र थे। इनका मातृकुल, पितृकुल और पत्नी कुल सभी शिक्षितों और साहित्यकारों के परिवार थे। ये विजयानगरम के १४वीं शताब्दी के प्रौढ देवराय की सभा को सुशोभित करते थे। इनकी कीर्ति की घोषणा सर्वदा डिमडिम की आवाज के साथ की जाती थी। अतः डिम्डिम कवि को सार्वभौम की उपाधि प्राप्त हुई थी। इन्होंने शास्त्रार्थ में कवि मल्ल को पराजित किया था। इनका लिखा सोमवल्ली-योगानन्द (दे.) प्रहसन प्राप्त हुआ है।

(२) **अरुण गिरिनाथ द्वितीय**– (ना.का.) ये पारेन्द्र अग्रहारम के निवासी राजनाथ द्वितीय के पुत्र थे और कुमार डिंडिम या डिंडिम चतुर्थ के नाम से याद किये जाते हैं। इनका समय १६वीं शताब्दी का पूर्वार्ध है। इनका लिखा वीरभद्रविजय (दे.) नामक चार अंकों का डिम प्रकाश में आया है जिसका उल्लेख मद्रास पुस्तकालय की त्रैवार्षिक खोज रिपोर्ट में किया गया है।

अरुणाचलकेतनम्– (ना.कृ.) विश्वेश्वर विद्याभूषण (दे.) लिखित नाटक।

अरुन्धती– (ना.पा.) वशिष्ठ की पत्नी। भवभूति के उत्तर रामचरित में सीता परित्याग के अभिनय के आयोजन में जब राम समस्त दृश्य को वास्तविक समझ कर मूर्छित हो जाते हैं तब अरुन्धती लव और कुश के साथ सीता को लाकर राम की मूर्छा दूर कर उन्हें परिवार से मिला देती है और राम पूर्ववत् परिवार के साथ रहने लगते हैं तथा इसके साथ ही नाटक समाप्त हो जाता है।

(१) **अर्जुन**– (ना.पा.) महाभारत के मध्यम पाण्डव के रूप में प्रतिष्ठित अन्यतम पात्र। ये महाभारत के सर्वोत्कृष्ट धनुर्धर और वीरता के प्रतीक बन गये हैं। अपनी साधना के वल पर इन्होंने शस्त्रशक्ति प्राप्त की थी जिसमें शङ्कर का दिया हुआ पाशुपत अस्त्र भी सम्मिलित था। कृष्ण के परम सखा थे और उन्हीं के लिये गीता का उपदेश दिया गया था। महाभारत विषयक नाटकों में प्रायः इनका समावेश हुआ है। कुछ उदाहरण–

(१) **हरिवंश पुराण**– में नाटकीय प्रदर्शनों का उल्लेख किया गया है। अन्धक की मृत्यु के बाद यादवों ने जो आमोद प्रमोद मनाया उसमें अप्सराओं ने नृत्य एवं अभिनय द्वारा कृष्ण लीलाओं का प्रदर्शन किया। उसके बाद नारद मुनि ने जनता के मनोरंजन के

लिये जिन पात्रों का प्रदर्शन किया उनमें अर्जुन भी एक थे। इस प्रकार उस प्राचीन काल में भी अभिनेयता की ओर अर्जुन की प्रवृत्ति देखी जा सकती है।

(२) **दूतघटोत्कच**- (दे.) में घटोत्कच द्वारा धृतराष्ट्र के सामने अर्जुन के पराक्रम के साथ बदला लेने की धमकी भरी भविष्य वाणी की जाती है।

(३) **कर्णभार**- (दे.) अर्जुन और कर्ण का युद्ध सन्निहित है। शल्य के सारथ्य में युद्ध के लिये कर्ण प्रस्थान करते हैं- दूसरी ओर अर्जुन का भी रथघोष कर्णगोचर होता है।

(४) **वेणी संहार**- में अर्जुन कई स्थानों पर दृष्टि गत होते हैं। अभिमन्युवध के बाद वदला लेने की उनकी प्रतिज्ञा सामने आती है। वे भीम के साथ अवतीर्ण होकर वृद्ध राजा धृतराष्ट्र का अपमान करते हैं और अपने व्यवहार का समर्थन इस बात से करते हैं कि द्रौपदी के अपमान में धृतराष्ट्र की भी मौन स्वीकृति थी। द्रौपदी के वेणीसंहार (वेणी समेट कर बांधने) के अवसर पर भी कृष्ण और अर्जुन उपस्थित होते हैं। अर्जुन में वीरता तो है किन्तु भीम के समान उन में वर्वरता और उद्दण्डता नहीं है। धृतराष्ट्र दुर्योधन से युद्ध विराम की प्रार्थना करते हुये कहते हैं कि अर्जुन से सारा संसार डर रहा है- 'भीतं जगत् फाल्गुनात्'। अर्जुन ने कर्ण के सामने ही उनके पुत्र का वध कर दिया और कर्ण कुछ नहीं कर सके। यह उनकी वीरता का एक महत्वपूर्ण मानदण्ड है।

(५) **पार्थपराक्रम**- में अर्जुन द्वारा विराट पुर में अकेले ही सारी कौरव सेना को पराजित कर विराट की गायों की रक्षा करने में वे सफल होते हैं।

(६) **धनञ्जयविजय**- (दे.) में विराट पुर में कौरव सेना को पराजित करने में दिखलाई गई अर्जुन की वीरता का चित्रण किया गया है। इसमें अर्जुन दिव्यास्त्रों का प्रयोग करते हैं।

(७) **सुभद्राहरण**- में अर्जुन भिक्षुक के रूप में सुभद्रा के पिता के घर जाकर उससे मिलते हैं और कृष्ण की सहमति से उसका अपहरण करते हैं।

(८) **सुभद्रापरिणय**- में भी सुभद्रा और अर्जुन के परिणय और विवाह का चित्रण किया गया है।

(२) **अर्जुन**- (ना.पा.) यह एक दानव है जिसका साहचर्य यमल नामक दूसरे दानव के साथ रहता है। भास के बालचरित (दे.) में कृष्ण द्वारा यमलार्जुन वध की सूचना दी गई है।

अर्जुनराज- (ना.कृ.) यह हस्तिमल्ल का लिखा नाटक है। कैटेलागस कैटेलागोरम सं. १.३० पर इसका उल्लेख किया गया है।

अर्जुनवर्मा- (ना.पा.) धारा नगरी के परमार वंशीय राजा थे। ये भोजराज (दे.) के वंश में उत्पन्न हुए थे। इनका समय १३वीं शताब्दी है। ये पारिजात मंजरी (दे.) नामक

नाटिका के नायक हैं जिसकी रचना इनके गुरु मदनवालसरस्वती ने की थी। पारिजातमञ्जरी का दूसरा नाम विजयश्री है। इसमें इनकी वीरता और प्रेम लीला को नाट्य विषय बनाया गया है। इन्होंने गुजरात के चालुम्य वंशीय भीमदेव को युद्ध में पराजित किया था और उनकी पुत्री पारिजातमञ्जरी से विवाह किया था।

अर्थपञ्चक नाटक– (ना.कृ.) यह पांच अंकों का नाटक है जिसके लेखक का नाम ज्ञात नहीं है। इसका विषय वर्णन है– तंजौर जिला के कृष्णपुरम में जिस सौरीराज देवता की पूजा होती है उनके यहां मन्मथ का किस प्रकार जन्म हुआ, किस प्रकार शम्बरासुर ने उसे समुद्र में फेंक दिया। किस प्रकार शम्बर के नौकरों ने मछली के पेट में बच्चे को प्राप्त किया; किस प्रकार शम्बर की पुत्री जो वास्तव में रति का अवतार थी उस बच्चे पर आसक्त हो गई, उसे भली भांति पाला पोसा और अन्त में उससे विवाह कर लिया।

इस नाटक में ५ तत्वों को नाटकीयरूप प्रदान किया गया है– चिन्ता, योग, समारम्भ, व्यापार, हेतुदर्शन और अभीष्टलाभ–

चिन्तायोगसमारम्भो व्यापारो हेदुदर्शनम्।

अभीष्टलाभ इत्यर्थपञ्चकं नाटकीकृतम्।

इसीलिये इस नाटक का नामकरण अर्थपञ्चक किया गया है।

मद्रास की ओरियण्टल लायब्ररी की संस्कृत पाण्डुलिपियों की विवरणात्मक सूची में इसका उल्लेख XXI ८८७७ पर किया गया है।

अलका– (ना.पा.) महावीर चरित में अलका नागरी का मानवीकृत रूप। वह और लंका (मानवीकृत) के प्रति संवेदना प्रकट करने उस वक्त आती है जब लंका का युद्ध समाप्त हो चुका है और रावण मारा गया है।

अवकीर्णकौशिकम्– (ना.कृ.) नारायणशास्त्री (१) (दे.) लिखित १० अंकों का नाटक।

अवधानसरस्वती– (ना.का.) ये काञ्ची के निवासी थे। इनका लिखा शृङ्गारमञ्जरी (दे.) शीर्षक भाण तंजौर के राज पुस्तकालय में सं. VIII ३५९९ पर संकलित किया गया है।

अवन्तिका– (ना.पा.) स्वप्नवासवदत्तम् में यौगन्धरायण ने वासवदत्ता को इस नाम से पद्मावती के पास धरोहर के रूप में रख दिया था।

अवन्तिसुन्दरी– (ना.का.) राजशेखर की पत्नी; इनका लिखा इसी नाम का प्रेक्षणक (दे.) प्रकाश में आया है।

(१) **अवन्तिसुन्दरी**– (ना.कृ.) यह एक प्रेक्षणक (दे.भू.) है। इसकी रचना राजशेखर की पत्नी अवन्तिसुन्दरी ने की थी। इसका विषय है पतिपत्नी में काव्य के अर्थ ग्रहण पर वाद-विवाद।

(२) **अवन्तिसुन्दरी**– (ना.कृ.) वेङ्कटरामराघवन का लिखा प्रेक्षणक है; इसका आधार अवन्तिसुन्दरी लिखित प्रेक्षणक ही है।

अवलोकिता– (ना.पा.) मालती माधव (दे.) में कामन्दकी की सहायिका है। यह अपनी सहयोगिनी सौदामिनी के साथ मिलकर मालती को कपालकुण्डला के चंगुल से बचाती है।

अविनाशी स्वामी– (ना.का.) शृङ्गारतिलक (दे.) भाण के लेखक। ये आत्रेयगोत्र के वन्दवासी परिवार में उत्पन्न हुए थे। इनका समय १९वीं शताब्दी का उत्तरार्ध है।

अविमारक– (ना.कृ.) भास (दे.) कृत ६ अंकों का नाटक। यह नाटक लोककथा पर आधारित है। दीर्धतपस् ऋषि के शाप से सौवीर राज का पुत्र विष्णुसेन १ वर्ष के लिए सपरिवार चाण्डाल बन जाता है। वह गुप्त रूप से कुन्तिभोज के नगर में रहने लगता है। वहां वह अविमारक नामक असुर को मार डालता है इसलिये उसका भी नाम अविमारक पड़ जाता है। वह अपनी एक भाञ्जी कुरंगी की एक विगड़े हाथी से रक्षा करता है। जब राजा यह समाचार सुनता है तब अविमारक से ही पुत्री कुरंगी का विवाह कर देना चाहता है। किन्तु अविमारक इतना निम्नवंश का है कि यह सम्बन्ध सम्भव नहीं हो पाता। उधर कुरंगी और अविमारक एक दूसरे के वियोग में तड़पते हैं। उनका प्रेम सीमातीत हो गया है। एक वार धात्री की सहायता से अविमारक कुरंगी के कक्ष में पहुंच जाता है; किन्तु पकड़ लिया जाता है और उसकी आकाङ्क्षा पूरी नहीं हो पाती। वहआग से जलकर आत्महत्या करना चाहता है। किन्तु अग्निदेव उसे अस्वीकृत कर देते हैं और वह बच जाता है। तब पर्वत से गिर कर आत्महत्या करना चाहता है किन्तु वहां उसे एक विद्याधर मिल जाता है। वह उसे एक अंगूठी देता है जो जादुई है और उससे वह अदृश्य रूप में कुरंगी के कक्ष में पहुंचकर प्रत्येक रात में अपनी प्रेमिका का उपभोग कर सकता है। इस कार्य में उसे विदूषक की भी सहायता मिलती है। इसके पहले कुरंगी ने भी आत्महत्या की चेष्टा की थी किन्तु वह भी बच गई थी। जब राजा कुन्तिभोज को इनके प्रच्छन्न विहार की सूचना मिलती है तब वह परेशान हो जाता है और कुरंगी का विवाह अपने दूसरे भाञ्जे जयवर्मा से कर देने का विचार करता है। इसी समय नारद आ जाते हैं और बतलाते हैं कि विष्णुसेन वस्तुतः काशीनरेश की पत्नी सुदर्शना में अग्नि द्वारा उत्पन्न किया हुआ पुत्र है और उसका केवल पालन पोषण सौवीर राज के यहां हुआ है। वास्तविकता जान कर राजा कुंरगी का विवाह विष्णुसेन (अविमारक) से कर देता है– यहां नाटक समाप्त हो जाता है।

यह एक शृङ्गार प्रधान नाटक है। भावना की तीव्रता को अभिव्यक्त करने में भास को अच्छी सफलता मिली है। घटनाओं और कार्य व्यापारों की क्षिप्रता और आवृत्ति जो भास की शैली की विशेषता है इस नाटक में भी देखी जा सकती है। विदूषक (दे.) के चित्रण में कवि ने अधिक निपुणता दिखलाई है। वह स्वामिभक्तसेवक की भूमिका भली

भांति निभाता है। स्वयं नायक भी उसकी प्रशंसा करता है। पात्रों की भरमार इसमे भी है। भाषा विषयानुकूल है और चरित्रचित्रण सशक्त। नाटक में संवाद रोचकता उत्पन्न करते हैं। कल्पित कथा पर आधारित होने के कारण इसे प्रकरण विधा के अन्तर्गत रक्खा जा सकता है। यह नाटकीयता की दृष्टि से एक सफल रचना है और कथोपकथन में स्वाभाविकता से परिपूर्ण है। रसनिष्पत्ति और कलात्मकता में यह रचना कालिदास से होड़ लेती है और प्रकृतिचित्रण तथा सूक्तिसाहित्य की दृष्टि से भी इसे उच्च कोटि की सफलता प्राप्त हुई है।

अविमारक- (ना.पा.) यह अविमारक नाटक का नायक है। यह घराने में उच्चकोटि के माता पिता से जन्मा एक साहसी वीर व्यक्ति है। यह उसका दुर्भाग्य है कि एक शाप के प्रभाव से उसे एक वर्ष के लिये चाण्डाल बन जाना पड़ता है। अपने इस दुर्भाग्य के अवसर पर वह अपने मूलनिवासस्थान पर रहना स्वाभिमान के प्रतिकूल समझता है और अपनी बहन के नगर में जाकर गुप्त रूप से अपना समय बिता देना चहाता है; पर वीरवृत्ति उसे वहां प्रच्छन्न नहीं रहने देती। जब वीरता की आवश्यकता पड़ती है वह स्वयं को रोक नहीं पाता और अविमारक नामक राक्षस को मार कर वह उसके उत्पीड़न से जनता को त्राण देता है। इससे वह विष्णुसेन से अविमारक बन जाता है। वीरता प्रदर्शन का दूसरा अवसर तब आता है जब उसकी भाञ्जी कुरंगी एक विगड़ैल हाथी की चपेट में आ जाती है और उसकी जीवन रक्षा आवश्यक हो जाती है। वह इस कार्य का भी सफलता पूर्वक निर्वाह करता है और राजकुमारी बच जाती है।

इस दूसरी घटना से उसके जीवन में एक मोड़ आ जाता है। कुरंगी उससे सम्पर्क में आ गई है और दोनों एक दूसरे की ओर आकृष्ट हो गये हैं तथा दोनों एक दूसरे को दिल दे बैठे हैं। राजा भी उसकी वीरता के पुरस्कार के रूप में उसे कुरंगी दे देना चाहता है, पर यहां उसका दुर्भाग्य आड़े आता है। एक हीन जाति के व्यक्ति को राजकुमारी का हाथ दे देने से राजा कतरा जाता है। अविमारक का दूसरा गुण है उसका सीमा से अधिक भावुक होना। वह संक्षिप्त से सम्पर्क से ही या प्रथम दर्शन से ही कुरंगी के प्रति प्रेम पीड़ा में ऐसा निमग्न हो जाता है कि उसे अपना जीवन भी व्यर्थ मालूम पड़ने लगता है। वह एक वार नहीं दो वार आत्महत्या की चेष्टा करता है किन्तु बच जाता है। एक बार धात्री के उद्योग से वह कुरंगी के कक्ष में पहुंच गया था। किन्तु मनोरथ की पूर्ति के पहले की पकड़ा गया; दूसरी वार एक गन्धर्व की जादुई अंगूठी से उसे अपनी प्रेमिका का सम्पर्क प्राप्त हो जाता है और प्रत्येक रात वह उसका उपभोग भी करने लगता है। किन्तु यह सम्बन्ध अधिक दिनों नहीं चलता और दुवारा राजा को पता चल जाता है। राजा इस कलंक से छुटकारा पाने के लिये, शीघ्रातिशीघ्र किसी अन्य के साथ अपनी पुत्री का विवाह करने के लिये आतुर हो जाता है। अन्त में नारद उसकी वास्तविकता का परिचय राजा को दे देते हैं और उसका मनोरथ पूरा हो जाता है; प्रेमिका उसे अपनी पत्नी

रूप में प्राप्त हो जाती है।

वह गुणवान होने के साथ गुणग्राही भी है और विदूषक की हास्योक्तियों पर मुग्ध है; साथ ही विदूषक की वीरता, युद्ध कौशल और सान्त्वनावचनों की प्रशंसा करता है। विदूषक भी उसके गुणों पर मुग्ध है और उसके अपना स्थान छोड़कर चले जाने और गुम हो जाने के बाद उसकी खोजखबर में कोई कमी नहीं रखता।

अशोककानाने जानकी– (ना.कृ.) २०वीं शताब्दी के सुरेन्द्र मोहन की लिखित लघुनाटिका। यह संवादप्रधान रचना है और इसमें प्रधान रूप से सीता मन्दोदरी, त्रिजटा, विकटा, संकटा के संवाद नाट्य विषय बनाते हैं।

अश्वघोष– (ना.का.) कवि, दार्शनिक और नाटककार के रूप में प्रतिष्ठित अश्वघोष सुवर्णाक्षी के पुत्र, पार्श्व के शिष्य तथा सम्राट् कनिष्क के प्रमुख सभासद् थे। इनका जन्म साकेत में हुआ था। सम्राट् कनिष्क के सभासद् होने के कारण ही इनका समय ई.पू. पहली शताब्दी से ई. की दूसरी शताब्दी के मध्य भाग में किसी समय माना जाता है। पहले ये वैदिक साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान थे किन्तु एक प्रश्न पर पार्श्व से पराजित होकर ये बौद्ध बन गये थे। अपनी विजय की भेंट के रूप में सम्राट् कनिष्क ने इन्हें मगधराज से मांग लिया था और अपने साथ उत्तर पश्चिम में अपनी राजधानी ले गये थे। कीथ ने इन्हें, प्रथम कवि एवं प्रथम नाटककार माना है यद्यपि वे यह भी स्वीकार करते हैं कि इनके पहले नाटक की अनेक परम्परायें प्रचलित हो चुकी थीं। कहा जाता है कि अश्वघोष इनका वास्तविक नाम नहीं था अपितु इनके प्रवचन से घोड़े भी प्रभावित हो जाते थे इसलिये इन्हें यह उपाधि प्राप्त हुई थी। इनके वास्तविक नाम का पता नहीं। कुछ लोग इन्हे आर्यसूर और मातृचेता से अभिन्न मानते हैं। किन्तु इस मान्यता में कोई प्रमाण नहीं क्योंकि तीनों के नाम अलग-अलग रचनाएं प्रसिद्ध हैं।

अश्वघोष के नाम पर तीन रचनायें प्रमाणप्रतिपन्न हैं– बुद्ध चरित और सौन्दरनन्द नामक दो महाकाव्य एवं शारिपुत्रप्रकरण (दे.) नामक नाटक। इनके अतिरिक्त दो अन्य छोटे-छोटे रुपक– प्रतीक-रूपक (दे.) एवं गणिका विषयक रूपक (दे.) भी प्राप्त हुये हैं। कतिपय अन्य ग्रन्थ भी इनके नाम पर जोड़ दिये गये हैं जैसे– माहयानश्रद्धोत्पादसंग्रह, गण्डीस्तोत्रगाथा, वज्रसूची और सूत्रालंकार।

अश्वघोष की रचना शैली की विशेषता उसकी स्वाभाविकता है। शब्दचयन की निपुणता, गुम्फन का सौन्दर्य, कालिदास का जैसा उपमासौन्दर्य और सहजप्रवाह इनकी अनन्य विशेषतायें हैं। यद्यपि उनका शब्दचयन पुराना और कहीं कहीं व्यवहारातीत भी है फिर भी भावों की स्वाभाविकता और विचारों की उदात्तता प्रशंसनीय है। दार्शनिक विचारों को काव्य की मार्मिकता केसाथ अभिव्यक्त करने की इनमें अपूर्व शक्ति है। इनकी भाषा कहीं कहीं व्याकरण विरुद्ध है। इसका कारण या तो लेखक का प्रमाद है या प्राकृत का प्रभाव। बौद्ध होने के कारण इनका भारत में कम चीन और तिब्बत में अधिक

प्रचार हुआ। इनके ग्रन्थों का उद्धार भी विदेशी साहित्य से ही किया गया।

इनके नाटक यद्यपि खण्ड रूप में ही प्राप्त हुये हैं फिर भी उनसे दो बातें प्रमाणित हो जाती हैं- अश्वघोष जितने सशक्त कवि थे उससे कम सशक्त नाटककार भी नहीं थे। दूसरी बात यह है कि यद्यपि ये उपलब्ध प्राचीनतम नाटक है फिर भी इनसे इतना प्रमाणित हो जाता है कि उस समय भी नाट्य कला पूर्ण रूप से परिवृद्ध थी और उसकी जो परम्परायें प्रतिष्ठित थीं उनका प्रायः पालन किया गया है। नाटक का अंकों में विभाजन, गद्य और पद्य का यथोचित विनिमय, संस्कृत और प्राकृत का उचित रूप में पात्रानुकूल प्रयोग, संस्कृत काव्य के परम्परागत छन्दों का प्रयोग ये सब तत्त्व इस बात के परिचायक हैं कि अश्वघोष किसी प्रतिष्ठित परम्परा का अनुसरण कर रहे थे। इस विषय में विदूषक (दे.) का प्रयोग विशेष महत्व रखता है। पात्रों के नामकरण में भी प्रचलित परम्परा के निर्वाह के दर्शन होते हैं। किन्तु इस बात का पता नहीं चलता कि उस समय प्रस्तावना और नान्दी पाठ की कौन सी विधि अपनाई जाती थी। भरत वाक्य की प्रचलित परम्परा यह है कि अन्त में मुख्यपात्र (नायक) आकर प्रश्न करता है कि 'हम अब तुम्हारा कौन सा उपकार करें?' और उत्तर में लोक कल्याण की आशंसा करता है। किन्तु अश्वघोष के नाटक में प्रश्न नहीं किया गया है- वैसे ही भगवान् बुद्ध ने इन्द्रिय निग्रह और ज्ञान-वृद्धि करते हुए निर्वाण प्राप्ति की आशंसा की है। केवल इतने से ही लूडर्स ने निष्कर्ष निकाल लिया है कि उस समय तक भरत वाक्य की अर्वाचीन परम्परा विकसित नहीं हुई थी। किन्तु अन्यद्वारा आशंसा परक भरतवाक्य अन्यत्र भी पाये जाते हैं। अतः यह निष्कर्ष उचित नहीं कहा जा सकता।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि जितना अंश प्राप्त हुआ है उससे प्रतीत होता है कि उस समय नाट्य कला की कोई टेक्निक प्रतिष्ठित अवश्य थी जो भरत प्रतिपादित नाट्यकला से बहुत कुछ मिलती जुलती थी। यदि कभी इनके नाटकों का पूर्ण उद्धार किया जा सका तो यह साहित्य जगत् की महान्- उपलब्धि होगी इसमें सन्देह नहीं।

अश्वजित्- (ना.पा.) शारिपुत्र प्रकरण (दे.) का एक पात्र। शारिपुत्र और अश्वजित का धर्म विषयक विवाद होता है जिसमें अश्वजित् का साथ विदूषक भी देता है। अन्त में शारिपुत्र की विजय होती है।

अश्वत्थामा- (ना.पा.) महाभारत का एक प्रतिष्ठित पात्र। ये द्रोण के पुत्र हैं और भारत युद्ध में दुर्योधन के सहयोगी हैं। ये अपने प्रकार के अनन्य योद्धा हैं; किन्तु इन्हें महाभारत युद्ध में अपनी शक्ति प्रदर्शन का पूरा अवसर नहीं मिलता। उरुभंग और वेणीसंहार नाटकों में इनको पात्र रूप में स्वीकार किया गया है-

(१) **वेणी सहांर-** में पिता की छलपूर्ण हत्या से अश्वत्थामा बहुत दुःखी है। उनके मामा कृपाचार्य उन्हें सान्त्वना देते है और सेनापति पद दिये जाने की प्रार्थना लेकर दुर्योधन के पास जाने का परामर्श देते हैं। उधर कर्ण दुर्योधन को कुछ ऐसा वैसा समझाकर

अश्वत्थामा के विरुद्ध कर देता है। अश्वत्थामा के आने पर कर्ण के साथ उनकी जोरदार झड़प होती है जिसमें क्रोध में अश्वत्थामा ब्राह्मणचिन्ह जनेऊ को भी तोड़कर फेंक देता है और दुर्योधन के सामने ही कर्ण के सर पर पाद प्रहार करता है। किसी भांति विवाद शान्त होता है किन्तु दुर्योधन सेनापति बनाने की अश्वत्थामा की प्रार्थना ठुकरा देता है। अतः अश्वत्थामा भी कर्ण के जीवनकाल में युद्ध न करने की प्रतिज्ञा कर लेता है। कर्ण के मारे जाने पर वह पुनः दुर्योधन से सेनापति बनाने की प्रार्थना करता है तब दुर्योधन का उत्तर होता है– 'अब तुम दुर्योधन के मारे जाने पर युद्ध करना।' अतः उसे पुनः शक्ति प्रदर्शन से वञ्चित हो जाना पड़ता है।

वह महान् वीर है; किन्तु उसे उचित अवसर नहीं मिलता। कर्ण के सर पर पाद प्रहार कर देना कोई मामूली बात नहीं थी। किन्तु दुर्योधन का कर्ण के प्रति पक्षपात उसे शक्ति प्रदर्शन से वञ्चित कर देता है। उसे इस पक्षपात पर कुछ क्रोध भी आता है किन्तु धृतराष्ट्र के इस कथन से शान्त हो जाता है कि यह वही दुर्योधन है जिसके साथ तुमने स्तन पान किया और एक साथ गोद लेने में मेरा यह रेशमी वस्त्र गन्दा हो जाता था– अब तुम इस पर क्रोध मत करो।

(२) **उरुभंग**– में भीम द्वारा जंघायें तोड़े जाने से व्याकुल पड़े हुए दुर्योधन के पास यह आता है। यद्यपि दुर्योधन उसे शान्त रहने का उपदेश देते हैं तो भी वह प्रतिशोध लेने की शपथ लेता है। वह दृढ़ निश्चयी है– यहां तक कि अन्त में दुर्योधन के मना करने पर भी बदला लेने का अपना निश्चय नहीं छोड़ता और बदला लेकर रहता है।

अश्वमेधनाटक– (ना.कृ.) यह भलगांव के राजा सुमतिजितामित्रमल्लदेव लिखित नाटक है जिसमें महाभारत के अश्वमेघ यज्ञ का कथावस्तु के रूप में उपादान किया गया है। कैटेलागस कैटेलागोरम खण्ड ३ संख्या ८ पर इसका उल्लेख प्राप्त होता है।

असज्जाति– (ना.पा.) धूर्त समागम (दे.) का एक पात्र। इसे न्याय करने का उत्तरदायित्व सौंपा गया है। इसके सारे निर्णय हास्य रस के अनुकूल हैं। जब दो व्यक्ति एक लड़की के लिये लड़ते हुए आते हैं तब उसका निर्णय होता है– 'जब तक अन्तिम निर्णय न हो जाय तब तक यह मेरी होकर रहेगी।' जब उस लड़की पर कर्ज वसूल करने वाला व्यक्ति आता है तब वह विदूषक के पैसे लेकर कर्ज चुका देता है। इसी प्रकार और भी उसकी चेष्टायें हास्यपरक हैं।

असुर– (ना.पा.) (१) त्रिपुरदाह– (दे.) का एक पात्र जिस पर भगवान् शंकर ने विजय प्राप्त की है।

(२) **वत्सराज**– के समुद्रमन्थन नामक समवकार में सुरों के साथ मिलकर समुद्र मन्थन करने वाले और प्राप्त रत्नों का वटवारा करने वाले असुर।

(३) **कथासरित्सागर**– में मय असुर की पुत्री ने पुतलियों के नृत्य से अपनी सखी

का मनोविनोद किया। इससे पुतलियों के नृत्य की सत्ता प्रमाणित होती है जिससे कुछ लोग परवर्ती नाट्य कला की उत्पत्ति मानते हैं।

असूयिनी– (ना.कृ.) लीलाराव दयाल (दे.) लिखित ८ अंकों की नाटिका। नायिका रेविका नामक धीवरी के बच्चे जीते नहीं हैं। वह बड़ोसिन के बच्चे की वलि देकर अपने बच्चे को जीवित रखना चाहती है। किन्तु अन्त में स्वयं ही पाप कर्म समझकर इस उपक्रम को छोड़ देती है।

अहोवलनृसिंह– (ना.का.) नल विलास नामक ६ अंकों के नाटक के लेखक। इनका समय १८वीं शताब्दी है। इनका सम्मान मैसूर नरेश बोडियार द्वितीय (१७३२-१७६० ई.) एवं चामराज वेडियार (१७६०-१७७६ ई.) ने किया था।

आ

आञ्जनेय विजय– (ना.कृ.) यह भाष्यकार का लिखा राम साहित्य विषयक एक नाटक है। मैसूर की ओरियण्टल लायब्रेरी के संस्कृत पाण्डुलिपि अनुभाग के कैटेलाग सं. २७३ पर इसका उल्लेख किया गया है।

आढ्यराज– (ना.का.) वाणभट्ट ने आढ्यराज की कृतियो में उत्साह के प्रयोग की योजना की प्रशंसा की है। आढ्यराज कौन है इस पर पिशेल, विण्टरनित्ज प्रभृति अनेक विचारकों का मत है कि वाण ने अपने आश्रय दाता कन्नौज के महाराज हर्ष को ही आढ्यराज कहा है। किन्तु राजशेखर और भोजराज के विवेचन से ज्ञात होता है कि इस नाम के कोई दूसरे ही राजा सम्भवतः शालिवाहन थे। राजशेखर ने लिखा है कि 'सुना जाता है कुन्तल में शातबाहन नाम का राजा था जिसने अपने अन्तः पुर को प्राकृतमय बना दिया था। भोजराज ने लिखा है कि आढ्यराज के राज्य में सभी प्राकृत बोलते थे। इससे सिद्ध होता है कि शालिवाहन ही आढ्यराज थे। राजशेखर ने स्पष्ट लिखा है– 'आढ्यराजः शालिवाहनः।' शालिवाहन केवल एक कुशल शासक ही नहीं थे एक अच्छे कवि भी थे। उन्होंने अपने राज्य को प्राकृत मय बना दिया था। और प्राकृत की गाथाओं का राज्य भर में संकलन कर एक करोड़ गाथायें एकत्र कर ली जिनसे अच्छी गाथायें छांटकर ७०० गाथाओं की गाथासप्तशती का सम्पादन किया।

ज्ञात होता है शालिवाहन ने गाथा-सप्तशती के समान कोई या कुछ नाटक भी लिखे थे जिनमें 'उत्साह' का भी प्रयोग किया गया था। उत्साह शब्द से वाण का क्या आशय है यह प्रकट नहीं होता। यह एक पारिभाषिक शब्द है; किन्तु इसका परिचय न तो नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थों में दिया गया है, न काव्य शास्त्र में उपलब्ध होता है और न संगीत शास्त्र में ही इस विषय में कुछ कहा गया है। वाण के शब्द इस प्रकार हैं–

आढ्यराजकृतोत्साहैः हृदयस्थैः स्मृतैरपि।

जिह्वान्तःकृष्यमाणेव न कवित्वे प्रवर्तते ॥

{अर्थात् आढ्यराज ने जिन उत्साहों की रचना की है यदि वे हृदय में ही स्थित हों या उनका स्मरण किया जाय (उनके सौन्दर्य से प्रभावित होकर) जवान अन्दर को भागने लगती है उसका साहस कवित्वरचना में होता ही नहीं।}

इस विषय में उत्साह के कई अर्थ किये जाते हैं– कुछ लोगों का विचार है कि आढ्यराज नाट्य या काव्य के खण्डों (अंक या सर्ग) के लिये उत्साह शब्द का प्रयोग करते थे। कुछ लोग शैलीविशेष को उत्साह कहते हैं और दूसरे लोग संगीत की ताल उसका अभिप्राय बतलाते हैं। भोजराज ने लिखा है कि आढ्यराज की रचनाओं में प्रत्येक उपखण्ड के अन्त में धैर्य शब्द का प्रयोग रहता है। किन्तु उनकी गाथासप्तशती में इस नियम का निर्वाह दृष्टिगत नहीं होता। इससे सिद्ध होता है कि आढ्यराज शातवाहन या शालिवहान ने (संस्कृत के शातवाहन का ही प्राकृत रूप शालिवाहन है) अन्य रचनायें भी प्रस्तुत की होंगी जिन में कतिपय नाटक भी हो सकते हैं।

आत्मविक्रय– (ना.कृ.) रमानाथ मिश्र (दे.) का लिखा नाटक। यह हरिश्चन्द्र के कथानक को लेकर लिखा गया ५ अंकों का नाटक है जिसकी रचना १९५३ में और प्रकाशन १९६१ में हुआ था।

आत्माराम– (ना.का.) ये अच्चान दीक्षित के पुत्र और नीलकण्ठ दीक्षित के पिता थे। इन्होंने उत्तररामचरित और साहित्यरत्नाकर पर टीकायें लिखी थीं।

आत्मावलीपरिणय– (ना.कृ.) यह एक प्रकरण है जिसकी रचना रामानुजाचार्य-'ह्वी' ने की थी। इसका रचनाकाल २०वीं शताब्दी है।

आत्रेय– (ना.पा.) यह नागानन्द में जीमूतवाहन का विदूषक है जो अपने चरित्र के अनुसार बुद्धू और भद्दा पात्र है। उसका चरित्र उसकी भूमिका के अनुसार हास्यजनक दिखलाया गयाहै। हास्य की सृष्टि उस समय अधिक होती है जब विदूषक मक्खियों को भगाने के लिये चादर ओढ कर लेटा रहता है और विट शेखरक उसे अपनी प्रेयसी समझ कर उसका आलिंगन और लाड़-प्यार करने लगता है। हास्य की परिस्थिति तब और अधिक बन जाती है जब विट की प्रेयसी नवमालिका आ जाती है और विट उसे शान्त करने की चेष्टा करता है।

आत्रेयवरद– (ना.का.) १९वीं शताब्दी के कलाकार हैं। इनका निवास स्थान वेङ्कटगिरि पर था। इनका लिखा (४) रुक्मणी परिणय (दे.) नाटक उपलब्ध होता है।

आत्रेयी– (ना.पा.) उत्तर राम चरित की एक पात्र। वासन्ती के साथ इसके संवाद से राम के अश्वमेध करने तथा सीता के दो बच्चों को वाल्मीकि द्वारा शिक्षा दिये जाने की सूचना मिलती है। उनके संवाद से इस बात का भी पता चलता है कि उस समय

आश्रमों में सहशिक्षा का विधान था और वाल्मीकि के आश्रम में सर्वाधिक उच्चकोटि की शिक्षा दी जाती थी। अगस्त्य इत्यादि के आश्रम में शिक्षा प्राप्त कर छात्र विशिष्टता सम्पादन के लिये वाल्मीकि-आश्रम को ही जाया करते थे।

आदिकाव्योदय– (ना.कृ.) महालिंग शास्त्री का लिखा नाटक। इसकी रचना १९३२ में हुई थी और फिर संशोधित रूप १९४२ में तैयार किया गया। इसमें वाल्मीकि द्वारा लवकुश के पालन पोषण से प्रारम्भ कर दोनों कुमारों का रामायण गान और उसके बाद राम के स्त्रीपुत्रों से मिलन तक की कथा का उपादान किया गया है।

आनन्दकोश– (ना.कृ.) एक प्रहसन जिसका उल्लेख शिंगभूपाल लिखित रसार्णव-सुधाकर में किया गया है तथा वहां इसके उद्धरण भी दिये गये हैं। इसके अतिरिक्त इस विषय में कुछ और ज्ञात नहीं है।

आनन्दचन्द्रोदय– (ना.क.) रङ्गीलाललिखित नाटक। अल्वर स्टेट की संस्कृत पाण्डुलिपियों की ग्रन्थ सूची (सं. ९९३ पर) उल्लिखित। इसका मुद्रण १९४९ में बड़ौदा में हुआ था।

आनन्दतिलक– (ना.कृ.) यह कृष्णनाथ सार्वभौम भट्टाचार्य (दे.) लिखित भाण है। यह इण्डिया आफिस लायब्रेरी के संस्कृत पाण्डुलिपि अनुभाग में सं. २४ पर अंकित है और दो खण्डों में प्रकाशित गुस्टाव ओपर्ट द्वारा सम्पादित तथा मद्रास से प्रकाशित 'प्राइवेट लायब्रेरीज इन सदर्न इण्डिया' संस्कृत पाण्डुलिपियों की सूची में सं. १८२४ पर भी इसका उल्लेख किया गया है।

आनन्दधर– (ना.का.) इनकी लिखी माधवानल (दे.) नामक एक नाट्य कृति प्राप्त होती है जिसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम में सं. I ११८ पर किया गया है।

आनन्दरघुनन्दन– (ना.कृ.) यह विश्वनाथ सिंह (दे.) द्वारा लिखा गया रामकथा परक नाटक है। इसकी रचना पहले हिन्दी में हुई जिसके विषय में कहा जाता है कि यह हिन्दी का प्रथम नाटक है। हिन्दी नाटक १८३० में पूरा हुआ। यह उसी का संस्कृत में अनूदित नाटक है। इसमें ७ अंक हैं। राम जन्म से नाटक का प्रारम्भ होता है। विवाह, वनगमन, सीताहरण, शवरीसंवाद, सुग्रीवमैत्री, हनुमान का लंकागमन, सेतुबन्धन, विभीषण-मैत्री, युद्ध, अग्नि परीक्षा, रामराज्याभिषेक ये सभी घटनायें नाटक का विषय हैं। संवाद और अभिनय की दृष्टि से नाटक महत्वपूर्ण है। पत्रव्यावहार का भी नाटक में समावेश किया गया है. इसके अनुवादक का पता नहीं। सम्भव है लेखक ने हिन्दी नाटक के पूरा हो जाने पर स्वयं उसे संस्कृत में रुपान्तरित कर दिया हो। हिन्दी से समानार्थक संस्कृत शब्दों की अनुवादक ने स्वयं रचना कर ली।

आनन्दराघव– (ना.कृ.) यह राजचूडामणि दीक्षित (दे.) का लिखा ५ अंकों का नाटक है। इसमें विवाह से लेकर सिंहासनपर्यन्त भगवान् राम के चरित्र को कथानक के

रूप में ग्रहण किया गया है। इसकी प्रस्तावना में कवि की वंश परम्परा का वर्णन किया गया है और महाराज रघुनाथ के पारिजात हरण तथा नलाम्युदय नामक नाटकों का उल्लेख किया गया है। मद्रास की ओरियण्टल लायब्रेरी के संस्कृत पाण्डुलिपि अनुभाग डिस्क्रिप्टिव कैटेलाग सं. XXI ८३९२ तथा कैटेलागस कैटेलागोरम सं. १६६१ में इसका उल्लेख किया गया है।

आनन्दराध– (ना.कृ.) २० वीं शदाब्दी के विमलयतीन्द्र चौधरी (दे.) लिखित नाटक। इसमें राधाकृष्ण लीला को नाट्य विषय बनाया गया है। इन लीलाओं के साथ छायातन्त्व भी पर्याप्त मात्रा में है। रंगमञ्च पर कंस द्वारा कृष्ण पर तीर चलाया जाना, मुष्टिक चाणूर के साथ वलदेव और कृष्ण का मुष्टिकयुद्ध, कृष्णद्वारा कंसवध इत्यादि दृश्यों का विधान किया गया है।

आनन्दराय माकिन– (ना.का.) जीवानन्दन नामक प्रतीक नाटक के लेखक। ये १८वीं शताब्दी के तंजौर के राजा सभोंजी और तुक्कोजी के मन्त्री थे। इनके आश्रम में वेद कवि रहते थे जिन्होंने विद्यापरिणय नाटक की रचना की और वह अपने आश्रय दाता (आनन्दराय) को भेंट कर दी। वेद कवि का ही दूसरा इसी प्रकार का नाटक जीवानन्दन भी था जो आनन्दरय के नाम पर प्रसिद्ध हुआ। (दे. वेद कवि)

आनन्दलतिका– (ना.कृ.) इसकी रचना कृष्णनाथ सार्वभौम भट्टाचार्य (दे.) ने १८वीं. शताब्दी में की थी। इसमें अंक के स्थान पर कुसुम शब्द का प्रयोग किया गया है। कृष्णपुत्र साम्ब और रेवा के प्रणय और विवाह को लेकर ५ अंकों (कुसुमों) के इस नाटक की रचना की गई। कृष्ण को नारद से समाचार मिलता है कि उनका पुत्र साम्ब रेवा पर अनुरक्त है। रेवा राजा दमन की पुत्री थी। राजा दमन ने पुत्री के स्वयंवर में समस्यापूर्ति में विजय की शर्त लगाई थी जिसमें साम्ब जीत जाता है और उसका रेवा से विवाह हो जाता है। पुत्री को विदा करते समय राजा दमन रो पड़ता है। मन्त्री उसे सान्त्वना देते हैं।

इस नाटक की रचना सामन्तचिन्तामणि के मनोविनोद के लिये की गई थी। जब उसकी पुत्री का विवाह हो गया था और वे कन्या के वियोग से दुःखी थे।

आनन्दविजय– (ना.कृ.) यह बिहारी कवि रामदास झा का लिखा नाटक है।

आनन्दसुन्दरी– (ना.कृ.) यह एक सट्टक है जिसकी रचना तुक्कोजी के अमात्य घनश्याम ने १८वीं शताब्दी में की थी। हुल्ट्ज द्वारा संस्कृत पाण्डुलिपियों की जो खोज रिपोर्ट सन् १९०५ में प्रस्तुत की गई थी उसमें २१४२ पर इसका उल्लेख किया गया है।

आयारंगसुत्त– (आचाराङ्गसूक्त) श्वेताम्बर जैनों के १२ आगमों में एक। यद्यपि बौद्ध और जैन दोनों धर्मों में काल्पनिक कथानक से मनोरंजन को गर्हित माना गया है

तथापि कहीं कहीं उन्हें उपादेय भी बतलाया गया है। उनमें आया रंग (II ११.१४) भी एक है।

आयु– (ना.पा.) विक्रमोर्वशी (दे.) नाटक का एक पात्र। यह पुरूरवा और उर्वशी का पुत्र है। इन्द्र ने पुरुरवा के लिये उर्वशी के प्रदान करने के समय शर्त लगा दी थी कि उर्वशी उतने समय तक ही पुरूरवा के साथ रहेगी जब तक पुरूरवा उर्वशी से उत्पन्न पुत्र का मुख नहीं देख लेंगे। उर्वशी पुरूरवा के साथ आनन्दमय जीवन बिता रही थी और पुरूरवा के प्रेम में इतनी खो गई थी कि वह उन्हें छोड़ने की कल्पना भी नहीं कर सकती थी। इसी बीच उनके इस पुत्र का जन्म हो गया। उर्वशी ने पुरूरवा द्वारा उसके मुख देख लिये जाने से बचाने के लिये पुत्र के पालन-पोषण की कहीं दूर व्यवस्था कर दी। फलतः वियोग की सम्भावना जाती रही। आयु ने यौवन प्राप्त कर लिया। एक वार एक गृध्र पुरुरवा की एक बहुमूल्य मणि लेकर आकाश में उड़ चला। राजा ने उसका पीछा किया। संयोग वश एक युवक ने वाण से गृध्र को मार दिया। राजा को वह वाण मिला जिस पर लिखा था पुरूरवा व उर्वशी के पुत्र आयु का वाण। राजा उस युवक को देखकर अत्यन्त हर्षित हो जाते हैं क्योंकि उन्हें शर्त का पता नहीं है। किन्तु उर्वशी बहुत दुखी हुई। उसे पुरुरवा से वियोग की सम्भावना सालने लगी। किन्तु इन्द्र ने एक विशिष्ट युद्ध में पुरुरवा की सहायता के उपलक्ष्य में सर्वदा केलिये उर्वशी उन्हें प्रदान कर दी और राजा का स्त्री पुत्र के साथ आनन्दमय जीवन चलता रहा।

आर. कृष्णमाचार्य– (ना.क़ा.) दे. कृष्णाचार्य आर।

आरण्यका– (ना.पा.) यह प्रियदर्शिका (दे.) नाटक की नायिका का नाम है। राजा ने प्रियदर्शिका को यही नाम देकर अन्तःपुर में वासवदत्ता की अनुचरी बना कर रखा था। इसे आरण्यिका भी कहा जाता है। यह अत्यन्त रूपवती है। इसकी सुगन्ध से आकृष्ट होकर भौंरे उसे घेर लेते हैं। वह प्रेयसी है और अन्त में अपने प्रेम को प्राप्त करने में सफल हो जाती है।

आरण्यिका– (ना.पा.) दे. आरण्यका।

आर. साम शास्त्री– (ना.क़ा.) इनका लिखा जर्मन कवि लेसिंग के एमेलिया गैलेट्टी का संस्कृत में अनुवाद ११ दृश्यों में मैसूर संस्कृत कालेज जर्नल (VII ११६) संख्या प्रकाशित हुआ था।

आरुवेल्लिनयनारु– (ना.पा.) क्रीड़ाभिराम नाटक (दे.) की नायिका जो कामवासना से भरी है और उस पर सामन्त लोग कामना से अन्धे होकर टूट रहे हैं तथा आपस में मरने मारने का संग्राम करने के लिये को तैयार हैं।

आर्य– (ना.पा.) वैदिक परम्परा में मकर की संक्रान्ति के अवसर पर महाव्रत में गौरवर्ण वैश्य और कृष्णवर्ण शूद्र में एक सफेद खाल के लिये संघर्ण दिखलाया जाता

है। वैश्य को आर्य कहा गया है। कीथ के अनुसार शूद्र तमोवल का प्रतीक है और वैश्य तेजोवल का अथवा शूद्र शीत का प्रतीक है और वैश्य ग्रीष्म का। इसमें गौरवर्ण तेजोवल और ग्रीष्मशक्ति की विजय तमोवल और शीत पर दिखलाई जाती है जिसका उद्देश्य है- सूर्य द्वारा उर्वर शक्ति प्राप्त करने का उत्सव। यज्ञों के अवसर पर जो ये छोटे छोटे अभिनय दिखलाये जाते थे वे नाटक के विकास में अवश्य सहायक हुये होंगे।

आर्यक- (ना.पा.) मृच्छकटिक में एक पात्र यह राजा पालक के प्रतिकूल सफल विद्रोह करता है; पहले यह बन्दी बना लिया गया था; किन्तु अन्त में राजा पालक को गद्दी से उतार कर राजा बन जाता है।

आर्य श्यामिलक- (ना.का.) दे. श्यामिलक।

आर्यसूर्य- (ना.का.) इनका जन्म कौण्डिन्यगोत्र में हुआ था। इन्होंने विजय विक्रमनामक एक व्यायोग की रचना की जिसका उल्लेख मद्रास की त्रैवार्षिक खोज रिपोर्ट में सं. II १७५१ पर किया गया है। आर्यसूर्य नाम के एक अन्य ग्रन्थकार का उल्लेख एक दूसरी ग्रन्थ सूची में किया गया है जिसने आर्या रामायण लिखी थी। सम्भवतः वह कोई अन्य व्यक्ति था।

आलस्यकर्मीयम्- (ना.कृ.) यह एक प्रहसन है जिसकी रचना नायर के.के. (दे.) ने की थी। (रचना काल १९४२-४३)

आश्चर्यचूडामणि- (ना.कृ.) इसे केवल चूडामणि भी कहा जाता है। यह शक्तिभद्र (दे.) का लिखा नाटक है जो मालावार में लिखा गया सम्भवतः पहला नाटक है। इसकी प्रस्तावना में लिखा है कि यह एक आश्चर्यजनक बात है कि दक्षिण से भी एक नाट्यकृति प्राप्त हो- अब तो आकाशकुसुम भी खिलने लगेंगे और बालू से भी तेल निकलने लगेगें। इससे ज्ञात होता है कि यह नाटक कुलशेखर के १०वीं शताब्दी के उन नाटकों से भी प्राचीन है जो केरल के प्राचीनतम नाटक माने जाते हैं।

७ अंकों का यह नाटक रामकथा विषयक है। इसमें शूर्पणखा का राम के पास आगमन, उसको विकृतकरना, सीताहरण, लंका में सीता के प्रति रावण का उत्कट प्रेम, हनुमान का लंकागमन इत्यादि कथानक लिया गया है। इनका नामकरण सीता की जादुई चूडामणि और राम की अद्भुत अंगूठी के आधार पर किया गया है। इसमें स्थान स्थान पर उच्चकोटि की कविता के दर्शन होते हैं।

केरल में इस नाटक का बहुत अधिक महत्व है। इसकी प्रविधि भास से मिलती है और भास के नाटकों के समान ही इसका अभिनय किया जाता है तथा इसे सम्मान दिया जाता है। कुप्पूस्वामी शस्त्री ने एक विस्तृत भूमिका के साथ इसका प्रकाशन मद्रास से कराया है।

मालावार में इस नाटक को वहां के व्यावसायिक नट प्रस्तुत करते हैं और इसका नाम भास के प्रतिमा और अभिषेक नाटक के साथ लिया जाता है। वेणीसंहार के पद्यों से इसके कतिपय पद्य मिलते जुलते हैं। कुप्पू स्वामी ने इनके समय पर विशेष विचार किया है और विवेचन से निष्कर्ष निकाला है कि इसका रचनाकाल ८वीं या नवीं शताब्दी को सुविधापूर्वक स्वीकार किया जा सकता है।

आषाढस्य प्रथमदिवसे– (ना.कृ.) डा. वेङ्कटराम राघवन का लिखा एवं मद्रास आकाशवाणी से प्रसारित एक प्रेक्षणक (ओपेरा या संगीत नट्य) इसमें रामगिरि पर्वत पर कालिदास के यक्ष के जाने की काल्पनिक कथा संगीत के माध्यम से प्रस्तुत की गई है। रचना २० वीं शताब्दी में हुई। मेघदूत की पूर्ववर्ती कथा का सहारा लेकर इसकी रचना की गई। मेघदूत पर आधारित १७ गीतों का यह संग्रह है।

इ

इन्दिरा परिणय– (ना.कृ.) यह वीरराघव (दे.) लिखित एक नाटक है। १९१५ ई. हुल्ट ने संस्कृत पाण्टुलिपियों की जो खोज रिपोर्ट तैयार की थी उसमें सं. III १७९४. IX पर इसका उल्लेख किया गया है। यह रिपोर्ट मद्रास लायब्रेरी से प्राप्त की जा सकती है।

इन्दुमती– (ना.कृ.) भोजराज ने खण्डकथा के रूप में इस प्राकृत रचना का उल्लेख किया है। जहां किसी बड़ी कथा से कोई छोटा खण्ड निकाल कर रचना प्रस्तुत की जाती है तब उसे खण्डकाव्य कहा जाता है। प्रस्तुत रचना रघुवंश के इन्दुमती स्वयंवर से निकालकर तथा रसानुकूल काट छांट कर लिखी हुई प्रतीत होती है। ध्वन्यालोक तृतीय उद्योत से ज्ञात होता है कि यह केवल पद्य में थी। कुछ लोगों ने इसे नाटिका की श्रेणी में स्थान दिया है (दे. कृष्णमाचार्य लिखित संस्कृत साहित्य का इतिहास) हो सकता है कि इसकी रचना पद्यात्मक अभिनय के रूप में की गई हो।

(१) **इन्दुमती परिणय–** (ना.कृ.) यह विवाह विषय को लेकर लिखा गया नाटक है। इसके लेखक का पता नहीं है। इसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम सं. १.५९ पर किया गया है। गुस्तव ओपर्ट द्वारा दक्षिण भारत के व्यक्तिगत पुस्तकालयों में जो खोज की गई थी और दो भागों में उसकी रिपोर्ट मद्रास में सुरक्षित की गई थी उस रिपोर्ट की सं. II. ०८८२ में भी इसे प्राप्त किया जा सकता है।

(२) **इन्दुमती परिणय–** (ना.कृ.) १९वीं शताब्दी के तंजौर के राजा शिवाजी महाराज की रचना। यह यक्षगानात्मक रचना है जिसमें सूत्रधार प्रारम्भ से अन्त तक उपस्थित रहता है और कथानक का सञ्चालन करता है। सभी संवाद संस्कृत में हैं। सर्वप्रथम जयगान

इत्यादि; इसके बाद गणेशादि अनेक देवताओं की स्तुति; इसके बाद कथानक का प्रारम्भ होता है। रघुवंश में वर्णित अज इन्दुमती विवाह का इसके कथानक के रूप में उपादान किया गया है। इसकी भाषा प्रायः अशुद्ध है। तंजौर की चैत्रोत्सव बृहदीश्वर यात्रा में इसका प्रथम अभिनय हुआ था।

इन्दुमतीराघव– (ना.कृ.) इन्दुमती और रघुवंशी अज के विवाह विषय को लेकर लिखा गया १७वीं शताब्दी का नाटक। इसके लेखक हैं कक्कसेरी महातिरि (दे.) इस नाटक के केवल दो अंक प्राप्त होते हैं। इस नाटक की प्रति मद्रास के प्राच्य पुस्तकालय में सुरक्षित है। संस्कृत पाण्डुलिपियों के ट्रायेनियल कैटेलाग IV ४७७८ पर इसका पता दिया हुआ है। इसी पते पर इसी नाम के नाटक का लेखक दामोदर (कक्क सेरी पट्टेरी) को भी माना गया है। किन्तु उनका समय १५वीं शताब्दी बतलाया जाता है।

इन्दुलेखा– (ना.कृ.) भोजराज ने वीथ्यङ्ग त्रिगत के प्रकरण में इस रचना का उल्लेख किया है और इससे एक उद्धरण दिया है जिसमें राजा और उसके मित्र (स्पष्टतः विदूषक) की बातचीत दिखलाई गई है। शारदातनय ने भी वीथी इन्दुलेखा का उल्लेख किया है और भोजराज द्वारा दिया हुआ उद्धरण ही दोहरा दिया है जिसमें उन्होंने भोजराज द्वारा दिये गये पाठ का संशोधन भी किया है। बहुरुपमिश्र ने भी यही उद्धरण दोहरा दिया है किन्तु इसे एक अन्य मालतिका से लिया हुआ बतलाया है। इस उद्धरण के अतिरिक्त इस नाटक या मालतिका नाटक के विषय में न तो इसके लेखक का पता है, न इसका कथानक ज्ञात है। केवल तीन पात्रों का पता चलता है– राजा, विदूषक और नायिका इन्दुलेखा (अथवा मालतिका जो भी उल्लेखानुगत हो।)

(१) **इन्द्र**– (ना.पा.) भरत के नाट्यशास्त्र के पहले और अन्तिम अध्यायों में नाट्योत्पत्ति और प्रसार के जो पौराणिक उपाख्यान दिये गये हैं उनमें इन्द्र और उनके दरवार का महत्वपूर्ण योगदान है। इन्द्र के नेतृत्व में देवताओं ने ब्रह्माजी से नेत्रों और कानों को आनन्द देने वाले किसी दृश्य-श्रव्य के निर्माण की प्रार्थना की। ब्रह्मा जी ने वह प्रार्थना स्वीकार कर पञ्चम वेद नाट्य वेद की रचना की। इन्द्र की असुरों पर जीत के उपलक्ष्य में सर्वप्रथम जो नाटक प्रस्तुत किया गया उसमें दैत्यों पर इन्द्र की विजय का प्रदर्शन किया गया था। दैत्यों ने वार-वार विघ्न डालने का प्रयत्न किया और वार-वार इन्द्र ने उनके विरोध का दमन किया। अन्त में ब्रह्माजी ने स्थायी समाधान के लिये दैत्यों को समझाया बुझाया कि नाटक देवताओं का ही नहीं दैत्यों का भी क्रीडनीयक है। इसमें देवताओं और दैत्यों दोनों के गुण अवगुण दिखलाये जाते हैं।

नाटक पहले देवताओं के सामने इन्द्र के ही दरवार में दिखलाये जाते थे और उनका प्रबन्ध भरत के शिष्य किया करते थे। इनमें ऋषियों मुनियों की भी मजाक उड़ाई जाती थी। अतएव उन लोगों ने शाप दे दिया कि अभिनय करने वालों को अच्छी निगाह से नहीं देखा जायेगा और वे (सदाचार की दृष्टि से) लोक निन्दित जीवन बिताने पर बाध्य

होंगे। इन्द्र की चिन्ता बढ गई। वे ऋषियों के पास गये और उनके सामने अपनी चिन्ता रक्खी कि इस प्रकार तो नाट्यकला नष्ट हो जायेगी। ऋषियों ने शाप में संशोधन कर दिया कि अभिनेता भले ही अच्छी दृष्टि से न देखे जायें कला का असम्मान नहीं होगा और नाट्यकला आदर की दृष्टि से देखी जायेगी।

इन्द्र की मित्रता नहुष से थी। अतः इन्द्र ने नहुष के आग्रह पर मृत्युलोक में नहुष की सभा में अभिनय करने का अप्सराओं को आदेश दिया। किन्तु देवताओं ने मृत्युलोक के लोगों से अप्सराओं का स्वच्छन्द मिलना जुलना पसन्द नहीं किया। तब इन्द्र ने भरत को मृत्युलोक में जाकर वहां नाट्यकला प्रवर्तित करने और वहां के लोगों को अभिनय कला सिखाने का आदेश दिया। भरत ने अपने बच्चों और शिष्यों को मृत्युलोक में कला प्रवर्तित करने के लिये भेजा। उन लोगों ने तत्काल जाकर कला का प्रवर्तन किया। शाप के प्रभाव को अधिकाधिक कम करने के लिये ब्रह्माजी ने इस कला को आशीर्वाद दिया कि यह कभी नष्ट नहीं होगी।

(२) **इन्द्र**– (ना.पा.) ऋग्वेद के कई संवादों में इन्द्र प्रमुख पात्र है; इनमें कतिपय इस प्रकार है–

(अ) **नेमभार्गव**– और इन्द्र का संवाद (सू. ७-१००) नेम भार्गव प्रार्थना करता है और इन्द्र प्रसन्न होकर उसका उत्तर देते हैं।

(आ) **इन्द्र और वसुक्र का संवाद**– (१०-२२) इसमें वसुक्र की पत्नी की भी छोटी सी भूमिका है।

(इ) **इन्द्र, अदिति और कामदेव संवाद**– (४.१८)

(ई) **इन्द्र अदिति और वृषाकपि**– का वाद विवाद (१०. ८६) इसमें सभी वक्ता दूसरे के तर्क का खण्डन करने और दोष निकालने में निपुण हैं पर कोई अपने दोष नहीं देखता।

(उ) **इन्द्र और मरुतों का संवाद**– (१.१६५, १७०) इन्द्र के पुत्रों ने वृत्रासुर के साथ युद्ध में इन्द्र का साथ छोड़ दिया था; इन्द्र क्रुद्ध है; पुत्र उन्हें शान्त करना चाहते हैं। अन्त में इन्द्र का क्रोध शान्त हो जाता है।

(ऊ) **इन्द्रवरुणसंवाद**– (सू. ४.४२) दोनों एक दूसरे से सापेक्षिक श्रेष्ठता सिद्ध करना चाहते हैं।

(ए) **इन्द्र का एकालाप**– (सू. १०.११९) इसमें सोमपान से उन्मत्त लोकर इन्द्र अपना गुण गान स्वयं करते हैं।

(३) **इन्द्र**– ऋग्वेद तथा दूसरे प्रकार के प्राग्वर्ती साहित्य में इनका निर्देश तो किया गया है जबकि ये स्वयं नाट्य पात्र नहीं हैं। ऐसे कतिपय उदाहरण इस प्रकार हैं–

(अ) **सरमापणि संवाद**– (सू. १०.१०८) पणि नामक असुरों ने इन्द्र की गायें चुरा

ली हैं। इन्द्र की दूती सरमा नामक कुतिया उन्हें तलाश करते हुए वहां पहुंच जाती है और इन्द्र की ओर से पणियों से वार्तालाप करती है।

(आ) **इन्द्रध्वज उत्सव**- (सू. १.१६५,१७०,१७१) इसमें मरुतों द्वारा मृत्यु के माध्यम से इन्द्र की विजय का प्रदर्शन किया गया है।

(इ) **राज्याभिषेक विषयक सूक्त**- किसी राजा के राज्याभिषेक के अवसर पर जिन सूक्तों के मन्त्र वोले जाते थे उनमें इन्द्र के राज्याभिषेक की प्रतिध्वनि रहती थी जिसका मन्तव्य होता था कि उतने समय के लिये राजा को इन्द्र की मान्यता प्राप्त हो जाती थी।

(ई) **भरत के नाट्यशास्त्र** के अनुसार सर्वप्रथम इन्द्र की असुरों पर विजय के उपलक्ष्य में उसी कथानक को लेकर इन्द्रध्वज महोत्सव के रूप में अभिनय किया गया।

(उ) **इन्द्रध्वज उत्सव**- में विरोध करने के लिये दैत्य उठ खड़े हुये। तब इन्द्र के जर्जर द्वारा उन्हें मार भगाया गया।

(ऊ) **शकुन्तला नाटक**- में ६ठे और ७वें अंकों में यद्यपि इन्द्र सामने नहीं आते फिर भी उनके दुष्यन्त के साथ सम्बन्ध पर विस्तृत प्रकाश डाला गया।

(४) **इन्द्र**- (ना.पा.) लौकिक नाटकों में भी अनेकशः इनकी पात्रता चित्रित की गई है। कुछ उदाहरण-

(अ) **भास के कर्णभार**- में इन्द्र ब्राह्मण के वेष में कर्ण से कुण्डल और कवच मांगने आते हैं और कवच कुण्डल लेकर अमोध वज्र प्रदान करते हैं।

(आ) **महावीर चरित**- में इन्द्र और चित्ररथ आकाश से राम रावण युद्ध का वर्णन करते हैं; क्योंकि देवता होने के कारण उन्हें दिव्य दृष्टि प्राप्त है।

(इ) **राजशेखर कृत बालरामायण** में राम और रावण के घोर युद्ध का इन्द्र वर्णन करते हैं।

(ई) **वत्सराज के त्रिपुरदाह** का भरत वाक्य इन्द्र के द्वारा कहा गया है।

(उ) **विक्रमोर्वशी में** जब पुरुरवा के प्रति प्रेम की उन्मत्तताजन्य असावधानी में उर्वशी अभिनय में गड़बड़ कर देती है और इस अपराध के लिये भरत उन्हें मृत्युलोक में रहने का शाप दे देते हैं तब इन्द्र ही उस शाप को नियन्त्रित कर उस समय तक मृत्युलोक में रहने की व्यवस्था कर देते हैं जब तक राजा उर्वशी के पुत्र का मुख न देखे। अन्त में जब राजा पुत्र आयु का मुख देख लेते हैं तब उर्वशी को अत्यन्त दुखी होकर पुरूरवा का साथ छोड़ना पड़ रहा है और पुरुरवा भी वियोग वेदना से पीड़ित होकर पुत्र पर राज्यभार डालकर वन को जाने के लिये तैयारी कर रहे हैं उसी समय नारद इन्द्र का सन्देश लेकर आ जाते हैं कि इन्द्र ने दैत्यों को पराजित करने के लिये पुरुरवा को स्वर्ग में आमन्त्रित किया है और इस उपलक्ष्य में सर्वदा के लिये उर्वशी उन्हें प्रदान कर दी गई है।

(५) **इन्द्र**– (तृतीय) ये कर्णाटक के राष्ट्रकूट के राजा थे और इन्होंने कन्नौज के राजा महीपाल को पराजित करने की चेष्टा की थी। इनका उल्लेख क्षेमीश्वर ने चण्डकौशिक की प्रस्तावना में किया है। क्षेमीश्वर के अनुसार महीपाल ने राष्ट्रकूट के इन्द्र को पराजित कर दिया था जिसे राजकीय क्षेत्रों में स्वीकृत किया जाता है। जबकि इन्द्र का दावा है कि उसने कान्यकुब्ज नरेश को जीत लिया था। कुछ लोगों के मत में ये महीपाल राजशेखर के आश्रयदाता महीपाल से अभिन्न थे।

इन्द्रगन्तिकोण्ड सूरि– (ना.का.) ये दक्षिण भारतीय नारायण के पुत्र थे। इनका लिखा भाण शृङ्गाररसभृङ्गार प्राप्त होता है। इनका कथन है कि इन्होंने महेशमानस-महोत्सव नामक ग्रन्थ की भी रचना की। सम्भवतः यह दूसरा ग्रन्थ महाकाव्य है।

इन्द्राणी– (ना.पा.) ऋग्वेद के सूक्त १०.८६ में इन्द्र, इन्द्राणी और वृषाकपि का वाद-विवाद होता है। वादविवाद का विषय है– एक बन्दर ने इन्द्राणी को क्रुद्ध कर दिया है। इस संवाद में प्रत्येक वक्ता दूसरे के कथन में दोष निकलता है किन्तु स्वयं अपने दोष नहीं देखता।

इन्दिरा परिणय– (ना.कृ.) यह श्री शैल के पुत्र वीर राघव का लिखा एक नाटक है। मद्रास में १९०५ की संस्कृत पाण्डुलिपि विषयक ई. हुल्ट्ज की रिपोर्ट में इसका उल्लेख किया गया है।

इरावती– (ना.पा.) मालविकाग्निमित्र के प्रसिद्ध नायक अग्निमित्र की छोटी रानी। इसका स्वभाव ईर्ष्यालु और कर्कश है। यह छिप छिँप कर राजा की प्रेम चर्चायें सुनती है और क्रोध में प्रचण्ड हो जाती है तथा राजा का विरोध करने में राजा की मर्यादा का भी अतिक्रमण कर देती है। परन्तु जब मालविका की वास्तविकता खुलती है तब वह क्षमा मांग लेती है।

इल्लूरामस्वामी शास्त्री– (ना.का.) ये १९वीं शताब्दी के लेखक हैं। इनका लिखा कैवल्यावली परिणय नाटक प्रकाश में आया है।

ई

ईच्चमवडि श्रीनिवासाचार्य– (ना.का.) दे. श्रीनिवासाचार्य ईच्चमवडि

ईश्वरदत्त– (ना.का.) चतुर्भाणी (दे.) में सङ्कलित धूर्त विटसंवाद (दे.) नामक भाण के लेखक। इनके व्यक्तित्व के विषय में निश्चयात्मक रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। क्या ये तीसरी शताब्दी के राजा शिवदत्त के पुत्र ईश्वर सेन थे या ये आभीर जातीय महाक्षत्रप थे जिनके सिक्के प्राप्त हुये हैं।

धूर्तविटसंवाद में पाटलिपुत्र में दृश्य फलक के द्वारा संवाद के पाध्यम से कामशास्त्र

की विधियों की व्याख्या की गई है। इसमें सामाजिक विषयों का उपादान हुआ है। भोजराज ने इससे उद्धरण दिये हैं। चतुर्भाणी के चारों नाटकों में इसीमें विट स्वयं रङ्गमञ्च पर आता है। अन्य नाटकों में विट का मित्र उसके क्रिया कलाप की सूचना देता है। इसमें विट स्वयं नायक है।

ईश्वर शर्मा– (ना.का.) इनका लिखा एक भाण बतलाया जाता है जिसका नाम है शृङ्गार सुन्दर। इनके विषय में इसके अतिरिक्त कुछ भी ज्ञात नहीं है कि ये विम्वली के निवासी थे।

उ

उग्रसेन– (ना.पा.) भास के बालचरित का एक पात्र। ये कंस के पिता थे जिन्हें कंस ने बन्दीगृह में डाल दिया था। कंस को मारकर कृष्ण ने इन्हें बन्दीगृह से छुड़ाकर पुनः राजसिंहासन पर स्थापित किया।

उज्जीवितमदालसा– (ना.क.) दे. मदालसा (३)

उत्तर कुरुक्षेत्र– (ना.कृ.) इसके लेखक हैं विश्वेश्वर विद्याभूषण। इसमें ५ अंक हैं जिनमें महाभारत युद्ध के बाद महाभारत के प्रमुख पात्रों की परिस्थितियों का अंकन किया गया है। कुन्ती का वानप्रस्थ, कृष्ण की प्रभास यात्रा, द्वारका में यादवों का विनाश, महिलाओं का दस्युओं द्वारा अपहरण इत्यादि घटनायें ही इस नाट्यकृति का विषय बनी हैं। इसमें कथानक की एकरूपता नहीं है। विभिन्न चित्रण एक में जोड़कर उन्हें एक रूपता प्रदान करने की चेष्टा की गई है। कार्यव्यवहार की कमी होने के कारण इसमें नाटकीयता का तत्व नगण्य है। यह कहने भर के लिये नाटक है। संस्कृत साहित्य पत्रिका में १९५०-५१ में इसका प्रकाशन हुआ था।

उत्तरचरित– (ना.कृ.) रामकृष्ण (भवभूति) (दे.) लिखित राम के उत्तरकालीन चरित्र पर आधारित नाटक। इसमें लवकुश के जन्म और पालन पोषण का चित्रण किया गया है। दक्षिण भारत में संस्कृत पाण्डुलिपियों की खोज रिपोर्ट में विवरण और उद्धरण दिये गये हैं। यह खोज हुल्टज ने १९०५ में की थी और यह रिपोर्ट मद्रास में सुरक्षित है।

उत्तरनैषधचरितम्– (ना.कृ.) मोडक वामन आबाजी लिखित नाटक इसकी रचना १९वीं शताब्दी में हुई थी।

उत्तररामचरित– (ना.कृ.) भवभूति (दे.) लिखित सीतानिर्वासन विषयक ७ अंकों का नाटक। भारतीयनाट्य साहित्य में कालिदास के अभिज्ञानशाकुन्तलम् के बाद या उसके समकक्ष अथवा उससे भी अधिक महत्वपूर्ण नाटक के रूप में इसे मान्यता प्रदान की गई है। इसी नाटक के कारण कालिदास और भवभूति की धूरामेड़ी का प्रवाद चल पड़ा है।

इस नाटक का मुख्य उद्देश्य लोकानुरंजन के लिये राम द्वारा सीता के निर्वासन का नाटकीकरण करना है।

नाटक की प्रस्तावना में ही उस समस्त परिस्थिति का उल्लेख कर दिया गया है जिससे सुविधा पूर्वक सीता का परित्याग सम्भव हो सका। प्रस्तावना से ही ज्ञात हो जाता है कि राम का राज्याभिषेक महोत्सव समाप्त हो चुका है। उत्सव में आये हुये सभी अभ्यागत एवं लंकावासी विभीषण इत्यादि एवं दक्षिण भारतीय सहचर सुग्रीव इत्यादि जा चुके हैं तथा उत्सव की सारी चहल पहल समाप्त हो चुकी है। राम की बड़ी बहन शान्ता को उसके बचपन में ही राजा लोमपाद ने गोद ले लिया था और उसका विवाह शृङ्गी ऋषि से कर दिया गया था। यह भी ज्ञात हो जाता है कि शृङ्गी ऋषि ने १२ वर्षों का यज्ञ प्रारम्भ किया है जिसमें शामिल होने के लिये कौशल्या इत्यादि मातायें एवं वशिष्ठ एवं अरुन्धती दामाद के यहां चले गये हैं। साथ ही जनक भी चले गये हैं जो राम के राज्याभिषेक में राम का सत्कार करने आये थे। यदि ये सभी गुरुजन एवं अभ्यागत अयोध्या में विद्यमान होते तो सीता निर्वासन कदाचित् इतना सरल न होता। सम्भव था राम को दब जाना पड़ता और लोकानुरंजन की अपनी प्रतिज्ञा पूरी न कर पाते। प्रस्तावना में ही यह भी मालूम पड़ता है कि रावण के यहां रहने के कारण सीता की वदनामी फैली हुई है।

पहला अंक– के प्रारम्भ में अष्टावक्र दामाद के यज्ञ से सन्देश लेकर आते हैं– वे बतलाते हैं कि माता इत्यादि सभी लोग कुछ समय तक यज्ञ में ही रुके रहेंगे। माता इत्यादि सभी पूज्य महिलाओं ने राम को आदेश दिया है कि सीता का जो भी दोहद हो उसे अविलम्ब पूरा किया जाय। वशिष्ठ का आदेश है कि सर्वात्मना प्रजानुरंजन करते रहो। इस पर राम अपनी प्रतिज्ञा दोहरा देते हैं कि प्रजा के अनुरंजन के लिये स्नेह दया सुख यहां तक की सीता को भी छोड़ने में मुझे दुःख नहीं होगा। इसी समय लक्ष्मण प्रवेश कर निवेदन करते हैं कि राम के पूर्ववर्ती जीवन के विषय में चित्रवीथी तैयार हो गई है। जिसमें सीता की अग्नि परिक्षा पर्यन्त राम के जीवन वृत्त विषयक चित्र क्रमबद्ध रूप में सजा दिये गये हैं। अतः लक्ष्मण की प्रार्थना पर राम और सीता चित्रवीथी देखने चल देते हैं। चित्र इतने अच्छे बन पड़े हैं जैसे वे चित्र नहीं मूल तत्व ही हों। राम एक एक चित्र को देखते जाते हैं और उस समय की भावना में बहते जाते हैं। चित्रों में विश्वामित्र के दिये हुये जृम्भकास्त्रों के चित्र हैं; राम सीता से उनको प्रणाम करने के लिये कहते हैं और आशंसा करते हैं कि ये शस्त्र गर्भस्थ वालक के पास स्वतः उपस्थित हो जायेंगे। जब सीता के सामने पञ्चवटी के दृश्य आते हैं तब सीता उन्हीं प्रदेशों में पुनः विचरण करने का दोहद प्रकट करती है। सीता के श्रान्त हो जाने के कारण राम यहीं पर चित्र दर्शन का कार्य रोक देते हैं और लक्ष्मण को आदेश देते हैं कि तत्काल रथ तैयार कर सीता के दोहद को पूरा किया जाय। लक्ष्मण रथ लेने के लिये चले जाते हैं; राम

की वांह का सहारा लेकर सीता सो जाती है। राम दाम्पत्य जीवन की सुख सुविधाओं, महत्व और आदर्श की भावनाओं में वह रहे हैं कि उसी समय दुर्मुख नामक चर आता है और सूचना देता है कि जनता में सीता की बदनामी फैली हुई है। राम अत्यन्त दु:खी हो जाते हैं किन्तु तत्काल सीता परित्याग का निर्णय कर लेते हैं और इसके लिये दुर्मुख के ही हाथ लक्ष्मण के पास आदेश भेज देते हैं। उसी समय उन्हें लवणासुर से त्रासित ऋषियों का सन्देश मिलता है। उसके दमन का प्रबन्ध करने के लिये राम चले जाते हैं और उनके परोक्ष में ही लक्ष्मण सीता को लेकर वन की ओर प्रस्थान करते हैं। प्रथम अंक यहीं समाप्त हो जाता है। इस अंक का नाम चित्र दर्शन है जिसमें चित्रों के माध्यम से राम के प्राक्तन जीवन की झांकी दिखलाकर उससे उत्तर चरित के सम्बन्ध की योजना की गई है।

दूसरा अंक- इस अंक का नाम पञ्चवटीप्रवेश है। प्रारम्भ में मिश्र विष्कम्भक से ज्ञात हो जाता है कि सीता परित्याग को १२ वर्ष बीत चुके हैं। इस विष्कम्भक में आत्रेयी और वासन्ती की बातचीत है। वासन्ती वनवास काल की सीता की सहेली है जिसे वन देवता कहा गया है। वन्य जीवन तक सीमित रहने के कारण उसे यह भी सूचना नहीं मिली है कि सीता का परित्याग किया जा चुका है। वाल्मीकि आश्रम में दो बालक कहीं आगये हैं जो इतने विचित्र है कि जृम्भकास्त्र उन्हें बचपन से ही सिद्ध हैं। एक तो सारा आश्रम उन्हीं में व्यस्त रहता है दूसरे संयोग से एक शिकारी द्वारा पक्षियों के जोड़े में एक को मारा जाता हुआ देखकर वाल्मीकि के मुख से एक छन्दस्वती वाणी निकल गई जिसके आधार पर वे नित्य रामायण रचना करने में लगे रहते हैं। अतः आश्रम की सारी व्यवस्था उच्छिन्न हो गई है क्योंकि कुलपति को उस ओर ध्यान देने का विल्कुल अवसर नहीं मिलता। इसीलिये आत्रेयी अगस्त्य के आश्रम में प्रवेश लेने जा रही है। उससे वासन्ती को यह भी पता चल जाता है कि राम ने अश्वमेघ करना प्रारम्भ कर दिया है जिसके लिये सीता की स्वर्णमयी मूर्ति बनाई है और अश्व छोड़ा जा चुका है जिसकी रक्षा के लिये कुमार लक्ष्मण के पुत्र चन्द्रकेतु को नियुक्त किया गया है। यहीं यह भी ज्ञात होता है कि ब्राह्मण के मृत पुत्र को जीवित करने के लिये शम्बूक शूद्र का वध करने के निमिन्त राम दण्डक वन में आने वाले हैं। इसी पृष्ठभूमि के साथ राम दण्डक वन में प्रवेश करते हैं, शम्बूक का वध करते हैं जो एक दिव्य पुरुष है और शाप से शूद्र बन गया था। राम द्वारा मारे जाने पर वह शाप मुक्त होकर पुनः दिव्य पुरुष बन जाता है। वह अगस्त्य का आमन्त्रण देता है। राम पुष्पक विमान से अगस्त्य आश्रम की ओर प्रस्थान करते हैं। वे दण्डकारण्य की पुरानी स्मृतियों में खो जाते हैं और सीता वियोग की वेदना उन पर अधिकाधिक हावी हो जाती है।

तीसरा अंक- यह इस नाटक का वह भाग है जिसके वल पर भवभूति ने करुणरस का मूर्तावतार होने की प्रतिष्ठा पाई है। इसके विष्कम्भक में तमसा और मुरला इन दो

देवियों की बातचीत से ज्ञात हो जाता है कि लक्ष्मण सीता को छोड़कर चले गये थे तब सीता गंगा की धारा में कूद पड़ीं; वहाँ उनके दो बालक उत्पन्न हुये जिनकी रक्षा और पालन-पोषण का भार दूध पीने तक गंगा और पृथ्वी इन दो देवियों ने अपने ऊपर ले लिया बाद में दोनों बालकों को वाल्मीकि आश्रम में भेज दिया तथा सीता कहीं पाताल लोक में रह रही है। आज राम दण्डक वन में आ रहे हैं यहां सीता के द्वारा पहले उपभुक्त स्थानों को देखकर उनकी वियोग वेदना अधिकाधिक बढ़ने और उनके वार-वार व्यामोहित होने की सम्भावना है। अतः भगवती भागीरथी सीता को बच्चों के १२वें जन्मदिन के बहाने मृत्युलोक में ले आई हैं। राम के दण्डक वन में आने पर वे उदृश्य रूप में तमसा के साथ रहेंगी और उनकी प्रत्येक मूर्छा में स्पर्श से उन्हें होश में लाने की चेष्टा करेंगी। राम पंचवटी में आते हैं; उनकी मुलाकात वासन्ती से हो जाती है दोनों पुराने परिचित स्थानों पशु-पक्षिओं आदि को देखते हैं और करुण विभोर हो जाते हैं। तमसा और सीता अदृश्य रूप में उनके साथ लगी हैं। राम के मूर्छित हो जाने पर सीता अपने स्पर्श से उनकी मूर्छा दूर कर देती है। राम कह उठते हैं- सीता का स्पर्श प्राप्त हो गया। वासन्ती इसे राम का प्रलाप समझती है एक वार सीता का हाथ भी राम के हाथ में आ जाता है किन्तु सीता हाथ छुड़ा कर निकल जाती है। विचित्र स्थिति उत्पन्न हो गई है। राम की जो दशा है लगभग वैसी ही दशा सीता की भी है। एक के साथ वासन्ती है दूसरे के साथ तमसा। सभी की भावनायें पराकाष्ठा पर पहुंची हुई हैं। वास्तव में भवभूति इस अंक में पत्थरों को भी रूला देते हैं।

चौथा अंक- यह राम सम्बन्धित दूसरे व्यक्तियों की भावनाओं के विषय में है। कौशल्या इत्यादि राम के पारिवारिक सदस्य दामाद का यज्ञ समाप्त कर अरुन्धती के साथ आश्रम में आ जाते हैं; क्योंकि वे सीता से शून्य अयोध्या में जाना नहीं चाहते। उधर जनक इत्यादि भी वाल्मीकि के दर्शन के लिये आते हैं। दोनों परिवारों का मिलन होता है। वीतराग भी जनक की सीता के प्रति भावनायें अन्यन्त उद्दीप्त हैं। वे क्रोध में भी हैं यहां तक कि वे राम को शाप देने के लिये भी उद्यत हैं। कौशल्या शोक से गड़ी जा रही हैं। बड़ी कठिनाई से वे गृष्टि (कञ्चुकी) के साथ जनक के सामने आती है। जनक उपेक्षा करते हैं; किन्तु जब कौशल्या मूर्छित हो जाती हैं तब जनक उनके प्रति सदय हो जाते हैं। सभी लोग तीव्र भावना से भरे हैं। उसी समय वालकों के मध्य खेलते लव उन्हें दिखलाई पड़ जाते हैं। वे उन्हें पास बुलाते हैं। वालक की मुखाकृति देखकर सभी को उनके राम का पुत्र होने का सन्देह हो जाता है किन्तु कोई इस बात को कहता नहीं। बालक का मानवीय व्यवहार, उसकी शालीनता, उसका रामायण का ज्ञान सभी को आश्चर्य चकित कर देता है। अन्त में अश्वमेघ के घोड़े के विषय में सुनकर लव चला जाता है और उसके कहने से उसके साथी बालक उस घोड़े को खदेड़कर आश्रम की ओर ले जाते हैं।

पांचवां अंक– कुमारपराक्रम परक हैं। सेनायें घोड़ा छुड़ाने सामने आ जाती है। कुश तो रामायण का कथाभाग अभिनीत करने के लिये देने के निमित्त भरत के पास गया है। सेनाओं का मुकावला करने का भार लव पर ही आ पड़ता है। लव वीरता से मुकावला करता है और बाद में जृम्भकास्त्र से सारी सेनाओं को जड़ बना देता है। उसी समय चन्द्रकेतु से उसकी मुलाकात हो जाती है। दोनों एक दूसरे की ओर आकृष्ट होते हैं और दोस्त बन जाते हैं। लव बातचीत में बहुत शालीन है किन्तु दर्प में भी पीछे नहीं हटता। परशुराम के गौरव को भी सहन नहीं करता और नम्रता के साथ राम की भी आलोचना करता है। वह अपने युद्ध कौशल, वीरमाव और शालीनता से सभी को प्रभावित करता है।

छठा अंक– कुमारप्रत्यभिज्ञान विषयक है। इसमें राम पहली वार अपने पुत्रों को देखते हैं। सर्वप्रथम विद्याधर और विद्याधरी के वार्तालाप में लव और चन्द्रकेतु के दिव्यास्त्रों द्वारा युद्ध का समाचार मिलताहै। चन्द्रकेतु के आग्नेयास्त्र, फिर लव के वारुणास्त्र और पुनः चन्द्रकेतु के वायव्यास्त्र का वर्णन है। इसी समय विमान से राम आ जाते हैं। दोनों कुमार प्रणत होते हैं। राम उनके जृम्भकास्त्र के प्रयोग की बात सुनते हैं। उसी समय कुश भी आ जाते हैं। वे युद्ध की बात सुनकर उत्तेजित हैं और अस्त्र प्रयोग का विचार करने लगते हैं। किन्तु लव उन्हें चन्द्रकेतु से मित्रता की बात कहकर शान्त कर देता है। राम दोनों पुत्रों को मिलकर प्रसन्न होते हैं तथा उनसे रामायण सुनते हैं। उसी समय बच्चों के झगड़े की बात सुनकर गुरुजन भी आ जाते हैं। नेपथ्य से आवाज आती है कि राम को क्षीण देखकर मातायें मूर्छित हो गई हैं; राम यह सुनकर व्यथित होते हैं।

सातवां अंक– सम्मेलन नामक है। इसमें सभी परिवारजनों और नागरिकों के सम्मेलन में एक नाटक दिखलाया जाता है जोकि गर्भाङ्क है। उसमें सीता परित्याग का अभिनय किया गया है जो अनेक भावों को जागृत करने वाला है। समस्त परिचय नाटक के द्वारा प्राप्त कर तथा अग्नि, गंगा, पृथ्वी, वाल्मीकि इत्यादि सभी का समर्थन प्राप्त कर जनता सीता को निर्दोष स्वीकार कर लेती है और राम सीता लव कुश सभी का सम्मिलन हो जाता है। यहीं नाटक भी समाप्त होता जाता है।

रसात्मक दृष्टि से यह नाटक बहुत उच्चकोटि का है। भास और कालिदास की प्रतिच्छाया इस नाटक में दृष्टिगत होती है। किन्तु रसात्मक दृष्टि से यह नाटक उनसे आगे बढ़ गया है। दुष्यन्त के वियोग में अदृश्य रूप में एकाकिनी सानुमती उनके साथ घूमती है, विदूषक निर्लिप्त श्रोता है। जबकि इस नाटक में कोई और नहीं साक्षात् नायिका सीता अदृश्य रूप में राम के साथ घूम रही है। राम की विरहदशा की साक्षिणी वासन्ती तटस्थ नहीं है। वह स्वयं सीता के प्रति व्यवहार से बहुत दुःखी है। सीता भी एकाकिनी नहीं है उनके साथ भी सहचरी तमसा है। यह परिस्थिति निस्सन्देह अधिक हृदयहारी है। भास की वासवदत्ता प्रसुप्त उदयन से बात करती है और उसकी वांह को ठीक करके चारपाई

पर रख देती है जबकि सीता अनेक वार मूर्छित राम की मूर्छा दूर करने के लिये उनका स्पर्श करती है। यहां जागृत अवस्था में एक दूसरे के प्रति भावाभिव्यक्ति की जाती है जिसमें दोनों के सहचरों का सहयोग प्राप्त है।

रसात्मकता, काव्यकला, परिस्थिति निर्माण, चरित्र चित्रण इत्यादि अनेक दृष्टियों से यह नाटक उच्चकोटि का बन पड़ा है। किन्तु इसकी सीमायें भी अनेक हैं। इसमें नाटकीयता पाण्डित्य के बोझ से आक्रान्त है। समास गर्भित पदावली कथा या आख्यायिका के अनुकूल तो हो सकती है किन्तु उसका अभिनय बहुत कठिन है। भाषा की एकरूपता अखरती है। प्रमुख पात्रों और विष्कम्भक के अप्रधान पात्रों की भाषा में कोई अन्तर नहीं। भाषा में दार्शनिक और शास्त्रीय संवेदनशील दुष्कर शब्दों का स्थान स्थान पर समावेश भाषा को दुरूह बना देता है। सबसे बड़ी बात यह है कि इसमें कथानक बहुत थोड़ा है एवं एकरूप है जिससे विकास और सन्धियों का समुचित निर्वाह नहीं हो सका है। कथानक के विभिन्न खण्ड जुड़े हुये से मालूम पड़ते हैं। हास्य की कमी और विदूषक का अनुपादान नाटक के आस्वादन में कमी की प्रतीति कराते रहते हैं। इस प्रकार एक उत्कृष्ट कविका उत्कृष्ट नाटक अनाटकीयता के कारण उस प्रतिष्ठा को प्राप्त नहीं कर सका जिसका यह अधिकारी हो सकता था। फिर भी करुणा और वन्य प्रकृति चित्रण में इसका कोई शानी नहीं और इसीलिये इसे विश्वसाहित्य में प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त हुआ है।

इस नाटक पर अनेक प्रतिष्ठित टीकायें लिखी गई हैं जिनमें प्रमुख टीकाकार हैं– वीरराघव (बम्बई से प्रकाशित); लक्ष्मण सूरि (कुम्भकोणम् से प्रकाशित); ए. बरुआ (कलकत्ता से प्रकाशित); जे. विद्यासागर, अभिराम, प्रेमचन्द्र, तर्क वागीश, आत्माराम (मद्रास ओरियम्टल पुस्तकालय में त्रैवार्षिक रिपोर्ट में III १५९९-१६०१ तक संकलित); भोता जी शास्त्री (नागपुर से पटवर्धन द्वारा प्रकाशित); राम चन्द्र (मद्रास से प्रकाशित); बी.एस घाटे (नागपुर से प्रकाशित); घनश्याम (मद्रास की त्रैवार्षिक रिपोर्ट में १७२० पर संकलित) लक्ष्मी कुमार ताताचार्य (पाण्डुलिपि उनके पुत्र के पास) राघवाचार्य (कैटेलागस कैटेलागोरम १.६३)

विल्सन के थियेटर (१.२७५-३३४) में परिचय एवं अनुवाद; तीन अंग्रेजी अनुवाद कलकत्ता से प्रकाशित (अनुवादक – एच. मुखोपाध्याय, सी. एँच. टावो और आर. के महाचार्य) एस.के. वेल्वाल्कर द्वारा अनुवाद (हर्वर्ड यूनीवर्सिटी के प्राच्य विभाग द्वारा प्रकाशित) बी.एस. पटवर्धन (अनु. नागपुर से प्रकाशित)

अनेक अन्य भाषाओं में अनुवाद प्रकाशित हुये। अनेक समीक्षात्मक लेख भी लिखे गये एवं प्रकाशित हुये। यह साहित्य भी पर्याप्त विस्तृत हैं।

उत्तरा– (ना.पा.) (१) प्रह्लादन देव के पार्थ पराक्रम में एक पात्र। इसे बृहन्नला के वेष में अर्जुन ने नृत्यगान की शिक्षी दी थी और बाद में इसका विवाह अभिमन्यु के साथ हो गया।

(२) **नारायण के धनञ्जय विजय** में उक्त प्रसंग में ही इस पात्र का उपादान हुआ है। नाटक के अन्त में इसका विवाह अर्जुन पुत्र अभिमन्यु के साथ हो जाता है।

उत्सावती– (ना.कृ.) भूजीव देवाचार्य (दे.) लिखित रूपक

उदयन– (सा.ना.पा.) गुणाढ्य की बृहत्कथा में चित्रित एक सामान्य पात्र। बृहत्कथा के मूल कथानायक नरवाहन दत्त का पिता। इसका उपादान कई नाटकों में तो किया ही गया है– कालिदास नें मेघदूत में लिखा है कि इसने प्रद्योत (माहसेन) की पुत्री (वासवदत्ता) का अपहरण किया था। यह वत्सदेश का राजा था। यह एक ऐसा पात्र है जिसको नायक बनाकर ईसवी सन् के प्रारम्भिक वर्षों में तथा सम्भवतः इसके पहले भी कई नाटक और काव्य लिखे गये। इन नाटकों और काव्यों की रचना सुबन्धु के आस पास (पहले और बाद में) की गई। सुबन्धु का रचना काल विन्दुसार के आस पास माना जाता है।

(१) **उदयन–** (ना.पा.) भास के स्वप्नवासवदत्तम् (दे.) नाटक का नायक। यह धीर ललित दक्षिण नायक है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता है प्रेम की सच्चाई। यह जिस वासवदत्ता को मृत समझता है उसके प्रति भी प्राणपण से समर्पित है, फिर भी दूसरी पत्नी वासवदत्ता को इसका जरा भी आभास नहीं होने देता। इसके मन्त्री इससे इतना अधिक प्रभावित हैं कि दत्तचित्त होकर इसका कल्याण साधन करने में तत्पर रहते हैं। इससे इस नायक के उदार और उदात्त गुणों का परिचय प्राप्त होता है। मन्त्रियों की कर्तव्य परायणता और अध्यवसाय के गुण ही इसे सर्वतोमुखी सफलता दिलवाने में कारण बनते हैं।

(२) **उदयन–** (ना.पा.) भास के प्रतिज्ञायौगन्धरायण (दे.) का नायक। यह अपने सौन्दर्य के लिये प्रसिद्ध है और कुमारिकाओं पर रूप का जादू चलाने में सिद्धहस्त हैं। यह संगीत कला का प्रेमी है और वीणावादन में सिद्धहस्त है। इन्हीं गुणों के आधार पर वह केवल यौवन के उपभोग में ही सफल नहीं होता अपितु राजनैतिक महत्व भी प्राप्त करता है। विलासी होते हुए वह सच्चा प्रेमी है। महासेन (प्रद्योत) ने उसे अपनी पुत्री के लिये चुना है और जाल विछाकर इसे गिरफ्तार कर अन्तःपुर में ले आया है तथा पुत्री को वीणा सिखाने के लिये इसे नियुक्त कर दिया है। स्वभावतः दोनों का प्रेम बद्धमूल हो जाता है। जब मन्त्री इसे छुड़ाने के लिये योजना बद्ध रूप में प्रयत्न करते हैं तब वह विना वासवदत्ता के अपने राज्य में नहीं जाना चाहता और प्रेम के निर्वाह के लिये इसे कैद के जीवन में रहना भी स्वीकार्य है। इन गुणों के अतिरिक्त इसे शिकार का और विशेष रूप से हाथी के शिकार का शौक है जिसके कारण ही उसे प्रद्योत का बन्दी होना पड़ता है।

(३) **उदयन–** (ना.पा.) हर्षकृत रत्नावली का नायक। भास के नाटकों के उदयन की तुलना में उसके चरित्र का अवमूल्यन हुआ है। यह सामान्य नायकों में धीर ललित की कोटि में आता है जो सर्वदा निश्चिन्त रह कर जीवन के विषयोपभोगों में निरत रहता है, व्यवहार में कोमल होता है और कलाओं में रुचि लेना उसका स्वभाव होता है। वह

स्वयं स्वभाव से निश्चिन्त है ही परिस्थितियों ने भी उसकी निश्चिन्तता में सहयोग दिया है। शत्रुओं पर विजय प्राप्त की जा चुकी है; सचिवों ने राज्य-सञ्चालन का सारा भार अपने ऊपर ले लिया है; भली भांति आवश्यकताओं की पूर्ति कर दिये जाने से प्रजा में सुख शान्ति है; सारी समस्यायें हल कर दी गई हैं। वासवदत्ता जैसी अनुपम सुन्दरी उसके अन्तःपुर में है फिर उसे चिन्ता किस बात की। निश्चिन्तता की सीमा यह है कि कोशल नरेश शक्तिशाली शत्रु है; युद्ध चल रहा है; उसे रुमण्वान चला रहा है। राजा को इस बात की भी चिन्ता नहीं कि युद्ध का समाचार ही ले ले। विजय के बाद उसे यों ही समाचार सुना दिया जाता है। प्रजा की सुख समृद्धि और राज्य की सम्पन्नता देखकर सिंहलेश्वर का मन्त्री वसुभूति पद पद पर चकित होता है। व्यवहार में उसकी मृदुता की सीमा यह है कि वह सुसंगता काञ्चनमाला जैसी परिचारिकाओं से भी सम्मान जनक भाषा में बात करता है और उन्हें बैठने के लिये आसन देकर सम्मानित करता है। विदूषक को चित्र फलक छिपाने का काम सौंपा गया है वह उसे छिपा नहीं पाता और उसकी मूर्खता से रानी चित्रफलक देख लेती है जिससे विषम समस्यायें उत्पन्न हो जाती हैं। फिर भी वह रुष्ट नहीं होता। उसकी कलापरायणता कामदेवोत्सव में आमोद-प्रमोद और नृत्यगान से स्वतः प्रकट हो जाती है। उसका परिचारक वर्ग भी इतना निपुण है कि सुसंगता बात की बात में सागरिका का हूवहू चित्र बना देती है जिसे देखकर प्रत्येक व्यक्ति उसे सागरिका समझ लेता है। जादूगर की क्रियायें देखने में भी उसकी कलाभिज्ञता एवं कला प्रेम प्रकट हो जाता है। वह उदार है यहां तक कि शत्रु की प्रशंसा करने में भी उसे संकोच नहीं होता। वह वीर एवं साहसी भी है। सबके मना करने पर भी आग में कूद पड़ता है और सागरिका को निकला लाता है। वह सागरिका से प्रेम तो करता है किन्तु विवाह करने के लिये तब तक तैयार नहीं होता जब तक उसे यह ज्ञात नहीं हो जाता कि सिंहलेश्वर के उच्च घराने में पैदा हुई है। इससे उसका कुलाभिमान व्यक्त होता है। रीझने की उसकी प्रवृत्ति है; वह सौन्दर्य का पारखी है। सागरिका का चित्र देखकर ही उस पर अनुरक्त हो जाता है। उसका सबसे बड़ा गुण है उसका अदृष्टपूर्व सौन्दर्य। रत्नावली जैसी सुन्दरी उसे एक वार देखकर अपने जीवन को धन्य मानने लगती है।

उक्त गुणों के होते हुये भी वह दक्षिण नायक नहीं है। वह शठ नायक की श्रेणी में ही आयेगा। वह सागरिका के रूप का दीवाना है किन्तु रानी से डरता है। प्रेम के आवेश में कई वार गलती कर जाता है। रानी को सागरिका और सागरिका को रानी समझने की भूल कर बैठता है। रानी के सामने ही अपराध करता है और झूठ बोलकर उस पर पर्दा डालना चाहता है। नई प्रेमिका के प्रति भी सच्चा नहीं है। जब वासवदत्ता उसे गिरफ्तार कर लेती है तब वह उसे विल्कुल भूल जाता है। उसके चरित्र का अवमूल्यन ही हुआ है। एक राजा का इस प्रकार का चरित्र कभी उचित नहीं कहा जा सकता।

(४) **उदयन-** (ना.पा.) अभिसारिकावंचितक (दे.) का नायक। यह न तो स्वप्नवासवदत्तम् के उदयन के समान दक्षिण नायक है और न रत्नावली के समान शठ नायक। फिर भी उसका चरित्र दाक्षिण्य की ओर अधिक झुका हुआ है।

उदयवर्मा- (ना.का.) रसिकभूषण (दे.) भाण के लेखक। इनका समय है १९वीं शताब्दी।

उदात्तकुञ्जर- (ना.कृ.) भाव प्रकाशन में अल्लाप्य उपरुपक का उदाहरण। ग्रन्थ अप्राप्य।

उदात्तराघव- (ना.कृ.) मायुराज (अनंगहर्ष) कृत नाटक। यह नाटक अभी तक उपलब्ध नहीं हो सका है। यह राम कथा विषयक नाटक है। उद्धरणों से ज्ञात होता है कि इसमें प्रसिद्ध राम कथा में कुछ परिवर्तन भी किये गये हैं। स्वर्णमृग मारने राम नहीं लक्ष्मण जाते हैं। त्रस्त मुनि की दीन वाणी सुनकर राम उन्हें बचाने बाद में जाते हैं। इसी प्रकार वालि वध का प्रसंग छोड़ दिया गया है जिससे छल पूर्वक वालि को मारने का कलंक राम पर नहीं लगता। इस नाटक में कवि की विशेष प्रवृत्ति भयनाक रस की ओर मालूम पड़ती है। वालि वध का उल्लेख न करने पर भवभूति का प्रभाव लक्षित किया गया है। इससे इस नाटक का रचना काल भवभूति से बाद का सिद्ध होत है। अभिनवगुप्त, धनिक, भोज, हेमचन्द्र, रामचन्द्र गुणचन्द्र, कुन्तक और सर्वानन्द प्रभृति काव्यशास्त्रियों ने इस नाटक का उल्लेख किया है तथा कई काव्य शास्त्रकारों ने इससे उद्धरण दिये हैं।

उदारराघव- (ना.कृ.) यह (२) नारायण शास्त्री (दे.) का लिखा नाटक है। इस नाटक का पता नहीं चलता केवल उल्लेख मिलता है।

उद्गातृदशानन- (ना.कृ.) मकलिंग शास्त्री (दे.) लिखित ७ अंकों का नाटक। इसमें पार्वती के मान को लेकर कथानक प्रवृत्त हुआ है। पार्वती रूठकर शरवण चली जाती है। उधर नारद के कहने पर रावण कैलास पर धावा बोलता है और कैलाश को उखाड़ने लगता है। शंकर अंगूठे से कैलाश को दवा देते हैं। जिस से कैलाश की स्थिति डांवाडोल हो जाती है। पार्वती भयभीत होकर शङ्कर जी से चिपट जाती है और मान भंग हो जाता है। रावण शंकर की स्तुति करता है और शंकर प्रसन्न होकर उसे चन्द्रहास कृपाण एवं पुष्पक विमान प्रदान करते हैं।

इस नाटक में विचित्र पात्रों का उपादान हुआ है- रावण के १० मुख, कार्तिकेय के ६, शृङ्गिरिटिअश्वमुख, गणेशगजमुख। इसमें प्राकृतिक चित्रण पर्याप्त मात्रा में किया गया है।

उद्दण्डनाथ- (ना.का.) दे. उद्दण्डी।

उद्दण्डी- (ना.का.) १७वीं शताब्दी के नाटककार एवं कवि। इन्हें उद्दण्ड और उद्दण्डनाथ नामों से भी याद किया जाता है। कुछ लोगों ने इन्हें दण्डी समझने की भूल

की है। इनके पिता का नाम रंगनाथ और माता का नाम रागाम्बा था। ये काञ्ची के पास लाटपुर नामक गांव में रहते थे। नल्ल कवि के सुभद्रा परिणय के अनुसार इनके पिता तंजौर जिला के कन्दर माणिक्य गांव के रहने वाले एक अच्छे कवि थे। ज्ञात होता है कन्दरमणिक्कम् इनका जन्म स्थान था और बाद में ये लाटपुर चले गये। इन्होंने दक्षिण भारत के अनेक शिक्षा क्षेत्रों में अपना समय बिताया था और बाद में मालावार चले गये थे जहां अनेक पण्डितों को शास्त्रार्थ में हराकर कीर्ति अर्जित की। कहा जाता है एक पण्डित की पत्नी ने देवाराधन कर अपने पुत्र के द्वारा अपने पति की पराजय का इससे बदला लिया। कीथ ने इन्हें कालीकट का दरवारी कवि माना है। इनकी कई रचनायें प्रसिद्ध हैं जिनमें मल्लिकामारूत (दे.) नामक एक नाटक भी है।

उद्दालकचरित– (ना.कृ.) राजराजवर्मा (दे.) ने सेक्सपियर के औथैलो का इस नाम से संस्कृत गद्य में अनुवाद किया है।

उद्धत वृकोदर– (ना.कृ.) यह एक प्रेङ्खणक है जिसकी रचना मैसूर के भागवतकृष्ण ने की थी। मैसूर पुस्तकालय में संस्कृत पाण्डुलिपि अनुभाग (सं. २७८) में इसका उल्लेख है।

उन्मत्तक– (ना.पा.) (१) **मत्तविलास** (दे.) प्रहसन का एक पात्र।

(२) **प्रतिज्ञा यौगन्धरायण** (दे.) में यौगन्धरायण ने उदयन को छुड़ाने के लिये उन्मत्तक का वेश बनाया था।

उन्मत्तकवि कलश– (ना.कृ.) यह वेङ्कटेश्वर (दे.) लिखित प्रहसन है। इसका कलश नामक नायक ऋण लेकर जीविका चलाता है और कर्ज वसूल करने वालों से भागता फिरता है। इस भाग दौड़ में उसके कुछ शिष्य उसके साथ हैं जिनसे उसका धार्मिक विषयों को लेकर झगड़ा भी हो जाता है। इसी दौड़धूप में वह देवालय के अन्दर विधवा में रत भगवद्भक्त से, व्यभिचारी ब्राह्मण से, विदेशी के साथ भागी हुई पत्नी के लिये रोने वाले ब्राह्मण से मिलता है। अन्त में कर्ज वसूलने वाले पठान उसकी दुर्गति करते हैं। इसमें नायक की एक दिन की दिनचर्या दिखलाई गई है। कथानक का विषय हास्य और नग्न शृङ्गार है। इस रचना का दूसरा नाम लम्बोदर प्रहसन भी है। इसका प्रकाशन मद्रास से हुआ है। रचनाकाल १८वीं शताब्दी है।

(१) **उन्मत्तराघव–** (ना.कृ.) भास्कर (दे.) लिखित रूपक जो अंक या उत्सृष्टिकांक है जिसे प्रेङ्खणक भी कहा जाता है। इसकी रचना कालिदास के विक्रमोर्वशीय के चौथे अंक के अनुकरण पर की गई है। दुर्वासा द्वारा शापित एक पुष्पोद्यान में सीता प्रवेश कर जाती है और शाप के अनुसार हरिणी बन जाती है। राम वियोग में उन्मत्त होकर अनेक स्वगत कथन करते हैं। वे कथन ही नाटक का मुख्य विषय हैं। रहस्य के ज्ञाता आगत्स्य की कृपा से सीता पुनः अपने रूप में आ जाती है।

इसका प्रकाशन बम्बई से हुआ है। इसी नाम वाली एक रचना का हेमचन्द्र ने उद्धरण दिया है। किन्तु यह रचना उससे भिन्न है। क्योंकि हेमचन्द्र ने चित्रमाय और राम के संवाद का उदाहरण दिया है जो इस रचना में नहीं है। अतः निश्चित है कि वह कोई और रचना रही होगी।

(२) **उन्मत्तराघव**– (ना.कृ.) महादेव शास्त्री लिखित नाटक विक्रमोर्वशीय चतुर्थ अंक के अनुकरण पर लिखा गया नाटक। कैटेलागस कैटेलागरम (I ४६) पर इसका उल्लेख किया गया है।

(३) **उन्मत्तराघव**– (ना.कृ.) विरुपाक्ष का लिखा इसी प्रकार का नाटक।

उन्मादवासवदत्ता– (ना.कृ.) यह शक्तिभद्र (दे.) की रचना बतलाई जाती है। किन्तु यह अब तक प्राप्त नहीं हुई है।

उपगुप्त– (ना.पा.) बौद्ध साहित्य दिव्यावदान में इनके नाम पर जो कवितायें दी हुई हैं वे किसी नाटक का अंश प्रतीत होती हैं। इससे अनुमान होता है कि बौद्ध-साहित्य में कोई नाटक विद्यमान था जिसके ये या तो लेखक थे या पात्र। इनके सहयोगी मार (दे.) का भी इनके साथ ही उल्लेख किया गया है।

उपतिष्य– (ना.अभि.) बुद्ध शिष्य, सौगन्धिकाहरण (दे.) के एक अभिनेता।

उपनिषद्– (ना.पा.) प्रबोधचन्द्रोदय (दे.) में विवेक की पत्नी और प्रबोध की मां। इसका पुत्र प्रबोध महामोह को पराजित कर काशी पर अधिकार जमा लेता है।

उपहारवर्म चारितम्– (ना.कृ.) श्री निवास शास्त्री का लिखा नाटक। १८८८ से तेलुगु लिपि में इसका प्रकाशन हुआ था। प्रहार वर्मा की पत्नी प्रियम्बदा ने पुष्पपुर जाते हुये मार्ग में बच्चों को जन्म दिया। जब उपहारवर्मा मिथिला से पुष्पसुर से लौट रहा था उसके भतीजे विकट वर्म ने विद्रोही बनकर प्रहार वर्मा को बन्दी बना लिया और स्वयं मिथिला का शासक बन गया। जिस समय प्रहार वर्मा को बन्दी बनाया गया प्रियम्वदा नवजात शिशु को दासी को सौंप गई। किन्तु दासी वन्य पशुओं से भयभीत होकर भाग गई। जंगल में पड़े निरीह पशु को पुष्पपुर का राजा राजहंस उठा ले जाता है और पालन पोषण करता रहता है। उसका नाम उपहार वर्मा रक्खा गया। जवान होकर उपहार वर्मा मिथिला पर आक्रमण कर विकट वर्मा को मार डालता है और माता-पिता को बन्दीगृह से छुड़ाता है। वहां वह विकटवर्मा की प्रेमिका कल्पसुन्दरी से विवाह करता है और स्वयं मिथिला का शासक बन जाता है। यह पुस्तक मद्रास के तत्कालीन गवर्नर को भेंट की गई थी।

उभयरूपकम्– (ना.कृ.) यह महालिंग शास्त्री (दे.) का लिखा काल्पनिक कथा पर आधारित नाटक है। कुक्कुट स्वामी के दो पुत्र हैं। बड़ा पुत्र छन्दोवृत्ति भारतीयता का अनुयायी है जबकि छोटे पुत्र छागल ने विदेश में शिक्षा पाई है। वह ग्राम जीवन से द्वेष

करता है। पिता को छोटे पुत्र पर अभिमान है। वह छागल का विवाह ग्राम कन्या से करना चाहता है; किन्तु छागल इसके लिये तैयार नहीं है। उसे हेम्लेट में अभिनय के लिये आमन्त्रण मिलता है। वह शेव बनाकर बालों को एक लिफाफे में छोड़कर कर चला जाता है। वहां हेम्लेट के अभिनय का कागज पड़ा है जिसे देखकर लोग समझते हैं कि छागल ने आत्महत्या कर ली है। लिफाफे के वालों को विष समझा जाता है। बाद में जब सेवक पत्र लेकर आता है तब वास्तविकता का पता चलता है और कुक्कुट स्वामी पछताते रह जाते हैं। इस नाटक का प्रकाशन उद्यान पत्रिका में १९६२ में हुआ था।

उभयाभिसारिका– (ना.कृ.) वररुचि (दे.) लिखित भाण। इस नाटक का संकलन चतुर्भाणी (दे.) में किया गया है। इसके वररुचिकृत होने में लोगों को सन्देह है क्योंकि वररुचि जैसा मूर्धन्य चिन्तक इस प्रकार की निम्न कोटि की रचना नहीं लिख सकता था। इसका कथानक एक ऐसी सुन्दरी से संबद्ध है जो दो प्रेमियों से प्रेम करती है और दोनों का अभिसार करती है। ये दो प्रेमी हैं कुवेरदत्त और नारायण दत्त। भाण के नियमों के अनुसार यह एकाङ्की है और एकालाप है।

रंगमंच पर विट आता है और नायकनायिका के क्रिया कलाप की सूचना देता है। नायकनायिका स्वयं रंगमञ्च पर नहीं आते। कीथ इस रचना का समय १००० ई. या उसके बाद का मानते हैं। एस.के.डे. के अनुसार इसका रचनाकाल ६ठी शताब्दी है। डब्लू. रायस इसकी रचना कन्नौज के हर्षवर्धन काल की मानते हैं। (दे. जर्नल आफ रायल एशियाटिक सोसाइटी सन् १९२४ सं. ७६२ और उसी का शताब्दी परिशिष्ट सं. १२६ से १३६ तक)

उमापति उपाध्याय– (ना.का.) बिहारी कवि हैं ये मिथिला के रहने वाले थे और इनका लिखा परिजातहरण नाटक प्राप्त हुआ है।

उमातपस्विनी– (ना.कृ.) विश्वेश्वर विद्या भूषण लिखित नाटक।

उमापतिधर– (ना.का.) राजा लक्ष्मण सेन के मन्त्री तथा उनके पञ्चरत्नों में एक थे। कहा जाता है कि राजा का एक मातंगी से प्रेम था जिसकी वदनामी सभी ओर हो रही थी। कवि ने उससे विरत करने के लिये कुछ पद्य लिखे जिसमें वदनामी के विषय में कुछ संकेत दिये गये थे। राजा ने क्रुद्ध लोकर उन्हें पद से हटा दिया। किन्तु कुछ समय बाद जब राजा ने उन्हें दुरवस्था में देखा तब राजा को पश्चाताप हुआ और उन्हें पुनः सम्मानित पद पर प्रतिष्ठित कर दिया। इनका लिखा कृष्णचरित काव्य अब उपलब्ध नहीं होता इन्होंने पारिजातहरण नामक एक छोटा सा नाटक लिखा था। इनके कतिपय पद्य सदुक्तिकर्णामृत और सूक्तिमुक्तावली में मिलते हैं। ग्रियर्सन के अनुसार ये मिथिला के हरिसिंह देव के सभा कवि थे। उमापति ने उन्हें हरिहर देव कहा है।

उमापरिणय– (ना.कृ.) सुन्दरार्य लिखित १० अंकों का नाटक। इसमें प्राकृत भाषा का प्रयोग नहीं किया गया है। नृत्य गीतों की अधिकता है। कहा जाता है यह लेखक की पहली रचना है। संस्कृत साहित्य परिषद् के त्रिचुरापल्ली के वार्षिक उत्सव में इस नाटक का अभिनय अनेक वार किया गया है।

उम्मदन्तीजातक– (ना.कृ.) बौद्ध साहित्य के जिन प्रकीर्णक खण्डों में नाट्य सत्ता की छाप देखी जाती है उनमें यह भी एक है। एक राजा अहिपारक नामक सेनापति की रुपवती पत्नी पर आसक्त हो जाता है और तीव्र वियोगवेदना का अनुभव करने लगता है। जब उसे ज्ञात होता है कि वह दूसरे व्यक्ति की पत्नी है और उसे उपलब्ध नहीं हो सकती तब वह अत्यन्त पीड़ित हो जाता है और अपनी भावनाओं को सुकुमार विलापों में परिणत हो जाने देता है। अहिपारक पत्नी को बहुत चाहता है। किन्तु राजा की करुण दशा पर तरस खाकर राजा को अपनी पत्नी प्रदान करने के लिये राजी हो जाता है। किन्तु राजा इस पापकृत्य को करना आस्वीकृत कर देता है। यहां पर असाधारण रूप से उच्चकोटि का संवाद छिड़ जाता है जिसमें राजा और सेनाधिकृत दोनों ही अपनी उच्चाशयता में एक दूसरे का अतिक्रमण करने का प्रयत्न करते हैं। अन्त में गुणों की विजय होती है और राजा सन्यास ले लेता है।

संगीत रूप में यह एक बहुत लम्बा संवाद है जो विण्टरनित्ज के अनुसार असामान्य रूप से नाटकीयता के ओत-प्रोत हैं। (जातक सं. ५२७)

उम्वेकाचार्य– (ना.का.) दे. भवभूति।

उरुभंग– (ना.कृ.) भास (दे.) का एक एकाङ्की नाटक जिसे अंक या उत्सृष्टिकाङ्क की संज्ञा दी जा सकती है। इसमें भीमद्वारा दुर्योधन की जंघायें तोड़ने का चित्रण किया गया है। सैनिक लोग रंगमञ्च पर भीम और दुर्योधन के मुख्य युद्ध का वर्णन करते हैं। कृष्ण के गुप्त संकेत से भीमसेन गदा द्वारा दुर्योधन की जंघायें तोड़ देते हैं। खून बहने लगता है, दुर्योधन गिर जाता है। वलराम क्रुद्ध होकर भीमसेन को मार डालना चाहते हैं किन्तु दुर्योधन उन्हें शान्त कर देता है। तब रंगमञ्च पर दुर्योधन के माता-पिता, पत्नियां और दुर्जय नामक छोटा पुत्र प्रवेश करते हैं। शोक का वातावरण छा जाता है। रानियां विलाप करने लगती हैं। सर्वाधिक कारुणिक दृश्य तब उपस्थित होता है जब छोटा पुत्र जंघायें टुटी होने के कारण पिता की गोद में बैठने में असमर्थ है। दुर्योधन सबको समझाता है। अन्तिम दृश्य में अश्वत्थामा प्रवेश करते हैं और दुर्योधन के समझाने बुझाने पर भी पाण्डवों के विनाश की प्रतिज्ञा करते हैं। दुर्योधन के भाइयों और अप्सराओं की छायायें उसके सामने तैरने लगती हैं और रंगमंच पर ही मृत्यु हो जाती है। यद्यपि रंगमञ्च पर मृत्यु हुई है फिर भी यह त्रासदी नहीं है क्योंकि उसकी मृत्यु पर सामाजिकों में त्रास की भावना उत्पन्न नहीं होती। एक दुष्ट की मृत्यु का सामाजिक अभिनन्दन ही करते हैं। भास ने परवर्ती विचारधारा के प्रतिकूल रंगमञ्च पर मृत्यु का दृश्य दिखलाया है। इस

नाटक का करुण दृश्य बहुत ही लोमहर्षक एवं हृदयद्रावक है।

उर्मिला– (ना.पा.) लक्ष्मण की पत्नी एवं जनक पुत्री। महावीर चरित (दे.) में यह विश्वामित्र के आश्रम में लक्ष्मण को देखती है, दोनों एक दूसरे से प्रेम करने लगते हैं तथा वहीं दोनों का विवाह निश्चित हो जाता है।

उर्वशी– (ना.पा.) स्वर्गीय अप्सरा–

(१) **ऋग्वेद** में पुरुरवा उर्वशी सूक्त (१०.९५) (दे.) में पुरुरवा की प्रेयसी। यह उच्चकोटि के संवाद सूक्त की उच्चकोटि की प्रेयसी है।

(२) **कालिदास के विक्रमोर्वसीय**– (दे.) की नायिका उसके उद्दाम और असंयत प्रेम की व्यंजना बड़ी मनोरम है। वह एक सच्चे सहृदय की प्रेमिका है जो अनायास ही अपने पुत्र के प्रति प्रेम को भी अपने दाम्पत्य प्रेम पर वलिदान कर देती है। इतना ही नहीं वह प्रेम के लिये अपने कर्तव्य को भी तिलाञ्जलि दे देती है और जब अभिनय का अवसर आता है वह निश्चित पाठ को भूलकर अपने वास्तविक प्रेमी का नाम ले लेती है। ईर्ष्या की भी उसमें कमी नहीं जिसके दण्ड स्वरूप उसे लता में रुपान्तरित हो जाना पड़ता है। उसका विलासवासनाजन्य उद्दाम आवेश पराकाष्ठा पर पहुंचा हुआ है। न उसमें आत्म संयम है न सहन शक्ति। उसे अन्त में अपनी प्रेम साधना का उचित पुरस्कार मिलता है और वह सदा के लिये अपने प्रेमी की हो जाती है।

(३) **भरत**– ने जिस लक्ष्मी स्वयंवर नाटक का प्रयोग किया था उसके कथानक के अनुसार स्त्रीपात्र की भूमिका निभाने वाली उर्वशी थी।

(४) **भरत**– ने स्वर्गलोक की अप्सरा उर्वशी को प्रख्यात अभिनेत्री बतलाया है।

उर्वशीसार्वभौम– (ना.कृ.) दे. प्रधानि वेङ्कटभूपति।

उल्लाघराघव– (ना.कृ.) यह सोमेश्वर देव (दे.) की रचना है जिसमें राम कथा को रुपायित किया गया है।

उषानिरुद्ध– (ना.कृ.) उषा और अनिरुद्ध विषयक नाट्यकृति। इसकी रचना काशिराज ने की थी। संस्कृत पाण्डुलिपियों की खोज की दिशा में भण्डारकर की बम्बईखोजरिपोर्ट के द्वितीय भाग में इसका उल्लेख किया गया है।

(१) **उषापरिणय**– (ना.कृ.) दे. श्री निवास (१) इसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम (सं. १ ७८) पर किया गया है।

(२) **उषापरिणय**– (ना.कृ.) दे. श्रीनिवासाचार्य (इच्चमवाडि) मैसूर और कुर्ग के पुस्तकालय में संस्कृत पाण्डुलिपियों के सूचीपत्र में जिस उषा परिणय का उल्लेख है वह सम्भवतः यही है। लेविस राइस ने बंगलौर के अनुसन्धान में इसे प्राप्त किया था।

(३) **उषापरिणय**– (ना.कृ.) कृष्णदेवरायलिखित नाटक। कहा जाता है इसकी प्रति हैदरावाद स्टेट के एक पुस्तकालय में सुरक्षित है। इनका समय १६वीं शताब्दी है।

(४) **उषापरिणय**– (ना.कृ.) यह रुद्रदेव (दे.) लिखित नाटक है। तंजौर के कैटेलाग में सं. (III ३६६९) पर इसका उल्लेख किया गया है। राजेन्द्र मित्र द्वारा खोज में प्राप्त मित्रनोटिसेज में इसका उल्लेख सं. III १९२ पर भी किया गया है।

(५) **उषापरिणय**– (ना.कृ.) रामस्वामी शास्त्री लिखित नाटक।

उषा रागोदय– (ना.कृ.) रुद्रदेव लिखित एक नाटिका। यह प्रसिद्ध पौराणिक कथा उषा और अनिरुद्ध की प्रेमलीला को लेकर लिखी गई है। कैटेलागस कैटेलागोरम १.७१ पर इसका उल्लेख किया गया है। विल्सन के थियेटर II ३८८ में इसका विश्लेषण मिलता है।

(१) **उषाहरण**– (ना.कृ.) देवनाथ उपाध्याय लिखित ६ अंकों का नाटक। इसमें उषा और अनिरुद्ध के परिणय की कथा चित्रित की गई है। इसमें गीतों की अधिकता है और चित्रण कीर्तनियां पद्धति पर किया गया है।

(२) **उषाहरण**– (ना.कृ.) यह वामनभट्टवाण की रचना बतलाई गई है। आर.वी. कृष्णमाचार्य ने पार्वती परिणय की अंग्रेजी भूमिका में इस रचना का उल्लेख किया है। किन्तु इसकी पाण्डुलिपि कहाँ उपलब्ध हो सकती है इसका कुछ पता नहीं चलता।

(३) **उषाहरण**– (ना.कृ.) उषा और अनिरुद्ध के परिणय को लेकर लिखा गया नाटक। इसके लेखक हैं हर्षनाथ। इसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम खण्ड १ सं. ७१ पर किया गया है।

(४) **उषाहरण**– (ना.कृ.) बिहारी कवि देवानन्द (दे.) का लिखा नाटक। रचनाकाल अज्ञात है।

ऋ

(१) **ऋग्वेद**– (ना.आ.) भरत के अनुसार नाट्यवेद के उत्पादन में ब्रह्मा ने ऋग्वेद से पाठ्य का उपादान किया था। (विवेचन के लिये देखिये भूमिका भाग)

(२) **ऋग्वेद**– (संवाद सूक्त) ए.वी. कीथ के अनुसार संवाद सूक्तों की संख्या अनिश्चित है क्योंकि जिन सूक्तों की रचना संवाद रूप में हुई है उनके अतिरिक्त अनेक अन्य सूक्तों की योजना भी पात्रों के विभाजन की कल्पना कर के जोड़ी जा सकती है। किन्तु कम से कम १५ सूक्त निर्विवाद रूप से संवाद सूक्त हैं। वे हैं– (१) यम यमी सूक्त १०.१०; (२) पुरूरवाउर्वशी सूक्त १०.९५; (३) नेमभार्गव सूक्त ७.१००; (४) अगस्त्यलोपामुद्रा सूक्त १.१७९; (५) इन्द्रवसुक्र सूक्त १०.२४; (६) इन्द्र अदिति कामदेव सूक्त ४.१८; (७) इन्द्र इन्द्राणी वृषाकपि सूक्त १०.४६; (८) सरमा पणिसूक्त १०.१०८; (९) अग्नि मरुत् सूक्त १०.५१.३; (१०) विश्वामित्र नदी सूक्त १.१६५; (११-१२) II

इन्द्रमरुत् सूक्त १.१६५, १७०; (१३) वशिष्ठ पुत्र सूक्त ७.३३; (१४) इन्द्रवरुण सूक्त ४.४२; (१५) इन्द्र का एकालाप जिसमें इन्द्र सोमपान से मत्त होकर स्वयं अपने गुणों का बखान करते हैं।

ऋद्धिनाथ झा– (ना.का.) ये उषा हरण (दे.) नाटक के लेखक मैथिल हर्षनाथ के पुत्र थे। इनका जन्म मिथिला में शारदापुर नामक स्थान पर हुआ था। इनको साहित्याचार्य की उपाधि प्राप्त थी। राजघराने में इनका विशेष सम्मान था। राजमाता को ये पुराण सुनाते थे और राजकुमार को शिक्षा देते थे। महाराणीमहेश्वरलताविद्यालय से प्राचार्य के पद पर कार्यरत थे। इनके लिखे २ नाटक प्राप्त होते हैं– शशिकला परिणय और एकाङ्की पूर्णकाम।

ए

एकचक्रा– (ना.स्थ.) एक विशिष्ट स्थल जहां कौमुदी मित्रानन्द की एक विशिष्ट घटना घटित होती है। (दे. कौमुदीमित्रानन्द)

एकभारतम्– (ना.कृ.) भरतपिशरोटी (दे.) लिखित नाटक।

एमीलिया गैलेटी– (ना.कृ.) यह जर्मन कवि लेसिंग की ११ दृश्यों की एक जर्मन रचना है जिसका संस्कृत अनुवाद श्री आर. शाम शास्त्री ने किया था। इसका प्रकाशन मैसूर संस्कृत कालेज की ओर से हो गया था।

एलीगिरी– (ना.वि.) दे. प्रतीक नाटक।

ऐन्दवानन्दम्– (ना.कृ.) रामचन्द्रलिखित १८वीं शताब्दी का नाटक। इसमें ८ अंकों में ययात्ति का चित्रण किया गया है।

ओ

ओंकारनाथमंगलम्– (ना.कृ.) विश्वेश्वर विद्याभूषणलिखित नाटक।

ओमप्रकाश शास्त्री– (ना.का.) 'युधिष्ठर' नामक नाटक (दे.) के लेखक।

औ

औशीनरी– (ना.पा.) विक्रमोर्वशीय में पुरूरवा की पत्नी। वह एक गरिमामयी उदात्त चरित्र वाली रमणी है। राजा यद्यपि उर्वशी के प्रेमपाश में रचे वसे हैं फिर भी रानी के प्रति भी दाक्षिण्य का निर्वाह करते हैं। रानी भी पति प्रेम प्राप्त करने के लिये प्रियानुप्रसादन

नामक व्रत करती है। साथ ही वह राजा को अपनी प्रेयसी के साथ सुखभोग की अनुमति भी प्रदान करती है।

क

कंस– (ना.पा.) कृष्ण का मामा जिसने अपने पिता उग्रसेन को बन्दी बनाकर स्वयं शासन भार सम्भाल लिया था और भविष्यवाणी पर विश्वास कर बहन के ही सारे बच्चे नहीं मरवा दिये अपितु जब पता चला कि उसको मारने वाला बच्चा बच गया है तब क्षेत्र के सभी बच्चों को मारने का आदेश दे दिया। अन्त में कृष्ण के हाथों मारा गया। कृष्ण विषयक अनेक नाटकों में इसका पात्र रूप में उपादान किया गया है। कतिपय निम्न स्थलों का उल्लेख किया जा सकता है–

(१) **पतञ्जलि** द्वारा उल्लिखित कंसवध नाटक का पात्र। पतञ्जलि ने लिखा है कृष्णभक्तों और कंस भक्तों का युद्ध होता था। कृष्णभक्त लाल रंग का और कंसभक्त काले रंग का मुखौटा लगा कर युद्ध करते थे। चेहरे के रंग से ही अच्छे और बुरे का पता चलता था।

(२) **भास के बालचरित–** (दे.) में वह अत्याचारी शासक है साथ ही वह मृत्यु से डरा हुआ भी है। जीवन के मोह में वह अपनी बहन के बच्चों को मारता है साथ ही सभी नवजात शिशुओं को मारने का आदेश देता है। जिस बालक के विषय में कहा गया है कि वह उसे मारने वाला है उसके समाप्त करने के सभी हथकण्डे अपनाता है। पर अन्त में कृष्ण द्वारा मारा जाता है।

(३) **शेषकृष्ण–** (दे) (४) हरिदास (दे.) (५) दामोदर (दे.) (६) कष्ण कवि (दे) इन सब कवियों के लिखे कंसवध काव्य में लगभग सामान्य परम्परा का अनुसरण करते हुए उसे दुष्ट तथा आततायी पात्र के रूप में दिखलाया गया है।

कंसवध– (ना.कृ.) इस नाम के कई नाटक संस्कृत में पाये जाते हैं। निम्नलिखित अधिक प्रसिद्ध हैं–

(१) **महर्षि पतंजलि** ने महाभाष्य में कंसवध और वालिबन्ध (दे.) का उल्लेख किया है। अतीत की घटनाओं के लिये वर्तमान का प्रयोग क्यों होता है इसका उत्तर देते हुए महर्षि ने लिखा है कि कंसवध इत्यादि नाटको में कंस और कृष्ण की भूमिका द्वारा घटना प्रत्यक्ष दिखलाई जाती है। वर्तमान में देखने के कारण उनमें वर्तमान काल का प्रयोग संगत हो जाता है। ज्ञात होता है पतञ्जलि के पहले भी कतिपय नाट्य कृतियाँ प्रचलित थी। यद्यपि उनके कर्ता इत्यादि के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है।

(२) **शेषकृष्ण-** (दे.) लिखित नाटक उसमें ७ अकों में कंसवध का कथानक प्रस्तुत किया गया है। इसका आधार श्रीमद्‌भागवत का १० वां स्कन्ध है। कृष्ण के प्रारम्भिक चरित्र के साथ कंसवध प्रस्तुत किया गया है और उग्रसेन के राज्यारोहण तक कथानक उसमें आ गया है। कहा जाता है यह नाटक विश्वेश्वर महोत्सव के वनारस में खेलने के लिये लिखा गया था।

(३) **हरिदास-** (दे.) लिखित नाटक, इसकी रचना कवि ने केवल १३ वर्ष की आयु में की थी।

(४) **दामोदर-** (दे.) लिखित इसी नाम का एक अन्य नाटक।

(५) **कृष्णकवि-** (दे.) लिखित इसी नाम का नाटक।

कंसान्तक- (ना.कृ.) यह हरि यज्वन (दे.) नामक कवि का लिखा कृष्णचरित्र विषयक नाटक है। मैसूर के ओरियण्टल पुस्तकालय के संस्कृत पाण्डुलिपि विभाग में कैटेलाग की सं. ६३६ पर इसे संकलित किया गया है।

कक्कसेरीभट्टातिरि- (ना.का.) मालावार का एक नाटककार। कहा जाता है कवि उद्दण्डी (उद्दण्डनाथ) ने इनके पिता को पराजित किया था। तब इनकी माता ने देवाराधन कर पिता का बदला लेने वाले इस पुत्र को जन्म दिया जिसने केवल १२ वर्ष की आयु में उद्दण्डनाथ को पराजित कर माता की इच्छा पूरी की। इनका मलयालम में लिखित नाटक प्रसिद्ध है। संस्कृत में लिखा एक अन्य नाटक 'इन्दुमतीराघव' (दे.) भी प्रकाश में आया है।

कञ्चनाचार्य- (ना.का.) धनञ्जयविजय (दे.) नामक व्यायोग के लेखक। ये कप्पीमुनि-वंश के नारायण के पुत्र थे और कन्नौज के राजा जयदेव के आश्रय में रहते थे। जयदेव का उल्लेख इनके नाटक की प्रस्तावना में भी किया गया है। जयदेव का समय १२वीं शताब्दी है। अतः इनका भी समय १२वीं शताब्दी ही मानाजाना चाहिए।

कञ्चुकी- (ना.पा.) (१) **उत्तर रामचरित** में इसका प्रयोग नई भंगिमा के साथ हुआ है। वस्तुतः यह परिवार का एक सदस्य जैसा होता है। घर के बच्चों के प्रति उसका व्यवहार ऐसा ही होता है जैसे मानो वे उसके अपने बच्चे हों। रामचन्द्र को वह सर्वदा 'रामभद्र' कहने का आदी रहा और जब राम राजा बन गये अभ्यास वश वह उन्हें अब भी रामभद्र ही कह जाता है, किन्तु तत्काल स्वयं को सुधार लेता है। किन्तु राम उसे घरेलू नाम से ही पुकारने का आदेश देते हैं। इससे राम के निर्लिप्त व्यवहार पर अच्छा प्रकाश पड़ता है जहां घरेलू कर्मचारियों को भी घर के सदस्य जैसा ही सम्मान दिया ज़ाता है।

(२) **अनर्घराघव-** में भी इसके चरित्र से परिवार के साथ आत्मीयता का ही बोध होता है। जनक का कंचुकी जनक के घर में सयानी हो रही लड़की के विवाह के लिये

चिन्तित है। वह सीता की परिचारिका कलहंसिका के साथ इस विषय में बात भी करता है।

(३) **वेणीसंहार**– में कञ्चुकी का प्रयोग पताकास्थानक में होता है। जहां दुर्योधन भानुमती से कहता है– 'तुम्हारा स्थान तो हमारे ये उरू हैं' यहां उरु शब्द के साथ कञ्चुकी का यह वाक्य– 'टूट गया, टूट गया' जुड़ जाता है। उसने वास्तव में ध्वजदण्ड के लिये 'टूट गया' शब्द का प्रयोग किया था जिसने 'उरु' के साथ जुड़कर भविष्य की घटना भीम द्वारा दुर्योधन के उरु तोड़े जाने की सूचना दी।

(४) **अभिज्ञानशाकुन्तलम**– में कञ्चुकी की सामान्य परिस्थिति पर प्रकाश डाला गया है। जब उसने सेवा काल प्रारम्भ किया था तब ऐसा बूढ़ा नहीं था। उस समय उसने दण्ड केवल इसलिये धारण किया था कि दंड लेकर चलना कंचुकी के आचार की एक अनिवार्य प्रथा थी। किन्तु अब बुढापे के कारण जब वह लड़खड़ाकर गिरने लगता है तब दण्ड उसे बचाने का साधन बन जाता है। उसकी याददाश्त भी अत्यन्त शिथिल हो गई है। अब उसकी स्मृति बुझने वाले दीपक के समान हो गई है जो क्षण भर के लिये उमड़ताहै और तत्काल अन्धकार से व्याप्त हो जाता है।

कञ्चुकी की यही स्थिति अन्य नाटकों के विषय में समझ लेनी चाहिए।

कटुविपाक– (ना.कृ.) लीलाराव दयाल लिखित एकाङ्की नाटक। इसमें एक ऐसे प्रशासकीय अधिकारी की पाश्चात्ताप प्रवण मनोवृत्ति का चित्रण किया गया है जिसकी पुत्री रेखा सत्याग्रह में शहीद हो गई है। इसकी रचना लेखिका की मां द्वारा लिखित कहानी ग्राम ज्योति पर आधारित है।

कणजयानन्द– (ना.का.) 'रुक्माङ्गदम्' (दे.) नाटक के लेखक; इनका समय १८वीं शताब्दी है।

कण्व– (ना.पा.) अभिज्ञानशाकुन्तलम् का एक पात्र। ये सुरासुर गुरु कश्यप के पुत्र, नैष्ठिक ब्रह्मचारी कुलपति हैं। निरन्तर साधना में निरत रहते हैं। तपस्या के प्रभाव से वे चिरकालज्ञ हो गये हैं। उनकी शक्ति से ही विघ्नकर्ता राक्षस इत्यादि उनके आश्रम के निकट फटक नहीं पाते। दुष्यन्त एक शक्तिशाली राजा हैं; फिर भी वे कण्व से भयभीत है। उनके तपःसिद्ध होने का परिचय हमें पग-पग पर मिलता है। पुत्री के गर्भवती हो जाने की सूचना उन्हें आकाशवाणी से प्राप्त होती है। शकुन्तला और दुष्यन्त के पुनर्मिलन का समाचार देने के लिये जब अदिति कश्यप से कहती है तो कश्यप यही उत्तर देते हैं कि तपस्या के प्रभाव से कण्व सब कुछ जानते हैं। केवल इतना ही नहीं पुत्री की विदा के समय रेशमी साड़ी और अनेक प्रकार के उपकरण उनकी तापसी सिद्धि के प्रभाव से अकस्मात प्राप्त हो जाते हैं।

कण्व की एक बहुत बड़ी विशेषता यह है कि वनवासी होते हुए भी लोकवृत्त से

पूर्ण परिचित है। उन्होंने विदा के समय शकुन्तला को जो उपदेश दिया, दामाद को जो सन्देश दिया, पुत्री के पिता के जीवन का जो चित्र खींचा और पुत्री से वियुक्त होने वाले पिता की मानसिकता का जो अभिव्यञ्जन किया वह वास्तव में एक व्यवहार कुशल पिता का आदर्श चित्रण है। ये चार पद्य शकुन्तला नाटक के सर्वोत्तम पद्य कहे जाते हैं। वस्तुतः इनमें भारतीय सामाजिक जीवन का पूरा चित्र खींच दिया गया है। विदा के समय के वातावरण में उनका ध्यान केवल शकुन्तला की सहेलियों पर ही नहीं जाता पशु पक्षी वृक्ष इत्यादि भी उनकी आत्मीयता का विषय बनते हैं। उक्त व्यावहारिकता के साथ उनके तापस रूप का भी अपलाप नहीं होता और 'पराये पुत्रीधन को आज उसके अधिकारी को सौंप कर मेरी अन्तरात्मा विशुद्ध हो गई है' इस एक वाक्य में वे सारे विषादमय वातावरण से स्वयं को अलग कर लेते हैं।

कदम्बकेलिमाला– (ना.कृ.) यह एक अप्राप्त नाटक नन्दीपति (दे.) का लिखा बतलाया जाता है।

कदी– (ना.पा.) हम्मीरमदमर्दन में एक पात्र मीलच्छीकर (दे.) के गुरु। इनका उल्लेख रदी के साथ किया जाता है।

कनकजानकी– (ना.कृ.) क्षेमेन्द्र (दे.) लिखित नाटक। अब यह कृति उपलब्ध नहीं होती। इसका उल्लेख कविकण्ठाभरण में किया गया है।

कनकलेखा– (ना.कृ.) वामनभट्टवाण (दे.) लिखित ४ अंकों का नाटक इसमें वीरवर्मा की पुत्री कनकलेखा और व्यास वर्मा के विवाह को चित्रित किया गया है। दोनों विद्याधर थे जो एक ऋषि के शाप से मृत्युलोक में उत्पन्न हुये थे।

कनकावती माधव– (ना.कृ.) साहित्यदर्पण में शिल्पक नामक उपरूपक के उदाहरण के रूप में इसका उल्लेख किया गया है। (शिल्पक की विशेषताओं के लिये देखिये भूमिका भाग)। इस नाटक के विषय में और कुछ ज्ञात नहीं है।

कनकवल्ली परिणय– (ना.कृ.) श्रीनिवासशास्त्री (१) का लिखा विवाहविषयक नाटक। कैटेलागस कैटेलागोरम सं. १९४ पर इसका संकलन किया गया है।

कनकाक्षी परिणय– (ना.कृ.) (१) श्रीनिवास (दे.) लिखित विवाह विषयक नाटक। इसका संकलन कैटेलागस कैटेलागोरम सं. १८६ पर किया गया है।

कनकाङ्गी– (ना.कृ.) (१) नारायण शास्त्री (दे.) लिखित ७ अंकों का नाटक।

कनिष्क– (इति.पा.) इनका सामान्य भारतीय इतिहास में और विशेषकर संस्कृत साहित्य के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान माना जाता है। सामान्य धारणा है कि शक संवत् इन्हीं का चलाया हुआ है जो कि सन् ७२ से प्रारम्भ होता है। वस्तुतः कनिष्क शक नहीं कुषाण थे। किन्तु बाद में समस्त विदेशी आक्रान्ताओं को शक इस सामान्य नाम से याद किया जाने लगा। बहुत समय तक इनका चलाया हुआ संवत् प्रयोग में बना रहा।

कनिष्क को विदेशी आक्रान्ता एवं विजेता के रूप में इतना अधिक याद नहीं किया जाता जितना उन्हें उनके कीर्ति स्तम्भों और कला, साहित्य एवं धर्मसंरक्षकों तथा आश्रयदाताओं में माना जाता है। इनका पेशावर का चैत्य अत्यन्त प्रतिष्ठित रहा है। शाक्यमुनि के अनुयायियों को आश्रय देने के कारण बौद्ध पुरोहित वर्ग में इन्हें बौद्ध धर्म का राजकुमार माना जाता था। अश्वघोष इन्ही के दरवारी कवि थे। साहित्य और विज्ञान की अनेक शाखाओं के कालनिर्धारण में इनका आश्रय लिया जाता है।

कन्दर्पकेलि– (ना.कृ.) अज्ञातनामा कविकृत प्रहसन। साहित्य दर्पण में इसका उल्लेख किया गया है।

कन्दर्पदर्प अथवा कन्दर्पदर्पण– (ना.कृ.) यह भाण रचना है। इस नाम की तीन कृतियां प्राप्त होती हैं–

(१) **रामराय वेल्लमकोण्ड**– (दे.) लिखित। इस रचना के विषय में और कुछ ज्ञात नहीं है।

(२) **श्रीकण्ठ**– (दे.) लिखित। इस रचना का संकलन तंजौर पुस्तकालय की सं. VIII ३५७५ पर किया गया है।

(३) **श्री कृष्ण**– (दे.) लिखित। मैसूर संस्कृत लायब्रेरी पाण्डुलिपि अनुभाग के कैटेलाग में १२वीं संख्या पर इसका संकलन किया गया है।

कन्दर्पविजय– (ना.कृ.) यह एक भाण है जिसकी रचना कौशिक गोत्रीय घनगुरु ने की थी। इसका प्रथम अभिनय श्रीरंगम में हुआ था। ओरियण्टल लायब्रेरी पाण्डुलिपि अनुभाग विवरणात्मक सूची में सं. XXI ८३८१ पर इसवा संकलन किया गया है।

कन्दर्पसम्भव– (ना.कृ.) यह एक प्रकरण है। शिंगभूपाल ने रसार्णवसुधाकर में और विश्वेश्वर ने चमत्कारचूडामणि में अनेकशः इसका उल्लेख किया है तथा इससे उद्धरण दिये हैं। शिंगभूपाल का समय १४वीं शताब्दी का अन्त एवं १५वीं शताब्दी का प्रारम्भ है। अतः इस प्रकरण की रचना इससे पहले ही हुई होगी।

(दे. शिंगभूपाल द्वारा उल्लिखित नाटक)

कन्हैयालालपञ्चतीर्थ– (ना.का.) इनका लिखा हर्षावसान नाटक (दे.) रामकथा परक है। इस नाटक का प्रकाशन सह्याद्रिसंस्कृतजर्नल मद्रास से हो चुका है।

कपटगज– (ना.व.) प्रतिज्ञायौगन्धरापण (दे.) में महाराज उदयन को बन्दी बनाने के लिये कपट गज का निर्माण किया गया था और उसी के सहारे प्रद्योत ने उदयन को गिरफ्तार कर लिया था जो आगे चलकर उदयन और वासवदत्ता के प्रेम में कारण बना।

(१) **कपालकुण्डला**– (ना.कृ.) यह ७ अंकों का हरिचरण लिखित नाटक है। इसकी रचना प्रसिद्ध उपन्यासकार वंकिमचन्द्र के इसी नाम के बंगाली उपन्यास के आधार पर की गई है। नवकुमार की प्रथम पत्नी मति ब्राह्मणवेष धारण कर कपाल कुण्डला से

मिलती है। अतः उसके पति के मन में उसके चरित्र पर सन्देह हो जाता है। अन्त में अपमानित नायिका को आत्महत्या करनी पड़ती है जिसका परिणान यह होता है कि पश्चाताप से पीड़ित होकर नायक स्वयं आत्महत्या कर लेता है। यह उपन्यास का अनुवादमात्र है। किन्तु शैली की दृष्टि से इसमें नाटकीयता आ गई है। अतः कुछ विचारकों ने इसका समावेश नाटक के अन्तर्गत किया है।

(२) **कपालकुण्डला**– (ना.कृ.) विष्णुपद भट्टाचार्य लिखित नाटक।

कपालकुण्डला– (ना.पा.) मालतीमाधव (दे.) नाटक की एक पात्र। यह अघोरघण्ट की शिष्या है और गुरु के साथ तान्त्रिक साधना में निरत है जिसके लिये वह देवी पर मालती की वलि चढ़ाने में अघोरघण्ट की सहायता करना चाहती है। संयोग से उसी समय माधव पहुंच जाता है; वह अघोरघण्ट को मारकर मालती को बचा लेता है। कपालकुण्डला अपना निश्चय नहीं बदलती। अवसर पाकर वह मालती का अपहरण कर लेती है और उसे मन्दिर में ले जाकर वलि चढ़ाना चाहती है किन्तु सफल नहीं हो पाती क्योंकि समय पर कामन्दकी की शिष्या सौदामिनी पहुंच जाती है और मालती की रक्षा कर लेती है।

कपाली– (ना.पा.) दे. कापालिक (२)

कपित्थ– (ना.पा.) बालरामायण (दे.) में एक वानर जो अपने साथी दधित्थ से मिलकर सेतु रचना का विस्तृत विवरण तैयार करता है।

कपिलदेव द्विवेदी– (ना.का.) रामप्रसाद शास्त्री के पुत्र एवं शिक्षा की अनेक उपाधियों से विभूषित। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में धर्मशास्त्रविभागाध्यक्ष। इन्होंने संस्कृतपरिषद् की स्थापना की। इनका लिखा परिवर्तन (दे.) शीर्षक नाटक प्रकाश में आया है।

कपिलेश्वर महाराज– (ना.का.) ये १४वीं शताब्दी में उड़ीसा के निवासी थे। इनका लिखा परशुराम विजय रुपक बतलाया जाता है।

कपोतालय– (ना.कृ.) लीलाराव दयाल (दे.) लिखित प्रहसन।

कबन्ध– (ना.पा.) अनर्घराराघव (दे.) में एक पात्र रामायण में कबन्ध के मारे जाने का वर्णन है। किन्तु अनर्घराघव में उसका उपादान नई कल्पना के साथ हुआ है। कबन्ध राम के मित्र गृह निषाद को युद्ध में आक्रान्त कर लेता है। लक्ष्मण गुहनिषाद की चीत्कार सुनकर वहां पहुंचकर गुह निषाद की रक्षा कर लेते हैं।

कमलक– (ना.पा.) हम्मीरमदमर्दन (दे.) में एक गुप्तचर जो वीरधवल और तेजःपाल को मेवाड़ राज्य के विनाश की सूचना देता है। म्लेच्छों के आक्रमण से लोग आतङ्कित होकर आत्महत्या पर आमादा हैं; अनेक लोगों ने आत्महत्या कर ली है। ऐसे कुअवसर पर कमलक ढाढस देकर और वीर धवल के पहुंचने की सूचना देकर उनकी रक्षा करता

है। वीरधवल का नाम सुनकर म्लेच्छ भाग खड़े होते हैं और मेवाड़ की रक्षा हो जाती है।

कमला कण्ठीरव- (ना.कृ.) काञ्चीवरम के निकट ब्रह्मदेश के निवासी लक्ष्मीधर के पुत्र नारायणाध्वरि का लिखा नाटक। तंजौर की पैलेस लायब्रेरी के पाण्डुलिपि अनुभाग के कैटेलाग (VIII ३३९४) में इसका उल्लेख किया गया है।

कमलाकर भट्ट- १७वीं शताब्दी में गुजरात के उद्‌भट विद्वान। अनेक विषयों पर इनकी उच्चकोटि की रचनायें पाई जाती हैं; प्रमुख रुप से ये धर्म शास्त्र के विद्वान थे और उसी विषय में इनकी रचनायें अधिक सम्मान की दृष्टि से देखी जाती हैं। इनकी रचनाओं में रसिक विनोद (दे.) नामक एक त्रोटक भी है।

कमलाविलास- (ना.कृ.) दे. नन्दिघोष विजयम्।

कमलिनी कलहंस- (ना.कृ.) यह राजचूडामणि दीक्षित (दे.) लिखित चार अंकों का नाटक है। इसमें कमलिनी और कलहंस के विवाह को रूपायित किया गया है। कमलिनी कमलाकर की पुत्री एवं नायक कलहंस की भाञ्जी थी जिसे धाय की पुत्री के साथ अपहृत कर लिया गया था और जिसे कमलजा के नाम से कलहंस के यहां रख दिया गया था। कलहंस उसे चाहने लगता है। उसे भरत नाट्यम् की शिक्षा दी जाने लगती है। मदनोद्यान में काम सन्तप्त अवस्था में दोनों मिलते हैं किन्तु कलहंस की पत्नी के विघ्न डाल देने के कारण उनका सम्मिलन नहीं हो पाता। जब पत्नी को पता चलता है कि कमलजा उसकी बहन कमलिनी है तब वह विवाह की अनुमति दे देती है और दोनों का विवाह हो जाता है।

इस नाटक में सभी ४१ पात्रों के नाम प्रकृति से लिये गये हैं। इसकी रचना प्रसादगुण पूर्ण तथा सुबोध है और इसमें संगीतात्मकता का प्रयोग किया गया है। चोल शासक महाराज रघुनाथ के शासन काल में अनन्तासन पुर में विष्णु की यात्रा के समय इसका प्रथम अभिनय किया गया था। इसका प्रकाशन मद्रास से हो गया है।

कमलिनी राजहंस- (ना.कृ.) केरल के कवि एवं नाटककार पूर्ण सरस्वती (दे.) की रचना। इसमें ५ अंक हैं इसमें राजहंस एवं कमलिनी के विवाह का चित्रण किया गया है।

करुणा- (ना.पा.) प्रबोध चन्द्रोदय की एक पात्र। वह शान्ति की सखी है। जब शान्ति अपनी मां श्रद्धा के वियोग में दु:खी है वह शान्ति को समझाती है और दिगम्बर जैन, बौद्ध धर्म, दर्शन, सोम सिद्धान्त आदि में श्रद्धा की खोज करने का परामर्श देती है किन्तु सब व्यर्थ है। वे सब अपनी अपनी प्रेमिकाओं के साथ दिखलाई देते हैं।

कर्ण- (ना.पा.) (१) भास के कर्णभार का नायक। इस नाटक में कर्ण के उदात्त चरित्र का बहुत ही कलात्मक शैली में चित्रण किया गया है। कर्ण को इस बात का गौरव

प्राप्त है कि उसने एक देवता को भी दान दिया है और वह भी देवराज को। प्रतिदान प्राप्त करने की उसे विल्कुल आकाङ्क्षा नहीं है। इन्द्र भेंट रूप में उसे स्वयं प्रतिदान देते हैं। शल्य के मना करने पर भी वह अपने निश्चय से विरत नहीं होता। वह परिस्थितियों का शिकार है। एक ओर मित्र के प्रति कर्तव्य, दूसरी ओर भाइयों के साथ युद्ध की अवाञ्छनीय स्थिति। गुरु के शाप से शक्ति हीन अस्त्र। इन विषमताओं से पराहत भी वह अपनी धर्मभावना का व्यतिक्रम नहीं करता। वह मांगता नहीं किन्तु मांगने वाले को कुण्डल कवच के रूप में अपना जीवन ही दान कर देता है। शक्ति का प्रतिदान भी स्वार्थ और स्वरक्षा के लिये नहीं केवल ब्राह्मणवचन पालन के लिये ही स्वीकार करता है। कवि उसे आदर्श रूप में प्रस्तुत करने में पूर्ण सफल हुआ है।

(२) **वेणी संहार**- में कर्ण एक वीर व्यक्ति के रूप में चित्रित किया गया है। दुर्योधन का वह मित्र है और उसकी वीरता पर विश्वास करके ही दुर्योधन अश्वत्थामा की अभ्यर्थना अस्वीकार कर देता है तथा उसे (कर्ण को) सेनापति बनाता है। इस अवसर पर अश्वत्थामा और कर्ण का धाराधिरुढ संवाद कर्ण के चरित्र को उजागर करता है।

महाभारत का यह पात्र परम प्रतापी, परम त्यागी परम उदार महावीर योद्धा है जो अर्जुन के लिये कृष्ण के मन में भी भय का कारण बना हुआ है। किन्तु वेणीसंहार में उसके प्रति न्याय नहीं किया जा सका है। यहां वह एक ईर्ष्यालु एवं दुरभिसन्धि परायण व्यक्ति के रूप में चित्रित किया गया है। वह दुर्योधन को समझा देता है कि द्रोणाचार्य का मंशा कुरुकुल का विनाश कर अश्वत्थामा को राजा बनाने का था। इसीलिये अश्वत्थामा की मृत्यु की झूठी खबर सुनकर अस्त्र को त्यागकर मृत्यु को वरण कर लिया। दुर्योधन उसकी कुमन्त्रणा पर विश्वास कर अपने सर्वाधिक शक्ति शाली योद्धा अश्वत्थामा की शक्ति के उपयोग से वञ्चित हो गया। अश्वत्थामा सबके सामने उसके (कर्ण के) सिर पर पाद प्रहार कर देता है किन्तु वह कुछ नहीं कर पाता। वह सेनापति है- उस पर अपने वीरों की रक्षा का भार है किन्तु उसके देखते देखते उसके पुत्र का वध कर दिया जाता है और भीमसेन उसकी उपस्थिति में ही दुश्शासन को मार कर उसकी छाती का खून पी लेता है, कर्ण कुछ भी नहीं कर पाता। अश्वत्थामा के पिता की मृत्यु हो चुकी है; मानवता का तकाजा है कि उस समय उसके प्रति सहानुभूति दिखलाई जाय। दुर्योधन इस विषय में अपना कर्तव्य पूरा भी करता है किन्तु कर्ण में इतनी मानवता भी शेष नहीं है- वह उस अवसर की गम्भीरता नहीं समझता और आरोप प्रत्यारोप में लग जाता है। निस्सन्देह नाटक में उसकी महत्ता की उपेक्षा की गई है जो उसके प्रति अन्याय है।

कर्ण कुतूहलम्- (ना.कृ.) भोलानाथ शुक्ल (दे.) लिखित नाटक।

कर्णपराक्रम- (ना.कृ.) यह एक नाटक रचना है जिसका उल्लेख विश्वनाथ ने किया है। अब यह नाटक प्राप्त नहीं होता।

कर्णपूर- (ना.पा.) मृच्छकटिक में वासवदत्ता का नौकर। जब वसन्तसेना संवाहक

का कर्ज चुकाकर उसे द्यूत विजेता के चंगुल से छुड़ा देती है और वह उज्जैन की सड़क पर एक हाथी की जद में आ जाता है। वह अकेला ही हाथी को ललकारता है और उसे अधिकार में ले लेता है। संवाहक की प्राण रक्षा हो जाती है और जनता आश्चर्य चकित हो जाती है। उपस्थित जन समाज के मध्य में चारुदत्त अपनी चादर (प्रावारक) उसके ऊपर डालकर चला जाता है। कर्णपूर अपनी गौरव गाथा अपनी स्वामिनी वासवदत्ता को सुनाता है। वासवदत्ता प्रावारक पहिंचान लेती है और उससे उसके मन में कर्णपूर के प्रति द्विगुणित आत्मीयता बढ़ जाती है।

कर्णभार- (ना.कृ.) भास (दे.) का लिखा हुआ नाटक। युद्ध विषयक होने के कारण इसे व्यायोग कहा जा सकता है। अर्जुन से युद्ध करने के लिये कर्ण और शल्य प्रस्थान करते हैं कर्ण शल्य को अस्त्रों की छलपूर्वक प्राप्ति की घटना सुनाते हैं और कहते हैं कि उसी छल के दण्ड के रूप में उन्हें परशुराम का शाप मिला है कि समय आने पर ये अस्त्रशस्त्र साथ नहीं देंगे। इसी समय ब्राह्मण वेष में इन्द्र आते हैं और कर्ण से भिक्षा में अभेद्य कुण्डल और कवच लेकर ही सन्तुष्ट होते है। उपहार के रूप में इन्द्र उन्हें अमोध शक्ति प्रदान करते हैं जिसे कर्ण ब्राह्मण का प्रसाद समझ कर स्वीकार कर लेते हैं। इन्द्र शक्ति देकर चले जाते हैं और कर्ण तथा शल्य युद्ध के लिये प्रस्थान करते हैं।

प्रस्तुत कथानक महाभारत पर आधारित हैं, किन्तु लेखक ने इसमें यथेष्ट परिवर्तन किये हैं। इन्द्र युद्ध के पहले नहीं युद्ध के प्रस्थान के समय कुण्डल कवच मांगने आते हैं और वह भी ब्राह्मण वेष में। कर्ण बदले में शक्तियां मांगते नहीं हैं किन्तु इन्द्र स्वयं उन्हें भेंट रुप में दे देते हैं।

इस नाटक में नान्दी पाठ, प्रस्तावना और भरत वाक्य का प्रयोग किया गया है। नाट्यशास्त्र के भाषा विषयक नियम का भी प्रयोग किया गया है। उच्च पात्रों की भाषा अर्ध मागधी रक्खी गई है। इस नाटक की शैली बड़ी ही मार्मिक और कलात्मक है। कर्ण के चरित्र की उदात्तता और उसकी उदारता बहुत ही प्रभावशाली ढंग से चित्रित की गई है। इस नाटक में भास की कला का निखार अधिक अच्छे ढंग से किया गयाहै।

इस नाटक में महाभारत की एक छोटी सी घटना को कल्पना शक्ति से सर्वथा नये रूप में ढालकर मनोरम बना दिया गया है।

कर्णसुन्दरी- (ना.कृ.) ११वीं शताब्दी की विल्हण लिखित एक नाटिका। भीमदेव के पुत्र चालुक्यराज कर्णदेव का विद्याधरों की राजकुमारी कर्णसुन्दरी के साथ विवाह होना है। मन्त्री के प्रयत्न से राजकुमारी का अन्तःपुर में प्रवेश हो जाता है। राजा उसके देखते ही आसक्त हो जाते हैं जिससे रानी के मन में ईर्ष्या जागृत होती है। वह उनके मिलन में विघ्न डालती है। एक वार वह स्वयं कर्णसुन्दरी का वेष बनाकर राजा के पास पहुंच जाती है। एक वार वह एक लड़के को कर्ण सुन्दरी के वेष में सजाकर राजा से विवाह करा देने का प्रयत्न करती है। किन्तु मन्त्री चालाकी करके वास्तविक कर्णसुन्दरी से राजा

का विवाह करा देता है।

इस आशय के कई नाटक संस्कृत साहित्य में लिखे गये और उनमें कथानक का पर्यवसान राजा की विजय में होता है। वह इसमें भी हुआ है। इस नाटक की रचना अनहिलवाड़ के कर्णदेव के पियाणल्लदेवी से विवाह का उत्सव मनाने के लिये की गई थी। इसका प्रकाशन बम्बई से काव्यमाला सीरीज सं. ७ में हुआ था।

कर्णसुन्दरी– (ना.पा.) विल्हण रचित कर्णसुन्दरी (दे.) की नायिका जिसका चालुक्यराज कर्णदेव के साथ गुप्त प्रेम था जो अन्ततः मन्त्री के प्रयत्नों से विवाह में वदल गया।

कर्पूरचरित– (ना.कृ.) यह वत्सराज लिखित एक भाण है जिसमें एकाकी पात्र कर्पूरक नामक जुआरी अपनी द्यूत क्रीड़ाओं और रंगरेलियों का एकालाप द्वारा वर्णन करता है और अभिनय द्वारा प्रदर्शन करता है। गायकवाड़ सीरीज बड़ौदा से रुपकशतक के अन्तर्गत इसका प्रकाशन हो गया है।

कर्पूरमञ्जरी– (ना.कृ.) राजशेखर (दे.) लिखित ४ अंकों का रुपक जिसे पूर्ण रूप से प्राकृत में लिखे होने के कारण सट्टक की संज्ञा दी गई है। इसकी रचना मालविकाग्नि-मित्र के आदर्श पर हुई है। इसमें कुन्तल की राजकुमारी कर्पूरमञ्जरी के साथ कुमार चन्द्रपाल की प्रेम लीला का चित्रण किया गया है। वह रानी की मौसेरी बहन है; भैरवानन्द तान्त्रिक ने उसे राजा के सम्मुख प्रस्तुत किया और प्रथम दर्शन में दोनों में प्रेम उत्पन्न हो गया। नायिका पत्र द्वारा राजा पर अपना प्रेम प्रकट करती है और सखी विचक्षणा एवं विदूषक के प्रयत्न से राजा अनेक वार प्रेमिका को देखता है। उसका अनुराग बद्ध मूल हो जाता है। जब रानी को इस बात का पता चलता है तब वह उसे बन्दीगृह में डाल देती है किन्तु राजा उसके बन्दीगृह तक पहुंचने के लिये एक सुरंग बनवा देता है और वहां पहुंचकर उद्यान में प्रेमिका के साथ स्वच्छन्दविहार करता है। जब रानी को पता चलता है तब रानी उस सुरंग को बन्द करवा देती है। तब राजा चामुण्डा के मन्दिर की ओर दूसरी सुरंग बनवा लेता है जिसका प्रवेश प्रतिमा के पीछे है। अतः किसी को पता नहीं चलता।

कुछ समय बाद तान्त्रिक आता है। रानी के मन में प्रभाव जमाया जाता है कि राजा के चक्रवर्ती पद प्राप्त करने के लिये लाट देश की राजकुमारी से विवाह करना अत्यावश्यक है। तान्त्रिक कहता है कि तन्त्र विद्या के प्रभाव से मैं राजकुमारी को अपने महल से यहां ला सकता हूं। रानी स्वीकृति दे देती है और लाट देश की राज कुमारी कर्पूरमंजरी वहीं लाई जाती है। उसका विवाह आनन्दपूर्वक सम्पन्न होता है।

इस नाटक में प्रेम-विपर्यय, रानी की ईर्ष्या, गुप्त मिलन और छल पूर्व रानी की स्वीकृति प्राप्त करने का अच्छा चित्रण हुआ है। विद्वानों ने इसे भारतीय साहित्य में

उच्चकोटि का सुखान्त रुपक माना है। इससे कवि का प्राकृत भाषा पर संस्कृत के समान ही पूरा अधिकार सिद्ध होता है। इसका कथानक भी लोकगाथा से लिया हुआ प्रतीत होता है। कहीं कहीं कवि ग्राम्यता की सीमा तक पहुंच गया है। इसमें कवि ने संस्कृत को पुरुष के समान कठोर और प्राकृत को नारी के समान कोमल बतालाया है। कलापूर्ण छन्दों में कवि ने प्रभात, मध्याह्न, सन्ध्या, अन्तःपुरविलास, कन्दुकक्रीडा इत्यादि नायिकाओं के प्रिय मनोरंजन का वर्णन किया है। तन्त्रविद्या के प्रभाव से ही कर्पूरमंजरी दोनों वार उपस्थित हो जाती है। हास्य की दृष्टि से यह एक सफल कृति है।

इस पुस्तक पर कामराज, धर्मदास, पीताम्बर और धर्मचन्द्र की टीकाओं का उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम सं. १.८२; II १५; III १८ और पेटर्सन की रिपोर्ट सं. IV २५ तथा V ४३२ पर किया गया है। वासुदेव की टीका बम्बई से और जे. विद्या सागर की टीका कलकत्ता से प्रकाशित हुई है। कृष्णसूरि की टीका मद्रास के विवरणात्मक कैटेलाग (XXI ८३५५) में नृसिंहराज (दे.) और अनन्तदास की टीकायें त्रैवार्षिक खोज रिपोर्ट की क्रमशः III ३८२ और III ३९३६ पर उल्लिखित है। अनन्त दास सम्भवतः मालावार के कृष्णशंकर गुरु के शिष्य थे।

कर्पूर मञ्जरी– (ना.पा.) कर्पूर मञ्जरी (दे.) नामक नाटिका की नायिका। यह अत्यन्त रूपवती है; सभी नागरिकाओं को श्रीहीन बना देती है; आनन शोभा की चांदनी से आकाश को धवलित कर देती है; रमणियों के सौन्दर्य गर्व को चूर कर देती है। झूले में उसका विशेष मन लगता है; पदाघात से अशोक को प्रफुल्लित करना उसका व्यसन है। राजा को अपने गुणों से उसने पूर्ण रूप से आबद्ध कर लिया है।

कर्मफलम्– (ना.कृ.) रमानाथ मिश्र लिखित एक प्रहसन। इसमें भारतीय समाज की विषमताओं को चित्रित किया गया है। इसकी रचना १९५५ में और प्रकाशन सम्भवतः १९६१ में हो गया था।

कलकण्ठ– (ना.पा.) उद्दण्डी (दे.) लिखित नाटक मल्लिकामारुत (दे.) का एक पात्र। यह नायक का मित्र एवं और रमयन्तिका का प्रेमी है। यह एक सहयोगी युग्म है जिसकी प्रेमलीला मुख्य नायक नायिका की प्रेमलीला के साथ ही चलती है।

कलङ्कमोचन– (ना.कृ.) पंचानन (तर्क वागीश) (दे.) लिखित नाटक।

कलहंस– (ना.पा.) मालतीमाधव (दे.) में यह माधव का मित्र है। इसे विट कहा गया है। किन्तु कीथ के अनुसार इसमें विट की कोई विशेषता नहीं है। अतः इसे विट कहना ठीक प्रतीत नहीं होता।

कलहंसिका– (ना.पा.) अनर्घराघव (दे.) में यह सीता की सहचरी है और कञ्चुकी के साथ वार्तालाप में सीता के विवाह का प्रस्ताव रखती है।

कलानन्दक– (ना.कृ.) यह रामचन्द्र शेखर (दे.) लिखित नाटक है। कलावती और

नन्दक के वियोग और पुनर्मिलन के कथानक को लेकर इस नाटक की रचना की गई है। कहा जाता है नन्दक का जन्म भद्राचलम् के देवता रामभद्र के प्रसाद से राजकीय परिवार में हुआ था। वही इस नाटक का नायक है। वह दिल्लीपति की पुत्री कलावती के गुणों को सुनकर उस पर अनुरक्त हो गया है। उधर कलावती भी उसके गुणों पर रीझी हुई है। वह गौरी पूजा के बहाने अपने प्रेमी से मिलती जुलती है। किन्तु कलावती का पिता नन्दक को पुत्री देना नहीं चाहता। नन्दक को त्रिकाल वेदी योगी की सहायता मिल जाती है जिसके तपोविघ्न को नन्दक ने दूर किया है। इसीलिये वह नन्दक का प्रत्युपकार करना चाहता है। उसी की कृपा से कलावती और नन्दक का विवाह सम्पन्न हो जाता है।

पैलेस लायब्रेरी तंजौर के पाण्डुलिपि अनुभाग सं. VIII ३३६१ पर इसे संकलित किया गया है।

कलावतीकामरुपम्– (ना.कृ.) यह १८वीं शताब्दी के नव कृष्णदास (दे.) का लिखा नाटक है इन्हें केवल कृष्णदास नाम से भी याद किया जाता है। इसमें कलावती के अपहरण और काशी के राजकुमार कामरूप द्वारा उसके छुड़ाये जाने का अंकन किया गया है। कलावती को लेकर कुछ राक्षस भाग रहे थे। उसी समय काशी के कामकेतु राजा का पुत्र कामरुप वहां आ गया और संघर्ष के साथ कलावती छुड़ा ली गई। तब विवाह की योजना बनी। यहीं पर पांचवें अंक में नाटक की प्रति टूट जाती है और पूरा नाटक उपलब्ध नहीं होता।

मद्रास प्राच्य लायब्रेरी के संस्कृत पाण्डुलिपियों के अनुभाग में विवरणात्मक कैटेलाग C III ३९८४ में इसका संकलन किया गया है।

कलिकेलि– (ना.कृ.) अज्ञात नामा कवि रचित प्रहसन। इसका उल्लेख और उद्धरण सिंग भूपाल के रसार्णव सुधाकर में एवं शारदातनय द्वारा किया गया है।

कलिकाकोलाहल– (ना.कृ.) रामानुजाचार्य ह्वी (दे.) का लिखा नाटक। यह अप्रकाशित है और अयोध्या में कालीप्रसाद त्रिपाठी के यहां इसकी प्रति बतलाई जाती है।

कलिंग नरेश– (ना.पा.) प्रियदर्शिका (दे.) में विरोधी पात्र। यह प्रियदर्शिका को चाहता है। इसीलिये अंगराज पर आक्रमण कर उसे बन्दी बना लेता है। किन्तु अंगराज की पुत्री प्रियदर्शिका निकल जाती है और उसका मनोरथ सफल नहीं होता।

कलिपलायनम्– (ना.कृ.) विद्याधर शास्त्री (दे.) लिखित नाटक। इसमें चार अंक हैं। इसमें कलि और राजा परीक्षित की भागवतोक्त कथा का आधार लिया गया है।

कलिप्रादुर्भाव– (ना.कृ.) महालिंगशास्त्री लिखित ७ अंकों का नाटक। द्वापर युग समाप्ति पर है। कात्यायन मिश्र ने अपना खेत एक वैश्य को वेचा है जिसमें गड़ा हुआ

स्वर्णमुद्राभाण्ड वैश्य को प्राप्त होता है। वैश्य उसे कात्यायन को लौटना चाहता है। किन्तु कात्यायन उसे इसलिये स्वीकार नहीं करते कि वे तो खेत वेंच चुके हैं। मुकदमा न्यायालय में जाता है। इस वीच कलियुग का प्रादुर्भाव हो जाता है और दोनों की नियत बदल जाती है। न्यायालय कोई निर्णय नहीं कर पाता और सारी राशि राजकोश में जमा कर ली जाती है।

इस नाटक की रचना १९३८ में और प्रकाशन १९५६ में हुआ था। इसमे द्वापर और कलियुग के छायात्मक पात्र दिखलाये गये हैं और पात्रों के कथन अधिक लम्बे हैं।

कलियुग कालिदास– (ना.कृ.) इनका लिखा शृङ्गारशेखर या शृङ्गारकोश (दे.) प्राप्त होता है। इनके वास्तविक नाम का पता नहीं। किन्तु श्रीकण्ठ (दे.) ने अपने पिता का नाम कलियुग कालिदास लिखा है। हो सकता है शृङ्गारकोश के लेखक कलियुग कालिदास ही श्रीकण्ठ के पिता हों।

कलिवत्सल– (ना.पा.) कौतुक सर्वस्व (दे.) प्रहसन का एक पात्र; यह राजा है जो सत्याचार नामक ब्राह्मण को अत्यन्त पीड़ित करता है। असत्याचरण, पाप, स्वच्छन्द प्रेम इन सबको पूरा प्रश्रय मिला हुआ है। राजा ने सभी विवेकशील ब्राह्मणों को राज्य बाह्य कर दिया है। किन्तु गणिका से प्रेम करने के कारण उसे रानी का कोप भाजन होना पड़ता है।

कलिविजयम्– (ना.कृ.) (१) नारायण शास्त्री (दे.) लिखित ७ अंकों का नाटक।

कलि विधूननम्– (ना.कृ.) यह नारायण शास्त्री की रचना है। इसमें १० अंक हैं। इस नाटक के कथानक का आधार नलोपाख्यान है। नल का स्वयंवर में वरण द्यूत, वनवास और पुनः राज्य प्राप्ति तक का इसमें अंकन किया गया है। छाया तत्व का भी इसमें समावेश किया गया है। विष्कम्भक मे कलि की भूमिका, नल का सर्प के पेट में जाना और वहीं से कुरूप होकर निकलना, चार लोक पालों का नल के रूप में उपस्थित होना आदि इस नाटक की महत्व पूर्ण विशेषतायें हैं। इस नाटक में अनुप्रास का मनोरम प्रयोग किया गया है और चरित्र चित्रण सशक्त है।

कल्पनाकल्पक– (ना.कृ.) शेषगिरि लिखित नाट्यकृति। मैसूर पुस्तकालय के पाण्डुलिपि अनुभाग की ग्रन्थ सूची में उल्लिखित। इसकी रचना १८वीं शताब्दी में की गई थी। इसका प्रथम अभिनय श्रीरंगपत्तन के चैत्रोत्सव में किया गया था। मैसूर पुस्तकालय में सं. २७५ पर इसका संकलन किया गया है।

कल्याणकुञ्चिकम्– (ना.कृ.) विष्णुपद भट्टाचार्य लिखित ९ अंकों का नाटक। सुशिक्षित एवं वेकार युवक सुकुमार अपने डाक्टर मित्र प्रशान्त के माध्यम से एक नौकरी प्राप्त कर लेता है। मालिक उसे इस शर्त पर नौकरी देता है कि वह उसकी पुत्री विद्युत्प्रतिमा को निश्शुल्क पढ़ायेगा। इसी शिक्षण के प्रसंग में दोनो का प्रेम हो जाता है। उधर

विद्युत्प्रतिमा की सखी कुन्दकलिका डा. प्रशान्त पर अनुरक्त है और बीमारी के बहाने उसके निकट सम्पर्क में आती है। दोनों का प्रेम बढ़ जाता है। दोनों को उनकी प्रेमिकायें मिल जाती हैं।

इस नाटक की रचना १९५६ में और प्रकाशन १९५९ में मञ्जूषा नामक पत्रिका में हुआ था। इसकी विशेषतायें हैं- लम्बे रंगनिर्देश बंगाली लोकोक्तियों का संस्कृतीकरण अंग्रेजी शब्दों का अनुरणनात्मक संस्कृत शब्दों में अनुवाद, सरल भाषा, गीतों की अधिकता, हास्यजनक घटनायें इत्यादि।

कल्याणपुरञ्जन- (ना.कृ.) तिरुमलाचार्य (दे.) लिखित नाटक। इसका संकलन मैसूर की ओरियण्टल लायब्रेरी की पाण्डुलिपि शाखा की पुस्तक सूची में सं. २७५ पर किया गया है।

कल्याणसौगन्धिक- (ना.कृ.) यह नीलकण्ठ लिखित नाटक ओरियण्टल लायब्रेरी की त्रैवार्षिक खोज रिपोर्ट की सं. III ४४५० पर संकलित किया गया है। नीलकण्ठ प्रसिद्ध नीलकण्ठ दीक्षित से भिन्न थे।

कल्याणीपरिणय- (ना.कृ.) (१) श्रीनिवास (दे.) लिखित नाटक। इसका संकलन कैटेलागस कैटेलागोरम सं. १८६ पर किया गया है।

कविकर्णपूर- (ना.का.) चैतन्यचन्द्रोदय (दे.) नामक महानाटक के लेखक। इनका वास्तविक नाम परमानन्द था। चैतन्य महाप्रभु ने इन्हें कवि कर्णपूर की उपाधि दीथी। कविता के क्षेत्र में अब ये इसी नाम से जाने जाते हैं। ये बंगाल में नदिया के निकट कञ्चनपल्ली के रहने वाले थे। इनके पिता का नाम शिवानन्द सेन था। सम्भवतः ये जीव गोस्वामी के शिष्य थे। ये चैतन्य महाप्रभु के अनुयायी थे। उक्त नाटक के अतिरिक्त इनकी अन्य रचनायें हैं- गौराङ्गगणोद्देशदीपिका, एक चम्पूकाव्य और एक अलंकारशास्त्र-विषयक कृति।

कविकालिदास- (ना.कृ.) वीरेन्द्र कुमार भट्टाचार्य लिखित नाटक।

कविकुल कमल- (ना.कृ.) डा. रमाचौधरी (दे.) लिखित ८ दृश्यों का नाटक। इसमें कालिदास के परवर्ती चरित्र का चित्रण किया गया है।

कविकुल कोकिल- (ना.कृ.) डा. रमा चौधरी लिखित १० दृश्यों का कालिदास जीवन गाथा को लेकर लिखा गया नाटक १९६७ में उज्जैन में कालिदास समारोह में अभिनय के लिये इसकी रचना हुई थी। एकोक्तियां, रोचक संवाद और संगीत इसकी विशेषतायें हैं।

कविचन्द्र दिवाकर- (ना.का.) ये उड़ीसा निवासी अनादिमिश्र (दे.) के पूर्वज थे। इनकी अनेक रचनायें प्रसिद्ध हैं जिनमें प्रभावती (दे.) नाटिका नामक एक नाट्यकृति भी है।

कविचन्द्र द्विज– (ना.का.) ये १८वीं शताब्दी के लेकक हैं इनका लिखा काम कुमार हरण (दे.) नाटक प्रकाश में आया है।

कवितार्किक– (ना.का.) ये वाणीनाथ के पुत्र एवं राजा माणिक्य देव के कुल पुरोहित थे। राजा माणिक्य देव उन १२ स्वतन्त्र अधिपतियों में एक थे जो १६वीं शताब्दी में मुगल आक्रमण के समय बंगाल में शासन कर रहे थे। कवितार्किक ने कौतुक रत्नाकर नामक एक अत्यन्त मनोरंजक प्रहसन लिखा जिसमें एक अत्यन्त दुर्वल राजा की हंसी उड़ाई गई है।

कवितार्किकसिंह– (ना.का.) रुक्मणीपरिणय (२) के लेखक।

कविन्द्र (कवीन्द्र) आचार्य– (ना.का.) पता नहीं चलता यह उपाधि मात्र है या वास्तविक नाम। इनका जन्म गोदावरी के तट पर किसी स्थान पर हुआ था। यौवन काल में ही ये सांसारिकता से विरक्त होकर सन्यास लेकर बनारस में रहने लगे थे। कहा जाता है शाहजहां से मिलकर इन्होंने इलाहाबाद और बनारस का तीर्थकर माफ करवाया था जिससे हिन्दू सम्प्रदाय में इन्हें असीमित ख्याति प्राप्त हुई थी और इनके विषय में अनेक प्रशस्तियां लिखी गई। श्रीकृष्ण उपाध्याय ने इन गद्य पद्यात्मक प्रशस्तियों का संकलन बनारस से कवीन्द्र चन्द्रोदय नाम से प्रकाशित कराया था जिनके साथ प्रतिष्ठित विद्वानों और महात्माओं का लेखक के रूप में नामोल्लेख किया गया है।

इन्होंने अपने मित्र विश्वनाथ न्याय पंचानन के कोषाध्यक्ष कृष्णभट्ट की सम्पत्ति से संस्कृत साहित्य की प्रत्येक शाखा का एक पुस्तकालय स्थापित किया था जिसकी पुस्तक सूची का प्रकाशन बड़ौदा संस्कृत प्रतिष्ठान से हुआ था। इन्हें अपनी सन्यास वृत्ति और आध्यात्मिकता के लिये जहांगीर, शाहजहां और दाराशिकोह से पर्याप्त सम्मान मिला था। इनके संग्रह में कतिपय नाटक भी पाये जाते हैं जिनमें सरस्वतीकण्ठाभरण और हास्यनाटक का उल्लेख किया जा सकता है। कुछ विद्वानों की राय है कि ये उनके स्वरचित नाटक थे।

कविपण्डित– (ना.का.) इनका लिखा हृदयविनोद (दे.) प्रहसन प्राप्त होता है।

कविवल्लभ– (ना.का.) इनकी लिखी अभिरामचित्रलेखम् (दे.) नामक एक नाट्यकृति पाई जाती है। कहा जाता है इन्होंने आदित्यभत्तिय नामक एक धर्म शास्त्रीय कृति की भी रचना की थी।

कविसार्वभौम– (ना.का.) दे. (३) रामवर्मा।

कवीश्वर– (ना.का.) इनका लिखा माधवानल (दे.) नाटक प्रकाश में आया है। यह एक उपाधि ज्ञात होती है। सम्भवतः कवीन्द्र नाम से प्रसिद्ध उपाधिधारी व्यक्ति ही कवीश्वर है जिनके विषय में कहा जाता है कि ये गोदावरी तट पर स्थित एक साधारण से कस्बे में रहते थे। इन्होंने ऋग्वेद की आश्वालायन शाखा का अध्ययन किया था।

और दूसरी शाखाओं में भी निपुणता प्राप्त की थी।

(देखिये 'कविन्द्र (कवीन्द्र) आचार्य')

कस्तूरी रंगनाथ– (ना.का.) ये बधूल गोत्रीय वीरराघव के पुत्र और सुन्दर वीरराघव (दे.) के पिता थे। इन्होंने रघुवीर विजय नामक तीन अंकों का एक समवकार लिखा था जिसमें राम और सीता के विवाह का चित्रण किया गया है।

काञ्चनकञ्चुकीयम्– (ना.कृ.) विष्णुपद भट्टाचार्य (दे.) लिखित नाटक; रचनाकाल २० वीं शताब्दी।

काञ्चनपण्डित– (ना.का.) धनञ्जय विजय (दे.) व्यायोग के लेखक। इनको कन्नौज के जयदेव का संरक्षण प्राप्त था जिसका उल्लेख प्रस्तावना में किया गया है। जयदेव का समय १२वीं शताब्दी है। धनञ्जय विजय का प्रथम अभिनय विद्वत्समाज के सामने किया गया था जिसकी अध्यक्षता गदाधर मिश्र ने की।

(१) **काञ्चनमाला**– (ना.कृ.) (१) नारायण शास्त्री (दे.) लिखित ७ अंकों का नाटक।

(२) **काञ्चनमाला**– (ना.कृ.) सुरेन्द्रमोहन लिखित लघु नाटक। यह बाल साहित्य की दृष्टि से लिखा गया लघु नाटक है। इसका आधार है यूरोपीय पौराणिक मिडास राजा की कथा। नायिका किसी परी से ऐसी शक्ति प्राप्त कर लेती है कि वह जिस चीज को छू दे वह सोने की हो जाये। अब उसका ख़ाना भी सोने का होने लगा। वह भूख से छटपटाने लगी। तब उसी परी से प्रार्थना कर उसने उस शक्ति से छुटकारा पाया। इस नाटक का प्रकाशन मंजूषा में हुआ था।

कात्यायनी– (ना.पा.) भास के वालचरित की एक पात्र यशोदा के यहां जो लड़की हुई थी और कृष्ण से जिसे बदल लिया गया था कंस ने उसे ८वीं सन्तान समझकर मार डाला। शव का एक अंश पृथ्वी पर गिरा शेष भाग स्वर्ग को चला गया। वह अवशिष्ट भाग भयानक रूप धारण कर कंस के सामने प्रकट हुआ जिसके पीछे उसका भयानक परिवार प्रकट हुआ जिनमें प्रत्येक ने कंस विनाश का संकल्प प्रकट किया।

कादम्बरीकल्याण– (ना.कृ.) (१) नरसिंह (दे.) ने वाणभट्ट की प्रतिष्ठित गद्य-रचना का ८ अंकों में नाटकीकरण किया है। प्रकृति-सौन्दर्य और करुणा की भावना के चित्रण में इसमें काव्यतत्व अत्यधिक मात्रा में प्रस्फुटित हुआ है। कल्पनाशीलता इसमें पर्याप्त मात्रा में है। कादम्बरी को चन्द्रापीड के सामने लाने के लिये इसमें अन्तर्नाटिका का प्रयोग किया गया है।

(ट्रायेनियल क्रैटेलाग आफ संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट्स इन ओरियण्टल लायब्रेरी मद्रास सं. III ३४८९)

वेम भूपाल ने साहित्य चिन्तामणि में इसका एक पद्य उद्धृत किया है। इसका पहला पद्य वामनभट्टवाण की कनकलेखा के प्रथम पद्य से मिलता है।

कादम्बरीनाटकम्– (ना.कृ.) विनोद विहारी (दे.) लिखित नाटक।

कादम्बरी राम– (ना.का.) राजशेखर ने इनकी प्रशंसा की है जिसका उल्लेख जल्हण ने किया है। इनके विषय में कुछ भी पता नहीं। किसी एक कादम्बरीरामकृष्ण का भी उल्लेख पाया जाता है जिनका लिखा अदिति कुण्डलाहरण नामक नाटक बतलाया जाता है। जिसका समय १९वीं शताब्दी का है। अतः राजशेखर ने जिन कादम्बरीराम की चर्चा की है वे निश्चय ही कोई अन्य कादम्बरी राम रहे होंगे।

कान्तिमयी– (ना.कृ.) (१) नारायण शास्त्री लिखित ५ अंकों का नाटक।

कान्तिमयी परिणय– (ना.कृ.) चोक्कनाथ लिखित नाटक। इसमें शाहजी और कान्तिमयी के विवाह का अंकन किया गया है। इसका नाम कान्तिमयी सह राजीयम् भी है। कान्तिमयी और शाहजी की प्रणयलीला चलती है; फिर संस्कृत नाटकों का परिचित कथानक चलता है। शाहजी की पत्नी प्रणय लीला में विघ्न डालती है। किन्तु अनेक कठिनाइयों के बाद राजी हो जाती हैं और तब विवाह होता है।

यह शृङ्गारप्रधान रचना है जिसमें गीतियों का प्रयोग किया गया है। भाषा शास्त्रानुसार संस्कृत और प्राकृत है। किन्तु कहीं कहीं स्त्री पात्रों द्वारा भी संस्कृत का प्रयोग किया गया है। चतुर्थ अंक में केवल संस्कृत का प्रयोग किया गया है। बीच बीच में हास्य का पुट इसकी अन्यतम विशेषता है। कुछ लोग इसे अप्पानाथ की रचना मानते हैं।

यह तंजौर की पैलेस लायब्रेरी में पाण्डुलिपि अनुभाग के सूचीपत्र में खण्ड VIII सं. ३३६७ पर उल्लिखित है।

कान्तिमती शाहराजीयम्– (ना.कृ.) दे. कान्तिमती परिणय।

(१) **कापालिक**– (ना.पा.) दे. अघोरघण्ट।

(२) **कापालिक**– (ना.पा.) यह मत्तविलास (दे.) में शैव मतानुयायी है जो पत्नी के साथ निरन्तर शराब में डूबा रहता है और शराब के गुण गाता है। कपाल की खोज में भी अच्छा मनोरंजन होता है। इसे कपाली भी कहा जाता है।

(३) **कापालिक**– (ना.पा.) प्रबोधचन्द्रोदय में सोम सिद्धान्त। वह जैन मत और क्षपणक को सुरारस में मत्त कर तथा माता श्रद्धा की खोज में सहायता देने का वादा कर शान्ति को लेकर चला जाता है।

काम– (ना.पा.) प्रबोधचन्द्रोदय (दे.) का एक पात्र। परमतत्व ब्रह्म से मनस् नामक जो पुत्र उत्पन्न हुआ है उसकी प्रवृत्ति नामक पत्नी से महामोह का जन्म हुआ। इस वंश का निवृत्ति नामक दूसरी पत्नी से सन्तति से संघर्ष हुआ और अन्त में काम इत्यादि के विरोधी वर्ग की विजय हो गई।

कामकन्दलम्– (ना.कृ.) यह कृष्णपन्त की लिखी तीन अंकों की नाट्यकृति है। नायक श्रीपति नामक विलासी ब्राह्मण है और ४ नर्तकियां नायिकायें हैं। नायक कामकन्दला

पर अनुरक्त है जो कि राजा कामसेन की नर्तकी है। राजा नायक को निर्वासित कर देता है। तब नायक विक्रमादित्य की सहायता लेकर कामसेन पर आक्रमण करता है और उसे पराजित कर देता है। तब कामसेन श्रीपति को कामकन्दला प्रदान कर देता है। इस नाटक में रंग निर्देश बहुत कम है। इसका प्रकाशन चौखम्भा संस्कृत ग्रन्थमाला बनारस से हो चुका है।

कामकला विलास– (ना.कृ.) प्रधानि वेंकटभूपतिलिखित भाण। मैसूर की ओरियण्टल लायब्रेरी पाण्डुलिपि उपखण्ड में जो पुस्तकें संकलित हैं उनमें इसका भी नाम है। (पाण्डुलिपि संकलन सं. २२५-२८७ और ६८७ एवं परिशिष्ट)

कामकुमार हरणम्– (ना.कृ.) १८वीं शताब्दी (पूर्वार्ध) के कवि चन्द्रद्विज की लिखी उषा अनिरुद्ध की पौराणिक कथा पर आधारित। यह 'आंकिया नाट' नामक असमी परम्परा का नाटक है। इसका अभिनय असम के महाराजशिव सिंह के आदेश पर किया गया था। इसका प्रकाशन असम की साहित्य सभा जोरहाट की ओर से १९६२ में कराया गया था। इसमें संस्कृतनिष्ठ असमी भाषा का भी यत्र तत्र प्रयोग किया गया है। रंगमञ्च पर विवस्त्र पात्र का प्रवेश इसकी विशेषता है।

कामदत्ता– (ना.कृ.) यह एक भाणिका है जिसका उदाहरण के रुप में साहित्य दर्पण और रसार्णव सुधाकर के उल्लेख किया गया है। यह ग्रन्थ अब तक प्राप्त नहीं हो सका है। कुछ लोगों ने इसे प्रकरणों में समाविष्ट किया है।

कामदेव– (ना.पा.) ऋग्वेद ४.१८ में इन्दुअदिति और कामदेव के मनोरंजक संवाद का एक प्रमुखपात्र।

कामन्दकी– (ना.पा.) मालती माधव (दे.) की एक प्रमुख पात्र। वह माधव के पिता देवरात की पूर्व परिचिता है और उसी को मालती और माधव के विवाह का उत्तरदायित्व सौंपा गया है। वह सात्त्विक गुणों से सम्पन्न बौद्ध भिक्षुणी है। वह विवाह के लौकिक कार्य में कर्तव्य बुद्धि से पड़ना चाहती है क्योंकि मालती का विवाह एक अयोग्य व्यक्ति से होने जा रहा है जिसे बचाना उसका कर्तव्य है। उसे लोक वृत्त और आदर्श जीवन का पूरा ज्ञान है। मालती और माधव के प्रणय की सफलता में परिणति बहुत कुछ उसके प्रयत्न का फल है। वह पति पत्नी के गृहस्थ जीवन का आदर्श भी समझती है और मालती के गुम हो जाने पर अत्यन्त शोकाकुल हो जाती है जो उसकी सहृदयता का एक प्रमाण है।

काममञ्जरी– (ना.कृ.) (१) नारायण शास्त्री लिखित ६ अंकों का नाटक।

कामविलास– (ना.कृ.) वेङ्कप्पा (दे.) लिखित भाण। नायक पल्लवशेखर को अनेक सुन्दरियों से प्रेम है। स्त्रियों का चरित्रनाश किस प्रकार होना है यह इसमें दिखलाया गया है।

कामशुद्धि– (ना.कृ.) डा. वेङ्कटराम राघवन का लिखा एकाङ्की नाटक। रति (काम की पत्नी) को काम और मधु (वसन्त) की चेष्टायें पसन्द नहीं है। उनके कार्य सदोष है। अतः वह उनकी शुद्धि के लिये तपस्या करती है। शिव प्रकट होते हैं और उसे आश्वासन देते हैं कि काम को भस्म करके वह नये काम का निर्माण करेगा जो रति की इच्छा के अनुकूल होगा तथा जिसे पुरुषार्थों में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त होगा।

इसका प्रसारण आकाशवाणी से भी हो चुका है। कालिदास समारोह में इसका अभिनय किया गया था। भारतीय परम्परा और यूरोपीय पद्धति का सम्मिश्रण इसकी अन्यतम विशेषता है।

कामाक्षी परिणय– (ना.कृ.) अज्ञातकर्तृक विवाह विषयक नाटक। इसका संकलन कैटेलागस कैटेलागोरम में सं. १.९४ पर किया गया है।

कामिनी कामुकोल्लास– (ना.कृ.) एक भाण जिसका मद्रास की ओरियण्टल लायब्रेरी की संस्कृत पाण्डुलिपियों के ट्रायेनियल कैटेलाग में स. II २६११९ पर उल्लेख किया गया है। उसके लेखक या रचना काल का कोई पता नहीं है।

कारायण– (ना.पा.) विद्धशालभञ्जिका (दे.) में विदूषक। वह राजा का सच्चा सेवक है और हास्य सृष्टि के अतिरिक्त प्रणय प्रसंगों में राजा का दिग्दर्शन भी करता है। उसकी सहज बुद्धि ठोस है। यद्यपि पहले रानी के हाथों अपमानित होता है; किन्तु बाद में वह भरपूर बदल चुका होता है।

कालविलासम्– (ना.कृ.) रामजप तर्करत्न (दे.) का लिखा नाटक।

कालिकान्तकौतुक– (ना.कृ.) रामकृष्ण का लिखा एक प्रहसन। आर.जी. भण्डारकर की बम्बई प्रेसीडेंसी में संस्कृत ग्रन्थों की खोज रिपोर्ट सं. १८९७ में इसका उल्लेख किया गया है।

कालिकेलि यात्रा– (ना.कृ.) यह श्रीकृष्ण नञ्जुण्ड रचित भाण है। कोटिलिंग (क्रैगनूर) में भद्रकाली के मदनमहोत्सव में इसका प्रथम अभिनय किया गया था। इसका संकलन ओरियण्टल लायब्रेरी मद्रास के पाण्डुलिपि अनुभाग में विवरणात्मक सूची में सं. XXI ८३९८ पर किया गया है।

कालिदास– (ना.का.) संस्कृत साहित्य के मूर्धन्य कलाकार– कवि एवं नाटककार। इन्हें विश्व के महान कवियों और कलाकारों में अत्यन्त महनीय स्थान प्राप्त हुआ है। कुछ लोगों के विचार में ये भारतीय साहित्य के ही नहीं विश्व साहित्य के मूर्धन्य कवि हैं। एक कवि ने बड़ी ही मनोरम कल्पना की है– गणना करने में संकेतक सर्वप्रथम छोटी उंगली पर पड़ता है और दूसरे नम्बर पर उसके पास की उंगली पर। दूसरी उंगली का नाम अनामिका है। कवि की कल्पना है कि प्राचीन काल में जब कवियों की गणना हुई तब पहला संकेतक कालिदास के नाम पर पड़ा, फिर जब खोज हुई कि दूसरे स्थान

पर किस कवि को रक्खा जाय तो कोई ऐसा कवि नहीं मिला जो दूसरे स्थान पर कालिदास के पास बैठने का साहस कर सकता। अतः उस उंगली का नाम ही अनामिका पड़ गया। जर्मनी के प्रसिद्ध कलाकार कविवर गेटे ने कालिदास को भूमि पर स्वर्ग उतारने वाला मूर्धन्य कवि माना है। वस्तुतः अभिज्ञान शाकुन्तलम में नागरिक जीवन के सफल अभिव्यञ्जन के मध्य कवि ने कश्यप आश्रम के प्रसंग में स्वर्ग की झांकी दिखलाई है। वस्तुतः कला द्वारा स्वर्ग को ही पृथ्वी पर उतार दिया गया है।

यह एक विडम्बना ही है कि इतने बड़े कलाकार के देशकाल के विषय में साहित्य जगत् को निश्चयात्मक रूप से कुछ भी ज्ञात नहीं है। वैसे तो कवियों द्वारा स्वयं अपने विषय में या दूसरे कलाकार के परिचय के सम्बन्ध में कुछ लिखने की प्रवृत्ति प्राचीन भारत में कभी नहीं रही किन्तु कृतियों में कुछ ऐसे संकेत अवश्य मिल जाते हैं। पर कालिदास के विषय में इस प्रकार के संकेत भी नगण्य हैं। इनके विषय में केवल एक दो संकेत मिलते हैं– अभिज्ञान शाकुन्तल का प्रथम अभिनय विक्रमादित्य की विद्वानों से भरी हुई सभा में हुआ था। दूसरा संकेत उनके मालविकाग्निमित्र में मिलता है जिससे ज्ञात होता है भास, सौमिल्लक कवि उनसे पहले हो चुके थे तथा उन कवियों को प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त हो चुका था। इनसे भी इनके विषय में निश्चयात्मक रूप से कुछ पता नहीं चलता। बात यह है कि भारतीय इतिहास में अनेक विक्रमादित्य हुये हैं। किस विक्रमादित्य के राज्यकाल में कालिदास हुये थे इसका पता लगाना बहुत कठिन है। साथ ही यह पता लगाना भी सरल नहीं कि भास और सौमिल्लक इनसे कितना पहले हुये थे। इनके विषय में निश्चित रूप से केवल इतना ज्ञात है कि इनके विश्व प्रसिद्ध नाटक अभिज्ञान शाकुन्तलम का प्रथम अभिनय उन विक्रमादित्य की 'अभिरूपभूयिष्ठा' परिषद् में हुआ था जो स्वयं भी रस भाव की विशेषताओं में मर्मज्ञ विद्वान थे। विक्रमोर्वशीय के पुरूरवा को विक्रम कहना भी उनके सम्बन्ध का बोधक है।

कालिदास के जीवन के विषय में यद्यपि कुछ भी निश्चयात्मक रूप में ज्ञात नहीं है फिर भी इनकी स्थिति की पूर्वापर सीमायें निश्चित की जा सकती हैं। इन्होंने मालविकाग्निमित्र का नायक अग्निमित्र को बनाया है। ये अग्निमित्र शुंगवंशीय पुष्पमित्र के पुत्र थे जिन्होंने मौर्यवंश का उच्छेद कर मध्य देश में शुंगवंश का शासन स्थापित किया था। स्वयं अग्निमित्र ने पूर्वी मालवा के विदिशा नगर को अपनी राजधानी बनाया था। कालिदास ने विदिशा नगरी का भी राजधानी के रूप में उल्लेख किया है। 'तेषां दिक्षु प्रथितविदिशालक्षणां राजधानीम्' पुष्पमित्र का समय ई.पू. १५० वर्ष के आस पास है। अतः अग्निमित्र का समय ई. की प्रथम शताब्दी ठहरता है जो विक्रम संवत् के प्रारम्भ से भी मेल खा जाता है। यह कालिदास की ऊपरी सीमा है। इससे सिद्ध होता है कि कालिदास इससे पहले नहीं हो सकते।

ई. की ७वीं शताब्दी के प्रारम्भ में बाणभट्ट ने कालिदास का उल्लेख किया है

और पुलकेशी द्वितीय के ऐहोल शिलालेख (६३४ ई.) में भी उनका उल्लेख किया गया है। अतः सिद्ध हो जाता है कि इनका समय इसके बाद का नहीं हो सकता। इस प्रकार ई.पू. प्रथम शताब्दी से ई. की ७वीं शताब्दी के मध्य लगभग ६-७ सौ वर्ष के अन्तराल में इनका होना निश्चित है।

अग्निमित्र एक प्रतिष्ठित राजा अवश्य थे किन्तु इतने प्रसिद्ध नहीं थे कि ६-७ सौ वर्ष वाद का कवि उनको नायक बना कर नाटक को रचना करता। विदिशा राजधानी का उल्लेख किया ही गया है। शुंगवंशियों के राजघराने के मन्त्री कण्व वंशीय थे। शकुन्तला का पालन पोषण भी कण्व ऋषि के आश्रम में हुआ था। ये सब प्रमाण कालिदास को ई. की प्रथम शताब्दी का ही सिद्ध करते हैं। इस काल में शकों की सत्ता और शकारि की उपाधि भी प्रमाणित की जा सकती है।

किन्तु उक्त मान्यता के प्रतिकूल एक सवल तर्क यह है कि आम धारणा कालिदास को चन्द्रगुप्त विक्मादित्य के राज्य काल में मानने की है। अनेक विचारक रघु की दिग्विजय यात्रा में समुद्रगुप्त की दिग्विजय यात्रा के दर्शन करते हैं। समझा जाता है कि कुमार-सम्भव की रचना भी कुमार गुप्त के जन्म के उपलक्ष्य में की गई थी। १६वीं शताब्दी के एक पद्य में विक्रमादित्य के दरवारी रत्नों में कालिदास का भी नाम लिया गया है। किन्तु वह पद्य प्रामाणिक नहीं है। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने शकों को पराजित कर शकारि की उपाधि धारण की थी। यह भी एक प्रमाण है जो कालिदास को चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य कालीन सिद्ध करता है।

गुप्त वंश के एक दूसरे सम्राट स्कन्दगुप्त ने भी विक्रमादित्य की उपाधि धारण की थी। हिन्दी के प्रसिद्ध नाटककार जयशंकरप्रसाद ने कालिदास के एक पद्य में स्कन्दगुप्त और उनकी प्रेयसी देवसेना के श्लिष्ट मूलक संकेत के दर्शन किये हैं– 'स्कन्देन साक्षादिव देवसेनाम्।'

एक विचार यह भी है कि ये यशोधर्मा के समय में हुये ये। यह कल्पना डा. फर्गुशन की है जिसे डा. हर्नली ने अपनाया है। महामहोपाध्याय हरिप्रसाद शास्त्री और मैक्समूलर ने भी इसी मत को मान्यता दी है। किन्तु इसके प्रतिकूल बहुत कुछ कहा जा सकता है। उनके समय की किसी भी रचना में उनको विक्रमादित्य की उपाधि धारण करने वाला नहीं बतलाय्रा गया है। उस सम्राट् ने हूणों को हराया था शकों को नहीं। यशोधर्मा का सम्बन्ध दशपुर से था उज्जैन से नहीं। यद्यपि कालिदास ने दशपुर का भी उल्लेख किया है किन्तु उनका रागात्मक सम्बन्ध उज्जैन से ही था।

जिस प्रकार कालिदास का समय अनिश्चित है उसी प्रकार उनके स्थान के विषय में भी निश्चयात्मक रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। बंगाल का नवद्वीप; काश्मीर, जम्मू, उज्जैन, पंजाब इत्यादि अनेक स्थान इनके मूल स्थान के विषय में कल्पित किये जाते हैं। वैसे तो कालिदास ने समस्त भारत को अपनी काव्य-कला के वर्ण्य के रूप में चुना है,

किन्तु उनका विशेष सम्बन्ध उज्जैन और उत्तरी पहाड़ों से प्रतीत होता है। मूल स्थान का प्रश्न यों भी अनिश्चित रहता है। मनुष्य जन्म कहीं लेता है किन्तु उसकी लीला भूमि कहीं और होती है और जीवन यात्रा कहीं अन्यत्र सम्पन्न होती है।

रचनायें– कालिदास की कृतियों में अनेक छोटी मोटी रचनायें बतलाई जाती हैं। किन्तु ८ रचनायें प्रामाणिक कोटि में आती हैं– दो महाकाव्य– रघुवंश और कुमार सम्भव, एक खण्ड काव्य मेघदूत, दो स्फुट काव्य– ऋतुसंहार और शृङ्गारतिलक तथा तीन नाटक– मालविकाग्निमित्र, (दे.) विक्रमोर्वशीय (दे.) और अभिज्ञानशाकुन्तलम् (दे.)।

कालिदास की कला– की सबसे बड़ी विशेषता है उनकी समाहार शक्ति। कूंची के दो एक उपयोगों से ही उनका चित्र ऐसा चमक उठता है कि लोग वाह वाह करने को विवश हो जाते हैं। लम्बे कथानक को समेट कर एक साधारण पद्य में समाहित कर देना, चरित्र की अनेक विशेषताओं और घटनाओं को एक ही पद्य में व्यक्त कर देना उनकी अनन्यसामान्य विशेषता है। कविता में न तो कुछ अधिक कहने की आकांक्षा रहती है न अधिक विस्तार के कारण जी ऊवता है। इनमें परिमाण (बैलेंस) के औचित्य का परिपालन आश्चर्यजनक है। इनकी लेखनी ने प्रायः सभी रसों का स्पर्श किया है किन्तु इनका प्रधान रस शृङ्गार है जिसके सम्भोग और विप्रलम्भ इन दोनों छोरों को अभिव्यक्ति देने में ये अपना सानी नहीं रखते।

इन्हें वैदर्भी रीति का सर्वोत्कृष्ट कवि माना जाता है। यही रीति समग्रगुणा कहलाती है। चाहे १० गुणों की दृष्टि से विचार करें चाहे तीन की, इनकी कविता गुणों से ओत प्रोत है। विचारकों की परम्परा इन्हें उपमा प्रयोग में सिद्धहस्त मानती है। उपमा मूलक प्रायः समस्त अप्रस्तुतविधानमूलक अलंकारों के प्रयोग में इन्होंने सिद्धहस्तता का परिचय दिया है। प्रसाद गुण की प्रमुखता ने इनकी कविता को कलामर्मज्ञों की श्रेणी से ऊपर उठाकर सर्वसाधारण के लिये आस्वादनीय बना दिया है। कोमल कान्त पदावली में मधुर्यगुण पर्याप्त मात्रा में कमनीयता को अपने अन्दर समाये हुये है। इनकी काव्यमाधुरी की तुलना दुर्लभ है। अभिव्यक्ति की निपुणता, वर्ण्य विषय की रमणीयता, रसप्रकाशन का वैशद्य, सरल-सुवोध गूढार्थव्यञ्जक शब्दों का प्रयोग इन सभी दृष्टियों से कालिदास की कला अद्वितीय है। जीवन के प्रत्येक पहलू का स्वर्श करने की इनमें अपूर्व क्षमता है। प्राकृतिक सौन्दर्य में स्वयं को विलीन कर देने की इनकी शक्ति के विषय में हिन्दी के प्रतिष्ठित आलोचक आचार्य शुक्ल का यह कथन कितना सार गर्भित है कि आज देशभक्ति के नाम पर लोग व्याख्यान देते हैं, चन्दा उगाहते हैं, जेलें काटते हैं, पर कालिदास की देश भक्ति के सामने मैं उन्हें कुछ नहीं मानता जो देश की पत्ती पत्ती पर नाच उठता था। समस्त भारत को कविता का लक्ष्य बनाकर राष्ट्रीय एकता का जो सन्देश कवि ने दिया है वह आज की राष्ट्रीय विचारधारा में कितना सटीक है! इनके काव्यों में भारतीय संस्कृति का यथार्थ रूप प्रतिफलित हुआ है जिससे इनकी कविता में चार चांद लग गये हैं।

पाश्चात्य आलोचकों का यह कहना कि 'अन्त में सरस्वती ने अपने वरद पुत्र को प्राप्त कर ही लिया' सर्वथा सत्य है इसमें सन्देह नहीं।

(१) **कालिदासचतिरम्–** (ना.कृ.) मुम्बई निवासी श्रीराम भिकाजी वेलण्कर लिखित ५ अंकों का नाटक। इसका कथानक सर्वथा नवीन है। उज्जैन में विक्रमादित्य के दरवार में कालिदास परराष्ट विभाग में उपसचिव हैं जो अपनी प्रतिभा के वल पर पण्डित सभा में स्थान पा जाते हैं। वसुधा महाराणी और पण्डित सभाध्यक्ष उनके विरोधी हैं। खवर मिलती है कि विदर्भ का राजा कोशल नरेश के साथ मिलकर उज्जैन पर आक्रमण करना चाहता है। वसुधा के कहने से राजा कालिदास को विदर्भ भेज देते हैं जहां उन्हें गिरफ्तार कर लिया जाता है। विदर्भ का राजा परिचारिका सरस्वती को कालिदास के मन की बात जानने के लिये नियुक्त करता है। सरस्वती विदिशा की निवासी है अतः उसे कालिदास से आत्मीयता है और योजनानुसार कालिदास के भाई रघुनाथ को उनके स्थान पर बन्दीगृह में रखकर कालिदास को छुड़ाती है तथा कालिदास सैनिक वेष में जब उज्जयनी पहुंचते हैं उस समय वसुधा और पण्डित सभा के अध्यक्ष की प्रेरणा से गोपाल उनकी माला और ग्रन्थ चुराने पहुंचता है। कालिदास उसे पकड़ लेते हैं और क्षमा दान दे देते हैं। उधर विदर्भ में रघुनाथ और सरस्वती में प्रेम हो जाता है। उज्जैन में वसुधा और पण्डित समाध्यक्ष मिलकर कालिदास पर राजद्रोह का मुकदमा चलाते हैं, किन्तु रघुनाथ और सरस्वती के रहस्य प्रकट कर देने से कालिदास छुटकारा पा जाते हैं।

कालिदास को कवि कुलगुरु की उपाधि दी जाती है पर वे नवरत्नपरिषद से त्यागपत्र देकर साहित्य रचना में संल्लग्न हो जाते हैं।

इस नाटक की रचना १९६१ में संस्कृत नाट्य महोत्सव में अभिनय के लिये की गई थी और उसी वर्ष इसका अभिनय किया गया। इसके अंकों का पाश्चात्य शैली में दृश्यों में विभाजन किया गया है। एकालापों का भी इसमें समावेश है और संस्कृत छन्दों के साथ मराठी के स्थानीय छन्दों का भी उपयोग किया गया है।

(२) **कालिदास चरितम्–** (ना.कृ.) इस नाटक की रचना वीरेन्द्र कुमार भट्टाचार्य (दे.) ने सन् १९६७ में अखिल भारतीय प्राच्य विद्या सम्मेलन के रजत जयन्ती समारोह के अवसर पर अभिनय के लिये की थी। इसमें ७ अंक हैं। कालिदास एक प्रतिभासाली नायक हैं; यद्यपि दरिद्र है। उन्हें विक्रमादित्य की राजसभा में नवरत्न परिषद की सदस्यता प्राप्त हो जाती है। वहां वे मञ्जुभाषिणी के प्रेम पाश में फंस जाते हैं। जब यह रहस्य विक्रमादित्य को ज्ञात होता है तब वे मञ्जुभाषिणी को बन्दी बना लेते हैं और कालिदास को एक वर्ष का निर्वासन देते हैं। इसी निर्वासन की अवधि में कालिदास मेघदूत की रचना करते हैं। जब निर्वासन की अवधि समाप्त हो जाती है विक्रमादित्य मञ्जुभाषिणी से उसका विवाह करा देते हैं। विक्रमादित्य की दिग्विजय यात्रा का वर्णन कालिदास रघु के नाम पर करते हैं। अन्त में विक्रम कहते हैं कि कालिदास के कारण विक्रम अमर बना

है।

महत्वपूर्ण पात्रों का परिचय प्रवेश के पूर्व गीतों के माध्यम से दिया गया है। गीतों का प्रचुर प्रयोग, एकालाप की अधिकता, मेघदूत के पद्यों का समावेश, प्राकृत का अभाव इस नाटक की अन्यतम विशेषतायें हैं।

कालिदास नाटकम्– (ना.कृ.) नित्यानन्द भट्टाचार्य (दे.) लिखित नाटक।

कालिदास महोत्सवम्– (ना.कृ.) इस हास्य प्रधान नाटक की रचना ग्वालियर निवासी डा. हरि रामचन्द्र दिवेकर ने की थी। स्त्री पात्र का अभाव इसकी विशेषता है। कुछ दिनों स्वर्ग में विताकर कालिदास नारद के साथ मर्त्यलोक में आते हैं। एक पैंफ्लेट उनके हाथ लग जाता है जिसमें लिखा है कि कालिदास महोत्सव होने जा रहा है जिसका उद्देश्य है कालिदास का विशाल स्मारक बनवाना। यह उत्सव कालिदास के जन्मदिन के अवसर पर होने वाला है। जब कालिदास विश्वविद्यालय के निकट जाते हैं तब उन्हें प्रवेश नहीं मिलता क्योंकि उन्होंने मैट्रिक पास नहीं किया है। कालिदास को विवश होकर द्वारपाल के पद से आयोजन देखना पड़ता है। वहां के प्राध्यापक कालिदास की रचनाओं से विल्कुल परिचित नहीं हैं। संयोजक एवं उद्धारक को संस्कृत नहीं आती। वह उर्दू वोलता है। कालिदास इसका विरोध करते हैं। उनसे छात्र वर्ग प्रभावित होता है और उन्हें वोलने का अवसर देता है। अन्त में भरत वाक्य के इस कथन के साथ नाटक समाप्त होता है 'युवा और वृद्ध पीढ़ी में सामञ्जस्य बना रहे।'

इसका अभिनय कालिदास महोत्सव के अवसर पर उज्जैन में आयोजित किया गया था। इसका प्रकाशन साहित्य अकादमी की ओर से १९६५ में किया गया था।

कालिन्दी– (ना.कृ.) तीन अंक के इस नाटक की रचना श्रीराम भिकाजी वेलण्कर ने की थी। इसका विषय है हिंसा अहिंसा का विवेक। अयोध्या के राजा चण्डप्रताप की दो पुत्रियां हैं बड़ी पुत्री अहिंसावादी सुधांशु को व्याही है। छोटी पुत्री का विवाह दुर्गेश्वर से तय किया जाता है जिसका हिंसा में विश्वास है। सुधांशु इस विवाह का विरोध करता है। तब दुर्गेश्वर उस पर आक्रमण कर देता है। अहिंसावादी होने के कारण सुधांशु प्रतिरोध नहीं करता। तब उसकी पत्नी युद्ध के लिये उतरती है जो गिरफ्तार कर ली जाती है। पत्नी पर आई हुई आपत्ति को देखकर सुधांशु अहिंसाव्रत छोड़कर युद्ध के लिये आ जाता है। तब दुर्गेश्वर कहता है मेरी विजय हो गई। फिर हिंसा अहिंसा के विवेचन के बाद विवाह सम्पन्न किया जाता है। इसमें प्राकृत का प्रयोग विल्कुल नहीं किया गया है।

कालिय– (ना.पा.) वालचरित में एक दानव नाग जिसे कृष्ण ने नाथ लिया था।

कालीपाद तर्काचार्य– (ना.का.) आधुनिक काल के प्रतिष्ठित विद्वान् एवं प्रशस्त साहित्यकार। ये मधुसूदन सरस्वती और हरिदास सिद्धान्तवागीश जैसे महत्वपूर्ण

साहित्यकारों के वंश में उत्पन्न हुये थे। इनका जन्म फरीदपुर जिले में कान्यकुब्ज मिश्र परिवार में सन् १८८८ में हुआ था। पिता का नाम सर्वभूषण हरिदास शर्मा था। इन्हें जीवन में तर्काचार्य, विद्यावारिधि, महाकवि आदि अनेक उपाधियां प्राप्त हुई थीं। महामहोपाध्याय की उपाधि भी इन्हें मिली थी। जीवन के अन्तिम काल में ये डीलिट् भी हो गये थे। राष्ट्रपति द्वारा इन्हें पाण्डित्य प्रशस्तिपत्र भी दिया गया था। इनको अभिनय का भी शौक था और प्रतिष्ठित पात्रों के अभिनय में इन्हें प्रशंसा प्राप्त हुई थी। इनका व्यवसाय अध्यापन कार्य था और इन्होंने १९५४ में ६५-६६ वर्ष की आयु में अवकाश ग्रहण किया था। सन् १९७२ में इनका देहावसान हो गया।

इनका साहित्य अत्यन्त विशाल एवं बहुक्षेत्र व्यापी है। दर्शन पर इनकी बहुत सी पुस्तकें हैं। रवीन्द्रनाथ की गीताञ्जलि का छायानुवाद भी किया था। बंगला में भी इनकी अनेक पुस्तकें हैं। ललित साहित्य के क्षेत्र में इन्होंने महाकाव्य, खण्डकाव्य गद्य काव्य, समालोचना इत्यादि के क्षेत्र में अनेक पुस्तकें लिखी थीं। इनके लिखे नाटक हैं– नलदययन्तीय, प्रशान्तरत्नाकर, माणवकगौरवम्, युगलाङ्गुलीय तथा स्यमन्तकोद्धार।

कालेय कौतूहल– (ना.कृ.) भारद्वाज लिखित प्रहसन। इसका प्रकाशन पूना से हुआ। कैटेलागस कैटेलागोरम सं. I ३९६ पर भी इसका संकलन किया गया है।

काशीकोशलेश– (ना.कृ.) विश्वेश्वर विद्याभूषण लिखित नाटक।

काशीनाथ शास्त्री– (ना.का.) दे. पेरी काशीनाथ शास्त्री।

काशीपति– (दे.) मुकुन्दानन्द ...

काशीहिन्दूविश्वविद्यालयः– (ना.कृ.) इस नाम की एक एकाङ्किका है जिसकी रचना मधुसूदन (दे.) ने की थी।

काश्मीरसन्धानसमुद्यमम्– (ना.कृ.) इस नाटक के लेखक हैं नीर्पाजे भीमभट्ट। इसमें हिन्दुस्तान में विलय विषयक काश्मीर की गुत्थी को लेकर रचना की गई है। राष्ट्रसंघ की ओर से कश्मीर समस्या सुलझाने के लिये ग्राहम भारत आते हैं। इनकी नेहरू और शेख अब्दुल्ला से बात होती है ग्राहम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि काश्मीर की जनता हिन्दुस्तान के साथ रहने की पक्षधर है। श्यामा प्रसाद मुखर्जी शेख अब्दुल्ला पर विश्वास नहीं करते। अन्त में निश्चय किया जाता है कि काश्मीर स्वतन्त्र ध्वज का प्रयोग कर सकेगा और साथ ही भारतीय ध्वज को भी सम्मान देगा। कर्ण सिंह राज्य प्रमुख नियुक्त किये जाते हैं। यह नाटक वर्तमान राजनैतिक घटना को संस्कृत के रंगमञ्च पर लाया है। इसका प्रकाशन अमृतवाणी पत्रिका के १९५२-५३ के अंक ११-१२ में तथा स्वतन्त्र पुस्तक के रूप में भी हुआ है। इसका विभाजन अंको के स्थान पर दृश्यों में किया गया है। नाटक में ८ दृश्य हैं। नान्दीपाठ का अभाव है।

किरातव्यायोग– (ना.कृ.) यह कुन्हुकुट्टनतंविरान (दे.) लिखित एक व्यायोग है।

इसका उल्लेख एम. कृष्णमाचार्य ने हिष्ट्री आफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर में किया है।

(१) **किरातार्जुनीय व्यायोग–** (ना.कृ.) यह केरल निवासी ताम्पुरान् द्वारा प्रसिद्ध शिव और अर्जुन युद्ध विषयक कथानक को लेकर लिखा गया व्यायोग है।

(२) **किरतार्जुनीय व्यायोग–** (ना.कृ.) यह एक व्यायोग है जिसकी रचना राम वर्मा (दे.) ने की थी। इसमें किरात वेषधारी शंकर और अर्जुन के युद्ध का प्रस्तुतीकरण किया गया है। इसका प्रकाशन सहृदय संस्कृतजर्नल मद्रास से हो चुका है।

(३) **किरातार्जुनीय व्यायोग–** (ना.कृ.) वत्सराज (दे.) लिखित व्यायोग। इसमें किरात वेषधारी शङ्कर और अर्जुन की युद्ध विषयक भारवि की इसी नाम की रचना का नाटकी- करण किया गया है। इसका प्रकाशन बड़ौदा गायक बाड़ सीरीज में रूपकशतक के अन्तर्गत सं. IV १९१७ में हो गया था।

किर्लोस्कर– (ना.का.) ये मराठी नाटककार है। इनके लिखे संगीतसौभद्रम् का वेलण्कर ने संस्कृत में 'सौभद्रम्' नाम से अनुवाद किया जिसे बम्बई में पर्याप्त सफलता मिली और कई वार उसका प्रदर्शन किया गया।

कुक्षिंभरिभैक्षव– (ना.कृ.) प्रधानिवेङ्कटलिखित एक प्रहसन। इसका कथानक हास्यजनक एवं अश्लील है। इसमें कुक्षिम्भरि नामक बौद्धाचार्य की कामुक चेष्टाओं का चित्रण किया गया है। वह कामकलिका वेश्या पर रीझा है और वज्रदन्त नामक शिष्य को उसको लाने के लिये भेजता है। कुक्षिम्भरि की विधवा प्रेमिका कुर्कुरी अपने नौकर पिचण्डिल से वज्रदन्त को धमकी दिलवाती है कि कामकलिका के हूण प्रेमी तुम्हारे नाक कान काट लेंगे। अतः कामकलिका से दूर ही रहना। जब कुक्षिम्भरि वन की ओर जाता है तब रास्ते में उसकी कई प्रेमिकायें मिलती हैं। उसे मार्ग में चार्वाक, दिगम्बर, क्षपणक, वैदेशिक, विट इत्यादि जो भी मिलते जाते हैं सभी की पोल खुलती है। जब वह बुद्धायतन पहुंच जाता है तब उसकी प्रेमिका कुर्कुरी कामकलिका के हूण प्रेमी का और उसका नौकर पिचण्डिल हूण के नौकर का रूप धारण कर आता है। पिचण्डिल शिष्यों को पीटता है। इसी समय वास्तविक हूण और उसका नौकर आ जाता है। हूण कुर्कुरी को दण्ड देता है और उससे वलात्कार करता है तथा हूण और नौकर पिचण्डिल से मैथुन करता है। उसी समय कुक्षिंभरि आ जाता है और कुर्कुरी को छुड़ाने की चेष्टा करता है। तब हूण का नौकर कुक्षिम्भरि के साथ भी मैथुन करता है। फिर वे दोनों चले जाते हैं। इसी समय वज्रदन्त कामकलिका को लेकर आता है। विदूषक कहता है कि कुक्षिमरि कामकलिका पर मठ की सम्पत्ति लुटा देगा। अन्त में वज्रदन्त मठ का अधिपति बन जाता है।

कुञ्जिकुट्टमतंविरान– (ना.का.) दे. (१) रामवर्मा।

कुञ्जुन्नितम्बियार– (ना.का.) दे. रामपाणिवाद।

कुत्सित कुसीद– (ना.कृ.) दे. रङ्गनाथताताचार्य।

कुन्तिभोज– (ना.पा.) अविमारक (दे.) नाटक में नायिका कुरंगी का पिता। वह गुण ग्राहक एवं परम्परा पालक है। अविमारक की वीरता के पुरस्कार के रूप में वह कुरंगी का विवाह अविमारक से कर देना चाहता है। किन्तु यह जान कर कि अविमारक नीच जाति का है वह सम्बन्ध करने से विरत हो जाता है और कुरंगी का विवाह अन्यत्र कर देना चाहता है। किन्तु जब अविमारक की वास्तविकता का पता चलता है वह इस सम्बन्ध के लिये राजी हो जाता है और दोनों प्रेमी प्रणय बन्धन में बंध जाते हैं।

(१) **कुन्दमाला**– (ना.कृ.) दिङ्नाग अथवा धीरनाग (दे.) लिखित नाटक। ६ अंकों के इस नाटक में राज्यारोहण के उत्तरवर्ती रामचरित को नाट्यरूप में प्रस्तुत किया गया है। सीता के परित्याग और उसके बाद के उनके सम्मिलन के कथानक का इसमें उपादान किया गया है। यह चित्रण करुणरसप्रधान है और भवभूति का मार्गदर्शक कहा जा सकता है यद्यपि भवभूति जैसी उदात्तता इसमें नहीं है। गंगा में तैरती हुई कुन्दमाला से राम और लक्ष्मण को सीता के निकट होने का पता चल गया था। इसीलिये इस नाटक को कुन्दमाला की अभिधा प्रदान की गई है।

रामकृष्ण कवि ने मद्रास से इसका प्रकाशन करा दिया था। इस विषय की दूसरी पुस्तकें– डी.आर. मनकद की 'प्रतिभा एण्ड कुन्दमाला, (एनाल्स आफ भण्डारकर रिसर्च इंस्टीट्यूट पूना सं. XII १७); के. गोपाल शास्त्री की कुन्दमाला विमर्श (मैसूर संस्कृत कालेज बी. १६६); जयचन्द्र शास्त्री की टीका के साथ प्रकाशित (जिसमें अंग्रेजी अनुवाद और टिप्पणियां भी शामिल हैं।) जर्नल्स में इस पर कुछ समीक्षात्मक लेख भी प्रकाशित हुये।

(२) **कुन्दमाला**– (ना.कृ.) भोजराज ने जिस कुन्दमाला का उल्लेख किया है वह छपी हुई कुन्दमाला से भिन्न है। उसमें जो उद्धरण दिया गया है वह छपी हुई कुन्दमाला में नहीं मिलता और न उसके पात्र ही मिलते हैं। यह दूसरी कुन्दमाला प्राप्त नहीं होती। किन्तु भोजराज ने जो उदाहरण दिया है उससे ज्ञात होता है कि उस कुन्दमाला में बुधस्वामी की वृहत्कथा का आश्रय लेकर रचना की गई है जिसमें कुन्दमाला की प्रणय कथा का उपादान किया गया है। किन्तु उसमें भी कुन्दमाला के कुछ पात्र मिलते नहीं हैं। ज्ञात होता है कवि ने कल्पना से बुधस्वामी के कथानक को विल्कुल नया रूप दे दिया है।

कुन्हकुट्टनतंविरान– (ना.का.) दे. किरातव्यायोग।

कुबेर– (ना.पा.) (१) **मोहराज पराजय** का एक पात्र। जब राजा कुमारपाल प्रेयसी कृपासुन्दरी से विवाह करने के लिये अन्य शर्तों के साथ लावारिश लोगों की सम्पत्ति को जप्त करने का नियम तोड़ देता है तब उसके सामने मृत कहे जाने वाले कुबेर की सम्पत्ति

के जप्त करने का प्रश्न उपस्थित होता है। नियमानुसार वह उसे जप्त नहीं करता। तत्काल कुबेर विमान से आ जाता है और अपनी सम्पत्ति पर अधिकार करता है।

(२) **अनर्घराघव** में विमान पर जब राम सेना सहित अयोध्या को लौटते हैं तब उनके साथ कुबेर भी है।

(३) **हरिवंश पुराण** में वज्रनाभ के प्रसंग में कुबेरोपाख्यान के अभिनय की चर्चा आई है।

कुब्जा– (ना.पा.) बालचरित में यह कृष्ण की दासी है और जब कृष्ण मथुरा महोत्सव में शामिल होने आते हैं तब यह उनका सत्कार करती है। जिससे प्रसन्न होकर कृष्ण पुरस्कार रूप में उनका कुबड़ापन दूर कर देते हैं।

कुमतिप्रकथन– (ना.कृ.) इसकी रचना हास्यार्णव के लेखक जगदीश तर्कालकार द्वारा की गई बतलाई जाती है। इसकी प्रति विजगापट्टन के आर्ष पुस्तकालय में संकलित की गई है।

कुमार– (ना.पा.) वत्सराज कृत त्रिपुरदाह (दे.) में देवों की सेना के साथ विजय के लिये कुमार (स्वामि कार्तिकेय) अग्रसर होते हैं। तब पिता (शिव) का आदेश मिलता है और वह युद्ध से विरत हो जाता है। कुमार का यह कार्य अनुशासन के प्रति उसकी निष्ठा और शिष्टाचार पालन के प्रति उसकी प्रवृत्ति का परिचायक है जिसकी प्रशंसा विरोधी पक्ष के दैत्यों के गुरु शुक्राचार्य ने भी की।

कुमारताताचार्य– (ना.का.) पारिजातनाटक (दे.) के लेखक। इन्हें शतक्रतु की उपाधि प्रदान की जाती है। ये वेङ्कटाचार्य के पुत्र और श्रीनिवास के पौत्र थे तथा रामानुज के गुरु श्री शैलपूर्ण के वंशज थे। श्री शैलपूर्ण की परम्परा विभिन्न उपखण्डों में विभाजित हो गई थी। जो परिवार तिरुपति में स्थिर हो गया था उसी में इस कवि का जन्म हुआ। तंजौर के रघुनाथ नायक और विजयराघव के शासन काल (१६१० ई.) में ये उनके बड़े पुरोहित थे। इनका मूल स्थान तिरुपति था। कुछ लोग इन्हें काञ्ची का निवासी मानते हैं। किन्तु वे इसी नाम के एक अन्य व्यक्ति थे।

कुमारपाल– (ना.पा.) गुजरात का राजा; मोहराज पराजय का एक पात्र। यह मत परिवर्तन कर जैन धर्म में दीक्षित हुआ था। यह कृपासुन्दरी (करुणा देवी) पर अनुरक्त है और उससे विवाह करने के लिये उसकी शर्तों को मानकर सात व्यसनों को राज्य से निर्वासित कर देता है तथा लावारिसों की सम्पत्ति जप्त करने का आदेश वापस लेता है। वह मोहराज को पराजित करता है और विवेकचन्द्र से उसकी पुत्री के साथ विवाह कर सम्बन्ध स्थापित कर लेता है।

कुमारवन– (ना.स्थ.) विक्रमोर्वशीयम् में एक वन जिसे शाप मिला था कि यदि कोई स्त्री इसमें प्रवेश करेगी वह लता रूप में परिणत हो जायेगी। यह शाप संगमनीय

मणि के प्रभाव से दूर हो सकता था। एक वार अनजाने में ही उर्वशी उस वन में चली जाती है और शाप के प्रभाव से लतारूप में परिणत हो जाती है। उसका प्रेमी उसकी कल्पना अनेक भौतिकतत्वों में करते हुये जब संगमनीय मणि के साथ उस लता को भेंटता है तब प्रेयसी उसकी बाहों में आ जाती है और शाप का प्रभाव समाप्त हो जाता है।

(१) **कुमारविजय–** (ना.कृ.) भास्करयज्वा लिखित नाटक। इसमें शिव-पार्वती विवाह, कुमारजन्म और तारकवध का चित्रण किया गया है। मुसलीपट्टम से इसका प्रकाशन हुआ है।

(२) **कुमारविजय–** (ना.कृ.) घनश्याम (दे.) लिखित १८वीं शताब्दी का एक नाटक। इसमें दक्षयज्ञ में आत्मोत्सर्ग कर देने के बाद सती का उमारुप में जन्म और उसके बाद कुमारजन्म और तारकवध इत्यादि घटनाओं को रूपायित किया गया है। इसमें एकालापों की अनेकता, प्रगल्भ चरित्रचित्रण और छायातत्व के समावेश के साथ तत्कालीन सामाजिक विषमताओं और धर्म के नाम पर चलने वाले चरित्रपतनों पर प्रकाश डाला गया है।

मद्रास से १९०५ में प्रकाशित कैटेलाग में HR III १६८२ पर इसका उल्लेख किया गया है।

कुमुदगन्ध– (ना.पा.) अश्वघोष के उपलब्ध नाटक में विदूषक का नाम। इस नामकरण में शास्त्रीय परम्परा का पालन किया गया है। इससे सिद्ध होता है कि अश्वघोष के समय तक भी कुछ न कुछ नाट्य परम्परायें सत्ता में आ चुकीं थीं।

कुमुदचन्द्र– (ना.पा.) मुद्रित कुमुद्रचन्द्र (दे.) नाटक का एक पात्र। यह दिगम्बर जैन है और श्वेताम्बर जैन देवसूरि से शास्त्रार्थ करता है जिसमें पराजित हो जाता है। अतः इस नाटक का नाम ही मुद्रितकुमदुचन्द्र पड़ा है।

कुमुदिका– (ना. आधार) वृहत्कथा में वर्णित एवं वसन्त सेना की प्रतिरूप एक वेश्या जो एक दरिद्र ब्राह्मण से सच्चा प्रेम करने लगी थी। जब उसका प्रेमी राजाद्वारा बन्दी बना लिया गया तब उसने राज्यच्युत राजा विक्रमसिंह से मैत्री की और अपनी कलाओं द्वारा उसे राज्य प्राप्ति में सहायता दी। विक्रमसिंह ने राज्यप्राप्ति के बाद कृतज्ञता वश गणिका को अपने प्रेमी से विवाह करने की अनुमति दे दी। सम्भवतः यह कथानक ही मृच्छकटिक की रचना में श्रोत बना।

कुमुद्वती– (ना.पा.) दे. कुशकुमुद्वतीयम्।

कुमुद्वती– (ना.कृ.) यह एक प्रकरण है जो अब उपलब्ध नहीं होता। इसके कर्ता का भी कहीं नामोल्लेख नहीं मिलता। शूद्रक (दे.) ने पद्म प्राभृतक (दे.) नामक भाण में इसका उल्लेख किया है और एक पद्य भी उद्धृत किया है जिससे ज्ञात होता है कि इस रचना में कुमुद्वती नामक किसी राजकुमारी के शूर्पक के साथ प्रेम को नाट्य विषय बनाया

गया है।

कुम्भकर्ण– (ना.पा.) यह रामायण का प्रसिद्ध पात्र है। इसके चरित्र का स्वतन्त्र विकास नहीं हो सका है। रात्रण इसे युद्ध के लिये भेजता है और वह राम के हाथों मारा जाता है। अनर्घराघव, बालरामायण और प्रसन्नराघव में इसका रावण के भाई और युद्ध के सेनानी के रूप में उपादान किया गया है–

(१) **अनर्घराघव**– में यह रंगमञ्च पर नहीं आता, उसके युद्ध में जाने और मारे जाने की केवल सूचना दी जाती है।

(२) **बालरामायण**– में दिव्य अस्त्रों से उसके युद्ध का चित्रण किया गया है। किन्तु अन्त में वह राम से पराजित हो जाता है।

(३) **प्रसन्नराघव**– में रावण कुम्भकर्ण को भेजता है जो राम के साथ युद्ध करते हुये मारा जाता है।

कुम्भीलक– (ना.पा.) मृच्छकटिक में वसन्त सेना का चेट; वह मागधी वोलता है।

कुरंगी– (ना.पा.) अविमारक की नायिका। यह राजा कुन्तिभोज की पुत्री है। एक वार एक हाथी के बिगड़ जाने पर यह उस हाथी की पकड़ में आ जाती है और मृत्यु के निकट पहुंच जाती है तब अविमारक उसकी रक्षा करता है। इससे दोनों एक दूसरे को प्राणपण से चाहने लगते हैं। एक वार धात्री के उद्योग से दोनों में सम्मिलन का अवसर भी आता है। किन्तु पकड़ लिये जाने से उनका मनोरथ पूरा नहीं होता। दोनों आत्महत्या की चेष्टा करते हैं किन्तु सफल नहीं हो पाते। किन्तु बाद में एक विद्याधर की दी हुई तिरस्करिणी अंगूठी से वह अदृश्य होकर नित्य राजकुमारी का उपभोग करता रहता है। अन्त में भेद खुल जाने और यह ज्ञात हो जाने पर कि अविमारक वास्तव में काशी नरेश का पुत्र विष्णुसेन है उनका विवाह कर दिया जाता है और उनके प्रेम की सफल परिणति हो जाती है।

कुलशेखर वर्मा– (ना.क.) केरल के राजा कवि (१० वीं ११वीं शताब्दी); इन्होंने दो नाटक लिखे थे तपतीसंवरण (दे.) और सुभद्राधनञ्जय (दे.) कुछ लोग इन्हें कुन्दमाला के लेखक कुलशेखर से अभिन्न मानते हैं। वस्तुतः केरल के राजघराने में इस नाम के कई कवि हुये हैं जिनमें मुकुन्दमाला के लेखक कुलशेखर को धार्मिक दृष्टि से सबसे अधिक महत्ता प्राप्त हुई थी। कहा जाता है कि ये विष्णु की कौस्तुभ मणि के अवतार थे। वैष्णव सन्त के रूप में इन्हें अत्यधिक प्रतिष्ठा प्राप्त हुई थी। राजसिंहासन का परित्याग कर ये सन्यासी हो गये थे। इनके आश्रित कवि वासुदेव ने युधिष्ठिरविजय काव्य में इनकी प्रशस्ति गाई है। मुकुन्दमाला के लेखक कुलशेखर आल्वार थे।

इस विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता कि आल्वार कुलशेखर और नाटक का

कुलशेखर एक ही व्यक्ति थे या भिन्न भिन्न व्यक्ति। यदि ये भिन्न भिन्न व्यक्ति थे तो इनमें कौन पहले और कितना पहले हुआ था। यह भी निश्चित नहीं है कि वासुदेव ने जिन कुलशेखर का वर्णन किया है वे कौन से कुल शेखर थे। सामान्य धारणा यह है आल्वार कवि कुलशेखर नाटककार कुलशेखर की अपेक्षा कहीं अधिक प्राचीन थे। अनेक कुलशेखरों के कारण इनके समयों में इतना अन्तर है कि केरलीय परम्परा इन्हें तीसरी शताब्दी का मानती है जबकि कुछ विचारक इन्हें १३वीं शताब्दी तक ले जाते हैं।

कुवलयमाला– (ना.पा.) कुन्तल नरेश चण्डमहासेन की पुत्री, विद्धशालभञ्जिका (दे.) की एक पात्र। चण्डमहासेन जब पराजित होकर उज्जैन आ जाते हैं तब उनके साथ उनकी पुत्री भी आती है। वह अत्यन्त रूपवती है। एक दिन जब वह नर्मदा स्नान कर बाहर निकल रही थी उज्जैन नरेश विद्याधर मल्ल की उस पर निगाह पड़ गई और विलासी राजा उस पर आसक्त हो गया।

रानी को राजा के इस झुकाव के कारण नई सौत की सम्भावना से अत्यन्त चिन्ता हुई। उस समय लाट प्रदेश के अधिपति चन्द्रवर्मा की पुत्री मृगाङ्कवती लड़का बनकर मृगाङ्कवर्मा के नाम से वहां रह रही थी। अतः रानी ने नई सौत से छुटकारा पाने के लिये कुवलयमाला का विवाह मृगाङ्कवर्मा से करने का निश्चय किया। किन्तु परिस्थितियां कुछ ऐसी बदलीं कि कुवलय माला का विवाह उज्जैन नरेश से सम्पन्न हो गया।

कुवलयवती– (ना.कृ.) कृष्ण कविशेखर (दे.) लिखित चार अंकों की नाटिका। इसमें कृष्णकथानक को एक नया रूप दिया गया है जिसमें मालविकाग्निमित्र रूप की वह प्रेमकथा की शैली अपनाई गई है जिसमें कोई सुन्दरी नायक के घर में किसी रूप में रहती है। संयोग एवं परिस्थिति वश नायक का उससे प्रेम हो जाता है जो गुप्तरुप से चलता रहता है। जब नायक की पत्नी को ज्ञात होता है वह विघ्न डालती है जिससे कथानक में उलझन उत्पन्न हो जाती है। बाद में जब पता चलता है कि वह सुन्दरी तो अत्यन्त उच्चकोटि के परिवार की है तब पत्नी विवाह की आज्ञा दे देती है।

इस नाटक में पृथ्वी ब्रह्मा जी के प्रयत्न से कुवलयवती नामक एक मानवी कन्या बन जाती है। उसे नारद जी ने एक अंगूठी दी है जिसके प्रभाव से वह उसे पहनने पर रत्नजटित मूर्ति बन जाती है। नारद उसे रुक्मिणी के पास यह कहकर छोड़ जाते हैं कि वे उसके उचित वर की खोज में जा रहे हैं। इसीलिये उसका नाम रत्नपाञ्चालिका बतलाते हैं। एक दिन वह अपनी सखी चन्द्रलेखा के साथ उपवन में जाती है और अंगूठी पहिन कर रत्न जटित मूर्ति बन जाती है तथा उसी रूप में अपनी सहेली से बात करती है। इसी बीच कृष्ण आ जाते हैं जिन्हें यह देखकर आश्चर्य होता है कि चन्द्रलेखा एक मूर्ति के साथ वार्तालाप कर रही है। हड़वड़ाहट में मूर्ति के हाथ से अंगूठी गिर जाती है और वह सुन्दरी कुवलयवती के रूप में आ जाती है। महल से बुलावा आने पर कुवलयवती

कृष्ण को निराश और उदास छोड़कर चली जाती है। कृष्ण को भूमि पर पड़ी हुई अंगूठी मिल जाती है। कृष्ण उस पर अंकित मन्त्र के अक्षरों को समझ कर उस रहस्य से परिचित हो जाते हैं। इस प्रकार दोनों का निर्वाध प्रेम चलता रहता है। जब रुक्मिणी को इस बात का पता चलता है तब वह उसे बन्दी बना देती है। एक राक्षस उस बन्दीगृह पर आक्रमण कर देता है तब रुक्मिणी कृष्ण की सहायता मांगती है। कृष्ण उसका वध करने चले जाते हैं। जब वे उसे मारकर लौटते हैं उसी समय नारद आ जाते हैं और वे इस रहस्य का उद्घारटन करते हैं कि ब्रह्मा के आदेश से पृथ्वी कुवलयवती का रूप धारण कर इस महल में आई है। तब रुक्मिणी विवाह की अनुमति दे देती है और विवाह यथा-विधि समाप्त हो जाता है।

इस नाटिका की रचना रचकोण्डा के देवता प्रसन्नगोमल के वसन्तोत्सव के अवसर पर अभिनय के लिये हुई थी। इसे कुवलयावली और रत्नपाञ्चालिका के नाम से भी जाना जाता है। इसका संकलन कैटेलागस कैटेलागगोरम सं. III २५ पर किया गया है।

कुवलयविलासम्– (ना.कृ.) यह रायस अहोवल मन्त्री लिखित ५ अंकों का नाटक है। इसमें नायिका मदालसा और नायक कुवलयाश्व की प्रणय कथा का चित्रण किया गया है। इसकी रचना १६वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में विजयनगर के राजा श्रीरङ्गराज के आग्रह पर की गई थी।

कुवलयानटी– (ना.पा.) अवदान शतक में अभिनेताओं की एक मण्डली की नर्तकी। इस मण्डली ने शोभवती नगरी, राजगृह इत्यादि अनेक स्थानो पर अपनी कला का प्रदर्शन किया। कुवलया नटी लोगों के चरित्र को डिगाती रही। अन्त में बुद्ध ने उसे वृद्धा के रूप में परिवर्तित कर उसकी वृत्ति का अन्त कर दिया। उसने अपने कर्मों पर पश्चाताप किया और उसे सिद्धपद की प्राप्ति हो गई।

कुवलयावली– (ना.कृ.) दे. कुवलयवती।

कुवलयाश्वचरित– (ना.कृ.) लक्ष्मण माणिक्य चन्द्र (दे.) लिखित नाटक। इसमें मदालसा और कुवलयाश्व की प्रेमलीला दिखलाई गई है। यह १६वीं शताब्दी की रचना है। कैटेलागसस कैटेलागोरम III २५ पर इसका उल्लेख है।

कुवलयाश्व चरित– (ना.कृ.) लक्ष्मण माणिक्यचन्द्रदेव (दे.) लिखित ९ अंकों का नाटक। इसमें कथानक के रूप में मदालसा और कुवलयाश्व की प्रणय कथा का उपादान किया गया है।

कुवलयाश्वीय– (ना.कृ.) यह कृष्णदत्त (दे.) लिखित ७ अंकों का नाटक है जिसमें एक वैदिक विद्यार्थी (कुवलयाश्व) का युवती मदालसा से प्रेम दिखलाया गया है। इस नाटक का नायक शत्रुजित् का पुत्र ऋतुध्वज है जिसे गालव ऋषि यज्ञरक्षा हेतु शत्रुजित् से मांग ले जाते हैं। गालव उन्हें कुवलय नामक अश्व दे देते हैं। पातालकेतु प्रतिनायक

है जो यज्ञध्वंस करने और अश्व का अपहरण करने के लिये कंकालक और करालक इन दो योद्धाओं को भेजता है। युद्ध में पराजित होकर करालक भाग जाता है; किन्तु कंकालक छद्मवेष में मुनि शिष्य सालंकायन बनकर वहीं रहने लगता है। पातालकेतु के धावा बोलने के कुछ पहले कंकालक नायक ऋतुध्वज को दूर ले जाता है। किन्तु अवसर पर नायक उसे खदेड़ते हुये पाताल तक ले जाता है। वहां वह गन्धर्व विश्वावसु की पुत्री मदालसा को देखता है जिसका अपहरण कर पातालकेतु उसे पाताल में ले आया है। कन्या के पिता विश्वावसु और गालव ऋषि की आज्ञा लेकर नायक मदालसा से विवाह करता है। नायक युवराज बन जाता है। राजा उसे आश्रमरक्षा का भार सौंप देते हैं। मुनि वेषधारी कंकालक नायक को आश्रम रक्षा का भार सौंपकर काशी चला जाता है।

यह मूलकथा मार्कण्डेय पुराण से ली गई है जिसमें लेखक ने यथेष्ट परिवर्तन किये हैं। इसका प्रथम अभिनय महिषमर्दिनी देवी के चैत्रावली के पूजन के अवसर पर हुआ था।

इसका संकलन कैटेलागस कैटेलागोरम सं. I ११३ में किया गया है।

(१) **कुश**– (ना.पा.) निर्वासित सीता ने वाल्मीकि आश्रम में लव और कुश को जन्म दिया और वाल्मीकि आश्रम में ही उनका पालन पोषण किया गया और शिक्षा दीक्षा सम्पन्न हुई। अब वाल्मीकि के सामने एक समस्या थी कि सीता का चरित्रपरिशोधन किस प्रकार किया जाय और जो राजकुमार उनके आश्रम में पालन पोषण एवं परिवर्धन प्राप्त कर रहे हैं उन्हें उत्तराधिकार प्रदान करने का क्या उपाय हो। इसके लिये मुनि ने रामायण की रचना की और दोनों राजकुमारों को कण्ठस्थ करा कर सारे राज्य में उसका गायन कराया जिसमें अभिनय रूपता भी सम्मिलित थी, कुशलव कुशीलव बन गये। इससे जनता में व्याप्त सीता चरित्र के विषय में मिथ्याधारणा समाप्त हो गई और राजकुमारों को अपना अधिकार प्राप्त हो गया।

(२) **कुश**– (ना.पा.) भवभूति के उत्तररामचरित में एक पात्र। परित्यक्ता सीता डूब मरने के लिये गंगा में कूद पड़ती है जहां उन्हें पृथ्वी देवी और गंगा देवी बचा लेती है। गंगा की धारा में ही सीता दो बालकों को जन्म देती है जिनको वाल्मीकि आश्रम में सीता के साथ पहुंचा दिया जाता है। धीरे धीरे बालक यौवन को प्राप्त करते हैं। राम ने सीता की स्वर्ण प्रतिमा बनाकर जो अश्वमेघ प्रारम्भ किया है उसके अश्व की रक्षा करते हुये लक्ष्मण पुत्र चन्द्रकेतु जब आश्रम के निकट आते हैं तब लव उस अश्व को बांध लेते हैं। भयानक युद्ध होता है। समाचार पाकर राम आते हैं और उनका युद्ध रुक जाता है।

मुनि वाल्मीकि ने जिस रामायण की रचना की है वे उसके अभिनय का आयोजन करते हैं जिसके दर्शक के रूप में राम का परिवार उपस्थित होता है। सीता के गंगा में

कूद पड़ने, पृथ्वी तथा गंगा द्वारा बचाये जाने, दो बालकों के जन्म एवं वाल्मीकि आश्रम में पहुंचाये जाने के दृश्य अभिनय द्वारा प्रदर्शित किये जाते है। अभिनय इतना सफल है कि राम सारी घटना को सत्य समझकर वार वार प्रतिक्रिया व्यक्त करने लगते हैं। राम मूर्छित हो जाते हैं। अरुन्धती के साथ सीता आकर राम की मूर्छा दूर करती है। जनता सीता का स्वागत करती है और राम दोनों बालकों के साथ सीता को स्वीकार करते हैं।

(३) **कुश**– (ना.पा.) अतिरात्रयज्वन् लिखित 'कुश कुमुद्वतीयम्' में राम पुत्र कुश का कुमुद्वती से प्रणय सम्बन्ध दिखलाया गया है।

(४) **कुश**– (ना.पा.) दे रामकृष्ण (भवभूति) और उनके लिखे उत्तरचरित में लवकुश।

(५) **कुश**– (ना.पा.) दे. कशलवविजय।

कुशकुमुद्वतीयम्– (ना.कृ.) अतिरात्रयज्वन् लिखित राम विषयक नाटक। यह ५ अंकों का नाटक है जिसें राम के ज्येष्ठ पुत्र कुश और नागकन्या कुमुद्वती के प्रणय सम्बन्ध को कथानक के रूप में स्वीकार किया गया है। राम के बाद अयोध्या नगरी उजड़ गई। किन्तु नागलोक की राजकुमारी नयचन्द्रिका विहार के लिये निर्जन अयोध्या में आती है नगर की अधिष्ठात्री देवी तिरस्करिणी के प्रभाव से इस रहस्य को जान लेती है। कुश ने अयोध्या को छोड़कर कुशावती को राजधानी बनाया है। सागरिका कुश को दिव्यदृष्टि देकर कुमुद्वती के दर्शन करा देती है। कुश उसके रूपसौन्दर्य पर रीझकर अयोध्या को नये रूप से सजाकर वहीं रहने लगते हैं। कुश और कुमुद्वती का परस्पर अनुराग बढ़ने लगता है जिसमें सागरिका भी सहायता करती है। किन्तु कुमुद्वती का पिता अयोध्या की दुर्दशा देखकर कुमुद्वती के वहां जाने पर प्रतिबन्ध लगा देता है और कुमुद्वती का विवाह शंखपाल के साथ तय कर देता है। प्रतिबन्ध होते हुये भी सागरिका के प्रयत्न से नायक-नायिका मिलते रहते हैं। विदूषक और लव नायिका के पिता कुमुद का दर्प भंग करने के लिये सर्पयज्ञ का आयोजन करते हैं। सर्पयज्ञ से आतंकित कुमुद प्राणरक्षा की प्रार्थना करते हैं और कुश के साथ कुमुद्वती का तथा लव के साथ कुमुद्वती की बहन कमलिनी का विवाह कर देते हैं।

यह एक प्रकरण है जिसकी रचना भाण की शैली पर हुई है। प्रथम अभिनय हालास्य चैत्रोत्सव के अवसर पर हुआ था। इसका रचना काल १७वीं शताब्दी है। इस नाटक की प्रति पैलेस लायब्रेरी तंजौर में सुरक्षित है जिसका कैटलाग सं. VIII ३३७८ पर उल्लेख किया गया है।

कुशलवविजय– (ना.कृ.) वेङ्कटकृष्ण (उपनाम वेङ्कटेश) लिखित राम विषयक नाटक। इसमें राम पर रामपुत्रों की विजय दिखलाई गई है जिससे निर्वासित सीता की पुनः प्राप्ति होती है।

त्रावन्कोर पुस्तकालय के पाण्डुलिपि अनुभाग सं. ७६ पर इसका उल्लेख किया गया है। मद्रास की प्राच्य पाण्डुलिपि लायब्रेरी के डिस्क्रिप्टिव कैटेलाग में इसी नाम की एक पुस्तक का (XX ७८११ पर) उल्लेख किया गया है साथ ही उसमें रचनाकार का नाम कविवल्लभ बतलाया गया है; किन्तु उसके कर्तृव्य पर सन्देह भी व्यक्त किया गया है। हो सकता है यह वेङ्कटेश की लिखी हुई पुस्तक ही हो।

कुशलवोदय– (ना.कृ.) नैपाली कवि छविलाल सूरि लिखित नाटक।

कुसुमवाणविलास– (ना.कृ.) यह एक भाण है जिसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम I ११३ पर किया गया है। इसके लेखक या रचनाकार का कोई पता नहीं।

कुसुमशेखर विजय– (ना.कृ.) यह एक ईहामृग है जिसकी रचना अभिनय के मन्तव्य से भरत? ने की थी। अब यह पुस्तक उपलब्ध नहीं होती। इसका उल्लेख शारदातनय, विश्वनाथ और बहुरूप मिश्र ने किया है।

कुसुमावचय– (ना.कृ.) मधुसूदन सरस्वती (दे.) लिखित नाटक।

कुहनाभैक्षव– (ना.कृ.) यह एक प्रहसन है जिसकी रचना वोम्मगन्ती परिवार के अय्यलुनाथ (उपनाम तिरुमलनाथ) ने की थी। मद्रास ओरियण्टल लायब्रेरी के संस्कृत पाण्डुलिपि अनुभाग ट्रायेनियल कैटेलाग सं. III ८२५१ पर इसका उल्लेख है। मैसूर पुस्तकालय के पाण्डुलिपि अनुभाग सं. २७६ पर भी इसका उल्लेख है।

कृतकयौवतम्– (ना.कृ.) नारायणशास्त्री लिखित १० अंकों का नाटक।

कृतार्थ माधव– (ना.कृ.) यह नाटक राम माणिक्य कविराज का लिखा है। इसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम खण्ड ३ सं. २५ पर किया गया है।

कृत्यारावण– (ना.कृ.) यह राम कथा परक नाटक है जो अब लुप्त हो गया है। अभिनवगुप्त, रामचन्द्र गुणचन्द्र (नाट्य दर्पण), शारदातनय (भाव प्रकाशन) भोजराज (शृङ्गार प्रकाश) प्रभृति नाट्य शास्त्र और काव्य शास्त्र लिखने वालों ने या तो इसके उद्धरण दिये हैं या इसका उल्लेख किया है। शारदातनय ने सुबन्धु की बतलाई हुई पांच नाट्य जातियों में इस नाटक को समग्रनाटक का उदाहरण बतलाया है। इसके लेखक का पता नहीं।

कृपाचार्य– (ना.पा.) महाभारत का प्रतिष्ठित पात्र। वेणी संहार में इनकी भूमिका स्वल्पमात्रा में आई है।

कृपासुन्दरी– (ना.कृ.) यह मोहराज पराजय (दे.) नामक प्रतीक नाटक की नायिका और विवेकचन्द्र की पुत्री है। राजकुमार पाल उसकी ओर आकर्षित है। किन्तु रानी राज्यश्री और उसकी सखी रौद्रता के संकोच से और उनके विघ्न डालने से उनका प्रणय बन्धन सम्भव नहीं हो पाता। मन्त्री प्रणयकेतु जब रानी के मन में यह भाव जगा देता है कि मोहराज पर विजय प्राप्त करने के लिये कृपासुन्दरी से विवाह अनिवार्य है तब रानी स्वयं इस विवाह का प्रबन्ध करती है।

यह एक ऐतिहासिक पात्र है जिसका उल्लेख जिनमण्डल के कुमारपाल प्रबन्ध में किया गयाहै। कुमापाल ने इससे ११५९ में विवाह किया था। किन्तु कवि ने प्रतीक नाटक में इन्हें विल्कुल नया रूप दे दिया है। नाटक मे यह विवेक चन्द्र की पुत्री है। हेमचन्द्र के आश्रम में इसका परिचय कुमार पाल से होता है। यह धार्मिक प्रवृत्ति की उदात्त चरित्र वाली महिला है। विवाह के पहले शर्त लगाकर इसने लोकोपकार के अनेक कार्य सम्पन्न कर दिये।

कृष्णपरक-नाटक-साहित्य– (ना.सा.) कृष्णविषयक नाटक साहित्य की कुछ प्रमुख रचनायें ये हैं– महाभाष्यकार पतंजलि ने कंसवध का उल्लेख किया है। भास के दो नाटक बालचरित और दूतवाक्य; रामकृष्ण की गोपालचन्द्रिका, मथुरादास की वृषभानुजा नाटिका; चैतन्य महाप्रभु की प्रेरणा से रूप गोस्वामी ने दो नाटक लिखे– ललितमाधव और विदग्धमाधव। इनके अतिरिक्त इन्होंने एक भाण भी लिखा– दानकेलिकौमुदी; शेषकृष्ण का कंसवध, मुरारिविजय, मुक्ताचरित और सत्यभामापरिणय; रविवर्मा का प्रद्युम्नाभ्युदय; राममाणिक कविराज का कृतार्थमाधव; वैद्यनाथ तत्सत् की कृष्णलीला; कृष्णकुतूहल; बालिकावञ्चितक; रामाराधा; हरियज्वन का कंसान्तक; अनन्तदेव की कृष्ण- भक्तिचन्द्रिका; सुन्दरराज का वैदर्भीवासुदेव; हेज्जल का राधाविप्रलम्भ चयनीचन्द्रशेखर का मथुरानिरुद्ध; जीवराम का मुरारिविजय; उमापति का पारिजात हरण।

कृष्ण– (ना.का.) ये नृसिंह के पुत्र थे। इन्होंने द्रौपदी-परिणय नामक नाटक की रचना की थी जिसका संकलन मद्रास के पुस्तकालय में किया गया है।

(१) **कृष्ण–** (ना.पा.) भास के दूतवाक्य में कृष्ण का महिमामयरूप खुलकर सामने आया है। ये दूतवाक्य नाटक के प्रमुख पात्र हैं। सन्धि के अन्तिम प्रयास के रूप में कृष्ण दौत्यकर्म करने दुर्योधन की सभा में जाते हैं और सच्चाई के साथ महाविनाश से बचने के लिये दुर्योधन को समझाने की चेष्टा करते हैं। दुर्योधन के तर्कों का उत्तर देने में उनकी वक्तृत्व शक्ति का प्रतिफलन हुआ है। दुर्योधन पहले से ही कृष्ण को अपमानित करने की योजना बनाये बैठा है और कृष्ण के स्वागत में उठ खड़े होने को एक दण्डनीय अपराध घोषित कर देता है। किन्तु यह कृष्ण का प्रभाव ही है कि सभासद ही नहीं स्वयं दुर्योधन भी बैठा नहीं रह पाता।

दूतवाक्य में कृष्ण के विष्णुरुप की अभिव्यक्ति बहुत अच्छे रुप में हुई है। विश्वरूप दर्शन में तो उनका स्वरूपव्यक्त हो ही जाता है साथ ही अस्त्रों का चमत्कार भी उनके विश्व रूप के सर्वथा अनुकूल है। उदाहरण के लिये उनका चक्र आकाश गंगा से जल प्राप्त करता है, मेरुमन्दर को हिला देता है; समुद्र को संक्षुब्ध कर सकता है और नक्षत्रों को गिरा सकता है।

कृष्ण शरणागत वत्सल भी हैं और धृतराष्ट्र की प्रार्थना पर दुर्योधन को क्षमादान

कर देते हैं।

(२) **कृष्ण-** (ना.पा.) भास के बालचरित में प्रमुख पात्र। यहां कृष्ण की महिमा पूर्ण रूप से प्रस्फुटित हुई है और उनके बाल रूप पर यथेष्ट प्रकाश पड़ता है। चुने हुए मल्लों पूतना, शकट, धेनुक, प्रलम्ब, यमलार्जुन जैसे अनेक वीरों को खेल खेल में ही यमलोक पहुंचा देना, यमुना में अकेले ही कूद कर कालिया दमन, इत्यादि लीलायें उनके शौर्य की व्यञ्जक है। वे कंस की सभा में बात की बात में ही हाथी का दमन कर कंस को पछाड़ देते हैं। साथ ही उनमें करुणा भी कम नहीं है। वे अनेक असुरों का वधकर समस्त जगत को त्राण देते हैं; कुब्जा के कुब्जापन से उसे छुटकारा देते हैं। उग्रसेन को बन्दीगृह से छुड़ाकर राजा बना देते हैं। गोप-गोपियों के साथ क्रीड़ा उनके मधुर पक्ष की व्यञ्जक है।

कृष्ण के चरित्र में चमत्कारों की भी इयत्ता नहीं। वसुदेव के मार्ग दर्शन के लिये नवीन ज्योति का उद्‌भव, यशोदा की मृतलड़की का शीघ्र जीवित हो जाना, नन्द के स्नान के लिये जलधारा का स्वतः प्रादुर्भाव उनके अलौकिक स्वरूप के अभिव्यञ्जक तत्व हैं। गोपालों के वेष में आयुधों का प्रवेश इत्यादि कतिपय ऐसे तत्व हैं जिनसे कृष्ण के माहात्म्य और उनकी लोकोत्तरशक्ति का पूरा प्रतिफलन हो जाता है तथा उससे कविगत कृष्ण भक्ति की पर्याप्त अभिव्यक्ति हो जाती है।

कृष्ण के मधुर रूप का भी इस नाटक में प्रतिफलन हुआ है गोप गोपियों के साथ नाच गान, हल्लीसक नृत्य मधुर रूप के परिचायक हैं।

संक्षेप में उनका व्यक्तित्व सर्वगुण सम्पन्न है। वे परमशक्ति का स्रोत हैं; सारी अविश्वसनीय घटनायें उनके परम प्रताप से सम्पन्न हो जाती हैं। वे दया का आवतार हैं; बचपन में ही अकल्पनीय शक्ति से भरपूर हैं और बड़े से बड़े दैत्यों को पछाड़ देना उनके बायें हाथ का खेल है। वे मधुर रस के मूर्तावतार हैं; उनकी लोकोत्तर शक्ति उनके प्रत्येक कार्य से अभिव्यक्त होती है और उन्हें पूर्ण ब्रह्म के पद पर प्रतिष्ठित कर देती है।

(३) **कृष्ण-** (ना.पा.) वेणी संहार में कृष्ण का चरित्र अधिक प्रस्फुटित नहीं हुआ है। फिर भी उनके दौत्यकर्म से ही नाटक का प्रारम्भ होता है जो दुर्योधन की हठधर्मिता से असफल हो जाता है। युद्ध में योद्धा रुप में भाग न लेते हुये भी वास्तविक संचालक वे ही हैं- उन्हें कर्मोपदेष्टा कहा गया है। पाण्डवों में परस्पर सौमत्य बनाये रखकर युद्ध को विजय की ओर ले जाने का श्रेय उन्हें ही दिया गया है।

(४) **कृष्ण-** (ना.पा.) वत्सराज के रुक्मणी परिणय में उनकी क्षिप्रकारिता, शक्ति और प्रेम के प्रति सच्चाई की अभिव्यक्ति होती है।

(५) **कृष्ण-** (ना.पा.) रूपगोस्वामी के दो नाटकों विदग्धमाधव और ललितमाधव

में महान् शृङ्गारी और प्रेमी के रूप में इनका चित्रण किया गया है जो श्रीमद्भागवत की प्रधान प्रवृत्ति है। राधा के साथ उनकी प्रेम लीलाओं में उनके रसिक भाव की यथेष्ट अभिव्यक्ति हुई है।

(६) **कृष्ण–** (ना.पा.) सामराज दीक्षित लिखित श्रीदामचरित में वदान्यता, उदारता और मित्रता की सच्चाई के अतिरिक्त भगवान् कृष्ण की उचित पुरस्कार देने की प्रवृत्ति पर भी प्रकाश पड़ता है।

(७) **कृष्ण–** (ना.पा.) वृषभानुजा में प्रेमिका को रुठाने-मनाने की प्रवृत्ति का चित्रण किया गया है।

(८) **कृष्ण–** (ना.पा.) सुभद्राहरण में कृष्ण की उस कुशलता का चित्रण किया गया है जिसमें पारिवारिक विरोध होते हुये भी अर्जुन द्वारा सुभद्राहरण में उनके सफल योगदान का चित्रण किया गया है।

(९) **कृष्ण–** (ना.पा.) हरिदूत में कृष्ण की दौत्यकर्म निपुणता का; (१०) गीत गोविन्द में प्रणय लीला का, (११) गोपाल केलि चन्द्रिका में प्रणयलीला के साथ उनकी परम तत्व रूपता का परिचय मिलता है जिसमें राधा शक्तिरुपा है; कृष्ण चीरहरण के प्रसंग में वस्त्र लौटाने के मूल्य के रूप में गोपियों से भक्ति मांगते हैं। रासलीला का प्रसंग भी भगवान के मधुर भाव का व्यञ्जक है।

कृष्ण अवधूत– (ना.का.) इनके लिखे सर्वविद्या विनोद नाटक का उल्लेख कीथ ने संस्कृत में किया है।

(१) **कृष्णकवि–** (ना.का.) दे. शेषकृष्ण।

(२) **कृष्णकवि–** (ना.का.) शर्मिष्ठाययाति के लेखक। हो सकता है ये शेषकृष्ण (दे.) से अभिन्न हों जिनकी सत्ता अकवर के राज्यकाल में पाई जाती है।

कृष्णकविशेखर– (ना.का.) इनकी लिखी नाटिका कुवलयवती (दे.) प्रकाश में आई है। इनके विषय में कोई अन्यवृत्तान्त ज्ञात नहीं होता।

कृष्णकुतूहल– (ना.कृ.) यह मधुसूदन (दे.) लिखित नाटक है। इसका संकलन कैटेलागस कैटेलागोरम सं. १.११९ पर किया गया है।

कृष्णकेलिमाला– (ना.कृ.) यह चार अंकों की नाटिका है जिसकी रचना नन्दीपति ने १८वीं शताब्दी में की थी। इस नाटिका में कृष्ण जन्म एवं लीलाओं का चित्रण किया गया है।

कृष्णगीति– (ना.कृ.) कालीकट के जमोरिन राजा मानवेद लिखित नाटक। इसे कृष्ण-नाटक की भी संज्ञा दी जाती है। इसका प्रकाशन त्रिचूर से हुआ है जिसमें भूमिका भी है। इसकी पाण्डुलिपि प्रतियां ओरियण्टल लायब्रेरी मद्रास में भी उपलब्ध होती हैं। त्रैवार्षिक खोज रिपोर्ट सं. III ४०३२ और VI ७२७६ में संकलित की गई है। यह एक

नये प्रकार की नाट्य कृति है जिसमें आख्यानतत्व पद्यों में और भावतत्व संगीत में व्यक्त किया गया है। यह एक गीति नाट्य है। गुरुवायूर के मन्दिर में प्रति वर्ष इसका अभिनय होता है।

कृष्णाचन्द्राभ्युदय- (ना.कृ.) कृष्णचरित्र परक इस नाटक की रचना शङ्करलाल (दे.) ने की थी।

कृष्णदत्त- (ना.का.) सदाराम और आनन्द देवी में ब्राह्मण वंश में उत्पन्न हुये थे। इनके लिखे नाटक हैं- पुरञ्जनचरित, कुवलयाश्वीय (दे.) और सान्द्रकुतूहल (दे.) इनकी रचनाओं में २२ सर्गों का एक राधारहस्य काव्य भी है जिसमें राधाकृष्ण प्रेमलीला का वर्णन किया गया है। इस काव्य पर उनकी स्वयं की टीका है। इन्होंने गीतगोविन्द पर टीका लिखी और उसके अनुकरण पर गीतगणपति काव्य की रचना की। चण्डीचरितचन्द्रिका भी उन्हीं की लिखी बतलाई जाती है।

कृष्णदास- (ना.का.) ये १८वीं शताब्दी में मालावार के निवासी थे। इनका लिखा कलावतीकामरूपम् (दे.) नामक प्रकरण प्राप्त होता है। इन्हें नवकृष्णदास नाम से भी याद किया जाता है।

कृष्णदेव राय- (ना.का.) विजय नगर के तुलुव वंश के शासक थे। इनका शासन काल १५०९ से १५२९ तक है। ये प्रतिष्ठित शक्तिशाली शासक थे और प्रायः समस्त दक्षिण प्रदेश में इनका शासन चला था। इन्होंने स्थान स्थान पर अपने सामन्त नियुक्त कर रक्खे थे। अनेक युद्धों में इन्हें शानदार सफलता मिली थी। इनके दो नाटक प्रकाश में आये हैं- उषापरिणय और जम्बवतीकल्याण। इनके अतिरिक्त इनके कतिपय काव्य तेलुगु भाषा में भी प्राप्त होते हैं। इनका एक काव्य ग्रन्थ 'मदालसा चरितम्' भी पाया जाता है। इनको कृष्णराय संज्ञा से भी अभिहित किया जाता है।

कृष्णन् तम्पी- B.A. (ना.का.) संस्कृतकालेज त्रिवेन्द्रम में प्रधानाचार्य थे। इन्होंने छोटे-छोटे कई नाटक लिखे हैं। इनके नाटक हैं- ललिता, प्रतिक्रिया, वनज्योत्स्ना और धर्मस्य सूक्ष्मा गतिः इनके नाटकों का प्रकाशन त्रिवेन्द्रम् से हुआ है।

(१) **कृष्णनाटक-** (ना.कृ.) मानवेद लिखित १६५२ की नाटक गीति; इसे नाट्य की संज्ञा दी जा सकती है। इसमें आख्यान तत्व पद्यों में और भावना मूलक तत्व गीतों में प्रयुक्त किये गये हैं। गुरुवायूर मन्दिर में इसका प्रतिवर्ष अभिनय किया जाता है। त्रिचूर में मंगलोदय कम्पनी द्वारा इसका प्रकाशन किया गया।

(२) **कृष्णनाटक-** (ना.कृ.) दे. कष्णगीति।

कृष्णनाथ सार्वभौम भट्टाचार्य- (ना.का.) दुर्गादास चक्रवर्ती के पुत्र थे। इनका कविताओं का संग्रह 'आनन्द तिलक' नाम से प्राप्त हुआ है जो ५ कुसुमों में विभाजित है। इसमें बीच बीच विवरणात्मक और आख्यानात्मक भाग भी विखरे हैं। संवाद भी

सम्मिलित हैं और रंगमञ्च जैसे कतिमय निर्देश भी विद्यमान हैं जिनसे यह कृति नाट्य रचना का सीमा स्पर्श करती हैं। इन्होंने रामायणसार भी लिखा था और इनके आनन्दतिलकभाण का भी पता चलता है। शकुन्तलानाटक की व्याख्या लिखने वाले कृष्णनाथ कोई अन्य व्यक्ति हैं।

(आनन्दतिलक इण्डिया आफिस लायब्रेरी संस्कृतपाण्डुलिपि अनुभाग में सं. २४३ पर अंकित है और आनन्दतिलक भाण का उल्लेख दो खण्डों में प्रकाशित गुस्टान ओपर्ट द्वारा प्रकाशित 'प्राइवेट लायब्रेरीज इन सदर्न इण्डिया' की संस्कृत पाण्डुलिपियों की सूची १८२४ पर किया गया है।) इनकी लिखी नाट्यलतिका नामक नाट्य कृति भी उपलब्ध होती है।

कृष्णपन्त– (ना.का.) १९वीं शताब्दी में पिता वैद्यनाथ के यहां जन्म हुआ था। इनका समय २०वीं शताब्दी तक चलता रहा। इनकी रचनायें हैं– कामकन्दल (नाटक) रत्नावली (गद्य) और कालिका (मन्दाक्रान्ताशतक)

कृष्णप्रसाद शर्मा– (ना.का.) वीसवीं शताब्दी के काठमाण्डू (नेपाल) निवासी कवि। इनके लिखे कृष्णचरित इत्यादि १२ ग्रन्थ प्रकाशित हुये हैं। कविरत्न एवं विद्या-वारिधि ये उपाधियां इन्हें प्राप्त हुई थीं। इनका पूर्णाहुति नाटक भी प्रकाश में आया है।

कृष्णभक्तिचन्द्रिका– (ना.कृ.) यह अनन्त देव द्वारा लिखी एक नाट्य कृति है। बम्बई क्षेत्र में पेटर्सन द्वारा प्रस्तुत संस्कृत पाण्डुलिपियों की खोज रिपोर्ट में सं. II २३, १०३ पर इसका संकलन किया गया है। इसके अतिरिक्त ट्रावनकोर पुस्तकालय के पाण्डुलिपि अनुभाग में सं. १८० पर इसका उल्लेख किया गया है।

कृष्णभक्तिरसायन– (ना.कृ.) जीवदेव का लिखा नाटक। इसको भक्तिभागवत की भी संज्ञा दी जाती है। इसका उल्लेख गायकवाड़ ओरियण्टल सीरीज बड़ौदा की कवीन्द्र सूची में १९६७ संख्या पर किया गया है।

कृष्णमाचार्य– (कपिष्ठल) (ना.का.) ये तिरुपति के निवासी कौशिक गोत्रीय रंगनाथ के पुत्र थे। ये तर्क शास्त्र और दर्शन में प्रवीण थे। इनके समीक्षात्मक निबन्ध और काव्य ग्रन्थों के अतिरिक्त रसार्णव तरंग (दे.) नामक एक भाण भी बतलाया जाता है। इनका जन्म १८८३ में और मृत्यु १९३३ में हुई।

कृष्णमाचार्य आर.– (ना.का.) इनका समय १९वीं शताब्दी का अन्तिम चरण और २०वीं शताब्दी का प्रथम चरण है। इनकी सामाजिक और अनुसन्धानात्मक अनेक कृतियां मद्रास की सहृदया नामक पत्रिका में प्रकाशित होती रहीं। इसके साथ ही इन्होंने सेक्सपियर के दो नाटकों का संस्कृत में अनुवाद भी किया– ऐज यू लाइक इट का 'यथामियतम्' नाम से और मिड समर नाइट् ड्रीम का 'वासन्तिका स्वप्न' नाम से।

(१) **कृष्णमिश्र–** (ना.का.) प्रबोध चन्द्रोदय (दे.) नामक प्रतीकरूपक के लेखक। कामकोटि शंकरपीठ की वंशावली के अनुसार १०९७ से ११६५ ई. तक चन्द्रशेखर सरस्वती शंकर पीठ के पीठाधीश्वर थे और मंख तथा कृष्णमिश्र ये दो कवि उनके समसामयिक थे। इनके पिता का नाम विष्णु था। ये शंकर वेदान्त (अद्वैतवाद) के अनुयायी थे। कहा जाता है कि इनके शिष्यों में एक ऐसा था जो दर्शन के अध्ययन को व्यर्थ समझता था। उसके प्रतिबोध के लिये प्रबोध चन्द्रोदय नामक नाटक की रचना की गई थी। इस नाटक का बाह्यतत्व श्राङ्गारिकभावना परक और उसका अन्तस्तत्व वेदान्त प्रचार परक था। इसका प्रथम अभिनय जेजाकभुक्ति के चन्देल राजा कीर्तिवर्मा की उपस्थिति में किया गया था। इस बात का उल्लेख १८९८ के शिलालेख में पाया जाता है।

नाटक के आमुख में राजा कीर्ति वर्मा और उनके मित्र गोपाल की चेदिराज कर्णदेव की सेना पर विजय दिखलाई गई है। उस विजय के उपलक्ष्य में जो आनन्दोत्सव मनाया गया था उसी में विजेताओं का अभिनन्दन करने में मन्तव्य से इस नाटक की रचना की गई थी और उसी में उसका प्रथम अभिनय किया गया था।

महोवा के शिलालेख के अनुसार कीर्तिवर्मा चन्देल राजा थे और उन्होंने अपने सेनापति गोपाल को साथ लेकर चेदिराज कर्ण पर आक्रमण कर दिया। नाटक के आमुख में गोपाल को कीर्तिवर्मा का मित्र बतलाया गया है जबकि शिलालेख के अनुसार गोपाल उनके सेनानायक थे। कामकोटि शंकर पीठ के वंशवृक्ष के अनुसार मंख और कृष्णमिश्र गद्दी ४७ के अधिष्ठता चन्द्रशेखर के समसामयिक थे; चन्द्र शेखर का समय १०९७ से ११६५ ई. है। कीर्तिवर्मा का राज्यकाल १०४९ से १११६ ई. है। तथा इनकी विजय का समय १०६५ दिया हुआ है। अतः यही समय इस नाटक की रचना का भी होना चाहिए। सम्भवतः ये बंगाल के मूल निवासी थे।

(२) **कृष्णमिश्र–** (ना.का.) वीरविजय नामक ईहामृग के लेखक। (दे.) कोनो ने इस नाट्यकृति का उल्लेख अपनी नाट्य विषयक पुस्तक में किया है।

कृष्णमूर्ति– (ना.का.) दे. अभिनव कालिदास।

कृष्णमूर्तिकुमार मञ्जुलाचार्य– (ना.का.) दे. वल्लवीपल्लवोल्लास।

कृष्णराय– (ना.का.) दे. कृष्णदेवराय।

(१) **कृष्णलीला–** (ना.कृ.) वैद्यनाथ लिखित नाटक। इसमें दो युग्मों की प्रेमलीला का चित्रण किया गया है– राधा-कृष्ण एवं चन्द्रप्रभा-विजयनन्दन। इसकी रचना १८वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में की गई थी। इसका प्रथम अभिनय लक्ष्मीयात्रोत्सव में किया गया था। इसका संकलन कैटेलागस कैटेलागोरम सं. I १२३ और सं. II .२४७ पर किया गया है। अल्वर स्टेट में संस्कृत पाण्डुलिपियों के कैटेलाग सं. ९८ पर भी इसका सङ्कलन किया गया है।

कृष्णलीलातरंगिणी– (ना.कृ.) नारायणतीर्थ लिखित नाटक।

कृष्ण विजय– (ना.कृ.) यह वेंकटवरद (दे.) का लिखा एक डिम है। इसका संकलन मद्रास की ओरियण्टल लायब्रेरी के विवरणात्मक सूची सं. ८५६९-७४ पर किया गया है। इसके आमुख में इनके पूर्वजों की अनेक रचनाओं का परिचय दिया गया है।

कृष्णशास्त्री– (परित्तियूर) (ना.का.) रामशास्त्री के पुत्र थे। इनका जन्म तंजौर के कडगवडि नामक स्थान पर सन् १८४३ में हुआ था। इनके वाप दादा ऊंचे सरकारी पदों पर नियुक्त थे तथा अपनी पवित्रता और शिक्षा के लिये प्रसिद्ध थे। इनकी रचना में हनुमान, मीनाक्षी इत्यादि कई शतक तथा एक सेटायर के अतिरिक्त कौमुदीसोमम् (दे.) नामक एक नाटक भी है जो मद्रास से प्रकाशित हो चुका है।

कृष्णानन्द वाचस्पति– (ना.का.) इनके लिखे नाट्यपरिशिष्ट या अन्तर्व्याकरण नाट्यपरिशिष्ट का प्रकाशन कलकत्ता से हो चुका है जिसमें व्याकरण के सिद्धान्तों की नाटकीय मनोरंजन के साथ शिक्षा दी गई है।

कृष्णाब्धिशयनम्– (ना.कृ.) यह (१) श्रीनिवासाचार्य (दे.) का लिखा नाटक है जो कि अब तक प्रकाशित नहीं हो सका है। कृष्णमाचार्य के अनुसार इसकी प्रति राजमदन में इनके पुत्र आर.एस. कृष्णमाचार्य के पास अब भी सुरक्षित है। इसका अभिनय उसी स्कूल में हुआ था जहां ये कार्यरत थे।

कृष्णाभ्युदय– (ना.कृ.) कृष्ण जन्म को लेकर लोकनाथ भट्ट द्वारा लिखा गया नाटक। इसका प्रकाशन जवलपुर से १९६४ में हुआ था। प्रथम अभिनय काञ्चीपुर के हस्तगिरि नाथ की वार्षिक यात्रा महोत्सव के अवसर पर सम्पन्न हुआ था।

कृष्णार्जुन विजयम्– (ना.कृ.) यह वेंकटराम सी.वी. दीक्षितार लिखित ५ अंकों का नाटक है जिसके अंकों का विभाजन दृश्यों में किया गया है। प्रथम चार अंकों में प्रत्येक में दो दो दृश्य हैं जबकि अन्तिम अंक में तीन दृश्य हैं। इसमें युधिष्ठिर द्वारा गय नामक गन्धर्व की रक्षा दिखलाई गई है।

कृष्णावधूत पण्डित– (ना.का.) 'गीतम्' शीर्षक ईहामृग के लेखक। इनका समय १९वीं शताब्दी है।

केलिरैवतक– (ना.कृ.) यह हल्लीस नामक उपरूपक का उदाहरण है। इसका इसी रूप में उल्लेख साहित्य दर्पण और भावप्रकाशन में किया गया है। अब यह रचना उपलब्ध नहीं होती।

केशवनाथ– (ना.का.) इनका लिखा गोदापरिणय (दे.) नामक विवाहविषयक नाटक प्राप्त होता है जिसका उल्लेख कैटेलगास कैटेलागोरम् खण्ड १ सं. ११५९ पर किया गयाहै।

केशव शास्त्री– (ना.का.) सुभद्रार्जुन (दे.) नाटक के लेखक। इस नाटक की प्रति

ट्रावन्कोर के पुस्तकालय में १८२ संख्या पर सुरक्षित है।

केशी– (ना.पा.) एक दैत्य जिसका वध कृष्ण ने किया था। इसका उल्लेख भास के वालचरित में किया गया है।

कैकेयी– (ना.पा.) रामायण में दशरथ की छोटी रानी जिसके वरदान मांगने से ही राम को वन जाना पड़ा। यह राम विषयक कई नाटकों की पात्र हैं–

(१) **प्रतिमा नाटक**– में उसके चरित्र के परिमार्जन की चेष्टा ही नहीं की गई है अपितु उन्हें विवेकशील और दृढ़ चरित्रवाली महिला के रूप में भी चित्रित किया गया है। उसने सुन रक्खा है कि दशरथ को शाप मिला है कि पुत्र वियोग में उनकी मृत्यु होगी। वह चारों पुत्रों को हृदय से चाहती है और किसी को भी खोना नहीं चाहती। दशरथ को तो जाना ही है– यदि पुत्र वियोग करा दिया जाय तो तापस का शाप भी पूरा हो जायेगा और चारो बच्चों की रक्षा हो जायेगी। वह सर्वप्रथम यह प्रयोग अपने पुत्र भरत पर करती है। भरत को ननिहाल भेज देती है। किन्तु यह प्रयोग सफल नहीं होता। कैकेयी के शब्दों में दशरथ इस वियोग को सह जाते हैं। तब वशिष्ठ और वामदेव से परामर्श कर यह परीक्षण राम पर किया जाता है। इसके लिये वह अपने उस अधिकार का प्रयोग करती है जो उसके विवाह के अवसर पर दशरथ ने उसके पिता को वचन देकर उसे प्रदान किया था कि कैकेयी के गर्भ से जो सन्तान उत्पन्न होगी उसे ही राज्य प्रदान किया जायेगा। फिर भी वह १४ दिन के लिये वनवास देना चाहती थीं। घवराहट में उसके मुख से १४ वर्ष निकल गया। शायद यह विधिविधान ही था– १४ दिन के वनवास से शायद दशरथ की मृत्यु नहीं होती।

(२) **महावीरचरित**– में शूर्पणखा रावण की पराजय का वदला लेने के लिये कैकेयी की दासी मन्थरा का रूप बनाकर कैकेयी का कल्पित पत्र लेकर जनक पुर जाती है जहां राम ससुराल में विद्यमान हैं। पत्र में लिखा है कि कैकेयी ने दो वरदानों में एक में भरत का यौवराज्य और दूसरे में राम का १४ वर्ष का वनवास मांगा है। उधर भरत राम का राज्याभिषेक शीघ्र करने का आग्रह कर रहे हैं। जो बात एक वार कही गई है राम उस पर दृढ़ हो जाते हैं और भरत को प्रतिनिधि बनाकर वन चले जाते हैं।

(३) **अनर्घराघव**– में भी महावीर चरित का अनुसरण कर रामवनगमन के लिये शूर्पणखा की भूमिका अपनाई गई है।

कैतवकलाचन्द्र– (ना.कृ.) नारायण (दे.) का लिखा भाण। मद्रास पुस्तकालय के पाण्डुलिपि अनुभाग में इसे प्राप्त किया जा सकता है। इसका रचनाकाल १८वीं शताब्दी है। इसका प्रथम अभिनय श्रीरंगपत्तन में हुआ था।

कैलासकम्प– (ना.कृ.) यह श्रीराम भीकाजी वेलण्कर लिखित तीन अंकों का नाटक है। यह चीनभारतयुद्ध की पृष्ठभूमि में लिखा गया है। चीन ने भारत पर आक्रमण कर

दिया है जिससे समस्त कैलास मण्डल में भय व्यप्त हो गया है। चन्द्र, आकाश, गंगा और गणेश इत्यादि सभी कांप रहे हैं। जनता भय से त्रस्त होकर शंकर से प्रार्थना कर रही है। अन्त में भगवान् शंकर की कृपा से कैलाश शान्त हो जाता है। इसकी रचना १९६३ में हुई थी। इसकी रचना गेय पदों में है। प्रचलित गीतों के अतिरिक्त प्रादेशिक गीतों का भी प्रयोग किया गया है।

कैलासनाथ विजय- (ना.कृ.) जीवन्यायतीर्थ लिखित व्यायोग। बंगाल में जब कैलासनाथकाटजू राज्यपाल बनकर आये थे तब उनके स्वागत में इस नाटक की रचना और अभिनय किया गया था।

कैवल्यावलीपरिणय- (ना.कृ.) १९वीं शताब्दी के इल्लूराम की रचना। यह एक रूपक है।

कोच्चुन्नितंविरान- (ना.का.) दे. (३) रामवर्मा।

कोमुदगन्ध- (ना.पा.) अश्वघोष के नाटक गणिकाविषयक रुपक (दे.) में विदूषक का नाम कोमुदगन्ध (कौमुदगन्ध) रक्खा गया है। यह काव्यशास्त्र की इस परम्परा से मेल खाता है कि विदूषक का नाम पुष्प, वसन्त इत्यादि आधार पर रखना चाहिये। कौमुदगन्ध का शाब्दिक अर्थ है कुमुदगन्ध का पुत्र। इससे ज्ञात होता है कि अश्वघोष के समय तक विदूषक की नाट्य विषयक मान्यता पूर्ण प्रतिष्ठित हो चुकी थी। नाटक में विदूषक के समावेश से अश्वघोष की हास्यप्रवृत्ति भी प्रमाणित होती है। इसमें विदूषक एक पेटू ब्राह्मण है जो परवर्ती परम्परा से मेल खाता है। सम्भवतः यह नाम किसी परम्परा पर आधारित है।

कोलाहलपुर- (ना.स्थ.) शारदातिलक में एक कल्पित नगर।

कोसलिका- (ना.कृ.) यह भट्ट श्री भवनुतचूड की लिखी एक नाटिका है जिसका उल्लेख नाट्यदर्पण में किया गया है।

कौण्डिन्य- (ना.पा.) शारिपुत्रप्रकरण (दे.) का पात्र है। यह बुद्ध का शिष्य है और संस्कृत बोलता है।

(१) **कौण्डिन्य प्रहसन-** (ना.कृ.) यह महालिंग शास्त्री का लिखा एक प्रहसन है। परान्नभोजी ब्राह्मण कौण्डिन्य ने देखा कि गृध्रनास पृथुक (चूड़े) खरीद रहा है। अतः कौण्डिन्य को भी इच्छा उन चूड़ों के खाने की हुई। अतः वह गृध्रनास के पीछे चला गृध्रनास भी चूड़ों को बचाने के लिए जल्दी जल्दी घर की ओर चल दिया। घर में घुसकर जल्दी से दरवाजा बन्द करना चाहता है कि कौण्डिन्य पहुंच जाता है। गृध्रनास अति शीघ्रता से चूड़े मुंह में भर लेता है जो गरम होने के कारण उसका मुंह जलाने लगते हैं। कौण्डिन्य को बराने के लिये गृध्रनास की पत्नी जिह्मता कहती है कि गृध्रनास के मुख में फोड़े हो गये हैं अतः डाक्टर को बुला लाओ। कौण्डिन्य हटकर भूसे के ढेर के पास

खड़ा हो जाता है। जब उसे बाहर निकालने पति पत्नी आये तब वह उन दोनों की आंखों में भूसा झोंक देता है। जब तिलमिलाकर वें आंखें साफ करने लगते हैं तब सभी चिउड़े कौण्डिन्य खा लेता है और कहता है कि अब डाक्टर को मुंह का फोड़ा ठीक करने बुलाऊं या आंखों से भूसा निकलाने। यदि चिउड़े तुम अकेले खाते तो तुम्हें ब्रह्मराक्षस होना पड़ता। मैंने सारे चिउड़े खाकर तुम्हें ब्रह्मराक्षस बनने से बचा लिया।

कौण्डिन्य ब्राह्मण– (ना.पा.) कौण्डिन्य प्रहसन का मुख्य पात्र। यह पेटू ब्राह्मण है जिसका रसोई पर आक्रमण टाल सकना असम्भव हो जाता है। उसकी दृष्टि में मनुष्यों में वर्गभेद और उनमें संघर्ष का मूल कारण भूख ही बतलाया गया है। भूख ही एक ऐसी जीवन की चाहत है जो एक साथ नहीं चलने देती।

कौतुकरत्नाकर– (ना.कृ.) कवि तार्किक का लिखा प्रहसन। एक मूर्ख राजा इसका नायक है। इसके सभी पात्रों के नाम हास्य जनक हैं। नगरी - पुण्यवर्जिता; राजा - दुरितार्णव; मन्त्रिगण - कुमतिपुंज; मुख्य पुरोहित - आचार कालकूट; सेनापति - समर कातर; आरक्षक अधिकारी - सुशीलान्तक; चिकित्साधिकारी - व्याधिवर्धन; ज्योतिषी - अंशुभचिन्तक; इसका मुख्य कथानक है - रानी दुश्शीला का अपहरण हो जाता है। उसकी खोज के लिये राजा ने सभी प्रकार के दुश्चरित्र, दुष्ट लोगों को नियुक्त किया है। वसन्तोत्सव आ गया है; अतः राजा को सहधर्मिणी की आवश्यकता है। मन्त्रिमण्डल के परामर्श से राजा अनंगतरंगिणी वेश्या से विवाह कर लेता है। तभी पता चलता है कि कपटवेषधारी नामक ब्राह्मण ने रानी का अपहरण किया था। वही ब्राह्मण अब अनंगतरंगिणी पर भी डोरे डाल रहा है। कोर्ट में मामला जाता है। ब्राह्मण अपराधी घोषित होता है। किन्तु वसन्तोत्सव में खुलकर भाग लेने से उसका अपराध धुल जाता है।

कौतुकसर्वस्व– (ना.कृ.) गोपीनाथ चक्रवती लिखित प्रहसन। सत्याचार एक पुण्यात्मा ब्राह्मण है जो कलिवत्सल के राज्य में सभी प्रकार के अन्याय देखता है। परपीडन, झूठ बोलना, धर्मशीलों के प्रति घृणा इत्यादि आम बातें हो गई हैं। सेनापति बहुत वीर है जो तलवार से मक्खन की टिक्की भी काट सकता है किन्तु मच्छर के सामने कांपने लगता है। ऋषि लोग बुढ़ापे के कारण जो काम स्वयं नहीं कर पाते उसे अधर्म कह देते हैं। राजा स्वच्छन्द प्रेम की घोषणा करता है; किन्तु गणिका से प्रेम प्रसंग में रानी उसे तलव कर देती है। गणिका की मिजाज पुर्सी के लिये सभी लोग दौड़ पड़ते हैं। राजा उसे प्रसन्न करने के लिये सभी ब्राह्मणों को देश निकाला दे देता है।

बंगाल में दुर्गापूजा के अवसर पर खेलने के लिये इसकी रचना की गई थी। इसके रचना काल का पता नहीं चलता कैटेलागस कैटेलागोरम सं. I १३१ और III २८ पर इसका संकलन किया गया है। विल्सन ने थियेटर सं. II ४१० पर इसका विश्लेषण किया है। सामान्यतः यह रचना अच्छी मानी जाती है। कीथ के अनुसार यह नाटक अन्य प्रहसनों से अधिक रोचक और कम अश्लील है।

कौत्सस्य गुरुदक्षिणा– (ना.कृ.) वासुदेव द्विवेदी (दे.) लिखित एकाङ्की। यह रघुवंश के ५वें सर्ग के कथानक पर आधारित है। वरतन्तु के शिष्य कौत्स द्वारा राजा रघु से गुरु दक्षिणा के लिये सहायता मांगने का कथानक इसमें रुपायित किया गया है।

इसका प्रकाशन संस्कृतप्रचारपुस्तकमाला वाराणसी से हुआ है।

कौमुदगन्ध– (ना.कृ.) दे. कोमुदगन्ध।

कौमुदी– (ना.पा.) (१) कौमुदी मित्रानन्द (दे.) की नायिका। इसका जीवन अनेक विषम परिस्थितियों से आक्रान्त है। पहले तो यह एक मक्कार साधु के नियन्त्रण में है जो विभिन्न धनिकों से उसका विवाह कर पतियों को मौत के घाट उतार देता है और उनकी सम्पत्ति पर अधिकार कर लेता है। संयोग से उसे एक निपुण तथा साहसी व्यक्ति मित्रानन्द मिल जाता है जिस पर साधु की कोई कला नहीं चलती। कौमुदी पुराने पतियों की सम्पत्ति लेकर उसके साथ चली जाती है। किन्तु वह चोर समझ ली जाती है और राजपुरुषों के हाथ में पड़ जाती है। मित्रानन्द का राजा पर कुछ अहसान है जिससे वहां भी छूट जाती है। राजा उन्हें मन्त्री के संरक्षण में दे देता है। वहां भी मन्त्री की नियत कौमुदी पर विगड़ जाती है। मन्त्री धोखा देकर मित्रानन्द को नरवलि के इच्छुक एक व्यक्ति के पास भेजकर उससे छुटकारा पाकर कौमुदी पर अधिकार करना चाहता है। मन्त्री की पत्नी कौमुदी को घर से निकाल देती है। वहां से छूटकर वह आदिवासियों के सरदार वज्रदन्त के हाथ पड़ जाती है। वहां पर राजा के पत्र द्वारा छुटकारा पाती है। तब वह एक कापालिक के हाथ पड़ जाती है। उधर किसी तरह भटकता हुआ मित्रानन्द भी वहां पहुंच जाता है। कापालिक एक शव में प्राण फूंक देता है जो तलवार लेकर उठ खड़ा होता है किन्तु मित्रानन्द मन्त्रों के प्रभाव से उसका रुख कापलिक की ओर मोड़ देता है और कापालिक अदृश्य हो जाता है। अन्त में सिद्धराज के स्थान पर दोनों का विवाह हो जाता है और वे आनन्द से रहने लगते हैं।

(२) **कौमुदी सुधाकर** (दे.) की नायिका। सुधाकर नायक कात्यायनी यात्रा में कौमुदी पर आसक्त हो गया है। किन्तु एक कापालिक कौमुदी का अपहरण कर लेता है। नायक उसे ढूंढ निकालता है। फिर राजा वसुमित्र के लिये उसका उपहरण किया जाता है फिर उसकी रक्षा हो जाती है और नायक-नायिका का विवाह सम्पन्न हो जाता है।

(३) **कौमुदी सोमम्**– (दे.) की नायिका। राजा शरदारम्भ ने पुत्री कौमुदी को अशुभ लग्न में जन्म लेने के दोष में परिहार के लिये एक गणिका को सौंप दिया। एक वसन्तोत्सव में ज्योत्स्नावती का राजा सोम उस पर आसक्त हो गया। किन्तु सोम पर राजा अन्धकार के आक्रमण के मध्य कौमुदी का अपहरण हो जाता है गभस्ति देवी उसे वचाकर सोम से उसका विवाह करा देती है।

कौमुदीमहोत्सव– (ना.कृ.) मद्रास में प्राप्त नाटक का सम्पादन रामकृष्ण कवि

और रामनाथ शास्त्री ने किया था और उसके साथ एक प्रस्तावना भी लिखी थी। नाटक की उपलब्ध प्रति में न तो नाटक का नाम है और न लेखक का पता चलता है। सूत्रधार के कथन में कौमुदीमहोत्सव का श्लेष दिया गया है जिसके आधार पर सम्पादकों ने कल्पना कर ली है कि इस नाटक का नाम कौमुदीमहोत्सव होगा। पुष्पिका में लेखक का नाम कीड़ों ने खा डाला है; केवल अन्तिम दो अक्षर 'कया' पढ़ने में आ रहे हैं। ये अक्षर तृतीया एक वचन के अन्तिम अक्षर मालूम पड़ते हैं। जिससे ज्ञात होता है कि इस पुस्तक की रचना किसी ऐसी स्त्री ने की थी जिसके नाम का अन्तिम अक्षर 'का' है। कल्पना की गई है कि इसकी लेखिका विज्ञिका हैं।

मगध के शासकों का लिच्छवी वंश वालों से पुराना वैर चल रहा था। मगध के शासक सुन्दर वर्मा के सेनाधिकारी चन्द्रसेन ने लिच्छवी वंश के शासकों से साठ गांठ कर षड्यन्त्र से मगध पर आक्रमण करा दिया। युद्ध में सुन्दर वर्मा मारा गया। मगध के मन्त्री मन्त्रगुप्त ने मन्त्रियों के कुछ पुत्रों को मिलाकर विन्ध्याचल में पम्पा नामक स्थान पर राजकुमार कल्याणमल्ल को छिपा दिया और गुप्त रूप से राजकुमार को सिंहासनासीन करने के अवसर की खोज करने लगा। कुछ वर्षों में उसने सेना को फोड़ लिया और षड्यन्त्रकारी को पराजित कर दिया। कल्याण मल्ल को पुनः राज्य प्राप्ति हो गई। उसके राज्यारोहण के अवसर पर उत्सव में इस नाटक का अभिनय किया गया था।

यह नाटक राजनैतिक दांवपेंचों से सम्बन्धित है। किन्तु साथ में प्रेम प्रसंग का समावेश कर इसे मनोरंजक बनाया गया है। राजा सुन्दरवर्मा के राज्यकाल में योगसिद्धि नामक परिचारिका (नर्स) कल्याण मल्ल की देख रेख के लिये नियुक्त थी। जब सुन्दर वर्मा युद्ध में मारे गये योगसिद्धि विरक्त होकर सन्यासिनी बन गई। वह तीर्थ यात्रा के प्रसंग में मथुरा आती है जहां शूरसेन के राजा कीर्तिसेन उसका विशेष सत्कार करते हैं। वह विन्ध्याचल में विन्ध्यवासिनी देवी के दर्शन करने जा रही है। अतः कीर्तिसेन अपनी पुत्री कीर्तिमती को उसके साथ कर देते हैं। संयोगवश विन्ध्याचल के मध्य में पम्पा में उनका कल्याणमल्ल से परिचय होता है। कीर्तिमती और कल्याण मल्ल एक दूसरे को देखते हैं और एक दृष्टि में दोनों में उत्कट प्रेम हो जाता है। उन दोनों के चित्र को देखकर योगसिद्धि अपने पालित राजकुमार को पहिंचान लेती है और पुरानी स्मृतियों में उसका हृदय भर जाता है। इसी बीच मन्त्रगुप्त की योजना सफल हो जाती है वह षड्यन्त्रकारियों को पराजित कर मगध के शासन पर कल्याणमल्ल का अभिषेक कर देता है। इसके पहले ही योगसिद्धि मधुरा को लौटकर कल्याणमल्ल और कीर्तिमती के प्रेम की बात बतलाती है। कीर्तिसेन पहले ही कल्याणमल्ल की चतुरता और निपुणता से प्रभावित है। अब पुत्री की प्रेम भावना उसे और अधिक स्नेहशील बना देती है। वह रत्नमाला भेजकर विवाह का प्रस्ताव करता है और कल्याणमल्ल उसे सहर्ष स्वीकार कर लेता है।

राज्यारोहण का उत्सव कौमुदीमहोत्सव के रूप में मनाया जाता है। अतः इस नाटक

का नामकरण भी उसी आधार पर कल्पित कर लिया गया है। इसमें उच्चकोटि की काव्याकला है जो कहीं कहीं कालिदास से होड़ लेती है।

इस नाटक का कथानक ऐतिहासिक है। इसका सम्बन्ध गुप्त काल के प्रारम्भ से है। ऐसा प्रतीत होता है कि कनिष्क या उसके उत्तराधिकारी ने प्रशासन की सुविधा के लिये मद्रक जाट लोगों को आमन्त्रित किया था। यह शकों की जाति थी जिसकी सामाजिक स्वच्छन्दता के कारण इन्हें सम्मानित दृष्टि से नहीं देखा जाता था। जैसा कि महाभारत के कर्णपर्व से स्पष्ट है। इस जाति के लोगों को शवरों के दमन करने के मन्तव्य से बिहार और कौशाम्बी के मध्य का प्रदेश दिया गया था। उनकी हैसियत सामन्त लोगों की थी। जायसवाल के अनुसार यह गुप्त राजाओं का वर्ग था। प्रथम गुप्त सामन्त के शासन का विस्तार इलाहाबाद और साकेत (अयोध्या) तक था। इसका पुत्र घटोत्कच और घटोत्कच का पुत्र चन्द्रसेन कहा जाताहै। इस चन्द्र या चन्द्रसेन ने ही गुप्त वंश के शासन की नीव डाली थी। तत्कालीन मगध सम्राट् सुन्दरवर्मा के अनेक रानियां थीं किन्तु उनमें सन्तान किसी से नहीं थी। अतः सम्राट ने चन्द्र को गोद ले लिया और सम्भवतः उसे ही शासन का उत्तराधिकारी सौंपने को विचार भी था। संयोगवश सम्राट की छोटी रानी ने कल्याणमल्ल को जन्म दे दिया जिससे शासन को एक वास्तविक उत्तराधिकारी मिल गया और हीनजाति के शासन की सम्भावना से जनता का पीछा छूटा।

जब चन्द्र को शासन की वागडोर अपने पैरों के नीचे से सरकती मालूम पड़ी तब उसने मगध के शत्रु लिच्छवियों की राजकुमारी कुमार देवी से विवाह कर लिया जो अपने पति को असीमित प्रतिष्ठा प्रदान करने में कारण बनी। लिच्छवियों की शक्तिशाली सेना लेकर चन्द्र या चन्द्रसेन ने मगध पर आक्रमण कर दिया और युद्ध में महाराज सुन्दरवर्मा खेत रहा; मगध की गद्दी पर चन्द्र का शासन स्थापित हो गया उसने महाराजाधिराज की उपाधि धारण की। वह एक क्रूर शासक था और उसके सहायक लिच्छवी भी अत्याचारी थे जिन्हें कौमुदीमहोत्सव की लेखिका ने राक्षस कहा है। नवीन शासन के अत्याचारों से जनता त्रास्त हो उठी जो कि पहले से ही हीनवंशीय होने के कारण चन्द्र को अच्छी निगाह से नहीं देखती थी।

कल्याण मल्ल अभी दुधमुहां बच्चा था। किसी न किसी प्रकार मन्त्रियों ने उसे निकाल कर वाकाटक वंश वालों के संरक्षण में किष्किन्धा में भेज दिया। जब कुमार बड़ा हो गया तब मन्त्रियों ने चन्द्र को पराजित कर उसे राज्य पर स्थापित कर दिया। उसके राज्यारोहण के अवसर पर ही यह नाटक खेला गया था। राजकुमार कल्याणमल्ल की शादी मथुरा की राजकुमारी से हुई थी;

कौमुदी मित्रानन्द- (ना.कृ.) यह (१) रामचन्द्र द्वारा लिखित १० अंकों का एक प्रकरण है। कीथ के अनुसार यह एक पूर्ण नाट्य कृति नहीं है किन्तु अनेक घटनाओं को नाट्य शैली में प्रस्तुत कर उन्हें एक में जोड़ दिया गया है जिनका समाहार एक फल में

हो जाता है।

कौमुदी और मित्रानन्द की प्रेम कथा इसकी आधिकारिक कथावस्तु है। कौमुदी-वरुण द्वीप में एक बिहार के अध्यक्ष की पुत्री है। वह एक साधु के नियन्त्रण में है जो बहुत ही धूर्त और मक्कार है। कौमुदी का विवाह अनेक पतियों से किया गया और साधु ने उन सब पतियों को विवाह मण्डप के नीचे बने एक गर्त में झोंक दिया। वह सार्थवाह मित्रानन्द के सम्पर्क में आती है। मित्रानन्द ने अपने एक मित्र के साथ वरुण द्वारा निर्दयता पूर्वक बांधे गये सिद्धराज को मुक्त कराया है और वरुण से मोहन मन्त्र प्राप्त किया है। अतः उस पर साधु का अत्याचार नहीं चल सका। कैमुदी और मित्रानन्द का प्रेम हो जाता है। कौमुदी पुराने पतियों का धन लेकर मित्रानन्द के साथ सिंहल को भाग जाने के लिये उद्यत है। किन्तु राजपुरुष उसे चोर समझते हैं। इस प्रकार वे एक नई विपत्ति में पड़ जाते हैं। संयोगवश मित्रानन्द ने मन्त्र के प्रभाव से राजा लक्ष्मीपति को सर्पदंश से बचाया था। अतः राजा हस्तक्षेप कर उन्हें बचा लेता है और उन्हें मन्त्री के संरक्षण में दे देता है।

यहां दूसरी विपत्ति आ जाती है। मन्त्री की निगाह कौमुदी पर है और वह मित्रानन्द से छुटकारा पाकर कौमुदी को हस्तगत करना चाहता है। इसके लिये वह पत्र देकर मित्रानन्द को एक सामन्त के पास भेजता है जो नरवलि के लिये किसी पुरुष की तलाश में है। वहां भी भाग्य से उसे एक साथी मैत्रेय की सहायता मिल जाती है जिसने सामन्त को जड़ी बूटी के प्रभाव से रोगमुक्त किया था। अतः मैत्रेय की सहायता से मित्रानन्द विपत्ति से छूट जाता है।

इधर मन्त्री की पत्नी ईर्ष्यावश कौमुदी को घर से निकाल देती है। तब कौमुदी भटकती हुई आदिवासियों के सरदार वज्रदन्त के हाथ में पड़ जाती है। उसी के यहां किसी सार्थवाह की पुत्री सुमित्रा और उसके परिवार के साथ कौमुदी का परिचय हो जाता है। वज्रदन्त सभी को बन्दी बना लेता है। वहीं मित्रानन्द का मित्र मकरन्द भी पहुंच जाता है। इसी समय कौमुदी और मित्रानन्द का समाचार जानने के लिये राजा का पत्र आता है जिसका लाभ उठाकर कौमुदी वज्रवर्मा के माध्यम से मकरन्द और सुमित्रा का विवाह कर देती है।

एकचक्रानगरी में एक कापालिक भूमिगत कन्दरा में स्त्रियों का प्रवेश कराता है। उसी समय वह स्त्रीलोलुप विद्याधर को नष्ट करने के लिये मित्रानन्द की सहायता चाहता है। वह एक शव में प्राणों का संचार कर देता है जो अपने हाथ में तलवार लेकर उठ खड़ा होता है। तब मित्रानन्द अपने मन्त्रों के प्रभाव से उसका रुख कापालिक की ओर मोड़ देता है। कापालिक अदृश्य हो जाता है। मकरन्द के कारवां पर नारायणनामक एक व्यक्ति अपना अधिकार जमाना चाहता है जिसका विवाद मित्रानन्द और विजयवर्मा के आने पर समाप्त हो जाता है।

यह नाटक रसात्मक दृष्टि से अत्यन्त निम्नकोटि का है। केवल आश्चर्यजनक घटनाओं में अद्‌भुत का यत्किञ्चित् आस्वाद प्राप्त हो जाता है।

इसकी रचना ११७३ से ११७६ के मध्य हुई। प्रकाशन १९१७ में भावनगर से किया गया।

कौमुदी सुधाकर– (ना.कृ.) एक प्रकरण जिसकी रचना चन्द्रकान्त तर्कालंकार (दे.) ने की थी। इसका प्रकाशन कलकत्ता से किया जा चुका है। कौमुदी और सुधाकर के प्रेम को लेकर इसके कथानक की रचना की गई है। नायक सुधाकर ने कात्यायनी यात्रा महोत्सव में नायिका कौमुदी को देखा है और वह उस पर आसक्त हो गया है। खण्डमुण्डन नामक एक कापालिक नायिका का अपहरण कर लेता है। किन्तु नायक सुधाकर उसे ढूंढ निकालता है। दूसरी वार फिर राजा वसुमित्र के लिये उसका अपहरण किया जाता है। किन्तु भगवती की कृपा से उसकी फिर रक्षा कर ली जाती है। अन्त में नायक नायिका का विवाह सम्पन्न हो जाता है।

इस नाटक की रचना १८८८ में हुई थी और उसी वर्ष कलकत्ता से उसका प्रकाशन हो गया था। हरचन्द्र के यहां पुत्रों के विवाह के अवसर पर इसका अभिनय किया गया था।

कौमुदीसोमम्– (ना.कृ.) कृष्णशास्त्री परित्तियूर लिखित ५ अंकों का नाटक। यह एक प्रेम प्रधान नाटक है जिसमें उच्चकोटि की कविता के दर्शन होते हैं। इसमें नामकरण प्राकृतिक तत्वों के आधार पर किये गये हैं जिससे यह नाटक प्रतीक नाटक जैसा प्रतीत होता है। पुष्करपुरी में शरदारम्भ राजा के यहां कौमुदी कन्या का जन्म अशुभ लग्न में हुआ है। अतः दोषशान्ति के लिये उसे कस्तूरिका नामक गणिका को सौंप दिया जाता है। ज्योत्स्नावती एक दूसरी नगरी है जिसकी रानी तारावती द्वारा आयोजित वसन्तोत्सव में कस्तूरिका और कौमुदी दोनों आती हैं। ज्योत्स्नावती का राजा सोम कौमुदी पर मोहित हो जाता है। इसी बीच सोम की राजधानी पर अन्धकार नामक राजा का आक्रमण होता है और परिणाम स्वरूप कौमुदी का अपहरण हो जाता है जिसे गभस्ति देवी बचा लेती हैं और सोम तथा कौमुदी का पुनर्मिलन हो जाता है।

इस रूपक की रचना १८६० में केरल नरेश रामवर्मा के राज्याभिषेक के अवसर पर की गई थी। इसका प्रकाशन मद्रास से हुआ है।

कौशल्या– (ना.पा.) राम की माता। रामायण में इनमें मातृत्व के गुण और सहृदयता भरपूर है। कर्तव्य परायणता की भी कमी नहीं। रामायण में इसके प्रति सहानुभूति जागृत होती है। यह सचमुच अत्यन्त दुःख से पीड़ित है जैसाकि इसने स्वयं कहा है– सौतों के उत्पीड़न में पड़ी रहने से पति के पौरुष में न कल्याण देखा न सुख–

'न दृष्टपूर्वं कल्याणं सुखं वा पतिपौरुषे'

पुत्र का निर्वासन, वैधव्य और अन्त में बहू का निर्वासन तथा पौत्रों का जंगल में जन्म। किन्तु राम विषयक अधिकांश नाटकों में इस पात्र की उपेक्षा ही हुई है। उत्तर रामचिरत में अवश्य उसके प्रति समवेदना व्यक्त की गई है। सन्यस्त जीवन विता रहे जनक से उनकी मुलाकात वन में होती है जहां करुणा छा जाती है और समवेदना का वातावरण अपनी चरम सीमा पर पहुंच जाता है। कीथ के शब्दों में उनकी समवेदनाओं में अमायिकता है और चित्रण हृदयस्पर्शी है।

कौशिक- (ना.पा.) यह चण्डकौशिक नाटक का एक पात्र है। यह क्रोधी व्यक्ति है। जिस समय यह वेदत्रयी की साधना में निरत है; आश्रम में आती हुई स्त्रियों की करुण वेदना को सुनकर उसी समय वहां पहुंचे हुये हरिश्चन्द्र भूल से यह समझ जाते हैं कि आश्रम में किसी स्त्री का वलिदान किया जा रहा है। वे आश्रमवालों को अपशब्द कह देते हैं जिससे कौशिक रुष्ट होकर शाप दे देते हैं और प्रतिक्रिया बड़ी भयानक होती है। उनके क्रोध को शान्त करने के लिये हरिश्चन्द्र को अपना राज्य ही नहीं सर्वस्व दे देना पड़ता है यहां तक कि स्त्री, पुत्र को और स्वयं को भी वेंचना पड़ता है।

कौशिक नल्लबुध- (ना.का.) इनका लिखा शृङ्गारसर्वस्व (दे.) नामक एक भाण प्राप्त होता है जिसका संकलन तंजौर की पैलेस लायब्रेरी में सं. VIII ३९०६ पर किया गया है।

कौशिकी- (ना.पा.) मालविकाग्निमित्र (दे.) की एक पात्र। वह मालविका और उसकी संरक्षिका रही है और विपत्तियों की मारी तपस्विनी बनकर विदिशा में आई है। वह उदात्त पात्र है; विदुषी है और संस्कृत बोलती है; नृत्यकला और सर्पदंश चिकित्सा में पारंगत है। वह मालविका को राजा के निकट लाने में सहायक होती है किन्तु मालविका की वास्तविकता प्रकट करने के लिये तब तक चुप रहती है जब तक उसका उचित अवसर नहीं आता। वह पीठमर्दिका (गुणवती सहायिका) कही गईहै और एक विश्वसनीय दूती का कर्तव्य पूरा करती है। वह मालविका के साथ राजा के विवाह में सहायक होते हुये भी रानी धारिणी को ढाढस बंधाती है और उसकी विश्वास पात्र बनी रहती है।

क्रीड़ाभिराम- (ना.कृ.) इस नाम की एक वीथी संस्कृत में लिखी गई थी जो अब उपलब्ध नहीं होती। किन्तु तेलुगु में इसका अनुवाद मिलता है। इसमें संस्कृत नाट्य के छायारूप के अन्तर्गत चित्रदर्शन पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। प्रतापरुद्र II के आश्रय में इसकी रचना हुई थी। टिट्टिभ और गोविन्द ये दो व्यक्ति वारंगल की सड़क पर घूम रहे हैं। वे सड़क के आस पास के दृश्यों को चित्र पट पर दिखलाते हुए सुविचारित एवं मनोरंजक रूप में वर्णन करते हैं। इसमें कनवास के परदे पर पालनाडु के ६५ नायक दिखलाये गये हैं। चित्र दर्शन के इसी व्यवसाय में लगा एक शरारती बच्चा संगीत के

वोलों पर अभिनय करता है जिसे एक पेशेवर औरत गाती है। दृश्य में नायिका वासना से उत्तेजित है और सामन्त लोगों का इस रूप में प्रदर्शन किया गया है कि वे नायिका के लिये वासना में अन्धे हो रहे हैं तथा आपस में विनाशक संघर्ष में निरत हैं।

क्रीडा रसातल– (ना.कृ.) विश्वनाथ ने श्रीगदित उपरूपक के उदाहरण के रूप में इसका उल्लेख किया है जो अब प्राप्त नहीं होता।

क्रूरसापत्न्यम्– (ना.कृ.) (१) नारायण शास्त्री (दे.) लिखित ६ अंकों का नाटक।

क्लान्तकौन्तेयम्– (ना.कृ.) (१) नारायण शास्त्री (दे.) लिखित ७ अंकों का नाटक।

क्लिष्टकीचकम्– (ना.कृ.) (१) नारायण शास्त्री (दे.) लिखित ५ अंकों का नाटक।

क्षणिकविभ्रम– (ना.कृ.) लीलाराव दयाल लिखित एकाङ्की जिसमें एक ऐसे पति का चित्रण है जो पत्नी के दुर्व्यवहार से तंग होकर घर छोड़ देता है।

क्षपणक– (ना.पा.) (१) मद्राराक्षस का एक पात्र। यह एक गुप्तचर है।

(२) प्रबोधचन्द्रोदय में जैनमत का प्रतीक।

क्षमा– (ना.पा.) प्रबोधचन्द्रोदय में राजा विवेक की प्रधान नायिका।

क्षमाशीलो युधिष्ठिरः– (ना.कृ.) दे. युधिष्ठिर।

क्षितीशचन्द्र चट्टोपाध्याय– (ना.का.) इनका समय १८९६ से १९६१ ई. है। इनके पिता शरच्चन्द्र और माता गिरिवालादेवी थीं। ये प्रसिद्ध वैयाकरण एवं भाषा शास्त्री और कलकत्ता विद्यालय में तुलनात्मक भाषाशास्त्र के प्रतिष्ठित प्राध्यापक थे। इन्होंने कई पत्रिकाओं का सम्पादन किया था। इनकी रचनायें मञ्जूषा में प्रकाशित होती रही थीं। इन रचनाओं में एक एकांकी 'अन्धैरन्धस्य दृष्टिः प्रदीयते' भी है जो जन. १९५५ में प्रकाशित हुआ था।

क्षीराब्धिशयनम्– (ना.कृ.) यह १९वीं शताब्दी के श्रीनिवासाचार्य की प्रहसन कृति है जिसके नाम से ज्ञात होता है कि इसमें विष्णु भगवान की शेष शय्या को कथानक की पृष्ठ भूमि के रूप में स्वीकार किया गया होगा। कृष्णमाचार्य ने लिखा है कि इसकी पाण्डुलिपि उनके पुत्र आर. कृष्णमाचार्य के यहां सुरक्षित है जो राजमदन के निवासी थे।

क्षुत्क्षेमीयम्-- (ना.कृ.) यह श्री जीवन्यायतीर्थ का लिखा नाटक है जिसकी रचना २०वीं शताब्दी के प्रारम्भ में और प्रकाशन १९७२ मे नाटकचक्रम् के अन्तर्गत कलकत्ता में किया गया था।

इसका नायक रंगनाथ है जो यमराज के एक अधिकारी चित्रगुप्त का स्वागत सत्कार करता है। चित्रगुप्त उहें बतलाते हैं कि उनकी आयु केवल एक वर्ष शेष है। किन्तु यदि वे दीन दुखियों के लिये उनके घरों पर छानी का प्रबन्ध करें तो आयु बढ़ाई जा सकती है। रंगनाथ इस परामर्श के अनुसार कार्य करने लगते हैं। मृत्यु के बाद रंगनाथ को

यमलोक ले जाया जाता है। जब यमराज उपस्थित होते हैं तब चित्रगुप्त की योजना के अनुसार रंगनाथ छींक देता है। सामान्य आचार है कि किसी को छींक आने पर 'जीव' 'जीव' कहा जाता है। उसी परम्परा के अनुसार यमराज 'जीव' 'जीव' कह देते हैं। तब चित्रगुप्त कहते हैं कि अब तो आपको इसे जीवन दान देना ही होगा क्योंकि आपने 'जीव' 'जीव' कह दिया है और इसने गरीबों के घरों पर छानी की व्यवस्था की है। तब यमराज उसके जीवन का लेखा जोखा देखकर गरीवों के लिये छानी की व्यवस्था के पुरस्कार के रूप में उसे पुनः जीवन में लौटने का आदेश देते हैं।

इसका प्रथम अभिनय संस्कृत साहित्य समाज की प्रतिष्ठा के अवसर पर किया गया था।

क्षेमीश्वर– (ना.का.) इनको क्षेमेन्द्र के नाम से भी पुकारा जाता है। किन्तु प्रसिद्ध काश्मीरी कवि क्षेमेन्द्र से ये भिन्न थे। इनके चण्डकौशिक की प्रस्तावना में लिखा है कि यह नाटक कन्नौज के राजा महीपाल के लिये लिखा गया था। कहा नहीं जा सकता कि क्या ये महीपाल वही थे जिनके लिये राज शेखर ने बालभारत की रचना की थी। यदि वे वही महीपाल हों तो ये राज शेखर (दे.) के समसामयिक सिद्ध होते हैं। वैसे इन्होंने अपने आश्रयदाता की कर्णाटों पर विजय का उल्लेख किया है जिससे राजशेखर के साथ इनकी समसामयिकता प्रमाणित होती है। पिशेल इसी मत के हैं किन्तु कृष्णमाचार्य का मत है कि ये महिपाल ११वीं शताब्दी के भुवनमल्ल हैं जिनकी कतिपय प्रशस्तियां प्राप्त हुई हैं। इनके पितामह के भाई का नाम विजय प्रकोष्ठ था।

इनके दो नाटक प्रसिद्ध हैं– नैषधायन (दे.) और चण्डकौशिक (दे.)। ये बड़े छन्दों में लिखने के शौकीन हैं और उसमें सिद्धहस्त भी हैं। विण्टरनित्ज का कहना है कि भाषा की शक्ति, करुण-भावना और लम्बे समासों की शैली भवभूति की याद दिलाती है यद्यपि ये वहां तक पहुंचते नहीं हैं। अज्ञातनामा कवि की हरिश्चन्द्रयशश्चन्द्रिका कुछ लोगों के मत में इन्हीं की रचना है।

(१) **क्षेमेन्द्र–** (ना.का.) ११वीं शताब्दी के बहुमुखी प्रतिभा के धनी, काश्मीरी कवि क्षेमेन्द्र का उपनाम व्यासदास भी प्राप्त होता है। इनके पिता प्रकाश सेन बहुत बड़े दानी थे और उन्होंने विभिन्न धार्मिक कार्यों में लगभग ३ करोड़ रुपिया व्यय कर दिया था। अभिनवगुप्त इनके गुरु थे। पहले ये शैव मातानुयायी थे किन्तु बाद में सोमाचार्य की शिक्षा के प्रभाव से वैष्णव हो गये थे और भागवतधर्म का पालन करने लगे थे। यद्यपि ये बौद्ध नहीं थे फिर भी उस धर्म के प्रति उनकी दृष्टि उदार थी।

साहित्य की शायद कोई ही विधा या कोई ही विषय विभाग हो जिसमें इन्होंने रचना न की हो। महाभारत रामायण जैसी मूर्धन्य कृतियों का संक्षिप्तीकरण, बृहत्कथा और कादम्बरी का पद्यबद्ध अनुवाद, धार्मिक, उपदेशपरक, कर्मकाण्ड सम्बन्धी, नीतिसूक्ति, कविशिक्षा, काव्यशास्त्र, छन्दः शास्त्र, राजनीति, इतिहास, संस्मरण, भौगोलिक वर्णन, व्यापार,

सीनरी, पुराण, राजावली, आर्थिक लेन देन, कवि परिचय यहां तक कि कामशास्त्र सम्बन्धी विषय भी इनकी मौलिक रचना के क्षेत्र से अछूते नहीं रहे। इनकी अनेक कृतियां अब लुप्त हो गई हैं। उनका नामोल्लेख मात्र शेष रह गया है।

क्षेमेन्द्र की कोई नाट्यकृति अब तक उपलब्ध नहीं हुई है। इनकी दूसरी कृतियों में कतिपय उद्धरण या उल्लेख पाये जैते हैं जिनसे ज्ञात होता है इन्होंने कई नाटक भी लिखे थे। औचित्यविचारचर्चा से दो नाटकों का पता चलता है– ललितरत्नमाला और चित्रभारत। इस दूसरे नाटक से कवि कण्ठाभरण में भी उद्धरण दिया गया है। कविकण्ठाभरण में कनकजानकी नामक एक तीसरे नाटक से भी उद्धरण दिया गया है। कृष्णमाचार्य ने 'कलावतीकामरुपम्' प्रकरण का रचयिता भी क्षेमेन्द्र को ही माना है।

क्षेमेन्द्र जेसे बहुमुखी प्रतिभा के धनी थोड़े ही रचनाकार होते हैं। अभी तक इनका साहित्य अनुसन्धानापेक्षी है और हम तत्कालीन भारत के विषय में इनकी रचनाओं से बहुत कुछ जान सकते हैं। केवल विस्तार की दृष्टि से ही नहीं इनका महत्व औदात्य, लालित्य, वैदग्ध्य और कला की दृष्टि से भी कम नहीं है।

(२) **क्षेमेन्द्र–** (ना.का.) दे. क्षेमीश्वर।

ख

खर्परखान– (ना.पा.) हम्मीरमदमर्दन का एक पात्र।

खेत स्कन्दशंकर– (ना.का.) ये २०वीं शताब्दी के नागपुर निवासी कवि हैं। सरकारी सेवा में कार्यरत रहे और नागपुर में कृषि विभाग से सेवा निवृत्त हुये। इनको छोटे छोटे छात्रोप्योगी नाटकों के लिखने का शौक था। इनके लिखे नाटक नागपुर एवं बम्बई में उत्सवों पर मञ्चित किये गये हैं। ये नाटक हैं– मालाभविष्यम् हाहन्त शारदे, लाला वैद्य, धुवावतार और अरघटघट्ट।

ग

गंगा– (ना.पा.) (१) उत्तर रामचरित में गंगा के मानवीकृत रूप को पात्र के रूप में प्रस्तुत किया गया है। निर्वासित सीता प्रसव वेदना से पीड़ित होकर गंगा में कूद पड़ती है। वहीं दो वालकों को जन्म देती है। गंगा और पृथ्वी दोनों दो बच्चों के साथ सीता को वाल्मीकि आश्रम में भेज देती हैं। अभिनय के अवसर पर भी यही दृश्य दिखलाया जाता है जिसको देखकर राम के सहित समस्त परिवार अभिभूत हो जाता है।

(२) **प्रसन्नराघव** में मानवीकृत पात्र। यह यमुना की सहेली है और यमुना से अपने भाई सुग्रीव के वालि द्वारा किये गये निर्वासन पर दुःख प्रकट करने उसके पास गई है।

गंगातरंगिका– (ना.कृ.) यह पारिजात लता या केवल पारिजात नामक उपरूपक का उदाहरण है। जिसका उल्लेख शारदातनय ने किया है। अब यह रचना प्राप्त नहीं होती।

गंगादासप्रतापविलास– (ना.कृ.) यह ९ अंकों का नाटक है जिसकी रचना (३) गंगाधर ने की है। इसमें चम्पकपुर (गुजरात) के राजा गंगादास भूवल्लभ प्रतापदेव का गुजरात के शाहमुहम्मद द्वितीय (१४४३-१४५१) के साथ संघर्ष दिखलाया गया है। इसके ५वें अंक का अभिनय अहमदाबाद के सुल्तान मुहम्मद के दरवार में दिखलाया गया है। इसका उल्लेख इण्डिया आफिस कैटेलाग सं. ४१९४ पर किया गया है।

(१) **गंगाधर–** (ना.का.) चन्द्रविलास (दे.) नाटक के लेखक। ये १३वीं शताब्दी के वारंगल के राजा प्रताप रूद्र देव के दरवारी कवि अगस्त्य की बहन के पुत्र थे। कहा जाता है कि राघवाम्युदय नाटक भी इन्हीं का लिखा हुआ था। इन्होंने महाभारत की कथा का भी नाटकीय पद्धति पर विश्लेषण किया था।

(२) **गंगाधर–** (कविराज) (ना.का.) ये १९वीं शताब्दी के अन्त और २०वीं शताब्दी के प्रारम्भ में बंगाल में विद्यमान थे इनकी लिखी तारावती नाटिका (दे.) बतलाई जाती है।

(३) **गंगाधर** (ना.का.) इनका समय १५वीं शताब्दी का मध्य भाग है। इनका लिखा गंगादासप्रतापविलास नामक ऐतिहासिक नाटक इण्डिया आफिस लायब्रेरी में संकलित किया गया है।

गंगाधर सूनु– (ना.का.) ७ अंकों के राघवाभ्युदय के लेखक।

गंगाभागीरथम्– (ना.कृ.) यह एक नाट्यकृति है जिसका उल्लेख शारदातनय के भाव प्रकाशन में किया गया है। यह रचना अब उपलब्ध नहीं होती।

गंगावतरण– (ना.कृ.) यह नीलकण्ठ लिखित ८ अंकों का नाटक है इसमें स्वर्ग से गंगा के उतरने का अंकन किया गया है। कैटेलागस कैटेलागोरम सं. III ८० पर इसका उल्लेख किया गया है।

गजाननचरित– (ना.कृ.) शिवनन्दन (दे.) लिखित नाटक।

गजानन बाल कृष्ण पलसुले– (ना.का.) ये २०वीं शताब्दी के नाटककार हैं। इनका लिखा वीरसावरकर अवदान विषयक नाटक 'धन्योहंम्' बतलाया जाता है। इनका लिखा एक दूसरा नाटक 'भासोऽहासः' भी प्राप्त होता है। ये पूना विश्वविद्यालय में संस्कृत के विभागाध्यक्ष थे।

गजेन्द्रलालशंकर– (ना.का.) ये २०वीं शताब्दी में गुजरात के निवासी थे। इन्होंने

विषमपरिणयम् नामक नाटक लिखा था।

गजेन्द्रव्यायोग– (ना.कृ.) यह व्यायोग मुडुम्बई वेङ्कटराम नरसिंह आचार्य (दे.) की रचना है। इस व्यायोग में गजेन्द्रमोक्ष की प्रसिद्ध कथा चित्रित की गई है। नृत्य और गीत की इसमें अधिकता है। इसका प्रथम अभिनय सिंहगिरिनाथ के चन्दन महोत्सव पर किया गया था। इसे व्यायोग तो कहा गया है किन्तु व्यायोग की व्यवस्थाओं का इसमें पूरा निर्वाह नहीं हुआ है।

गणदास– (ना.पा.) मालविकाग्निमित्र में मालविका को राजा की दृष्टि में लाने के लिये विदूषक ने जिस नृत्य प्रतियोगिता का आयोजन किया था उसमें मालविका को नृत्य की शिक्षा देने के लिये इन्हीं को नियुक्त किया गया था। इस प्रकार मालविका और अग्निमित्र को निकट लाने में इनका भी योगदान था।

गणदेवता– (ना.कृ.) डा. रमाचौधरी द्वारा ताराशंकर वन्धोपाध्याय लिखित गणदेवता शीर्षक उपन्यास पर आधारित नाटक।

गणपति– (ना.का.) जल्हण के उद्धरण से ज्ञात होता है कि राजशेखर ने इनकी प्रशस्ति में कहा है कि इनकी रचना अत्यन्त आनन्द देने वाली है। इनके 'महामोद' की पूजा विद्याधर भी करते हैं। क्या महामोद इनकी नाट्यकृति है? मृच्छकटिक पर गणपति की एक टीका भी पाई जाती है। क्या टीकाकार गणपति इनसे अभिन्न हैं?

गणपतिविलासम्– (ना.कृ.) यह नैधुव व्यङ्कटेश (दे.) लिखित नाटक बतलाया जाता है। इसके विषय में और कुछ ज्ञात नहीं है। कहा नहीं जा सकता नैधुव का ही लिखा एक दूसरा नाटक सभपतिविलासम् ही तो यह रचना नहीं है।

गणपति शास्त्री– (ना.का.) उच्चकोटि के साहित्यकार एवं अनुसन्धाता। इनका जन्म १८६० में तिन्नीविली जिले के तिरुवई स्थान पर हुआ था। इनके पिता का नाम रामसुव्वा अय्यर था। इन्हें महामहोपाध्याय की उपाधि प्राप्त हुई थी। ये संस्कृत कालेज त्रिवेन्द्रम् में प्रिंसिपल थे और बाद में ट्रावन्कोर के महाराजा के संरक्षण में त्रिवेन्द्रम् में प्रकाशनों के अधिष्ठाता बन गये थे। इनका सबसे बड़ा कार्य है भास के नाटकों की खोज करना और इन नाटकों के अनुसन्धान्ता के रूप में ही ये संसार में जाने जाते हैं। इनके द्वारा सम्पादित पुस्तकों की भूमिकाओं में इनकी अत्यधिक विशेषता के दर्शन होते हैं। केवल १७ वर्ष की आयु में इन्होंने माधवीवसन्त नामक एक प्रकरण की रचना की थी जो ट्रावनकोर पुस्तकालय सं. १८० पर सुरक्षित है।

गणिका– (ना.पा.) (१) कौतुक सर्वस्व (दे.) में राजा कलिवत्सल की प्रेमिका। राजा ने स्वच्छन्द प्रेम की घोषणा की है। वह उसी के अनुसार गणिका से प्रेम करता है; किन्तु उसे रानी का कोप-भाजन होना पड़ता है।

(२) कौतुक रत्नाकर– (दे.) गणिका का एक पात्र है जब मदन महोत्सव में गणिका

नायिका का स्थान ले लेती है तब उसके साहसिक कारनामें दर्शकों के हास्य में अभिवृद्धि करते हैं।

(३) **अश्वघोष के शारिपुत्र प्रकरण–** के साथ उपलब्ध गणिका विषयक रूपक का एक पात्र। पूर्ण नाटक उपलब्ध न होने के कारण इसके चरित्र और उद्देश्य के विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता।

गणिका विषयक रुपक– (ना.कृ.) अश्वघोष (दे.) के शारिपुत्र प्रकरण के साथ इसके कुछ भाग प्राप्त हुये हैं। प्रति सर्वथा उच्छिन्न है और उसके आधार पर कथानक का कोई रूप स्थिर नहीं किया जा सकता। हस्तलिपि और सामान्य रूप रेखा के आधार पर कहा जा सकता है कि यह कृति भी अश्वघोष की ही है। इसके पात्र हैं– मागधवती गणिका; कौमुदगन्ध विदूषक; नायक (सम्भवतः सोमदत्त संज्ञक); दुष्ट, धनञ्जय (सम्भवतः राजकुमार); दासी; शारिपुत्र; मौद्गल्यायन और गोव नाम का एक निम्न कोटि का पात्र। इस नाटक का उद्देश्य शृङ्गार से शान्त की ओर प्रवृत्त करना ज्ञात होता है। इसका मूल उद्देश्य धार्मिकता ही है किन्तु अधिक भाग शृङ्गार के लिये व्यय किया गया है। दृश्य स्थल गणिका का घर और आंशिक रूप में उद्यान का एक भाग चुना गया है। उत्सव के लिये पर्वत शिखर तय किया गया है। प्राप्त खण्डों से ज्ञात होता है कवि को शृङ्गार और हास्य के चित्रण में भी महारत हासिल थी और चोर जुआरी, शरावी, के चित्रण में कवि ने पर्याप्त सफलता पाई है।

इस रचना में नाट्यशास्त्र के तत्व अधिक मुखर होकर सामने आये हैं। विदूषक का नाम कौमुदगन्ध रक्खा गया है जो कुमुदगन्ध का बना हुआ रूप है और नाट्यशास्त्र की इस परम्परा के अनुरूप है कि विदूषक का नाम पुष्प, वसन्त इत्यादि तत्वों के आधार पर होना चाहिए किन्तु गणिका के नामकरण में शास्त्रीय मर्यादा की उपेक्षा की गई है। शास्त्रीय मान्यता है कि गणिका नाम सेना, सिद्धा, दत्ता इत्यादि के साथ होना चाहिये। मागधवती नाम इसे मान्यता का अपवाद है। ज्ञात होता है नाट्यशास्त्र की यह मान्यता बाद में सत्ता में आई होगी। कतिपय पात्रों का नामकरण नहीं किया गया है– दुष्ट, नायक इत्यादि नामों को चरित्र परिचायक नामों के साथ ही छोड़ दिया गया है। कीथ ने कल्पना की है कि नायक शायद सोमदत्त है और धनञ्जय सम्भवतः राजकुमार है क्योंकि उसके लिये नाट्यशास्त्रीय परम्परा के अनुसार भट्टिदालक शब्द का प्रयोग किया गया है।

गणेशचतुर्थी– (ना.कृ.) यह लीलाराव दयाल (दे.) की लिखी नाट्यकृति है। लेखिका ने इस अन्धविश्वास की पृष्ठभूमि में इसकी रचना की है कि चतुर्थी के दिन चन्द्रदर्शन कुफलदायी होता है। (चतुर्थीचन्द्र दर्शन के विषय में गोस्वामी तुलसीदास का कथन– 'तौ पर नारि लिलार गोसाई। तजिय चौथ चन्दा की नाई॥)

गणेशचरित– (ना.कृ.) घनश्याम (दे.) लिखित नाटकों में इसका उल्लेख पाया जाता है। पर अभी तक इसका पता नहीं चल सका है।

गणेशपरिणयम्– (ना.कृ.) यह सात अंकों का नाटक वैद्यनाथ शर्मा व्यास (दे.) का लिखा हुआ है। ब्रह्मा की पुत्रियों सिद्धि और बुद्धि के साथ गणेश के विवाह का कथानक लेकर इस नाटक की रचना की गई है। ब्रह्मा जी शिवजी के पास अपनी पुत्रियों के गणेश के साथ विवाह का प्रस्ताव भेजते हैं। इधर गणेश अपने दूत नन्दी को सिन्धुराज के पास बन्दी बनाये हुये इन्द्रादि देवताओं को मुक्त करने की मांग लेकर भेजते हैं। सिन्धुराज इन्कार कर देते हैं तब युद्ध होता है जिसमें सिन्धुराज पराजित होता है देवताओं को कैद से छुटकारा मिल जाता है। वे सब गणेश के विवाह में शामिल होते हैं।

इस नाटक का प्रकाशन इण्डियन प्रेस प्रयाग से सन् १९०४ में हुआ था। मिथिला राजवंश के जनेश्वर सिंह ने इसे पुरस्कृत किया है।

गरुड़– (ना.पा.) (१) **वालचरित** (दे.) में जब वसुदेव कृष्ण को नन्द के सुपुर्द कर देते हैं तब गरुड़ गोपवेश धारण कर कृष्ण की सेवा में उपस्थित हो जाते हैं।

(२) **नागानन्द** (दे.) में गरुड़ ने नागों से समझौता कर रक्खा है कि एक नाग नित्य उसके भोज्य के रुप में उपस्थित होगा। उसी प्रसंग में एक दिन एक नाग (शंखचूड) के स्थान पर जीमूतवाहन चला जाता है। जब भोजन के मध्य में भी भोज्य जीमूतवाहन प्रसन्न मुद्रा में दिखलाई पड़ता है तब उसे मालूम होता है कि उसने कुछ भूल की है। तत्काल उसमें दैवीवृत्तिजन्य करुणा उत्पन्न हो जाती है। वह विवेकशील है। मांसाहारी पक्षी की योनि में होते हुये बी वह भूलका अनुभव कर दयावश भोजन से विरत हो जाता है। वह हड्डियों की राशि पर अमृत वर्षा कर मृतनागों को जीवन दान देता है। विवेक शीलता और करुणा उसके दैवी गुण हैं।

(३) **दूतवाक्य–** (दे.) में जब कृष्ण अपना विश्व रूप प्रकट करते हैं तब उनका वाहन गरुड़ वहां उपस्थित हो जाता है।

गर्वपरिणति– (ना.कृ.) नन्दलाल विद्याविनोद (दे.) प्रणीत नाट्यकृति। इसमें पाश्चात्य सभ्यता की हीनता का प्रतिपादन किया गया है। रामचन्द्र और कमला का बड़ा पुत्र कृष्णदास भारतीय सभ्यता में पला है और उस पर पाश्चात्य सभ्यता का कोई प्रभाव नहीं है जबकि छोटा पुत्र सुरेश पढ़ा लिखा है और पाश्चात्य सभ्यता के प्रति आकृष्ट है। वह अपने बड़े भाई को घृणा की दृष्टि से देखता है क्योंकि वह पाश्चात्य सभ्यता से दूर है। वह क्रूर स्वभाव का है जिससे बड़े भाई के प्रति उसके व्यवहार के कारण माता-पिता व्यथित रहते हैं। एक दिन सुरेश वन को जाता है जहां वह चक्कर में फंस जाता है। वहां पाश्चात्य सभ्यता और पुस्तकीय ज्ञान उसकी कुछ भी सहायता नहीं करते तब उसका बड़ा भाई ही जाकर उसकी रक्षा करता है। इससे सुरेश के व्यवहार में अन्तर आ जाता है और वह पाश्चात्य सभ्यता के मिथ्या मोह को छोड़ देता है।

इस नाटक में नवीनता के भी दर्शन होते हैं। अंकों का दृश्य में विभाजन किया

गया है। इसमें नान्दी, अर्थोपक्षेपक, प्रस्तावना का अभाव है जो भारतीय कला की विशेषतायें हैं। पूरा नाटक गद्य तथा छोटे छोटे वाक्य खण्डों में लिखा गया है। पूरे नाटक में केवल भरत वाक्य पद्य में है। इसमें करुणा और हास्य का सम्मिश्रण है तथा चरित्र विकास पर विशेष ध्यान दिया गया है। पारिवारिक वातावरण के चित्रण में लेखक ने सफलता पाई है। सन् १८८५ में संस्कृतचन्द्रिका में इसका प्रकाशन हुआ था।

गान्धारी– (ना.पा.) (१) वेणीसंहार में यह दुर्योधन को युद्ध से विरत करने का प्रयत्न करती है और एक वार पति के साथ युद्ध भूमि में जाकर दुर्योधन को सन्धि के लिये प्रेरित करती है। वह दुर्योधन की मां है और उसमें भी मातृसुलभ वात्सल्य है। किन्तु फिर भी वह सच्चाई और औचित्य को समझ सकती है। दुर्योधन के कल्याण मार्ग का भी ठीक अनुमान लगा सकती है। कुटुम्बनाश की भयानक कल्पना से वह विचलित है, उसे टालने की भरसक चेष्टा करती है पर सफल नहीं होती।

(२) **उरुभंग** (दे.) में दुर्योधन की घायल अवस्था में परिवारजनों के साथ गान्धारी भी आती है। सभी पुत्रों और विशेषकर दुर्योधन की दुर्गति पर वह करुणा से भरी हुई है। पर नियति के द्वारा निर्धारित मार्ग का वह अतिक्रमण कैसे कर सकती है?

गान्धी विजयम्– (ना.कृ.) मथुरा प्रसाद दीक्षित का लिखा नाटक। गान्धी जी की अफ्रीका तथा भारत की गतिविधियों का इसमें चित्रण किया गया है। साथ ही तिलक, नेहरु, पटेल, इर्विन के चरित्रों पर भी प्रकाश डाला गया है।

गिरिजाया: प्रतिज्ञा– (ना.कृ.) इसकी लेखिका हैं श्रीमती लीलाराव दयाल। गिरिजा के एकमात्र पुत्र की हत्या कर दी जाती है। गिरिजा बदला लेने का निश्चय करती है। एक दिन जेल से भागा हुआ कैदी शरण की तलाश में गिरिजा के घर आता है। गिरिजा उसे कुयें में छिपा देती है। बाद में जब पता चलता है वही उसके पुत्र का हत्यारा है तब वह बदला लेने की ठानती है। किन्तु जब कैदी कहता है कि मैं भी अपनी माता का एकाकी पुत्र हूं तब गिरिजा उसे क्षमा कर देती है। यह रचना २०वीं शताब्दी की है।

गिरिसंवर्धनम्– (ना.कृ.) जीव न्यायतीर्थ (दे.) का लिखा नाटक। इसमें कृष्ण द्वारा पर्वत उठाये जाने की कथा नाट्य रूप में प्रस्तुत की गई है। सुदर्शन चक्र, योग माया इत्यादि का इसमें छाया रूप में प्रस्तुतीकरण किया गया है। इसमें स्थान स्थान पर हास्य का पुट है और संगीत तथा नृत्य की बहुतायत है।

गीतम्– (ना.कृ.) कृष्णावधूतपण्डित (दे.) लिखित ईहामृग। इसकी रचना १९वीं शताब्दी में हुई थी।

गीतगणपति– (ना.कृ.) कृष्णदत्त लिखित गीतात्मक रचना जो गीतगोविन्द की शैली पर लिखी गई थी।

गीतगोवन्द– (ना.कृ.) जयदेव की इस कृति को कुछ विद्वानों ने नृत्यनाटिका की

संज्ञा दी है। इसमें केवल तीन पात्र हैं- कृष्ण, राधा और उनकी सखी। इन पात्रों द्वारा गाये हुये गीतों का निबन्धन इसमे किया गया है। साथ ही यत्र तत्र प्रगीतात्मक पद्य भी पाये जाते हैं जिनमें या तो कृष्ण विषयक स्तुतियां हैं या अंगविन्यास का परिचय दिया गया है अथवा भावों का उद्रेक व्यक्त होता है।

मैक्डानल ने गीतगोविन्द का परिचय देते हुये लिखा है- 'गीतगोविन्द शुद्ध प्रगीत और शुद्ध नाटक के मध्य में संक्रमण की अवस्था का प्रतिनिधित्व करने वाली रचना है; एक प्रगीतात्मक नाटक है जिसका समय तो यद्यपि १२वीं शताब्दी है; किन्तु सर्व प्राचीन आदियुग की नाट्यविधा का एक साहित्यिक निदर्शन है। जो बंगाल में अब तक जीवित है और निश्चित रूप से नियमित पाठकों के पहले इसका उद्भव हुआ होगा। कविता में अपने ठीक अर्थ में संवाद विल्कुल नहीं हैं क्योंकि इनके तीनों पात्र एक प्रकार के प्रगीतात्मक एकालाप में अपने को व्यस्त रखते हैं जिसमें शेष दो में एक को श्रोता के रुप में समझ लिया जाता है। कभी कभी तो विल्कुल कहीं कोई भी नहीं होता। कविता का विषय है सुन्दर कृष्ण का सुन्दरी गोपी राधा से प्रेम सम्बन्ध, प्रेमियों का परस्पर मनमुटाव और विच्छेद तथा अन्त में दोनों का मिलाप। यह बात जीवन की उस घटना से ली गई है जिसमें कृष्ण स्वयं गोपरूप में हैं, यमुनातट पर रहते हैं और गोपियों के साथ प्रेमलीला का भरपूर आनन्द लेते हैं। ..... यह सम्भव है कि उस कवि ने कृष्ण के जीवन की घटनाओं का प्रतिनिधित्व करने वाले लोकप्रिय नाटकों को अपने नमूने के रूप में स्वीकार किया हो जैसा कि बंगाल की यात्राओं में अब भी होता है। ..... उस कवि ने स्वरूप की बहुत बड़ी परिपूर्णता प्राप्त कर ली है। इसके लिये अत्यन्त कठिन छन्दों के प्रयोग में सरलता के साथ भाव सौन्दर्य की पद्धति अपनाई है।'

गीतगोविन्द पर टीकाओं की पर्याप्त संख्या है जिनमें प्रमुख टीकाकार हैं- उदयनाचार्य, कृष्णदास, गोपाल, नारायणदास, रामतारण, रामदत्त, रुपदेव विट्ठल, विश्वेश्वर, शालिनाथ, हृदयाभरण, तिरुमलराय, श्रीकण्ठमिश्र, लक्ष्मण सूरिकृत गीतानन्द (इनका वास्तविक नाम लक्ष्मीधर है) कृष्णदत्त, जगद्धर, वनवाली भट्ट, पीताम्बर, शेषकमलाकर और शेष रत्नाकर (सम्मिलित लेखक), वासुदेव वाचासुन्दर, अनूपभूपति, श्रीकण्ठ मिश्र, नारायण, शंकर मिश्र, भगवद्दास, कुम्भकर्णराज, लक्षमण, चैतन्यदास पूजक, मानाङ्क और दो अन्य अज्ञातनामा लेखकों की टीकायें- एक संघर्ष दीपिका और दूसरी बाल बोधिनी।

गीत गौराङ्गम- (ना.कृ.) वीरेन्द्र कुमार भट्टाचार्य लिखित ५ अंकों का गीति नाट्य। इसमें चैतन्य महाप्रभु की महत्वपूर्ण घटनाओं का चित्रण किया गया है। महाप्रभु तथा उनकी पत्नी विष्णुप्रिया के चरित्र की मार्मिक व्यञ्जना हुई है। गीतिनाट्य होने के कारण इसमें गीतों का प्राधान्य है और गद्य का अभाव स्वाभाविक है। प्रवेशक, विष्कम्भक इत्यादि का प्रयोग नहीं किया गया है। अलंकारों का विरल प्रयोग हुआ है। शैली वैदर्भी है। कहा जाता है इस नाटक की रचना में लेखक की पुत्री वैजयन्ती ने पर्याप्त योगदान दिया

था। संस्कृतपुस्तकभण्डार कलकत्ता से इसका १९७४ में प्रकाशन हो गया था।

गीतदिगम्बर– (ना.कृ.) यह १७वीं शताब्दी के रामचन्द्रसुमन वंशमणि का लिखा चार अंकों का नाटक है। इसकी रचना काठमाण्डू के राजा प्रताप मल्ल के तुलादान के अवसर पर अभिनय के लिये की गई।

गीर्वाणेन्द्र– (ना.का.) प्रसिद्ध कवि नीलकण्ठ दीक्षित के पुत्र। इनका लिखा शृङ्गारकोष भाण प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त इनका लिखा अन्यापदेशशतक भी प्राप्त होता है। इनका समय ई. की १७वीं शताब्दी का मध्यभाग है।

गुणमाला– (ना.कृ.) डोम्बिका उपरूपक का उदाहरण। अभिनवगुप्त ने इसका उद्धरण के रुप में प्रयोग किया है।

गुणाढ्य– (ना.उप.) तीन भारतीय मूर्धन्य लेखकों में एक। इनका नाम व्यास और वाल्मीकि के साथ लिया जाता है। जिस प्रकार रामायण और महाभारत अनेक भारतीय नाटकों के उपजीव्य बने हैं उसी प्रकार इनकी बृहत्कथा का आश्रय लेकर अनेक नाटकों की रचना की गई है जिनमें उदयनविषयक नाटकों का विशेष महत्व है। कालिदास, वाण, सुबन्धु, धनिक इत्यादि अनेक कलाकारों एवं विचारकों ने इनकी प्रशस्ति गाई है। इनकी बृहत्कथा कथानकों का स्रोत तो है ही नाट्यतत्व का भी इसमें उल्लेख बतलाया जाता है। किन्तु अब यह रचना नाम शेष रह गई है। तीन रचनायें इसकी प्रतिनिधि कही जा सकती हैं जिनमें इसका संक्षिप्तीकृत रूप विद्यमान है– (१) बुधस्वामी कृत बृहत्कथा श्लोकसंग्रह (२) सोमदेव का कथासरित्सागर और (३) क्षेमेन्द्र की बृहत्कथा मञ्जरी। धनिक के अनुसार बृहत्कथा मुद्राराक्षस का स्रोत है।

गुप्तपाशुपतम्–(ना.कृ.) यह २० वीं शताब्दी के विश्वनाथ सत्यनारायण (दे.) का लिखा नाटक है। इसमें अर्जुन द्वारा पाशुपत अस्त्र की प्राप्ति का नाटकीकरण किया गया है।

गुप्तवंश– (ना.आ.) यह एक प्रतिष्ठित राजघराना है जिसने कला और संस्कृति को आश्रय देने के विषय में महत्वपूर्ण प्रतिष्ठा प्राप्त की है। इस वंश में ही विक्रमादित्य का अविर्भाव हुआ और भारतीय परम्परा इसी वंश को कालिदास का आश्रयदाता मानती है।

गुरु दक्षिणा– (ना.कृ.) यह श्रीनिवास रंगाचार्य (दे.) का लिखा तीन अंकों का नाटक है जिसमें कौत्स द्वारा रघु से गुरु दक्षिणा के लिये १४ करोड़ रुपये मांगे जाने का अंकन किया गया है। यह वीसवीं शताब्दी की रचना है और इसका प्रकाशन १९४६ में अमृतवाणी पत्रिका में हो गया था।

गुरुप्रसन्नभट्टाचार्य– (ना.का.) ये वंगीय ब्राह्मण थे। इनका जन्म १८८२ में मौद्गल्य गोत्र के राधादास भट्टाचार्य एवं कृष्णसखी देवी से हुआ था। स्मृतिशास्त्र के प्रतिष्ठित लेखक काशीराम वाचस्पति के ये वंशज थे। ये कलकत्ता विश्वविद्यालय के

छात्र थे। कुछ समय तक वनारस विश्वविद्यालय में अध्यापन कार्य के बाद ढाकाविश्वविद्यालय में इनकी नियुक्ति हो गई। जहां इनका अधिकांश समय व्यतीत हुआ था। इनका साहित्य बहुमुखी है जिनमें श्रीराम महाकाव्य, वरुथिनीचम्पू प्रसिद्ध हैं। इनके तीन नाटक भी प्रतिष्ठित हैं- नाभागचरित मदालसा- कुवलयाश्व और भामिनीविलास। इनकी कविता उच्चकोटि की है तथा विभिन्न रसों की सफल अभिव्यक्ति करती है। इनके ग्रन्थों की पाण्डुलिपियां या तो लेखक के पास ढाका में या उनके घर पर ६ रामकृष्णदास लेन में सुरक्षित रही थीं. अब पता नहीं कहां हैं।

गुरुराम– (ना.का.) इनको सामान्य रूप से राम इस संक्षिप्त नाम से भी याद किया जाता है। ये स्वयंभू के पुत्र थे और इन्होंने कई नाटक एवं काव्य लिखे थे। इनके नाटकों में हैं सुभद्राधनञ्जय, रत्नेश्वर प्रसादन, मदनगोपाल विलास (भाण) इत्यादि। इन नाटकों के अतिरिक्त इनके कई एक प्रबन्ध काव्य और चम्पू काव्य प्रसिद्ध हैं। एक पक्ष यह भी है कि इन नाटकों के रचनाकार इनके सगे भाई स्वयंभूनाथ थे जो स्वयंभू के दूसरे पुत्र थे।

गुह– (निषादराज) (ना.पा.) यह रामायण का प्रसिद्ध पात्र है। यह राम का मित्र है। अनर्घराघव में इसकी कथा कुछ नये ढंग से आई है– कबन्ध नाम का राक्षस गुह निषाद को आक्रान्त कर लेता है; तब लक्ष्मण उसे बचाते हैं। उसी प्रसंग में दुन्दुभी के कंकाल को उलट देते हैं जिससे क्रुद्ध होकर वालि युद्ध के लिये आ जाता है।

गूढकौशिकम्– (ना.कृ.) नारायण शास्त्री लिखित १० अंकों का नाटक।

गैर्वाण विजय– (ना.कृ.) पुन्नशेरी नीलकण्ठ शर्मा (दे.) लिखित नाटक। इसका उल्लेख किया जाता है किन्तु इसके विषय में और कुछ ज्ञात नहीं है।

(१) **गैर्वाणी विजय–** (ना.कृ.) यह एक प्रतीक नाटक है जिसकी रचना राजराजवर्मा ने १९वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में की थी। इसका प्रकाशन केरल से १८९० में हो गया था। सरस्वती दुःखी है क्योंकि उन्हें भारत में हौणी (अंग्रेजी) की दास्ता स्वीकार करनी पड़ रही है। वह ब्रह्मा जी से अपनी दुर्दशा की शिकायत करती है और कहती है कि उसकी पुत्रियां (भाषायें) आपस में लड़ रही हैं। वह कहती है कि लक्ष्मी हौणी का पक्ष लेती है और मुझे (गैर्वाणी को) निर्वासित कर दिया गया है। हौणी अपनी सफाई में कहती है कि मैं गैर्वाणी का आदर करती हूं, किन्तु लोग मुझपर मोहित हैं। ब्रह्मा जी निर्णय देते हैं और गैर्वाणी से कहते हैं कि तुम हौणी को वैधानिक दर्जा दे दो फिर तुम्हारा आदर होता रहेगा। यह तुम्हारी भगिनी है शत्रु नहीं। इसी समय गरुड़ समाचार देते हैं कि केरल नरेश ने गैर्वाणी की मन्दिर में प्रतिष्ठा कराई है।

इसका प्रथम अभिनय नवरात्रि महोत्सव के अवसर पर किया गया था।

(२) **गैर्वाणी विजय–** (ना.कृ.) वालकवि (दे.) लिखित प्रकरण। इसकी रचना उसी पद्धति पर की गई थी जिस पर इसी नाम की एक रचना राजराजवर्मा ने की थी। (दे.)

(१) गैर्वाणी विजय इसका प्रकाशन पालघाट से हुआ है।

गोकुलनाथ- (ना.का.) ये माता उमादेवी और पिता पीताम्बर के पुत्र थे। इनका जन्म १७वीं शताब्दी में मिथिला के श्रीवत्सगोत्रीय ब्राह्मण परिवार में हुआ था। ये मिथिला के राघवसिंह के समसामयिक श्रीनगर के फतेह शाह के दरवारी कवि थे। इन्होंने काव्यात्मक तथा शास्त्रीय अन्य रचनाओं के साथ दो नाटक भी लिखे थे- एक प्रतीक नाटक अमृतोदय (दे.) और दूसरा मुदितमदालसा (दे.)। ९० वर्ष की आयु में बनारस में इनका देहावसान हो गया।

(१) **गोदापरिणय-** (ना.कृ.) मद्रास की ओरियण्टल मैन्युस्क्रिप्ट लायब्रेरी में डिस्क्रिप्टिव कैटेलाग खण्ड २१ सं. ८३९९ पर इसका उल्लेख है। इसके लेखक हैं (५) श्रीनिवास (श्री शैल जिनका लिखा रामकथाशुभोदय नामक एक राम काव्य भी है।)

(२) **गोदापरिणय-** (ना.कृ.) केशवनाथ लिखित नाटक कैटेलागस कैटेलागोरम खण्ड १ सं. ११५९ पर इसका सङ्कलन किया गया है।

गोदावरी- (ना.पा.) यह प्रसन्नराघव में समुद्र से बात करते हुये रावण द्वारा सीता-हरण, जटायु द्वारा अवरोध और उसकी मृत्यु इन सब घटनाओं का परिचय देता है।

गोदावर्म युवराज- (ना.का.) इन्हें केवल युवराज भी कहा जाता है। ये क्रैंगनोर (केरल) के जूनियर युवराज थे और १८०० ई से १८५१ तक विद्यमान थे। इनकी कई पुस्तकें बतलाई जाती हैं जिनमें रससदन (दे.) एक भाण भी है। दूसरी रचनाओं में रामचरित (काव्य) श्री पादसप्तक (काव्य) मुररिपु स्तोत्र, सुधानन्द लहरी सम्मिलित हैं। इनको रामवर्मा के नाम से भी अभिहित किया जाता है।

गोपालकेलिचन्द्रिका- (ना.कृ.) इसे गोपालचन्द्रिका नाम से भी जाना जाता है। गुजरात के देवजीति (सम्भवतः देवजी) के पुत्र राम कृष्ण का लिखा एक भाण। यह पूर्ण रूप से संस्कृत में लिखा गया है और आंशिक रूप में पौराणिक तथा आंशिक रूप में गीतात्मक भी है। यह एक रीतिमुक्त नाट्य रचना है जिसमें महाकाव्य की वर्णनात्मक शैली और नाटक की अभिनयात्मक शैली दोनों के दर्शन होते हैं। इसमें संगीतात्मक अनुभागों और रंग निर्देशों दोनों में स्थान स्थान पर भूतकाल का प्रयोग किया गया है जो कि अभिनय परक प्रस्तुति के प्रतिकूल पड़ता है।

इसका मूल स्वर धार्मिक है। कृष्ण के गोचारण विषयक दृश्यों का विकास कुछ तो गीतों के द्वारा और कुछ गद्य के द्वारा किया गया है। इसमें गोपवेषधारी कृष्ण (विष्णु) अपनी शक्तिस्वरुपा राधा के साथ रंगमञ्च पर आते हैं। गोप जयन्त विदूषक का काम करते हुये हास परिहासमय वातावरण प्रस्तुत कर देता है। वृन्दा और लक्ष्मी के संवाद में कृष्ण और राधा का तादात्म्य स्थापित किया गया है और बतलाया गया है कि कृष्ण पुरुषोत्तम भगवान हैं और राधा उनकी शक्ति है। गोपाल बालाओं का चीर हरण उनकी

भक्तिभावना की परीक्षा है और वस्त्रों के प्रतिदान के मूल्य में कृष्ण उनसे भक्ति मांगते हैं।

पूर्णिमा और शरद् के वार्तालाप में व्यक्त होता है कि दोनों इसलिये खिन्न हैं कि कृष्ण रासलीला नहीं कर रहे। कृष्ण आते हैं और दोनों कृष्ण को रासलीला की प्रेरणा देते हैं। तब कृष्ण योगमाया को प्रेरित कर गोपियों को बुलाते हैं और उसी समय रासलीला प्रारम्भ हो जाती है। इसके साथ ही सूत्रधार भगवान की महिमा को अपरिमेय बतलाकर नाटक का उपसंहार कर देता है। इसमें ज्ञान और वैराग्य की अपेक्षा भक्ति को वरीयता प्रदान की गई है।

इस नाटक की नाट्यविधा का ठीक रूप से निर्णय करना किञ्चित् अशक्य है। कुछ लोग इसे महानाटक के समान छायानाटक मानते हैं क्योंकि इसमें रंग निर्देशों में भी पद्यों का उपादान किया गया है। गद्य की मात्रा बहुत कम है, संवाद पद्य में हैं। इसमें महानाटक का उल्लेख भी किया गया है– नटी के यह पूछने पर कि विना प्राकृत के नाटक कैसे खेला जा सकता है सूत्रधार स्पष्ट करता है कि हनुमन्नाटक में तो केवल संस्कृत ही है। इसकी गीतगोविन्द के साथ भी समता बतलाई गई है। किन्तु गीतगोविन्द प्रगीतात्मक अधिक है। यह पश्चिमी प्रदेशों के स्वांग के अधिक निकट पड़ता है जिसमें अभिनेता, वर्णनात्मक पद्यों का पाठ भी करता है और अभिनय में भी भाग लेता है। इसमें अभिनय के निर्देश अतिमात्रा में भरे पड़े हैं। किन्तु वर्णनात्मकता के साथ अभिनेयता किस प्रकार चलती होगी इसका उत्तर आसान नहीं है। ज्ञात होता है कोई ब्राह्मण इसका पाठ करता होगा और उसके शिष्य रंगमञ्च पर उस पाठ के अनुरूप अभिनय करते होंगे। इसमें सन्देह नहीं कि यह प्रगीतकाव्य और नाट्यकृति के मध्य की वस्तु है। जैसा अन्य अनेक कृतियों के विषय में कहा जाता है इस नाटक की रचना भी पाठ्य नाटक के रूप में हुई होगी। इस प्रकार के नाटकों के अनुकूल रंगसज्जा कठिन होती है। यूरोप तथा भारत के आधुनिक नाटकों में प्रायः रंग निर्देश भरे रहते हैं। किन्तु उनका पूर्णतः पालन नहीं किया जाता। यह नाटक निश्चय रूप से रामानुज के बाद का है।

गोपाल चन्द्रिका– (ना.कृ.) दे. गोपालकेलिचन्द्रिका।

गोपाल चिन्तामणि– (ना.कृ.) शङ्करलाल (दे.) लिखित नाट्यचना।

गोपालदास– (ना.का.) ये बंगाली कवि एवं कविराज (वैद्य) थे। इन्होंने चिकित्सा शास्त्र पर चिकित्सामृतम् एवं छन्दःशास्त्र पर छन्दोमञ्जरी नामक पुस्तकें लिखी थीं। इनका लिखा पारिजात हरण (दे.) नाटक भी है।

गोपालराय– (ना.का.) इनकी दो भाण कृतियों (शृङ्गारमञ्जरी और शृङ्गारराज) का उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम् (II १५८ और १६०) में किया गया है। इनके पारिजातहरणविषयक कतिपय पद्यों का संकलन सदुक्तिकर्णामृत में प्राप्त होता है।

गोपाल लीलार्णव– (ना.कृ.) गोविन्द (दे.) का लिखा भाण कैटेलागस कैटेलागोरम सं. १.१६३ पर उल्लिखित है।

गोपीचन्दन– (ना.कृ.) अज्ञातनामा कवि की रचना। कैटेलागस कैटेलागोरम् I १६३ पर इसका उल्लेख किया गया है।

गोपीचन्द्रचरित– (ना.कृ.) यह वेङ्कटचलमय्य की एक नाट्यकृति है। इसमें ७ अंक हैं; यह रचना दार्शनिक प्रकार की है जिसकी रचना जैन काव्य के आधार पर हुई है। इसमें सदाचार सम्बन्धी सूक्तियां हैं; हास्य है और काव्य सौन्दर्य है।

गोपीनाथ चक्रवर्ती– (ना.का.) कैतुकसर्वस्व (दे.) नामक प्रहसन के लेखक। इनका समय १८वीं शताब्दी का उत्तरार्ध है।

गोपीनाथ दाधीच– (ना.का.) १९वीं शताब्दी के प्रतिष्ठित कलाकार व्याकरण इत्यादि अनेक शिक्षाक्षेत्रों में प्रवीणता प्राप्त कर चुके थे। इन्हें जयपुर के राजघराने का आश्रय प्राप्त था। जयपुर के ही संस्कृत विद्यालय में अध्यापक के पद पर प्रतिष्ठित थे। इन्होंने कई एक कलात्मक एवं विचारात्मक पुस्तकें लिखी थीं। माधव स्वातन्त्र्य (दे.) नामक एक नाटक भी इनकी रचनाओं में सम्मिलित था। इन्होंने हिन्दी के भी दो नाटक लिखे थे।

गोरक्षः– (ना.कृ.) यतीन्द्रविमलचौधरी लिखित नाटक।

गोरीईशप– (ना.पा.) हम्मीर मदमर्दन (दे.) का एक पात्र। यह मीलच्छ्रीकर का मन्त्री है।

गोव– (ना.पा.) अश्वघोष के गणिका विषयक रुपक का एक निम्न कोटि का पात्र। इसकी भाषा मागधी और अर्धमागधी का मिलाजुला रूप है। यह 'र' के स्थान पर 'ल' का प्रयोग करता है।

गोवर्धन विलास– (ना.कृ.) यह पद्मनाभाचार्य (दे.) का लिखा नाटक है। इसका विभाजन पाश्चात्य शैली में दृश्यों में किया गया है। कोयम्बटूर से अंग्रेजी अनुवाद के साथ इसका प्रकाशन हुआ है।

गोविन्द– (ना.का.) ये शेष परिवार में उत्पन्न हुये थे और शेषयज्ञेश्वर के पुत्र थे। इनका समय १८वीं शताब्दी है। इन्हें शेष गोविन्द के नाम से भी जाना जाता है। इनका परिवार गोदावरी के तट पर नन्दीपुर गाव का रहने वाला था; बाद में आकर बनारस में रहने लगा था। इन्होंने अमरुशतक की टीका लिखी। इनका लिखा विनतानन्द नामक व्यायोग भी मिला है जिसका दूसरा नाम प्रचण्डगरुड़ भी है। इसकी प्रति तंजौर पुस्तकालय (VIII ३६४१) में एवं कैटेलागस कैटेलागोरम I ५७६ पर भी प्राप्त की जा सकती है। इनका लिखा गोपाललीलार्णव भाण भी प्राप्त होता है। कैटेलागस कैटेलागोरम I १६३ में इसका उल्लेख किया गया है।

गोविन्द कविभूषण– (ना.का.) इनकी लिखी समृद्धमाधव नामक एक नाट्यकृति प्रकाश में आई है। कैटेलागस कैटेलागोरम् सं. III १४४ पर इसका उल्लेख किया गया है।

गोविन्द जोशी– (ना.का.) इनका लिखा पुष्पसेनतनयराज्यारोहण (दे.) नाटक प्राप्त होता है।

गोविन्ददास झा– (ना.का.) ये १७वीं शताब्दी के बिहारी कवि थे। इनका लिखे नलचरितम् का उल्लेख किया जाता है।

गोविन्द वल्लभ– (ना.का.) इस नाम का ५ अंकों का एक नाटक प्राप्त होता है जो सम्भवतः रामानन्दरायं की रचना है। इसमें कृष्ण के गोपीविहार का चित्रण किया गया है।

गोविन्दवल्लभ– (ना.कृ.) द्वारकानाथ इसके लेखक बतलाये जाते हैं। इसमें १० अंक हैं। कृष्ण की वाललीलाओं का इसमें चित्रण किया गया है। (नोटिसेज आफ संस्कृत मैन्युस्क्रिप्टस ४.१६७२ और कैटेलागोरम् १.१६९ में उल्लिखित) श्रीराम नवद्वीप के हरिवोल कुटीर से बंगाली लिपि में प्रकाशित।

गोविन्दश्रीवत्साङ्क– (ना.का.) इनका लिखा सुभगानन्द (दे.) नाटक प्राप्त होता है। इस नाटक के लेखक के रूप में वासुदेवश्रीवत्साङ्क और नरेन्द्रश्रीवात्साङ्क ये नाम भी प्राप्त होते हैं। ज्ञात होता है कि गोविन्दश्रीवत्साङ्क के ही ये दूसरे नाम थे जिनकी गणना काश्मीर के प्रमुख अधिकारियों में की जाती है।

गोविन्दसामन्तराय– (ना.का.) इनका जन्म उत्कल के एक सम्भ्रान्त परिवार में हुआ था। इनके पितामह विश्वनाथ, पिता रामचन्द्र और स्वयं इन्हें सामन्तराय की उपाधि प्राप्त हुई थी। इनको कविभूषण की भी उपाधि दी गई थी। इनका लिखा समृद्ध माधव नामक ७ अंकों का एक नाटक प्राप्त होता है।

गोह– (चाण्डाल) (ना.पा.) मृच्छकटिक में चाण्डाल जिसे चारुदत्त को फांसी देने का काम सौंपा गया है। वह शोकाकुल वातावरण को भी हास्य विनोद से कुछ कुछ हल्का बनाने की चेष्टा करता है। उदाहरण के लिये जब दूसरा वधिक मारने की जल्दी में लिखापढ़ी को शीघ्र निपटाने को कहता है तब वह उत्तर देता है– 'पिताजी मरते समय आदेश दे गये थे कि बेटा; किसी को जल्दी मत मारना।' पहला– 'देर करने से क्या लाभ होगा?' वह उत्तर देता है– 'शायद राजा के बेटा ही पैदा हो जाय जो वह सभी को छोड़ देगा। शायद कोई सज्जन धनवान् राजा को धन (रिश्वत) देकर इसका मृत्युदण्ड माफ ही कराले या राजपरिवर्तन हो जाय और दूसरा राजा सभी का दण्ड माफ कर दे।

गौड विजय– (ना.कृ.) काव्य नामक उपरूपक का शारदा तनय द्वारा दिया गया उदाहरण। ग्रन्थ प्राप्त नहीं होता।

गौतम- (ना.पा.) मालविकाग्निमित्र में विदूषक। सामान्यतः विदूषक का काम हंसी, मजाक के द्वारा नायक का मनोरंजन करना और नाटक को सजीव बनाना होता है। किन्तु इस विदूषक का कार्य इससे कुछ अधिक है। वह बुद्धिमान और कार्यकुशल है और विषम परिस्थिति में भी रास्ता निकाल लेता है। वही दो शिक्षकों की होड़ उत्पन्न कर मालविका को सामने लाने और राजा को उसका परिचय देने की महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। जब रानी द्वारा मालविका बन्दिनी बना ली जाती है तब वही (विदूषक ही) सर्पदंश का बहाना कर रानी की अंगूठी प्राप्त कर लेता है और मालविका को बन्दीगृह से छुड़ाता है। इस प्रकार नाट्य वस्तु को गति देने में उसकी भूमिका महत्वपूर्ण है।

गौतमी- (ना.पा.) अभिज्ञान शाकुन्तलम में यह कुलपति की बहन है और घर की वयोवृद्ध महिला की भूमिका निभाती है। यही लड़कियों में मान्य है और उनके नियन्त्रण में रखती है। प्रत्येक विषय में कुलपति कण्व भी उसकी सम्मति लेते हैं। शकुन्तला को पति भवन ले जाने में सहयात्री वर्ग की नेत्री यही है। यह परिवार की एक सम्मानित महिला है और व्यवहार तथा बातचीत में कुशल है। जब राजा शकुन्तला से सम्बन्ध होने की बात से इन्कार करता है तब केवल इतना कहती है- 'आप दोनों का अकेले में एक पर एक जो व्यवहार हुआ उसके लिये मैं क्या कह सकती हूं। इसने गुरुजनों की परवा नहीं की और तुमने बन्धजनों से पूछा नहीं (उसी का यह दुष्परिणाम है।) जब परित्यक्ता शकुन्तला करुण होकर रोती हुई अपने वर्ग के साथ चल देती है तब स्वयं कोई निर्णय न लेकर वयस्क भ्रातृ स्थानीय शार्ङ्गरव को उस ओर प्रेरित कर देती है।

गौरी दिगम्वर- (ना.कृ.) यह शङ्कर मिश्र कवि (दे.) का लिखा हुआ प्रहसन है। कैटलागस कैटेलागोरम सं. III ३७ पर इसका उल्लेख किया गया है। के. जायसवाल ने मथुरा में पाण्डुलिपियों की जो खोज की थी उसकी विवरणात्मक रिपोर्ट में इसका उल्लेख सं. II ५५ पर किया गया है।

गौरीदेवी- (ना.पा.) नागानन्द में महत्वपूर्ण भूमिका। मलयवती को स्वप्न में ये ही भावी पति का परिचय देती हैं जो अन्ततः मलयवती और जीमूतवाहन की सफल प्रणयलीला में परिणत होता है। नाटक को सुखान्त बनाने में पुनः इनका प्रवेश कराया जाता है। जीमूतवाहन का परोपकार में प्राणन्त हो चुका है। तीनो कथाभागों का एक मात्र आश्रय नायक मर चुका है। सभी कुछ शोक में समाप्त होने जा रहा है। उसी समय गौरीदेवी प्रविष्ट होकर और जीमूतवाहन को पुनरुज्जीवित कर नाटक को सुखान्त ही नहीं बनाती वल्कि स्वप्न में दिये हुये अपने निर्देश को भी सफल बनाती है।

गौरी का प्रवेश एक दृष्टि से और भी महत्वपूर्ण है। वैसे तो यह नाटक बौद्ध मनोवृत्तिप्रवण है। गौरी का प्रवेश लेखक की सर्वधर्म समभाव की प्रवृत्ति का परिचय देता है; इसे पूर्ण बौद्ध नाटक नहीं बनने देता।

घ

(१) **घटोत्कच–** (ना.पा.) भास (दे.) के मध्यमव्यायोग (दे.) का प्रमुख पात्र। उसके चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता है उसकी मातृ भक्ति। किन्तु मानवता की भी उसमें कमी नहीं। वह माता के भोजन के लिये ब्राह्मण परिवार के किसी सदस्य को ले जाना चाहता है। किन्तु जवरदस्ती नहीं करता। किसको ले जाना है यह समझौते से तय करता हैं और जब परिवार के सदस्य नित्यकर्म का समय मांगते हैं तब वह उदारता पूर्वक दे देता है। वह वीर भी है और समय आने पर भीम से भिड़ जाता है। अन्त में माता पिता की आज्ञा से ब्राह्मण परिवार को उसके घर तक भेजने में संकोच नहीं करता।

(२) **घटोत्कच–** (ना.पा.) भास (दे.) के दूत घटोत्कच नाटक का प्रमुख पात्र। इसका उपादान महाभारत से किया गया है। किन्तु महाभारत की दानवी प्रवृत्ति के प्रतिकूल यहां उसे दौत्यकर्म जैसा महत्वपूर्ण कार्य सौंपा जाता है और वह भी कृष्ण और अर्जुन द्वारा। अपने कर्तव्य का वह पूरी तत्परता और सफलता से पालन करता है।

(३) **घटोत्कच–** (ना.पा.) वेणी संहार का एक पात्र। वह भीम का हिडिम्बा से उत्पन्न पुत्र है। वह अत्यन्त शक्ति के साथ युद्ध करता है; किन्तु अन्त में मारा जाता है; इससे उसकी मां इतना रुष्ट हो जाती है कि राक्षस दम्पत्ती को मांस खाने और खून पीने के लिये प्रेरित करती है। वे वहां बहुत ही बीभत्स दृश्य उपस्थित कर देते हैं।

घट्ट शेषाचार्य– (ना.का.) ये बधूलगोत्रीय रामानुज के पुत्र थे। इनका सम्बन्ध कवितार्किक परिवार से था। ये १९वीं शताब्दी के प्रारम्भ में मद्रास प्रेसीडेंसी के मंचल-गड्डा नामक स्थान पर रहते थे। इनका लिखा प्रपन्नसपिण्डीकरण निरास (दे.) नामक प्रतीक नाटक मद्रास की ओरियण्टल लायब्रेरी के पाण्डुलिपि अनुभाग के विवरणात्मक सूची पत्र में सं. ८४२४ पर उल्लिखित है।

घनगुरु– (ना.का.) इनका जन्म कौशिक गोत्र में हुआ था। इनका लिखा कन्दर्प विजय (दे.) नामक भाण प्रकाश में आया है।

घनश्याम– (उपनाम आर्यक) (ना.का.) ये मौनभार्गववंशीय काशीमहादेव और कमला के पुत्र एवं १८वीं शताब्दी के तुक्को जी महाराज के मन्त्री थे। इन्हें सर्वज्ञ, कण्ठीरव, व वश्यवाक् इत्यादि अनेक उपाधियां प्राप्त थीं। इनका शिक्षितों का परिवार था; दो पत्नियां थीं– सुन्दरी और कमला। दोनों विदूषी तथा लेखिका थी। इन्होंने बचपन से ही रचना करना प्रारम्भ कर दिया था। अपने जीवन में इन्होंने १०० से अधिक पुस्तकें लिखीं थीं– ६४ संस्कृत में, २० प्राकृत में और २५ अन्य भाषाओं में। इनकी पत्नी ने विद्धशालभञ्जिका की टीका की भूमिका में इनकी रचनाओं का उल्लेख किया है। इनके लिखे काव्य ग्रन्थ हैं– भगवत्पादचरित, वेङ्कटेशचरित, सन्मणिमण्डन, अन्यापदेशशतक, ५ माहात्म्य। इनका एक अबोधाकर काव्य भी है जिसमें प्रत्येक पद्य के तीन तीन अर्थ होते हैं। इस प्रकार

इन्होंने एक ही काव्य में कृष्ण, नल, और हरिश्चन्द्र की कथायें कह दी हैं। कलिदूषण नाम का इनका एक अन्य काव्य है जिसकी रचना संस्कृत और प्राकृत दो भाषाओं में की गई है। इन्होंने अनेक ग्रन्थों पर टीकायें लिखी हैं। बिद्धशालभञ्जिका पर केवल तीन घण्टे में टीका लिख दी। उसी ग्रन्थ पर इनकी पत्नी ने एक दूसरी टीका लिखी। उत्तर रामचरित की टीका केवल एक रात में पूरी कर दी। निम्नलिखित ग्रन्थों पर इन्होंने टीकायें लिखीं थीं- अभिज्ञानशाकुन्तलम्, उत्तररामचरित, वेणीसंहार, हाल-गाथासप्तशती, विक्रमोर्वशी, भोजचम्पू, नीलकण्ठ चम्पू, कविराक्षस, कादम्बरी, वासवदत्ता, दशकुमार चरित। भोजचम्पू के अपूर्ण युद्ध काण्ड को इन्होंने पूरा किया। कहा जाता है महावीरचरित के अन्तिम दो अंक अपूर्ण थे जिनकी पूर्ति उन्होंने की थी। इन टीकाओं में अनेक उपलब्ध होती हैं।

इनके लिखे नाटकों की संख्या भी पर्याप्त है जिनमें अनेक नाट्य विधाओं का प्रयोग किया गया है। प्रमुख नाटक हैं- गणेशचरित, मदनसंजीवन भाण, कुमारविजय, अनुभवचिन्तामणि, आनन्दसुन्दरी, चण्डानुराग प्रहसन इत्यादि। मदनसंजीवन भाण की रचना २६ वर्ष की आयु में की गई थी। नवग्रहचरित (सट्टक) केवल २१ वर्ष की आयु में लिखा गया था। इनकी कृतियों में प्रचण्डराहूदय नामक एक प्रतीकनाटक, एक विचित्र प्रकार की रचना डमरुक और काव्यशास्त्र पर रसार्णव नामक एक ग्रन्थ बतलाया जाता है। कहा जाता है साहित्य रचना में तो इन्हें प्रवीणता प्राप्त ही थी ये राजनीति में भी निपुण थे।

घोष यात्रा- (ना.कृ.) चार अंकों का यह शीतलचन्द्र लिखित डिम कलकत्ता से प्रकाशित हो चुका है। यह रचना महाभारत में आये हुये कथानक को लेकर लिखी गई है। इसका दूसरा नाम युधिष्ठिरानृशंस्यम् भी है।

च

चण्डकौशिक- (ना.कृ.) यह क्षेमीश्वर (दे.) लिखित पौराणिक हरिश्चन्द्रोपाख्यान पर आधारित ५ अंकों का नाटक है। हरिश्चन्द्र ने एक वार नासमझी में विश्वामित्र की भर्त्सना कर दी थी जिस पर रुष्ट होकर विश्वामित्र ने शाप दे दिया था। उसी शाप के प्रभाव से मुक्त होने के लिये हरिश्चन्द्र अपना सारा राज्य विश्वामित्र को दे देते हैं और दक्षिणा के रूप में सहस्र स्वर्णमुद्रायें भी उन्हें प्रदान करनी पड़ती हैं। उन मुद्राओं के लिये पत्नी और पुत्र को एक ब्राह्मण के हाथ बेंच देते हैं तथा स्वयं को एक चाण्डाल के हाथ बेंचकर श्मशान की पहरेदारी स्वीकार कर लेते हैं। संयोगवश पुत्र की मृत्यु हो जाती है और पत्नी अन्तिम संस्कार के लिये उसी श्मशान घाट पर ले आती है। हरिश्चन्द्र विना श्मशान कर लिये संस्कार की आज्ञा नहीं देते। इससे उनके चरित्र की दृढ़ता प्रकट

हो जाती है। बालक जी उठता है और उसका राज्याभिषेक कर दिया जाता है।

इस नाटक में करुण, भयानक और बीभत्स चित्रण मालती माधव की याद दिला देते हैं। कात्यायनी की रक्तमयी पूजा अद्‌भुत रूप में चित्रित की गई है। भाषा करुण वर्णन के सर्वथा अनुकूल है और लम्बे लम्बे समास भयानक तथा बीभत्स चित्रण में चार चांद लगा देते हैं।

इस नाटक का प्रकाशन कलकत्ता से तर्कालंकार की व्याख्या के साथ कर दिया गया था। दूसरी वार विद्यासागर की व्याख्या के साथ इसका पुनः प्रकाशन हुआ। बम्बई और मैसूर से भी इसका प्रकाशन किया गया। एम स्किलर द्वारा विब्लियोंथेकाइण्डिका सं. १२.६६ पर भी इसका उल्लेख है।

चण्डताण्डवम्– (ना.कृ.) जीवन्याय तीर्थ लिखित दो अंकों का नाटक। यह द्वितीय विश्वयुद्ध की भूमिका पर लिखा गया तत्कालीन परिस्थितियों का परिहास पूर्ण परिचय देता है।

स्टैलिन ने धर्मनाश की घोषणा की है। धर्म भारत की ओर भागता है। एक ओर हिटलर और मुसोलिनी विश्व विजय के लिये परामर्श करते हैं। दूसरी ओर अंग्रेज प्रतिज्ञा करता है कि जर्मनी का नाम निशान भी मिटा देगा। जापान और जर्मन एवं रूस और इंगलैण्ड में सन्धि होती है। अमेरिका और इंग्लैण्ड दोनों मित्र राष्ट्र हैं।

इसका प्रकाशन संस्कृत साहित्य परिषद् पत्रिका एवं आचार्य पञ्चायत ग्रन्थमाला से हो गया है।

चण्डपाल– (ना.पा.) या चन्द्रपाल कर्पूरमञ्जरी का नायक है। वह कर्पूरमञ्जरी का प्रेमी है। फिर भी दक्षिण नायक है। वह रानी से भी कटुता का व्यवहार नहीं करता। जब रानी उसकी प्रेमिका को बन्दीगृह में डाल देती है तब भी कठोरता न दिखलाकर सुंरग बनवाकर प्रेमिका से मिलने का उपाय निकालता है। जब रानी सुरुंग बन्द करवा देती है तब दूसरी सुरंग बनवा लेता है। अन्त में उसकी आकाङ्क्षा पूरी होती है और उसे अपनी प्रेमिका से पाणिग्रहण का सुयोग प्राप्त हो जाता है।

चण्डानुरंजन– (ना.कृ.) यह घनश्याम (दे.) लिखित एक प्रहसन है। तंजौर पैलेस लायब्रेरी के पाण्डुलिपि अनुभागों में सं. VIII ३६२० पर इसका उल्लेख किया गया है।

चण्डीचरित– (ना.कृ.) दे. रुद्रशर्मा त्रिपाठिन्।

चण्डीनाटकम्– (उपनाम चण्डी विलास) इसके लेखक हैं भारतचन्द्र राय। चण्डीचरित की पृष्ठ भूमि को लेकर इस नाटक की रचना की गई है। इसकी विशेषता यह है कि इसमें प्राकृत के स्थान पर हिन्दी और बंगाली भाषाओं का प्रयोग किया गया है। इसकी रचना १८वीं शताब्दी में की गई थी और इसका प्रकाशन भारतचन्द्र ग्रन्थावली के अन्तर्गत हो गया था।

चतुरीचन्द्रिका– (ना.कृ.) यह एक भाण है। इसकी रचना शरण्यपाद के पुत्र वेङ्कटार्य ने की थी। इसका उल्लेख मद्रास की ओरियण्टल लायब्रेरी के संस्कृत पाण्डुलिपि अनुभाग में ट्रायेनियल कैटेलाग में की गई है। सम्भवतः इसका प्रथम अभिनय निरुपति के उत्सव के अवसर पर किया गया था।

चतुर्भाणी– (ना.कृ.) चार भाणों का एक संग्रह। ये चार भाण हैं– वररुचि की उभयाभिसारिका, ईश्वरदत्त का धूर्तविट संवाद; आर्यश्यामिलक का पादताडितक और शूद्रक का पद्म प्राभृतक। भारतीय परम्परा इन रचनाओं को कालिदास की पूर्ववर्ती मानती है। किन्तु कीथ का विचार है कि ये रचनायें १००० ई. से पहले की नहीं हो सकतीं। कर्तृत्व पर भी कीथ ने प्रश्न चिन्ह लगाया है। उनके मत से वररुचि और शूद्रक तो इन भाणों के लेखक हो ही नहीं सकते। दूसरों के विषय में भी अनिश्चितता बनी हुई है।

भाव, वस्तु-योजना, रस इत्यादि अनेक दृष्टियों से ये नाटक एक जैसे प्रतीत होते हैं। इनमें प्राचीनता के तत्व भी पर्याप्त मात्रा में विद्यमान हैं। मानों नियमानुसार ये सब एकालाप और एकाङ्की हैं। इन चारों के लेखकों का परिचय निम्नलिखित पद्य से प्राप्त हो जाता है–

वररुचिरीश्वरदत्तः श्यामिलकः शूद्रकश्च चत्वारः
एते भाणान् बभणुः का शक्तिः कालिदासस्य ॥

इस पद्य में लेखक ने कालिदास की अपेक्षा भी इन कवियों को अधिक महत्ता प्रदान की है। किन्तु यह पद्य अत्यन्त परवर्ती काल में लिखा गया था। अतः इसको प्रामाणिक नहीं माना जा सकता। श्यामिलक को छोडकर किसी का कर्तृत्व प्रमाणित नहीं होता।

भाण के नियम के अनुसार ये सब एकाङ्की और एकालाप हैं। रंगमञ्च पर विट आता है। नायक विट का मित्र होता है, किन्तु वह रंगमञ्च पर नहीं आता। विट स्वयं नायक नहीं होता किन्तु नायक के क्रियाकलाप की सूचना देकर दर्शकों का मनोरंजन करता है। केवल धूर्त विट संवाद में विट स्वयं नायक है। इन नाटकों में केवल शृङ्गारिक साहसिक कार्यों की ही सूचना नहीं दी जाती अपितु अनेक अन्य सामाजिक विषयों का भी समावेश किया जाता है।

एम. रामकृष्ण कवि ने इसका सम्पादन त्रिचूर से किया था जिसमें महत्वपूर्ण भूमिका भी है।

चतुर्मुख– (ना.का.) दे. अब्धिमन्धन।

चन्दक– (ना.का.) दे. चन्द्र।

चन्दनदास– (ना.पा.) यह मुद्राराक्षस का महत्वपूर्ण पात्र है। यह राक्षस का इतना विश्वास पात्र मित्र है कि राक्षस सैन्य संगठन और बदला लेने की भावना से प्रेरित होकर

जब जाने लगता है तब अपना परिवार चन्दन दास के ही यहां छोड़ जाता है। जब चाणक्य को गुप्तचर विभाग से इस बात की सूचना मिलती है तब वह चन्दनदास को बुलाकर राक्षस का परिवार सौंप देने की मांग करता है। पहले तो चन्दनदास हीला हेवाला करता है किन्तु जब चाणक्य नहीं मानता तब वह निर्भय होकर स्पष्ट कह देता है 'अब्बल तो मेरे पास परिवार है ही नहीं यदि होता भी तो भी नहीं देता।' चाणक्य के सामने इस प्रकार कहना मामूली बात नहीं थी। यह बात उसके साहस और उदात्तता को व्यक्त करती है। चाणक्य भी मन में उसके लिये वाह-वाह कह उठता है। चाणक्य रुष्ट होकर उसे शूली देने का आदेश दे देता है। शूली पर चढ़ने जाते हुये वह अत्यन्त इर्षित है कि उसे मित्र कार्य में प्राण देने पड़ रहे हैं। यह उसका महान त्याग उसे मानवता के उच्च धरातल पर पहुंचा देता है। अन्त में उसी की भूमिका राक्षस को मन्त्री पद ग्रहण करने के लिये वाध्य कर देती है। और उसी से चाणक्य को विजय-लाभ होता है।

चन्द्र– (ना.का.) नाटककार के रूप में चन्द्र का नाम साहित्य जगत् में प्रसिद्ध है। इनकी एक कृति लोकानन्द (दे) का तिब्बती अनुवाद तंजौर में मिला है। नाट्यशास्त्र के १९वें अध्याय की अभिनवभारती में अभिनवगुप्त ने इनका उल्लेख किया है। इसी प्रकार चन्दक और चन्द्रक नाम भी प्रसिद्ध है। पता नहीं ये सब एक ही हैं या पृथक् पृथक। कल्हण ने राज तरंगिणी (II १६) में लिखा है कि काश्मीर के तुंजिन राजा के राज्य काल में चन्द्रक नाम का कोई महाकवि हुआ जिसमें वेदव्यास का अंश था और उसने इस प्रकार के नाटकों की रचना की थी जो सभी लोगों के देखने योग्य थे। तुंजिन का समय १०३ एडी. या कनिंघम के अनुसार ३१९ एडी. माना जाता है। चन्द्रक के नाम पर सुभाषितावली में जो पद्य पाये जाते हैं वे विभिन्न नाटकों के नन्दी पाठ मालूम पड़ते हैं। इत्सिग ने महासत्व चन्द्र का उल्लेख किया है जो प्रगीतकार और नाटककार थे तथा जिन्होंने विश्वान्तर जातक को काव्य रूप दिया था जिसे भारत के सभी भागों में गाया जाता था। किन्तु यह सारा साहित्य अब लुप्त हो गया है। लेवी ने चन्द्र व्याकरण के रचयिता चन्द्रगोमिन को ही इत्सिग का महासत्व चन्द्र माना है। किन्तु यह मत विद्वानों को स्वीकृत नहीं है। चन्द्र गोमिन का समय भी बहुत पहले का है क्योंकि इनका उल्लेख काशिकाकार ने किया है। सारांश यह है कि जो नाम चन्द्र, चन्द्रक, चन्द्रदास, महासत्व चन्द्र, चन्द्रगोमिन इत्यादि नाटककारों के बतलाये जाते हैं उनकी एकता अनेकता के विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता ।

चन्द्रक– (ना.का.) दे. चन्द्र।

(१) **चन्द्रकला–** (ना.कृ.) नारायण रचित नाटक। कैटेलागस कैटेलागोरम (I १७९) में उल्लेख।

(२) **चन्द्रकला–** (ना.कृ.) विश्वनाथ कविराज लिखित नाटिका। साहित्य दर्पण में इसका उद्धरण किया गया है।

चन्द्रकला कल्याणम्- (ना.कृ.) शृङ्गारप्रधान इस नाटक की रचना १८वीं शताब्दी में मैसूर वासी नृसिंह कवि ने की थी। चन्द्रकला (नायिका) कुन्तल के राजा रत्नाकर की पुत्री है। उस पर नंजराज (नायक) अनुरुक्त है। उन दोनों का सम्मिलन विदूषक और चन्द्रकला की चेटियों के उद्योग से होता है। भगवती अम्बिका स्वप्न में स्वयंवर रचने का आदेश देती है। उसके अनुसार स्वयंवर रचा जाता है। नायिका अपने प्रेमी के गले में जयमाला डाल देती है।

इसकी कथा वस्तु ऐतिहासिक है। इसका प्रथम अभिनय गरलपुरीश्वर के वसन्तोत्सव के अवसर पर किया गया था।

चन्द्रकलापरिणय- (ना.कृ.) यह विवाह विषयक नाटक है जिसकी रचना नृसिंह (दे.) ने की थी। इस नाटक का संकलन कैटेलागस कैटेलागोरम खण्ड ३ सं. ३८ पर किया गया है।

चन्द्रकान्ततर्कालंकार- (ना.का.) कौमुदी सुधाकर (दे.) प्रकरण के लेखक। इन्हें महामहोपाध्याय की उपाधि प्राप्त थी। इनका जन्म बंगाली परिवार में राधाकान्त के पुत्र के रुप में हुआ था। गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज कलकत्ता में १८८३ से ८७ तक ये दर्शन और काव्यशास्त्र के प्रोफेसर थे। इन्होंने उक्त नाटक के अतिरिक्त सती परिणय और चन्द्रवंश नामक काव्यों की भी रचना की जिनमें कुमारसंभव और रघुवंश का अनुकरण किया गया है। साथ ही इनका एक काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ भी बतलाया जाता है।

चन्द्रकेतु- (ना.पा.) उत्तर रामचरित में लक्ष्मण का पुत्र। इसे अश्वमेघ की रक्षा के लिये नियुक्त किया गया था। जब यह अश्व की रक्षा करते हुए वाल्मीकि आश्रम के निकट पहुंचा लव-कुश ने घोड़ा बांध लिया। जब दोनों पक्षों का सामना हुआ दोनों ओर किसी अज्ञात प्रेरणा से आत्मीयता उत्पन्न हो गई और दोनों एक दूसरे के प्रति सहृदयता का अनुभव करने लगे। फिर भी दोनों ओर से युद्धानुकूल नोक झोंक, आरोप प्रत्यारोप, प्रारम्भ हो गया। फिर युद्ध प्रारम्भ हुआ जिसमें दिव्यास्त्रों का खुलकर प्रयोग किया गया। राम के पहुंच जाने से युद्ध रुक गया। चन्द्रकेतु ने अपने विरोधी वीर की मुक्तकंठ से प्रशंसा की। यह चन्द्रकेतु की सहृदयता, उदारता और गुण ग्राहकता का प्रमाण है।

चन्द्रगुप्त द्वितीय- (क.आ.) कालिदास के सर्वाधिक सम्भावित आश्रयदाता। कालिदास ने शाकुन्तल के आमुख में विक्रम का उल्लेख किया है। विक्रमोर्वशी नामकरण में स्पष्ट ही विक्रमादित्य का संकेत है। चन्द्रगुप्त द्वितीय ने विक्रमादित्य की उपाधि धारण की थी। कुमारसंभव की रनचा चन्द्रगुप्त के पुत्र कुमार गुप्त के जन्म का अभिनन्दन करने के लिये बतलाई जाती हैं। रघु की दिग्विजययात्रा में समुद्रगुप्त की दिग्विजययात्रा की प्रतिध्वनि प्राप्त होती है. मालविकाग्निमित्र में अश्वमेघ यज्ञ पर जो विशेष वल दिया गया है वह स्पष्ट ही समुद्रगुप्त के यज्ञ की प्रतिध्वनि है।

कालिदास के ग्रन्थों से प्रस्फुटित होने वाली तत्कालीन प्रवृत्ति भी सर्वाधिक रूप में गुप्त काल के अनुकूल है। इन सब बातों से सिद्ध होता है कि बहुत अधिक सम्भव है कि चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के काल में ही कालिदास हुये हों।

चन्द्रगुप्त– (ना.पा.) मुद्राराक्षस का प्रमुख पात्र। नन्दवंश के अयोग्य, स्वार्थ परायण तथा मनमाने शासन को समाप्त कर चाणक्य ने गुणों के आधार पर इन्हीं को सम्राट के रूप में अभिषिक्त करने का प्रयत्न किया और यह चाणक्य की सम्भावना के अनुकूल वैसा ही सिद्ध भी हुआ। नाटक में वह परम गुरुभक्त शिष्य है। चाणक्य उसे हृदय से चाहता है और प्रेम से ही उसे वृषल (शूद्र) कहता है। किन्तु साथ ही वह यह भी कहता है कि यह वृषल वास्तव में वृष साधारण गाय वैलों में घूमने वाला सांड है जो अपने प्रभाव से सभी को दवाये रखने की शक्ति रखता है। यह उसकी महत्ता का सार्थक चित्रण है।

चन्द्रगोमिन्– (ना.का.) दे. चन्द्र।

चन्द्रदास– (ना.का.) दे. चन्द्र। इन्हें चण्डदास भी कहा जाता है।

चन्द्रप्रभा– (ना.कृ.) यह अज्ञातनामा कवि की रचना है। इसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम (I १८१) में किया गया है।

चन्द्ररेखा विद्याधर– (ना.कृ.) यह अज्ञातनामा कवि का लिखा नाटक है। पैलेस लायब्रेरी तंजौर की पाण्डुलिपि ग्रन्थ सूची में सं. VIII ३३९४ पर इसका प्रकथन किया गया है।

चन्द्रलेखा– (ना.कृ.) चार अंकों का एक सट्टक जिसकी रचना रुद्रदास ने की थी। इसमें मानवेदराज और चन्द्रलेखा के विवाह का अंकन किया गया है। मानवेदराज स्वयं एक कवि और नाटककार हैं। ओरियण्टल लायब्रेरी मद्रास के ट्रायनियल कैटेलाग आफ संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट में IV ४७६२ पर इसका उल्लेख है।

चन्द्रलेखा विजय– (ना.कृ.) यह देवचन्द्र (दे.) का लिखा ५ अंकों का प्रकरण है। प्रकरण के अन्त में कुमारपाल की प्रशस्ति है जिसमें अर्णोराज पर कुमारपाल की विजय का वर्णन किया गया है। इसका प्रथम अभिनय अजित नाथ के वसन्तोत्सव में किया गया था। जैसलमेर के पुस्तकालय के पाण्डुलिपि सूचीपत्र में इसका उल्लेख किया गया है।

चन्द्रलेखाविलास– (ना.कृ.) यह एक भाण है जिसका संकलन ओरियण्टल लायब्रेरी मद्रास के पाण्डुलिपि अनुभाग की विवरणात्मक सूची सं. XXI ८४०१ पर किया गया है। इसके लेखक का पता नहीं।

चन्द्रवर्मा– (ना.पा.) विद्धशालभञ्जिका (दे.) में विद्याधर मल्ल का लाट प्रदेश का सामन्त जो पुत्र हीन होने के कारण अपनी पुत्री मृगाङ्कावली को पुत्ररूप में मृगाङ्कवर्मा

बनाकर अपने अधिपति विद्याधरमल्ल के यहां भेज देता है।

(१) **चन्द्रविलास**– (ना.कृ.) (१) गङ्गाधर (दे.) रचित नाटक। इसमें चन्द्र और कुमुदिनी की काल्पनिक कथा का उपादान किया गया है। कैटेलागस कैटेलागोरम् (II ३६) में इसका उल्लेख किया गया है।

(२) **चन्द्रविलास**– (ना.कृ.) रुद्रशर्मा त्रिपाठिन् का लिखा नाटक। बम्बई में पेटर्सन द्वारा संस्कृत पाण्डुलिपियों की खोज III २०९ और ३३८ में इसका उल्लेख किया गया है।

(१) **चन्द्रशेखर**– (ना.का.) ये काव्यशास्त्र के प्रतिष्ठित आचार्य विश्वनाथ कविराज के पिता थे। इन्हें राज दरवार की ओर से अत्यन्त प्रतिष्ठित राजकीय पद सन्धिविग्रहिक प्राप्त था। इनका विद्वानों और साहित्यकारों का परिवार था। इनकी लिखी पुष्पमाला नाटिका का उल्लेख विश्वनाथ कविराज ने साहित्य दर्पण में किया है। इनकी एक पुस्तक भाषार्णव भी पाई जाती है।

(२) **चन्द्रशेखर**– (ना.का.) ये प्रसिद्ध साहित्यकार घनश्याम के पुत्र थे। इन्होंने अपने पिता की कृतियों डमरुक और प्रचण्ड राहूदय (दे.) की व्याख्यायें लिखी हैं। घनश्याम के दूसरे पुत्र गोवर्धन अन्धे थे फिर भी पिता की कृपा से विद्वत्ता प्राप्त की थी और घटकर्पर पर एक टीका लिखी थी।

(३) **चन्द्रशेखर**– (चयनी) (ना.का.) ये वाजपेयी गोपीनाथ राजगुरु के पुत्र थे जो कि १७वीं शताब्दी में बुन्देल खण्ड के वीर केसरी रामचन्द्र के गुरु थे। इनके लिखे मथुरानिरुद्ध नाटक का कैटेलागस कैटेलागोरम खण्ड १ सं. ४२६ पर उल्लेख किया गया है।

चन्द्रशेखर विलासम्– (ना.कृ.) यह तंजौर नरेश शाहजी महाराज की लिखी यक्षगान प्रकार की रचना है जिसमें यथास्थान तेलुगु का भी प्रयोग किया गया है। इसंकी सर्वप्राचीन प्राप्त पाण्डुलिपि १७०१ की है जिसमें इसकी रचना १७वीं शताब्दी के अन्त की प्रतीत होती है। इसमें भगवान् शिव के कालकूट पान का कथानक अपनाया गया है। शिवजी कालकूट को कण्ठ में ही स्थापित कर लेते हैं क्योंकि उन्हें भय है कि उनकी उदरस्थ सृष्टि कहीं कालकूट से नष्ट न हो जाय।

चन्द्रस्वामी महोत्सव– (ना.अव.) एक महोत्सव है जिसके अवसर पर खेलने के लिये वत्सराज (दे.) ने रुक्मिणी हरण (दे.) की रचना की थी।

(१) **चन्द्राभिषेक**– (ना.कृ.) रामेश्वर (दे.) लिखित नाटक। इसकी रचना विशाखदत्त के मुद्राराक्षस के अनुकरण पर उसी से मिलते जुलते कथानक को लेकर हुई है जिसमें चाणक्य द्वारा नन्द वंश का विनाश और चन्द्रगुप्त के राज्याभिषेक का अंकन किया गया है। यह रचना मुद्रा राक्षस जैसी उच्चकोटि की नहीं है और न इसमे कूटनीति उस सीमा तक दिखलाई गई है।

कैटेलागस कैटेलागोरम I १८२ में इसका उल्लेख किया गया है।

(२) **चन्द्राभिषेक-** (ना.कृ.) यह वाणेश्वर लिखित ९ अंकों का नाटक है। इसमें चन्द्रगुप्त के राज्याभिषेक का अंकन किया गया है। योगेन्द्र के दो शिष्य हैं- विनीत और दान्त। उन्हें गुरु दक्षिणा देने के लिए १४ करोड़ स्वर्ण मुद्राओं की आवश्यकता है। दोनों शिष्य विन्ध्यवासिनी की आराधना करते हैं जो प्रकट होकर गुरु से परामर्श करने का निर्देश देती हैं। दोनों शिष्य गुरु के पास जाकर स्वर्णमुद्राओं की प्राप्ति का उपाय पूंछते हैं। गुरु बतलाता है कि आज से ५वें दिन राजा नन्द की मृत्यु हो जायेगी। विनीत वहां जाकर कहे कि मैं संजीवनी औषधि के प्रभाव से राजा को पुनर्जीवित कर दूंगा। मैं उस समय परकाय प्रवेश की विद्या से राजा के शरीर में प्रविष्ट हो जाऊंगा। और राजा को पुनर्जीवित कर देने के पुरस्कार के रूप में तुम्हें वह राशि मिल जायेगी। जितने दिनों मैं नन्द के शरीर में रहूं उतने दिन मेरे निर्जीव शरीर की रक्षा दान्त करेगा।

शकटार मन्त्री को पता चल जाता है कि मृत राजा के शरीर में कोई आत्मा प्रविष्ट है। वह पता लगाकर योगेन्द्र के शरीर का दाह कर्म संस्कार कर देता है। अब शकटार को राजा की रक्षा करने की चिन्ता है। वह राजा से मिलकर अपना अपराध स्वीकार कर लेता है और कहता है कि यह कार्य मैंने प्रजा हित में किया है। राज्य की गतिविधि वदलती है और राजा किसी बात से रुष्ट होकर शकटार को पदच्युत कर देता है तथा उसके स्थान पर राक्षस को मन्त्री बना देता है। शकटार को सपरिवार बन्दी बना लिया जाता है। किन्तु एक वार किसी उचित उत्तर से सन्तुष्ट होकर राजा उसे छोड़ देता है। अब शकटार बदला लेने के लिये चाणक्य से मिलता है और दोनों कूटनीति से नन्द का शिकार कर चन्द्रगुप्त को गद्दी पर बैठाते हैं।

वर्दवान् केराजा चित्रसेन के आदेश से कुसुमाकरोद्यान में इस नाटक का प्रथम अभिनय किया गया था। इसमें छाया तत्वों का आश्रय लिया गया है तथा कपट नाटक का अन्तः प्रवेश भी किया गया है। स्त्रियों की भूमिका महत्वपूर्ण नहीं है तथा उपेक्षणीय है। इसका समय १९वीं शताब्दी का मध्य है।

चन्द्रिका- (ना.कृ.) यह रामपाणिवाद लिखित एक वीथी है। इसका प्रथम अभिनय राजवंशी मार्तण्ड के समय में त्रिवेन्द्रम में किया गया था।

इसका नायक स्वप्न में एक सुन्दरी को देखकर कामातुर हो जाता है। फिर जब मन वहलाने पुष्पोद्यान में जाता है तब उसे भोजपत्र पर लिखा एक प्रेम पत्र मिलता है और आकाशवाणी से उसे सन्देश मिलता है कि इस प्रेम पत्र को लिखने वाली चन्द्रिका राजा की रानी बनेगी। इस समय नेपथ्य से आवाज आती है कि चन्द्रिका का एक राक्षस ने अपहरण कर लिया है। राजा मूर्छित हो जाता है। होश में आने पर वह विदूषक के परामर्श से लम्बोदर की उपासना करता है। लम्बोदर दाँतों से राक्षस को मार डालता है और चन्द्रिका तथा राजा का विवाह हो जाता है।

चन्द्रिकाकलापीड– (ना.कृ.) यह रामवर्मा (दे.) का लिखा ५ अंकों का नाटक है। इसमें चन्द्रिका और कन्दर्पशेखर के विवाह का चित्रण किया गया है। इस नाटक की रचना मालावार के सेलूर स्थान पर चैत्रमास के नीलकण्ठोत्सव में प्रदर्शन करने के लिये हुई थी।

(ट्रायेनियल कैटेलाग आफ संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट्स ओरियण्टल लायब्रेरी मद्रास III ३९५९)

चन्द्रिकाजनमेजय– (ना.कृ.) पद्मनाभ लिखित नाटक। यह पौराणिक कथा पर आधारित रचना है।

चर्चना– (टी.) शकुन्तला नाटक की विस्तृत किन्तु अप्राप्य टीका। इसके कुछ भाग मालावार से लाकर मद्रास पुस्तकालय के पाण्डुलिपि अनुभाग में सुरक्षित रक्खे गये हैं। इस टीका में त्रैविक्रम की असामान्य विद्या का विवेचन किया गया है। इसके अतिरिक्त इस टीका में भास के सभी १३ नाटकों की अनियमितताओं का भी विवेचन है। साथ ही वीणा वासवदत्ता (दे.) और चाण्डाल रामायण को भी भासकृत बतलाया गया है।

चाणक्य– (ना.पा.) मुद्राराक्षस का प्रधान पात्र– (क) यह भारतीय कूटनीति का अन्वर्थावतार है। सारी सेनायें तैयारी करती ही रही; किन्तु इसने अपने बुद्धि कौशल से पहले नन्द वंश का नाश किया और फिर नन्द वंश के परम भक्त एवं वदला लेने के लिये आतुर राक्षस को चन्द्रगुप्त का महामन्त्री बनने के लिये वाध्य कर दिया। चन्द्रगुप्त को नष्ट करने के जो भी जितने भी उपाय राक्षस ने किये उनसे लौटकर उन्हीं राक्षस के अनुयायियों और मित्रों का विनाश हुआ।

(ख) जो चन्द्रगुप्त और चाणक्य का विरोध कराकर चन्द्रगुप्त को कमजोर करना चाहता था वही राक्षस उल्टा जाल में फंस गया। सीमान्त के जिन राजा लोगों को आधा राज्य देने के वायदे पर सहायता के लिये लाया था उनमें एक एक को चाणक्य ने निरस्त कर दिया। गुप्तचरों का जाल इतना संगठित था कि कोई भी उस कूटव्यूह का उल्लङ्घन नहीं कर सका। सभी गुप्तचर जीवसिद्ध सिद्धार्थक, सर्वार्थसिद्धि इत्यादि स्नेहशील और पूर्ण अनुयायी हैं और नीच से नीच काम करने को तैयार रहते हैं। यहां तक कि वधिक का कार्य तक करने के लिये चाण्डाल का रूप भी धारण कर लेते हैं। वह सामान्य जीवन एवं उच्च विचार का आदर्श रूप हैं। महान साम्राज्य के महामन्त्री का कार्य करते हुये भी अकिंचन सन्यासी का जीवन व्यतीत करता है और उसी रूप में महान् शत्रु को पराजित करता है।

(ग) यह नाटक का नायक है। यद्यपि देखने में उसकी नीति का फल भोक्ता चन्द्रगुप्त है और साथ ही राक्षस को भी भौतिक रूप में उसका फल मिला ही है; किन्तु वास्तविक सफलता तो चाणक्य की ही कही जायेगी। उसने अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर लेने

का लाभ तो प्राप्त ही किया है। इसके अतिरिक्त प्रस्तावना के बाद उसी का प्रथम प्रवेश होता है। सारा कथनाक सूत्र उसी के नियन्त्रण में सञ्चालित होता है और अन्त में उसकी सफलता की घोषणा वह करता है। 'आज घोड़े हाथी इत्यादि के अतिरिक्त सभी कैदी छोड़ दिये जायं; केवल मेरी शिखा बंधेगी।' भरत वाक्य में भी वही प्रश्न करता है कि 'अब हम तुम्हारा और क्या उपकार करें।' चन्द्रगुप्त केवल आभार प्रदर्शित करता है किन्तु अन्तिम वाक्य राक्षस का है। यह कथन भी राक्षस की पराजय और चाणक्य की विजय में ही पर्यवसित होता है।

(घ) छल की किसी भी वास्तविकता और अन्तरात्मा तक पहुचने की उसमें अभूतपूर्व क्षमता है। उसने सूक्ष्मदृष्टि से सारे रहस्य तक पहुँचकर राक्षस की सभी यौजनाओं को उसी के पराजय की ओर उन्मुख कर दिया। साथ ही जिन सहायकों को आधा राज्य देने के वायदे पर लाया था और अन्ततः वे सब उसके प्रतिद्वन्दी बन गये थे उन सबको नीति के वल पर ही समाप्त कर दिया। राक्षस ने विषकन्या के वल पर चन्द्रगुप्त को मारने की चेष्टा की थी किन्तु उससे पर्वतक को मार दिया। पर्वतक का भाई वैरोचनक अपना अधिकार लेने पर डटा था उसे आधा राज्य देने का अभिनय कर नगर प्रवेश की यात्रा में मरवा दिया। गुप्तचरों के माध्यम से पर्वतक के पुत्र मलयकेतु के मन में भय उत्पन्न कर उसे जानबूझ कर विरोधी बना लिया और उसी के विरोध के वल पर राक्षस पर विजय प्राप्त की। कुलूत का चित्रवर्मा, मलय का सिंहनाद, काश्मीर का पुष्कराक्ष, सिन्धु का सुषेण और फारस का मेघनाद सभी मलयकेतु के सहायक थे। चाणक्य नीति के प्रभाव से स्वयं मलयकेतु ने ही सबको मरवा दिया।

(ङ) मानवता की उसमें कमी नहीं। उसका अभिमान और बड़बोलापन ऊपरी ही है किन्तु उसका हृदय बहुत कोमल है। वह शत्रुओं का भी भरपूर प्रशंसक है और अन्त में सभी को पुरस्कार देताहै। वह परम देशभक्त है। वह जानता है कि जब तक देश में चन्द्रगुप्त जैसे गुणवान्, दक्ष और शक्तिशाली सम्राट का शासन नहीं होगा और राक्षस जैसे स्वामिभक्त राजनीतिज्ञ मन्त्री का उसे सहयोग नहीं मिलेगा यह राज्य कभी समृद्ध नहीं हो सकता। वास्तव में चन्द्रगुप्त को भी उसने ही इस कुशलता के लिये स्वयं तैयार किया था। उसके सभी कार्यो का सञ्चालन करने वाली देशभक्ति ही थी जिसने चन्द्रगुप्त जैसा महान् सम्राट् देश को प्रदान किया।

(१) **चाणक्य विजयम्**– (ना.कृ.) विश्वेश्वर विद्याभूषण (दे.) का लिखा ५ अंकों का नाटक। इसका विषय है नन्द पर विजय और चन्द्रगुप्त की राज्य प्राप्ति। यह नवीन शैली की रचना है जिसमें अर्थोक्षेपकों का प्रयोग नहीं किया गया है। अंकों का दृश्यों में विभाजन इसकी एक अन्य विशेषता है। प्रासङ्गिक रूप में एकोक्तियों का प्रयोग किया गया है। संवाद छोटे तथा सरल हैं। नाटक में छायातत्व का भी समावेश है। अन्त में भारतीय एकता का सन्देश दिया गया है। रूपकमञ्जरी ग्रन्थमाला से इसका १९६७ में

प्रकाशन हुआ था।

(२) **चाणक्यविजयम्–** (ना.कृ.) रमानाथ मिश्र लिखित ५ अंकों का नाटक। इसमें नन्दवध, चन्द्रगुप्त का राज्यारोहण, राक्षस द्वारा चन्द्रगुप्त की मन्त्रित्व पद की स्वीकृति इन कथाभागों का समावेश हुआ है।

आल इण्डिया ओरियण्टल कान्फरेंस के २०वें अधिवेशन में सन् १९५९ में इसका अभिनय किया गया था।

चाणूर– (ना.पा.) भास के बालचरित का एक पात्र। कृष्णा ने उसका वध किया। मृत्यु का दिखलाया जाना नाट्य वर्जनाओं में आता है। किन्तु भास ने इस नियम का पालन नहीं किया है। यह रंगमञ्च पर ही मारा जाता है और इसकी लाश भी रंगमञ्च पर ही पड़ी रहती है।

चाण्डाल– (ना.पा.) (१) **मृच्छकटिक** में चारुदत्त को शूली पर चढ़ाने के लिये दो चाण्डाल आते हैं। यद्यपि चारुदत्त के गुणों की छाप उनके हृदय पर भी लगी है; किन्तु अपने कर्तव्य पालन के प्रति वे पूर्ण रूप से सजग हैं। चारुदत्त की सन्निकट मृत्यु से शोकाकुल स्त्री समाज की अश्रु धारा उन्हें भी प्रभावित करती है। उन्हें आकाश रोता हुआ और वज्र गिरता हुआ प्रतीत होता है। अपने निष्ठुर व्यवसाय के प्रति सजग होते हुए भी वे सहृदयता से रिक्त नहीं हैं।

(२) **मुद्रा राक्षस–** में चन्दन दास के परिवार को शूली पर चढ़ाने के लिये चाणक्य के गुप्तचरों ने ही चाण्डाल का रूप धारण किया है। छद्म वेष में भी वे अपने कर्तव्य का सफलता पूर्वक निर्वाह करते हैं।

(३) **चण्डकौशिक–** में महाराज हरिश्चन्द्र विश्वामित्र का देय निर्यातन करने के लिये स्वयं को चाण्डाल के हाथ बेच देते हैं। वहां भी चाण्डाल एक पात्र है।

चाण्डालरामायण– (ना.कृ.) शकुन्तला की टीक चर्चना (दे.) में इस नाटक का उल्लेख किया गया है। टीकाकार के अनुसार यह एक छाया नाटक है जिसकी रचना भास ने की थी। किन्तु इस नाटक का कहीं कोई पता नहीं चलता।

चामुण्डा– (ना.कृ.) एल. व्यासराज शास्त्री लिखित चार अंकों का हास्यप्रधान नाटक। एसमें एक विधवा का कथानक है जो विलायत से डाक्टरी पास कर लौटती है। ग्रामीण जनता उसका तिरस्कार करती है। किन्तु जब प्रधान की बहू को वही ठीक करती है तब विरोध शमन हो जाता है और वह ग्राम्य जीवन में आदर प्राप्त कर लेती है।

यह २०वीं शताब्दी की कृति है चिन्ताद्रिपेट मद्रास से इसका प्रकाशन हुआ है।

चारुदत्त– (ना.कृ.) भास (दे.) की एक अपूर्ण नाट्यकृति। इसके चार अंक उपलब्ध होते हैं जिनके साथ न प्रस्तावना है, न भरत वाक्य। कहा नहीं जा सकता यह कृति भास

के अन्तिम जीवन की रचना है और भास उसे पूरा नहीं कर सके अथवा नाटक का अधिकांश भाग उच्छिन्न हो गया है और आजकल अधूरी रचना उपलब्ध होती है। कीथ महोदय के अनुसार इसमें दो मत नहीं हो सकते कि स्वप्नवासवदत्तम् (दे.) भास की सर्वोत्तम कृति है। किन्तु यह धारणा इसीलिये सत्य है कि चारुदत्त उपलब्ध नहीं होता। इस नाटक का गौरव इसी बात से सिद्ध है कि यह प्रसिद्ध नाटक मृच्छकटिक की आधार भूमि तैयार करता है। चारुदत्त के जो अंक उपलब्ध हैं उनके कथानक का पूरा आधार मृच्छकटिक में ग्रहण किया गया है। हो सकता है शेष मृच्छकटिक भी शेष चारुदत्त के अनुपलब्ध भाग पर आधारित हो।

चारुदत्त एक सार्थवाह है जो दानशीलता के कारण दरिद्र हो गया है। वह एक वेश्या वसन्तसेना के प्रेम में फंस जाता है। एक वार जब राजा का साला संस्थान वासवदत्ता का पीछा कर रहा था वासवदत्ता चारुदत्त के यहां शरण लेती है और जाते समय अपने आभूषण चारुदत्त के पास छोड़ जाती है। रात में सज्जलक नाम का चोर जेवरों को चुरा ले जाता है क्योंकि उसे अपनी प्रेमिका प्राप्त करने के लिये धन की आवश्यकता है। उसकी प्रेमिका वसन्तसेना की दासी है और निश्चित रकम देकर ही उसे दासत्व से मुक्त कराया जा सकता है। प्रातःकाल जब चारुदत्त को पता चलता है कि उसके घर से जेवर चोरी हो गये हैं तब वह अपनी पत्नी की रत्नावली विदूषक के हाथ वसन्तसेना के पास भेज देता है। इसमें चारुदत्त की पत्नी की उदारता भी सम्मिलित है जो निस्संकोच भाव से रत्नावली का उत्सर्ग कर देती है। वासन्तसेना को चोरी का पता चल चुका है। किन्तु चारुदत्त से पुनः मिलने की आशा से वह रत्नावली को स्वीकार कर लेती है। वसन्तसेना सज्जलक की प्रेमिका को मुक्त कर देती है। वह उदारता पूर्वक चारुदत्त के एक पुराने सेवक का उसके महाजन से उद्धार भी करा देती है और बाद में चारुदत्त के पास चली जाती है। यहीं पर नाटक की समाप्ति हो जाती है। समाप्ति पर प्रतीत होता रहता है कि चोरी का आरोप चारुदत्त पर लग रहा है और वसन्तसेना अभी संकटापन्न अवस्था में है। यदि कभी इस पूरे नाटक का अनुसन्धान किया जा सका तो साहित्य जगत् का बहुत बड़ा उपकार होगा। अभिनवगुप्त ने दरिद्र चारुदत्त का जो उल्लेख किया है वह सम्भवतः यही रचना है।

(१) **चारुदत्त–** (ना.पा.) भास (दे.) के नाटक चारुदत्त (दे.) या दरिद्रचारुदत्त का नायक। मृच्छकटिक के चारुदत्त (दे.) का प्रारम्भिक रुप इसमें उसका प्रेमी रूप ही चित्रित किया गया है। उसमें उसकी उदारता, त्याग वृत्ति और उससे उत्पन्न दरिद्रता का चित्रण किया गया है। सज्जलक द्वारा चोरी गये आभूषणों के बदले में वह कहीं अधिक बहुमूल्य रत्नावली वसन्तसेना के पास भेज देता है। इस नाटक में चारुदत्त और वसन्तसेना के चरित्रों का परिमार्जन नहीं हुआ है। चारुदत्त अभी तक चोरी की वदनामी से मुक्त नहीं हुआ है। इससे ज्ञात होता है कि चरित्र चित्रण अभी अधूरा है।

(२) **चारुदत्त–** (ना.पा.) शूद्रक (दे.) कृत मृच्छकटिक (दे.) का नायक यह अवन्तिपुरी का एक प्रसिद्ध सार्थवाह (व्यापारी दल का मुखिया) है। इसे अपने पिता पितामह से अतुल सम्पत्ति प्राप्त हुई थी। किन्तु वह एक उदार, वदान्य एवं परोपकारी व्यक्ति है जिसकी प्रतिष्ठा दूर दूर तक फैली है। और जन समाज में उसे आदर और प्रशंसा की दृष्टि से देखा जाता है। अपनी उदारता और वदान्यता के कारण उसने सारी सम्पत्ति समाप्त कर दी है। अब वह कष्टमय जीवन व्यतीत कर रहा है। किन्तु उसे कष्ट की नहीं इस बात की चिन्ता है कि अब याचकों को देने के लिये उसके पास कुछ नहीं है। उसने सम्पत्ति तो खो दी है किन्तु गुणों की उदारता में कोई कमी नहीं आई है।

वह रूपवान भी है और नगर की सर्वाधिक सुन्दरी तथा सम्पन्न वेश्या वसन्तसेना (दे.) उसे दिल दे बैठी है। वह उसके गुणों एवं रूप पर रीझी है तथा सर्वस्व देकर भी उसे प्राप्त करना चाहती है। किन्तु वसन्तसेना के पीछे राजा का साला संस्थानक पड़ा है। एक देवयात्रा से लौटते समय जब संस्थानक वसन्तसेना का पीछा करता है तब वह शरण प्राप्त करने के लिए चारुदत्त के घर में प्रवेश कर जाती है और चोरों के डर से अपना सारा जेवर चारुदत्त के यहां धरोहर के रूप में रख जाती है। उस जेवर को रात में शर्विलक चुरा ले जाता है। यह एक अपयश का मामला है; अतः चारुदत्त बहुत ही सुन्दर रत्नहार जो उसकी पत्नी का अन्तिम आभूषण है और वसन्तसेना के सभी आभूषणों से अधिक मूल्यवान है उन आभूषणों के बदले में भेज देता है। वसन्तसेना को आभूषण मिल गये हैं फिर भी एक वार फिर चारुदत्त के दर्शनों की लालसा में वह रत्नावली को स्वीकार कर लेती है।

वसन्तसेना चारुदत्त से मिलने जाती है और वहीं रात विताती है तथा दूसरे दिन पुष्पकरण्ड नामक जीर्ण उद्यान में सैर सपाटे का प्रोग्राम बनाया जाता है और वसन्त सेना को ले जाने के लिये गाड़ी तैयार की जाती है। किन्तु वसन्त सेना धोखे से संस्थानक की गाड़ी में बैठ जाती है। चारुदत्त की गाड़ी में जेल से भागा हुआ आर्यक बैठ जाता है। यद्यपि उसे संरक्षण देने में राजा के कोप भाजन होने का खतरा है फिर भी चारुदत्त साहस के साथ उसकी रक्षा करता है।

संस्थानक उस पर वसन्तसेना की हत्या का आरोप लगाता है और सारे प्रमाण जुटा देता है। अतः न्यायालय से उसे मृत्युदण्ड का आदेश दे दिया जाता है। परन्तु वसन्त सेना समय पर उपस्थित होकर उसे बचा लेती है। इसी बीच राज्य परिवर्तन हो जाता है और आर्यक राजा बनकर उसके उपकार का बदला देता है। चारुदत्त को निग्रह-अनुग्रह का अधिकार मिल जाता है। वह अच्छाइयों का सभी को पुरस्कार देता है। किन्तु जब शकार (संस्थानक) को दण्ड देने का प्रश्न उसके सामने आता है तब वह अपनी उदरता को सुरक्षित रखते हुए उसे छोड़ देता है। वह अपनी उदारता को इसी रूप में देखता है कि किसी विरोधी पर उपकार करना भी उसे दण्ड देने वरावर ही है।

वह सभी गुणों का भण्डार है; विनीत है, त्यागी है, कार्यकुशल है, कलानिपुण एवं कलाप्रेमी है, मधुर भाषी है, कुलीन है– सम्भवतः ब्राह्मण है। सब लोग उससे प्रेम करते हैं। सामान्यतः अच्छे नायक के लिये अपेक्षित सभी गुण उसमें विद्यमान हैं।

(१) **चार्वाक**– (ना.पा.) वेणी संहार मे एक पात्र। यह एक राक्षस है जो चार्वाक (नास्तिक) व्यक्ति का रूप धारण कर आता है। भीम द्वारा दुर्योधन मारा जा चुका है किन्तु चार्वाक युधिष्ठिर को झूठा समाचार देता है कि भीम और अर्जुन की मृत्यु हो गई है। इससे खलवली मच जाती है। युधिष्ठिर शस्त्र लेने के लिये दौड़ पड़ते हैं। आने वाले भीमसेन को दुर्योधन समझकर द्रौपदी भाग खड़ी होती है। जब वास्तविकता का पता चलता है द्रौपदी प्रसन्न होकर वेणी (केशपाश) का संयमन करने लगती है। चार्वाक भीम के आने के पहले ही पलायन कर जाता है।

(२) **चार्वाक**– (ना.पा.) प्रबोध चन्द्रोदय (दे.) में देहात्मवादी दार्शनिक जो महामोह का पक्षपोषक है।

चार्वाकताण्डवम्– (ना.कृ.) वीरेन्द्रकुमार भट्टाचार्य (दे.) लिखित ८ अंकों का नाटक। इसमें अन्य दर्शनों से चार्वाक का शास्त्रार्थ दिखलाया गया है।

चालुक्यराज– (ना.पा.) कर्णसुन्दरी (दे.) नाटिका का नायक।

चितिनिग्रहम्– (ना.कृ.) (१) नारायण शास्त्री (दे.) लिखित ७ अंकों का नाटक।

चित्तवृत्ति कल्याण– (ना.कृ.) भूमिनाथ (नल्ला दीक्षित) (दे.) लिखित एक प्रतीक नाटक। इसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम में १.१८६ पर किया गया है।

चित्रदीपम्– (ना.कृ.) (१) नारायण शास्त्री (दे.) लिखित १० अंकों का नाटक।

चित्रभारत– (ना.कृ.) दे. क्षेमेन्द्र।

चित्रमाय– (ना.पा.) उदात्तराघव (दे.) के खण्डित रूप में प्राप्त अंशों में यह एक पात्र है जो शिकार के लिये गये हुये लक्ष्मण के भयभीत होने की सूचना आवाज बनाकर राम को देता है जिससे यदि लक्ष्मण की रक्षा के लिये राम आश्रम छोड़कर वन को चल दें तो सीताहरण के लिये रावण को अवसर मिल जायेगा। इससे राम दुविधा में पड़ जाते हैं।

चित्रयज्ञ– (ना.कृ.) (१) विल्सन ने इस नाम के एक नाटक का उल्लेख किया है जिसकी शैली उनके अनुसार महानाटक से मिलती है। जिसकी रचना प्रमुख रूप में पद्यात्मक हुई है। स्थान स्थान पर गद्य का प्रयोग सूचना के लिये किया जाता है। ज्ञात होता है इस प्रकार के नाटक अभिनय के लिये नहीं पढ़ने के लिये लिखे गये थे। यदि इनका अभिनय भी किया जाता तो सूचक आकर समय समय पर पद्य और गद्य के माध्यम से सूचना दे देता था। हो सकता है जैसा कि हेमचन्द्र ने प्रामाणित किया है सूत्रधार ही यह कार्य करता हो और सूचना देकर किसी पात्र के अभिनय में शामिल हो जाता हो। यह

स्वांग की शैली है जो कई प्रदेशों में अपनाई जाती है।

(२) **वैद्यनाथ वाचस्पति**– भट्टाचार्य लिखित इसी नाम का नाटक। इसकी रचना १८२० में नदिया के राजा के अनुरोध पर की गई थी।

चित्ररथ– (ना.पा.) महावीर चरित का एक पात्र। जो एक गन्धर्व है। यह इन्द्र के साथ संवाद करते हुए राम रावण युद्ध का वर्णन करता है। चित्ररथ और इन्द्र दोनों गगन चारी हैं। अतः उन्हें ऊपर से युद्ध अवलोकन की सुविधा प्राप्त है।

चित्रलेखा– (ना.कृ.) भोजराज ने इस प्राकृत रचना का उल्लेख उपकथा के उदाहरण के रूप में किया है जहां किसी बड़ी रचना के अन्तर्गत आई हुई किसी अति प्रसिद्ध कथा को लेकर रचना की जाती है। कुछ विचारकों ने इस विधा का समावेश नाटिका के अन्तर्गत किया है। कहा नहीं जा सकता कि यह अप्राप्त रचना दृश्य काव्य के रूप में थी या श्रव्य काव्य के रूप में। यह भी पता नहीं कि यह स्वतन्त्र कृति थी या किसी बड़े ग्रन्थ का एक भाग।

चित्रोत्पलावलम्बितक– (ना.कृ.) अमात्य शंकुक लिखित प्रकरण। इसका उल्लेख नाट्य दर्पण में किया गया है।

(१) **चत्सूर्यालोक**– (ना.कृ.) रानी महाग्नि चिन्ननरसिंह कवि लिखित प्रतीक नाटक। इसी नाम का एक नाटक विजगापट्टम से प्रकाशित हो चुका है। किन्तु यह नाटक उससे भिन्न है– जिसकी सूचना कृष्णमाचार्य को विजगापट्टम के पी.एल. एडवोकेट ने दी थी। इसी नाम का एक अन्य नाटक भी उपलब्ध होता है जिसके लेखक का पता नहीं है।

(२) इसी नाम की एक रचना मुडुम्बई नरसिंह आचार्य लिखित प्राप्त होती है। इस रचना का प्रकाशन विजयनगरम् से हो गया है।

चिपिटक चर्वणम्– (ना.कृ.) यह जीवन्यायतीर्थ लिखित एक प्रहसन है। इसका नायक कपाली और नायिका रोगिणी है। कपाली धनी किन्तु अत्यन्त कृपण है। उसकी चेष्टायें हास्य का कारण बनी हैं। इसका प्रकाशन नाटकचक्रम् में हो गया है।

चिरंजीव– (ना.का.) दे. रामदेव।

चूडानाथ भट्टराय– (भट्टाचार्य ?) ये नैपाली कवि हैं। नैपाल के राजकीय संस्कृत महाविद्यालय काठमांडू में प्राचार्य थे। इनका लिखा परिणाम नामक (दे.) ७ अंकों का नाटक प्राप्त होता है। इनका समय २०वीं शताब्दी है। इन्हें चूडामणि भट्टाचार्य के नाम से भी अभिहित किया जाता है।

चूडामणि भट्टाचार्य– (ना.का.) दे. चूडानाथ भट्टराय।

चूडामणि– (ना.कृ.) अभिनवगुप्त ने डोम्बिका उपरूपक के उदाहरण के रूप में इस अप्राप्य कृति का उल्लेख किया है। (दे. अभिनव भारती अंक ४)

चैतन्य– (ना.पा.) चैतन्य चन्द्रोदय का एक पात्र चैतन्य महाप्रभु की आध्यात्मिक

शक्ति अपरिमेय है जिससे कलि और अधर्म घबरा उठे हैं। भक्ति और मैत्री भावनायें घबरा उनके चरित्र को उदात्त बनाती है।

चैतन्यचन्द्रोदय– (ना.कृ.) कवि कर्णपूर (दे.) विरचित प्रतीक नाटक। इस नाटक का उद्देश्य चैतन्य देव की आध्यात्मिक शक्ति और लीला का चित्रण करना है। इसमें कुछ पात्र वास्तविक हैं और कुछ कल्पित एवं भावना के मूर्तीकरण हैं। १० अंकों का यह नाटक आंशिक रूप में प्रतीक, आंशिक रूप में दार्शनिक और आंशिक रूप में ऐतिहासिक है। यह प्रताप रुद्र के निर्देश पर लिखा गया था। कलि और अधर्म वार्तालाप करते हैं कि चैतन्य के उपदेशों से उनका (कलि और अधर्म का) जनता पर शासन समाप्त हो रहा है। उसी समय चैतन्य शिष्यों के साथ सद्धर्म का उपदेश देने आ जाते हैं। इस नाटक में भक्ति इत्यादि भावनाओं का मावनीकरण किया गया है। नारद, कृष्ण इत्यादि पौराणिक पात्र हैं और चैतन्य प्रताप रूद्र इत्यादि कतिपय पात्र वास्तविक हैं।

इसकी रचना उड़ीसा के गजपति मल्ल की आज्ञा से १५७० में की गई थी। काव्यमाला संस्करण १९०६ में कलकत्ता और बंम्बई दोनों स्थानों से इसका प्रकाशन किया गया था। (लेवी द्वारा विवेचन– ले थियेटर इण्डियेन पैरिस १८९० सं. २३७)

चैत्रयज्ञ– (ना.कृ.) वैद्यनाथ वाचस्पति लिखित ५ अंकों का नाटक। इसमें दक्षयज्ञ की कथा अपने पूरे विस्तार में चित्रित की गई है जिसमें देवताओं का एकत्र होना और यज्ञ विधि का विवरण आ जाता है। इस पुस्तक का सङ्कलन कैटेलागस कैटेलागोरम सं. १.१८७ पर किया गया है। विल्सन के थियेटर II ४१२-१५ में इसका विश्लेषण प्राप्त होता है।

चैतन्यचैतन्यम्– (ना.कृ.) चैतन्य महाप्रभु के चरित्र चित्रण पर आधारित डा. रमा चौधरी (दे.) का ५ दृश्यों का नाटक।

चोक्कनाथ– (ना.का.) इनकी लिखी तीन रचनाओं का उल्लेख प्राप्त होता है– सेवन्तिकापरिणय, कान्तिमती– परिणय और रसविलास नामक भाण। इनके पिता भरद्वाज गोत्रीय तिप्पाध्वरि थे और माता का नाम नरसाम्बा था। ये रामभद्र के शिक्षक और नीलकण्ठ के मित्र थे। ये तंजौर में शाहजी महाराज के आश्रित कवि थे और इन्होंने दक्षिण कनारा की यात्रा की थी तथा राजा वासव के दरवार तक गये थे।

चोरचतुरीयम्– (ना.कृ.) चौर्यकला के विभिन्न पक्षों को लेकर हास्य सृष्टि करने वाला एक प्रहसन। इसके लेखक हैं जीवन्यायतीर्थ। संस्कृत साहित्य परिषद पत्रिका में १९५१ में इसका प्रकाशन हुआ था।

चोलभाण– (ना.कृ.) इस भाण की रचना वरद आचार्य ने १७वीं शताब्दी में की थी। बम्बई क्षेत्र में पेटर्सन ने संस्कृत पाण्डुलिपियों की जो खोज की थी जिसकी रिपोर्ट ४ खण्डों में प्रकाशित हुई थी उसमें सं. १.२६२ पर इसका उल्लेख किया गया है। ये

वरदाचार्य प्रसिद्ध अम्मालाचार्य से सम्भवतः भिन्न थे।

चौधरी यतीन्द्रविमल– (ना.का.) दे. यतीन्द्र विमल चौधरी।

चौर्य– (ना.पा.) महामोह पराजय में विरोधी पक्ष महामोह का एक सहचर। कृपासुन्दरी और कुमारपाल के विवाहोत्सव में कृपासुन्दरी के आग्रह पर कुमारपाल ने जिन व्यसनों का निर्वासन किया था उनमें यह भी एक था।

चौर्य– (शास्त्र) मृच्छकटिक में शर्विलक चारुदत्त के यहां चोरी करने के अवसर पर इस शास्त्र का स्मरण करता है। इसके आचार्य हैं– कनकशक्ति और देव हैं– स्कन्द (स्वामिकार्तिकेय)

छ

छत्रपतिः शिवराजः– (ना.कृ.) श्रीराम भीकाजी वेलणकर (दे.) लिखित ५ अंकों का नाटक यह एक ऐतिहासिक नाटक है। शिवाजी की विजयपुर विजय से लेकर राज्यारोहण तक की घटनाओं का प्रस्तुतीकरण किया गया है। इसका प्रकाशन देववाणी मन्दिर एवं भारतीयविद्याभवन से हुआ है।

छत्रपति साम्राज्यम्– (ना.कृ.) यह १० अंकों का ऐतिहासिक नाटक है। इसकी रचना मूलशंकर माणिक लाल याज्ञिक ने की थी। इसमें शिवाजी की शासन व्यवस्था का चित्रण किया गया है। इस नाटक में शिवाजी की धर्म राज्य स्थापित करने की प्रतिज्ञा, उनकी अनेक दुर्गों और राज्यों पर विजय, बीजापुर से सन्धि, मुगल सम्राट द्वारा गिरफ्तारी, फिर मिठाई की टोकरी में बाहर आना, गुर्जर प्रदेश पर अधिकार, राजपद पर अभिषेक तथा धर्म राज्य की स्थापना इन सब ऐतिहासिक घटनाओं का कथानक के रूप में उपादान किया गया है।

यह नाटक बड़ौदा से प्रकाशित हुआ है।

छलितराम– (ना.कृ.) यह एक राम विषयक नाटक है जो अब उपलब्ध नहीं होता और न इसके लेखक का पता चलता है। किन्तु जो उद्धरण दिये गये हैं उससे ज्ञात होता है कि इसमें राम के वनवास से लौटने के बाद से लेकर उत्तररामचरित की घटनाओं को नाट्य विषय बनाया गया है। उद्धरणों से ज्ञात होता है कि रचना ललित एवं प्रसाद गुण पूर्ण है और इसके निर्वाह में उदात्तता पर्याप्त मात्रा में विद्यमान है।

इसका उल्लेख रामचन्द्र गुणचन्द्र नें नाट्यदर्पण में एवं धनिक ने दशरूपकम् की अवलोक टीका में किया है। इसी प्रकार विश्वनाथ ने भी इससे उद्धरण दिया है। भोजराज ने शृङ्गार प्रकाश में इस प्रसंग में इसका उल्लेख किया है कि जहां कवि ऐतिह्य कथा-वस्तु को लेकर उसका प्रतिसंस्कार कर उसे नया रूप दे देता है। इसी प्रकार प्रबन्ध में

भी रस के अवियोग के प्रकरण में और लक्षणविवेचन में उसे उद्धृत किया गया है।

छविलालसूरि– (ना.का.) ये नैपाली कवि हैं। इनका लिखा कुशलवोदय नामक एक नाटक बतलाया जाता है। इसके अतिरिक्त विरक्तितरंगिणी, सुन्दर चरित वृत्तालंकार ये रचनायें भी इनके नाम से प्रसिद्ध हैं।

छायानाटक– (ना.वि.) संस्कृत नाट्य शास्त्र में इस विधा का कहीं उल्लेख नहीं किया गया है। किन्तु इस विधा के जो तत्त्व या इसका जो स्वरूप बतलाया जाता है उसकी सत्ता अत्यन्त प्राचीन काल से भारतीय साहित्य में पाई जाती है। सम्भवतः इसका निकट सम्बन्ध कठपुतलियों के नृत्य से है। जर्मन विद्वान पिशेल तो कठपुतलियों के नृत्य से ही नाटकों की उत्पत्ति मानते हैं। किन्तु कीथ का कहना है कि कठपुतलियों के नृत्य से बहुत पहले नाटक का जन्म हो गया था। लूडर्स ने छाया द्वारा प्रदर्शन का सिद्धान्त स्वीकार किया है। इसमें रंगमञ्च पर एक परदा टांग दिया जाता था और उसके पीछे चमड़े, लकड़ी या दफ्ती की मूर्तियां चलती फिरती और अभिनय करती दिखलाई जाती थीं। उन मूर्तियों के पीछे लैम्प का प्रकाश डाला जाता था जिससे उनकी छाया परदे पर पड़ती थी और दर्शक उनके अभिनय का आनन्द लेते थे। पीछे की ओर संवाद इस रूप में बोला जाता था जो उन चल छायाओं का संवाद ज्ञात होता था। इस प्रकार ये छाया चित्र वर्तमान टाकीज का प्रति रूप थे। विल्सन का कहना है कि किसी नाटक के प्रारम्भ, सामूहिक अभियान या परिचित जीवन के चित्रों को छाया चित्रों द्वारा दिखलाया जाता था। नाटक प्रारम्भ होने के पहले जन समाज के अनुरंजन के लिये पर्दे के पीछे जो पूर्वरंग की व्यवस्था की जाती थी उसका प्रदर्शन सम्भवतः इन छाया पटों पर किया जाता था। उत्तर रामचरित में अदृश्य रूप में सीता उपस्थित होती है और वे राम की मूर्छा दूर करने के लिये उनका वार-वार स्पर्श करती है। इसी प्रकार अभिज्ञान शाकुन्तलम् में सानुमती अदृश्य रूप में राजा की वियोग दशा का अवलोकन करती है। सम्भवतः ये दृश्य भी छायापट पर ही दिखलाये जाते थे। मुद्राराक्षस में चित्रपट दिखलाने का स्पष्ट उल्लेख किया गया है। महाभारत में रुपोपजीवन शब्द शान्ति पर्व में आया है। जिसकी व्याख्या करते हुए नीलकण्ठ ने लिखा है कि दाक्षिणात्यों में जलमण्डलिका नामक एक दृश्य विधा प्रसिद्ध है जिसमें पतले वस्त्र के व्यवधान में चमड़े इत्यादि के बने राजा, मन्त्री इत्यादि की चर्या दिखलाई जाती है। यह वस्तुतः छाया पटों का ही स्वरूप है।

इसी विधा के अन्तर्गत दृश्य दिखलाकर संगीत रूप में या सामान्य संवाद के रूप में वर्णन करना भी सम्मिलित है। अभिनवगुप्त ने इस प्रकार चित्र दिखला कर वर्णन करने के तीन प्रकार बतलाये हैं– चैत्रिक जिसमें चित्र या मूर्तियां इत्यादि दिखलाकर कथा कही जाती है। इसी के अन्तर्गत चित्रपुत्रिका (कठपुतली) का भी समावेश हो जाता है। ग्रन्थिक अर्थात् अभिनय द्वारा वर्णन करना तथा शौभिक जिसमें तद्रूप कपड़े इत्यादि धारण कर तथा चलफिर कर कहानी कही जाती है। इन सबको अभिनवगुप्त ने नाट्य छाया के

अन्तर्गत ही सन्निविष्ट किया है। क्रीडाभिरामनाटक नामक नाट्य काव्य में भी इस विधा पर प्रकाश डाला गया है।

छाया नाटक– (ना.कृ.) यह विट्ठल का लिखा नाटक है जिसका कथानक बीजापुर की आदिलशाही वंश परम्परा (१४८९-१६६०) पर आश्रित है। इसका प्रकाशन बम्बई से हो गया है।

(२) इसी नाम का एक नाटक भूभट (दे.) का लिखा भी पाया जाता है जिसकी रचना दूताङ्गद के आदर्श पर हुई थी।

छायानाटक साहित्य– (ना.स.) यद्यपि इस विधा की पारिभाषिकता संस्कृत के नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थों में नहीं मिलती किन्तु इस विधा में समाविष्ट हो सकने योग्य साहित्य प्रचुर मात्रा में मिलता है। प्रतिष्ठित नाटकों में इस विधा का प्रासङ्गिक रूप में समावेश तो हुआ ही है जैसे सानुमती का राजा की विगोय व्यथा का अदृश्य रूप में अवलोकरन और उत्तररामचरित में सीता और तमसा का अदृश्य रूप में राम की मूर्छानाओं में उन्हें होश में लाने का प्रयत्न तथा मुद्राराक्षस में छायापट का विस्तारित करना। एक धारणा यह भी है कि पूर्व रंगविधि में इस विधा का प्रयोग किया जाता था। इन प्रसंगों के अतिरिक्त इस विधा की पूर्ण कृतियां भी प्राप्त होती हैं जिनमें प्रमुख हैं–

धर्माभ्युदय या छाया नाट्य प्रबन्ध ले. मेघप्रभाचार्य; दूताङ्गद ले. सुभट; दुताङ्गद ले. भूभट; व्यासरामदेव लिखित तीन नाटक– सुभद्रा परिणय, रामाभ्युदय और पाण्डवाभ्युदय; सावित्रीचरित ले. शङ्करलाल; हरिदूत ले. अज्ञात; छायानाटक ले. विट्ठल; त्रैविक्रम नामक दो कृतियां (दे.)।

छायानाट्य प्रबन्ध– (ना.कृ.) दे. धर्माभ्युदय

छायाशाकुन्तलम्– (ना.कृ.) जीवन लाल पारेख लिखित एकाङ्की। इसमें परित्यक्ता शकुन्तला का तिरस्करिणी के प्रताप से कण्वाश्रम में आने का प्रकथन किया गया है। इसका प्रकाशन सूरत से १९५७ में हो गया था।

ज

जगज्ज्योतिमल्ल– (ना.का.) ये भटगांव नैपाल निवासी संगीतकार एवं नाटककार हैं। इनका समय १६१७ से १६३३ तक है। इनका लिखा हर गौरी विवाह (दे.) प्रकाश में आया है।

जगदानन्द– (ना.कृ.) इस नाटक के लेखक का नाम हर्षदेव बतलाया गया है। सम्भवतः ये हर्षदेव प्रसिद्ध कन्नौज राज से भिन्न थे।

जगदीश– (ना.का.) हास्यार्णव प्रहसन के लेखक। यह एक अज्ञात कवि हैं जिसके

व्यक्तित्व के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है।

जगदीश अथवा जगदीश्वर तर्कालंकार– (ना.क़ा.) इनका लिखा हास्यार्णव (दे.) प्रकाश में आया है। इनकी लिखी एक दूसरी नाट्यकृति कुमतिप्रमथन भी बतलाई जाती है।

जगद्धर– (टी.क़ा.) इनके पिता का नाम रत्नधर माता का नाम दमयन्ती और बाबा का नाम विद्याधर था। ये सभी लोग शास्त्रों के विद्वान् एवं अच्छे कवि थे जैसा कि इनकी टीकाओं के उपक्रमपद्यों से ज्ञात होता है। देवीमाहात्म्य, मेघदूत, मालतीमाधव, वासवदत्ता, सरस्वती कण्ठाभरण और वेणीसंहार पर इनकी टीकायें प्राप्त होती हैं। अन्य कृतियां हैं– संगीतसर्वस्व और शिवस्तोत्र। इनका समय १५वीं शताब्दी है।

(१) **जगन्नाथ–** (ना.क़ा.) ये तीरभक्ति परिवार के मैथिलब्राह्मण पीताम्बर के पुत्र थे। फतेहशाह (१६८४-१७१६) के दरवार में जो सामन्तगण उपस्थित हुये थे उनके मनोरञ्जन के लिये इन्होंने १७वीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में अतन्द्रचन्द्रिका (दे.) नामक एक नाटक प्रस्तुत किया था।

(२) **जगन्नाथ–** (ना.क़ा.) ये तंजौर के महाराज सर्फोजी (१७११-१७२२) के मन्त्री वालकृष्ण के पुत्र और कामेश्वर के शिष्य थे। ये स्वयं भी सर्फोजी महाराज के दरवार में रहे थे। इनके दो नाटक प्राप्त होते हैं– रतिमन्मथ (दे.) और वसुमतीपरिणय (दे.)।

(३) **जगन्नथ–** (ना.क़ा.) ये भावनगर के राजा वख्वसिहं के राजकवि थे। बड़ौदा नरेश ने भी इनका सम्मान किया था। ये मूर्तिकला, संगीत कला, चित्रकला, तथा नृत्य में प्रवीण थे। इनकी कतिपय अन्य कृतियों में भाग्यमहोदय (दे.) एक नाटक भी पाया जाता है। ये आशु कवि थे। इनका समय १८वीं शताब्दी का मध्यकाल है। माडर्नरिव्यू के १६वें अंक से ज्ञात होता है कि ये १७वीं शताब्दी में नाना फडनवीस के समय गाजियाबाद में रहते थे।

(४) **जगन्नाथ–** (ना.क़ा.) ये कावलवंशीय श्रीनिवास के पुत्र तथा शाहजी शरभोजी के दरवारी कवि थे। इनके लिखे दो भाण प्राप्त होते हैं– अनंगविजय (दे.) और शृङ्गार तरंगिणी (दे.)। इन्होंने शरभराज विलास की भी रचना की थी। इनका रचनाकाल १८वीं शताब्दी का पूर्वार्ध है।

जगन्नाध वल्लभ– (ना.कृ.) रामानन्द राय (दे.) लिखित ५ अंकों का नाटक। राधा को मनाना इसका मुख्य विषय है। मुर्शिदावाद से इसका प्रकाशन हो चुका है। संस्कृत पाण्डुलिपि सूचनासंग्रह (नोटिसेज आप संस्कृत मैन्युस्क्रिप्टस्) ४.१५६७ तथा कैटेलागस कैटेलागोरम १.१९६ में भी इसका उल्लेख किया गया है.

जगन्मोहन भाण– (ना.कृ.) इस भाण की रचना श्री रघुनाथ शास्त्री वेलण्कर ने २०वीं शताब्दी में की थी। इसका प्रकाशन हो चुका है।

जग्गू आलवार आयंगर– (ना.का.) इन्हें कविवर जग्गू के नाम से भी याद किया जाता है। ये मैसूर के निवासी थे। इनकी कादम्बरी जैसी एक कल्पित अद्भुतकथा जवनिका प्रसिद्ध है। इनके लिखे दो नाटक भी बतलाये जाते हैं स्यमन्तक (दे.) और अद्भुतांशुक (दे.) इनका समय २० वीं शताब्दी का पूर्वार्ध है। सम्भवतः जग्गू वकुलभूषण (दे.) भी इन्हीं का नाम है जिनकी लिखी प्रतिज्ञाचाणक्य (दे.) इत्यादि अनेक कृतियां बतलाई जाती हैं।

जग्गू श्रीवकुल भूषण– (ना.का.) ये कौशिक गोत्र में उत्पन्न जग्गू शिंगरार्य (शिंग्रैया) के पौत्र तथा श्री नारायणार्य के पुत्र थे। ये यदुगिरि (मैसूर) की संस्कृत महापाठशाला में संस्कृत साहित्य के अध्यापक थे। इन्होंने १७वें वर्ष की आयु में रचना प्रारम्भ कर दी थी। इन्होंने अनेक महाकाव्य, गद्य काव्य एवं चम्पू काव्य लिखे थे जिनमें कुछ प्रकाशित हैं कुछ अप्रकाशित। इनका नाट्य साहित्य भी अत्यन्त विस्तृत है। इनके लिखे नाटक हैं– अद्भुतांशुक, मंजुलमंजीर, प्रतिज्ञाकौटिल्य; संयुक्ता, प्रसन्नकाश्यप, स्यमन्तक, बलिविजय, अमूल्यमाल्य, अप्रतिमप्रतिम, मणिहरण, प्रतिज्ञा शान्तनव, नवजीमूत, यौवराज्य, वीरसौभद्र, और अनङ्गदा। नाटकों का परिचय यथा स्थान देखिये।

जग्गू शिंगरार्य– (सिंगरैया) (ना.का.) ये यदुशैल (मेरकोटे) के निवासी थे। अन्य रचनाओं के अतिरिक्त इनके दो नाटक भी प्राप्त होते हैं– युवचरित और शिवविभवम्। इनका समय २० वीं शताब्दी (१९०२-१९६०) है।

जङ्गम– (ना.पा.) शारदा तिलक में शैवों और वैष्णवों को यह अभिधा दी गई है और उनकी मजाक उड़ाई गई है।

जटदेव– (ना.का.) ये १८०० ई. के आसपास मालावार में रहते थे। ये विश्वामित्र गोत्रीय थे तथा सोमयाग कर सन्यासी हो गये थे। इन्होंने पूर्ण पुरुषार्थ चन्द्रोदय (दे.) नाटक की रचना की थी जो एक प्रतीक नाटक है। इनको जातवेदस नाम से भी याद किया जाता है।

जटायु– (ना.पा.) रामायण का एक प्रमुख पात्र जिसने सीता हरण के अवसर पर रावण के प्रतिरोध की चेष्टा की थी और युद्ध करते हुए मारा गया। इसका राम विषयक नाटकों में प्रायः उपादान हुआ है–

(१) **प्रतिमा नाटक**– में भास ने इसका पात्र के रूप में समावेश किया है। जब परिव्राजक रूप में रावण पितृ श्राद्ध निमित्त कंचनमृग लाने के लिये राम को भेज देता है और अकेली पाकर सीता का अपहरण करता है तब जटायु उसे रोकता है और युद्ध करते हुये मारा जाता है।

(२) **महावीर चरित**– में सूच्य भाग में जटायु और सम्पाति का वार्तालाप होता है। जिससे राम के वनगमन और उनके वन के क्रिया कलापों पर प्रकाश पड़ जाता है।

सम्पाति वन्य जीवन में राम की कुशलता के लिये चिन्तित है। वह जटायु को रक्षा के लिये सावधान रहने का आदेश देता है। जटायु जब रावण द्वारा हरी गई सीता को देखता है तब कर्तव्य पालन के लिये तैयार हो जाता है और युद्ध करते हुये मारा जाता है। एक अन्य संवाद भी है जो जटायु और जाम्बवन्त के मध्य होता है।

(३) **अनर्घराघव**– में जाम्बवन्त के साथ जटायु भी रावण की उपस्थिति से चिन्तित है। जटायु ही जाम्बवन्त को सूचना देता है कि उसने रावण और मारीच को वन में देखा है तथा उससे समाचार पाकर ही जाम्बवन्त रावण की उपस्थिति की सूचना सुग्रीव को देने जाता है। सीता के अपहरण को देखकर जटायु रावण का पीछा करता है।

(४) **प्रसन्नराघव**– में गोदावरी और समुद्र की बातचीत में जटायु के क्रियाकलाप पर प्रकाश पड़ता है।

जतुकर्णी– (ना.सं.) भवभूति की माता का नाम।

जनक– (ना.पा.) (१) **महावीर चरित** (दे.) में सीता के पिता। इनकी पुत्रियों सीता और उर्मिला ने विश्वामित्र के आश्रम में राम और लक्ष्मण का वरण कर लिया जिसे जनक ने सहर्ष स्वीकृति दे दी। यह तथ्य उनकी उदार दृष्टि का परिचायक है।

(२) **उत्तररामचरित**– (दे.) में उनका चरित्र संक्षिप्त किन्तु प्रभावशाली ढंग से चित्रित किया गया है। पहले अंक में ही उल्लेख किया गया है कि जनक सीता से मिलकर लौटे हैं और सीता इस कारण दुःखी है।

जनक राजधर्म का परित्याग कर आश्रम में रह रहे हैं। कौशल्या उन्हें मिलने आती है। परिस्थिति बड़ी विषम है। उनकी पुत्री और कौशल्या की पुत्रवधू का परित्याग किया जा चुका है। परित्याग भी ऐसे अवसर पर हुआ जब कि गर्भ के दिन पूरे होने को आये हैं। दो परिवार नवागत शिशु के स्वागत में हर्षोल्लास के वातावरण से वंचित हो चुके हैं। सीता का परित्याग भी कलंक लगाकर किया गया है। परिस्थिति का प्रभाव भी दोनों की मनोवृत्ति पर पड़ा है। दोनों एक दूसरे को आश्वस्त करते हैं। दोनों की भावनायें स्वाभाविक हैं जिनमें बनावट का अंश नहीं। इनका चित्रण हृदय स्पर्शी है। जनक की दार्शनिकता का भी यहां अच्छा परिचय प्राप्त होता है।

(३) **अनर्घराघव**– में एक भावुक पिता के रूप में इनका चित्रण किया गया है। पहले ही जनकपुर को चलने के प्रस्ताव के अवसर पर विश्वामित्र राम को जनकपुर और जनक का परिचय देते हैं। रावण का प्रस्ताव ठुकराने में उनके साहस की अभिव्यक्ति होती है और धनुष चढ़ाकर राम ने जो प्रतिज्ञा पूर्ति की है उसके प्रति वे सच्चे सिद्ध होते हैं। आध्यात्मिक दृष्टि सम्पन्न व्यक्ति हैं फिर भी भावुकता से रहित नहीं हैं। जब वे राम के निर्वासन का समाचार सुनते हैं तब भावुकता वश आध्यात्मिकता को भूलकर भावना प्रवाह में वह जाते हैं।

(४) **प्रसन्नराघव**– में बहुत ही थोड़े रूप में चरित्र चित्रण हुआ है। इस वर्णन-प्रधान नाटक में अन्यों के साथ जनक की प्रशस्ति भी वर्णित की गई है। जब परशुराम के साथ राम और लक्ष्मण का विवाद सङ्घर्ष की सीमा पर पहुंच जाता है तब शतानन्द और विश्वामित्र के साथ वे दोनों पक्षों को युद्ध से विरत करने का असफल प्रयास करते हैं। संघर्ष में अन्ततः राम विजयी होते हैं।

(५) **महानाटक**– (हनुमन्नाटक) में इनका चरित्र बहुत ही स्वल्पमात्रा में आया है। केवल जनक पुर की घटनायों में ही इनका समावेश किया गया है।

जनकजानन्दन– (ना.कृ.) यह नृसिंह (कल्यलक्ष्मीनृसिहं) का राम विषयक नाटक है। इसकी रचना १८वीं शताब्दी में हुई थी। ओरियण्टल लायब्रेरी मैसूर के संस्कृत पाण्डुलिपि अनुभाग सं. २७६ पर इसका उल्लेख किया गया है।

(२) राम कथा विषयक इस नाटक की रचना कल्यलक्ष्मीनारायणसिंह ने १८वीं शताब्दी में की थी। नरसिंह के वार्षिक उत्सव के अवसर पर इसका अभिनय किया गया था। एक ही नाम के ये दोनों नाटक वस्तुतः एक ही हैं या पृथक पृथक ? क्या ऐसा तो नहीं है कि इसके असली लेखक लक्ष्मीनारायणसिंह हों और उन्होंने अपने आश्रयदाता नरसिंह को यह समर्पित कर दिया हो।

जनमनोवृत्ति– (ना.प्र.) मोहराज पराजय में काल्पनिक आरोपित प्रदेश जिस पर आक्रमण कर मोहराज ने अधिकार कर लिया है। अन्त में मोहराज को पराजित कर कुमार पाल ने धर्म का उस पर अधिकार स्थापित करा दिया है।

जन्तुकेतु– (ना.पा.) लटकमेलक प्रहसन का एक पात्र; वह वैद्य है किन्तु चिकित्सा के विषय में कुछ जानता नहीं। जब मदन मंजरीवेश्या के गले में मछली का कांटा फंस जाता है तब निकालने के लिये उसे बुलाया जाता है। वह ऐसी बातें करता है कि उपस्थित लोग हंसते हंसते लोट पोट हो जाते हैं और जोर जोर से हंसने में वेश्या के गले से कांटा भी निकल जाता है।

जयदेव– (ना.का.) प्रसन्नराघव (दे.) नाटक के लेखक; इनके पिता का नाम महादेव, माता का नाम सुमित्रा और गुरु का नाम हरिमिश्र था। ये सम्भवतः विदर्भ के निवासी थे। कवित्वसौन्दर्य के कारण इन्हें पीयूषवर्ष की उपाधि दी गई थी। इन्होंने चौर, मयूर, भास, कालिदास, हर्ष वाण, इन कवियों का उल्लेख किया है और जल्हन की सूक्तिमुक्तावली में इनसे उद्धरण दिया गया है। भोजराज ने इनका उल्लेख नहीं किया है। इन सब बातों पर विचार करने से इनका समय १२वीं शताब्दी ठहरता है। प्रसन्न राघव के अतिरिक्त इनकी दो रचनायें प्रसिद्ध हैं– चन्द्रालोक और सीताविहार।

गीतगोविन्दकार जयदेव से ये भिन्न हैं। इसमें प्रमाण यही है कि इनके माता पिता गीतगोविन्दकार के माता पिता से भिन्न थे। किन्तु बंगाल की परम्परा इन्हें तार्किक जयदेव

से अभिन्न मानती है। जिनकी टीका गंगेश की तत्वचिन्तामणि पर पाई जाती है। गंगेश का समय ११२० ई. के आस पास है। अतः इनका समय गंगेश के समय से मेल खा जाता है। अतएव यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि ये तार्किक जयदेव से अभिन्न थे।

(२) **जयदेव–** (ना.का.) गीतगोविन्द के प्रतिष्ठित लेखक। इनका जन्म वीरभूम जिला में अजयानदी के तट पर स्थित केन्दुविल्ल (केन्दुली) स्थान पर १२वीं शताब्दी में हुआ था। इनके माता-पिता वामादेवी और भोजदेव थे। बचपन में इन्होंने यायावर वृत्ति अपना ली थी और इसी प्रसंग में ये मथुरा और वृन्दावन में वैष्णव सम्प्रदाय के सम्पर्क में आये। इसके बाद जगन्नाथ के दर्शन किये और वहीं से इनका जीवन पूर्ण रूप से परिवर्तित हो गया। इनका विवाह पद्मावती नामक सुन्दरी से हुआ था। इस विषय में एक मनोरंजक घटना प्रसिद्ध है– पद्मावती एक ब्राह्मण की एक मात्र सन्तान थीं। पिता ने देखा कि कोई देवता उसे स्वप्न में आदेश दे रहा है कि अपनी पुत्री जयदेव को दान कर दो जो इस समय एक आश्रम के निकट वृक्ष के नीचे डेरा डाले हुए है। ब्राह्मण अपनी पुत्री को जयदेव के निकट ले आया। किन्तु जयदेव ने उसे स्वीकार नहीं किया। तब वह पुत्री को जयदेव के पास छोड़कर चला गया। अब जयदेव के पास विवाह करने के अतिरिक्त और कोई चारा न था। पद्मावती एक अच्छी सहधर्मिणी सिद्ध हुई। वह जयदेव की साधना की सहायिका थी और उनकी संगीत साधना में नृत्य द्वारा सहयोग देती थी। गीत गोविन्द में उसका गौरव के साथ उल्लेख किया गया है। कहा जाता है कि गीत गोविन्द की रचना करते समय जयदेव को कुछ अनौचित्य प्रतीत हुआ और वे गीत की पूर्ति किये बना ही दुःखी होकर लौट गये। प्रातः उठकर देखा वह पद्य उन्हें पूरा किया हुआ मिला। कल्पना की गई कि उस गीत की पूर्ति साक्षात् भगवान कृष्ण ने की।

जयदेव की साधना बहुत उच्चकोटि की मानी जाती है। साहित्य समाज और धर्म में सभी दृष्टियों में इन्हें अत्यधिक सम्मान प्राप्त हुआ है। इनकी कविता अन्तःप्रेरणाजन्य स्वाभाविक उच्छलन मानी जाती है जिसमें ईश्वर-प्रेरणा भी सन्निहित रहीहै। इनकी साधना की सबसे बड़ी विशेषता यह रही है कि इन्होंने साहित्यधारा ही बदल दी। गीत पद्धति का प्रचलन इन्हीं के समय से तेजी से चल निकला जिसको आगे चलकर चण्डीदास, विद्यापति सूरदास प्रभृति वरिष्ठ कवियों ने अपनाया। शैली में तुकबन्दी और काव्यविषय में राधा कृष्ण की प्रेमलीला इन्हीं के समय से साहित्य जगत् में प्रसार पा सकी। जिस नगर में इन्होंने गीतगोविन्द की रचना की थी उस नगर का नाम ही जयदेवपुर पड़ गया। सैकड़ों लोग इनके चारों ओर आध्यात्मिक प्रेरणा के लिये एकत्र होते थे। ये बहुत समय तक लक्ष्मणसेन के दरवार में रहे। पौष कृष्ण सप्तमी के दिन संवत् ११२० में केन्दुली में इनका देहावसान हो गया। इसी दिन इनके अनुयायी आज भी इनका दिन मानते हैं।

जयद्रथ– (ना.पा.) महाभारत का एक प्रसिद्ध पात्र। यह सिन्धु प्रदेश का अधिपति

और दुर्योधन का बहनोई है। इसने अर्जुनपुत्र अभिमन्यु के वध में प्रमुख भूमिका निभाई थी। जिसके प्रतिशोध में अर्जुन ने इसका वध किया था। महाभारत विषयक नाटकों में कहीं कहीं इसका उल्लेख आ जाता है।

जयन्त– (ना.का.) ये चिंगलपुट के नजदीक श्रीपेरुम्बुदूर में रहते थे। इनके लिखे भाण रसरत्नाकर की प्रति ओरियण्टल लायब्रेरी के संस्कृत पाण्डुलिपि अनुभाग सं. V ६२०१ में प्राप्त की जा सकती है।

जयन्तु कुमाउनीया:– (ना.कृ.) लीलाराव दयाल लिखित ३ दृश्यों की नाट्यकृति। इसमें युद्ध का वास्तविक चित्रण है। भारतीय सैनिक रोग ग्रस्त, हथियार पुराने एवं अपर्याप्त; फिर भी कर्नल शेखर के नेतृत्व में विजय प्राप्त होती है और जनरल हरीश्वर दयाल (संभवतः लेखिका का पति) झंडा फहराते हैं। किन्तु विदेश मन्त्री वर्मा के आदेश पर जीता हुआ इलाका अमेरिका को दे दिया जाता है। इसमें भावुकतापूर्ण कुमाउनी गीतों का समावेश है।

जयप्रभसूरि– (ना.का.सं.) प्रबुद्ध रौहिपणेय के रचयिता रामभद्र मुनि (दे.) के गुरु थे।

जयरन मल्लदेव– (ना.का.) विजयमल्ल के पुत्र नैपाल राज्य की गद्दी की उत्तराधिकारिणी नाथुल्लादेवी के पति। इनके पाण्डव विजय में महाभारत के सभापर्व को नाटक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इस नाटक को सभापर्व नाटक की भी संज्ञा दी जाती है। बेण्डल के प्रीफेस १९.११५ पर इसका उल्लेख है। इन्हें जयराम महादेव और जयराम मल्लदेव भी कहा जाता है।

जयरत्नाकरम्– (ना.कृ.) इसकी रचना नैपाली कवि शक्तिवल्लभ अजर्याल ने की थी। इससे नेपाल के सामाजिक जीवन का अच्छा परिचय प्राप्त हो जाता है। इसकी नाट्यशैली भारतीय शास्त्रीय पद्धति से भिन्न है। इसमें अंकों को कल्लोल कहा गया है। इसके अभिनय के लिये रंगमञ्च की आवश्यकता नहीं पड़ती। दर्शक घेरे में चारों ओर बैठ जाते हैं, बीच में अभिनेता बैठते हैं। सबसे अधिक महत्ता सूत्रधार और नटी की होती है। वही कथासूत्र को सञ्चालित करता है। ब्राह्मणों और कुलाङ्गनाओं का चरित्र भ्रंश, प्रतिलोम विवाह से उत्पन्न वर्ण शंकर जातियां फिरंगी इत्यादि इस नाटक का विषय हैं। कहीं कहीं वक्तव्य लम्बे हो गये हैं जिससे कथा सूत्र छूट जाता है। कहीं कहीं अश्लीलता भी आ गई है।

इसका प्रथम अभिनय रणबहादुर के सामने किया गया था। नैपाल संस्कृत परिषद् द्वारा सन् १९६५ में इसका प्रकाशन करा दिया गया था।

जयराम मल्लदेव– (ना.का.) दे. जयरन मल्लदेव।

जयराम महादेव– (ना.का.) मल्ल (दे.) जयरनमल्लदेव।

जयशंकर द्विवेदी– (ना.का.) ये १८वीं शताब्दी के गुजराती कवि थे। इनके नवनन्दनन्दनरति नाटक का उल्लेख किया जाता है।

जयसिंह वर्मा– (ना.का.) १४वीं शताब्दी के नैपाली कवि। ये प्रधानमन्त्री थे तथा साहित्य में रुचि लेते थे। इनके लिखे दो नाटक प्राप्त हुये हैं– महिरावणवधोपाख्यान और हरिश्चन्द्रोपाख्यान। इन्हें कविकमल भास्कर की उपाधि प्राप्त थी।

जयसिंह सूरि– (ना.का.) हम्मीरमदमर्दन के रचयिता। ये भडौच में मुनि सुव्रत मन्दिर के पुजारी थे। कहा जाता है कि तेजपाल ने एक वार इनकी प्रार्थना पर देवकुलियों के लिये २५ स्वर्णध्वजदण्ड प्रदान किये थे। तेजःपाल गुजरात के राजा वीरधवल के मन्त्री वास्तुपाल के भाई थे। अतएव कृतज्ञता में जयसिंह सूरि ने दोनों भाइयों की प्रशस्ति की रचना की और हम्मीरमदमर्दन (दे.) नाटक लिखा। यह नाटक वास्तुपाल के पुत्र जयन्त सिंह को प्रसन्न करने के लिये लिखा गया था। भीमेश्वर देव की यात्रा के अवसर पर इस नाटक का अभिनय किया गया था।

जयापीड– (ना.का.सं.) काश्मीर के राजा जिसके शासनकाल ७७१-८१३ के मध्य कुट्टिनीमत के लेखक दामोदर गुप्त ने किसी राजा द्वारा लिखे रत्नावली नाटक का उल्लेख किया है। यह भी एक प्रमाण है कि रत्नावली की रचना महाराज हर्ष ने की थी।

जरासन्धवध– (ना.कृ.) यह एक व्यायोग है जिसकी रचना कुञ्जिकुट्टमतम्बिरान ने की थी। इसमें महाभारत की एतद्विषयक कथा का प्रस्तुतीकरण किया गया है। इसका प्रकाशन सहृदय संस्कृत जर्नल मद्रास से हो चुका है।

जाङ्गली देवी– (ना.पा.) कौमुदी मित्रानन्द में एक देवी जिसने सर्पदंश से रक्षा का एक मन्त्र मित्रानन्द को दिया था जिससे युवराज लक्ष्मीपति की सर्पदंश से रक्षा कर ली गई।

जातवेदस– (ना.का.) दे. जटदेव।

(१) **जानकी परिणय–** (ना.कृ.) यह राम भद्र दीक्षित का लिखा नाटक है। इसका प्रकाशन मद्रास और बम्बई से हुआ है। इसमें चरित्र की दो श्रेणियां हैं– वास्तविक और छलपूर्ण। जब वे दोनों एक दूसरे के सामने आते हैं तब भ्रान्ति उत्पन्न हो जाती है। विधुज्जिह्व, रावण और सारण क्रमशः विश्वामित्र, राम और लक्ष्मण का रूप धारण कर विश्वामित्र के आश्रम में आते हैं और उसी प्रकार सीता और उसका रूप धारण कर ताड़का आती है। राम और सीता का विवाह मिथिला में नहीं विश्वामित्र के आश्रम में होता है। सबसे अधिक ध्यान देने वाली बात यह है कि नाटक के अन्दर नाटक दिखलाया गया है। गौणकथानक का प्रारम्भ राम द्वारा सीता की खोज से होता है और उसकी समाप्ति वालिवध के साथ होती है। छल की पराकाष्ठा उस समय आ जाती है जब अन्तिम अंकों में राक्षसों की शरारत सामने आती है। शूर्पणखा एक तपस्विनी के वेष में

भरत के सामने आती है और भरत को राम की मृत्यु की सूचना देती है। भरत शोक में आत्मदाह करने को उद्यत हो जाते हैं। उसी समय राम के आने की सूचना दी जाती है और सभी कुछ सुखान्तता में समाप्त हो जाता है।

यह रामभद्र का उच्चकोटि का नाटक है। इसकी शैली विद्वत्तापूर्ण और मनोरंजक है। कविता सरल और प्रसादगुणपूर्ण एवं कथानक सर्वाङ्गपूर्ण है जिसमें कोई भी महत्वपूर्ण प्रकरण छूटा नहीं है। रामायण का सारा कथानक तीव्रता के साथ आगे बढ़ता जाता है। राक्षसी माया के राम को रोकने के प्रयास में हास्यरस और सीताहरण के बाद राम के विलाप से लेकर वालिवध तक के कथानक में अद्भुत रस का परिपाक हुआ है। इसके कथानक में वाल्मीकि से पर्याप्त भेद कर दिया गया है।

इसका सम्पादन काव्यमाला के बाम्बे संस्करण में १८१४ में किया गया था। तंजौर से लक्षमण सूरि ने १९०६ में, लम्बई से १८६६ में, मद्रास से १८८१, १८८३ और १८९२ में इसका प्रकाशन कर दिया गया था। बम्बई के १८६६ के संस्कृत में मराठी अनुवाद भी सम्मिलित हैं।

(२) **जानकीपरिणय**- (ना.कृ.) मधुसूदन द्वारा लिखित विवाहविषयक नाटक प्रकाश में आया है। इसमें चार अंक हैं। इसका रचनाकाल १७वीं शताब्दी माना जाता है। इसका प्रकाशन दरभंगा से १८९४ में हो गया था।

(३) **जानकीपरिणय**- (ना.कृ.) यह नारायण भट्ट का लिखा एक नाटक है। कैटेलागस कैटेलागोरम खण्ड १ सं. २०६ पर इसका उल्लेख किया गया है।

(४) **जानकीपरिणय**- (ना.कृ.) यह सीताराम लिखित नाटक है। इसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम खण्ड १ सं. २०६ पर किया गया है।

(५) **जानकीपरिणय**- (ना.का.) यह भट्टनारायण (२) लिखित नाटक है।

(१) **जानकीराघव**- (ना.कृ.) रामविषयक नाटक। इसका उद्धरण साहित्यदर्पण में दिया गया है। सम्भवतः यह जयसिंह (लगभग १६२५ई.) के पुत्र रामसिंह का लिखा हुआ नाटक था। इसका परिचय नैपाल पुस्तकालय से प्राप्त होता है।

(२) **जनाकीराघव**- (ना.कृ.) इस नाम का एक नाटक सागरनन्दी (दे.) का लिखा भी बतलाया जाता है। इस विषय में और कुछ ज्ञात नहीं है।

जानकी विक्रम- (ना.कृ.) हरिदास सिद्धान्त वागीश (दे.) लिखित नाटक। इसकी रचना कवि ने २० वर्ष की आयु में की थी। इसका प्रकाशन कलकत्ता से हुआ है।

जामदग्न्य विजय- (ना.कृ.) भरतप्रणीत व्यायोग जिसका उल्लेख नाट्यशास्त्र में उदाहरण के रूप में किया गया है अब यह ग्रन्थ उपलब्ध नहीं होता।

(१) **जाम्बवती कल्याण**- (ना.कृ.) यह कृष्णदेवराय (दे.) का लिखा ५ अंकों का नाटक है। इसमें महाभारत, श्रीमद्भागवत इत्यादि में आई हुई जाम्बवती कथा को नाटक

रूप में प्रस्तुत किया गया है। जाम्बवती पाताल के राजा ऋक्षराज जाम्बवान की पुत्री थी। कृष्ण ने आक्रमण कर स्यमन्तक मणि प्राप्त की और उसकी पुत्री से विवाह कर लिया। यह नाटक इष्टकुलदेवता विरुपाक्ष के चैत्रमासीय उत्सव के अवसर पर अभिनय के लिये लिखा गया था।

इस कथानक को लेकर एक रचना प्रसिद्ध वैयाकरण? पाणिनि के नाम से भी प्रसिद्ध है तथा दो एक और भी काव्य ग्रन्थ लिखे गये हैं। पाणिनि के नाम पर प्रसिद्ध काव्य को पाताल विजय की संज्ञा भी दी जाती है और उसके अनेक पद्य भोजराज के सरस्वतीकण्ठाभरण से उद्धृत किये गये हैं।

(२) **जाम्बवतीकल्याण–** (ना.कृ.) श्रीनिवासाचार्य लिखित नाटक। बंगलौर के लेविसरायस द्वारा संकलित और मैसूर एवं कुर्ग के संस्कृतपाण्डुलिपि सूचीपत्र में सं. २५६ पर उल्लिखित।

(३) **जाम्बवतीकल्याण–** (ना.कृ.) इस नाम का एक नाटक रुद्रदेव द्वारा लिखा गया प्राप्त होता है। तंजौर की पैलेस लायब्रेरी में पाण्डुलिपि के सूचीपत्र में खण्ड २ सं. ३६४ पर इसका उल्लेख किया गया है। मित्रा नोटिसेज सं. III १९२ में इसका विश्लेषणात्मक परिचय दिया गया है।

जाम्बवन्त– (ना.पा.) राम कथा का एक प्रतिष्ठित पात्र जिसका उपादान अनर्घराघव में किया गया है। सूच्य कथा प्रसंगों में सर्वप्रथम इनका परिचय विश्वामित्र के शिष्यों शुनःशेप और पशुमेढ्र के संवाद में प्राप्त होता है। उसके बाद श्रमणा के साथ इसका संवाद होता है जिसमें राम के वन पहुंचने इत्यादि का वर्णन किया गया है। जब रावण परिव्राजक वेश में वन में आता है तब यह छिपकर लक्ष्मण के साथ उसके संवाद सुनता है। जब जटायु से उसे समाचार मिलता है कि रावण मारीच के साथ वन में देखा गया है तब वह यह खबर सुग्रीव तक पहुंचाता है। यह एक योग्य राजनीतिज्ञ पात्र है।

जायाजीव– (ना.पा.वि.) दे. रुपोपजीवन।

जिन– (ना.उपा.) जैनधर्म के प्रधान उपास्य देव। मोहराज पराजय (दे.) में जिन देव की अभ्यर्थना भरत वाक्य में की गई है और आशंसा की गई है कि कृपा और विवेक चन्द्र का योग सर्वदा कल्याणकारी बना रहे।

जिनमण्डल– (सा.का.) कुमारपालप्रबन्ध के लेखक। इससे मोहराज पराजय में प्रदर्शित कृपासुन्दरी और कुमारपाल के विवाह की ऐतिहासिकता सिद्ध हो जाती है। इस लेखक के अनुसार यह विवाह ११५९ में सम्पन्न हुआ था।

जीमूतवाहन– (ना.पा.) नागानन्द का नायक। वह कई रूपों में हमारे सामने आता है। वह त्यागी, विरक्त एवं सच्चे अर्थ में भगवान बुद्ध का अनुयायी है तथा बोधिसत्व की पदवी प्राप्त कर चुका है। साथ ही वह सहृदय और भावुक भी है। वह पहली ही

दृष्टि में मलयवती के सौन्दर्य पर रीझ जाता है और उसे छोड़कर वह किसी के प्रणय बन्धन में बंधना नहीं चाहता। उसकी आकाक्षा फलवती होती है और उसे अपनी प्रेयसी मिल जाती है। उसकी विरक्ति का यह हाल है कि जब उसे ज्ञात होता है कि शत्रुसेना देश पर आक्रमण करने वाली है तब वह निस्कङ्कोच भाव से कहता है कि मेरा केवल एक शत्रु है पाप; मैं किसी लौकिक शत्रु से नहीं डरता। उसे राज्य से भी मोह नहीं है।

उसका सबसे बड़ा त्याग है नाग की रक्षा के लिये स्वयं को गरुड़ के भोजन के रुप में समर्पित करना। बध्य शिला पर जब गरुड़ आता है और भोजन के मध्य में जब गरुड़ यह देखता है कि जीमूत वाहन खाया जाता हुआ भी अत्यन्त प्रसन्न है तब स्वयं गरुड़ को आश्चर्य हो जाता है। गरुड़ भोजन करने से रुक जाता है तब स्वयं जीमूत वाहन ही उसे भोजन जारी रखने के लिये प्रोत्साहन देता है। मृत्युपर्यन्त भी उसकी मुखमुद्रा मलिन नहीं पड़ती। उसकी मृत्यु हो जाती है; किन्तु भगवती गौरी उसे पुनरुज्जीवित कर देती हैं। गरुड़ अमृतवर्षा कर नागों को पुनरुज्जीवित कर देता है जिससे नागों को जीवनदान की उसकी आकांक्षा पूरी हो जाती है। जुड़ी हुई तीनों कथाओं के अंगीरसों का वह आश्रय है। उसे अपनी सद्‌भावना का पूरा फल मिल जाता है। वह पूर्ण रूप से सफल है।

जीवदेव– (ना.का.) इनका लिखा भक्ति वैभव एक प्रतीक नाटक है। इनका समय १५०० ई. के आसपास है। उड़ीसा के राजा गजपति के ये दरवारी कवि थे। इनकी एक अन्य रचना है भक्तिभागवत जो कि कृष्णभक्तिरसायन नामक नाटक है। इसका उल्लेख गायकबाड़ ओरियण्टल सीरीज बड़ौदा की कवीन्द्र सूची में १९६७ संख्या पर किया गया है।

जीवनलाल पारेख– (ना.का.) दे. पारेख जीवनलाल।

जीवन्धरचरितम्– (ना.कृ.) टी.एस. कुप्पूस्वामी शास्त्री के अनुसार हरिश्चन्द्र जैन (दे.) का लिखा यह एक नाटक है जिसमें जीवन्धर नामक जैन राजकुमार के चरित्र को नाट्य विषय बनाया गया है। जीवन्धर के विषय में कई अनेक अन्य रचनायें मिलती हैं जिनका अनुसन्धान तंजौर के कुप्पू स्वामी ने किया था। सम्भवतः ये रचनायें तंजौर के राजपुस्तकालय में सुरक्षित हों।

जीवन्मुक्तिकल्याण– (ना.कृ.) इस नाटक का उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम। २०७ पर किया गया है जिसका रचनाकार भूमिनाथ नल्ला दीक्षित (दे.) को बतलाया जाता है।

यह एक प्रतीक नाटक है। इसका नायक जीव है; इसका विवाह अज्ञान वर्मा की पुत्री बुद्धि से हुआ है। जीव पत्नी के रुष्ट होकर जीवन्मुक्ति की ओर आकृष्ट हो जाता

है तथा उसे प्राप्त करने की चेष्टा में जुट जाता है। तब बुद्धि का पिता अज्ञान वर्मा काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर इन छः सेवकों को नियुक्त कर देता है कि वे जीव की जीवन्मुक्ति की ओर प्रवृत्ति न बढ़ने दें। जीव के दया इत्यादि ८ गुण जीव के छः शत्रुओं से उसकी रक्षा करते हैं। भक्ति जीवन्मुक्ति को बुद्धि के पास लाती है और बुद्धि समझ जाती है कि जीवन्मुक्ति उसकी निकट वर्तिनी सहेली है। वह स्वयं जीवन्मुक्ति का विवाह अपने पति से करा देती है।

मद्रास और कुर्ग में लीविसरायस द्वारा की गई पाण्डुलिपियों की खोज रिपोर्ट में भी संख्या २५६ पर मल्लासोमयाजी के नाम पर इसी नाम की एक कृति का उल्लेख किया गया है। क्या ये दोनों कृतियां एक ही हैं। नल्ला के स्थान पर मल्ला हो गया है या ये दोनों पृथक पृथक हैं यह विषय अनुसन्धेय है।

जीवन्यायतीर्थ- (ना.का.) इनका जन्म बंगाल के २४ परगना जिला के भट्टपल्ली (भटपाडा) ग्राम में १८९४ में हुआ था। ये पंचानन तर्कशास्त्र के पुत्र एवं काशीनिवासी गुरु राखालदास के शिष्य थे। ये कलकत्ता विश्वविद्यालय में संस्कृत के प्रोफेसर थे और बाद में अपने गृहग्राम भट्टपल्ली में संस्कृत के प्राचार्य बन गये थे। इन्होंने कई पत्रिकाओं का सम्पादन किया और अनवरत साहित्य साधना में निमग्न रहे तथा विशाल साहित्य राशि साहित्य जगत को प्रदान की। इन्हें राष्ट्रपति पुरस्कार भी प्राप्त हुआ था। इनकी साहित्य साधना में सटीक महाभारत का प्रणयन भी सम्मिलित है। इनकी लिखी निम्नाङ्कित नाट्य कृतियों का उल्लेख किया जाता है-

कैलासनाथविजय, क्षुत्क्षेमीयम्, गिरिसंवर्धनम्, चण्डताण्डवम्, चिपिटकचर्वणम्, चोरचतुरीयम्, तैलमर्दनम्, दरिद्रदुर्दैवम्, नष्टहास्यम्, नाग विस्तारम्, निगमानन्दचरितम्, पुरुषरमणीयम्, महाकविःकालिदासः, रघुवंश, रागविरागः, रामनामदातव्यचिकित्सालयः, विधि विपर्यासः, शतवार्षिकम्

इन कृतियों का परिचय यथास्थान प्राप्त कीजिये।

जीवबुध- (ना.का.) ये कोनेरी राजा के पुत्र थे। इनका जन्म पण्डितराज जगन्नाथ के कोनेरी वंश में १७वीं शताब्दी के आस पास हुआ था। ये शासक बन गये थे। इन्होंने नलानन्द नाटक की रचना की थी।

जीवराम याजनिक- (ना.का.) इनका समय १५वीं शताब्दी के अन्त के आसपास है। इनका लिखा मुरारि विजय नाटक पाया जाता है जिसमें श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध पूर्वार्ध में वर्णित कृष्ण लीला का उपादान कथानक के रूप में किया गया है। इसकी प्रति संस्कृत कालेज कलकत्ता के पाण्डुलिपि अनुभाग से प्राप्त की जा सकती है।

जीवसञ्जीवनी- (ना.कृ.) यह वेङ्कटरमणाचार्य लिखित एक प्रतीक नाटक है जिसका नायक जीव और नायिका सञ्जीवनी है। इस नाटक के दूसरे पात्र आयुर्वेदिक तत्व हैं तथा

इसमें नाट्यकला के माध्यम से आयुर्वेद की व्याख्या की गई है। इसका प्रकाशन सन् १९४५ में हुआ था।

जीवसिद्धि– (ना.पा.) मुद्राराक्षस में चाणक्य का गुप्तचर; यह चाणक्य के विरोधी के रूप में प्रसिद्ध है और राक्षस के अनुयायी के रूप में रहता है। यह मलयकेतु के मन में शंका उत्पन्न करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है कि पर्वतक का वध विषकन्या के द्वारा राक्षस ने ही किया है चाणक्य ने नहीं। वस्तुतः विष कन्या राक्षस ने ही जीवसिद्धि के साथ चन्द्रगुप्त को मारने के लिये भेजी थी। चाणक्य का गुप्तचर होने के नाते जीवसिद्धि ने चाणक्य को सारा रहस्य बतला दिया जिससे चाणक्य ने विषकन्या भेजकर पर्वतक का वध कर दिया। परन्तु प्रसिद्ध यह किया गया कि राक्षस ने ही विष कन्या भेजकर पर्वतक को मारा है।

जीवसिद्धि एक निपुण गुप्तचर है। वह अपने उत्तरदायित्व के प्रति सच्चा है। यद्यपि उसे विरोधी पक्ष से दगा करनी पड़ती है पर यह उसके कर्तव्य का ही एक अंश है।

जीवानन्द– (ना.कृ.) ७ अंकों का यह एक प्रतीक नाटक है जिसकी रचना वेदकवि (दे.) ने १८वीं शताब्दी में आनन्दराय के आश्रय में की थी। कवि ने यह अपने आश्रयदाता के लिये समर्पित कर दी और उस आश्रय दाता आनन्दराय माकिन के नाम से ही प्रसिद्ध हुई। जिसमें जीवात्मा का अध्यात्मविद्या से विवाह दिखलाया गया है। इस नाटक का दूसरा नाम विद्यापरिणय भी है। एक विचार यह भी है कि ये दो पृथक नाटक हैं जिनका कथानक मिलता जुलता है। दोनों नाटकों की रचना वेदकवि ने कर इन्हें अपने आश्रयदाता को समर्पित कर दिया। इस नाटक के विभिन्न पात्रों में पाण्डुरोग, उन्माद, कुष्ठ, गुल्म कर्णमूल आदि रोग हैं। इस नाटक का सन्देश यह है कि नीरोग शरीर में ही सुदृढ़ मन का वास रहता है जो आत्म कल्याण का साधन है।

इस नाटक का नायक जीव है जो अपनी राजधानी शरीर में निवास करता है। उसे रोगों की सेना में यक्ष्मा के सेनापतित्व में घेर रक्खा है। किन्तु देवकृपा से उसे विजय प्राप्त हो जाती है। इसका सम्पादन काव्यमाला (२७-१८९१) में हुआ है। यह प्रतीक नाटक होने के साथ ही भैषज्य की पाठ्य पुस्तक भी है।

जीवानन्द ज्योतिर्विद– (ना.का.) इनका लिखा ९ अंकों का मंगल नाटक (दे.) बनारस से प्रकाशित हुआ है। इसमें देवी की महत्ता का प्रदर्शन किया गया है।

जैत्रजैवित्रिकम्– (ना.कृ.) नारायण शास्त्री (दे.) लिखित ७ अंकों का नाटक। इसमें सूर्य की चन्द्र पर विजय दिखलाई गई है। और अन्त में दिखलाया गया है कि दोनों समान रूप से रात्रि के प्रणयी हैं। इसका प्रकाशन पुंगनूर सें हुआ है।

जैनमत– (ना.पा.) प्रतीक नाटकों में जैनधर्म को पात्र या विषय के रूप में प्रस्तुत

किया गया है। जैन धर्म का प्रतिपादक सर्वोत्कृष्ट नाटक मोहराज पराजय (दे.) है। कतिपय ब्राह्मण धर्मावलम्बी नाटकों ने चार्वाक और बौद्धमत के साथ इसे प्रतिद्वन्दी भी बनाया है।

जोगी पटनायक– (ना.का.) ये उड़ीसा के कवि हैं इनके लिखे दो नाटक बतलाये जाते हैं अघट घटम् और व्रजराजनन्दनम्। इनके रचनाकाल या स्थितिकाल इत्यादि के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है।

ज्ञानचन्द्रोदय– (ना.कृ.) यह एक प्रतीक नाटक है। इसके लेखक हैं पद्मसुन्दर। यह १६वीं शताब्दी की रचना है।

ज्ञानदर्पण– (ना.पा.) यह मोहराजपराजय (दे.) नामक प्रतीक नाटक का एक पात्र है। यह गुप्तचर है जो कुमारपाल को मोहराज की गतिविधि की सूचनायें देने के लिये नियुक्त किया गया है।

ज्ञानराशि– (ना.पा.) यह हास्य चूडामणि (दे.) का नायक और भागवत सम्प्रदाय का आचार्य है। इसे इस बात का अभिमान है कि केवली विद्या का वह विद्वान है और उसके आधार पर अनेक चमत्कार कर सकता है। वह गड़े धन का पता लगा सकता है। तथा और भी बहुत कुछ कर सकता है। उसके व्यवसाय में छल कपट अधिक है और मूर्खतापूर्ण कार्यों के कारण वह हास्य सृष्टि करने वाला बनता है।

ज्ञानसूर्योदय– (ना.कृ.) वादिचन्द्र (दे.) लिखित प्रतीक नाटक। इसमें दिगम्बर जैन के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है। इसकी रचना सं. १६४८ माघशुदी अष्टमी के दिन हुई थी। यह नाटक वस्तुतः प्रबोध चन्द्रोदय के अनुकरण पर लिखा गया था। प्रबोध चन्द्रोदय से इसका कथानक भी मिलता है, पात्रों के नाम भी मिलते हैं और इसमें प्रबोधचन्द्रोदय का उल्लेख भी किया गया है। इसका प्रकाशन शिवदत्त और के.पी. परब ने निर्णय सागर प्रेस बम्बई से सन् १८९३ में कराया था। इसमें बौद्धों और दिगम्बर जैनों का मजाक उड़ाया गया है। इसमें प्रस्तावना के स्थान पर उत्थानिका शब्द का प्रयोग किया गया है।

ज्योतिरीश्वर– (ना.का.) प्रसिद्ध प्रहसन धूर्तसमागम के लेखक। इन्होंने अपना परिचय स्वयं इस प्रकार दिया है– 'रामेश्वरस्य पौत्रेण तत्रभवतः पवित्रकीर्तेर्धीरेश्वरस्यात्मजेन कविशेखराचार्यज्योतिरीश्वरेण विरचिते धूर्तसमागमे' इसका आशय यह है कि ये रामेश्वर के पौत्र और धीरेश्वर के पुत्र थे तथा इन्होंने कविशेखराचार्य की उपाधि प्राप्त थी। कीथ और एस.के. डे ने इनके पिता का नाम धनेश्वर लिखा है जो कि धीरेश्वर के वंशज थे। एम. रामकृष्णमाचार्य के अनुसार ये विद्यापति के परवावा थे। एक नैपाली संस्करण में इनके पिता का नाम धीरसिंह लिखा है, तथा हरिसिंह को उनका आश्रयदाता बतलाया है और सिंमराव के हरसिंह से उन्हें अभिन्न माना है। विद्यापति का जन्म १३६८ ई. और

सिमराव का समय १३२४ ई. माना जाता है। परवावा के कार्यकाल और प्रपौत्र के जन्म में ४४ वर्ष का अन्तर पड़ता है जो अविश्वसनीय नहीं कहा जा सकता। किन्तु विजय नगर के नरसिंह (सन् १४८७ से १५०७) के आश्रय में ज्योतिरीश्वर के होने से उक्त तिथियां मेंल नहीं खातीं। सम्भवतः इसीलिये विण्टरनित्ज एवं कीथ ने नैपाली मान्यता को अविश्वनीय कहा है हो सकता है ये दूसरे ज्योतिरीश्वर हों। कहा जाता है सिमराव के हरिसिंह ने मुहम्मद सुल्तान के साथ युद्ध में विजय प्राप्त करने के उपलक्ष्य में जिस उत्सव का आयोजन किया था उसमें प्रस्तुत करने के लिये धूर्तसमागम की रचना की गई थी।

झ

झंझावृत्त- (ना.कृ.) वीरेन्द्रकुमार भट्टाचार्य लिखित नाटक। यह सेक्सपियर के टेम्पेस्ट पर आधारित है।

ड

डमरुक- (ना.कृ.) इसके लेखक तंजौर के महामन्त्री (१७०० से १७५०) घनश्याम (दे.) हैं। इसमें समाज की आत्मप्रवञ्चनामयी प्रवृत्ति पर व्यङ्गय किया गया है तथा सत्प्रवृत्ति की प्रशंसा की गई है। इसका प्रकाशन मद्रास से हुआ है। यह एक विचित्र प्रकार की रचना है। यह रचना १० अलंकारों में है और इसमें १० विषय आये हैं। यह रचना कुछ इस प्रकार कीहै कि ज्ञात होता है विभिन्न चुने हुये दृश्यों में इसकी रचना की गई है। इस पर लेखक के पुत्र चन्द्रशेखर की टीका भी है।

मद्रास में हुल्ट्ज की १९०५ की संस्कृत पाण्डुलिपियों की रिपोर्ट सं. १६७४ पर इसका उल्लेख किया गया है।

ढ

ढुंढिराज- (ना.सं.) दे. शङ्कर तथा विश्वनाथ।

ढुंढिराज व्यासयज्वन्- (ना.टी.का.) ये लक्ष्मण के पुत्र एवं शरभोजी के दरवारी कवि थे और उन्हीं की आज्ञा से सन् १७१३ में मुद्राराक्षस की टीका लिखी थी। शरभोजी ने स्वयं इस पुस्तक की शब्दसूची तैयार की थी। तंजौर लायबेरी के कैटेलाग सं. VIII ३४७४ पर इसका उल्लेख है।

त

तत्वमसि– (ना.कृ.) श्रीराम वेलणकर (दे.) लिखित रुपक। यह एकाङ्की रुपक है जिसमें छान्दोग्योयनिषद् की श्वेतकेतु और आरुणि की तत्वमसि शिक्षा को नाटकीकृत रूप में प्रस्तुत किया गया है। इसमें गीतों का भी प्रयोग हुआ है। पात्रों की संख्या ८ है। सुरभारती में १९७२ में इसका प्रकाशन हुआ था।

तनयो राजा भवति मे– (ना.कृ.) श्रीराम वेलणकर लिखित एकाङ्की जिसका प्रकाशन सुरभारती में १९७२ में हुआ था और जिसे भोपाल रेडिओ से प्रकाशित किया गया था। इसमें एक जातक कथा की धनपरा नामक धनपरायण महिला का चित्रण किया गया है। इसमें गीतों का प्रयोग भी हुआ है।

तपतीसंवरण– (ना.कृ.) यह ११वीं १२वीं शताब्दी के केरल के राजा कवि कुलशेखर का लिखा नाटक है। इसमें कुरुवंश के राजा संवरण का कथानक चित्रित किया गया है जो सूर्य पुत्री तपती से प्रेम करने लगा था। तपती ने वशिष्ठ ऋषि की कृपा से अपने प्रियतम के साथ १२ वर्ष आनन्दोपभोग में विताये। यह ६ अंकों का नाटक है जिसमें प्रेम के लक्षणानुगत स्वरूप का उपादान किया गया है। सुन्दरी के स्वप्न में दर्शन होते हैं। राजकीय मृगया के प्रसंग में प्रेमियों का मिलन होता है; अनिवार्य परिणाम होता है तीव्र वियोग वेदना और भावना का प्रवाह; फिर सम्मिलन, अपहरण, पुनः सम्मिलन जिसमें अनेक लोकोत्तर दैवी शक्तियों का आश्रय लिया गया है। ये सारी घटनायें ढीले रूप में नाटकीय स्वरूप में संकलित कर दी गई हैं।

इस नाटक का उल्लेख एस.के.डे. के संस्कृत इतिहास में किया गया है।

तपोवैभवम्– (ना.कृ.) यह नित्यानन्द द्वारा लिखित एवं साहित्य परिषद् पत्रिका में प्रकाशित एक नाटक है जिसमें लेखक ने अपने माता पिता के उदात्त चरित्र को रुपायित किया है। लेखक के पिता रामगोपाल स्मृतिरत्न के गम्भीर अध्ययन, उनके सच्चिदानन्द का शिष्य बनने और अन्त में देवी का साक्षात्कार प्राप्त करने का अंकन किया गया है। साथ ही माता की पतिपरायणता और पति सेवाभाव का भी चित्रण किया गया है।

तमसा– (ना.पा.) उत्तररामचरित में इसे पात्र के रूप में प्रस्तुत किया गया है। सर्वप्रथम अर्थोपक्षेपक में मुरला के साथ संवाद में हमें इसके दर्शन होते हैं। उस संवाद में ही हमें ज्ञात होता है कि जब लक्ष्मण सीता का परित्याग कर वापस चले गये तब सीता ने आत्महत्या के मन्तव्य से गंगा में छलांग लगा दी। वहां गंगा और पृथ्वी ने उनकी रक्षा की। वहीं सीता ने युग्म शिशुओं को जन्म दिया और दुरवस्था ग्रस्त सीता के पुत्रों को पालन-पोषण एवं शिक्षा दीक्षा के लिये वाल्मीकि को सौंप दिया। दूसरी वार हमें उसके तब दर्शन होते हैं जब राम शम्बूक को मारने दण्डक वन में आने वाले हैं

जहां पहले उपभुक्त प्रदेशों को देख देखकर सीता वियोग की उनकी वेदना के अत्यधिक बढ़ जाने और वार वार मूर्छित होने की सम्भावना है। गंगा उसके उपचार स्वरूप में सीता को अदृश्य रूप में राम के साथ उन स्थलों पर घूमने की अनुमति देती हैं औरसीता को तमसा की देख रेख में उन स्थानों पर भ्रमण के लिये भेजती हैं। तमसा अपना उत्तरदायित्व पूरी निपुणता के साथ निभाती है।

तरंगदत्त– (ना.कृ.) यह एक प्रकरण है जिसका उल्लेख धनिक, रामचन्द्रगुणचन्द्र, शारदातनय तथा बहुरूपमिश्र ने किया है। धनिक ने प्रकरण के उपविभाग किये हैं जिनमें एक प्रकार ऐसा होता है कि उसमें वेश्या नायिका होती है। उसके उदाहरण के रूप में तरंगदत्त का उल्लेख किया गया है। यह प्रकरण अब उपलब्ध नहीं होता। इसके कर्ता का भी पता नहीं है। शारदातनय ने इसका उल्लेख भावप्रकाशन में किया है।

तरंगिणी– (ना.कृ.) (१) नारायण शास्त्री (दे.) लिखित ३ अंकों का नाटक।

तरुणभूषण– (ना.कृ.) शठकोप (२) लिखित भाण; यह मैसूर की ओरियण्टल लायब्रेरी के पाण्डुलिपि अनुभाग में संकलित की गई है। (पाण्डुलिपियों का संकलन सं. २२५ से २२७; ६३७)

तर्क– (ना.पा.) प्रबोधचन्द्रोदय का एक पात्र। महामोह ने आदिपिता पुरुष को भ्रान्त करने के लिये मधुमती को भेजा था और उसकी सहचरी माया ने भी भ्रान्त करने में उसकी सहायता की। पुरुष महामोह की मृत्यु के बाद भी उसके मोह में था। किन्तु तर्क पुरुष का मित्र है उसने मधुमती इत्यादि के जाल में फंसने से पुरुष को सचेत किया है और इसीलिये पुरुष ने महामोह के वर्ग को भगा दिया है। तर्क विद्या ने अन्यों के साथ पुरुष को समझाने में सहायता की है कि वह परमात्मा का स्वरूप है।

ताडका– (ना.पा.) रामायण का एक पात्र जिसे राम ने विश्वामित्र के यज्ञ में मारा था। (१) महावीरचरित (दे.) में इस घटना का प्रस्तुतीकरण किया गया है। (२) अनर्घराघव में विश्वामित्र के शिष्य शुनःशेप और पशुमेढ्र परस्पर बातचीत में अनेक अन्य व्यक्तियों के साथ ताड़का के इतिहास पर प्रकाश डालते हैं।

(१) **ताताचार्य–** (ना.का.) इन्हें सामान्य रूप से कुमार ताताचार्य कहा जाता है। ये काञ्ची के एक सम्मानित प्रतिष्ठित परिवार में उत्पन्न हुये थे। इनके पिता का नाम वेङ्कटाचार्य था। तंजौर के नायक परिवार के महान शासक, वदान्य एवं कला प्रेमी रघुनाथ के ये विद्यागुरु थे। इन्होंने पारिजातनाटक (पारिजातहरण) (दे.) की रचना की थी जिसमें पत्नी सत्यभामा की प्रसन्नता के लिये इन्द्रोद्यान (नन्दनवन) से कृष्ण द्वारा पारिजात लाये जाने का कथानक चित्रित किया गया है। इनका समय ई. की १७वीं शताब्दी है।

(२) **ताताचार्य–** (ना.का.) इनका लिखा सीतानन्द (दे.) नाटक प्राप्त होता है जो

राम विषयक नाटकों की श्रेणी में आता है।

तापसवत्सराजचरित– (ना.का.) अनङ्गहर्ष मात्रराज (दे.) लिखित नाटक। यह नाटक वत्सराज उदयन से सम्बन्धित है। इसको दो भागों में विभाजित किया जा सकता है– पूर्वार्ध वासवदत्ताविषयक है और उत्तरार्ध पद्मावतीविषयक। उत्तरार्ध का आधार कथा-सरित्सागर का द्वितीय और तृतीय लम्भक है। बृहत्कथा में भी उदयन की दूसरी पत्नी का नाम पद्मावती ही है। इसी परम्परा में प्रस्तुत नाटक भी आता है। इससे ज्ञात होता है यह रचना रत्नावली से पहले की है। दूसरी ओर कीथ ने अनुमान लगाया है कि यह रचना रत्नावली के बाद की है; क्योंकि इसमें आत्महत्या के प्रयत्न का उपादान किया गया है जिसपर सम्भवतः रत्नावली के आत्महत्या प्रयत्नों का प्रभाव लक्षित किया जा सकता है।

इस नाटक के कथानक की विशेषता यह है कि उदयन वासवदत्ता की विपत्ति का कल्पित समाचार सुनकर तपस्वी बन जाते हैं। उधर यौगन्धरायण द्वारा प्रेषित चित्र पर मुग्ध होकर पद्मावती उदयन को अपना हृदय दे बैठती है। वियोग वेदना सहने में असमर्थ वासवदत्ता और उदयन दोनों आत्महत्या करना ही चाहते थे कि अकस्मात् दोनों का मिलन हो जाता है। उसी समय रुमण्वान विजय का समाचार देता है और नाटक सुखान्तता में समाप्त हो जाता है। इसको अभिनवभारती में उद्धृत किया गया है तथा दूसरे अनेक आचार्यों ने इसका उल्लेख किया है।

ताम्पुरान्– (ना.का.) १९वीं शताब्दी के केरल वासी कवि। इनकी चार कृतियां प्रकाश में आई हैं– किरातार्जुनीयव्यायोग, सुभद्राहरण, दशकुमारचरित और जरासन्धवध-व्यायोग। ये चारों नाट्य कृतियां हैं। (यथास्थान देखिये)

तारकोद्धरण– (ना.कृ.) इस नाटक का उल्लेख शारदातनाय ने भावप्रकाशन में किया है। कृति के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है। अब यह कृति लुप्त हो गई है।

तारा चन्द्र– (ना.का.) १९वीं शताब्दी में वाराणसी नरेश के राजपण्डित थे। इनका लिखा रामचन्द्रभाण प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त इन्होंने कई वर्णनात्मक काव्य ग्रन्थ भी लिखे थे जिनमें कनकलता, शृङ्गाररत्नाकर, काननशतकम् प्राप्त होते हैं।

तारावतीस्वयंवर– (ना.कृ.) यह एक नाटिका है जो गंगाधर कविराज (दे.) की रचना बतलाई जाती है। इसका रचनाकाल सम्भवतः १९वीं शताब्दी है। इसके विषय में और कुछ ज्ञात नहीं है।

तार्किकसिंह– (ना.का.) ये दक्षिण अर्काट जिले की गुप्त कुटी स्थान पर रहते थे। ये श्रीवत्सगोत्रीय ब्राह्मण थे। इनका लिखा रुक्मिणी परिणय (दे. सं. २ रुक्मिणी परिणय) का उल्लेख मद्रास की ओरियण्टल लायब्रेरी में प्राप्त होता है।

तार्क्ष्य– (ना.पा.) रुक्मिणी हरण का एक पात्र। विजय प्राप्त करने के लिये कृष्ण

इसका सहारा लेते हैं और इसके आह्वान के लिये रंगमञ्च पर समाधिस्थ हो जाते हैं।

तिरुमलनाथ– (ना.का.) कुहनाभैक्षव प्रहसन के लेखक। इन्हें त्रिमलनाथ, अय्यलुनाथ नामों से भी याद किया जाता है। ये बोम्मकण्ठी परिवार के गंगाधर के पुत्र थे। १८वीं शताब्दी का मध्य इनका रचनाकाल है।

तिरुमलाचार्य– (ना.का.) ये शठमर्षण गोत्र में पोलेपल्ली परिवार में उत्पन्न हुये थे और निजाम राज्य के अन्तर्गत गुडवल के दरबारी कवि थे। इनका समय १७वीं शताब्दी है। इन्होंने कल्याण पुरञ्जन (दे.) नाटक की रचना की थी जिसका संकलन मैसूर की ओरियण्टल लायब्रेरी में किया गया है।

तिरुवेङ्कटाचार्य– (ना.का.) इनका लिखा अमर्षमहिमा (दे.) रूपक अमर वाणी मैसूर से १९५१ में प्रकाशित हुआ था। इसमें यह दिखलाने का प्रयत्न किया गया है कि अमर्ष एक ऐसा रोग है जो एक से दूसरे को लगता चला जाता है और दूसरा व्यक्ति उससे तत्काल प्रभावित हो जाता है।

तिलकायनम्– (ना.कृ.) श्रीराम वेलण्कर लिखित तीन अंकों का नाटक। यह कोर्टसीन प्रधान मनोरंजक नाटक है। इसमें महात्मा तिलक पर १८९७ से १९०८ तक लगाये गये अभियोगों का समाहार किया गया है। उनके परीक्षण को आधार बनाकर नाटक की रचना की गई है। इसमें न्यायालय की प्रक्रिया का प्रस्तुतीकरण मनोरम है।

तुकारामचरितम्– (ना.कृ.) यह ११ अंकों का एक नाटक है जिसकी रचना लीलाराव दयाल (दे.) ने की थी। तुकाराम महाराष्ट्र के एक महान सन्त (सन्त शिरोमणी) थे। उनके महान चरित्र को लेकर लेखिका की मां क्षमादेवी राव ने तुकारामचरितम् की रचना की थी। उसी को आधार बनाकर लेखिका ने इस नाटक की रचना की। इसमें सभी संवाद पद्यात्मक हैं।

तुंगभद्रा– (ना.पा.) प्रसन्नराघव में एक पात्र। यह एक नदी है। जिस समय गोदावरी और समुद्र परस्पर सीताहरण के विषय में बातचीत में संल्लग्न हैं– यह भी वहां पहुंच जाती है और ऋष्यमूक पर्वत पर सीता द्वारा आभूषण गिराये जाने के बाद की घटनाओं का विवरण प्रस्तुत करती है।

तृणजातकम्– (ना.कृ.) यह दुर्गादत्त शास्त्री विद्यालंकार (दे.) का लिखा नाटक है जिसमें जातिभेद बंधुआ मजदूरी, अस्पृष्टता इत्यादि सामाजिक बुराइयों का अंकन किया गया है। १९८३ में हिन्दी अनुवाद सहित इसका प्रकाशन हुआ था।

तेजःपाल– (ना.पा.) हम्मीरमदमर्दन (दे.) का एक पात्र। वस्तुतः उस नाटक के प्रवर्तन में इसी पात्र का विशेष हाथ है। इसने अपने भाई मन्त्री वास्तुपाल की आज्ञा के अनुसार भडौच के मुनि सुव्रत मन्दिर के देवकुलिकों के लिये २५ स्वर्णध्वजदण्डों का निर्माण कराया था जिसके पुरस्कार के रूप में उस मन्दिर के पुजारी जयसिंह ने दोनों भाइयों की

प्रशस्ति की और साथ ही उक्त नाटक की रचना की। अपने अभियोग में दोनों भाइयों ने छोटी-छोटी अनेक सफलतायें प्राप्त कीं; किन्तु कीथ के अनुसार उन भाइयों की वह प्रशस्ति ठीक रूप में अभिव्यक्त नहीं हो पाई जिसके लिये उक्त नाटक की रचना की गई थी। किन्तु फिर भी उनकी राजनयिक दूरदर्शिता और कर्मण्यता की झलक मिलती अवश्य है।

तैलमर्दनम्– (ना.कृ.) जीवन्यायतीर्थ (दे.) लिखित एक प्रहसन।

त्रितन्त्री– (ना.कृ.) यह पूर्ण नाटक तो नहीं नाटक जैसी रचना अवश्य है। कृष्णमाचार्य ने लिखा है कि उन्होंने इसकी प्रति राजमुन्दरी में देखी थी। किन्तु बाद में वहां से उनका सन्बन्ध विच्छिन्न हो गया। प्रथम तन्त्र में नारद रंगमञ्च पर आकर तीनों लोकों में युद्ध करा देने की घोषणा करते हैं। दूसरे तन्त्र में दिल्ली सम्राट रत्नाकर की पुत्री के विवाह का वर्णन है। सम्राट् घोषणा करते हैं कि जो व्यक्ति आमले के बराबर का रत्न लायेगा उसी के साथ वे अपनी पुत्री का विवाह कर देंगे। ऐसा आमला वरुण देव की कृपा से एक पागल व्यक्ति के हाथ में पड़ जाता है जिसे वह राजा को दे देता है और विवाह बिना किये दरवाजे पर एक पद्य लिखकर चला जाता है। तीसरे तन्त्र में प्रभावती की कथा आती है।

(कृष्णमाचार्य ने यह विवरण दिया है और साथ ही लिखा है कि यह विवरण अपूर्ण है; एक मात्र स्मरण के आधार पर लिखा गया है।)

त्रिपुरदाह– (ना.कृ.) नाट्यशास्त्र में इस नाम के एक डिम का उल्लेख किया गया है। उसी का अनुकरण कर वत्सराज (दे.) ने इस कृति की रचना की जिसमें त्रिपुरासुर की राजधानी त्रिपुर के दहन का वर्णन किया गया है। इसमें असुरों को पराजित करने वाले दिव्यास्त्रों का अंकन किया गया है जो कीथ के मत में स्वाभाविक नहीं हैं। इस नाटक में पात्रों में शालीनता और शिष्टाचार की मर्यादा पालन के प्रति प्रवृत्ति अवलोकनीय है। जब कुमार विजय की वाढ में व्यस्त हैं उन्हें शङ्कर जी स्वयं रोक देते हैं। इस शालीनता को शुक्राचार्य जी भी सराहते हैं जो दैत्यों के गुरु के नाते विरोधी पक्ष में हैं। नाटक का उपसंहार ऋषियों और देवताओं द्वारा की गई महेश स्तुति से होता है। भरत वाक्य नायक के स्थान पर इन्द्र द्वारा प्रस्तुत किया जाता है।

इसका प्रकाशन गायकबाड़ ओरियण्टल सीरीज बड़ौदा से नाटक शतक के अन्तर्गत कर दिया गया है।

त्रिपुरमर्दन– (ना.कृ.) प्रेङ्खण उपरूपक का उदाहण। इसका उल्लेख शारदातनयन ने भाव प्रकाशन में किया है।

त्रिपुरविजयम्– (ना.कृ.) नारायण शास्त्री (१) लिखित १२ अंकों का नाटक।

त्रिपुरविजय व्यायोग– (ना.कृ.) पद्मनाभ (दे.) का लिखा व्यायोग है। इसमें भगवान् शिव की त्रिपुरासुर पर विजय दिखलाई गई है। यह नाटक कोटिपल्ली में सोमेश्वर के

महोत्सव में प्रस्तुत करने के उद्देश्य से लिखा गया था। इसका अभिनय रामेश्वर के वसन्त कल्याण महोत्सव में भी किया गया था। इसकी रचना १९वीं शताब्दी में हुई थी।

मद्रास की ओरियण्टल लायब्रेरी ट्रायनियल कैटेलाग में सं. III ३८७० पर इसका पूरा विवरण दिया हुआ है।

त्रिपुरारि– (ना.टी.का.) मालती माधव के टीकाकार; ये भारद्वाज गोत्रीय पर्वतनाथ के पुत्र थे। इन्होंने केवल ७ अंकों तक टीका लिखी थी। शोष भाग को इनके शिष्य नारायणदेव ने पूरा किया। नारायण ने पूरे मालतीमाधव की भी टीका लिखी।

त्रिपुरासुर– (ना.पा.) यह एक राक्षस है जिसका वध भगवान शंकर ने किया था और इसके आवास त्रिपुर को जला दिया था। इस कथानक को लेकर संस्कृत साहित्य में कई नाटक लिखे गये।

त्रिमलनाथ– (ना.का.) दे. अय्यलुनाथ।

त्रिलोचन– (ना.का.) राजशेखर ने इनके पार्थविजय नाटक की प्रशंसा की है जिसका उल्लेख जल्हन ने किया था। यह नाटक प्राप्त नहीं होता। सम्भवतः इस नाटक में अर्जुन के वीरता पूर्ण कार्यों का कथन किया गया है। राजशेखर के शब्दों में–

कर्तुं त्रिलोचनादन्यो न पार्थविजयंक्षमः।

तदर्थः शक्यते द्रष्टुं लोचनद्वियिभिः कथम्॥

(पार्थ विजय की रचना करने में त्रिलोचन के अतिरिक्त और कौन समर्थ हो सकता है? हम लोग तो केवल दो नेत्रों वाले हैं; भला हम उसके अर्थ को कैसे देख सकते हैं?)

शार्ङ्गधर ने त्रिलोचन के पद्यों को उद्धृत किया है जिनमें एक में वाण की और एक में मयूर की प्रशस्ति गाई गई है। त्रिलोचन ने वाण और मयूर का उल्लेख किया है और त्रिलोचन का उल्लेख राजशेखर ने किया है। इससे सिद्ध होता है कि त्रिलोचन का समय वाण-मयूर और राजशेखर के मध्य में अर्थात् ८वीं ९वीं शताब्दी है। हो सकता है ये वाचस्पति मिश्र के गुरु त्रिलोचन ही हों।

ज्ञात होता है त्रिलोचन ने नाटक के अतिरिक्त श्रव्य काव्य की रचना भी की थी। जल्हन की सूक्ति मुक्तावली और शार्ङ्गधर पद्धति में त्रिलोचन के कतिपय पद्य प्राप्त होते हैं। जिनमें सूक्तियां, अन्यापदेश, संभोगवर्णन इत्यादि विषयों पर कविता का समावेश है। इसी प्रकार उनमें वसन्त वर्णन और बुद्ध की प्रशस्ति भी पाई जाती है। इससे प्रकट होता है कि ये पद्य त्रिलोचन की अन्य रचनाओं से उद्धृत किये गये होंगे।

त्रिवदरम्– (ना.कृ.) नारायणशास्त्री लिखित ५ अंकों का नाटक।

त्रिविक्रम– (ना.का.) ये चिद्घनानन्द के पुत्र एवं त्र्यम्बक के छोटे भाई थे। इनका समय १९वीं शताब्दी है। इनका लिखा पञ्चायुधप्रपञ्च भाण (दे.) प्राप्त होता है।

(१) **त्रैविक्रम**– (ना.कृ.) यह एक संवाद नाटक है। सूत्रधार, नटी, नान्दी, प्रवेश इत्यादि शब्दों से ही इसके नाटक होने का प्रमाण मिलता है। इसमे कतिपय ऐसे संकेत किये गये हैं जिनसे ज्ञात होता है कि सूत्रधार और नटी परदे पर चित्रों को देखकर उनका वर्णन कर रहे हैं। राजा वलि अश्वमेघ यज्ञ के अन्त में याचक को उसकी सभी याचनायें प्रदान करने के लिये उद्यत हैं। मन्त्री संह्लाद के यह कहने पर भी कि ये तुम्हारे पिता हिरण्यकशिपु के मारने वाले हैं, ये वामन तीन कदमों की याचना कर तीन लोक नाप लेगे। वलि याचक को भूमि दान करने से पीछे नहीं हटते। उन्हें ऐसे प्रतिष्ठित अतिथि का सम्मान करने में गौरव का अनुभव होता है। धन की देवी लक्ष्मी वलि को छोड़कर वामन के पास चली जाती है।

इस कथानक का मञ्चन इस प्रकार किया गया है कि विभिन्न चित्रपटों पर चित्र आते जाते हैं नटी पूंछती जाती है और सूत्रधार उस चित्र की व्याख्या करता जाता है।

इस नाटक के लेखक का पता नहीं है। कुछ लोग इसे भास कृत मानते हैं; दूसरे लोग किसी पल्लव नरेश की रचना स्वीकार करते हैं जो महेन्द्र विक्रम या नरसिंह विष्णु में कोई हो सकता है। मद्रास पुस्तकालय में सुरक्षित चर्चन नामक शकुन्तला की टीका में भास के अन्य नाटकों के साथ इस नाटक की भी समीक्षा की गई है।

(२) **त्रैविक्रम**– (ना.कृ.) भास (दे.) का एक नाटक जो १३ नाटकों के अतिरिक्त है। इसकी प्रविधि एवं रचना शैली भास से मिलती जुलती है। एम.आर. कवि ने मद्रास की ओरियण्टल कान्फरेंस में सन् १९२४ में इसका परिचय दिया था। और भासकृत बतलाया था।

(३) **त्रैविक्रम**– (ना.कृ.) इस नाम के एक ऐसे नाटक का उल्लेख पाया जाता है जिसमें वर्णन करने वाले (नटी और सूत्रधार) उपस्थित नहीं हैं। नाटक के पात्र स्वयं छाया रूप में संवाद बोलते हैं।

द

दक्षमखरक्षण– (ना.कृ.) यह एक डिम है। जिसकी रचना रामानुजाचार्य ह्वी (दे.) ने की थी।

दधित्थ– (ना.पा.) बालरामायण में एक वानर जो कपित्थ के साथ समुद्र पर सेतु रचना का विस्तृत विवरण प्रस्तुत करता है।

दन्तुरा– (ना.पा.) लटकमेलक (दे.) में एक कुट्टिनी मदनमञ्जरी वेश्या के लिये कार्य करती है। वह सौदेबाजी में सहयोग देती है। हास्य के लिये दिगम्बर जैन के साथ मदन मञ्जरी के विवाह का आयोजन किया गया है, किन्तु वह मदनमञ्जरी के स्थान पर स्वयं

अपना विवाह करा लेती है। इससे अतिरिक्त हास्य की सृष्टि होती है।

दमक– (ना.कृ.) भास (दे.) कृत नाटक खण्ड। भास के नाटकचक्र में प्रकाशित १३ नाटकों के अतिरिक्त यह एक अन्य रचना है जो भासकृत बतलाई जाती है। इसकी प्रविधि और भाषा शैली भास के नाटकों से मिलती जुलती है। अन्तर केवल यह है कि इस नाटक का भरत वाक्य दूसरे भास नाटकों से मेल नहीं खाता।

यह कर्णभार (दे.) का पूरक नाटक (प्रहसन) प्रतीत होता है कर्ण द्वारा छल से परशुराम से अस्त्र विद्या सीखने और छल खुलने पर परशुराम द्वारा शाप देने का कथानक इसमें अपनाया गया है। दमक विदूषक है जो अस्त्र विद्या सीखने के अवसर पर कर्ण के साथ परशुराम आश्रम में गया था।

इसका प्रकाशन लाहौर से हो गया है।

दमयन्ती कल्याण– (ना.कृ.) रंगनाथ (३) (दे.) लिखित नाटक। यह सम्भवतः ५ अंकों का नाटक है जिसका अब केवल पहला अंक और दूसरे अंक का कुछ भाग प्राप्त होता है। ताम्रपर्णी के तट पर स्थित ट्रावनकोर के निकट सुचीन्द्रम् नगर में श्री परमेश्वर के उत्सव में इसका अभिनय किया गया था।

दमयन्ती कल्याण– (ना.कृ.) यह शठ गोपाचार्य (दे.) का लिखा ५ अंको का नाटक है। इस नाटक की रचना पद्मा सहाय के उत्सव में अभिनय के लिये की गई थी। यह उत्सव सम्भवतः श्रीरंगम में होने वाला था। इसका प्रकाशन श्री रंग की टीका एवं श्री निवासाचार्य की भूमिका के साथ हुआ था। साथ ही इसमें ए.वी. गोपालाचार्य की अंग्रेजी भूमिका भी थी। इसी नाम के एक नाटक का उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम सं. I ४१६ में भी किया गया है। पता नहीं यह वही नाटक है या कोई दूसरा।

दमयन्ती-परिणय– (ना.कृ.) नल्लन चक्रवर्ती लिखित ५ अंकों का नाटक। इसकी रचना १८वीं शताब्गी के उत्तरार्ध में की गई थी।

दम्भ– (ना.पा.) प्रतीक नाटक प्रबोधचन्द्रोदय का एक पात्र। महमोह जब विश्व के सबसे बड़े स्थल काशी पर आक्रमण कर उसे हस्तगत करता है तब उसे दम्भ से ही सर्वाधिक सहायता मिलती है। दम्भ का पितामह अहंकार है जो उस अवसर पर पहुंच जाता है और दम्भ के साथ वार्तालाप करता है।

दरिद्रचारुदत्त– (ना.कृ.) दे. चारुदत्त। अभिनवगुप्त ने जिस दरिद्र चारुदत्त का उल्लेख किया है वह सम्भवतः चारुदत्त नाम से साहित्य जगत् में प्रसिद्ध भास की रचना से अभिन्न है। इस नाटक का उल्लेख नाट्यदर्पण में किया गया है।

दरिद्रदुर्दैवम्– (ना.कृ.) यह एक प्रहसन है जिसकी रचना जीवन्यायतीर्थ ने की थी और जिसका प्रकाशन संस्कृत साहित्य ग्रन्थमाला द्वारा १९६८ में कर दिया गया था। इसका प्रथम अभिनय ऋषि बंकिमचन्द्र महाविद्यालय की देवभाषा-परिषद् के वार्षिकोत्सव

के अवसर पर किया गया था। इस प्रहसन में एक दरिद्र भिखारी की मनोवृत्ति का चित्रण किया गया है। उसे एक सिद्ध पुरुष एक पाश देता है जिससे जो भी चीज मांगी जाती है वह उसे मिल ही जाती है पड़ोसी को उससे दूनी मिल जाती है। वह भिखारी उससे दरिद्रता, अन्धता और कोढ मांगता है। उसकी इस दुर्गति को देखकर सिद्ध उससे पाश छीन लेता है।

दर्पशातन– (ना.कृ.) यह नृत्यगोपाल कविरत्न लिखित रामविषयक नाटक है इसमें परशुराम विषयक कव्यांश का नाटकीकरण किया गया है।

दशकुमार चरितम्– (ना.कृ.) इस एकाङ्की नाटक की रचना केरलवासी ताम्पूरन ने १९वीं शताब्दी में की थी। इसमें दण्डी के दशकुमार चरित का आश्रय ग्रहण किया गया है।

(१) **दशरथ**– (ना.पा.) प्रतिमा नाटक में राम के वनवास को चले जाने के बाद ये विक्षिप्त अवस्था में रंगमञ्च पर आते हैं। उनकी चेष्टाओं को देखकर प्रतीत होने लगता है मानो उन्हें उनके पूर्वजों के दर्शन हो रहे हैं। वे विक्षिप्त अवस्था में पूर्वजों का आवाहन और पूजन करते हैं।

राजघराने का नियम था कि मृत राजाओं की प्रतिमा नगर के बाहरी भाग में बने प्रतिमागृह में स्थापित कर दी जाती थी। जब भरत नन्साल से लौटते हैं तब नगर के बाहर के प्रतिमा गृह में दशरथ की मूर्ति देखकर दशरथ के दिवंगत हो जाने की बात समझ जाते हैं। बाद में जब मन्दिर के पुरोहित से वास्तविकता का पता चलता है तब वे मूर्छित हो जाते हैं। उसी समय वहां मातायें भी आ जाती हैं जो विधवा वेष में हैं।

(२) **दशरथ**– (ना.पा.) महावीर चरित में विश्वामित्र के आश्रम में ही राम और सीता का विवाह तय हो जाता है। जनकपुर में राम के विवाह के अवसर पर परशुराम और राम का संघर्ष बचाने के लिये अन्यों के साथ दशरथ अत्यन्त प्रयत्न करते हैं पर उन्हें सफलता नहीं मिलती। जब दशरथ जनकपुर से लौट आते हैं भरत और उनके मामा युधाजित् उनसे तत्काल राम को राज्य देने का आग्रह करते हैं। दशरथ राजी हो जाते हैं। इधर राज्याभिषेक की तैयारी चल रही होती है उधर रावण के मन्त्री माल्यवान की भेजी शूर्पणखा मन्थरा के वेष में जनकपुर में राम को एक जाली पत्र देती है जिसमें लिखा है कि 'दशरथ ने कैकेयी को दो वर दिये थे जिनमें एक के द्वारा भरत को राज्य और दूसरे के द्वारा राम को १४ वर्ष का वनवास दिया गया है। अतः राम को वन जाने की तैयारी कर लेनी चाहिये। राम पत्र पाकर अयोध्या आते हैं जहां वे सभी अभिषेक की तैयारी छोड़कर सीता और लक्ष्मण के साथ वन को चले जाते हैं तथा दशरथ की मृत्यु हो जाती है।

(३) **दशरथ**– (ना.पा.) अनर्घराघव में वामदेव के साथ उस समय बात करते हुये

दिखलाये गये हैं जब विश्वामित्र राम की याचना करने आ पहुंचते हैं। ये यज्ञविध्वंसक राक्षसों के नाश के लिये राम को मांगने आये हैं। इतने छोटे बालक को देने के लिये दशरथ राजी नहीं होते। जब विश्वामित्र उनसे कर्तव्य पालन का विशेष आग्रह करते हैं तब दशरथ राम और लक्ष्मण को उनके सुपुर्द कर देते हैं।

दूसरी वार जनकपुरी में दशरथ के दर्शन होते हैं; वहां उनके पुत्रों का विवाह जनक की कन्याओं से होता है और परशुराम वाद विवाद में राम से पराजित होते हैं। दशरथ राम के लिये राज्य त्याग करना चाहते हैं किन्तु मन्थरा के वेष में आई हुई शूर्पनखा के पत्र से राम के वन गमन की तैयारी हो जाती है और दशरथ मूर्छित हो जाते हैं।

(४) **दशरथ**– (ना.पा.) बालरामायण (दे.) में राम के वन गमन पर दशरथ को शोक सन्तप्त दिखलाया गया है। उसके बाद उसी शोक में उनका देहावसान हो जाता है।

(५) **दशरथ**– (ना.पा.) प्रसन्नराघव (दे.) में हमें इनके दर्शन जनकपुर में होते हैं जहां ये स्तुति वचनों के लक्ष्य बने हुये हैं।

दस्युरत्नाकर– (ना.कृ.) विश्वेश्वर विद्याभूषण लिखित चार दृश्यों का एकांकी जिसमें दस्युरत्नाकर के वाल्मीकि बनने का कथानक आया है। १९५७ में मञ्जूषा में इसका प्रकाशन हो गया था।

(१) **दानकेलिकौमुदी**– (ना.कृ.) रुपगोस्वामी (दे.) लिखित एक भाण। इसमें कृष्ण नायक हैं, उन्हीं का चरित्र इस भाण का विषय है।

इसका प्रकाशन मुर्शिदावाद से १८८१ में हुआ था।

(२) **दानकेलिकौमुदी**– (ना.कृ.) यह महादेव कवीशाचार्य लिखित भाणिका है। इसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम १.२५४ पर किया गया है।

(१) **दामोदर**– (ना.का.) महानाटक (दे.) के लेखक या सम्पादक इन्हें मिश्र भी कहा जाता है। कंसवध (दे.) के लेखक दामोदर भिन्न व्यक्ति हैं। कक्सेरी दामोदर पट्टेरी (इन्दुमती के लेखक) भी एक अन्य व्यक्ति हैं। इस नाम के कई अन्य लेखक भी हुये हैं। किन्तु इनकी रचनायें नाटकेतर विषयों में ही हैं। उनमें सम्भवतः नाटककार कोई नहीं है।

(२) **दामोदर (कक्सेरी दामोदर पट्टेरी)** – (ना.का.) पट्टेरी वंशज दामोदर का सम्बन्ध केरल के कक्सेरी नम्बूद्रिवंश से था। ये मल्लिका मारुत के लेखक उद्दण्ड के प्रतिद्वन्दी थे। इनका लिखा नाटक इन्दुमती राघव (दे.) प्रकाश में आया है। इनका समय १५वीं शताब्दी का प्रारम्भ है।

(३) **दामोदर**– (ना.का.) पाखण्डधर्मखण्डनम् (दे.) के लेखक। इनका समय १७वीं शताब्दी है।

(१) **दामोदरनून्नम्बूद्रि**– (ना.का.) ये १९वीं शताब्दी के लेखक हैं। इनकी एक नाट्यकृति अक्षयपत्र का उल्लेख किया जाता है।

(२) **दामोदरन् नम्बूद्रि–** (ना.का.) मन्दारमालिका के लेखक। रचनाकाल १९वीं शताब्दी।

दासी– (ना.पा.) अश्वघोष (दे.) के गणिका विषयक (दे.) रूपक में एक निम्न कोटि का पात्र।

दिगम्बर– (ना.पा.) लटकमेलक में एक पात्र। वह मदनमंजरी नामक वेश्या से सौदेवाजी और विवाह करने जाता है। किन्तु वह विवाह तो कुट्टिनी के साथ होता है जो हास्यरस के अधिक अनुकूल है।

दिङ्नाग या धीरनाग– (ना.का.) इनकी लिखी कुन्दमाला (दे.) एक प्रसिद्ध रचना है। इनके व्यक्तित्व के विषय में विशेष रूप से कुछ ज्ञात नहीं है। कुछ लोग दिङ्नाग और धीरनाग ये दो पृथक् व्यक्तिव्य मानते हैं जबकि कुछ लोगों के विचार में दोनों एक ही व्यक्ति हैं। मल्लिनाथ ने 'दिङ्नागानां पथि परिहरन् स्थूलहस्तावलेपान्' मेघदूत के इस पद्य खण्ड के आधार पर इन्हें कालिदास का समकालीन और उनका प्रतिद्वन्दी कवि माना है जिसे अधिकांश विद्वान स्वीकार नहीं करते। (दे.) धीरनाग।)

दिल्ली साम्राज्यम्– (ना.कृ.) लक्ष्मण सूरि लिखित ५ अंकों का नाटक। इसमें १९११ में जार्जपंजुम के दिल्ली में राज्यारोहण को रुपकायित किया गया है। इसका अंगीभाव दया है। भाषा सुबोध एवं प्रसादगुण पूर्ण तथा नाट्योपयोगी है। अंग्रेजी के पर्याय सुसंवेद्य संस्कृत में प्रयुक्त किये गये हैं। सम्भ्रान्त महिलायें भी प्राकृत का प्रयोग करती हैं। इसका प्रकाशन मद्रास से १९१२ में हो गया था।

(१) **दिवाकर कवीन्द्राचार्य–** (ना.का.) ये भरद्वाज गोत्रीय वैद्येश्वर एवं मुक्ताम्बा के पुत्र तथा विजयनगर के कृष्णदेव राय के सभा पण्डित थे। इस प्रकार इनका समय १६वीं शताब्दी सिद्ध होता है। इनका लिखा पारिजातहरण प्रकाश में आया है। इसके अतिरिक्त रसमंजरी, देवीस्तुति इत्यादि कई रचनायें पाई जाती हैं। इनका भारतामृत नामक ४० सर्गों का एक महाकाव्य भी है जिसमें महाभारत की पूरी कथा वर्णित की गई है। इन्होंने स्वयं कहा है कि इन्हें राजा रुद्र की ओर से कवि चन्द्रराय की उपाधि प्राप्त हुई थी।

(२) **दिवाकर–** (ना.का.) ये उद्वाहुसुन्दर के पुत्र थे। इन्होंने लक्ष्मी मानवेद नामक नाटक की रचना की थी। ओरियण्टल लायब्रेरी के पाण्डुलिपि अनुभाग की त्रैवार्षिक खोज रिपोर्ट में सं. V६३५१ पर इस नाटक का उल्लेख किया गयाहै।

दिवाकर कविचन्द्र– (ना.का.) दे. कविचन्द्र दिवाकर।

दीनदास रघुनाथ– (ना.कृ.) यतीन्द्रविमलचौधरी (दे.) का लिखा १२ अंकों का नाटक। इसमें वैष्णव भक्त रघुनाथ का चरित्र चित्रण किया गया है। चैतन्य महाप्रभु के ४७४ वें जन्मदिन पर अभिनय के लिये इसकी रचना की गई थी। इसका प्रकाशन प्राच्यवाणी

से १९६२ में किया गया।

दीनद्विज– (ना.का) इनका लिखा शंखचूडवधम् नाटक प्राप्त होता है। रचनाकाल १९वीं शताब्दी का प्रारम्भ।

दीपक– (ना.का.) क्षेमेन्द्र ने औचित्यविचारचर्चा में किन्हीं नाट्यकार दीपक का उल्लेख किया है और उनकी कृति का उद्धरण किया है। इससे ज्ञात होता है कि दीपक नामक किसी कवि ने कोई शृङ्गार प्रधान रचना की थी जिसमें विनयवती एक पात्र थी। इसके अतिरिक्त लेखक, कृति और पात्र किसी भी विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है। हो सकता है विनयवती वह हो जिसके विषय में कुछ विचारकों का कहना है कि वह शूद्रक की प्रेमिका थी और वत्सराज चरित में शूद्रक ने वासवदत्ता के रूप में उसी का उपादान किया हो। (दे. वत्सराजचरित) यह भी सम्भव है शूद्रक के चरित्र को लेकर कोई नाटक लिखा गया हो जिसकी नायिका विनयवती हो और उसका लेखक कोई दीपक रहा हो।

दुराचार– (ना.पा.) धूर्तसमागम का एक पात्र। वह साधु विश्वनगर नामक गुरु का शिष्य है और अनंग सेना नामक सुन्दरी पर अनुरक्त हो जाता है तथा गुरु से उसकी सुन्दरता का वर्णन करता है। गुरु उसे स्वयं चाहने लगता है जिस पर विवाद बढ जाता है। इसी प्रकार यह कथानक आगे बढता हुआ हास्य की सृष्टि करता है।

दुर्गादत्त शास्त्री– (ना.का.) हिमाचल प्रदेश में कांगड़े जिले के कलेटी गांव के निवासी थे। इनको विद्यालंकार और साहित्यरत्न उपाधियां प्राप्त थीं। इन्होंने संस्कृत साहित्य की सेवा कर अच्छा यश कमाया था जिसके लिये इन्हें राष्ट्रीय पुरस्कार भी प्राप्त हुआ था। इनकी रचनाओं में तीन काव्य– राष्ट्रपथप्रदर्शन, तर्जनी और मधुवर्षणम्, १ गद्यकाव्य– वियोगवल्लरी, के अतिरिक्त दो नाटक भी प्राप्त होते हैं– वत्सला (दे.) और तृणजातकम् (दे.)।

दुर्गेश्वर– (ना.का.) ये १८वीं शताब्दी के गुजरातनिवासी कवि हैं। इनके द्वारा प्रणीत धर्मोदयम् (दे.) नाटक का उल्लेख किया जाता है।

दुर्बलबलम्– (ना.कृ.) विद्याधर शास्त्री लिखित चार अंकों का नाटक। इसमें चीन के तिब्बत पर आक्रमण को रूपायित किया गया है। इसकी रचना १९६२ में हुई थी। इसका नायक आनन्द काश्यप नामक बौद्ध है।

दुर्मुख– (ना.पा.) उत्तर रामचरित में राम का गुप्तचर। इसे राम ने प्रजा के भावों और विचारों को जानने के लिये नियुक्त किया था। उसने आकर सूचना दी है कि रावण के घर कुछ समय रहने के कारण प्रजा सीता के चरित्र पर सन्देह कर रही है। उसकी यह सूचना ही सीतानिर्वासन में कारण बनी।

(१) **दुर्योधन–** (ना.पा.) वेणीसंहार में यह घमंडी, उद्धत, आत्मघाती, स्वार्थी, दम्भी के रूप में चित्रित किया गया है। उसकी रानी ने स्वप्न देखा है कि एक नकुल (नेवले)

ने १०० सर्पों को मार डाला है। रानी विचलित है, क्षणिक अवसाद उसे भी होता है। किन्तु क्षण भर में ही उसकी अभिमानी प्रकृति वापस आती है। और वह उस स्वप्न की मजाक उड़ाने लगता है। वह द्रौपदी के अपमान पर गर्वित है और पाण्डवों की बदला लेने की शेखी पर हंसता है। वह कानों का कच्चा भी है जिसके कारण उसे हानि भी उठानी पढ़ती है। जब कर्ण उसे समझाता है कि द्रोण केवल इसलिये युद्ध कर रहे थे कि वे अपने पुत्र को राजा बनाना चाहते थे और इसीलिये पुत्र की मृत्यु का समाचार सुनकर उन्होंने शस्त्र त्याग दिया। वह कर्ण की इस बात पर विश्वास कर लेता है और अश्वत्थामा को सेनापति बनाने से इन्कार कर देता है। वस्तुतः इससे उसकी बहुत बड़ी हानि हुई है। अश्वत्थामा जैसे वीर की सहायता से वंचित हो जाना कोई साधारण बात नहीं थी। अश्वत्थामा उस पर पक्षपात का आरोप लगाता है क्योंकि कर्ण के साथ अश्वत्थामा के विवाद में वह कर्ण का साथ देता है। इसीलिये अश्वत्थामा कर्ण के जीवनकाल में युद्ध न करने की प्रतिज्ञा कर डालता है। यह निस्सन्देह दुर्योधन की बहुत बड़ी हानि है।

दुश्शासन की मृत्यु के बाद स्वयं धृतराष्ट्र और गान्धारी आते हैं और माता पिता के लिये ही युद्ध से विरत हो जाने का परामर्श देते हैं। वह इस विषय में कोई भी राय मानने से इन्कार कर देता है। वह साफ कहता है– 'माता जी सुक्षत्रिया होते हुये भी ऐसी राय देती हो! तुम १०० पुत्रों की विपत्ति को नहीं सोच रही हो!! मुझ एकाकी को बचाना चाहती हो!!!'

युद्ध के अन्तिम अवसर पर भी उसके अवलेप में किसी प्रकार की कमी नहीं आती–

कृष्टा केशेषु भार्या तव तव च पशोस्तस्य राज्ञस्तयोर्वा।
प्रत्यक्षं भूपतीनां मम भुवनपतेराज्ञया द्यूतदासी॥
तस्मिन् वैरानुबन्धे वद किमपकृतं तैर्हता ये नरेन्द्राः।
वाह्वो वीर्यातिभारद्रविणगुरुमदं मामजित्वैव दर्पः॥

(तुम पशु हो, और तुम भी (दोनों भीम और अर्जुन) तुम्हारी वह पत्नी, उस राजा की पत्नी और उन दोनों की पत्नी जुये में जीती हुई मेरी दासी है; मैं भुवन पति हूं; मेरी आज्ञा से उसे केश पकड़कर घसीटा गया। हम लोगों का इसीलिये वैर बंधा हुआ है। बतला उन राजा लोगों ने तेरा क्या बिगाड़ा था जिन्हें युद्ध में मार डाला। मैं बाहों के अतिशय पराक्रम रूपी धन का बहुत बड़ा अभिमानी हूं। मुझे विना जिते ही तेरा यह अभिमान! आश्चर्य है।)

दुर्योधन में उच्चकोटि के दर्प के साथ सहृदयता भी विद्यमान है। जब भीमसेन धृतराष्ट्र को अशिष्टता के साथ प्रणाम करते हैं तब वह उन्हें गुरुजनों के प्रति शिष्टता का उपदेश देने से नहीं चूकता। यद्यपि अर्जुन उसको उचित उत्तर भी देते हैं। स्वप्न के प्रसंग

और भानुमती के साथ व्यवहार में उसकी रसिक प्रवृत्ति भी अभिव्यक्त होती है। वह सच्चा मित्र है। जब कर्ण की मृत्यु के बाद अश्वत्थामा उससे बदला लेने का वादा करता है तब वह स्पष्ट कह देता है कि मुझमें और कर्ण में कोई अन्तर नहीं। तुमने कर्ण के मरने के बाद युद्ध करने की प्रतिज्ञा कीं थी अब मेरे मरने के बाद युद्ध करना।

(२) **दुर्योधन–** (ना.पा.) भास के दूतवाक्य का एक पात्र। वह जिद्दी और अविवेकी व्यक्ति है। जब कृष्ण के रूप में स्वयं विष्णु शान्ति स्थापना के मन्तव्य से उसकी सभा में आते हैं तब वह उन्हें अपमानित करना चाहता है और न केवल उनकी हितकारक सम्मति स्वीकार नहीं करता अपितु उन्हें बांधना भी चहता है। किन्तु विष्णु की लोकोत्तर शक्ति के सामने उसे पराजित हो जाना पड़ता है। वह सर्वथा हास्य का पात्र बनता है। उसे छुटकारा दिलाने के लिये उसके पिता को कृष्ण से क्षमा प्रार्थना करनी पड़ती है।

वह अविवेकी और निर्लज्ज भी है। द्रौपदी का केशाम्बराकर्षण उसका सबसे घृणित कार्य है। सभा में उसी चित्र को देखना निर्लज्जता की पराकाष्ठा है। कृष्ण ने ठीक ही कहा कि– 'ऐसा कौन निर्लज्ज होगा जो अपना ही दोष सभा में स्वयं ही उजागर करे। (को नाम लोके स्वयमात्मदोषयुद्धाटयेन्नष्टघृणः सभासु) उससे आत्मबल की भी कमी है। स्वयं कृष्ण के आने पर सभा में खड़े होकर स्वागत करने को दण्डनीय अपराध घोषित करता है और स्वयं भी विवश के समान वही अपराध करने को वाध्य हो जाता है। उत्तर-प्रत्युत्तर में वह कृष्ण से प्रतिपद पराजित होता है किन्तु न्याय्य बात को फिर भी स्वीकार नहीं करता।

(३) **दुर्योधन–** (ना.पा.) दूतघटोत्कच में कौरवों ने अन्याय से अभिमन्यु का वध किया है। धृतराष्ट्र, गान्धारी, दुश्शाला सभी को भविष्य में तैरती हुई विपत्ति दिखलाई देती है। किन्तु दुर्योधन हर्षित है, उसे किसी प्रकार का भय नहीं। जब कृष्ण का सन्देश लेकर घटोत्कच उपस्थित होता है वह पूरी निश्चिन्तता के साथ उससे वाद-विवाद करता है और स्पष्ट कहता है कि उसकी धमकियों का उत्तर युद्धभूमि में दिया जायेगा।

(४) **दुर्योधन–** (ना.पा.) भास के उरुभंग (दे.) का प्रधान पात्र। महाभारत में दुर्योधन बहुत ही जिद्दी और दुष्ट चित्रित किया गया है। किन्तु भास के नाटकों में उनके प्रति सदाशयता की भावना व्यक्त की गई है। वह अपने स्वभाव के प्रतिकूल सान्त्वना की ही बात करता है। किन्तु कीथ के अनुसार उसे नायक नहीं माना जा सकता क्योंक उसे जो दण्ड मिला है वह उचित ही है। दर्शक उसके अन्त पर दुःखी नहीं हैं। जिसने अपने उरु खोल कर भरी सभा में एक अवला को नंगा कर उउओं पर बैठाने की बात कही हो उसका यह परिणाम अप्रत्याशित नहीं है।

अन्त कितना कारुणिक है– जिन अरुओं पर उसका छोटी आयु का बालक बैठने के लिये सदा आतुर रहता था, आज भी वह उसी प्रकार आतुर है किन्तु भगा दिया जाता है। आज उसके भाग्य में पुत्र के सुखद स्पर्श का आनन्द भी नहीं है। उसके माता पिता

और पत्नी उसकी दयनीय दशा पर कितने दुःखी हैं किन्तु वह वीर मरते समय भी वीर ही है। उसकी मृत्यु भी जीवन के समान वीरता के दर्प से खाली नहीं है। वह माता पिता को सान्त्वना देता है समझता है बुझाता है।

अश्वत्थामा भी आ जाता है। उसे तो पाण्डवों से अपने पिता की मृत्यु का हिसाब चुकाना है। वह दुर्योधन से वादा करता है कि वह उसके पराभव का बदला लेगा। 'क्या भीम ने उसकी जंघाओं के साथ उसके स्वाभिमान को भी तोड़ डाला है?'

अन्त में उसके माता पिता और पत्नियां उसे घेरे हुये हैं। उसकी आंखों के सामने उसके भाइयों और अप्सराओं की छायायें तैरने लगती हैं और वह इस संसार से विदा ले लेता है। मृत्यु काल में भी उसका चरित्र दृढ है किन्तु वह गुणों से विरहित नहीं है। जिसके कारण महाविनाश हुआ है वह आत्मरक्षा की तो कल्पना भी नहीं कर सकता किन्तु वह अन्त में बदला लेने की नहीं कुल को सुरक्षित रखने की बात सोचता है और वह पहले बलराम को और फिर अश्वत्थामा को युद्ध से रोकता है।

दुर्वासस्तृप्तिस्वीकारः– (ना.कृ.) शिवदत्त त्रिपाठी (दे.) लिखित एक नाटक।

(१) **दुर्वासाः**– (ना.पा.) अभिज्ञान शाकुन्तल में महान् क्रोधी और अभिज्ञानी ऋषि। वस्तुतः शकुन्तला का कोई भयानक अपराध नहीं था। एक बालिकोचित असावधानी थी। किन्तु उसके लिये दुर्वासा ने इतना भयानक शाप दे दिया कि वे बेचारी शकुन्तला को बहुत समय तक दुःख भोजना पड़ा। किन्तु उनमें इतना दुराग्रह भी नहीं था। सखी की मामूली प्रार्थना पर ही उनका क्रोध नियन्त्रित हो गया और उन्होंने स्वयं ही शाप की सीमा भी नियन्त्रित कर दी।

(२) **दुर्वासा**– (ना.नि.) उन्मत्त राघव में जब लक्ष्मण और राम स्वर्णमृग का शिकार करने चले जाते हैं तब सीता दुर्वासा के शाप से स्वयं हरिणी बन जाती है। राम उन्हें रहस्यज्ञ की कृपा से प्राप्त कर लेते हैं।

दुर्विनीत– (ना.पा.) हास्य चूडामणि (दे.) में नायक ज्ञान राशि (दे.) का शिष्य। वह गुरु से श्रृद्धा विल्कुल नहीं रखता और अपने गुरु के वचनों का शाब्दिक अर्थ कर आनन्द का अनुभव करता है तथा उससे हास्य की सृष्टि होती है।

दुःश्शला– (ना.पा.) यह दुर्योधन की बहन और जयद्रथ की पत्नी है। जब युद्ध में अभिमन्यु का वध हो जाता है और उसका सारा उत्तरदायित्व जयद्रथ पर डाल दिया जाता है तब वह घबराई हुई दुर्योधन के पास आती है। दुर्योधन उसके भय को मजाक में उड़ा देते हैं। उन पाण्डवों से प्रतिक्रिया का क्या भय जो सभा में द्रौपदी के अपमान को चुपचाप सह लेते हैं और वह वन भटकते फिरते हैं।

दुश्शासन– (ना.पा.) महाभारत के प्रतिनिथि पात्रों में एक। यह दुर्योधन का कनिष्ठ भ्राता है। वेणीसंहार की रचना इसी के क्रियाकलाप का परिणाम है। महाभारत की मुख्य

घटना द्रौपदी का अपमान और दुश्शासन द्वारा केशाम्बराकर्षण है। उस समय द्रौपदी ने प्रतिज्ञा की थी कि जब तक दुश्शासन का रक्त वालों में नहीं लगेगा तब तक मैं चोटी नहीं बांधूंगी। द्रौपदी की चोटी १३ वर्ष खुली रही। जब दुश्शासन की बाहें उखाड़ कर भीमसेन ने द्रौपदी के वालों पर उसका रक्त डाला तब द्रौपदी ने समेट कर चोटी बांधी (वेणीसंहार किया)। भीमसेन ने भी उसी समय प्रतिज्ञा की थी कि 'मैं दुश्शासन की छाती का खून पी जाऊंगा' और ऐसी ही यथार्थ रूप में भीम ने करके अपनी प्रतिज्ञा पूरी की। निस्सन्देह दुश्शासन का कार्य निन्दनीय था, किन्तु प्रतिशोध उससे भी अधिक भयानक था।

दुष्ट– (ना.पा.) अश्वघोष (दे.) के गणिकाविषयक रूपक का एक पात्र। इसकी यह संज्ञा है। इसकी मागधी भाषा है जो तत्कालीन परम्परा के अनुसार निम्न कोटि के पात्रों की भाषा होती है। इसमें कहीं कहीं अर्धमागधी और शौरसेनी का भी पुट पाया जाता है।

दुष्यन्त– (ना.पा.) कालिदास के विश्वप्रसिद्ध नाटक अभिज्ञान शाकुन्तलम का प्रधान नायक। यह चक्रवर्ती सम्राट् है जिसकी राजधानी हस्तिनापुर है। यह एक महान वीर व्यक्ति है– जिसे वाण छोड़ने की नहीं, वाण संधान की भी कहीं कोई आवश्यकता नहीं पड़ती प्रजावर्ग के सारे संकट धनुष की डोरी की टंकार से ही दूर हो जाते हैं। विना देखे केवल शब्द के सहारे ही इसका वाण अपने लक्ष्य को दूर से ही वेध देता है। दैत्यों से त्रस्त होने पर इन्द्र को भी इसकी सहायता की आवश्यकता पड़तीहै। भगवान् कश्यप के शब्दों में 'यह भुवनों का पालक है, युद्ध में आगे बढ़कर शत्रुओं का नाश कर देता है। अपने धनुष से इसने कर्म करके दिखलाया कि इन्द्र का वज्र आभूषण वन कर रह गया, उसकी प्रहारक शक्ति की कभी आवश्यकता ही नहीं पड़ी। स्वर्ग में इसके विषय में गीतों की रचना होती है, वे गाये जाते हैं तथा भित्तिओं पर अंकित किये जाते हैं। इन्द्र अपने पुत्र जयन्त की अपेक्षा भी इनका अधिक सम्मान करते हैं।

इतने अधिक शक्तिशाली होते हुये भी इन्हें मर्यादा का सदा ध्यान रहता है। तपोवन में प्रवेश से पहले राजकीय साज समान उतार कर ही साधारण व्यक्ति के रूप में प्रवेश करते हैं और इस बात का विशेष ध्यान रखते हैं कि उनके प्रवेश से तपोवन के कार्यकलाप में किसी प्रकार का व्याघात उत्पन्न न हो। उनका स्वरूप, चाल ढाल, हाव भाव सभी कुछ प्रभावशाली है जिससे आश्रम वासियों के मन में श्रृद्धा उत्पन्न हो जाती है। प्रियम्वदा उनके मधुर भाषण की प्रशंसा करती है तथा कहती है कि इस प्रकार की आकर्षक आकृति वाले गुणरहित नहीं होते। वह प्रजापालक भी बहुत अधिक हैं, वह घोषणा करता है कि उसके राज्य में जो भी व्यक्ति अपने बन्धुवान्धव से वियुक्त हो वह दुष्यन्त को ही अपना बन्धु बान्धव समझ ले– केवल उसमें पाप की भावना नहीं होनी चाहिए।

वह उदार भी बहुत है अर्थ लोलुप तो है ही नहीं। उसे मन्त्री के पत्र से सूचना

मिलती है कि अयोध्या का धनमित्र सेठ नाव दुर्घटना में मर गया है उसके कोई सन्तान नहीं है अत: उसकी सम्पत्ति राजकोश में मिलाने की सूचना दी जाय। राजा इसे स्वीकार नहीं करता और पता लगता है कि उस सेठ की एक पत्नी गर्भवती है और उसका पुंसवन संस्कार हो चुका है। राजा उस सम्पत्ति को गर्भ के नाम छोड़ देता है।

दुष्यन्त के चरित्र का एक दूसरा भी पक्ष है- वह एक अच्छा शिकारी है। वन में वह कोमल हरिणों का शिकार करने ही आया है। शकुन्तला एक भोली भाली हरिणी है। वह उसके अनिन्द्य सौन्दर्य पर लट्टू हो जाता है। वह डरता भी है वह यह भी जान चुका है कि शकुन्तला का भविष्य उसके पिता के हाथ में है। इस विषय में शकुन्तला स्वतन्त्र नहीं है फिर भी वह मौके से लाभ उठाने में नहीं चूकता। संयोग वश कुलपति कई महीनों के लिये तीर्थयात्रा पर गये हैं। शकुन्तला की सहेलियों को उसने विश्वास में ले लिया और विवाह का लालच देकर (गन्धर्व विवाह कर) वह यथेष्ट उपभोग करता रहा। उसने बहाना बनाकर विदूषक इत्यादि सभी निकटवर्तियों को राजधानी को लौटा दिया, स्वयं तपस्वियों की रक्षा के बहाने वहीं ठहर गया। जैसे ही जानता है कि कुलपति के लौटने का समय हो गया है वह अपने स्वेच्छाचार के लिये भयभीत होकर शकुन्तला से तीन दिन में बुला लेने का वादा कर वहां से चला जाता है। वह लोकापवाद से भी भयभीत है। वह जानता है कि जनता इस चरित्र को कभी सहन नहीं करेगी। अत: उसे बुलाना नहीं था और नहीं बुलाया। सीता की जैसी स्थिति वन सकती थी। जननिन्दा से पराहत होकर जिस प्रकार राम को सीता का परित्याग करना पड़ा था उसी प्रकार दुष्यन्त लोकनिन्दा सह नहीं सकते थे उन्हें शकुन्तला का परित्याग करना ही पड़ता। अत: उसने न पहिंचान कर स्वयं को उस विपत्ति से बचा लिया। किन्तु कार्य तो निश्चित रूप से धोखेबाजी का था। शार्ङ्गरव का यह आक्षेप ठीक ही था कि 'यदि कोई व्यक्ति धर्म से विमुख होकर अनुचित कार्य कर बैठे तो साहस के साथ उसे स्वीकार कर लेने में वह दोष अपनी प्रबलता खो देता है। यहां राजा ने शकुन्तला के साथ मनमानी कर अधार्मिक कार्य तो किया ही है ऐश्वर्य मत्त होकर शकुन्तला के बन्धुबान्धवों का अपमान भी किया है। 'इस प्रकार की चञ्चलता जो सामाजिक मर्यादा का अतिक्रमण कर की जाती है कष्टदायक ही होती है।' यह कथन केवल शकुन्तला के विषय में नहीं दुष्यन्त के विषय में भी लागू होता है।

इस प्रसंग में दुर्वासा के शाप की जबर्दस्त कल्पना कालिदास की एक बहुत बड़ी विशेषता है। वस्तुत: इसमें समाज के दो प्रकार के व्यक्तियों का एक ही व्यक्ति के चित्रण में समावेश कर दिया गया है- एक तो वे व्यक्ति होते हैं जो इन्द्रियवश्य होकर किसी कुमारिका के जीवन को अभिशाप बना देते हैं, दूसरे वे लोग होते हैं जो धार्मिक आचरण में विश्वास रखते हैं और जो भी कार्य करते हैं सोच समझ कर धार्मिक दृष्टि से निर्दोष समझ कर ही करते हैं तथा डंके की चोट पर समाज के सामने उसे स्वीकार करते हैं।

कालिदास ने दुष्यन्त की अनेक उक्तियों में दूसरे प्रकार के व्यक्ति का चित्रण किया है जिसमें वे पूर्ण रूप से उपभोग की धार्मिकता पर विचार कर शकुन्तला को ग्रहण करते हैं तथा दूसरी ओर प्रत्याख्यान से पहले प्रकार के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति होती है। बीच में दुर्वासा के शाप की कल्पना डालकर दर्शकों को अनौचित्य का प्रतिभास नहीं होने दिया है। शकुन्तला को कश्यप के आश्रम में भेजकर उस दुर्दैव के प्रभाव से बचा लिया है जो एक सामान्य कुमारी इस प्रकार की परिस्थिति में पड़कर लोगों की करुणा का आश्रय बनती है।

जिस प्रकार शकुन्तला के चरित्र में कवि ने एक अल्हड़ बालिका एक प्रेमिका, एक विषयोपभोग परायण युवती, एक परित्यक्ता एक धर्मशील महिला इत्यादि समाज के अनेक चित्रों का समावेश किया है उसी प्रकार राजा के चरित्र में भी दो विरोधी व्यक्तियों के समावेश में पूर्ण सफलता प्राप्त की है इसमें सन्देह नहीं।

दूत घटोत्कच– (ना.कृ.) भास (दे.) रचित एकाङ्की नाटक। यह एक व्यायोग है। इसकी पृष्ठभूमि और पात्र महाभारत से लिये गये हैं। किन्तु कथानक लेखक का अपना है। अभिमन्यु की अनैतिक हत्या के बाद कौरवदल आमोदप्रमोद मना रहा है। किन्तु धृतराष्ट्र, गान्धारी और दुश्शला इस कार्य का अनुमोदन नहीं करते और विशेष रूप से धृतराष्ट्र भविष्य के लिये चिन्तित हैं। कृष्ण के दूत बनकर घटोत्कच धृतराष्ट्र के पास जाते हैं और भविष्य में आने वाली अधिक भयानक स्थिति के लिये उन्हें आगाह करते हैं। दुर्योधन और घटोत्कच के बीच क्रोध पूर्ण वाद विवाद चलता है। धृतराष्ट्र शान्ति स्थापना का प्रयत्न करते हैं। अन्त में घटोत्कच अर्जुन की बदला लेने की धमकी का सन्देश देकर और धृतराष्ट्र को प्रणाम कर वापस आता है। इसमें भरत वाक्य के स्थान पर दामोदर कृष्ण का आदेश सुनाया जाता है। नाटक में वीरभावना की अच्छी अभिव्यक्ति हुई है। कौरवों के आनन्द और धृतराष्ट्र की आशंका के साथ घटोत्कच द्वारा अभिव्यक्त अर्जुन की बदला लेने की धमकी चमत्कार पूर्ण है।

दूतवाक्यम्– (ना.कृ.) भास (दे.) लिखित एक व्यायोग। इसका कथानक माहभारत से लिया गया है। कृष्ण पाण्डवों के दूत बनकर दुर्योधन की सभा में सन्धि कराने के मन्तव्य से जाते हैं। दुर्योधन पहले से ही कृष्ण को अपमानित करने का मन बनाये बैठा है और सभासदों को आदेश देता है कि जो भी उठकर कृष्ण का स्वागत करेगा उसे दण्ड मिलेगा। स्वयं अपने को चित्र दिखने में व्यस्त कर लेता है जिसमें द्रौपदी के केशाम्बराकर्षण को चित्रित किया गया है। किन्तु जब कृष्ण सभा में प्रवेश करते हैं तब सभी सभासद खड़े हो जाते हैं और स्वयं दुर्योधन भी बैठा नहीं रह पाता। कृष्ण पैतृक सम्पत्ति को विभाजित करने का प्रस्ताव रखते हैं जिस पर विवाद छिड़ जाता है और कृष्ण सभी आपत्तियों का युक्ति युक्त उत्तर देते हैं। तब दुर्योधन सम्पत्ति के बटवारे से साफ इनकार कर देता है और शक्ति के प्रयोग द्वारा कृष्ण को बन्दी बनाना चाहता है। कृष्ण विश्वरूप

दिखलाते हैं जिसमें वे सभी आकृतियों और परिमाणों में सर्वत्र दिखलाई देने लगते हैं। उसी समय कृष्ण सुदर्शन चक्र का आह्वान करते हैं और सुदर्शन इत्यादि सभी अस्त्र मूर्त रूप में उपस्थित हो जाते हैं। दुर्योधन घबरा जाता है। धृतराष्ट्र कृष्ण के चरणों पर गिर जाते हैं तथा दुर्योधन के अपराध की क्षमा मांगते हैं। कृष्ण शान्त हो जाते हैं और क्षमा कर देते हैं।

यह नाटक पूर्ण रूप से संस्कृत में लिखा हुआ है। इसमें प्राकृत का प्रयोग नहीं किया गया है। इसमें कवि की कृष्णभक्ति और कृष्ण महिमा की पूर्ण अभिव्यक्ति हुई है वे विष्णु के अवतार रूप में सामने आते हैं विश्व रूप दर्शन और अस्त्रों के उपस्थापन में चमत्कार के द्वारा स्वयं को लोकोत्तर परम पुरुष सिद्ध कर देते हैं।

इस नाटक के प्रारम्भ में प्रस्तावना और अन्त में भरत वाक्य दिया हुआ है। कृष्ण का दौत्यकर्म महाभारत में वर्णित है, किन्तु कवि ने कल्पना द्वारा उसमें नया चमत्कार उत्पन्न कर दिया है। वीर रस के अभिव्यंजन में कवि की शक्ति का पर्याप्त परिचय प्राप्त हो जाता है। कथावस्तु का उपादान महाभारत से हुआ है, किन्तु कवि ने कल्पना से इसे नया रूप दे दिया है। कृष्ण को बन्दी बनाने का प्रयत्न और कृष्ण का विश्वरूप दिखलाना कवि की अपनी कल्पना है। रंगमञ्च पर कृष्ण के अस्त्रों के आगमन में अद्भुत रस की सृष्टि हुई है। नाट्य में सभी पात्र और कैशिकी वृत्ति का अभाव है। इसमें आरभटी वृत्ति का अच्छा परिपाक हुआ है।

दूताङ्गद– (ना.कृ.) सुभट (दे.) लिखित एक नाटक जिसे कुछ विद्वानों ने छाया नाटक (दे.) के रूप में स्वीकार किया है। इसकी समता महानाटक (दे.) से बहुत अधिक पाई जाती है। इसमें रामायण के युद्धारम्भ से पहले रावण के दरवार में अंगद के दौत्यकर्म की केवल एक घटना का चित्रण किया गया है। अंगद सीता की वापसी के लिये प्रयत्न करते हैं किन्तु रावण समझाना चाहता है कि सीता स्वयं रावण से प्रेम करती है। अंगद स्वीकार नहीं करते, युद्ध होता है और रावण का नाश हो जाता है।

इस पुस्तक के दो संस्करण पाये जाते हैं– एक छोटा और एक बड़ा। छोटा संस्करण बम्बई से प्रकाशित हुआ है और बड़ा लन्दन में इण्डिया लायब्रेरी में सुरक्षित रक्खा गया था। दोनों में प्रारम्भ से ही पाठभेद पाया जाता है। पिशेल का कहना है जितनी दूताङ्गद की प्रतियां पाई जाती हैं उतने ही दूताङ्गद हैं। कोई प्रति एक जैसी नहीं मिलती। एक प्रति तो ऐसी है कि उसमें केवल संवाद में ही पद्यों का प्रयोग नहीं हुआ है रंग निर्देश तक पद्यों में ही हैं। कहीं कहीं वर्णनात्मक और कथात्मक पद्य भी सम्मिलित कर दिये गये हैं। इससे यह नाटक और काव्य के मध्य की वस्तु बन गई है। यह नाटक की नई विधा ही ज्ञात होती है। इसमें दूसरी पुस्तकों से स्वतन्त्रता पूर्वक पद्य लिये गये हैं। सुभट ने स्वयं लिखा है कि इस रचना में दूसरी रचनाओं के पद्यों का उपादान किया गया है। अनेक पद्य महानाटक से भी लिये गये हैं। वृहत्तर संस्करण में ३९ पद्यों की प्रस्तावना

दी गई है जो राम और हनूमन्त के मुख से प्रस्तुत की गई है। इस नाटक का प्रस्तुतीकरण गुजरात के चालुक्य नरेश त्रिभुवन पाल के आदेश से किया गया था। प्रस्तुतीकरण का समय ७ मार्च १२८३ पड़ता है। उस समय होली का त्योहार था और पिछली शताब्दी में कुमारपाल ने जिस शिवमूर्ति का जीर्णोद्धार किया था उसके स्मरणोत्सव के अवसर पर इसका अभिनय किया गया था।

कतिपय विद्वानों का अनुमान है कि यह दो अंकों के मध्यान्तर के रूप में लिखा गया था। छाया का एक अर्थ यह भी है कि अत्यन्त संक्षेप में कथानक का परिचय देना। इस अर्थ में भी छाया नाटक के रूप में इसे स्वीकार किया जा सकता है। यद्यपि इसमें कहीं भी इसे छाया नाटक नहीं कहा गया है किन्तु इस विधा की इसमें सभी विशेषतायें विद्यमान हैं। इसलिये इसे छाया नाटक की मान्यता प्राप्त हुई है।

काव्यमाला सीरीज से इसका प्रकाशन हुआ है। विल्सन ने थियेटर II ३९० में इसका विश्लेषण किया है। एलग्रे ने 'जर्नल आफ अमेरिकन ओरियण्टल सोसाइटी' में इसका अंग्रेजी अनुवाद किया जिसमें छाया नाटक पर पूर्ण विचार किया गया।

इण्डिया आफिस लायब्रेरी में इसकी एक प्रति सुरक्षित रक्खी गई थी। उसमें एगलिंग ने लिखा है कि इसके संवादों में केवल संवाद परक पद्यों का ही समावेश नहीं है किन्तु वर्णनात्मक पद्य भी सम्मिलित कर दिये गये हैं जिससे यह नाट्यकृति और श्रव्यकाव्य की मिली चुली वस्तु बन गई है। कुछ लोग इसे अंगद (दे.) नाम से भी अभिहित करते हैं और मानते हैं कि जिस अंगद नामक पुस्तक का उल्लेख किया जाता है वह वस्तुतः यही है।

दृधवत्– (ना.का.) इनके नाम पर नीला परिणय (दे.) नामक एक नाट्यकृति का उल्लेख किया गया है जो वेङ्कटेश्वर लिखित नीला परिणय से भिन्न है। इसका कोई विवरण प्राप्त नहीं होता।

दृढवर्मा– (ना.पा.) प्रियदर्शिका (दे.) नाटक का एक पात्र। ये अंगदेश के राजा और प्रियदर्शिका (दे.) के पिता हैं और अपनी पुत्री का विवाह वत्सराज से कराने का निश्चय कर लेते हैं। अनेक विघ्नों के बाद उन्हें अपने उद्देश्य में सफलता मिलती है।

दृष्टरोहितम्– (ना.कृ.) (१) नारायण शास्त्री लिखित नाटक।

देवकी– (ना.पा.) भास (दे.) के बालचरित में एक पात्र। यह कृष्ण की मां है। इसके बच्चों को कंस नें निर्ममता पूर्वक मारा है। इसने कृष्ण को अपने हृदय के टुकड़े की भांति निकालकर पर गृह में पालन के लिये भेज दिया है। यह उसकी कारुणिक स्थिति है।

देवचन्द्र– (ना.का.) हेमचन्द्र (दे.) के शिष्य, ये कुमारपाल के दरवारी कवि थे। इनके लिखे प्रकरण चन्द्रलेखा विजय का उल्लेख जैसलमेर के पुस्तकालय के पाण्डुलिपि

सूचीपत्र (कैटेलाग) में किया गया है। इस प्रकरण में ५ अंक हैं और इसका अभिनय अजितनाथ के वसन्तोत्सव में किया गया था। प्रकरण के अन्त में कुमारपाल की प्रशस्ति है जिसमें अर्णोराज पर कुमारपाल की विजय दिखलाई गई है।

देवदुर्गति– (ना.कृ.) यह एक प्रहसन है जिसका प्रकाशन कलकत्ते से हुआ है।

देवनाथ उपाध्याय– (ना.का.) ये १८वीं शताब्दी के कवि हैं। इन्होंने ६ अंकों के गीतवहुल उषाहरण नाटक (दे.) की रचना की थी।

देवराज– (ना.का.) ये शेषाद्रि के पुत्र थे। इनका परिवार तेन्निवेली जिलाके पट्टमदई ग्राम में रहता था। वहां से स्थानान्तरित होकर ट्रावन्कोर में सुचीन्द्रम के निकट एक आश्रम में निवास करने लगा था जोकि १२ ब्राह्मणों को दान में दिया गया था। ये ट्रावन्कोर के मार्तण्डवर्मा (१७२९-१७५८) के दरवारी कवि थे। इन्होंने अपने आश्रयदाता की प्रशस्ति में 'बालमार्तण्डविजयम्' (दे.) नामक ५ अंकों का नाटक लिखा था जिसमें आश्रयदाता की विजय यात्राओं और सम्पत्तियों के अधिग्रहणों के साथ ट्रावन्कोर के श्री पद्मनाभ तीर्थ के जीर्णोद्धार का विवेचन भी किया गया है। किरातार्जुनीय की इनकी एक टीका भी बतलाई जाती है।

देवरात– (ना.पा.) मालतीमाधव में माधव का पिता और विदर्भराज का मन्त्री। छात्र जीवन में भूरिवसु इसका निकटवर्ती मित्र था। दोनों नें मिलकर एक दूसरे से वादा कर रक्खा था कि यदि एक के पुत्र और दूसरे के पुत्री हुई तो दोनों का विवाह कर दिया जायेगा। संयोग से देवराद के यहां माधव और भूरिवसु के यहां मालती का जन्म हुआ। दोनों मित्रों ने छात्र जीवन के वायदे का पूरा सम्मान किया। समय आने पर मालती और माधव का विवाह सम्पन्न हो गया।

देवसूरि– (ना.पा.) मुद्रित कुमुदचन्द्र (दे.) का एक पात्र जैन आचार्य। यह श्वेताम्बर जैन है इसने शास्त्रार्थ में दिगम्बर जैन कुमुदचन्द्र का मुखबन्द कर दिया। इसीलिये इस रचना का नाम मुद्रितकुमुदचन्द्र पड़ गया। यह शास्त्रार्थ ११२८ ई. में हुआ था।

देवसेना– (ना.पा.) मत्त विलास (दे.) प्रहसन में शैव कापालिक की पत्नी।

देवानन्द– (ना.का.) बिहारी कवि। इनका समय अज्ञात है। इनका लिखा उषा हरण नाटक बतलाया जाता है।

देवीचन्द्रगुप्तम्– (ना.कृ.) विशाशदत्त (विशाखदेव) लिखित नाटक। यह नाटक लुप्त हो चुका है। किन्तु भोज के शृङ्गार प्रकाश और रामचन्द्र गुणचन्द्र के नाट्यदर्पण में लम्बे लम्बे एवं वाणभट्ट तथा राजशेखर के निर्देशों से ज्ञात होता है कि यह एक बहुत ही उच्च कोटि का नाटक था और उसमें सम्भवतः ५ अंक थे। उद्धरणों और निर्देशों के आधार पर कथानक का जो रूप बनता है वह इस प्रकार है– चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का बड़ा भाई रामगुप्त जो उस समय राजा था एक छोटी सी सेना लेकर पत्नी ध्रुवदेवी के

साथ सीमा प्रान्त में हिमालय की उपत्यकाओं में ग्रीष्म ऋतु विताने गया था। वहां एक सिद्धान्त हीन दुराचारी शकराज ध्रुवदेवी के सौन्दर्य पर मुग्ध हो गया। रामगुप्त एक कायर राजा था। वह अपनी पत्नी की रक्षा नहीं कर सका था। और अमर्यादित शकराज उसकी पत्नी को भगा ले गया। ध्रुवदेवी परेशान थी और शकराज का हाथ थामने को तैयार नहीं हो रही थी। चन्द्रगुप्त ने वेश्या के रूप में एक नाटक मण्डली बनाई और शकराज के यहां पहुंच गया। अनेक राजनैतिक दांवपेचों के बाद वह ध्रुवदेवी को वहां से निकालने में सफल हो गया और स्वयं ध्रुवदेवी का स्थान ले लिया। जिस समय शकराज कामवासना से भरा था उसने एकान्त में उसे मिलने की आज्ञा दे दी। शकराज अपनी प्रियतमा को मिलने की उत्कण्ठा लिये अपने गुप्त कक्ष में पहंचा और उसे उसकी दुष्टताओं और मूर्खताओं का उचित पुरस्कार मिल गया। चन्द्रगुप्त के हाथों वह वहीं मारा गया।

नाटक के प्राप्य उद्धरणों को देखते हुये कहा जा सकता है कि गद्य, पद्य का काव्य सौन्दर्य किसी भी प्रकार कालिदास आदि महाकवियों की कृतियों से घट कर नहीं है। कथानक की रचना और चरित्रचित्रण भी इस नाटक को उच्चकोटि का सिद्ध करते हैं।

यह नाटक भी एक प्रमाण है जो यह सिद्ध करता है कि विशाखदत्त चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के समय में ही हुये थे। उन्होंने अपने आश्रयदाता के विषय में यह नाटक लिखा और नामसाम्य होने से मुद्राराक्षस का नायक भी चन्द्रगुप्त को ही बनाया।

उक्त कथानक को आधार बनाकर आधुनिक हिन्दी साहित्य के प्रतिष्ठित नाटककार जयशंकर प्रसाद ने ध्रुवस्वामिनी की रचना की।

देवीपरिणय- (ना.कृ.) एक परिणय। इसका उल्लेख शारदातनय के भावप्रकाशन में किया गया है।

देवीप्रसाद शुक्ल- (ना.का.) कविचक्रवर्ती उपाधि से विभूषित थे। ये बनारस के विद्वान थे जिन्हें विद्वत्ता के लिये प्रतिष्ठा प्राप्त हुई थी। इन्होंने लक्ष्मी नारायण नामक एक काव्य और नलचरित (दे.) नामक एक नाटक लिखा था।

देवीमहोत्सव- (ना.कृ.) साहित्य दर्पण और भाव प्रकाशन में यह उल्लाप्य उपरूपक का उदाहरण दिया गया है। ग्रन्थ अप्राप्य है।

देशदीपम्- (ना.कृ.) इसकी लेखिका हैं रमाचौधरी, इन्होंने अपने पति के जन्मोत्सव पर अभिनय के लिये इस नाटक की रचना की थी। इसका विभाजन अंकों के स्थान पर नवीन शैली में दृश्यों में किया गया है। कुल दृश्य नौं हैं। चम्पक वदन एक देशभक्त व्यक्ति है जो ब्रह्मवल पिता और आराधना माता से उत्पन्न हुआ है। वह अपने मित्र अप्रतिम के साथ देश सेवा की प्रतिज्ञा करता है। दोनों सेना में हैं। चम्पकवदन पदाति सेना में है और अप्रतिम वायु सेना में। चम्पकवदन की बहन पंकजनयना भी घायल सैनिकों की सेवा में युद्ध क्षेत्र में ही कार्यरत है। चम्पकवदन घायल हो जाता है तब उसे

बचाने की पूरी चेष्टा की जाती है। पंकजनयना और अप्रतिम के सारे प्रयत्न व्यर्थ हो जाते हैं। परन्तु वह बचता नहीं– देश पर वलिदान हो जाता है। इसमें देशरक्षा पर प्राणोत्सर्ग करने वाले वीरों का अच्छा चरित्र चित्रण किया गया है।

देशबन्धु: देशप्रिय:– (ना.कृ.) यह यतीन्द्रमोहन चौधरी का लिखा ९ अंकों का नाटक है जिसमें देशबन्धु चित्तरंजन दास का जीवनवृत्त चित्रित किया है।

देशश्री– (ना.पा.) मोहराज पराजय का एक पात्र। इसमें नगरश्री इसे समझा बुझाकर जैन धर्म में दीक्षित करने का प्रयत्न करती है।

देशस्वातन्त्र्यसमरकाले राष्ट्रधर्म:– (ना.कृ.) यह वैशम्पायन का लिखा दो दृश्यों का एक नाटक है जिसका प्रकाशन १९७० में शारदा में हुआ था। एक ब्राह्मण देवालय जा रहा है। वह धोखे से एक कांग्रेसी का स्पर्श कर लेता है। वह कांग्रेसी को अछूत समझता है। अत: अत्यन्त क्रोधित हो जाता है। कांग्रेसी उसे समझाबुझाकर साथ चलने को राजी कर लेता है। इसके बाद गोभक्त, चायविरोधी भाषा शुद्धि प्रचारक, समाज सुधारक, साम्यवादी सभी एकत्र होकर कोलाहल करते हैं। देवालय से ब्राह्मण और देश सेवक आकर सभी को समझाते हैं और सभी को देश सेवा में साथ लेते हैं।

देहली साम्राज्य– (ना.कृ.) यह लक्ष्मण सूरि (दे.) का लिखा एक नाटक है जिसमें जार्ज पञ्चम के देहली दरवार का वर्णन किया गया है।

दोला पञ्चीयकम्– (ना.कृ.) इस हास्य प्रधान नाटक के लेखक हैं– रमानाथ शास्त्री एस.के.।

द्यूत– (ना.पा.) मोहराज पराजय (प्रतीक नाटक) का एक पात्र। यह मोहराज के अधिकारियों में एक है और मोहराज के दूसरे अधिकारियों के साथ जनमनोवृत्ति (प्रदेश) पर अधिकार जमाये हुये है। जब कृपासुन्दरी की शर्त के अनुसार मोहराज के वर्ग को निष्कासित कर देता है तब उनके साथ उसे भी निष्कासित कर दिया जाता है।

द्रुतवीर– (ना.कृ.) (१) नारायण शास्त्री (दे.) लिखित ५ अंकों का नाटक।

द्रोण– (ना.पा.) वेणीसंहार (दे.) महासमर के अन्तर्गत जब ये सेनापति पद पर अभिषिक्त होकर युद्ध कर रहे थे पुत्र अश्वत्थामा की मृत्यु की झूठी सूचना पर विश्वास कर इन्होंने अस्त्र त्याग दिये और साधना मूलक मृत्यु की कामना से समाधि लगा कर बैठ गये। उस समय द्रुपद कुमार धृष्टधुम्न ने उनका सर काट लिया जब तक अश्वत्थामा लौटकर आये उनके प्राण पखेरु उड़ चुके थे। इस बीच कर्ण ने दुर्योधन के कान भर दिये थे कि द्रोणाचार्य इसलिये युद्ध कर रहे थे कि सभी कौरवों और पाण्डवों के समाप्त कर अपने पुत्र अश्वत्थामा को राजा बनाया जाय। इसीलिये जब उन्हें मालूम पड़ा कि अश्वत्थामा मारे गये हैं तब उन्होंने स्वयं ही युद्ध छोड़कर मरण का वरण कर लेना ही उचित समझा। दुर्योधन इस बात से सहमत हो गया और इससे एक बहुत बड़ी शक्ति

से वंचित हो गया। वह पहले भी द्रोणाचार्य पर विश्वास नहीं करता था। यह सच है कि द्रोणाचार्य का पक्षपात अर्जुन के प्रति था। किन्तु उनमें इतनी सच्चाई भी थी कि अपने कर्तव्य को स्नेह के ऊपर रखते थे। शासन का नमक खाते थे अतः पूरे हृदय से शासन के पक्ष में युद्ध कर रहे थे। उन्हीं के सेनापतित्व में अर्जुन का प्रियपुत्र अभिमन्यु मारा गया था। क्या यह उनकी शासन और कर्तव्य के प्रति निष्ठा का एक प्रमाण नहीं था? किन्तु उन पर अविश्वास किया गया जिसका दुष्परिणाम दुर्योधन को भोगना पड़ा।

(२) **द्रोण–** (ना.पा.) भास (दे.) के पञ्चरात्र (दे.) का एक पात्र। द्रोण युद्ध में महाविनास की सम्भावना से चिन्तित हैं और जैसे भी सम्भव हो युद्ध को टालना चाहते हैं। उनके परामर्श से दुर्योधन यज्ञ करता है और गुरु दक्षिणा में उनकी मनचाही वस्तु दे देना चाहता है। वे गुरु दक्षिणा में पाण्डवों को आधा राज्य देने की याचना करते हैं। दुर्योधन अपने वचन का इस शर्त पर पालन करना चाहता है कि ५ दिनों में पाण्डवों का पता चल जाय। इमसें भी दुर्योधन की एक चाल है– सच्चाई पर आरुढ पाण्डव अज्ञातवास में पता चल जाने पर द्यूत की शर्त के अनुसार पुनः १२ वर्ष के लिये वन को चले जायेंगे। उसके हिसाव से अज्ञातवास के केवल ५ दिन ही शेष हैं। अब भीष्म और द्रोण दोनों दुर्योधन के वचन में आबद्ध करने के लिये कीचक वध के आधार पर विराटपुर पर आक्रमण कर देते हैं। पर उस युद्ध में अकेले अर्जुन ही सभी को पराजित कर देते हैं और इसी बीच अज्ञातवास का समय बीत जाता है। यह घटना द्रोणाचार्य की सच्चाई और भरतकुल की कल्याण कामना का एक अच्छा उदाहरण है।

द्रौपदी– (ना.पा.) महाभारत की एक नायिका। पाण्डवों की सामान्य पत्नी जिसे अर्जुन ने स्वंयवर में जीता था और माता कुन्ती की आज्ञा से पांचों पाण्डवों की सामान्य पत्नी बन गई थी। पाण्डव विषयक नाटकों में इसका उपादान हुआ है। इसके दो चरित्रों को नाटककारों ने विशेष महत्व दिया है– सभा में केशाम्बराकर्षण और कीचकवध। निम्नलिखित नाटकों में इसका विशेष उपादान हुआ है–

(१) **वेणीसंहार**– राजसभा में द्रौपदी का अपमान लगभग समस्त नाटक में छाया हुआ है। सन्धि का प्रस्ताव लेकर भगवान कृष्ण दुर्योधन की सभा में जाने वाले हैं। द्रौपदी का अपमानआड़े आ जाता है और भीमसेन घोषणा करते हैं कि द्रौपदी के अपमान का बदला लिये बिना यदि युधिष्ठिर सन्धि करते हैं तो भी भीमसेन उससे वाध्य नहीं होंगे। द्रौपदी अवसर पाकर यह करकर भीमसेन के क्रोध को और अधिक बढ़ा देती है कि दुर्योधन की पत्नी ने उस पर कटाक्ष किया है– 'द्रौपदी अभी तक तुम्हारे वाल बंधे नहीं।' इस पर द्रौपदी की दासी की ओर से उत्तर दिया गया– 'जब तक तुम्हारे केश खुलते नहीं तब तक हमारे कैसे बंधेंगे?'

सन्धि प्रस्ताव के असफल हो जाने के बाद जब युद्ध लगभग तय हो जाता है तब वह पतियों की कुशल कामना से चिन्तित हैं और युद्ध में सावधानी से विचरण का परामर्श

देती हैं। वह स्वाभिमानिनी हैं- बदला लेने के लिये १३ वर्ष से उसने केश खोल रक्खे हैं फिर भी स्त्री सुलभ चिन्ता से वह परेशान है और उनकी कल्याण कामना करती है। स्वाभिमानिनी होने के साथ ही वह सहृदय भी है और प्रत्येक स्थिति में पतियों की सहगामिनी है।

जब चार्वाक के रूप में एक राक्षस आकर गलत सूचना दे देता है कि दुर्योधन ने भीम और अर्जुन दोनों को मार डाला है तब वह प्राण त्यागने के लिये उद्यत हो जाती है। किन्तु कुछ ही समय में भीम आकर दुश्शासन के रक्त से हाथों से उसके केशों का संय्यमनकरते हैं। उसके पति भी उसे हृदय से चाहते हैं और उसके अपमान का बदला इतने भयानक रूप में लेते हैं कि उसकी तुलना नहीं मिलती।

(२) **बालभारत**- में स्वयंवर और विवाह, द्यूत और उसमें उसके प्रति किये गये दुर्व्यवहार का कथानक लिया गया है। यह नाटक पूरा प्राप्त नहीं होता। सम्भवतः अप्राप्त भाग में प्रतिशोध लेने का कथानक भी आ गया है।

(३) **पार्थ पराक्रम**- में द्रौपदी का कोई सम्बन्ध नहीं है। युद्ध भी उसके कारण नहीं होता। फिर भी नारी पात्रों में द्रौपदी और उत्तराकुमारी पृष्ठभूमि में विद्यमान हैं।

(४) **सौगन्धिकाहरण में**- द्रौपदी के आग्रह पर भीमसेन कमलिनी लाने के लिये कुवेर सरोवर की यात्रा करते हैं। मार्ग में हनुमान जी से संघर्ष इत्यादि का सामना करते हुये अन्त में सफलता प्राप्त करते हैं और द्रौपदी को उनकी चाही माला मिल जाती है।

(५) **पाण्डवाभ्युदय**- नामक तथाकथित छायानाटक में द्रौपदी के जन्म और पाण्डवों के साथ विवाह का वर्णन है।

(१) **द्रौपदी परिणय**- (ना.कृ.) विजय नगर के पेरीकाशी नाथ द्वारा लिखित नाटक है। इसका रचनाकाल २०वीं शताब्दी का प्रथम चरण है।

(२) **द्रौपदी परिणय**- (ना.कृ.) नृसिंह के पुत्र कृष्ण का लिखा नाटक। इसका विवरण मद्रास की ओरियण्टल लायब्रेरी में विवरणात्मक कैटेलाग सं. ११८४६ पर दिया हुआ है।

(१) **द्रौपदी स्वयंवर**- (ना.कृ.) सम्भवतः यह एक नाटक है जिसका उल्लेख अभिनवभारती के छठे अध्याय में किया गया है। इसके रचनाकार का पता नहीं चलता।

(२) **द्रौपदी स्वयंवर**- (ना.कृ.) यह दो अंकों का एक नाटक है जिसकी रचना विजयपाल ने चालुक्य वंशीय राजा सिद्धराज भीमदेव के निर्देश पर सम्भवतः १३वीं शताब्दी में की थी। इसमें द्रौपदी के स्वयम्वर और विवाह का चित्रण किया गया है।

द्वारावती- (ना.कृ.) विश्वेश्वर विद्याभूषण लिखित नाटक।

ध

धनञ्जय– (ना.पा.) अश्वघोष के बौद्ध रूपक का एक पात्र। इसके लिये भट्टिदालक शब्द का प्रयोग किया गयाहै। नाट्य शास्त्र के अनुसार राजकुमार के लिये इस शब्द का प्रयोग होता है। पता नहीं चलता कि अश्वघोष की कृतियां भरत के विधानों का पालन करती चली हैं या नहीं। यदि उन्होंने भरत की मान्यताओं का अनुसरण किया है तो धनञ्जय सम्भवतः कोई राजकुमार रहा होगा।

धनञ्जयपुरंजयम्– (ना.कृ.) विष्णुपाद भट्टाचार्य का लिखा ७ अंकों का नाटक। धनञ्जय एक वृद्ध ब्राह्मण है। उसका पुत्र पुरञ्जय पिता की अवहेलना करता रहता है। धनञ्जय की मृत्यु हो जाती है। फिर एक दिन पुरञ्जय स्वप्न में देखता है कि उसका पिता नरक में असीमित कष्ट पा रहा है। स्वप्न में उसे शिवजी के दर्शन होते हैं। शिवजी उन्हें बतलाते हैं कि पिता के कष्टों का कारण उसका (पुत्र का) पापाचार है। 'यदि तुम अपने पिता को कष्टों के छुटकारा दिलाना चाहते हो तो तुम माहिष्मती के राजा से एक दिन का पुण्य मांग लो।' पुरञ्जय माहिष्मती की ओर चल देता है। मार्ग में उसे निषाद आश्रय देता है जो जीवन दान करके भी उसकी रक्षा करता है। पुरञ्जय उसका संस्कार कर पुनः माहिष्मती की ओर चल देता है। वहां राजा उसे एक दिन का पुण्य प्रदान कर देता है जिससे उसके पिता की सद्गति हो जाती है। राजा को उसी दिन पुत्र प्राप्ति होती है जो पूर्व जन्म का वही पुण्यात्मा निषाद है।

इस नाटक का प्रथम अभिनय शिव चतुर्दशी के मेले में किया गया था। इसमें रंग-नर्देश बहुत अच्छे हैं।

धनञ्जय विजय– (ना.कृ.) नारायण के पुत्र कञ्चनाचार्य लिखित व्यायोग। इसमे विराटपुर में कौरवों के साथ अर्जुन के युद्ध का वर्णन है जबकि अज्ञातवास की अवधि में पाण्डवों का पता लगाने के लिये कौरवों ने विराट् की गायों को खदेड़ दिया था। इस युद्ध में अकेले अर्जुन ने कौरव पक्ष के सभी महारथियों को पराजित कर दिया था। इसमें प्रत्यक्ष युद्ध के स्थान पर इन्द्र और उनके अनुचर की बातचीत के द्वारा युद्ध का परिचय दिया गया है।

कहा जाता है इस नाटक का अभिनय विद्वन्मण्डली में किया गया था जिसकी अध्यक्षता महान् गदाधर मिश्र ने की थी। इसका प्रकाशन बम्बई से हो गया था। इस पर रामकृष्ण की एक टीका भी प्राप्त होती है। जिसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम III ५४ पर किया गया है। विल्सन के थियेटर II ३७४ में इसका संक्षिप्त परिचय दिया गया है। १४वीं शताब्दी के रसार्णवसुधाकर में इसके उद्धरण दिये गये हैं।

(२) **धनञ्जयविजयम्–** (ना.कृ.) इसके लेखक यशोधर हैं। इसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम सं. I २६६ पर किया गया है।

धनञ्जयव्यायोग- (ना.कृ.) काञ्चनपंडित का लिखा एक व्यायोग जिसमें किरात-वेषधारी शङ्कर और अर्जुन के युद्ध का चित्रण किया गया है। इसका रचना काल १२वीं शताब्दी है।

धन्योहं धन्योहम्- (ना.कृ.) डा. गजानन बाल कृष्ण पलसुले लिखित नाटक जिसमें स्वतन्त्रता सेनानी सावरकर का चित्रण किया गयाहै। शारदा प्रकाशन पुणे से इसका प्रकाशन हो गया है।

धरित्रीपतिनिर्वाचनम्- (ना.कृ.) सिद्धेश्वर चट्टोपाध्याय लिखित नाटक। यह एक प्रतीकात्मक व्यङ्ग्य नाटिका है। इसमें भगवान की पुत्री धरित्री के स्वंयवर का अंकन किया गया है। वरणार्थियों में कलह होता है, धरित्री का अपहरण करने की चेष्टा की जाती है। भयानक मारपीट होती है; सभी घायल हो जाते हैं; तब भगवान सभी को अर्धचन्द्र देकर निष्कासित कर देते हैं।

इसकी रचना १९६७ में और संस्कृत परिषद् द्वारा प्रकाशन १९७१ में किया गया। इसका प्रथम अभिनय १९६९ में सम्पन्न हुआ था।

धर्म- (ना.पा.) प्रबोधचन्द्रोदय का यह एक पात्र है जो विवेक के सैन्यदल का व्यवस्थापन करता है और महामोह को पराजित करने में विवेक की सहायता करता है। वह और श्रद्धा मिलकर ऐसा आयोजन करते हैं कि उपनिषद् (स्त्री) और विवेक पुरुष का मेल हो जाता है जिससे प्रबोध नामक पुत्र का जन्म होता है। अन्त में वही महामोह को नष्ट करने में कारण बनता है।

धर्मगुप्त- (ना.का.) ये १४वीं शताब्दी के नैपली कवि हैं। इन्हें बालवागीश्वर की उपाधि प्राप्त थी। इनके लिखे राम विषयक तीन नाटक प्राप्त होते हैं। रामाङ्क शीर्षक ४ अंको की नाटिक; (दे.) रामायण नाटकम् (दे.) और रामाभिषेक नाटकम् (दे.)

धर्मदेव गोस्वामी- (ना.कृ.) १८वीं शताब्दी के कवि। ये केहातीसत्र, असम के निवासी थे। इनके लिखे दो काव्य ग्रन्थ नरकासुरविजय एवं धर्मोदय काव्य बतलाये जाते हैं। इनके अतिरिक्त इनका लिखा धर्मोदेय (दे.) नामक एक नाटक भी कहा जाता है।

धर्मराज्यम्- (ना.कृ.) अमियनाथ चक्रवर्ती लिखित नाटक। यह नाटक पाण्डवों के राजसूय यज्ञ से द्यूतक्रीड़ा में पराजय पर्यन्त कथाभाग को लेकर लिखा गया है। यह २०वीं शताब्दी की रचना है जिसका प्रकाशन संस्कृत साहित्य पत्रिका में किया गया। पश्चिमबंगाल संस्कृतसाहित्यपरिषद् द्वारा इसका प्रथम अभिनय किया गया।

धर्मविजय- (ना.कृ.) भूदेव शुक्ल (दे.) लिखित ५ अंकों का प्रतीक नाटक। इसमें आध्यात्मिकता से नियन्त्रित जीवन का चित्रण किया गया है और औरंगजेब के शासन की उच्छृङ्खलताओं तथा अनियन्त्रित प्रवृत्तियों के सुधार की व्यञ्जना की गई है। इसमें अधर्म, व्यभिचार, परीक्षा, परस्पर प्रीति, अनाचार, कविता, हिंसा, अहिंसा इत्यादि सभी पात्र

भावात्मक एवं प्रतीक रूप हैं। अन्त में धर्म की विजय होती है और राजा धर्म की पूजा करता है। सामाजिक विकृतिका अच्छा चित्र खींचा गया है और पाखण्ड का भण्डाफोड़ करने वाली यह एक अच्छी रचना है। इस पर भवानीशंकर की टीका भी है।

कैटेलागस कैटेलागोरम I ४९६; II ११६ और III १०६ में इसका उल्लेख किया गया है।

धर्मस्य सूक्ष्मागतिः– (ना.कृ.) कण्णन तम्पी (दे.) लिखित ३ अंकों का नाटक। इसका प्रकाशन त्रिवेन्द्रम से सन् १९२८ में किया गया।

धर्मभ्युदय– (ना.कृ.) यह मेघप्रभाचार्य का लिखा छाया नाटक है। यह सम्भवतः सभी छाया नाटकों में सबसे प्राचीन छाया नाटक है और साथ ही यही एकमात्र ऐसा नाटक है जो स्वयं को छायानाटक (छायानाटकप्रबन्ध) कहता है। केवल इतना ही नहीं अपितु छायानाटक में पुत्तलिका के प्रयोग की जो आवश्यकता होती है उसका निर्देश भी केवल इसी नाट्य रचना में है। इसमें रंग मञ्चीय निर्देश में स्पष्ट रूप से पुत्तलिका को यवनिका के अन्दर रख देने का निर्देश दिया गया है।

इसके छायानाटक होने में तो कोई सन्देह नहीं किन्तु कहा नहीं जा सकता कि इसके पहले छायानाटक की कोई परम्परा प्रचलित थी या नहीं। क्या इसके पहले कोई और छायानाटक लिखा गया था? कुछ विद्वान दूताङ्गद (दे.) को छाया नाटक की मान्यता प्रदान करते हैं। क्या वह दूताङ्गद नाटक इस नाट्य रचना से पहले लिखा गया था या बाद में? क्या इस नाटक को छाया नाट्य विधा का प्रवर्तक माना जा सकता है? इन सब प्रश्नों का वर्तमान समय में कोई निश्चयात्मक उत्तर देना सम्भव नहीं है। केवल इतना निश्चित है कि यह प्राचीनतम छाया नाटकों में एक है।

धर्मोदयम्– (ना.कृ.) असम निवासी धर्मदेव गोस्वामी लिखित नाटक। इसमें अहोम राजा लक्ष्मीसिंह की मंडिया ग्राम के विद्रोह को दबाने की चेष्टाओं को नाटक के कथानक के रूप में स्वीकार किया गया है। यह कृति संस्कृतसञ्जीवनी सभा नालबाड़ी आसाम से प्राप्त की जा सकती है। रचनाकाल १८वीं शताब्दी का अन्तिम चरण।

धर्मोद्धरण– (ना.कृ.) यह एक नाट्यकृति बतलाई जाती है। कहा जाता है कि इसकी रचना दुर्गेश्वर (दे.) ने की थी।

धारिणी– (ना.पा.) मालविकाग्निमित्र में अग्निमित्र की पटरानी। यह विनीत एवं उदार चित्त है और बड़े घरानों में जिस गरिमा की सम्भावना की जाती है वह इसमें पूर्ण रूप से विद्यमान है। इरावती (छोटी रानी) जैसी उग्रता इसमें नहीं है। न यह उस प्रकार छिप छिप कर बाते सुनती है और न अपने गौरव को भुलाकर झगड़े के लिये तैयार रहती है। उसके अमर्ष का कारण विद्यमान है– घर में एक नई सौत पल रही है और राजा का उसकी ओर ध्यान भी अत्यधिक है। स्त्री सुलभ सौतियाडाहवशवर्तिनी वह भी

है और उसे बन्दी भी बना लेती है। किन्तु इस दिशा में भी सीमा का अतिक्रमण नहीं करती और जब अवसर आता है वह एक बहाना लेकर मालविका और अग्निमित्र को विवाह की अनुमति दे देती है। मालविका ने उसके कहने पर पाद प्रहार के द्वारा अशोक को प्रफुल्लित किया था। इसलिये वह मालविका को कुछ पुरस्कार देना चाहती है। उसके पुत्र ने सिन्धु तट पर यवनों को पराजित किया है। इस प्रसन्नता के कारण वह राजा को भी उपहार देना चाहती है। विवाह की स्वीकृति से ये दोनों कर्तव्य पूरे हो जाते हैं। यह उसकी बुद्धिमानी है। विदूषक सर्पदंश का बहाना कर उसकी सहानुभूति अर्जित कर लेता है और उसकी अंगूठी लेकर मालविका को कैद से छुड़ाता है। किन्तु यह उसे सहर्ष स्वीकार कर लेती है। यह उसकी उदारता है।

धीरनाग– (ना.का.) ये सम्भवतः बौद्ध आचार्य भदन्त दिङ्नाग से अभिन्न है। इनकी लिखी कुन्दमाला ६ अंकों का एक नाटक है। ये ५वीं शताब्दी में अरालपुर के निवासी थे। भोजराज एवं कई अन्य काव्यशास्त्रियों ने इनका उल्लेख किया है। मेघदूत के एक पद्य खण्ड 'दिङ्नागानां पथि परिहरन् स्थूल हस्तावलेपान्' की व्याख्या करते हुये मल्लिनाथ ने लिखा है कि दिङ्नाग कालिदास के विरोधी कवि थे और इसलिये कालिदास ने इस पद्य में दिङ्नाग पर आक्षेप किया है। यद्यपि मल्लिनाथ बहुत परवर्ती हैं। अतः उनकी मान्यता पर पूरा विश्वास नहीं किया जा सकता; फिर भी पद्य में कुछ ऐसे शब्द हैं कि उनकी इस प्रकार की व्याख्या सम्भव अवश्य है। इनका समय भी विवेचक लोग ईसा की ५वीं शताब्दी से पहले मानते हैं। अतः असम्भव नहीं है कि कालिदास ने इनका उल्लेख किया हो।

धीरनाग और दिङ्नाग की एकता का प्रश्न भी सन्देह के घेरे में है। कुछ लोग दोनों को एक मानते हैं किन्तु अधिकांश लोग इस एक रूपता के स्वीकार नहीं करते। इस विषय में निश्चयात्मक रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता।

धीरनैषधम्– (ना.कृ.) यह महामहोपाध्याय रामावतार शर्मा की विद्यार्थी जीवनकाल की एक रचना है और बिहारराष्ट्रभाषा परिषद् में रामावतार शर्मा ग्रन्थावली मे इसका प्रकाशन किया गया है। इसके ७ अंकों में नलदमयन्ती की कथा को नया रूप देने की चेष्टा की गई है।

धूतध्वजम्– (ना.कृ.) नारायणशास्त्री लिखित ५ अंकों का नाटक।

धूता– (ना.पा.) मृच्छकटिक (दे.) नाटक के नायक चारुदत्त की पत्नी। इसके चरित्र का बहुत कम विकास हुआ है। किन्तु जितना कुछ हुआ है उतने से ही इसके लोकोत्तर गुणों पर प्रकाश पड़ जाता है। यह योग्य पति की अनुगामिनी योग्य पत्नी है। इसने पति के प्रति पूर्ण आत्मसमर्पण कर दिया है। पति की इच्छा ही इसकी इच्छा है। पति के बिना कहे ही यह उनकी प्रवृत्ति और परिस्थिति जन्य इच्छा का ध्यान रखती है। इतना ही नहीं वह उसे यथाशक्ति पूरा करने का भी प्रयास करती है। उसे मालूम है कि उसके

पति का सम्बन्ध एक वेश्या से चल रहा है। किन्तु उसे इसका मलाल नहीं है। न केवल वह इसे सहन ही करती है अपितु वह उसे प्रोत्साहन भी देती है। चारुदत्त के घर से वसन्तसेना के आभूषण चोरी हो जाते हैं। चारुदत्त इस संकोच में पड़ा है कि लोग क्या समझेंगे। धूता स्वयं पति के चरित्र के परिमार्जन के लिये उत्सुक है। अब उसके पास केवल एक रत्नावली शेष है जो उसकी माता से उसे प्राप्त हुई है। रत्नावली चतु:समुद्र सारभूत है और वसन्तसेना के सभी आभूषणों की अपेक्षा अधिक मूल्यवान है। किन्तु उसके सामने एक समस्या यह है कि आर्यपुत्र इसे स्वीकार करेंगे नहीं। अतः वह एक युक्ति निकालती है- वह रत्नषष्ठी व्रत के बहाने रत्नावली दे देती है। जब वसन्तसेना उसे लौटाना चाहती है तब वह यह कर स्वीकार नहीं करती कि आर्यपुत्र ने प्रसन्नता पूर्वक तुम्हें दी है। अब इसका लौटाना मेरे लिये ठीक नहीं होगा। मेरा आभूषण तो आर्य पुत्र ही हैं। उसे पति की अपेक्षा पुत्र का भी मोह नहीं। वह चारुदत्त के साथ सहमरण के लिये तैयार हो जाती है। वह पति की चहेती वेश्या को अपनी बहन मानती है और प्रसन्नता पूर्वक उससे विवाह की अनुमति दे देती है। उस जैसी महिलायें दुर्लभ हैं; वह धन्य है।

धूर्जटिप्रसाद- (ना.कृ.) ये बंगालवासी कवि थे। इन्हें काव्यतीर्थ की उपाधि प्राप्त हुई थी। इनका भक्तिविजय (दे.) नाटक कलकत्ता से प्रकाशित हुआ है।

धूर्तचरित- (ना.कृ.) यह एक भाण है जिसकी रचना दिवाकर (दे.) कवीन्द्राचार्य के भाई मधुसूदन ने की थी। एक धूर्त चरित का उल्लेख साहित्यदर्पण में भी किया गया है किन्तु वह एक प्रहसन बतलाया गया है। अतः प्रस्तुत धूर्तचरित साहित्यदर्पणोल्लिखित धूर्तचरित से निश्चय ही भिन्न है।

धूर्तचरित- (ना.कृ.) यह एक प्रहसन है जिसका उल्लेख साहित्यदर्पण में संकीर्ण प्रहसन के उदाहरण के रूप में किया गया है। अब यह कृति उपलब्ध नहीं होती। सम्भवतः यही रचना धूर्तविडम्बित नाम से भी जानी जाती है।

धूर्तनर्तक- (ना.कृ.) सामराज विरचित प्रहसन। इसमें शैवसम्प्रदाय की हंसी उड़ाई गई है। एक शैवसाधु मुरेश्वर एक नर्तकी का भक्त है। जब वह कहीं जाने लगता है तब वह उस नर्तकी को अपने शिष्यों को सौंप जाता है। वे उस नर्तकी पर स्वयं डोरे डालनेलगते हैं जब वह वश में नहीं आती तब शिष्य राजा पापाचार के पास जाकर मुरेश्वर की शिकायत करते हैं और साधु की निन्दा करते हैं। राजा उस शिकायत को एक वाहियात बात समझता है और निर्णय देता है कि नर्तकी उस साधु की ही है और वह उसी के पास रहे।

यह प्रहसन यद्यपि उच्चकोटि का नहीं है तथापि विण्टरनित्ज के मत से इसमें अन्य प्रहसनों की अपेक्षा ग्राम्यता कम है। कवि ने इसकी तुलना गंजे सर से की है जिसमें बाल नहीं हैं किन्तु जुयें भी नहीं है।

धूर्तनर्तन–(ना.कृ.)सामराज लिखित प्रहसन। कैटेलागस कैटेलागोरम सं. I २७२ पर इसका उल्लेख किया गया है। इसका विश्लेषण विल्सन ने थियेटर II ४०७ में किया है।

धूर्तनाटकम्– (ना.कृ.) सामराज दीक्षित लिखित नाटक जो एक प्रहसन है। इसका नायक मूढेश्वर वसन्ततिलक नामक सुन्दरी से प्रेम करता है। वह अपने शिष्य जगद्वञ्चक को अपने आगमन की सूचना देने प्रेमिका के पास पहले ही भेज देता है। शिष्य स्वयं ही प्रेमिका के प्रणय जाल में फंस जाता है। जब गुरु वहां पहुंचता है तब शिष्य भागकर पुलिस को बुला लाता है। पुलिस उस सुन्दरी से प्रेम करते हुये गुरु को रंगे हाथों पकड़ लेती है। गुरु मूढेश्वर अपनी सिद्धियों को बढ़ा चढ़ाकर इतना वर्णन करता है कि राजा प्रभावित हो जाता है। इस प्रकार मूढेश्वर गुरु राजा को मूर्ख बनाकर उस सुन्दरी पर अधिकार कर लेता है। यह सम्भवतः धूर्तनर्तक का ही नामान्तर है।

धूर्तविटसंवाद– (ना.कृ.) दे. चतुर्भाणी और ईश्वरदत्त।

धूर्त विडम्बन– (ना.कृ.) एक प्रहसन जोकि महेश्वर (दे.) का लिखा है। कैटेलागस कैटेलागोरम I २७२ पर इसका उल्लेख किया गया है। कहा जाता है इसके लेखक का नाम महादेव नहीं महेश्वर था।

धूर्तविडम्बित भाण– (ना.कृ.) दे. धूर्तचरित।

धूर्तसमागम– (ना.कृ.) ज्योतिरीश्वर (दे.) लिखित प्रहसन। इसका कथासार इस प्रकार है– 'भिक्षुनगर (कहीं कहीं विश्वनगर) नाम का एक भिक्षु है। उसका शिष्य दुराचार गुरु के सामने अनंग सेना से प्रेम होने की बात स्वीकार करता है। यह सुनकर गुरु के मन में भी भावना जागृत होती है कि उसका भी रुपवती सुरतप्रिया से प्रेम है। दोनों ही प्रेम की भिक्षा मांगने चल देते हैं और दोनों अनंगसेना के घर पहुंच जाते हैं। गुरु उसके रूप को देखकर इतना अधिक पागल हो जाता है कि वह उसे आपने अधिकार में लेने की इच्छा करने लगता है और इस प्रकार अपने शिष्य को नाराज कर लेता है। वे भयानक झगड़े पर अमादा हो जाते हैं। इन दोनों से पीछा छुड़ाने के लिये वह उनके साथ पंचायत की एक अदालत में जाना चाहती है। इसके लिये वे दोनों एक ऐसे असज्जाति नामक ब्राह्मण के घर पहुंचते हैं जो अपने शिष्य विदूषक के साथ विवाद में उलझा हुआ है कि जीवन का सार प्रेम का आनन्द लेने में ही है। शिष्य कहता है कि दूसरे की स्त्री के साथ आनन्द लेने जैसा घोर पाप दूसरे का पैसा चुराने में भी नहीं है। इसी समय गुरु और शिष्य पञ्चायत के लिये उनके पास आते हैं। वे परस्पर विरोधी पक्ष प्रस्तुत करते हैं। असज्जाति वेश्या के रूप से प्रभावित हो जाता है और आदेश देता है कि 'जब तक निर्णय नहीं हो जाता वह मेरे पास ही रहेगी।' जब वह उस पंच के साथ रह रही है विदूषक स्वयं उसे अपने पास रखना चाहता है। इसी समय मूल नाशक नाम का एक नाई आता है जो अनंगसेना से अपना कर्ज वसूल करना चाहता है। वेश्या असज्जाति की ओर संकेत कर देती है। वह अपने शिष्य की धनपेटी लेकर उसका कर्ज चुका देता

है। वह नाई से वाल काटने और नाखून ठीक करने को कहता है। नाई उसके हाथ पांव बांध कर डाल देता है और भाग जाता है। तब विदूषक आकर उसे छुड़ाता है।

इस प्रहसन का सम्पादन लैसेन (CHR LASSEN) द्वारा अन्थोलोजिया संस्कृतिका (बोन १८३८) पृ. ६६-९६ और पृ. ११६-१३० में किया गया। सी कैप्लर जेन द्वारा १८८३ में भी इसका सम्पादन किया गया। विल्सन के थियेटर सं. II ४०४ में इसका विश्लेषण सामने आया। फ्रांस और इटैली में इसके अनुवाद प्रकाशित हुये जिनका उल्लेख स्किलर ने विब्लिओथेका में किया।

धृतराष्ट्र– (ना.पा.) महाभारतमूलक नाटकों में इन्हें पात्र के रूप में अपनाया गया है

(१) भास के **दूतघटोत्कच** में अभिमन्यु के वध पर सभी कौरव प्रसन्न हैं और आनन्द मना रहे हैं; किन्तु धृतराष्ट्र शंकाकुल है और कौरवों को सर पर मंडराती विपत्ति के लिये सावधान करते हैं। उन में सहृदयता भी है और पुरषोचित वीरता भी। अभिमन्यु वध का समाचार सुनकर उनकी प्रतिक्रिया अत्यन्त मार्मिक होती है–

'बहुत से एकत्र हुये निर्दय लोगों ने एकाकी पुत्र पर जब प्रहार किया तब उन सबकी बांहें कट कर गिर क्यों नहीं गई।'

(२) **दूत वाक्य** में दुर्योधन के दुर्वयवहार का उत्तर देने के लिये जब कृष्ण अपने आयुधों का आह्वान करते हैं तब उनके क्रोध को शान्त करने के लिये धृतराष्ट्र आगे आते हैं और उनका अभिवादन कृष्ण को शान्त कर देता है।

(३) **वेणीसंहार** में धृतराष्ट्र स्वयं युद्धभूमि में दुर्योधन को समझाने आते हैं। भीम अभिवादन में उनके प्रति जहर घोल देते हैं। फिर भी उन्हें क्रोध नहीं आता। उनके ९९ पुत्र मारे जा चुके हैं फिर भी वे अन्त तक दुर्योधन को युद्धविरत करने के अपने कर्तव्य से पीछे नहीं हटते। भीम उनका अभिवादन इन शब्दों में करते हैं–

'यह भीम तुम्हें सर झुकाकर प्रणाम कर रहा है जिसने सभी कौरवों का वध किया है; जो दुश्शासन का खून पीकर मदमत्त हो गया है और जो कुछ ही दिनों में दुर्योधन की जंघायें तोड़ने वाला है।'

जब दुर्योधन भीमसेन से गुरुजनों के प्रति शालीन होने के लिये कहताहै तब अर्जुन भी भीम का समर्थन यह कह कर कर देते हैं कि द्रौपदी के प्रति व्यवहार की मौन स्वीकृति देने वाले इनका प्रतिकार यही है।

धृतराष्ट्र अन्त तक दुर्योधन को समझाते और युद्ध रोकने का आग्रह करते रहते हैं। पर दुर्योधन मानता ही नहीं। अन्त में होनी होकर रहती है।

धृति– (ना.पा.) (१) अश्वघोष (दे.) के प्रतीक रूपक (दे.) का एक पात्र जो बुद्धि और कीर्ति के साथ बातचीत करता है। इसकी भाषा संस्कृत है।

(२) प्रबोधचन्द्रोदय में इसे बुद्धि और कीर्ति के साथ वार्तालाप में संलग्न दिखलाया

गाय है। बाद में बुद्ध का आगमन होता है। ये सब रूपकमय पात्र हैं।

(३) समुद्र मन्थन समवकार में यह लक्ष्मी की सहेली है और नाटक के प्रारम्भ में ही लज्जा और लक्ष्मी के साथ दिखलाई देती है।

धृतिसीतम्– (ना.कृ.) यतीन्द्रविमल चौधरी लिखित नाटक।

धृष्टद्युम्न– (ना.पा.) वेणीसंहार (दे.) का एक पात्र। इसने शस्त्रत्याग से पीड़ित द्रोणाचार्य का वध किया है।

धृष्टधौरेयम– (ना.कृ.) नारायण शास्त्री (दे.) लिखित ५ अंकों का नाटक।

धेनुक– (ना.पा.) बालरति (दे.) में एक राक्षस जिसका वध कृष्ण ने बाललीला के अवसर पर किया था।

ध्यानेशनारायण चक्रवर्ती– (ना.अनु.का.) ये २०वीं शताब्दी के बंगाल के रहने वाले हैं। इन्होंने रवीन्द्रनाथ ठाकुर की लिखी दो पुस्तकों का संस्कृत में अनुवाद किया था– वार्तागृहनाटक (दे.) और मुक्तधारा।

ध्रुव– (ना.कृ.) दे. रामकिशोर मिश्र।

ध्रुवनाटक– (ना.कृ.) यह (६) श्री निवासाचार्य (दे.) लिखित नाटक है। इसकी रचना १९वीं शताब्दी में की गई थी। इस नाटक की पाण्डुलिपि लेखक के पुत्र आर.एस. कृष्णमाचार्य के यहां राजमडम् में प्राप्त की जा सकती है।

ध्रुवतापस– (ना.कृ.) पद्मनाभाचार्य (दे.) लिखित नाटक। इसकी रचना पाश्चात्य शैली के अनुकरण पर की गई है। इसमें अंकों के स्थान पर दृश्यों में विभाजन किया गया है। इसका प्रकाशन कोयम्बटूर से हो गया था।

ध्रुवाभ्युदय– (ना.कृ.) शङ्करलाल लिखित ११ अंकों का नाटक। इसमें ध्रुव की प्रसिद्ध पौराणिक कथा का कथानक के रूप में उपादान किया गया है तथा रचना में छाया तत्व की प्रधानता है।

इसका रचनाकाल १८८६ ई. है। इसका प्रकाशन यशवन्तसिंह स्टीम मुद्रणालय लोवडीपुर जामनगर से १९११ में हो गया था।

ध्रुवावतारम्– (ना.कृ.) यह एक कल्पित कथानकपरक नाटक है। इसके लेखक हैं खोद स्कन्द शंकर। इस नाटक का नायक सुधीर नामक एक छात्र है जिसे ध्रुव का नूतन अवतार बतलाया गया है। इसका प्रकाशन नागपुर से हुआ है।

न

नकुल– (ना.पा.) वेणी संहार नाटक (दे.) का एक पात्र। पहले तो दुर्योधन की पत्नी भानुमती के स्वप्न के प्रसंग में उसका उल्लेख हुआ है। भानुमती ने स्वप्न में देखा

है कि एक नकुल (नेवले) ने १०० सर्पों को मार डाला है। यह एक अपशकुन है जो नकुल (सामान्य पाण्डवों) द्वारा १०० कौरवों के वध की भविष्यवाणी है। दूसरी बार हमें उसके दर्शन भीमसेन के साथ वार्तालाप में होते हैं जब भीमसेन सन्धि की बात सुनकर उत्तेजित है और नकुल उनके क्रोध को कुछ शान्त करने की चेष्टा करते हैं।

जब अन्त में दुर्योधन के उरुभंग के बाद दुर्योधन का पक्षपाती एक राक्षस चार्वाक वेष में यह गलत सूचना देता है कि दुर्योधन ने भीम और अर्जुन दोनों को मार डाला है तब युधिष्ठिर के स्कन्धावार में महान शोक छा जाता है। बाद में जब सच्चाई का पता चलता है तब नकुल उस राक्षस का वध कर देते हैं।

नगरनूपुरम्– (ना.कृ.) डा. रमा चौधरी (दे.) लिखित १० अंकों का नाटक। रचनाकाल २०वीं शताब्दी।

नगरश्रीः– (ना.पा.) मोहराजपराजय के प्रासङ्गिक कथानक की नायिका। यह देशश्री को जैन धर्म का उपदेश देती है और उसे उस धर्म को स्वीकार कर लेने के लिये प्रेरित करती है। इसने पहले ही जैन धर्म की दीक्षा ग्रहण कर ली थी।

नटेश्वर विलास– (ना.कृ.) यह तंजौर के राजा शिवजी का लिखा नाटक है। इसमें चिदम्बरम् में देव भगवान् शिव से सम्बन्धित कथानक का नाटकीकरण किया गया है।

नदीपूजा– (ना.कृ.) वेङ्कटराम राघवन का एक अनूदित नाटक।

नना विताडनम्– (ना.कृ.) डा. सिद्धेश्वर चट्टोपाध्याय का लिखा एक प्रहसन। इसकी रचना २०वीं शताब्दी के दूसरे दशक में की गई थी और इसका प्रकाशन संस्कृत साहित्य परिषद् द्वारा १९७४ में किया गया था। सूत्रधार रंगमञ्च पर आकर सूचना देता है कि नना मरणासन्न अवस्था में है– अतः अभिनय नहीं किया जायेगा। दर्शकों में तीन लोग रंगमञ्च पर आते हैं एक शिक्षक, एक तरुण, एक पण्डित। तीनों परिस्थिति पर विचार कर निर्णय करते हैं कि नना को बचाने के लिये वैद्य को बुलाया जाना चाहिये। वैद्य आता है किन्तु सूचना मिलती है कि नना मर गई है। थोड़ी देर में नना उठ खड़ी होती है तब वैद्य उसे प्रेत समझकर भाग खड़ा होता है। उधर मृत्यु की सूचना देने वाली उत्तरा भयभीत हो जाती है कि नना उसी की गर्दन उमेठेगी क्योंकि नना को विष देने की योजना उसी ने बनाई थी।

नन्दगोप– (ना.पा.) बालचरित (दे.) में एक पात्र। यह कृष्ण का पालक पिता है। इनके यहां मृत बालिका का जन्म हुआ है जिससे इन्होंने वसुदेव के जीवित पुत्र कृष्ण को बदल लिया है और उसका निष्ठापूर्वक पालन पोषण किया है।

नन्दन– (ना.पा.) मालती माधव (दे.) का एक पात्र यह राजा का नर्म सचिव है। राजा इसका विवाह मालती से करना चाहता है और स्वयं को सफल भी समझता है।

किन्तु विवाह के अवसर पर मालती भाग जाती है। माधव का मित्र मकरन्द मालती का रूप धारण कर विवाह कर लेता है। बाद में धोखे का पता चलता है।

नन्दलाल विद्या विनोद– (ना.का.) ये १९वीं शताब्दी में बंगाल के निवासी थे। इनका लिखा गर्व परिणति (दे.) नाटक १८८५ में प्रकाशित हुआ था।

नन्दिघोष विजयम्– (ना.कृ.) शिव नारायण दास लिखित ५ अंकों का नाटक जिसमें कमला और पुरुषोत्तम के पारस्परिक क्रियाकलाप का चित्रण किया गया है। इसका रचनाकाल १६वीं शताब्दी है। इस नाटक का दूसरा नाम कमला विलास भी है।

नन्दिमती– (ना.कृ.) इसका उपरूपक भाणिका के उदाहरण के रूप में उल्लेख किया गया है। अब यह रचना नाम शेष है। इसके विषय में नामोंल्लेख के अतिरिक्त और कुछ ज्ञात नहीं है।

नन्दिपति– (ना.का.) ये १८वीं शताब्दी में पुगौली (मिथिला) के निवासी थे। इनकी लिखी ४ अंकों की कृष्णकेलिमालानाटिका (दे.) प्रकाश में आई है। इनके दो अन्य अप्राप्त नाटक भी बतलाये जाते हैं– कदम्बकेलिमाला और रुक्मणीस्वयंवर।

नरसिंह– (ना.का.) ये १४वीं शताब्दी के आन्ध्र प्रदेश के कवि थे। वेमभूपाल ने इनका उल्लेख साहित्य चिन्तामणि में किया है और उससे एक पद्य भी उद्धत किया है। इससे सिद्ध होता है कि इनका समय वेमभूपाल (१५वीं शताब्दी) से पहले है। इनकी चार पुस्तकों का पता चलता है जिनमें कादम्बरीकल्याण (दे.) नामक नाटक भी है। शेष तीन पुस्तकें हैं– ऋग्वेद भाष्य, काकतीय और मलयवती (गद्य रचनायें)। कादम्बरीकल्याण का प्रथम पद्य वामनभट्टवाण की कनकलेखा (दे.) के प्रथम पद्य से मिलता है। अतः कुप्पूस्वामी शास्त्री ने अनुमान लगाया है कि ये वामनभट्टवाण से अभिन्न थे। शिवनारायण-महोत्सव (दे.) के लेखक नरसिंह से ये भिन्न थे।

(२) **नरसिंह–** (ना.का.) इनका लिखा शिवनारायणमहोदय (दे.) एक प्रतीक नाटक है जिसमें दार्शनिक तत्वों का नाटकीकरण किया गया है। यह रचना क्योंझर के राजकुमार के लिये की गई थी। कादम्बरी कथा का नाटकीकरण करने वाले नरसिंह (दे.) से ये भिन्न हैं।

(३) **नरसिंह–** (ना.का.) दक्षिण कनारा के एक ब्राह्मण परिवार में इनका जन्म १९०२ में हुआ था। इनका प्रतिज्ञाभार्गव नामक एक व्यायोग प्रकाश में आया है। इसके अतिरिक्त इनकी अन्य कृतियां भी प्रसिद्ध हैं जिनमें ८ अध्यायों के सौदामनी उपन्यास, भारतकथा इत्यादि का उल्लेख किया जा सकता है।

नरसिंह उपनाम राजराज– (ना.टी.का.) प्रसन्नराधव पर इनकी टीका प्राप्त होती है। ये भरद्वाज गोत्र में उत्पन्न हुये थे। सम्भवतःयह टीका रत्नपुरी में लिखी गई थी।

नरसिंह कवि– (ना.का.) इनका जन्म गोदावरी जिले के वेणुगुमहल नामक गांव

में हुआ था। विजयानगर के महाराज आनन्दगजपति के साथ कुछ समय बिताकर ये सन्यासी हो गये थे। गणित में ये विलक्षण प्रतिभाशाली थे। इन्होंने चित्सूर्यालोक (दे.) नामक एक प्रतीक नाटक की रचना की थी। इसके अतिरिक्त इन्होंने कालमानोपपत्ति और तिथिमञ्जरी ये पुस्तकें भी गणित से सम्बन्धित ही लिखी थीं। जिससे इनकी गणित विषयक प्रौढ़ता सिद्ध होती है। इसी शताब्दी के प्रारम्भ में विजयवाड़ा में इनका देहान्त हो गया।

नरसिंह कवि– (ना.का.) इन्हें नरसिंह मिश्र भी कहा जाता है। ये उत्कल प्रदेश के निवासी थे और उत्कल के मयूरभंज के निकट क्योंझर के राजा ने इनकी सम्मान किया था। उनकी प्रशस्ति में इन्होंने शिवनारायणभंझमहोदय नामक नाटक की रचना की थी।

नरसिंह दीक्षित– (ना.का.) इनकी लिखी श्रीनिवास रथ विजय नाटिका (दे.) का उल्लेख त्रैवार्षिक खोज रिपोर्ट मद्रास में किया गया है। इनका समय १७वीं शताब्दी का मध्यभाग है।

नरसिंहाचार्य– (ना.का.) दे. मडुम्बई वेङ्कटराम नरसिंह आचार्य।

नरिसंहाचार्य स्वामी– (ना.का.) विजयानगरम् के निकट सिंहाचलम् में इनका जन्म १९वीं शताब्दी के मध्य मे हुआ था। इनके पिता वीरराघव और पितामह नृसिहांर्य थे। विजयानगर के राजदरवार में इन्हें आश्रय प्राप्त हो गया था। इनके लिखे चार नाटक बतलाये जाते हैं– वासवी पाराशरीय, (दे.) राजहंसीय प्रकरण (दे.) गजेन्द्र व्यायोग (दे.) और शीतसूर्य (दे.)। नाटकों के अतिरिक्त उपन्यास, अलंकार शास्त्र, नीतिसूक्ति इत्यादि पर भी इनकी रचनायें पाई जाती हैं।

नराणां नापितो धूर्तः– (ना.कृ.) जयपुर निवासी नारायण शास्त्री लिखित चार दृश्यों का एकाङ्की। इसका प्रकाशन मधुर वाणी पत्रिका में १९५७ में हुआ था। एक आलसी और वेकार नाई राम किशोर पत्नी के आग्रह पर धन कमाने चलता है। मार्ग में उसकी दानव से भेटं हो जाती है। वह थैले से शीशा निकाल कर दानव के सामने कर देता है और कहता है मेरे थैले में न जाने कितने दानव विद्यमान हैं। दानव डर कर नाई को स्वर्ण मुद्रायें देकर पीछा छुड़ाता है। नाई धन लेकर घर लौट आता है। दानव का मामा बदला लेने आता है तब नाई उसके सामने छः शीशे कर देता है। तब मामा भी यह समझकर कि उसके पास तो दानवों की सेना है डर जाता है और राम किशोर को प्रभूत धन देकर पीछा छुड़ाता है।

नरेन्द्रश्रीवत्साङ्क– (ना.का.) दे. गोविन्द श्रवित्साङ्क।

नर्मवती– (ना.कृ.) साहित्यदर्पण में नाट्यरासक का उदाहरण। इसके दो अंक बतलाये गये हैं। यह रचना अभी तक उपलब्ध नहीं की जा सकी है।

नल– (ना.पा.) महाभारत के वन पर्व में इनकी कथा विस्तार पूर्वक आई है। महाभारत की उच्चकोटि की उपकथाओं में इसका अन्यतम स्थान है। इनकी कथा को लेकर कई

नाटकों की रचना की गई है। इनको पुण्यश्लोक कहा है। पाश्चात्य जगत् में इनके कथानक की अन्यतम प्रतिष्ठा है।

(१) **नलचरित नाटक–** (ना.कृ.) नीलकण्ठलिखित नाटक। यह बालमनोरम प्रेस मद्रास से प्रकाशित हो चुका है। इस नाटक की व्याख्या लेखक के भाई अच्चा दीक्षित ने लिखी थी। यह १० अंकों का शृङ्गाररस एवं वैदभीरीति प्रवण नाटक है। किन्तु यह ६ अंक तक ही उपलब्ध होता है। इसकी रचना १७वीं शताब्दी में की गई थी। प्रथम अभिनय काञ्ची के कामाक्षी परिणय के अवसर पर किया गया था।

(२) **नलचरित–** (ना.कृ.) इसकी रचना देवीप्रसाद शुल्क ने की थी। सुप्रभात पत्रिका में इसका प्रकाशन किया गया था।

नलदमयन्तीयम्– (ना.कृ.) कलकत्ता के कालीपद तर्काचार्य द्वारा प्रणीत नाटक। इसमें ७ अंक हैं। रचना सन् १९१७ में की गई थी। इसका प्रकाशनसंस्कृतसाहित्य परिषद् कलकत्ता से हो गया था।

नलभूमिपालरूपकम्– (ना.कृ.) अज्ञातनामा कवि का लिखा नाटक। कैटेलागस कैटेलागोरम् II ६० में इसका उल्लेख किया गाय है। कुछ लोग इसे वेंकट रंगनाथ की रचना मानते हैं।

नलविक्रम– (ना.कृ.) इसका उल्लेख शारदातनय के भाव प्रकाशन में किया गया है। यह अप्राप्त रचना है।

नलविजयम्– (ना.कृ.) मण्डिकलराम शास्त्री लिखित नाटक। इसमें १० अंक हैं; अतः इसे महानाटक की श्रेणी में रक्खा गया है। इसमें नलदमयन्ती के विवाह, वियोग और पुनर्मिलन का कथानक स्वीकृत किया गया है। इसका प्रथम अभिनय नवरात्र के महोत्सव के अवसर पर महाराज कृष्णराज के आदेश पर किया गया था। इसका प्रकाशन मैसूर से १९१४ में किया गया था। इसका दूसरा नाम भैमी परिणय भी है।

(१) **नलविलासम्–** (ना.कृ.) पर्वणीकर सीताराम द्वारा १८वीं १९वीं शताब्दी में लिखित नाटक।

(२) **नालविलासम्–** (ना.कृ.) अहोवल नृसिंह का लिखा ६ अंकों का नाटक इसकी रचना १७६० में हुई थी।

(३) **नलविलास–** (ना.कृ.) हेमचन्द्र के शिष्य रामचन्द्र द्वारा लिखित नाटक। गायकवाड़ ओरियण्टल सीरीज बड़ौदा का संस्करण।

नलविषयक नाटक– (ना.सा.) महाभारत की आनुषङ्गिक कथाओं में पाश्चात्य विद्वानों ने नलकथा को सर्वाधिक महत्व दिया है और यूरोप में इस कथा की सर्वाधिक प्रशंसा की गई है। यह कथा असाम्प्रदायिक है और इसमें व्यवहार की सर्वजनमान्यता को सुरक्षित रक्खा गया है। संस्कृत साहित्य में भी नलोपाख्यान को लेकर पर्याप्त

संख्या में नाटक रचना की गई है। एतद्विषयक कतिपय प्रतिष्ठित नाटककार निम्नलिखित हैं-

अनर्घनलचरित (सुदर्शनाचार्य); दमयन्तीकल्याणम् (रंगनाथ); दमयतीपरिणय (नल्लन चक्रवर्ती); नलचरित (१ नीलकण्ठ, २ देवी प्रसाद शुक्ल); नलदमयन्तीयम् (काली प्रसादतर्काचार्य) नलभूमिपालरूपक (अज्ञातनामा कवि) नलविक्रम (अज्ञातनामा कवि) नलविजयम् (मण्डिकलराम शास्त्री); नलविलासम् (१ पर्वणीकर सीताराम, २ अहोवल, ३ रामचन्द्र) नलानन्द (जीवबुध); नलाभ्युदय (१ रघुनाथ, २ अज्ञातनामा कवि); भैमीनैषधीयम् (सीताराम आचार्य) भैमीपरिणय (१ रामशास्त्री, २ श्रीनिवास दीक्षित; ३ वेङ्कटाचार्य, ४ गुरुप्रसन्न भट्टाचार्य, ५ मण्डिकलराम शास्त्री); मञ्जुल नैषधीयम् (वेङ्कटरंगनाथ); भैमी परिणय (श्रीनिवास रत्नखेट), नलभूमिपालरूपकम्।

नलानन्द- (ना.कृ.) यह जीवबुध का लिखा ७ अंकों का नाटक है। इसमें नल के द्यूतक्रीड़ा में पराजित होने से लेकर पुनर्मिलन की कथा निबद्ध की गई है। लन्दन के ए.सी. वरनैल द्वारा संस्कृत पाण्डुलिपियों पर किये गये अनुसन्धान की ग्रन्थ सूची १६८ पर १०६३५, ५२२४ में इसका उल्लेख है। यह ग्रन्थसूची तंजौर की पैलेस लायब्रेरी में प्राप्त की जा सकती है।

(१) **नलाम्युदाय-** (ना.कृ.) नल के कथानक पर आधारित इस नाम का एक नाटक मद्रास के प्राच्यपुस्तकालय की पाण्डुलिपिपरक विवरणात्मक सूची में सं. XX ७८४८ एवं XXI ८३७० संख्याओं पर उल्लिखित किया गया है। राजचूड़ामणि के नाटक की प्रस्तावना में इसका उल्लेख किया गया है और इसके रचनाकार का नाम रघुनाथ (दे.) बतलाया गया है। ये रघुनाथ प्रसिद्ध साहित्यकार राजचूड़ामणि (दे.) के आश्रयदाता थे।

(२) **नलाभ्युदय-** (ना.कृ.) प्राच्यपुस्तकालय मद्रास के त्रैवार्षिक पाण्डुलिपि अनुभाग में चौथे खण्ड की संख्या ४७८७ पर इस नाम के एक नाटक का उल्लेख किया गया है किन्तु इसमें नाटककार के नाम का पता नहीं दिया गया है। यह पता नहीं चलता कि राजचूड़ामणि ने अपने नाटकों की प्रस्तावना में रघुनाथ (दे.) कृत जिस नलाम्युदय नाटक का उल्लेख किया है क्या यह उसकी ही एक प्रति है या यह कोई दूसरी रचना है।

नल्लन चक्रवर्ती- (ना.का.) इनका लिखा दमयन्तीपरिणय नामक नाटक प्राप्त होता है। इनका समय १८वीं शताब्दी का उत्तरार्ध है।

नल्लबुध- (कौशिक) (ना.का.) इनका लिखा शृङ्गार सर्वस्व (दे.) प्राप्त होता है। ये बालचन्द्र के पुत्र रामभद्र दीक्षित के सम्बन्धी थे।

नल्लाकवि- (ना.का.) दे. भूमिनाथ।

नवकृष्णदास- (ना.का.) इनको 'कृष्णदास' इस संक्षिप्त नाम से भी याद किया

जाता है। ये कलावतीकामरूपम् के लेखक हैं। इनका समय १८वीं शताब्दी है। ये मालावार (केरल) के निवासी थे।

नवग्रहचरित– (ना.कृ.) धनश्याम लिखित सट्टक। यह प्राकृत में लिखा हुआ प्रतीक सट्टक है। ई. हुल्ट्ज द्वारा मद्रास में १९०५ में दक्षिण भारत में संस्कृतपाण्डुलिपियों की खोज रिपोर्ट में इसका उल्लेख III १५७१ पर किया गया है। यह एक विचित्र प्रकार की रचना है जिसमें नाट्यशास्त्रीय शब्दावली को एक दम बदल दिया गया है जैसे प्रस्तावना को सूच्यार्थ, विष्कम्भ को काल, अंकों को प्रपञ्च इत्यादि। इसमें ५ प्रपञ्च हैं। इसका नायक सूर्य और प्रतिनायक राहु है जो केतु को साथ लेकर राशि की स्वतन्त्र प्रतिष्ठा करना चाहता है और उसकी चेष्टा है कि उसके नाम पर एक दिन का भी नामकरण कर दिया जाय। सूर्य का सेनापति मंगल है। राहु प्रयत्नशील है कि किसी प्रकार ग्रहचक्र से शनि को दो फाड़ कर लिया जाय। संघर्ष छिड़ता है। अन्त में देवताओं और दैत्यों के गुरु बृहस्पति और शुक्र मध्यस्थता करते हैं। शुक्र राहु को स्वर्भानु की संज्ञा देकर सन्तुष्ट कर देता है।

नवजीमूत– (ना.कृ.) जग्गी श्री बकुल भूषण (दे.) लिखित नाटक।

नवमालिका– (ना.कृ.) विश्वेश्वर लिखित नाटक। इसमें अवन्ती के विजयसेन की नवमालिका के साथ प्रेमलीलाओं का चित्रण किया गया है। इसमें प्रचलित कथानक को कुछ थोड़े से परिवर्तन के साथ प्रस्तुत किया गया है। इसकी नायिका नवमालिका है जिसका अपहरण एक राक्षस द्वारा हो जाता है। एक तपस्वी उसे मुक्त कराकर अवन्ति के राजघराने में विजयसेन के पास भेज देता है। दोनों का प्रेम बढ़ चलता है। रानी उसे और उसकी सहेली चन्द्रिका को बन्दी बना लेती है। किन्तु बाद में पता चलता है कि यह अनंगराज विजयवर्मा की अपहृत राजकुमारी है और ज्योतिषियों के अनुसार उसका पति सार्वभौम होगा तब रानी स्वयं उसका विवाह राजा से करा देती है।

ओरियण्टल लायब्रेरी मद्रास के संस्कृत पाण्डुलिपियों के डिस्क्रिप्टिव कैटेलाग सं. XXI ८४११ पर इसका उल्लेख किया गया है।

नवमालिका– (ना.पा.) यह नागानन्द की एक हास्य पात्र है। यह शेखरक (विट) की प्रेयसी है। जब उसका प्रेमी (शेखरक) विदूषक को अपनी प्रेयसी समझ कर उससे छेड़छाड़ करने लगता है तब वह नाराज हो जाती है। उसे मनाने के लिये विदूषक ब्राह्मण को उसके पैरों पर गिरने और मदिरा पिलाने के लिये बाध्य होना पड़ता है। बाद में वह भी उन दोनों की हंसी उड़ाती है।

नष्टहास्यम्– (ना.कृ.) एक प्रहसन जिसके लेखक हैं जीवन्यायतीर्थ (दे.) रचना काल १९वीं शताब्दी।

नहुषाभिलाषः–(ना.कृ.) यह एक ईहामृग है जिसकी रचना रामानुजह्नी ने की थी।

नागनाथ– (ना.का.) ये मदनविलास भाण (दे.) के लेखक हैं।

नागराज विजयम्– (ना.कृ.) यह हरिहरि द्विवेदी (दे.) का लिखा नाटक है जिसका नायक नागराज है। इसमें नागराज की शकों और कुषाणों पर विजय दिखलाई गई है। इसका प्रकाशन संस्कृत प्रतिभा में १९६० में हुआ था और इसका प्रथम अभिनय उज्जैन में किया गया था।

नागविस्तारम्– (ना.कृ.) जनमेजय के नागयज्ञ के विषय में जीवन्यायतीर्थ (दे.) का लिखा ६ अंकों का नाटक। इसमें सूर्य, काल, ब्रह्मा इत्यादि दिव्यपात्रों का भी उपादान किया गया है। इसमें गीतों की अधिकता है और गीतों द्वारा भावी घटनाओं की सूचना दी गई है। इसका अंगीरस अद्‌भुत है। अंगरस के रूप में वीर और शृङ्गार का भी उपादान किया गया है।

नागानन्द– (ना.कृ.) महाराज हर्ष (दे.) लिखित ५ अंकों का नाटक इसका कथानक भिन्न प्रकार का है यह एक कथानक को लेकर नहीं चलता। इसमें तीन कथानकों को एक मे जोड़ने का प्रयास किया गया है– जीमूतवाहन की शासनसत्ता से विरक्ति, जीमूतवाहन की प्रणय लीला और जीमूतवाहन का त्याग। तीनों कथानकों को एक में जोड़ने वाला तत्व है जीमूतवाहन का चरित्रचित्रण।

जीमूत वाहन विद्याधर राजकुमार है। वह भगवान् बुद्ध का अनुयायी है तथा बोधिसत्व की पदवी प्राप्त कर चुका है। उसके मित्र मित्रावसु की बहन मलयवती उससे प्रेम करती है क्योंकि स्वप्न में भगवती गौरी ने उसे उसके भावी पति का परिचय दे दिया है। जब वह स्पप्न की बात अपनी निकटचारिणी परिचारिका से कह रही होती है तब जीमूतवाहन उसे छिपकर सुन लेता है। मलयवती संगीत मे ही निपुण नहीं है वह सुन्दरी भी है और प्रथम दर्शन में ही जीमूतवाहन उस पर आसक्त हो जाता है। दूसरी ओर मलयवती भी हृदय से समर्पित हो जाती है। परन्तु दोनों को इस बात का विश्वास नहीं है कि दूसरा भी प्रेमाभिभूत है। दोनों वियोग वेदना से पीड़ित हैं। किन्तु जब मलयवती का भाई मित्रावसु बहन मलयवती के विवाह का प्रस्ताव लेकर आता है तब जीभूत वाहन उसे स्वीकार नहीं करता क्योंकि उसे पता नहीं है कि उक्त प्रस्ताव उसकी प्रेमिका के लिये ही है। मलयवती स्वयं को अपमानित समझकर आत्महत्या करना चाहती है। समय पर जीमूतवाहन पहुंच कर उसे बचाता है और वास्तविकता जानकर दोनों प्रणयबन्धन में बंध जाते हैं।

जब जीमूतवाहन और मलयवती उद्यान में दाम्पत्य जीवन के आनन्द में मग्न हैं उन्हें सूचना मिलती है कि मतंग की शत्रु सेना निकट आ गई है। जीमूतवाहन का त्यागभाव मुखर हो जाता है और वह कहता है कि हमारा केवल एक शत्रु है और वह है पाप। उसे आक्रान्ता शत्रु की परवा नहीं है।

समुद्रतट पर जीमूतवाहन की दृष्टि उन हड्डियों की राशि पर पड़ती है जो गरुड़ द्वारा खाये हुये नागों की हैं। नागराज और गरुड़ में एक समझौता हुआ है जिसके अनुसार एक नाग नित्य गरुड़ के भोजन के लिये जाता है। आज शंखचूड़ नाग की बारी है उसकी रोती हुई मां को जीमूतवाहन यह कहकर ढाढस बंधाता है कि आज स्वयं वह उसके पुत्र के स्थान पर गरुड़ के भोज्य के रूप में जायेगा। वध्यशिला पर गरुड़ आता है और भोजन के मध्य अर्धमृतावस्था में भी जब जीमूतवाहन को प्रसन्न चित्त देखता है तब अपनी गलती समझ जाता है। समय पर शंखचूड पहुंचकर वास्तविकता का परिचय देता है। तब तक देर हो चुकी होती है। नायक की मृत्यु हो जाती है; नायक के माता पिता और पत्नी आ जाते हैं और शोक मनाने लगते हैं। तभी गौरी प्रकट होकर नायक को जीवित कर देती है। और गरुड़ हड्डियों पर अमृत वर्षा कर सभी नागों को पुनरुज्जीवित कर देता है।

नाटक वसन्तोत्सव में खेलने के लिये लिखा गया था। इसमें तीनों विभिन्न कथायें नायक की एकता से जुड़ी हैं। तीनों में अङ्गीरस अलग अलग है। मुख्य कथा जीमूतवाहन द्वारा सर्पों को त्राण देना है; नागानन्द नाम का भी यही आशय है। इस कथा का उपादान बृहत्कथा से किया गया है। इसमें गौरी का भी महत्व बतलाया गया है; अतः यह बौद्ध नाटक नहीं हो सकता। इसकी शैली प्रसादगुणयुक्त एवं प्रवाहपूर्ण है।

कथानक का मूल स्वर वोधिसत्व जीमूतवाहन के आत्मवलिदान को लोकविश्रुत बनाने का प्रयत्न है। किन्तु कथानक की विभिन्न शाखाओं के मध्य बौद्धधर्म प्रचार की भावना प्रमुखता नहीं प्राप्त कर सकी है।

इस नाटक का प्रकाशन कई क्षेत्रों से हो चुका है। इस पर कई टीकायें हैं जिनमें प्रमुख हैं- आत्माराम, एन.सी. कविरत्न, शिवराम और श्रीनिवासाचार्य की टीकायें। इसके कथानक को लेकर इसी नाम का एक लघु काव्य भी लिखा गया है।

नाटवाट– (ना.कृ.) वासुदेवगयनीपुत्र यदुनन्दन लिखित एक प्रहसन जिसका प्रकाशन बम्बई से हुआ है।

नाटिका साहित्य– (ना.सा.) महाराज हर्ष लिखित दो नाटिकायें– प्रियदर्शिका और रत्नावली; विल्हण की कर्णसुन्दरी; मदनबालसरस्वती की विजयश्री (उपनाम पारिजातमञ्जरी); मथुरादास की वृषभानुजा; भवनुतचूडलिखित कौशलिका; रामचन्द्र लिखित वासन्तिका; कृष्णकविशेखरलिखित कुवलयावती; धर्मगुप्त का रामाङ्क; नारायण और विश्वनाथ कविराज इन दो कवियों द्वारा लिखित चन्द्रकला नाम की दो पृथक पृथक् नाटिकायें; विश्वनाथ भट्ट लिखित शृङ्गारवापिका।

कतिपय अन्य रचनायें अनङ्गवती, इन्दुलेखा, इन्दुमती, चन्द्रलेखा, पद्मावती, चन्द्रप्रभा (यह तालिका पूरी नहीं है।)

नाट्यदर्पण में उल्लिखित नाटक– (ना.सा.) रामचन्द्रगुणचन्द्र लिखित नाटयदर्पण में निम्नलिखित नाट्य कृतियों का उल्लेख किया गया है– अनङ्गवती नाटिका, अनङ्गशेखर, (शक्तिवासकुमार), अभिनवराघवम् (क्षीरस्वामी), इन्दुलेखानाटिका, उदात्तराघवम्, कृत्यारावणम्, कोशलिकानाटिका, कौमुदीमित्रानन्दम्, चित्रोत्पलावलम्बितकम् (अमात्यशंकुक), छलितरामम्, तरंगदत्तम्, तापसवत्सराजम्, दरिद्रचारुदत्तम्, देवीचन्दगुप्तम्, धर्मपालम्, पाण्डवानन्दम्, पार्थविजयम्, पुष्पदूषितकम्, प्रतिभानाटकम्, प्रयोगाम्युदयम्, बालिकावञ्चिकम्, भीमपराक्रमम्, मनोरमावत्सराजम् (भीमट) मल्लिकामकरन्दम, मायापुष्पकम्, राधाविप्रलम्भम् (भेज्जल) रोहिणीमृगाङ्कम्, नवमालिका, विलक्षदुर्योधनम्, सत्यहरिश्चन्द्रम्, स्वप्नदशाननम्, स्वप्नवासवदत्तम ।

नाट्यपरिशिष्ट– (ना.कृ.) कृष्णानन्दवाचस्पति (दे.) लिखित एक प्रतीकनाटक । इसे अन्तर्व्याकरण नाट्यपरिशिष्ट भी कहा जाता है । इसमें नाटकीय मनोरंजन के द्वारा व्याकरण के सिद्धान्तों की शिक्षा दी गई है । इसका प्रकाशन कलकत्ता से हुआ है ।

नाभागचरित– (ना.कृ.) गुरुप्रसन्न भट्टाचार्य (दे.) लिखित ६ अंकों का नाटक ।

नायक– (ना.पा.) अश्वघोष (दे.) के गणिका विषयक (दे.) रूपक का एक पात्र । यह उस नाटक का नायक है और इसकी संज्ञा नायक ही है । इसके साथ मागधवती (दे.) गणिका का शृङ्गार प्रथित किया गया है । सम्भवतः इसका नाम सोमदत्त है ।

नायर– (के.के.) ये त्रिवेन्द्रम के रहने वाले थे और इन्होंने आलस्यकर्मीयम् (दे.) शीर्षक प्रहसन लिखा था । इनका समय २०वीं शताब्दी है ।

नारद– (ना.पा.) (१) पुराणों के देवऋषि । यायावरता इनका विशेष गुण है । अवसर के अनुकूल किसी घटना में योगदान करना इनका व्यसन है । नाट्य के प्रसंग में हरिवंश पुराण जहां अन्धक की मृत्यु के बाद कृष्ण की प्रेरणा से नृत्य गीतादि मनोरंजन का आयोजन किया गया जिसमें कृष्ण का पराक्रमविषयक अभिनय भी सम्मिलित था; नारद का भी योगदान दिखलाया गया है जहां नारद ने हास्योत्पादकचेष्टाओं के द्वारा मनोरंजन किया था ।

(२) भास रचित **बालचरित** में एक पात्र । नाटक की प्रस्तावना के बाद सूत्रधार की सूचना के अनुसार नारद रंगमञ्च पर आकर कृष्ण के रूप में विष्णु भगवान के अवतार की सूचना देते हैं और कंस विनाश का उनका उद्देश्य बतलाते हैं तथा कृष्ण के दर्शन कर स्वर्ग लोक को चले जाते हैं । कंसवध के बाद भी वे पुनः आते हैं और गन्धर्वों तथा अप्सराओं के साथ कृष्ण की स्तुति कर पुनः देव लोक को चले जाते हैं ।

(३) **विक्रमोर्वशी–** के अन्तिम भाग में आकर विक्रम को सूचना देते हैं कि दैत्यों को पराजित करने केलिये उनकी आवश्यकता है और उसके पुरस्कार के रूप में उर्वशी सदा के लिये तुम्हें प्रदान कर दी गई है ।

(४) **अविमारक-** में जब कुरंगी का विदाह कहीं और होने को होता है तब नारद आकर कुरंगी के पिता को अविमारक की वास्तविकता बतलाते हैं जिससे कुरंगी का विवाह अपने प्रियतम सो हो जाता है।

नारायण- (ना.पा.) (१) **दूतवाक्यम्** (दे.) में कृष्ण के लिये प्रयुक्त। सभाभवन में जब कृष्ण ने अपना लोकोत्तर रूप प्रकट किया है नारायण के अस्त्र, वाहन इत्यादि मानवीकृत रूप में उपस्थित होते हैं।

(२) **बालचरित** (दे.) में कृष्ण के लोकोत्तर कृत्यों का चित्रण किया गया है। वहां कृष्ण को नारायण कहा गया है और कृष्ण की सेवा में नारायण के आयुध गोपवेष में उपस्थित होते हैं।

(३) **कौमुदीमित्रानन्द-** (दे.) में एक पात्र। ये मकरन्द के कारवां को अपना बतलाकर उस पर अपना अधिकार करना चाहता है किन्तु मित्रानन्द और वज्रवर्मा के आगमन से वह विवाद समाप्त हो जाता है।

(१) **नारायण-** (ना.का.) इनकी दो नाट्य कृतियां प्राप्त होती हैं- कैतवकलाचन्द्र और शृङ्गार विलसित। दोनों नाट्यकृतियां मैसूर के ओरियण्टल पुस्तकालय के पाण्डुलिपि-अनुभाग में प्राप्त की जा सकती है।

(२) **नारायण-** (ना.टी.का.) इन्होंने भगवदज्जुका (दे.) की टीका लिखी थी और उस टीका के उपक्रम में जो पद्य लिखा था उससे ज्ञात होता है कि इन्होंने भवभूति के नाटकों की भी टीका लिखी थी-

यश्चसौ भवभूतिसूक्तिजलधेरर्थौघयादोगण-
प्रक्षोभोत्थितभूतिभंजनकरीं व्याख्यातरीं निर्ममे।
तेनेमं विषमेतिवृत्तगहने बोधायनीये पुनः
नाट्ये गर्भितशास्त्रजृम्भितवचोगम्भीरगुम्फे कृता॥

नारायण तीर्थ- (ना.का.) कृष्ण लीलातरंगिणी के लेखक।

(१) **नारायण दीक्षित-** (ना.का.) मुकुटाभिषेकम् नाटक के लेखक। इनका समय २०वीं शताब्दी है।

(२) **नारायण दीक्षित-** (ना.का.) इनका लिखा अद्भुत पंजर (दे.) नामक नाटक प्रकाश में आया है। ये १८वीं शताब्दी के नाटककार हैं।

नारायणदेव- (ना.टी.का.) ये मालतीमाधव के टीकाकार हैं। पहले इन्होंने अपने गुरु त्रिपुरारी द्वारा ७वें अंक तक लिखी हुई टीका को पूरा किया। फिर पूरे नाटक की भी टीका लिखी। इनकी दूसरी टीका का उल्लेख मद्रास लायब्रेरी की त्रैवार्षिक खोज रिपोर्ट II २२२० में किया गया है। सम्भवतः १२वीं शताब्दी के तिरहुत के राजा नारायण ही टीकाकार नारायणदेव हैं।

नारायणनन्द– (ना.का.) ये १५वीं शताब्दी में उड़ीसा के निवासी थे। इनका लिखा रामचन्द्रानन्दम् नाम का नाटक बतलाया जाता है।

नारायणभट्ट– (ना.का.) इनका लिखा जानकीपरिणय (दे.) रूपक प्राप्त होता है जो कि विवाहविषयक रूपक है।

नारायणराव चिलुकुरी– (ना.का.) इनका लिखा विक्रमाश्वत्थामीयम् (दे.) शीर्षक व्यायोग प्रकाश में आया है। इसका रचनाकाल है २०वीं शताब्दी।

नारायण विलास– (ना.कृ.) यह विरुपाक्ष (दे.) का लिखा ५ अंकों का नाटक है। इसका उल्लेख सोर्सेज आफ विजयानगर हिष्ट्री सं. ५३ पर किया गया है। कैटेलागस कैटेलागोरम III ६३ और शेष गिरि शास्त्री रिपोर्ट १०६.९० में भी उल्लेख हुआ है।

(१) **नारायणशास्त्री–** (ना.का.) ये तंजौर जिले के नदु कावेरी (नादुकर्णी) स्थान के रहने वाले थे। ये जन्म-जात कवि कहे जाने के अधिकारी हैं। भट्टश्री और बाल सरस्वती की उपाधियां इन्हें प्राप्त थीं। कवि होने के अतिरिक्त ये एक प्रतिष्ठित वक्ता थे और मद्रास की अनेक सभाओं में इनके गीता प्रवचनों ने एक अच्छी छाप छोड़ी थी। इनके भाई श्रीनिवास दर्शन शास्त्र के उद्‌भट विद्वान थे और ब्रह्मविद्या नाम की एक पत्रिका का सम्पादन भी करते थे।

इनका साहित्य अत्यन्त विस्तृत और व्यापक है। आश्चर्यजनक विस्तार में ये विश्व के किसी भी कवि की प्रतिद्वन्दिता में खड़े हो सकते हैं। फिर भी आश्चर्यजनक बात यह है कि इनकी कोई रचना चलते हुये साहित्याभास की कोटि में नहीं आती। इनके साहित्य में काव्यगुणों और प्रतिभाचमत्कार की भी कमी नहीं है। इनके लिखे विशाल गद्य ग्रन्थों में किसी किसी में १८ खण्ड तक हैं। २४ सर्गों के विशाल महाकाव्य हैं; १२ भागों में नाट्यदीपिका नामक नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थ लिखा था; इनके साहित्य में आख्यायिकायें हैं; सारांश यह कि इनकी रचनाओं की साहित्य के प्रत्येक क्षेत्र में पुष्कलराशि विद्यमान है।

इनकी रचनाओं में ९२ नाटक भी हैं जिनमें १० छप चुके हैं। इनकी रचनाओं की प्रतिलिपियां इनके पुत्र के पास कोलेनगुडा के निकट अलंपल्लम में बतलाई जाती हैं। किन्तु उन पुस्तकों की प्राप्ति और सुरक्षा बहुत कठिन प्रतीत होती है। कृष्णमाचार्य ने अपने हिष्ट्री आफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर में लिखा है कि उन्होंने तथा मैन्युस्क्रिप्ट लायब्रेरी के क्योरेटर ने उन पाण्डुलिपियों को प्राप्त करने का भरसक प्रयत्न किया। उस क्योरेटर से ही उन्हें उन ग्रन्थों के उनके लेखक के पुत्र के पास होने की सूचना मिली थी। किन्तु उन ग्रन्थों को देखने के प्रयत्न में उन्हें सफलता नहीं मिली। उन ग्रन्थों में कुछ तिरुचिरापल्ली के नागवरम् राजप्पा अय्यर के पास भी हैं। अब उनकी कृतियां नाम शेष रह गईं प्रतीत होती हैं। उनके पुत्र से उन पुस्तकों के प्राप्त करने की कोई आशा

नहीं। उनके नाटकों में लगभग १० नाटक मद्रास और चिदम्बरम् से प्रकाशित हुये हैं जिनमें कतिपय हैं- मैथलीयम्, शर्मिष्ठाविजयम्, कलिविधूननम्, जैत्रजैवक्तृक और शूरमायूरम्. (परिचय यथास्थान देखिये)

नारायणशास्त्री के नाटक- अमृतमन्थनम्, अयश्चणकम्, अवकीर्णकौशिकम्, कनकाङ्गी, कलिविजयम्, कञ्चनमाला, कान्तिमती, काममञ्जरी, कृतकयौवतम्, क्रूरसापलम्, क्रान्तकौन्तेयम्, क्लिष्टकीचकम्, गूढकौशिकम्, चितिनिग्रहम्, चित्रदीपम्, तरङ्गिणी, त्रिपुरविजयम्, त्रिवदरम्, दृष्टरोहितम्, द्रुतवीरम्, धृतध्वजम्, धृष्टधौरेयम्, निरुद्धानिरुद्धम्, पुष्करराघवम्, प्रसन्नपार्थम्, प्राज्ञसामन्तम्, प्रौढपरन्तपम्, प्लुष्टखाण्डवम्, बद्धवाडवम्, बहुलवालिशम्, बालचन्द्रिका, बालपाहुणिकम्, विल्हणीयम्, ब्रह्मविद्या, भग्नाशोकम्, भट्टभासीयम्, भामाभिषङ्गम्, भीमरथी, मञ्जुलमन्दिरम्, मणिमेखला, मदालसा, मधुमाधवीयम्, मधुविधूननम्, मनोरमा, मन्दारमाला, मन्दारिकाविलासम्, महिलाविलासम्, महिषासुरवधम्, माकन्दमकरन्दम्, मारुतिमैरावणम्, मुक्तकेशी, मुक्तमन्दरम्, मुक्तमन्दारम्, मुक्ताप्रवालम्, मुक्तावली, मुग्धबोधनम्, मुग्धमन्थरम्, मुष्टपाथेयम्, मूढकौशिकम्, मृकण्डुमोदम्, मैथिलीयम्, मैथिलीविजयम्, रक्तसारसम्, रत्नमाला, राजीविनी, लवणलक्ष्मणम्, वरगुणोदयम्, विजययादवम्, विद्धवेधनम्, विद्राणमाधवम्, विश्ववीरव्रतम्, विष्टब्धचापलम्, वीरवैश्वानरम्, व्यत्यस्तवक्त्रम्, शरभविजयम्, शर्मिष्ठाविजयम्, शशिशारदीयम्, शिवदूतम्, शिशुविनिमयम्, शोभावती, श्येनदूतम्, सामन्तसौविदल्लम्, सीताहरणम्, सुदतीसमितिञ्जयम्, सुभद्राहरणम्, स्तब्धपौगण्डम्, स्वैरचारः और हारहैमवतम्।

(२) **नारायणशास्त्री-** (ना.का.) राधामङ्गलम् के निवासी वैद्यनाथ के पुत्र थे। ये तंजौर के निकट एक कालेज में संस्कृत के प्रोफेसर थे। १९३२ में इनकी मृत्यु हो गई थी। इन्होंने स्वयं कहा है कि इनकी लिखी १०८ पुस्तकें हैं जिनमें २४ नाटक हैं। उनमें तीन का उल्लेख प्राप्त होता है- महेश्वरोल्लास, उदारराघव और मुकुन्दमनोरथ। इनमें केवल अन्तिम संस्कृत कामधेनु में प्रकाशित हुआ है। अन्यों का पता नहीं चलता।

नारायण शास्त्री (कांकर) - (ना.का.) स्वातन्त्र्ययज्ञाहुति नाटक के लेखक। इनका समय २० वीं शताब्दी का मध्य भाग है। ये जयपुर के निवासी थे। इनका लिखा एक अन्य एकाङ्की 'नराणांनापितोधूर्तः' भी प्रकाश में आया है। इसका प्रकाशन १९५७ में मधुरवाणी पत्रिका में हुआ था।

नारायण स्वामी- (ना.का.) कैतवकलाचन्द्र भाण के लेखक।

नारायणाध्वरि- (ना.का.) कमलाकण्ठीरव (दे.) नाटक के लेखक। इनके पिता का नाम लक्ष्मीधर था और ये काञ्जीवरम के निकट ब्रह्मदेशम् के निवासी थे।

निगमानन्द चरितम्- (ना.कृ.) जीवन्याय तीर्थ लिखित ७ अंकों का नाटक। इसका प्रकाशन १९५२ में किया गया। इसका प्रथम अभिनय राममोहन लायब्रेरी कलकत्ता के

हाल में किया गया था।

नित्यानन्द- स्मृतितीर्थ- (ना.का.) ये बंगाल के निवासी २० वीं शताब्दी के कवि हैं। इनके पिता स्मृतिरत्न रामगोपाल और पितामह मधुसूदन थे। ये गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज कलकत्ता के भारती भवन में प्राध्यापक थे। इनके दो चार नाटक प्रकाश में आये हैं- प्रह्लादविनोदनम् तपोवैभवम्, मेघदूतम् और सीतारामाविर्भावम्।

नित्यानन्द भट्टाचार्य- (ना.का.) ये १९वीं २० वीं शताब्दी के बंगाली कवि हैं। इनकी कालिदासनाटकम् नामक एक नाट्यकृति प्रकाश में आई है।

निपुणक- (ना.पा.) (१) **मुद्राराक्षस** में चाणक्य का गुप्तचर। इसने चन्दनदास के यहां राक्षस की अंगूठी पाई थी और चाणक्य को सूचना दी थी कि राक्षस चन्दन दास के यहां अपना परिवार छोड़ गया है। इसकी दी हुई अंगूठी से ही राक्षस को पकड़ने में चाणक्य सफल हुआ था।

(२) **हम्मीरमदमर्दन** (दे.) में एक गुप्तचर जिसकी सूचनाओं ने वास्तुपाल की राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

निपुणिका- (ना.कृ.) मद्रास निवासी एल.बी. शास्त्री (दे.) लिखित एक हास्यप्रधान नाटिका।

निपुणिका- (ना.पा.) (१) **मालविकाग्निमित्र** की एक दासी। वह हास्य में निपुण है और विदूषक को दण्ड देने के लिये उस पर टेढा मेढा डंडा इस रूप में फेंक देती है कि वह उसे सांप समझने लगता है।

(२) **विक्रमोर्वशीय** (दे.) में एक पात्र। यह एक निपुण दासी है और बातचीत की निपुणता से ही विदूषक से अनेक रहस्य उगलवा लेती है।

निरुद्धानिरुद्धम्- (ना.कृ.) (१) नारायण शास्त्री लिखित ५ अंकों का नाटक।

निर्दोष दशरथ- (ना.कृ.) यह राम विषयक लुप्त नाटकों में एक है। भोजराज ने शृङ्गार प्रकाश में अनेकशः इसका उल्लेख किया है जैसे- प्रबन्ध में दोषों का निराकरण कर रस की रक्षा किस प्रकार की जाती है इसके उदाहरण के रूप में बतलाया है कि जैसे निर्दोष दशरथ में माया के कैकेयी और दशरथ राम को वनवास देते हैं- माता पिता नहीं। भोजराज ने इसका दो रूपों में उल्लेख किया है- स्वतन्त्रनाटक के रूप में और बाल रामायण के एक भाग के रूप में। ज्ञात नहीं होता कि इस नाटक की वास्तविक स्थिति क्या थी।

निर्भय भीम- (ना.कृ.) जैनाचार्य हेमचन्द्र के शिष्य रामचन्द्र लिखित एक अनुपलब्ध व्यायोग। इसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम III १०९ में किया गया है।

निवेदितनिवेदितम्- (ना.कृ.) भगिनी निवेदिता के चरित्र को लेकर रमा चौधरी द्वारा लिखा नाटक। इसका विभाजन अंकों के स्थान पर दृश्यों में किया गया है। इसमे

कुल मिलाकर वारह दृश्य हैं।

निष्किञ्चन यशोधरम्– (ना.कृ.) यतीन्द्र विमल (दे.) लिखित ७ अंकों का नाटक। इसमें गौतम बुद्ध की पत्नी यशोधरा का चित्रण किया गया है। वह दण्डपाणि की पुत्री है जिसे गौतम बुद्ध स्वयंवर में जीतते हैं। १३ वर्ष के दाम्पत्य जीवन के बाद उनके राहुल पुत्र का जन्म होता है। उसी वर्ष गौतम आत्मशान्ति की खोज में घर से निकल पड़ते हैं। यशोधरा स्वयं भी साधना में लीन हो जाती है। सात वर्ष की साधनामय खोज के बाद जब सिद्धार्थ बनकर गौतम आते हैं तब वह गौतम से भिक्षुणी संघ बनाने की प्रार्थना करती है और उनके इस प्रकार के संघ बनाने पर वह भिक्षुणी रूप में उसमें शामिल हो जाती है। शुद्धोदन के राज्यग्रहण के आग्रह को वह यह कहकर ठुकरा देती है कि सन्यासी की पत्नी का इस प्रकार राज्य ग्रहण करना उचित नहीं है। ७८ वर्ष की आयु में स्वामी में ही विलीन होने की कामना से वह अलौकिक सत्ता में विराम लेती है।

नीतिदेवी– (ना.पा.) यह मोहराज पराजय (दे.) की एक पात्र है। यह सच्चरित्र की पत्नी और कीर्तिमञ्जरी की मां है। नाटक के कथानक में इसका भी यत्किञ्चित योगदान है।

नीर्पाजेभीम भट्ट– (ना.का.) ये दक्षिण कर्णाटक के निवासी थे। इनका जन्म २० वीं शताब्दी के प्रारम्भ में हुआ था। इनके लिखे दो नाटक वर्तमान राजनैतिक घटनाओं पर आधारित हैं– काश्मीरसन्धानसमुद्यमम् में काश्मीर समस्या और हैदराबादविजयम् (दे.) में हैदराबाद के भारत में विलय की समस्या का चित्रण किया गया है।

(१) **नीलकण्ठ–** (ना.का.) एक प्रसिद्धि के अनुसार इन्होंने मृच्छकटिक में कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तन किये थे। अन्तिम दृश्य में जहां चारुदत्त को मृत्यु दण्ड दिया जाना है मूल नाटक में चारुदत्त की पत्नी पुत्र और विदूषक को उपस्थित नहीं किया गया है। यह एक कमी है। सम्भवतः इसका कारण यह है कि नाटक के अत्यधिक विस्तार में इससे कुछ कमी आई है। नीलकण्ठ ने इनको प्रस्तुत कर इस कमी की पूर्ती की है। ये सब आत्महत्या करने के लिये प्रस्तुत है जबकि चारुदत्त उन्हें बचाता है।

इस परिवर्तन का उल्लेख स्टेञ्जलर के संस्करण में पृष्ठ ३२३ पर किया गया है और विल्सन ने १.१७१ पर इसका उल्लेख किया है। कीथ ने इस परिवर्तन के विषय में अपने इतिहास में लिखा है।

(२) **नीलकण्ठ–** केरल के नम्बूद्रि घराने में इनका जन्म १७वीं शताब्दी में हुआ था। इनका लिखा कमलिनी कलहंस शीर्षक नाटक पाया जाता है।

(३) **नीलकण्ठ–** (ना.का.) भंजमहोदय के लेखक। समय १८वीं शताब्दी। क्योंझर (उड़ीसा) के राजा बलभद्रभंज एवं भंजमहोदय ने इसका सम्मान किया था।

नीलकण्ठ दीक्षित– (ना.क्रा.) प्रसिद्ध अप्पय दीक्षित के वंश में नारायण और भूमि देवी के पुत्र नीलकण्ठ दीक्षित के नाम से प्रसिद्ध थे। इनकी शिक्षा गोविन्द दीक्षित के पुत्र वेङ्कटेश्वर मखि के अन्तेवासित्व मे हुई थी। इनकी प्रतिभा बहुमुखी थी और इन्होंने चम्पू, महाकाव्य और अनेक छोटे काव्य लिखे थे तथा इनके पूर्वज अप्पय दीक्षित लिखित चित्रमीमांसा का पण्डितराज ने जो खण्डन किया था उसका उत्तर देने के लिये इन्होंने चित्रमीमांसादोषाधिकार की रचना की थी। इनका ७ अंकों का नलचरित (दे.) नाटक भी प्रसिद्ध है जिसमें नलकथा का चित्रण किया गया है। इस नाटक की व्याख्या अच्चा दीक्षित ने लिखी थी जो इन्हीं के चार भाइयों में एक थे। इनका लिखा ८ अंकों का एक दूसरा नाटक गंगावतरण भी प्रसिद्ध है।

कवि के रूप में नीलकण्ठ दीक्षित का अत्यधिक सम्मान किया गया है, इनकी कल्पनाशक्ति, भावाभिव्यक्ति और प्रसादगुणपूर्ण स्वाभाविक भाषा इनकी कविता की अन्यतम विशेषतायें हैं। इनका समय १७वीं शताब्दी का मध्य भाग है।

(२) **नीलकण्ठ दीक्षित** के नाम पर कतिपय अन्य रचनायें भी प्राप्त होती हैं। कल्याण-सौगन्धिक नाटक (दे.) प्राप्त हुआ है जो नीलकण्ठ का बतलाया जाता है। ये नीलकण्ठ अप्पय दीक्षित के वंश में उत्पन्न नीलकण्ठ से भिन्न थे। कल्याणसौगन्धिक के लेखक नीलकण्ठ का लिखा काव्योल्लास नामक एक अलंकार ग्रन्थ भी पाया जाता है।

नीलकण्ठ पन्नसेरी– (ना.क्रा.) दे. पन्नसेरी नीलकण्ठ।

नीलाद्रिचन्द्रोदय– (ना.कृ.) इसकी रचना पुरी के राघवाचार्य ने की थी। इसका प्रकाशन काञ्चीवरम् में हुआ। इसके आमुख में उड़ीसा के मुकुलदेव का उल्लेख किया गया है।

नीलापरिणय– (ना.कृ.) (१) इसके लेखक धर्मराज के पुत्र वेङ्कटेश्वर हैं। इसका उल्लेख तंजौर पुस्तकालय के कैटेलाग खण्ड ८ सं. ३४१५ में किया गया है। इसका कथानक काल्पनिक है। नायक हैं– राजगोपाल नाम से द्वारका में रहने वाले कृष्ण और प्रतिनायक हैं स्थूलाक्ष। नायक के सहायक हैं महर्षि गोप्रलय और प्रतिनायक का सहायक है मायाधर राक्षस। गरुड़ की कृपा से गोप्रलय को एक मणि एवं एक दर्पण मिलता है जिसे वह सौराष्ट्र नरेश के उद्यान में स्थापित कर देता है। किन्तु मायाधर राक्षस स्थूलाक्ष के लिये उसे ले उड़ता है। चोल राजकुमारी चम्पकमंजरी राजगोपाल पर अनुक्त है जिसे स्थूलाक्ष के लिये राक्षस एक अंजन के माध्यम से अदृश्य कर देता है। समझा जाता है कि राक्षस उसे खा गया है। किन्तु अदृश्य रूप में ही वह नायक का आलिङ्गन कर लेती है जिससे नायक वास्तविकता समझ कर उसके मस्तक पर अंजन मल कर उसे पुनः स्वरूप में लाता है और दोनों का विवाह हो जाता है।

(२) इसी नाम का एक अन्य नाटक कैटेलागस कैटेलागोरम सं. १.३०२ में भी

उल्लिखित है जिसका रचनाकार द्रोद्यवत् को बतलाया गया है। विवाह विषयक नाट्यकृतियों में इसका उल्लेख है; किन्तु इसका कुछ अन्य परिचय प्राप्त नहीं होता।

नृत्यगोपालकविरत्न- (ना.का.) ये बीसवी शताब्दी के बंगाली नाटककार हैं। इनका लिखा माधवसाधनम् नाटक बतलाया जाता है। रामावदान और दर्पशातन नाम के इनके दो और नाटक प्राप्त होते हैं।

नृत्याचार्य- (ना.पा.) मालविकाग्निमित्र में नृत्य कला का शिक्षक। इसने मालविका को नृत्यकला की शिक्षा दी जिससे वह प्रतियोगिता में प्रथम स्थान की अधिकारिणी सिद्ध हुई। इसी प्रतियोगिता में मालविका को राजा अग्निमित्र के सम्मुख प्रस्तुत कर दिया गया। इस नृत्याचार्य ने कई अन्यों को भी नृत्य में प्रवीण बनाया।

(१) **नृसिंह-** (ना.का.) इनका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम् खण्ड ३ सं. ३८ पर किया गया है। ये नञ्जराज यशोभूषण के लेखक हैं। इनका चन्द्रकला परिणय नाम का एक नाटक भी है। इन्होंने प्रस्तावना में काशीपति की प्रशंसा की है। सम्भवतः ये वही काशीपति हैं जिन्होंने मुकुन्दानन्द भाण की रचना की थी।

(२) **नृसिंह-** (ना.का.) भरद्वाज गोत्र के वेङ्कटकृष्ण के पुत्र थे तथा इन्होंने १८वीं शताब्दी के प्रारम्भ में अनुमितिपरिणय (दे.) नामक नाटक लिखा था।

(३) **नृसिंह-** (ना.का.) इनका लिखा जनकजानन्दन प्रकाश में आया है जो ओरियण्टल लायब्रेरी मैसूर के संस्कृत पाण्डुलिपि अनुभाग सं. २७६ पर संकलित किया गया है।

नृसिंहकवि- (ना.का.) ये मैसूर निवासी १८वीं शताब्दी के नाटककार हैं। इन्होंने अनेक गुरुओं से शिक्षा प्राप्त की थी। इनके पिता सुधी मणि ने स्वयं इन्हें ज्ञान विज्ञान की शिक्षा दी थी। मैसूर के राजाधिकारी नंजराज का इन्हें आश्रय प्राप्त था। ये अभिनव कालिदास के नाम से प्रसिद्ध थे। इनका लिखा चन्द्रकला कल्याण नाटक प्राप्त होता है।

नृसिंहराज- (ना.का.) ये समुद्रबन्ध यज्वन् के पुत्र थे। इनकी लिखी दो टीकायें प्राप्त होती हैं- सेतुबन्ध की टीका और कर्पूरमञ्जरी की टीका।

(१) **नृसिंहविजय-** (ना.कृ.) इस अप्राप्य रचना का उल्लेख शारदातनय के भाव प्रकाशन में किया गया है। यह प्रेङ्खण नामक उपरूपक का उदाहरण दिया गया है।

नृसिंहविजय- (ना.कृ.) अज्ञातनामा कवि लिखित व्यायोग। इसका उल्लेख शारदातनय के भाव प्रकाशन में किया गया है। इसकी प्रति मद्रास के प्राच्य पुस्तकालय में सुरक्षित है और पाण्डुलिपियों की विवरणात्मक ग्रन्थ सूची (XXI ८४१०) तथा ट्रायेनियल ग्रन्थ सूची (I ८९१) में इसका उल्लेख किया गया है।

नृसिंहसूरि- (ना.का.) इनका वसन्तभूषण भाण प्रकाश में आया है। ये बंगीपुर के निवासी थे और परांकुशपुर इनका मूल निवास था जो चिंगलपुर में अवस्थित है।

नृसिंह हारित- (ना.का.) शृङ्गारस्तवक (दे.) भाण के लेखक।

नेमभार्गव– (ना.पा.) ऋग्वेद ७.११० सूक्त नेमभार्गव इन्द्र संवाद विषयक है। नेमभार्गव इन्द्र की स्तुति करते हैं। इन्द्र प्रसन्न हो जाते हैं और स्तुति का उत्तर देते हैं। यह भी ऋग्वेद के संवाद सूक्तों का एक नमूना है।

नैध्रुव व्यङ्कटेश– (ना.का.) ये मंसूर के धर्मराज के पुत्र थे। तंजौर नरेश सरफोजी भोंसले ने इनका सम्मान किया था। इन्होंने एक चम्पू की रचना की थी। इनके लिखे नाटक हैं– राघवानन्दम् (दे.) नीलापरिणय (दे.) सभापतिविलासम् (दे.)

नैषधानन्द– (ना.कृ.) यह क्षेमीश्वर लिखित नाटक है। इसमें राजानल की प्रसिद्ध कथा नाट्यवृत्त के रूप में प्रस्तुत की गई है। कीथ के अनुसार इसको साहित्य जगत में सम्मान प्राप्त नहीं हुआ क्योंकि इसमें काव्यसौन्दर्य का अभाव है। किन्तु इसके कुछ पद्य अच्छे बन पड़े हैं। पेटर्सन ने बम्बई में संस्कृत पाण्डुलिपियों की जो खोज की थी उसकी रिपोर्ट सं. III २१३४० पर इसका उल्लेख किया गया है।

न्यायसभा– (ना.कृ.) यह रंगनाथ ताताचार्य (दे.) लिखित नाट्यकृति है। इसका रचनाकाल २०वीं शताब्दी का प्रथम भाग है। सम्भवतः इसका प्रकाशन इसके लेखक की अन्य कृतियों के साथ आन्ध्रपरिषत्पत्रिका कलकत्ता से हुआ है।

प

पंचकन्या– (ना.कृ.) एक लघु प्रतीक नाटक। बीसवीं शताब्दी के सुरेन्द्रमोहन (दे.) ने इसकी रचना की। इसमें शिक्षा, भक्ति, सेवा, प्रीति ये पांच कन्यायें हैं जो परस्पर झगड़ती रहती हैं और अपनी महत्ता एवं वरिष्ठता प्रतिपादित करती रहती हैं। अन्त में निर्णय हो जाता है कि सभी का अपना महत्व है, कोई किसी से कम नहीं। इसका प्रकाशन मञ्जूषा में हो गया था।

पञ्चरात्र– (ना.कृ.) भास (दे.) लिखित ३ अंकों का नाटक जिसे समवकार की श्रेणी में सम्मिलित किया जा सकता है। इसका कथानक महाभारत पर आधारित है। किन्तु कवि कल्पना का भी आश्रय लिया गया है। पाण्डव १२ वर्ष का कार्यकाल पूरा करके १३वें वर्ष विराट के यहां अज्ञातवास कर रहे हैं। दुर्योधन पाण्डवों को कुछ भी देने को तैयार नहीं हैं। द्रोण को महायुद्ध और महाविनाश की सम्भावना दिखलाई देती है जिससे वे चिन्तित हैं और उस परिस्थिति को टालना चाहते हैं। उनके परामर्श पर दुर्योधन यज्ञ करता है और द्रोण को गुरुदक्षिणा देना चाहता है। द्रोण गुरुदक्षिणा में पाण्डवों को आधा राज्य देने को कहते हैं। दुर्योधन इस शर्त पर तैयार हो जाता है कि पाण्डवों का पता ५ दिन में ही (पांच रात्रियों तक) चल जाना चाहिये। (सम्भवतः इसमें भी दुर्योधन की दुरभि सन्धि है। उसके हिसाब में अज्ञातवास के सम्भवतः ५ दिन शेष रह गये हैं और इन

दिनों के अन्दर पता चल जाने पर वे द्यूत की शर्तों के अनुसार पाण्डवों को पुनः वनवास के लिये वाध्य कर सकेंगे।) अब द्रोण और भीष्म चिन्तित हैं कि किसी प्रकार ५ दिन में पाण्डवों का पता चल जाना चाहिए जिससे गुरुदक्षिणा के रूप में पाण्डवों को आधा राज्य दिलवाने की शर्त पूरी की जा सके क्योंकि उनके मत में ज्योतिष की गणना के अनुसार अज्ञातवास का समय पूरा हो चुका है।

यज्ञ में विराट नहीं आये हैं कयोंकि वे उस समय कीचकवध का शोक मना रहे हैं। कीचकवध से यह अनुमान लगा लिया जाता है कि भीम ने ही कीचक का वध किया होगा। इससे समझा जाता है कि पाण्डव लोग वहीं कहीं आस पास ही होंगे। यज्ञ में अनुपस्थित रहने के अपराध का दण्ड देने का बहाना लेकर भीष्म के परामर्श से कौरवगण विराट के पशुओं को खदेड़ लेते हैं। किन्तु युद्ध व्यर्थ जाता है। अभिमन्यु का विवाह विराट की पुत्री से हो जाता है। अन्त में सारथि से समाचार मिलता है कि उस युद्ध में भीम और अर्जुन ने भाग लिया था। फिर भी दुर्योधन वचन पर दृढ़ रहता है।

इस नाटक में यज्ञदक्षिणा के रूप में आधा राज्य देने की और ५ रात्रियों की कल्पना सर्वथा नवीन है। नाटक में नृत्य की भी योजना की गई है। गुरु के प्रति श्रद्धा और गुरु की कर्तव्यपरायणता का अच्छा निदर्शन प्राप्त होता है। अनेक प्रमुख पात्रों में प्रत्येक को कुछ न कुछ फल प्राप्ति हो जाती है। भासनाटकचक्र में इसका प्रकाशन हो चुका है। इस नाटक में नायक जैसे एक से अधिक पात्र हैं जो न्यूनाधिक रूप में सभी पुरुषार्थ लाभ करते हैं।

डव्लू.डी. ऊर्ध्वरिशे द्वारा इसका सानुवाद प्रकाशन १९२० ई. में इन्दौर से हो गया था।

(१) **पञ्चवाणविजय–** (ना.कृ.) यह युवराज (दे.) लिखित एक नाट्य रचना है। इसकी प्रति विजयगापट्टम की आर्ष लायब्रेरी से प्राप्त की जा सकती है।

(२) **पञ्चवाणविजय–** (ना.कृ.) रंगाचार्य लिखित भाण। कैटेलागस कैटेलागोरम १.३१५ में इसका उल्लेख किया गया है। इसका प्रकाशन मद्रास से हो गया है। इसको पंचवाण विलास की भी संज्ञा दी गई है।

(३) **पंचबाणविजय–** (ना.कृ.) यह एक भाण है जिसके रचनाकार रंगराय (दे.) हैं। इसका प्रकाशन मद्रास और कलकत्ता से हो चुका है। मद्रास की ओरियण्टल लायब्रेरी के पाण्डुलिपि कैटेलाग में इसका सं. II २०६८ पर उल्लेख किया गया है।

पञ्चवाण विलास– (ना.कृ.) यह एक भाण है जिसके कर्ता का पता नहीं। इसका संकलन कैटेलागस कैटेलागोरम सं. I ३१५ पर किया गया है।

पंचानन– (ना.का.) अमरमङ्गलम् एवं कलंकमोचन (दे.) नाटकों के लेखक। इनका जन्म भटपुरा, (२४ परगना जिला) में गौतम गोत्र में हुआ था। इनके पिता नन्दलाल विद्यारथ

थे। इन्हें तर्क वागीश और महामहोपाध्याय की उपाधियां प्राप्त थीं। अन्त में ये वनारस में रहने लगे थे। इन्हें प्रूफरीडिंग और सम्पादन का अच्छा अनुभव था क्योंकि ये बंगवासी प्रेस में कार्यरत रहे थे। शिक्षा और संस्कृत साहित्य प्रचार की दिशा में भी इनका कार्य स्तुत्य रहा था। कुछ दिनों राजनीति के बन्दी भी रहे थे। उक्त नाटक के अतिरिक्त इन्होंने पार्थाश्वमेध एवं सर्वमंगलोदय नामक एक-दो काव्य भी लिखे थे इन्होंने कई दार्शनिक कृतियों की व्याख्या भी लिखी थी। इनका समय वीसवीं शताब्दी का पूर्वार्ध है। इनके प्रसिद्ध पूर्वजों में कान्यकुब्ज अल्लभट्ट का नाम लिया जाता है।

पञ्चायुधप्रपञ्च– (ना.कृ.) त्रिविक्रम लिखित भाण। कैटेलागस कैटेलागोरम I ३१७ और II २६१ में उल्लिखित। इसकी रचना शक संवत् १७२७ (सन् १७९५) में की गई थी।

पंचालिकारक्षणम्– (ना.कृ.) पेरीकाशीनाथ शास्त्री लिखित नाटक।

पण्डितचरितप्रहसनम्– (ना.कृ.) मधुसूदन काव्यरत्न लिखित प्रहसन।

पद्मक– (ना.पा.) वत्सराज (दे.) लिखित समुद्रमन्थन (दे.) का एक पात्र।

(१) **पद्मनाभ**– (ना.का.) चन्द्रिका जनमेजय (दे.) नामक पौराणिक कथानक पर आधारित नाटक के लेखक। इनका जीवन वृत्त सर्वथा अज्ञात है। जार्जपञ्चम के जीवन के विषय में जार्जदेवचरित काव्य एवं पवनदूत नामक काव्य लिखने वाले जी.वी. पद्मनाभन से सम्भवतः ये भिन्न थे।

(२) **पद्मनाभ**– (ना.का.) कोटिपल्ली के तेलुगु ब्राह्मण भरद्वाज गोत्रीय लक्ष्मण दीक्षित और वेङ्कटाम्बा दीक्षित के पुत्र थे। इनकी दो नाट्यकृतियां प्राप्त होती हैं– त्रिपुरविजय व्यायोग (दे.) और लीलादर्पण भाण (दे.) उपनाम मदनलीलादर्पण। इनका समय १९वीं शताब्दी है।

पद्मनाभाचार्य– (ना.का.) ध्रुवतापस (दे.) एवं गोवर्धन विलास (दे.) के लेखक। इनका समय १९वीं और २०वीं शताब्दी है। ये कोयम्बटूर में एडवोकेट थे। वहीं से इनके नाटक प्रकाशित हुये थे।

पद्मप्राभृतक– (ना.कृ.) शूद्रक (दे.) लिखित भाण जिसका संकलन चतुर्भाणी में किया गया है। यह नाटक काव्य कला का एक अच्छा नमूना है और संस्कृत की सर्वोत्तम रचनाओं में इसकी गणना की जा सकती है। सखी सुरतसमय में मसले हुये पद्म को प्रेषित करने का उपदेश देती है। इसी आधार पर इस भाण का नामकरण हुआ है।

पद्मसुन्दर– (ना.का.) १६वीं शताब्दी के नाटककार। अकवर वादशाह ने इन्हें सम्मानित किया था। ये उनके दरवार के पण्डित थे। इनका कार्यस्थल मुजफ्फरनगर का चरथावर (चरथावल) था; किन्तु इन्हें जोधपुर के महाराजा मालदेव से सम्मान प्राप्त हुआ था। इनकी रचनाओं में काव्य, महाकाव्य, कोषग्रन्थ, ज्योतिष के अतिरिक्त ज्ञानचन्द्रोदय

(दे.) नामक नाटक भी था।

(१) **पद्मावती**– (ना.पा.) भास (दे.) लिखित स्वप्नवासवदत्तम् (दे.) की एक प्रमुख पात्र। यह मगध की राजकुमारी है। इसके पास वासवदत्ता को धरोहर के रूप में रक्खा जाता है और यह अपने उत्तरदायित्व का पूर्ण रूप से निर्वाह करती है। यह शीलवती सुन्दरी है। तपस्वियों को जो भी अभीष्ट हो वह सब प्रदान करने की घोषणा करती है और जब ब्राह्मण अपनी बहन को धरोहर के रूप में स्वीकार करने की प्रार्थना करता है तब उसे सहर्ष स्वीकार कर लेती है। वह अपनी सौत के प्रति भी उदार है और मृत सौत के प्रति पति की वियोग व्यथा देखकर वह उसकी सच्चाई की प्रशंसा ही करती है तथा समय आने पर उस सौत को भी सहर्ष स्वीकार कर लेती है।

(२) **पद्मावती**– (ना.पा.) अनङ्गहर्षमात्रराज (दे.) के नाटक तापसवत्सराज की प्रमुख पात्र। यह एक प्रेमिका है, सौन्दर्य की लोभिनी है और उदयन (दे.) के चित्र को देखकर उसे हृदय दे देती है। वह प्रेम के लिये अपना सर्वस्व त्याग देती है।

पद्मावती– (ना.कृ.) अज्ञातनामा कवि की लिखी एक नाटिका। इसका उल्लेख सिंगभूपाल के रसार्णवसुधाकर में किया गया है।

पद्मावती– (ना.स्थ) यह एक प्रादेशिक नगर है जहां मालतीमाधव की घटना घटित हुई थी।

पद्मावती परिणय– (ना.कृ.) अज्ञातनामा कवि लिखित प्रकरण जिसका उल्लेख शारदातनय के भाव प्रकाशन में किया गया है।

पद्मिनीपरिणय– (ना.कृ.) सुन्दर राजआचार्य (दे.) लिखित एक नाट्यकृति।

पयोधिमन्थन– (ना.कृ.) एक प्रहसन। सिंगभूपाल के रसार्णव सुधाकर में इसका उल्लेख किया गया है।

परमानन्दसेन– (ना.का.) दे. कवि कर्णपूर; ये बंगवासी थे।

परमानन्ददादम्भट– (ना.का.) लिंगादुर्गभेदन (दे.) नाटक के लेखक।

परमार्थतत्त्व– (ना.पा.) प्रबोधचन्द्रोदय (दे.) प्रतीक नाटक का एक पात्र। इनके वंशज ही इस प्रतीक नाटक के प्रतिनिधि कथानक पात्र हैं जिनका परस्पर संघर्ष कथानक का मूलाधार है।

(१) **परशुराम**– (ना.पा.) भास (दे.) कृत कर्णभार (दे.) में कर्ण शल्य को अस्त्र प्राप्ति की कथा सुनाता है कि किस प्रकार परशुराम से छल पूर्वक उन्होंने अस्त्र विद्या प्राप्त की थी और छल के प्रकट होने पर परशुराम ने उन्हें शाप दे दिया था कि समय आने पर वे अस्त्र उसका साथ नहीं दे सकेंगे। समय आने पर परशुराम का शाप सत्य सिद्ध हुआ।

(२) **परशुराम**– (ना.पा.) भवभूति (दे.) रचित महावीरचरित (दे.) में परशुराम एक उद्धत वीर ब्राह्मण है। वे रावण के मन्त्री माल्यवान के वहकावे पर धनुर्भग का बदला

लेने के लिये जनकपुर आते हैं। वे राम को द्वन्द्व के लिये ललकारते हैं। वशिष्ठ, शतानन्द विश्वामित्र, जनक इत्यादि इन्हें शान्त करने की चेष्टा करते हैं। पर वे नहीं मानते। राम के साथ उनका संघर्ष होता है। और वे पराजित होकर राम की विजय स्वीकार कर लेते हैं। तथा राम की बन्दना करते हैं।

(३) **परशुराम**– (ना.पा.) अनर्घराघव (दे.) में धनुर्भंग एवं राम विवाह के बाद परशुराम जनकपुरी आते हैं। राम के साथ पहले उनका वाग्युद्ध चलता है। राम में नम्रता है। किन्तु राम के हितैषी उस विरोध को बढ़ाने के लिये पर्दे के पीछे से सहयोग देते हैं। राम के मत में परशुराम की क्षत्रिय विनाश की यशोगाथा का युग समाप्त हो गया है। अन्त में दोनों का सङ्घर्ष होता है और उसकी आवाज सुनाई पड़ती है। इसके बाद दोनो योद्धाओं का मधुर सम्बन्ध स्थापित हो जाता है।

(४) **परशुराम**– (ना.पा.) राजशेखर के बालरामायण में पहले रावण परशुराम से सीता प्राप्ति में सहायता प्राप्त करने की प्रार्थना करता है किन्तु उसे निराश होना पड़ता है। राम विवाह के बाद परशुराम स्वयं मिथिला आते हैं। वहां राम से उनका द्वन्द्व होता है और अन्त में राम को सफलता मिलती है।

(५) **परशुराम**– (ना.पा.) प्रसन्नराघव में परशुराम द्वारा विपरीत सन्देश भेजे जाने पर भी विश्वामित्र की आज्ञा से राम शिव धनुष चढ़ा कर तोड़ देते हैं। तब राम का सीता से विवाह हो जाता है। उसके तत्काल बाद परशुराम मिथिला में आ जाते हैं। राम और लक्ष्मण से उनका कटु वचनों का आदान प्रदान होता है। जनक, विश्वामित्र इत्यादि वयोवृद्ध इस संघर्ष को रोकना चाहते हैं। परशुराम द्वारा विश्वामित्र का अपमान राम को सह्य नही होता और उनका युद्ध होता है। राम विजयी होते हैं। किन्तु परशुराम के चरणों पर गिर कर क्षमा एवं आशीर्वाद मांगते हैं।

(६) **परशुराम**– (ना.पा.) महानाटक में परशुराम का चरित्र विवाह से पहले आता है। राम लक्ष्मण और परशुराम का संवाद विशेष कथोपकथन और सौन्दर्य के साथ प्रस्तुत किया गया है। अन्य नाटकों की भांति इसमें भी परशुराम धीरोद्धत नायक है जो आत्मश्लाघी, प्रचण्ड, चंचल और अंहकारी है।

परशुराम नारायण पाटणकर– (ना.का.) इनका समय १९वीं शताब्दी का अन्त एवं २०वीं शताब्दी का प्रारम्भ है। इन्होंने भीष्म द्वारा शरशय्या ग्रहण करने के बाद से लेकर जयद्रथ वध तक के महाभारत के कथाभाग को लेकर 'वीरधर्म दर्पणम्' (दे.) शीर्षक नाटक की रचना की थी जो १९०७ में बनारस से प्रकाशित हुई थी।

परशुरामविजयम्– (ना.कृ.) यह उड़ीसा के कपिलेश्वर महाराज की रचना बतलाई जाती है। इसका रचनाकाल १४वीं शताब्दी है।

पराशरभट्ट– (ना.का.) लक्ष्मी स्वयंवर के लेखक (दे. लक्ष्मी स्वयंवर ६)।

परिणाम– (ना.कृ.) चूडामणि भट्टाचार्य लिखित ७ अंकों का नाटक। इसमें यूरोपीय सभ्यता के अन्धानुकरण से उत्पन्न दुष्परिणामों का चित्रण किया गया है। इसका रचनाकाल २०वीं शताब्दी है। इसका प्रकाशन काठमांडू १९५६ में कर दिया गया था।

परिवर्तनम्– (ना.कृ.) कपिलदेव द्विवेदी लिखित नाटक। इसमें एक कन्या के पिता की दयनीय स्थिति बतलाई गई है। शङ्कर कन्या के विवाह के लिये अपना मकान बेच देता है और कुयें तथा सीढ़ी की आय पर निर्वाह करने के लिये पत्नी को निर्देश देकर स्वयं बम्बई चला जाता है। वहां से लौटने पर देखता है कि उसके कुयें पर भी अधिकार कर लिया गया है। मामला न्यायालय में जाता है जहां न्यायाधीश सेठ के पक्ष में फैसला देना चाहता है किन्तु आकाशवाणी के निर्देश पर मामला पंचायत को भेजा जाता है जहां शंकर को न्याय मिल जाता है। इसकी रचना १९५० में की गई थी और प्रकाशन लखनऊ से १९६६ में किया गया।

पर्वणीकर सीताराम– (ना.का.) इनका वास्तविक नाम सीताराम है। निवास स्थान (नासिक के निकट पर्वणी) के आधार पर इन्हें पर्वणीकर सीताराम कहा जाता है। इनके पूर्वज जयपुर में रहते थे। ज्ञात हुआ है कि इनकी विपुल साहित्य राशि जयपुर में मौजूद है। इनके साहित्य में नलविलास (दे.) नाम का एक नाटक भी सम्मिलित है।

पर्वतक– (ना.पा.) मुद्राराक्षस (दे.) में नन्दवंश के उन्मीलम् के लिये चाणक्य ने कुलूत, मलय, काश्मीर इत्यादि के जिन राजाओं की सहायता ली थी उनमें प्रमुख पर्वतक या पर्वतेश था। उसे आधा राज्य देने का वादा कर सहायता के लिये लाया गया था। उसका प्रवेश नाटक में नहीं होता किन्तु नाटक की पृष्ठभूमि में वह विद्यमान है। अपना स्वार्थ साधन कर जब चाणक्य बिना वादा पूरा किये उससे छुटाकारा पाना चाहता है तब भी वह अपना अधिकार प्राप्त करने के लिये वहीं डटा रहता है और अपना स्वार्थ साधन करने केलिये राक्षस से गुप्त समझौता कर लेता है। इधर चाणक्य ने राक्षस के सभी गुप्तचरों को अपने अधिकार में ले रक्खा है। इसलिये जब राक्षस चन्द्रगुप्त को मारने के लिये विषकन्या का प्रयोग करता है तब चाणक्य को वास्तविकता मालूम पड़ जाती है और वह विषकन्या के प्रयोग से पर्वतक को मार डालता है। लोग यही समझते हैं कि पर्वतक चाणक्य के साथ था इसलिये राक्षस ने पर्वतक को मार डाला। किन्तु चाणक्य इस रहस्य को अन्य राजाओं पर प्रकट कर देता है कि चाणक्य ने ही पर्वतक को मारा है। अतः वे सब राजा जिनमें पर्वतक का पुत्र मलयकेतु भी है चाणक्य को छोड़कर भाग जाते हैं और इस प्रकार चाणक्य राज्य के सभी दावेदारों से छुटकारा पा लेता है।

पर्वतक स्वयं पात्र नहीं है किन्तु पृष्ठभूमि में रहकर समस्त नीति और कार्यों का प्रेरक है। उसकी पृष्ठ भूमि के बिना नाटक की वस्तु पूरी नहीं हो सकती थी।

पर्वतेश– (ना.पा.) दे. पर्वतक।

पलाण्डुमण्डन- (ना.कृ.) एक प्रहसन। कैटेलागस कैटेलागोरम I ३३० में इसका उल्लेख किया गया है। यह हरिजीवन मिश्र (दे.) की रचना है। इसमें लिङ्गोजी भट्ट की दूसरी पत्नी चिंचा के गर्भाधान संस्कार में आये हुये पलाण्डुमण्डन और लसुनपन्त इत्यादि का कथानक था। यह रचना १७वीं शताब्दी की है।

पल्लीकमल- (ना.कृ.) डा. रमाचौधरी लिखित ६ दृश्यों का नाटक। इसमें परदे का बदलना, पूर्वदृश्य इत्यादि नवीन शैली का प्रयोग किया गया है। नायिका कमलकलिका, रूपकुमार पर आसक्त है। किन्तु नायिका का पिता मार्तण्ड से विवाह करना चाहता है। जब मार्तण्ड को कमलकलिका और रूपकुमार के मिलने जुलने का पता चलता है तब वह बदला लेने के लिये नायिका के पिता पर भूमिकर न देने का आरोप लगाता है। तब नायिका का पिता रत्नमाला बेचने के लिये मार्तण्ड के पिता प्रभञ्जन के पास जाता है जहां यह रहस्य खुलता है कि कमल कलिका वास्तव में मार्तण्ड की खोई हुई बहन है। अन्त में नायिका का रूपकुमार से विवाह हो जाता है।

रचना २० वीं शताब्दी की है और प्राच्यवाणी ने इसका प्रथम अभिनय किया था।

पशुमेढ्र- (ना.पा.) मुरारि (दे.) के अनर्घराघव (दे.) पशुमेढ्र और शुनःशेप ये दो विश्वामित्र के शिष्य हैं जो रामायण के विभिन्न पात्रों के विषय में बातचीत करते हैं उस संवाद से वाली, रावण, जामवन्त, ताड़का इन पात्रों के इतिहास पर प्रकाश पड़ता है।

पाखण्डधर्मखण्डनम्- (ना.कृ.) दामोदर कृत तीन अंकों का रूपक। यह पूर्ण रूप से नाटक नहीं कहा जा सकता किन्तु इसकी रचना नाटक सदृश है। इसमें सामान्यतः नाटकतत्वों का अभाव है; सभी संवाद पद्यात्मक हैं; इसमें जैन, बौद्ध वैष्णव सम्प्रदाय, वल्लभमार्ग श्रुति इत्यादि के स्वकीय प्रशंसा परक कथन है। अन्त में कलि का दूत आता है। पाखण्ड की गर्हणा के साथ नाटक समाप्त हो जाता है। इसकी रचना १६३६ में हुई थी। ऋषि आश्रम, सारङ्पुर, अहमदाबाद से इसका प्रकाशन १९३१ में हुआ था।

पाञ्चालीपरिणय- (ना.कृ.) यह बालसूरि (अद्दंकि) (दे.) लिखित एक नाट्य कृति है। मद्रास के प्राच्य पाण्डुलिपि पुस्तकालय में ट्रायेनियल कैटेलाग खण्ड ३ सं. ३१२३ पर इसका उल्लेख किया गया है। लेखक का कहना है कि उसने यह रचना राजा राजशेखर के निर्देश पर की थी।

पाञ्चाली रक्षणम्- (ना.कृ.) इसकी रचना पेरी काशीनाथ शास्त्री (दे.) ने की थी। इसका रचनाकाल १९वीं शताब्दी का अन्त अथवा २० वीं शताब्दी का प्रारम्भ है। इसकी रचना विजयानगर के आनन्दगजपति के आश्रय में की गई थी।

पाण्डव- (ना.पा.) महाभारत में पाण्डुपुत्रों की सामान्य अभिधा। इनका सामान्य रूप से कई नाटकों में उपादान किया गया है। उदाहरण के लिये-

(१) **वेणी संहार-** में कौरवों और पाण्डवों की द्यूत क्रीड़ा में पाण्डवों की सामान्य

पत्नी द्रौपदी का केशाम्बराकर्षणद्वारा घोर अपमान किया गया जिसका बदला लेने के लिये द्रौपदी ने दुश्शासन के रक्त से वेणी गूंथने और भीमसेन ने दुश्शासन की छाती का खून पीने तथा दुर्योधन की जंघायें तोड़ने की प्रतिज्ञा की। इन प्रतिज्ञाओं की पूर्ति दिखलाने के लिये ही वेणी संहार की रचना की गई है। कृष्ण ने यहां विनाश से बचने के लिये सन्धि कराने की भरसक चेष्टा की। किन्तु उन्हें समाधान नहीं मिला। पाण्डवों की और विशेष रूप से भीमसेन की वीरता का इसमें यथेष्ट चित्रण किया गया है।

(२) **सौगन्धिका हरण**- (दे.) में द्रौपदी के आग्रह पर उसके वाञ्छित पुष्प पारिजात को प्राप्त करने पाण्डव भीमसेन उत्तर दिशा की ओर प्रस्थान करते हैं। मार्ग में हनुमान से युद्ध प्रारम्भ ही होने वाला है कि कुबेर आकर दोनों को दोनों की वास्तविकता बतलाकर युद्ध रोक देते हैं और पारिजात पुष्पों का एक गुच्छा देकर भीम की आवश्यकता पूरी करते हैं।

पाण्डव विजय- (ना.कृ.) जयराम महादेव लिखित महाभारत पर आधारित नाटक। इसको सभापर्व नाटक भी कहा जाता है। इसका उल्लेख १९०४ के आस पास मिलता है। (दे. जय रणमल्लदेव)

पाण्डवानन्द- (ना.कृ.) इस नाटक का उल्लेख नाट्य दर्पण, अभिनवभारती और धनिक की वृत्ति में किया गयाहै। इसका एक उद्धरण भी प्राप्त होता है जो सम्भवतः प्रस्तावना का है। इससे ज्ञात होता है कि इस नाटक में पाण्डवों के अज्ञातवास का कथानक आया है। यह पुस्तक अभी तक प्राप्त नहीं हो सकी है।

पाण्डवाभ्युदय- (ना.कृ.) व्यास श्रीरामदेव लिखित नाटक। इसे छाया नाटक (दे.) के रूप में मान्यता प्राप्त हुई है। इसकी रचना रणमल्लदेव के शासनकाल में हुई थी। इसमें द्रौपदी के जन्म और उनके पांचों पाण्डवों के साथ विवाह का चित्रण किया गया है। इस विषय में कुछ कहा नहीं जा सकता कि क्या यह वास्तव में छाया नाटक था।

पाण्डित्यताण्डवितम्- (ना.कृ.) यह बटुकनाथ शर्मा का लिखा प्रहसन है। हलधर का शिष्य दण्डधर सभी प्रतिद्वन्दियों को पराजित करता है। प्रतिद्वन्दियों के नामों में हास्यजनकता है- नामों के नमूने हैं- कैयटकैरव, साहित्यसैरिभ, कृदन्तदत्त, तद्धितदत्त प्रचण्डस्फोट इत्यादि। इसका प्रकाशन काशी से पहले वल्लरी में और बाद में अगस्त १८७२ में सूर्योदय के अंक में किया गया।

पादताडितक- (ना.कृ.) यह श्यामिलक (दे.) लिखित एवं चतुर्भाणी (दे.) में सङ्कलित एक भाण है। दृष्य सौराष्ट्र की पृष्ठभूमि में प्रस्तुत किया गया है और इसमें अभिजात वर्ग की हंसी उड़ाई गई है। नायक एक रूढ़िवादी ब्राह्मण विष्णुनाग है जो राजकीय अभिलेखागार में रजिष्ट्रार के रूप में नियुक्त है। उसके सर में वेश्या पाद प्रहार कर देती है। यह एक बहुत बड़ा पाप है और वह अपवित्रता का प्रायश्चित करना चाहता है।

इसके लिये वह स्त्रीलोलुप कामुकसमाज से पाद प्रहार कराता है और निश्चय किया जाता है वही वेश्या शराव पीकर मतवाले नेत्रों को इधर उधर घुमाती हुई तगड़ी से शोभित नितम्ब पर हाथ जमाये हुये, नूपुरों से सजे महावर से शोभित अपने पैरों से उन कामुकों के सरों को कृतार्थ करे और इस प्रकार उसकी कृपा को यह लम्बाई आंखों से देखता रहे तभी इसका प्रायश्चित होगा।

इस भाण का उल्लेख अभिनव गुप्त, क्षेमेन्द्र, वल्लभदेव प्रभृति अनेक शास्त्रकारों में किया है।

पाददण्ड- (ना.कृ.) डा. वनमाला लिखित नाटक।

पादुका विजयम्- (ना.कृ.) यह पं. सुदर्शनपति का लिखा उड़ीसा के इतिहास पर आधारित नाटक है।

पापाचार- (ना.पा.) धूर्तनर्तन प्रहसन (दे.) का एक पात्र; यह राजा है और स्वयं पाप कर्मों में रुचि लेता है तथा पापियों को शह देता है। जब मुरेश्वर की शिकायत उसके पास आती है तब वह उसके नर्तकी से स्वच्छन्द विहार की आज्ञा देता है।

पारदारिकत्व- (ना.पा.) प्रतीक रूपक मोहराजपराजय (दे.) का एक पात्र। पूर्ववर्ती राजा के राज्य में जिन सात पात्रों के रहने की अनुज्ञा प्राप्त थी उनमें पारदारिकत्व भी एक था। वे सब अपना अधिकार जमाये हुये थे और राजकर देते थे। जब शान्तिदेवी का विवाह कुमार पाल से हुआ तब शान्ति देवी ने उन स्वच्छन्द अधिकारियों को निर्वासित करने की शर्त लगा दी थी जिसके अनुसार द्यूतादि के साथ पारदारिकत्व को भी निर्वासित कर दिया गया था।

पारिजात नाटक- (ना.कृ.) कुमार ताताचार्य लिखित नाटक। पारिजात हरण के प्रसिद्ध कथानक को लेकर इसकी रचना की गई है। (दे.) (१ पारिजात हरण) इसमें ५ अंक हैं।

(ट्रायेनियल कैटेलाग आफ संस्कृत मैन्युस्क्रिप्टस इन ओरियण्टल लायब्रेरी मद्रास II २३७४ और सोर्सेज आफ विजयानगरम् हिष्ट्री मद्रास २५४)

पारिजातमञ्जरी- (ना.कृ.) मदनबालसरस्वती लिखित ४ अंकों की नाटिका। यह अर्जुनवर्मा की प्रशस्ति के रूप में लिखी गई थी। इसको दो शिलापट्टों पर खोदा गया था और प्रत्येक शिलापट्ट पर दो दो अंक सुरक्षित किये गये थे। दूसरा शिलापट्ट कहीं गुम हो गया और अब केवल दो अंक ही प्राप्त होते हैं। इस पुस्तक की रचना १२१३ में हुई थी। अर्जुन वर्मा के शिलालेख धारा नगरी में १२११ से १२१५ तक पाये जाते हैं जिनमें यह नाटक भी है। इसका सम्पादन और प्रकाशन २०वीं शताब्दी के प्रारम्भ में पारिजातमञ्जरी या विजयश्री नाम से किया गया।

कवि मदनबाल सरस्वती परमार वंश के राजा अर्जुनवर्मा के गुरु थे। इस नाटिका

में कवि ने पारिजातमञ्जरी के साथ अर्जुन वर्मा की प्रणय लीला का चित्रण किया है। पारिजात मंजरी गुजरात के चालुक्यराज की कन्या थी। अर्जुनवर्मा ने चालुक्यराज भीमदेव द्वितीय पर आक्रमण कर उसे पराजित किया। उस युद्ध में पारिजातमञ्जरी मृत्यु को प्राप्त हुई। इसके बाद उसका पुनर्जन्म पारिजातमञ्जरी के गुच्छे के रूप में हुआ। एक दिन अर्जुनवर्मा की छाती पर पारिजातमञ्जरी का एक गुच्छा गिरता है जो तत्काल एक युवती के रूप में बदल जाता है। राजा उस युवती को रानी सर्वकला से छिपाने के लिये बहुत समय तक उसे कंचुकी के संरक्षण में रखता है। बाद में रत्नावली (दे.) नाटिका इत्यादि की प्रचलित परम्परा के अनुसार राजा का उससे विवाह हो जाता है।

विचारकों का कहना है यह नाटिका सीमातीत रूप में सुन्दर बन पड़ी है। इसमें ऐतिहासिकता के साथ कल्पना का मनोरम सम्मिश्रण हुआ है। यद्यपि यह प्रशस्ति के रूप में लिखी गई थी तथापि इसमें रस का परिपाक पर्याप्त मात्र में हुआ है।

इसका प्रकाशन ई. हुल्ट्ज द्वारा लीपजग में १९०६ में किया गया था।

पारिजातमंजरी– (ना.पा.) यह पारिजात मंजरी या विजयश्री नाटिका की नायिका है। सौन्दर्य के प्रभाव से नायक अर्जुनवर्मा को आकर्षित करती है। किन्तु युद्ध के अवसर पर उसकी मृत्यु हो जाती है। उसके सौन्दर्य का यह सबसे बड़ा प्रमाण है कि यह दूसरे जन्म में पारिजातमञ्जरी के रूप में बदल जाती है। यद्यपि कुछ समय तक अपने प्रेमी से गुप्त प्रेमलीला चलानी पड़ती है किन्तु अन्त में उसकी तपस्या सफल होती है और उसका प्रेमी उसे पति रूप में मिल जाता है।

(१) **पारिजातहरण–** (नाट्यकृति) उमापतिधर (दे.) का लिखा यह एक छोटा सा नाटक है। नारद कृष्ण को पारिजात का एक पुष्प भेंट करते हैं; कृष्ण वह पुष्प रुक्मिणी को भेंट कर देते हैं। इससे सत्यभामा के मन में ईर्ष्या भाव जागृत होता है। कृष्ण इन्द्र से कुछ और पुष्प मांगते हैं। किन्तु इन्द्र इन्कार कर देते हैं। अर्जुन के साथ कृष्ण इन्द्र पर आक्रमण कर उन्हें पराजित कर देते हैं और वहां से पुष्प ले आते हैं तथा सत्यभामा को प्रदान कर देते हैं। इस नाटक में संगीत के कतिपय खण्ड भी शामिल कर दिये गये हैं।

इसका प्रकाशन अंग्रेजी अनुवाद के साथ ग्रियर्सन ने कराया। उनके अनुसार इस नाटक की रचना हिन्दुपति हरिहरिदेव के राज्यकाल में हुई।

(२) **पारिजातहरण–** (ना.कृ.) यह गोपालदास (दे.) का लिखा नाटक है। इसका संकलन कैटेलागस कैटेलागोरम सं. १.३३५ पर किया गया है।

(३) **पारिजातहरण–** (ना.कृ.) रमानाथ शिरोमणि लिखित ७ अंकों का नाटक। पारिजात हरण की प्रतिष्ठित कथा (दे. १ पारिजात हरण) को लेकर इसकी रचना की गई है। लम्बे वर्णन, संगीत नृत्य का अधिक प्रयोग, चर्चरी का समावेश परिहासादिगुण इस

नाटक की विशेषतायें हैं। १९०४ में इसका प्रकाशन हो गया था।

(४) **पारिजातहरण–** (ना.कृ.) कुमार ताताचार्य लिखित ५ अंकों का नाटक। पारिजातहरण की प्रसिद्ध कथा (दे. १ पारिजात हरण) को लेकर इसकी रचना की गई है। इसमें सत्यभामा के लिये पारिजात हरण के प्रसिद्ध कथानक के साथ नरकासुर वध का भी समावेश किया गया है।

इसकी रचना १७वीं शताब्दी में सम्पन्न हुई थी।

पार्थपराक्रम– (ना.कृ.) प्रह्लादन देव (दे.) लिखित व्यायोग। इसमें अर्जुन द्वारा विराटपुर में गायों की रक्षा का चित्रण किया गया है। यह कथा महाभारत के विराट पर्व से ली गई है। पाण्डव लोग १ वर्ष का अज्ञातवास विराटपुर में छद्मवेष और छद्मनामों से व्यतीत कर रहे थे। द्यूत की शर्त के अनुसार कौरवों द्वारा उनके जान लिये जाने पर उन्हें दुवारा १२ वर्ष का वनवास और एक वर्ष का अज्ञातवास करना पड़ता। कीचक वध से कौरवों को शक हो गया और पाण्डवों को बाहर निकालने के लिये उन्होंने विराट की गायें खदेड़ लीं। उस समय अकेले अर्जुन ने भीष्म, द्रोण कर्ण इत्यादि सभी महारथियों पर विजय प्राप्त कर ली।

उस समय तक अज्ञातवास का समय समाप्त हो चुका था अतः शर्त लागू नहीं हुई। उस समय सभी महारथियों पर अकेले ही विजय प्राप्त कर लेना आश्चर्यजनक था। इसीलिये नाटक का नामकरण 'पार्थपराक्रम' किया गया है।

इसका प्रथम अभिनय परमारवंश के विद्यादेव अचलेश्वर के आवूपर्वत पर मानाभिषेक उत्सव के अवसर पर किया गया था। गायक वाड़ ओरियण्टल सीरीज (नं. ४) से सी.डी. दलाल की भूमिका के साथ इसका प्रकाशन किया गया है।

पार्थपाथेयम्– (ना.कृ.) यह काशिराज प्रभुनारायण सिंह का लिखा तीन अंकों का नाटक है। इसमें सुभद्रा और अर्जुन की प्रणय लीला को नाट्य विषय बनाया गया है। पात्रों के नामकरण भावना के अनुसार किये गये हैं। शृङ्गार रस प्रधान है किन्तु स्थान स्थान पर शिष्टहास्य के भी दर्शन होते हैं। उक्तियां सशक्त हैं। गीतों का समावेश अधिक है। कोई कोई गीत प्राकृत भाषा में भी लिखे गये हैं। इसका प्रकाशन राम नगर से १९२२ में किया गया था।

पार्थविजय– (ना.कृ.) यह त्रिलोचन (दे.) लिखित नाटक है जो अब प्राप्त नहीं होता। किन्तु उद्धरणों से इस कृति की विषयवस्तु पर यत्किञ्चित् प्रकाश पड़ता है। भोज के शृङ्गारप्रकाश और रामचन्द्रगुणचन्द्र के नाट्यदर्पण में उद्धरणों से इसके कथानक की रूपरेखा कुछ कुछ व्यक्त होती है। इसमें महाभारत की कथा का उपादान किया गया है। उद्धरणों से यह तो पता नहीं चलता कि नाटक के कथानक का विस्तार कहां तक है। क्या युधिष्ठिर के राज्यरोहणपर्यन्तपूर्ण कथानक का उपादान किया गया है या कथा

का कोई एक भाग लिया गया है? नाट्यदर्पण के उद्धरणों से ज्ञात होता है कि इस नाटक के प्रथम अंक में द्यूतक्रीड़ा का चित्रण है जिसमें पाण्डव पराजित होते हैं और दुश्शासन द्रौपदी को अपमानित करता है। शर्त के अनुसार पाण्डव वनवास को चले जाते हैं। दूसरा अंक पाण्डवों के वनवास के विषय में है। द्यूतक्रीड़ा की घटना को कुछ अधिक समय व्यतीत हो चुका है। पाण्डव लोग द्रौपदी के साथ शान्तिपूर्वक रह रहे हैं तब एक दिन दुर्योधन अपने वर्ग और अन्तःपुर के साथ पाण्डवों का मजाक उड़ाने वन को जाता है जहां चित्रसेन गन्धर्व केवल दुर्योधन को ही पराजित और अपमानित नहीं करता किन्तु दुर्योधन के घराने की स्त्रियों को भी पराभूत और अपमानित करना चाहता है। पाण्डवों को पहले तो दुर्योधन के पराजय और अपमान की सूचना मिलती है। युधिष्ठिर भीमसेन को दुर्योधन की रक्षा के लिये आदेश देते हैं। किन्तु भीमसेन इससे सहमत नहीं है। यह विवाद चल ही रहा था कि धवराया हुआ कञ्चुकी आकर सूचना देता है कि गन्धर्वों ने दुर्योधन की पत्नियों पर अतीचार करने की चेष्टा की है। इस समाचार से पाण्डव उत्तेजित हो जाते हैं और विशेष रूप से भीमसेन दुर्योधन की रक्षा के लिये चल पड़ता है। अर्जुन के पराक्रम से गन्धर्वों पर विजय प्राप्त हो जाती है। दुर्योधन लज्जित है; उस समय अर्जुन के वचन मार्मिक हैं– 'मैं आपको बड़े भाई युधिष्ठिर जैसा ही मानता हूं। घरेलू मामलों में प्रेम या विरोध मूलक व्यवहार की अच्छाई बुराई आप लोग जानें; किन्तु जहां तक बाहर वालों से निपटने का सम्बन्ध है हम ५ नहीं १०५ हैं।' अर्जुन के इस कथन पर दुर्योधन बहुत लज्जित हो जाता है। अर्जुन के शब्द हैं–

स्वैर्वैरे कुरुपाण्डवान्तरकृते यस्मिन् विशेषोस्ति नः।
तस्मिंस्तत्किमसाधु कथमित्यार्या विजानन्ति हि॥
यत्रैकाभिजनान्वये त्वभिभवः क्षत्रस्य तस्मिन् पुनः।
भ्रातृणां पुरतोभियोगसमये पञ्चोत्तरं नः शतम्॥

शृङ्गारप्रकाश में साम नामक सन्ध्यन्तर का उदाहरण पार्थविजय से ही दिया गया है जिसका प्रकरण है दुर्योधन के दरवार में कृष्ण द्वारा पाण्डवों का दूत्यकर्म। इसका आशय यही है कि युधिष्ठिर के राज्यरोहणपर्यन्त महाभारत की कथा इस नाटक में आ गई होगी। किन्तु इस विषय में निश्चयात्मक रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता।

पार्थसारथि– (ना.का.) रोम्पिवर्ल भट्टार के नाम से भी प्रसिद्ध हैं। ये कोदण्डरामाचार्य के पुत्र थे १९वीं शताब्दी में नुजविडवेङ्कटाद्रि के जमीनदार अप्पाराव से इन्हें आश्रय प्राप्त हुआ था। व्याकरण की विशेषज्ञता के कारण इन्हें वैयाकरण पञ्चानन की उपाधि भी प्राप्त हुई थी। इन्होंने आर्तिस्तव और स्वापप्रत्यय नामक नीतिकाव्यों की रचना की थी; साथ ही मदनानन्द (दे.) नामक भाण भी लिखा था।

पार्वती– (ना.यो.) (१) पौराणिक साहित्य में शिव की अर्धाङ्गिनी। इनके परिणय

और विवाह पर संस्कृत साहित्य में बहुत कुछ लिखा गया है जिसमें अनेक नाटक भी हैं। (२) इनके अर्धाङ्ग रूप पर अनेक सूक्तियां एवं हास्योक्तियां पाई जाती हैं। (३) भरत ने नृत्य के दो रूप माने हैं- ताण्डव और लास्य। ताण्डव के अधिदेवता शंकर हैं और लास्यनामक कोमलनृत्य की अधिष्ठात्री देवी पार्वती हैं।

(१) **पार्वती परिणय-** (ना.कृ.) पार्वती और शिव विवाह को लेकर लिखा गया नाटक। बहुत समय. तक प्रसिद्ध वाणभट्ट को इसके रचनाकार के रूप में स्वीकृत किया जाता रहा। किन्तु वाण की कला और रचना शैली के इसमें दर्शन नहीं होते। यह नाटक बहुत साधारण कोटि का है। अतः इसे वाणभट्ट की रचना कथमपि स्वीकार नहीं किया जा सकता। अब अनुसन्धान के बल पर इसका रचनाकार वामन भट्टवाण (दे.) को स्वीकार किया जाता है। इसमें कालिदास के कुमारसम्भव के कथानक का नाटकीकरण किया गया है जिसमें कोई नई कल्पना नहीं है। प्रसिद्ध काव्यगत कथानक को ही नाटक का रूप दे दिया गया है। नाटक में ५ अंक हैं।

श्री टी.के. तैलंग ने आर्ष प्रेस विजयानगरम् से, श्रीरलम् अय्यर ने कुम्बकोणम् से और आर.वी. कृष्णामाचार्य ने श्रीरंगम् से इसका प्रकाशन कराया। श्री तैलंग ने नाटक की समीक्षा प्रस्तुत की और श्री कृष्णम् आचार्य ने इसके लेखक का निर्णय किया तथा उन तर्कों का उत्तर दिया जो वामन भट्टवाण के लेखकत्व के विषय में उठाये गये थे।

(२) **पार्वतीपरिणय-** (ना.कृ.) इस नाटक की रचना महामहोपाध्याय उपाधिधारी शङ्करलाल ने की थी। इसका रचनाकाल १९वीं शताब्दी का अन्त अथवा २०वीं शताब्दी का प्रारम्भ है।

प्रार्वती महेश्वरीयम्- (ना.कृ.) डा. वनमालालिखित नाटक।

पार्वतीस्वयंवर- (ना.कृ.) काञ्जीवरम् के शेषाद्रि (दे.) का लिखा नाटक। इसका संकलन कैटेलागस कैटेलागोरम १.३३६ पर किया गया है।

पालक- (ना.पा.) भास (दे.) के स्वप्नवासवदत्तम् में इनका उल्लेख किया गया है। ये उज्जैन के महासेन प्रद्योत के पुत्र एवं वासवदत्ता के भाई थे। इनके एक भाई गोपालक का भी उल्लेख किया गया है।

मृच्छकटिक में पालक राजा है और गोपालक का पुत्र आर्यक पालक के प्रतिकूल विद्रोह कर रहा है। पालक का राज्य समस्त बुराइयों से भरा हुआ है। उसने आर्यक को बन्दी बना रक्खा है। पालक की शासनव्यवस्था के अन्याय होने का इससे बड़ा प्रमाण और क्या हो सकता है कि शकार कोर्ट में खड़े होकर कहता है कि न्यायाधीश को वही निर्णय देना पड़ेगा जो मैं कहूंगा। क्योंकि मैं राजा का साला हूं। अन्त में पालक का शासन समाप्त हो जाता है; जनता के सहयोग से आर्यक जीत जाता है योग्य अधिकारियों की ही नियुक्ति करता है जिसमें चारुदत्त को भी अपना उचित अधिकार मिल जाता है।

पाशुपत– (ना.पा.) मत्तविलास (दे.) प्रहसन का एक पात्र। यह एक साम्प्रदायिक शैव है। कपाल के विवाद में वह भी एक परामर्शदाता है।

पाषण्डविडम्बन– (ना.कृ.) एक प्रहसन। कैटेलागस कैटेलागोरम् I ३८६ में इसका उल्लेख किया गया है।

पुण्यकेतु– (ना.पा.) यह मोहराजपराजय (दे.) नाटक में राजा कुमारपाल का अमात्य है। यह एक निपुण व्यक्ति है और कौशलपूर्वक रानी राज्यश्री को सौत स्वीकार करने पर भी राजी कर लेता है। यही नहीं रानी सौत की सभी शर्तें भी मान लेती है जोकि अमात्य की कुशलता का ही प्रतिफल है।

पुनरुन्मेष– (ना.कृ.) वेङ्कटराम राघवन् लिखित नाटक। इसमें भारतीयों की अपनी संस्कृति की उपेक्षा और पाश्चात्य संस्कृति की ओर अन्धी दौड़ तथा दूसरी ओर पाश्चात्य लोगो के भारत की ओर झुकाव का चित्रण किया गया है और भारतीय संस्कृति के 'पुनरुन्मेष' की आशंसा पाश्चात्य लोगों के उद्योग से व्यक्त की गई है। भारतीय सभ्यता प्रेमी एक पाश्चात्य एक भारतीय गांव में भारतीय संस्कृति के समस्त चिन्हों को नष्टभ्रष्ट होते हुये देखता है और उसके उद्योग से भारतीयों की मनोवृत्ति अपनी संस्कृति की ओर झुक जाती है।

पुन्नशेरी नीलकण्ठ शर्मा– (ना.का.) ये केरल के प्रतिष्ठित विद्वान पण्डितराज उपाधि धारी एवं अनेक ग्रन्थों के रचयिता थे। ये पत्रिकाओं के सम्पादक भी थे जिनके माध्यम से इन्होंने संस्कृत का प्रचार किया था। इनकी रचनाओं में 'गैर्वाणविजय' नामक नाट्य कृति का भी उल्लेख किया जाता है।

पुरज्जनचरित– (ना.कृ.) कृष्णदत्त (दे.) लिखित ५ अंकों का नाटक। इसमें श्रीमद्भागवत की पुरञ्जन कथा का नाटकीकरण किया गया है। भागवत कथा के साथ कवि ने कल्पना प्रसूत अंश भी जोड़कर इस कथानक को नया रूप दे दिया है। राजा पुरञ्जन नवद्वार नगर की स्वामिनी के प्रेम पाश में फंस जाता है। दोनों में इतना प्रेम बढ़ जाता है कि दोनों एक दूसरे को छोड़ना नहीं चाहते। युद्धों में विरह सन्तप्त पुरञ्जनी साथ ही जाती है। अधिक ध्यान के कारण पुरञ्जन भी पुरञ्जनी बन जाता है और विदर्भ राजकुमार मलयध्वज से विवाह कर लेता है। संयोगवश वह मलयध्वज से वियुक्त होकर आत्म हत्या करने को उद्यत हो जाती है, तब कामधेनु उसकी रक्षा कर शेषाद्रि पर ले जाती है जहां विष्णुवेङ्कटेश उसे बतलाते हैं कि स्त्री का ध्यान कर तुम स्त्री बन गये हो। तब वह विष्णु का ध्यान कर सामुज्य प्राप्त कर लेता है।

इसका प्रकाशन सन् १९६१ में नागपुर से विदर्भ संशोधन मण्डल ग्रन्थमाला क्रम सं. १६ में हो गया था। प्रथम अभिनय भोंसले राजा के प्रधान मन्त्री देवाजी पन्त के वेङ्कटेश मन्दिर के द्वार पर सम्पन्न हुआ था। इसमें प्राकृत के स्थान पर मैथिली भाषा का

प्रयोग किया गया है। लोकोक्तियों और प्रतीकतत्व का समावेश इसकी अन्यतम विशेषता है।

पुराणविषयक नाटक– अनर्घनलचरित (सुदर्शन), आनन्दचन्द्रोदय (रंगीलाल), उषानिरुद्ध (काशिराज), गंगावतरण, चन्द्रिकाजनमेजय (पद्मनाभ), नटेश्वर विलास (तंजौर के राजा शिवाजी), प्रभावती प्रद्युल (रामकृष्ण), भक्ति विजय (धूर्जटि प्रसाद काव्यतीर्थ), मङ्गल नाटक (जीवानन्द ज्योतिर्विद्), मदनाभ्युदय (वेङ्कटेश), ययातिचरित (त्रिवेन्द्रम के मध्यम रामार्य), रेवती हालाङ्क (पुरुषोत्तम), सुभद्राधनञ्जय (गुरुराम), सुभद्रार्जुन (केशव शास्त्री), सुभद्राविजय, सुभद्राहरण (माधवभट्ट), हरिश्चन्द्र चरित, हरिश्चन्द्र नाटक (प्रभाकर श्रीनिवास)।

(कोष्ठक ( ) में लेखकों के नाम दिये गये हैं। यह परिगणन पूरा नहीं है।)

पुरुष– (ना.पा.) प्रबोधचन्द्रोदय (दे.) में परमात्मा की अभिधा। वह एकहै किन्तु माया के सम्पर्क से अनेक-विध सृष्टि का विस्तार करता है। मनस् उसका पुत्र है जिसके प्रभाव से वह महामोह से अक्रान्त हो जाता है। महामोह उसे भ्रान्त करने के लिये मधुमती को भेजता है तथा माया उसकी सहायता करती है। किन्तु तर्क भ्रान्ति के विषय में उसे सचेत करता है और वह सभी भ्रान्ति साधकों को भगा देता है। तर्कविद्या पुरुष को बतलाती है कि वह पर ब्रह्म है। इस सिद्धान्त की दुर्ग्राह्यता को विद्या दूर करती है। इस क्रिया में विष्णुभक्ति भी योगदान देती है।

पुरातनवालेश्वर– (ना.कृ.) रमानाथ मिश्र का लिखा नाटक। इसमें वालेश्वर नगर की ऐतिहासिक गौरवगाथा का चित्रण किया गया है जिसने अंग्रेजी प्रभाव में अपने पुराने प्रभाव को खो दिया है। लेखक इसी नगर के श्रीरामचन्द्र संस्कृत विद्यालय में अध्यापक था।

पुरुषरमणीयम्– (ना.कृ.) यह जीवन्यायतीर्थ (दे.) का लिखा प्रहसन है। इसमें प्रमुख रूप से पुरुष के रमणी का अभिनय करने और बाद में रमणी रूप में परिणत हो जाने का कथानक नाटक का विषय बना है। दो स्नातक सुबन्धु और सोमदत्त परस्पर मित्र हैं। साथ ही आजीविका की खोज के लिये निकलते हैं। इनका एक राजपुरुष से झंगड़ा हो जाता है। तब वे निश्चय करते हैं कि डाका डाल कर ही अर्थोपार्जन किया जायेगा। इसी समय वृद्धदम्पत्ति दान लेकर बाहर निकलते हैं जिन पर डाका डालने का दोनों मित्र प्रयत्न करते हैं। तब वृद्धदम्पति उन्हें समझाते हैं कि डाका डालने से तो अच्छा है की सीमन्तिनी से दान ले लिया जाय। उन दोनों की समझ में आ जाता है और सुबन्धु अपने सहचर सोमदत्त को पत्नी बनाकर दान लेने जाता है। धीरे धीरे सोमदत्त वास्तव में युवती के रूप में परिणत हो जाता है।

इस पुस्तक की रचना १९४७ में हुई थी और इसका प्रकाशन संस्कृत साहित्य परिषद् कलकत्ता से हो गया था। इस प्रहसन में छायातत्व का भी समावेश किया गया

है और गीतों का प्रयोग इसकी अन्यतम विशेषता है।

पुरुषोत्तम दीक्षित- (ना.का.) ये सुंकेसल निवासी भरद्वाज गोत्रीय गोविन्द के पुत्र थे। इनके लिखे रेवती हालाङ्क (दे.) की प्रति तंजौर के पुस्तकालय में VIII ३५०४ पर सुरक्षित है।

पुरुषोत्तम देव महाराज- (ना.का.) ये उड़ीसा निवासी साहित्यकार थे। इनके लिखे अभिनववेणीसंहारम् (दे.) रूपक का उल्लेख किया जाता है।

पुरूरवा- (ना.पा.) विक्रमोर्वशी (दे.) का नायक। यह सफल प्रेमी नायक होने के साथ एक शक्तिशाली सम्राट भी है। उसने एक दुर्दान्त राक्षस की पकड़ से उर्वशी को छुड़ाया है जिससे वह स्वर्गीय सौन्दर्य से अद्वितीय प्रेम सम्बन्ध स्थापित करने में सफल हो गया है। पहले इन्द्र द्वारा उर्वशी उसे सीमित समय के लिये शर्त के साथ प्रदान की गई थी। दूसरी वार इन्द्र को राक्षसों के प्रतिकूल विजय दिलवाकर शक्ति के द्वारा ही उसने पुरस्कार के रूप में सर्वदा के लिये उर्वशी को प्राप्त किया। भावुकता और सरसता भी उसमें असामान्य है। वह भावावेश में समस्त प्राकृतिक तत्वों में अपनी प्रेमिका के दर्शन करने लगता है।

अद्वितीय प्रेमी और स्वर्गीय सौन्दर्य का अधिकारी होते हुये भी दाक्षिण्य की उसमें कमी नहीं है। वह औशीनरी के प्रति अपनी प्रतिबद्धता को समझता है और उसके प्रति प्रतिकूल आचरण को उसके क्षुब्ध होने का उचित कारण बतलाता है।

पुरूरवा उर्वशी संवाद- (सं.सू.) ऋग्वेद (१०.९५) का सर्वाधिक प्रतिष्ठित संवादसूक्त है। इसमें केवल संवाद दिया हुआ है। घटना और परिस्थिति का उन्नयन शतपथब्राह्मण से किया जा सकता है।

पुरूरवा मर्त्य था और उर्वशी अप्सरा थी। उर्वशी ने पुरुरवा से इस शर्त पर विवाह किया था कि यदि पुरुरवा उसे शय्या के अतिरिक्त अन्यत्र नग्न दिखलाई पड़ेगा तो वह पुरुरवा का साथ छोड़कर स्वर्ग लोक को लौट जायेगी। देवगण उर्वशी को लौटाना चाहते थे। अतः उन्होंने छल पूर्वक उर्वशी को पुरुरवा का नग्न साक्षात्कार शय्या के अतिरिक्त करा दिया और पूर्व निश्चय के अनुसार उर्वशी चार वर्ष का आनन्दमय साहचर्य छोड़कर 'प्रथम उषा की भांति' पुरुरवा के पास से चली गई। पुरुरवा ने अन्वेषण करते हुये एक सरोवर में क्रीड़ा में संलग्न उर्वशी को प्राप्त किया। प्रस्तुत सूक्त में पुरूरवा अपनी हृदय वेदना का वर्णन कर और अपनी करुण दशा बतलाकर उर्वशी को लौटाना चाहता है। उर्वशी साहचर्य के क्षणों का भावुकता के साथ स्मरण करती है; किन्तु पुरुरवा की प्रार्थनाओं का निरन्तर प्रत्याख्यान करती जाती है। अन्त में एक वर्ष बीत जाने के बाद एक वार पुनः लौटने के लिये राज़ी हो जाती है। इस सूक्त में शृङ्गार रस का अच्छा परिपाक हुआ है। प्रेम उभयनिष्ठ है। उर्वशी को भी पुरुरवा से द्वेष या उदासीनता नहीं है। वह अन्तर्मन

से पुरुरवा को चाहती है। इस सूक्त ने महाकवि कालिदास के सामने एक महत्वपूर्ण नाटक की योजना प्रस्तुत की।

पुष्करराघवम्– (ना.कृ.) १ नारायणशास्त्री लिखित ६ अंकों का नाटक।

पुष्पदूषितक– (ना.कृ.) इस प्रकार का उल्लेख अभिनवगुप्त (दे.) धनिक (दे.) और कुन्तक ने किया है। विश्वनाथ महापात्र ने भी पुष्प भूषितक नाम से सम्भवतः इसी का उल्लेख किया है। नाम परिवर्तन से ज्ञात होता है कि विश्वनाथ को यह कृति प्राप्त नहीं हुई होगी; उन्होंने श्रुतिपरम्परा के आधार पर ही इसका उल्लेख कर दिया जिससे अभिधान में कुछ विपर्यय हो गया। शास्त्रकारों ने कुलजा नायिका विषयक प्रकरण के उदाहरण के रूप में इसका उल्लेख किया है। न तो इसकी प्रति उपलब्ध हुई है, न इसके लेखक का पता है और न इसका रचनाकाल ज्ञात है। कुन्तक ने जो विवरण दिया है उससे इसका कथानक निम्न प्रकार का ज्ञात होता है–

सार्थवाह (समुद्री व्यापारी) समुद्रदत्त का विवाह नयदत्त की पुत्री (सम्भवतः नन्दयन्ती या नन्दिनी) से हुआ था। विवाह के बाद ही विना अपनी पत्नी से मिले उसे पिता की आज्ञा से समुद्र यात्रा पर जाना पड़ गया। वह पत्नी से मिलने के लिये वेचैन था। अतः वह गुप्त रूप से लौट आया और द्वारपाल कुवलय को रिश्वत में अंगूठी देकर घर में प्रवेश पा गया तथा कुछ दिन गुप्त रूप में पत्नी के साथ बिताकर समुद्र यात्रा पर चला गया। इस बीच पत्नी गर्भवती हो गई। जब ससुर सागरदत्त को पुत्रवधू के गर्भवती होने की सूचना मिली तब उसे पुत्रवधू के चरित्र पर सन्देह हो गया। संयोगवश साक्षी देने वाला कुवलय भी मथुरा को चला गया था। पुत्रवधू भी पति की गुप्त सहवास की बात प्रकट नहीं कर सकती थी। अतः ससुर ने निरपराध पुत्रवधू को घर से निकाल दिया। पुत्रवधू एक शवर के यहां एकान्त कारावस जैसा जीवन बिताने लगी। जब कुवलय मथुरा से वापस आया और सागरदत्त को सारी बात बतलाई एवं प्रमाण रूप अंगूठी भी दिखलाई तब ससुर को निरपराध पुत्रवधू पर कलंक लगाने का अत्यधिक पश्चाताप हुआ। वह प्रायश्चित के लिये तीर्थयात्रा पर चल दिया। संयोगवश सागरदत्त, पुत्र समुद्रदत्त, पत्नी नन्दयन्ती, पत्नी का पिता नयदत्त ये सब लोग यात्रा प्रसंग में एक साथ मिल जाते हैं। बात साफ हो जाती है। समुद्रदत्त पत्नी को लेकर घर चला जाता है और सागरदत्त तीर्थ यात्रा पर चला जाता है।

पुष्पभूषितक– (ना.कृ.) दे. पुष्प दूषितक।

पुष्पमाला– (ना.कृ.) यह (१) चन्द्रशेखर लिखित नाटिका है जिसका उल्लेख विश्वनाथ कविराज ने साहित्य दर्पण में किया है।

पुष्पसेनतनयराज्यारोहण– (ना.कृ.) गोविन्द जोशी (दे.) लिखित नवीन शैली का नाटक जिसमें सन्धि, सन्ध्यङ्ग इत्यादि सभी शास्त्रीय व्यवस्थाओं की उपेक्षा की गई है।

पुष्पसेन एक राजा है जिसने अमरेश्वर को युद्ध में पराजित किया है। किन्तु वह उसे छोड़ देता है। कुछ समय बाद पुष्पसेन की मृत्यु हो जाती है। उसकी पत्नी गर्भवती है जो अमरेश्वर की शरण में जाती है। वहां का मन्त्री दुष्टबुद्धि उसे मार डालना चाहता है; किन्तु अमरेश्वर उसे बचा लेता है। वह मृत शिशु को जन्म देती है जिसे अमरेश्वर का चिकित्सक जिला देता है। वही बालक अन्त में दुष्टबुद्धि मन्त्री को मार कर राज्यासीन होता है।

इस नाटक की रचना तत्वज्ञान और भक्ति के उद्देश्य से की गई है। इसमें प्राकृत का सर्वथा अभाव है। यह पुस्तक गुरुकुल कांगड़ी के पुस्तकालय में प्राप्य है। इसका प्रकाशन १९१५ में पूना से हो गया था।

पुष्यमित्र– (ना.पा.) मालविकाग्निमित्र का एक पात्र यह नायक अग्निमित्र का पिता है जो उत्तर में अग्निमित्र की विजय की सूचना भेजता है। यह सूचना भी मालविका और अग्निमित्र के प्रणयबन्धन को प्रोत्साहित करती है।

पूतना– (ना.पा.) भास (दे.) के बालचरित में एक राक्षसी जिसे ब्रज के सभी अनिर्दस बालकों का वध करने के लिये नियुक्त किया गया था। कृष्ण ने उसका वध किया।

पूर्णकाम– (ना.कृ.) यह वीसवीं शताब्दी के ऋद्धिनाथ झा का लिखा एक सामान्य विषय का नवीन शैली का नाटक है जिसका विभाजन अंकों के स्थान पर दृश्यों में हुआ है। इसके नायक पूर्णकाम की तपस्या, इन्द्र द्वारा विघ्न डालने के लिये अप्सरा इत्यादि का प्रयोग, फिर पराजित होकर पूर्णकाम का स्वर्ग में बुलाया जाना जहां पुनः पूर्णकाम की तपस्या और फिर उसके अभाव से विष्णु की प्राप्ति यह सब नाटक के कथानक का सार है।

दरभंगा से इसका प्रकाशन हुआ था। रंग निर्देश और मैथिली नाट्यशैली इसकी विशेषतायें हैं।

पूर्णपुरुषार्थचन्द्रोदय– (ना.कृ.) यह जटदेव (उपनाम जातदवेदस) लिखित एक प्रतीक नाटक है मद्रास की ओरियण्टल मैन्युस्क्रिप्ट लायब्रेरी के डिस्क्रिप्टिव कैटेलाग में XXI ८४१७ में इसका उल्लेख किया गया है। इसमें दशाश्व और आनन्द पक्ववल्ली का संयोग कराया गया है। दशाश्वआत्मा का प्रतीक है। विभिन्न सम्प्रदायों के तत्व असुरों के रूप में रंगमञ्च पर आते हैं और नष्ट हो जाते हैं। अन्त में सुश्रद्धा और सुभक्ति आत्मा (दशाश्व) का आनन्द पक्ववल्ली से मेल कराती हैं।

इसका रचनाकाल १८वीं शताब्दी है।

पूर्णमल्लम्– (ना.कृ.) यह एक नाट्यकृति है जिसकी रचना चुरु के देवी प्रसाद शास्त्री के पुत्र विद्याधरशास्त्री ने की थी। रचनाकाल २०वीं शताब्दी का पूर्वार्ध।

पूर्ण सरस्वती– (ना.का.) ये केरल के एक कवि और नाटककार हैं। इनका समय

१४वीं शताब्दी का पूर्वार्ध है। ये पूर्णज्योति नामक सन्यासी के शिष्य थे और स्वयं भी सन्यासी हो गये थे। ये दोनों गुरुशिष्य त्रिचूर के मठ में रहते थे। इन्होंने कतिपय टीकाओं की रचना की जिनमें मालती माधव की टीका भी सम्मिलित है। कतिपय स्तोत्रों की भी रचना की; हंसदूत नामक एक दूतकाव्य लिखा। इनकी रचनाओं में कमलिनीराजहंस (दे.) नामक एक नाटक भी सम्मिलित है।

पूर्णानन्द– (ना.कृ.) विद्याधर शास्त्री द्वारा २०वीं शताब्दी में लिखा गया ५ अंकों का नाटक। इसमें भक्त पूरणमल की कथा को नाटक के विषय के रूप में स्वीकार किया गया है। पतनोन्मुख जीवनपद्धति का चित्रण इसकी अपनी विशेषता है।

पूर्णाहुति– (ना.कृ.) कृष्णप्रसाद शर्मा (दे.) लिखित नाटक।

पृथ्वी, पृथिवी– (ना.पा.) उत्तर रामचरित (दे.) में अन्त में जो भरत द्वारा प्रकल्पित नाटक दिखलाया गया है उसमें परित्यक्ता सीता गंगा में कूद पड़ती है। वहां पृथ्वी और गंगा उनकी रक्षा करती हैं। दोनों सहायिकाओं के साथ सीता पुनः दिखलाई देती है। दोनों सहायिकाओं में प्रत्येक के पास एक एक बालक है। पृथ्वी राम की निन्दा करती है और गंगा उनकी प्रशंसा। दोनों निश्चय करती हैं कि जब तक बालक वाल्मीकि को समर्पित करने योग्य न हो जाय तब तक वे इन बालकों का भरण पोषण करेंगी।

पेरियाअप्पा– (ना.का.) दे. अप्पा दीक्षित।

पेरी काशीनाथ– (ना.का.) (१) द्रौपदी परिणय (दे.) के लेखक। ये सम्भवतः पेरी काशीनाथ शास्त्री से भिन्न थे। इनका समय २०वीं शताब्दी का प्रथम चरण है।

(१) **पेरी काशीनाथ शास्त्री–** (ना.का.) समय १८५७ से १९१८ तक। ये गौतम गोत्र के वेङ्कटशास्त्री के पुत्र थे। महाराज विजयानगरम् आनन्दगजपति इनके आश्रयदाता थे। ये विजयानगरम् के संस्कृत कालेज में व्याकरण और काव्य शास्त्र के प्रोफेसर थे। स्तोत्र जैसी छोटी छोटी रचनाओं के अतिरिक्त इन्होंने दो नाटक भी लिखे थे पाञ्चालिकारक्षणम् और यामिनीपूर्णतिलक।

(२) **पेरीकाशीनाथशास्त्री–** (ना.का.) इनका लिखा द्रौपदीपरिणय नाटक प्राप्त होता है। इनका देहान्त १९२९ में हो गया था।

पेरुसूरि– (ना.का.) कौशिकगोत्रीय वेङ्कट के पुत्र थे। इनका लिखा वसुमंगल नाटक (दे.) प्राप्त होता है। इनका समय १८वीं शताब्दी है। नाटक की प्रस्तावना में इनकी दूसरी कृतियों का उल्लेख किया गया है; वे हैं– रामचन्द्र विजय, भरताभ्युदय, वेङ्कटभाण और चकोर सन्देश।

पौराणिक रूपक– (दे.) पुराण विषयक नाटक।

पौलस्त्यवध– (ना.कृ.) दे. लक्ष्मण सूरी। ६ अंकों के इस नाटक का प्रथम अभिनय चैत्रोत्सव में हुआ था। इसमें विराधवध के बाद की रामायणकथा का उपादान किया गया

है।

प्रकरण साहित्य– इस नाट्यविद्या की सत्ता अत्यन्त प्राचीन काल से पाई जाती है। सबसे पुरानी उपलब्ध कृति अश्वघोष का शारिपुत्रप्रकरण अत्यन्त प्राचीन रचना है। भासनाटकचक्र के चार रूपक प्रकरण कोटि में आते हैं– अविमारक, चारुदत्त, प्रतिज्ञा यौगन्धरायण और स्वप्नवासवदत्तम्। चारुदत्त के अनुकरण पर लिखा गया मृच्छकटिक प्रकरण ही है। भवभूति का लिखा मालतीमाधव प्रकरण कहे जाने का आधिकारी है। कहा जाता है शिवस्वामी ने कई प्रकरणों की रचना की थी जो अब उपलब्ध नहीं होते। कतिपय अन्य प्रकरण हैं– अनंगसेना हरिनन्दिनी (शक्तिवास कुमार), अभिरामचित्रलेखम् (कविवल्लभ), उदयनचरित (शा.त.), कन्दर्प सम्भव (शि.भू.), कलावती कामरूपम् (क्षेमेन्द्र), कामदत्त (शि.भू.), कुमुद्वती, कौमुदी मित्रानन्दम् (रामचन्द्र) कौमुदीसुधाकर (चन्द्रकान्ता), गिरिसंवर्धनम्, चित्रोत्पलावलम्बितक (अमात्य शंकुक) तरंगदत्त, तापसवत्सराज (अनंगहर्ष), देवीपरिणय (ना.द.) नलविक्रम (ना.द.), पद्मावतीपरिणय, पुष्पदूषितक, प्रबुद्धरौहिणेय (देवसूरि) प्रयोगाभ्युदय; भीमकुल्पा (शृ.प्र.) मत्स्य हसित (शृ.प्र.) मयूरमार्जारिका (शृ.प्र.) मल्लिका मारुत (उद्दण्डनाथ), महेश्वरानन्द (शि.भू.), माधवीवसन्तीयम् (गणपतिशास्त्री), मुद्रासुवेद (शृ.प्र.) मुद्रित कुमुदचन्द्र (यशश्चन्द्र), रतिविलास (शृ.प्र.) रामानन्द (शि.भू.), रासकाङ्क (शृ.प्र.), लक्ष्मीस्वयंवर (शृ.प्र.) वक्रतुण्डगणनायक, विक्रान्तशूद्रक (शृ.प्र.) विधिविलसित (शा.त.) वीरानन्द (शि.भू.), वेदिका (शृ.प्र.) शातकर्णीहरण (शृ.प्र.) शालिनीसंवाद (शृ.प्र.)।

(यल तालिका पूर्ण नहीं है। लेखकों के नाम कोष्ठकों में दिये गये हैं। जिन रचनाओं के साथ लेखक का नाम नहीं है या काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ का निर्देश किया गया है वे रचनायें अज्ञातनामा कवियों की हैं।)

प्रकृति सौन्दर्य– (ना.कृ.) यह मेधाव्रत शास्त्री लिखित ६ अंकों का नाटक है। इसकी रचना सन् १९०१ में हुई थी। इसमें राजा चन्द्रमौलि नायक है। वे अपने मित्र चन्द्रवर्मा के साथ विमान यात्रा पर जाते हैं। उसी प्रसंग में हिमालय के सौन्दर्य और षड्ऋतु इत्यादि का वर्णन किया गया है। साथ ही तपोवन का भी वर्णन आ जाता है।

प्रचण्ड गरुड़– (ना.कृ.) यह गोविन्द (दे.) लिखित व्यायोग है। इसे विनतानन्द (दे.) की भी संज्ञा दी गई है। इसकी प्रति तंजौर पुस्तकालय (VII ३६४१) में एवं कैटेलागस कैटेलागोरम (I ५७६ तथा II ५७७) में भी प्राप्य है।

प्रचण्डपाण्डव– (ना.कृ.) दे. बालभारत।

प्रचण्डभैरव– (ना.कृ.) सदाशिवलिखित व्यायोग तंजौर पुस्तकाल III ३६८९ में इसका उल्लेख किया गया है।

प्रचण्डराहूदय– (ना.कृ.) घनश्याम (दे.) लिखित एक प्रतीक रूपक। मद्रास में १९०५ में संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट्स की जो रिपोर्ट हुल्ट्जसन के द्वारा प्रकाशित कराई गई

उसमें इस रचना का (H.R. III १६७५) पर उल्लेख किया गया है।

प्रजापतेः पाठशाला– (ना.कृ.) २०वीं शताब्दी की सुरेन्द्र मोहन (बंगाली कवि) की रचना। प्रजापति की पाठशाला में 'द' अक्षर की शिक्षा दी जाती है। जिसका दैत्यलोग अर्थ लगाते हैं– दण्ड, दर्प और दुर्गति। अन्त में उस उपदेश की परिणति दम, दान और दया में होती है। यह उपनिषद् की कथा पर आधारित है।

प्रचण्डानुरञ्जन– (ना.कृ.) घनश्याम (दे.) लिखित प्रहसन।

प्रताप– (ना.पा.) यह मोहराजपराजय का एक पात्र है। यह रानी का भाई है और रानी को शिकायत है कि एक जैन साधु के वहकावे में आकर राजा केवल रानी को ही नहीं भूल बैठा है अपितु उसके भाई प्रताप से भी विमुख हो गया है।

प्रतापरुद्र– (ना.का.) दे. रुद्रदेव

प्रतापरुद्रकल्याण– (ना.कृ.) विद्यानाथ (दे.) लिखित नाटक। इसमें १३वीं १४वीं शताब्दी के काकतीय वंशज वारंगल के अधिपति प्रताप रुद्र की यशोगाथा का प्रस्तुतीकरण किया गया है। लेखक की दूसरी कृति प्रतापरुद्रयशोभूषण के नाट्यशास्त्रपरक तृतीय अध्याय के उदाहरण प्रस्तुत करने के लिये इस ग्रन्थ की रचना की गई थी।

इसका प्रकाशन बम्बई से १८९१ ई. में हो गया था।

प्रतापरुद्रदेव– (ना.का.) दे. रुद्रदेव।

प्रतापविजयम्– (ना.कृ.) मूलशंकर माणिकलाल याज्ञिक (दे.) लिखित ९ अंकों का नाटक। इसमें बाद के महाराणाप्रतापसिंह के जीवन को नाट्यविषय बनाया गया है।

यह नाटक बड़ौदा से प्रकाशित हुआ है।

प्रतापरुद्रविजयम्– (ना.कृ.) वेङ्कटरामराघवन लिखित चार अंकों का एक प्रहसन। विद्यानथ ने प्रतापरुद्र यशोभूषण लिखकर आश्रयदाता की प्रशस्तिओं के माध्यम से काव्यशास्त्रीय सिद्धान्तों के प्रतिपादन का जो नया मार्ग अपनाया था और जिसका अनुकरण आगे होता रहा उसी की विडम्बना दिखाने के लिये इस नाटक की रचना की गई। प्रताप रुद्र की दिग्विजययात्रा और उसके बाद राज्यारोहण इसका विषय है जिसमें अतिशयोक्तिपूर्ण विडम्बितरूप प्रस्तुत किया गया है। इसका दूसरा नाम विद्यानाथ विडम्बन भी है।

प्रतिक्रिया– (ना.कृ.) कृष्णनवेङ्कटतम्पी (संक्षिप्त नाम कृष्णनतम्पी (दे.)) का लिखा नाटक। इसमें अंग्रेजी शैली पर राजपूतइस्लामीसंघर्ष युग का अंकन किया गया है। इसका प्रकाशन सन् १९२४ में हुआ था।

प्रतिज्ञाकौटिल्य– (ना.कृ.) जग्गू श्री वकुलभूषण (दे.) लिखित ८ अंकों का नाटक। इसकी रचना चाणक्य नीति को लेकर हुई है। इसमें मुद्राराक्षस की पूर्व कथा का चित्रण किया गया है। भगवान् सनत्कुमार के हिमकिरीट उत्सव में इसका प्रथम अभिनय किया

गया था।

इसकी विशेषतायें हैं- हाथी का रंगमञ्च पर प्रवेश, रंगमञ्च के अनेक उपविभाग, दूरस्थ घटनाओं का चित्रण, छायाचित्र, पर्वतेश्वर और विषकन्या की प्रणयलीला आदि।

प्रतिज्ञाचाणक्य- (ना.कृ.) दे. प्रतिभाचाणक्य।

प्रतिज्ञाभार्गव- (ना.कृ.) नरसिंह (दे.) (३) नरसिंह लिखित व्यायोग।

प्रतिज्ञायौगन्धरायण- (ना.कृ.) भास (दे.) रचित नाटक। इसमें चार अंक हैं। वत्सराज उदयन का चरित्र प्राचीन साहित्य में अत्यन्त समादृत रहा है। उज्जैन में इनका चरित्र कितना महत्वपूर्ण माना जाता था इसका उल्लेख कालिदास ने (दे.) में मेघदूत में किया है। मौर्य सम्राट बिन्दुसार के राज्यकाल में सुबन्धु (दे.) ने वासवदत्ता और उदयन की प्रणयलीला पर एक नाटक लिखा था जो अब लुप्त हो गया है। सम्भवतः सुबन्धु की कृति का आधार लेकर ही भास ने दो महत्वपूर्ण नाटकों की रचना की थी।

वत्सराज उदयन हाथियों का शिकार खेलने उज्जैन के निकट आते हैं। वहां का राजा प्रद्योत वत्सराज से पुत्री का विवाह करना चाहता है। अतः वह कपटगज का निर्माण कर लक्ष्य स्थल पर छोड़ देता है। उदयन उसे वास्तविक हाथी समझकर वीणा के द्वारा उसे व्यामोहित करने की चेष्टा करता है कि इतने में ही प्रद्योत के सैनिक उस पर हावी हो जाते हैं और उसे गिरफ्तार कर लेते हैं। पुत्री वासवदत्ता को वीणा की शिक्षा देने के लिये प्रद्योत उन्हें नियुक्त कर देते हैं। स्वभावतः वीणा सिखाने के प्रसंग में वासवदत्ता और उदयन का प्रेम बढ़ जाता है और उदयन प्रेम के आनन्द में भरकर अपने राज्य के विषय में सर्वथा लापरवाह हो जाते हैं। उधर वत्सराज का मन्त्री यौगन्धरायण वत्सराज के छुड़ाने की प्रतिज्ञा करता है। प्रद्योत की राजधानी के निकट चारो ओर गुप्तरूप से सेना लगा दी जाती है और यौगन्धरायण स्वयं वेष बदलकर उज्जयनी पहुंचता है तथा उदयन और वासवदत्ता को कपट योजना के द्वारा वहां से निकालने में सफल हो जाता है। परन्तु स्वयं पकड़ा जाता है। प्रद्योत उसकी चतुरता से प्रसन्न होकर उसे छुड़ा देता है और वासवदत्ता तथा उदयन का विवाह चित्रों द्वारा करा देता है।

इस नाटक में प्रस्तावना और भरतवाक्य दोनों का प्रयोग किया गया है। इसका नायक यौगन्धरायण है। इसे प्रकरण कहा गया है और उसमें प्रकरण की अधिकांश विशेषतायें मिलती हैं। यौवन और प्रेम का इसमें बहुत अच्छा चित्रण किया गया है। साथ ही मन्त्री की राजभक्ति के साथ उसकी दक्षता और वीरता के चित्रण में भी कवि पूर्णरूप से आप्त-काम हुआ है। नाटक की कथानकयोजना में कवि की निपुणता स्पष्ट प्रतीत होती है। वस्तुविन्यास और चरित्रचित्रण की दृष्टि से यह एक प्रौढ़ रचना है और घटनाओं के पौर्वापर्यक्रम में कवि की दृष्टि कहीं उलझी नहीं है। इसका निर्देश परवर्ती साहित्य में भी पाया जा सकता है।

प्रतिज्ञाशान्तनवम्– (ना.कृ.) जग्गूश्री वकुलभूषण लिखित दो अंकों का नाटक। इसमें भीष्मप्रतिज्ञा को नाट्यायित किया गया है।

प्रतिभाचाणक्य– (ना.कृ.) इस नाटक की रचना भीमट (दे.) ने की थी। इसका उल्लेख अभिनव भारती में दो वार किया गया है। किन्तु यह पुस्तक अभी तक प्राप्त नहीं हो सकी है। अभिनव गुप्त ने लिखा है कि इस पुस्तक के दो नाम हैं– प्रतिज्ञाचाणक्य और प्रतिभाचाणक्य। उनका कहना है कि इस नाटक में प्रवेशक की बहुतायत है। अभिनव भारती में इसका दो वार उल्लेख किया गया है– प्रथम उल्लेख (पृ. ३४३ द्वितीय भाग) से ज्ञात होता है कि भीमट महाकवि थे और प्रतिज्ञाचाणक्य में इन्होंने राजा विन्ध्यकेतु का अनेकशः उल्लेख किया है। दूसरे उल्लेख (पृ. ४५९ द्वितीय भाग) में इस रचना को तापसवत्सराज और मुद्राराक्षस के साथ पढ़ा गया है– 'प्रवेशकबाहुल्येन तापसवत्सराज-प्रतिभाचाणक्यमुद्राराक्षसादिषु' से ज्ञात होता है कि इस रचना के दो नाम थे– प्रतिज्ञा चाणक्य और प्रतिभाचाणक्य। हो सकता है एक स्थान पर लेखक के प्रमाद से नामान्तर हो गया हो।

प्रतिमा– (ना.कृ.) भास (दे.) कृत रामविषयक ७ अंकों का नाटक। यह एक प्रतिष्ठित नाटक है। इसका उपजीव्य ग्रन्थ रामायण है। किन्तु भास ने अपनी कल्पना शक्ति से कतिपय नवीन महत्वपूर्ण उद्भावनायें की हैं। कथानक का प्रारम्भ राम के निर्वासन से होता है जिसका दुःखद परिणाम होता है दशरथ की मृत्यु। कुलपरम्परा के अनुसार उनकी प्रतिमा पूर्वजों के साथ प्रतिमागृह में स्थापित कर दी जाती है। भरत जब रिश्तेदारी से लौटते हैं तब प्रतिमागृह में दशरथ की प्रतिमा देखकर पिता के मरने का अनुमान लगा लेते हैं। नाटक के नामकरण का यही कारण है। फिर जब उन्हें रामवनवास का समाचार मिलता है तब वे वन में जाकर उन्हें वापस लाने की चेष्टा करते हैं। पर राम प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहते हैं। भरत राजप्रतिनिधि के रूप मे ही पादुका लेकर लौट आते हैं और प्रतिनिधि रूप में राजकाज करते हैं। इसके बाद सीताहरण, रामरावणयुद्ध, राम का लौटना और राज्याभिषेक का कथानक में समावेश किया गया है।

रामायण के कथानक में कई महत्वपूर्ण परिवर्तन किये गये हैं। राम पितृश्राद्ध करते हैं जिसमें रावण पुरोहित का रूप धारण कर आता है और राम को कञ्चनमृग के उत्सर्जन का निर्देश देता है। राम कंचनमृग की तलाश में चले जाते हैं। लक्ष्मण पहले से ही कार्यवश कहीं गये हैं। तब एकाकिनी पाकर रावण सीता का अपहरण कर लेता है। कैकेयी राम को १४ दिन का वनवास देना चाहती है किन्तु धोखे से उसके मुख से १४ वर्ष निकल जाता है; कैकेयी को एक तापस का शाप मिला था जिससे उसके द्वारा ऐसा अनर्थ हो गया। भरत पर आरोप लगाया जाता है कि चित्रकूट से लौटकर भरत ने राम की खोज खबर लेने की चेष्टा ही नहीं की। प्रतिमा में इस दोष का भी निराकरण किया गया है। यहां भरत सुमन्त को भेजकर राम का समाचार लेते हैं और लंकायुद्ध का समाचार

सुनकर राम की सहायता के लिये सेना भेजते हैं। किन्तु तब तक राम विजय कर लौट रहे होते हैं; तब जगंल में आश्रम में ही राम का राजतिलक किया जाता है। राम कैकेयी के आदेश से राज्य स्वीकार करते हैं क्योंकि अपने वचन को वापस लेने का अधिकार कैकेयी को ही प्राप्त है।

प्रतिमा भास के प्रतिष्ठित नाटकों में एक है। इसमें चरित्रों का उदात्तीकरण, उत्कट भावों की अभिव्यक्ति, विभिन्न प्रसंगो की युक्तियुक्त संयोजना, चमत्कार-विधान, अलंकारों की स्वाभाविक नियोजना, रसपोष, प्रवाह पूर्ण शैली आदि अनेक विशेषतायें इसमें विद्यमान हैं।

प्रतिमानिरुद्ध– (ना.कृ.) भीमट के पुत्र वसुनाग (दे.) लिखित नाटक। इसका उल्लेख नाट्यदर्पण में रामचन्द्र गुणचन्द्र ने और अभिनवभारती में अभिनवगुप्त ने किया है। अब यह कृति प्राप्त नहीं होती।

प्रतिराजसूय– (ना.कृ.) यह मकलिंग शास्त्री (दे.) लिखित ७ अंकों का नाटक है। इसमें महाभारत वन पर्व के कथानक का नाटकीकरण किया गया है। मद्रास एवं तंजौर से इसका प्रकाशन हो गया था। इस रचना पर १९२९ में मद्रास संस्कृत एकेडमी से पुरस्कार दिया गया था।

प्रतीक नाटक तत्व– (ना.वि.) प्रतीक का एक अर्थ है प्रतिनिधि या स्थानापन्न। सामान्यरूप से समस्त वाङ्मय और विशेष रूप से काव्य जगत् प्रतिनिधियों से ही सञ्चालित होता है। व्याकरण दर्शन मानता है कि अस्तवल में बंधा घोड़ा या घर में बंधी गाय घोड़ा और गाय शब्द के अर्थ नहीं हैं; किन्तु उनकी जो आकृतियां और भावनायें हमारे अन्तःकरण में अंकित हैं वे ही उस शब्द के अर्थ हैं। इसीलिये शब्द और अर्थ का अभेद माना जाता है। शब्द भी अन्तःकरण में रहते हैं और अर्थ का भी वहीं वास है। इस प्रकार बाह्यजगत् के तत्वों के लिये आन्तरिक बिम्बों का स्थानापन्न प्रयोग ही दूसरे लोगों में अपनी भावना और विचारों के संक्रमण के कारण होता है।

काव्य में यह प्रवृत्ति और अधिक प्रयोजनीय रूप में सामने आती है। रंगमञ्च पर जिन दुष्यन्त और शकुन्तला की प्रेमलीला दिखलाई जाती है वे वास्तविक दुष्यन्त या शकुन्तला नहीं होते किन्तु उनके प्रतिनिधि होते हैं।

उक्त प्रतिनिधि स्थूल होते हैं। दुष्यन्त और शकुन्तला की जिन भावनाओं का अभिनय के द्वारा रंगमञ्च पर प्रदर्शन किया जाता है वे भावनायें किसी की हो सकती हैं। यह स्थूल तत्वों का प्रतिनिधित्व होता है। इसके अतिरिक्त काव्य में एक प्रतिनिधित्व ऐसा भी होता है जिसमें जहां मानव भावनायें सम्भव नहीं होतीं उनका उन स्थानों पर चित्रण किया जाता है। मानवेतर पशु जगत् में इस प्रकार की भावनाओं का प्रदर्शन पञ्चतन्त्र जैसी कहानियों में दृष्टिगत होता है। इनकी अपेक्षा भी इस प्रकार का चित्रण उन

स्थानों पर अधिक सूक्ष्म होता है जहां यह आरोप अचेतन वस्तुओं पर किया जाता है। प्राकृतिक तत्वों में मानव भावनाओं का प्रदर्शन इसी कोटि में आता है। उनकी अपेक्षा सूक्ष्म रूपता वहां अधिक होती है जहां ऐसे तत्वों पर आरोप किया जाता है जो चाक्षुष भी नहीं हो सकते जहां मानव भावनायें स्वयं अभिनय करती हुई दिखलाई जाती हैं।

मानव भावनाओं का अचेतन तत्वों के विषय में प्रयोग या भावनाओं का स्वयं अभिनेतृत्व प्रतीक (symble) रुप में ही प्रयोग होता है अतः इस प्रकार के काव्य को प्रतीक काव्य कहना अधिक संगत प्रतीत होता है। कतिपय विचारकों ने इस प्रकार के काव्य को साध्यवसानकाव्य और किसी ने लाक्षणिक काव्य कहना अधिक उचित समझा। किन्तु ये दोनों शब्द अर्थान्तर के वोधक हैं साध्यवसान रूपकातिशयोक्ति अलंकार का मूल है और लाक्षणिक शब्द विशिष्ट शब्द वृत्ति का परिचायक है। अतः इस अर्थ में प्रतीक शब्द अधिक संगत प्रतीत होता है।

इस शैली की प्रथम विशेषता प्राकृतिक तत्वों एवं मानवमन के सूक्ष्म भावों को पात्रों के रूप में प्रदर्शित कर अध्यात्म के दुर्ज्ञेय रहस्यों को बोधगम्य बनाने के प्रयास में झलकती है। इस नाटक की तीन प्रमुख श्रेणियां हैं– (१) कथानक में रसात्मकता के साथ आदि से अन्त तक चमत्कृति का प्रदर्शन; (२) प्रस्तुत की अपेक्षा अप्रस्तुत में चमत्कृति और (३) कुछ पात्र मानवीय और कुछ अमानवीय।

प्रतीक नाटक की परम्परा और साहित्य– भारतीय साहित्य में चिरकाल से यह प्रवृत्ति देखी जाती है। वैदिक सूक्तों में द्यावा पृथिवी को विश्व के माता पिता, उषा को द्यौः की पुत्री एवं मनोहर वस्त्रों से सजी नर्तकी तथा रात्रि को उषा की प्रभावशालिनी बहन बतलाना इसी के निदर्शन हैं। अभिनय के क्षेत्र में भी कृष्णयजुर्वेद में वाक् और मनस् का तथा बृहदारण्यक उपनिषद् में प्राण और इन्द्रियों का विवाद तथा निर्णय के लिये उनका ब्रह्मा के पास जाना इसी के क्षेत्र में आते हैं। यह परम्परा लौकिक काव्य एवं साहित्य में भी अविकल रूप से प्रचलित रही। अश्वघोष के शारिपुत्र प्रकरण के साथ प्रतीक रूपक (दे.) के जो कतिपय प्रतीक परक पन्ने जुड़े हुये प्राप्त हुये हैं वे विद्या की शास्त्रीय कोटिकी सर्व प्राचीन उपलब्ध रचना है। इस विधि की कतिपय अन्य प्रतिनिधि रचनाओं का नामोल्लेख नीचे किया जा रहा है–

अनुमितिपरिणय (नृसिंह), अमृतोदय (गोकुलनाथ मैथिल), आनन्दचन्द्रोदय (रंगीलाल), गैर्वाणविजय (बाल कवि), चित्तवृत्तिकल्याण (भूमिनाथ), चित्सूर्यालोक (नरसिंह कवि एवं आचार्य), चैतन्यचन्द्रोदय (कविकर्णपूर), (१) जीवन्मुक्तिकल्याण (भूमिनाथ उपनाम नल्लादीक्षित), (२) जीवन्मुक्ति कल्याण (मल्ला सोमयाजी) जीवानन्दन (आनन्दराय), ज्ञानचन्द्रोदय (पद्मसुन्दर), ज्ञानसर्वोदय (वादिचन्द्र), धर्मविजय (भूदेव शुल्क), नाट्यपरिशिष्ट अथवा अन्तर्व्याकरणनाट्यपरिशिष्ट (कृष्णानन्दवाचस्पति), पूर्णपुरुषार्थ चन्द्रोदय (जातवेदस् उपनाम जटदेव) प्रचण्डराहूदय (घनश्याम), प्रवोधचन्द्रोदय (कृष्णमिश्र), प्रमाणादर्श

(शुक्लेश्वर), ब्रह्मविद्या (नारायण शास्त्री), भक्तिवैभव (जीवदेव), भर्तृहरिनिर्वेद (हरिहर), भावनापुरुषोत्तम (श्रीनिवासरत्लखेट), मिथ्याज्ञानदृष्टि (रविदास), मुक्तिपरिणय (सुन्दरदेव), मोहराजपराजय (यशःपाल उपनाम यशोदेव), यतिराजविजय उपनाम वेदान्तविलास (वरदाचार्य), विद्यापरिणय (आनन्दराय), विद्वन्मोदतरंगिणी (रामदेव शतावधानी), विवेकचन्द्रोदय (शिव), विवेकविजय (रामानुज), शान्तिरस (वैकुण्ठपुरी), शिवनारायण महोदय (नरसिंह), शिवभक्तानन्द (बालकवि), शिवलिङ्गसूर्योदय (मल्लारिआराध्य), शुद्धसत्वम् (मदभूसिवेङ्कटाचार्य), श्रीदामचरित (सामराजदीक्षित), सङ्कल्पसूर्योदय (वेदान्त देशिक), सत्सङ्गविजय (वैद्यनाथ), समन्तनाटक (जयन्तभट्ट), सरलचित्सुखीसार (रमेश चन्द्र), सौभाग्यमहोदय (जगन्नाथशीघ्रकवि), स्वानुभूत्यमिधा (अनन्तराम)।

(यह सूची पूर्ण नहीं है। लेखकों के नाम कोष्ठकों में दिये गये हैं। विवरण यथा स्थान दिखिये।)

प्रतीक नाटक– (ना.कृ.) अश्वघोष कृत नाटक। प्रो. लूडर्स ने तुर्फान के ताम्रपत्रों का अनुसन्धान करते हुये शारिपुत्रप्रकरण (दे.) के जो कतिपय पन्ने प्राप्त किये थे उनके साथ इस नाटक और वेश्या विषयक नाटक (दे.) के कुछ पन्ने लगे हुये थे। इससे प्रतीत होता है कि आगे चलकर १६वीं शताब्दी में कृष्णमिश्र के प्रबोधचन्द्रोदय में जो नाट्य-प्रवृत्ति प्रवृत्त हुई थी उसी प्रकार के एक नाटक की रचना अश्वघोष ने भी की थी। यद्यपि यह पूरा नाटक प्राप्त नहीं होता है फिर भी जो अंश प्राप्त होता है उससे इस प्रवृत्ति की झलक तो मिल ही जाती है जिसमें अमूर्त तत्वों का मानवीकरण कर उन्हें रंगमञ्च पर पात्र के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। इसमें बुद्धि, धृति और कीर्ति रंगमञ्च पर अवतीर्ण होकर बुद्ध की यशोगाथा गाते हुये उन्हें मानवनाम से विभूषित प्रकाश पुञ्ज बतलाते हैं। कीर्ति पूछती है– 'अब इस समय बुद्ध कहां रहते हैं?' बुद्धि उत्तर देती है– यह पूछो वे कहां नहीं रहते, क्योंकि उनकी लोकोत्तर शक्ति सीमित नहीं है। वे पक्षी के समान वायु में विचरण करते हैं. . . . . पानी के समान भूमि में समा जाते हैं, अपने स्वरूप को अनेक रूपों में बदल लेते हैं, आकाश में बादल बनकर वर्षा में कारण होते हैं और शाम के समय सूर्य प्रभा से अनुरञ्जित मेघ का सौन्दर्य धारण करते हैं. . . . फिर उनके बीच प्रभा परिवेष से मण्डित भगवान बुद्ध प्रविष्ट होते हैं उपलब्ध पन्नों से इस बात पता नहीं चल पाता कि बुद्ध भी उस वार्तालाप में भाग लेते हैं या नहीं। इस प्रवृत्ति के दूसरे नाटकों में काल्पनिक मानवीकृत पात्रों के साथ भौतिक जगत के मानव भी मिला दिये गये हैं। हो सकता है बाद में बुद्ध भी इस वार्तालाप में शामिल हो गये हों।

पुरातत्व के अध्ययन के आधार पर निर्णय किया गाय है कि इस नाटक की रचना कुषाण काल में हुई थी जिससे इस बात का निर्णय हो जाता है कि यह पुस्तक अश्वघोष की ही लिखी हुई है। किन्तु अपूर्ण होने के कारण इसके उद्देश्य और कथानक के विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता।

प्रद्युम्न– (ना.पा.) यह कृष्णपुत्र है जो कामदेव का अवतार माना जाता है। प्रद्युम्नानन्द नाटक में शम्बरासुर की पुत्री से इसके विवाह का चित्रण किया गया है। विशेष रूप से हरिवंश पुराण में इसका वर्णन आया है।

(१) **प्रद्युम्नविजय**– (ना.कृ.) इस नाटक के रचनाकार शङ्कर दीक्षित (दे.) हैं। इसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम् १.३५२ और विल्सन के थियेटर II ४०२ में किया गया है। ७ अंकों के इस नाटक की रचना बुन्देलखण्ड के प्रसिद्ध राजा छत्रसाल के पौत्र पन्ना के राजा सभासुन्दर के राज्यारोहण के अवसर पर अभिनय के लिये की गई थी।

कश्यप और दिति का पुत्र वज्रनाभ आततायी है। उसकी पुत्री प्रभावती के साथ प्रद्युम्न का विवाह करने के लिये रुक्मिणी उत्सुक है। पत्नी के आग्रह पर कृष्ण प्रद्युम्न गद एवं साम्ब को नटवेष में वज्रपुर भेज देते हैं। उधर इन्द्र द्वारा भेजे गये हंस हंसी के जोड़े से प्रद्युम्न की प्रशंसा सुनकर प्रभावती प्रद्युम्न पर अनुरक्त हो जाती है और दोनों का गन्धर्व विवाह हो जाता है। प्रभावती गर्भवती हो जाती है यह समाचार सुनकर वज्रनाभ प्रद्युम्न पर आक्रमण कर देता है। कृष्ण उसे मार डालते हैं। गद और साम्ब का विवाह भी प्रभावती की बहनों के साथ हो जाता है।

इस नाटक की शैली में अलंकारों की प्रचुरता है। यह शृङ्गारप्रधान रचना है जिसमें एक अंक में सम्भोग का वर्णन किया गया है। लम्बे समासों का प्रयोग कहीं कहीं प्रवाह और अभिनेयता में व्याघात उत्पन्न करते हैं।

(२) **प्रद्युम्नविजय**– (ना.कृ.) रामतारण शिरोमणि नामक बंगाली कवि का लिखा नाटक।

प्रद्युम्नानन्द– (ना.कृ.) वेङ्कटाध्वरीण लिखित ६ अंकों का नाटक। प्रद्युम्न का जन्म कामदेव के अवतार के रूप में हुआ और रति शम्बरासुर की पुत्री थी। इस नाटक में उन दोनों के विवाह का अंकन किया गया है। इसकी रचना प्रजोत्पति वर्ष में की गई थी जो १५७१ ई. सन् में पड़ताहै। ओरियण्टल लायब्रेरी में संस्कृत पाण्डुलिपि के डिस्क्रिप्टिव कैटेलाग की सं. XXI ८४२२ पर इसका उल्लेख है।

प्रद्युम्नाभ्युदय– (ना.कृ.) रविवर्मा संग्रामधीर (दे.) लिखित नाटक। इसमें ५ अंक हैं। इसका विषय है प्रद्युम्न की वज्रपुर के राजा दैत्यराज वज्रनाभ पर विजय और राजकुमारी प्रभावती के साथ प्रद्युम्न का विवाह। इसमें रम्भाभिसरण नामक एक गर्भाङ्क भी है जिसमें रङ्गमञ्च पर प्रेमी युगल की प्रणय लीला का मनोहर चित्रण किया गया है। इसका प्रकाशन त्रिवेन्द्रम संस्कृत सीरीज में १९१० में हुआ था। प्रद्युम्नाभ्युदय नामक एक नाट्यकृति का उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम I ३६२ पर भी किया गया है। पता नहीं यह रविवर्मा लिखित प्रद्युम्नाभ्युदय ही है या कोई अन्य कृति।

प्रद्योत– (ना.पा.) यह उज्जैन का राजा है और इसकी उपाधि महासेन है।

प्रतिज्ञायौगन्धरायण में इसने छलपूर्वक वत्सराज को बन्दी बनाया और पुत्री वासवदत्ता के लिये वीणा वादन के निमित्त नियुक्त कर प्रेम उत्पन्न कर विवाह की योजना बनाई। प्रतिज्ञा यौगन्धरायण में इनके दो पुत्रों गोपाल और पालक का भी उल्लेख किया गया है जिसका उपयोग मृच्छकटिक में हुआ है।

प्रधान वेङ्कप्प– (ना.क़ा.) ये १८वीं शताब्दी में श्रीरामपुरी के निवासी थे। इनका लिखा महेन्द्र विजय नामक डिम प्राप्त होता है। श्रीरामपुरी में ही तिरुवेंगल नाम के महोत्सव में इसका अभिनय हुआ था। इनका लिखा लक्ष्मीस्वयंवर (दे.) (उपनाम विवुधानन्द) भी बतलाया जाता है।

प्रधानि वेङ्कटभूपति– (ना.क़ा.) ये १८वीं शताब्दी में मैसूर के निवासी थे। इन्होंने विभिन्न नाट्य विधाओं पर कई कृतियां प्रस्तुत की हैं– (१) वीरराघवीय एक व्यायोग है, (२) कामकला विलास भाण, (३) रुक्मिणीस्वयंवर अंक, (४) कुक्षिम्भरि भैक्षव प्रहसन, (५) उर्वशीसार्वभौम ईहामृग, (६) विबुधदानव समवकार, (७) सीताकल्याण वीथी। इन नाट्य कृतियों के अतिरिक्त इन्होंने अलंकारमणिदर्पण नामक एक अलंकार ग्रन्थ की भी रनचा की थी। इनकी रचनायें मैसूर पुस्तकालय के संस्कृत पाण्डुलिपि अनुभाग में सं. २७४ से २८७ तक और सं. २९६ पर देखी जा सकती है। इन्हें वेङ्कप्पा इस छोटे नाम से भी याद किया जाता है।

प्रपन्नविभीषण– (ना.कृ.) यह लक्ष्मणसूरि का लिखा नाटक है। इसका प्रकाशन मद्राससहृदयसंस्कृत जर्नल अंक २०, २२ और २३ में हुआ।

प्रपन्नसपिण्डीकरणनिरास– (ना.क़ा.) यह घट्टशेषाचार्य लिखित एक प्रतीक नाटक है। इसमें सिद्ध किया गया है कि प्रपन्नों (शरणागतों) का सपिण्डीकरण नहीं होता। मद्रास की ओरियण्टल लायब्रेरी के पाण्डुलिपि अनुभाग की विवरणात्मक सूची में सं. ८४२४ पर इसका उल्लेख किया गया है।

प्रबुद्धरौहिणेय– (ना.कृ.) जैन मुनि एवं कवि रामभद्र (दे.) लिखित ६ अंकों का प्रकरण। पार्श्वचन्द्र के पुत्रों यशोवीर और अजयपाल ने युगादिदेव तीर्थंकर ऋषभ का मन्दिर बनवाया था जिसमें उत्सव का आयोजन किया गया था। उसी अवसर पर इस प्रकरण का प्रथम अभिनय किया गया था। रौहिणेय इस प्रकरण का मुख्य पात्र है। इसमें अपहरण, डाकेजनी, अभियोग, खोजबीन, मुकदमेवाजी और उसके बाद अपराध बोध एवं प्रबोधन नाट्य विषय हैं।

दस्यु का मित्र गृहस्वामी को बातों में उलझाये रहता है, इसी बीच दस्यु गृहस्वामी की पत्नी मदनवती का अपहरण कर लेता है। इसके बाद वह युवक मनोरथ की मां का वेष धारण कर एक बनावटी सांप से आस पास के लोगों को भय दिखलाकर मनोरथ के आभूषणों को लूट लेता है। मगध के श्रेणिक के यहां इन घटनाओं की शिकायत की

जाती है। प्रशासकीय स्तर पर खोजवीन होती है, मुकदमा चलता है। दस्यु स्वयं को निर्दोष सिद्ध करने की भरसक चेष्टा करता है। इसी प्रसंग में नृत्य शिक्षक भरत के तत्वावधान में एक नृत्य गोष्ठी का आयोजन किया जाता है जिसमें कुछ ऐसा वातावरण बनाया जाता है कि डाकू के मन में भ्रान्ति उत्पन्न हो जाती है कि वह स्वर्ग के देवताओं के सामने है, इसलिये उसका झूठ चल नहीं सकेगा। किन्तु तभी उसे ध्यान आता है कि देवताओं के लक्षण तो इन अभिनेताओं में मिलते ही नहीं। अतः वह निर्भय होकर असत्य पक्ष पर आरूढ रहने का निश्चय करता है। किन्तु जब मुकदमे का फैसला हो जाता है तब उसे अपराधबोध होता है और वह राजा और मन्त्री को वैभारपर्वत पर लेजाकर चुराई हुई धनराशि, गायव युवक और अपहृत स्त्री सभी कुछ वरामद करा देता है।

इस नाटक की रचना १२वीं शताब्दी में हुई थी। विस्तृतभूमिका के साथ १९१७ में भावनगर से इसका प्रकाशन कर दिया गया था।

प्रबुद्धहिमाचलम्– (ना.कृ.) ६ अंकों के इस नाटक की रचना विश्वेश्वर विद्याभूषण ने २०वीं शताब्दी में की थी। विशालपुर का राष्ट्रपाल मठ-मन्दिरों की सारी सम्पत्ति राज्यायत्त कर लेता है। राष्ट्रपति विक्रमवर्धन देवस्थान पर आक्रमण करने का निश्चय करता है। देवस्थान की जनता देवस्थान के राजा विजयकेतु का साथ देती है। इसी बीच विजयकेतु का विवाह गन्धर्व राजकन्या मधुच्छन्दा से हो जाता है। इससे विजयकेतु को गन्धर्वराज की भी सहायता मिल जाती है। इससे भारत का गौरव बढ़ जाता है।

इसमें सांस्कृतिक आदर्शों का प्रतिफलन हुआ है। प्रणयपारिजात पत्रिका में इसका प्रकाशन हो गया था। आकाशवाणी से इसका प्रसारण भी किया गया था।

प्रबोध– (ना.पा.) प्रबोधचन्द्रोदय का प्रधान पात्र। मनस् से निवृत्ति में जो सन्तत्ति-परम्परा चली थी उसमें विवेक से उपनिषद् में इसका जन्म हुआ था। इसने महामोह की सन्तति परम्परा को समाप्त कर विवेक का राज्य पुनः स्थापित किया।

प्रबोधचन्द्रोदय– (ना.कृ.) कृष्ण मिश्र (दे.) विरचित प्रतीक रूपक। इस नाटक में महाभारत के समान एक ही परिवार के अच्छे और बुरे दो प्रतिद्वन्दियों का संघर्ष दिखलाया गया है। अन्त में अच्छे पक्ष की विजय होती है।

पुरुष (परमतत्व ब्रह्म) का माया से मनस् नामक पुत्र उत्पन्न होता है जिसके दो पत्नियां हैं– प्रवृत्ति और निवृत्ति। प्रवृत्ति से महामोह का जन्म होता है। उससे वंश विस्तार द्वारा काम, रति, दम्भ, अहंकार, क्रोध, लोभ, तृष्णा इत्यादि अनेक व्यक्तित्व सत्ता में आते हैं। इसी प्रकार निवृत्ति से विवेक का जन्म होता है जिससे सद्गुणों सन्तोष, वस्तुविचार, क्षमा इत्यादि का जन्म होता है।

महामोह ने विश्व की सर्वोत्कृष्ट मुक्तिनगरी काशी पर दम्भ के नेतृत्व में विजय प्राप्त कर ली है जहां दम्भ का पितामह अहंकार भी पहुंच गया है। विधर्मी, लोकायत,

चार्वाक इत्यादि महामोह के सहायक हैं और उसकी परिचारिकायें हैं– मिथ्यादृष्टि, विभ्रमवती इत्यादि। महामोह को अपने राज्यभ्रंश की चिन्ता बनी रहती है, क्योंकि भविष्य वाणी की गई है कि विवेक की जो सन्तान उपनिषद् (स्त्री) से उत्पन्न होगी वह महामोह का नाश कर देगी। कुशल इसी में है कि उपनिषद् और विवेक का मेल न हो पाये।

धर्म ने महामोह के प्रतिकूल विद्रोह का झंडा उठा रक्खा है। वह और श्रद्धा अनेक कठिनाइयों के बाद विवेक को उपनिषद् से मिलाने में सफल हो जाते हैं। उनसे प्रवोध नाम का पुत्र और विद्या नामक पुत्री का जन्म होता है। अन्त में महामोह और विवेक का युद्ध होता है। विद्या महामोह तथा उसके वर्ग को निगल जाती है और राज्य पर विवेक का अधिकार हो जाता है। श्रद्धा की पुत्री शान्ति भी उसे मिल जाती है। इस समस्त गति-विधि में विष्णुभक्ति से सहायता मिलती है।

मन पुत्र महामोह और पत्नी प्रवृत्ति की मृत्यु से दुःखी है। वेदान्तविद्या उसे समझाती है और वह निवृत्ति (दूसरी पत्नी) के साथ वानप्रस्थ में चले जाने का निश्चय करता है।

महामोह द्वारा नियुक्त मधुमती अब भी आदि पिता पुरुष (ब्रह्म) को अपने अधिकार में लिये हुए है। माया उसकी सहायता करती है। तर्क पुरुष को समझाता है जिससे पुरुष माया के बन्धन से छूट जाता है। विद्या पुरुष को तत्वज्ञान से मण्डित कर उसे मुक्त करती है। इस दिशा में श्रद्धा की पुत्री शान्ति का भी योगदान पर्याप्त है।

विष्णुभक्ति और वैष्णवसम्प्रदाय की दृष्टि से वेदान्त का महत्व बतलाना इस रचना का मुख्य उद्देश्य है। इसमें अधार्मिक तत्वों का निराकरण कर उन पर धार्मिकता की विजय दिखलाई गई है। इसमें जहां एक विद्वत्तापूर्ण कल्पना का चमत्कार है वहां वास्तविकता के तत्व भी चमत्कृत कर देने के लिये पर्याप्त हैं। धार्मिक आग्रह के साथ ही इसमें नाटकीयता के तत्व भी प्राप्त होते हैं। इसमें चरित्रचित्रण भी स्पष्टता के साथ किया गया है। प्रकट शृङ्गारिक भावना के माध्यम से इसमें अद्वैतदृष्टि का प्रचार किया गया है तथा अन्य दार्शनिक मान्यताओं का मजाक उड़ाया गया है। विदूषक के न होते हुये भी इसमें विभिन्न विरोधी सम्प्रदायों की मजाक उड़ाने में हास्यरस का भी पर्याप्त परिपाक हुआ है।

पूर्ण नाटक के रूप में यह पहला प्रतीक रूपक है। निश्चयात्मक रूप से नहीं कहा जा सकता कि इसकी रचना अश्वघोष के प्रतीक रूप की प्रेरणा से हुई या यह कृष्ण मिश्र का नया प्रवर्तन था। किन्तु इस नाटक को प्रतिष्ठा बहुत अधिक मिली। अनेक अनुवाद प्रकाशित हुये। अनेक रचनायें इसके आदर्श पर हुईं। यह इसके महत्व का बहुत बड़ा मानदण्ड है। सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसकी शैली प्रसादगुणपूर्ण एवं नाटकोपयोगी है। भले ही इसमें नाट्य तत्वों की कमी लक्षित की जाय किन्तु इससे इसके महत्व मे कमी नहीं आती।

कहा जाता है कि चन्देल नरेश महाराज कीर्तिवर्मा (राज्यकाल १०४९ से १११६) चेदिराज कर्ण पर विजय प्राप्त करने में रक्तपात से दुःखी हो गये थे उन्हीं वैराग्य के क्षणों में उनके राजकवि गुरुवर कृष्ण मिश्र ने प्रस्तुत नाटक की रचना की। इसकी लोकप्रियता के कारण ही इसके कई अनुवाद प्रकाशित हुये। इस नाटक का प्रकाशन बम्बई से हुआ था। इसके अनुवाद अंग्रेजी, जर्मनी इत्यादि अनेक भाषाओं में किये गये। अनुवाद एवं समीक्षा लिखने वालों में गोल्डष्टकर, टेलर, मैक्डानल, वेवर, कीथ इत्यादि का विशेष रूप से उल्लेख किया जा सकता है।

इस नाटक पर कई टीकायें लिखी गई जिनमें प्रमुख रूप से उल्लेख्य हैं– रुद्रदेव की टीका (बम्बई से प्रकाशित), गणेश की टीका (कैटेलागस कैटेलागोरम III ७५ पर उल्लिखित), सुब्रह्मण्यं सुधी की टीका (ओरियण्टल लायब्रेरी मद्रास के डिस्क्रिप्टिव कैटेलाग XXI ४३२९ पर उल्लिखित) एवं तंजौर पुस्तकालय VIII ३४३६ में प्राप्य) रामदास की टीका (ट्रावन ७७ संस्करण मद्रास, लीपजिग और पूना पाण्डुलिपि वर्ष १५४५ A.D.) सदात्मामुनि की टीका (कैटेलागस कैटेलागोरम II ७८ और २११) घनश्याम की टीका (तंजौर VIII ३४३२) महादेव न्यायालंकार की टीका (कलकत्ता से प्रकाशित) आद्यनाथ की टीका। (शिवपुर से प्रकाशित) और गोविन्द मित्र की टीका (त्रिवेन्द्रम से प्रकाशित)।

प्रभाकर श्रीनिवास– (ना.का.) (२) हरिश्चन्द्रचरित नाटक (दे.) के लेखक जिसका उल्लेख भोजराज ने शृङ्गार प्रकाश में और रुद्रट ने काव्यालंकार में किया है।

प्रभावत– (ना.कृ.) रघुनाथ लिखित नाटक। मैसूर पुस्तकालय में पाण्डुलिपि अनुभाग की ग्रन्थ सूची २७८ पर इसका उल्लेख किया गया है।

(१) **प्रभावती**– (ना.कृ.) यह नाटिका अनादिमिश्र (दे. ३ अनादिमिश्र) लिखित बतलाई जाती है। इसके विषय में और कुछ ज्ञात नहीं है।

(२) **प्रभावती**– (ना.कृ.) १८वीं शताब्दी के अनादिमिश्र के पूर्वज कविचन्द्र दिवाकर (दे.) का लिखा नाटक।

प्रभावती परिणय– (ना.कृ.) हरिहर (दे.) लिखित ६ अंकों का नाटक। इसका उल्लेख साहित्यदर्पण में किया गया है। कुछ विचारकों का मत है कि ये वेही हरिहर है जिनका लिखा भर्तृहरिनिर्वेद नामक प्रतीकनाटक प्रसिद्ध है। कतिपय अन्य विचारकों की मान्यता इससे भिन्न है।

कैटेलागस कैटेलागोरम १.३५४ पर इसका उल्लेख है। इस नाटक का प्रकाशन १९६९ में चौखम्भा संस्कृत सीरीज बनारस से हो गया था।

नायक प्रद्युम्न प्रभावती पर मोहित होकर वज्रनाभ पुरी पहुंचता है। जहां वह एक नाटक में नायक का अभिनय करता है। उसको देखकर प्रभावती उस पर अनुरक्त हो जाती है। अन्त में वह अपने वास्तविक रूप में प्रकट होता है किन्तु अदृश्य है। वज्रनाभ

युद्ध करने आता है जिसे इन्द्र और कृष्ण की शक्ति से प्रद्युम्न मार डालते हैं। नायक और नायिका का विवाह हो जाता है।

इसमें शृङ्गार और वीर रसों का मिला जुला प्रवाह है। स्त्री पात्रों की प्रधानता है। कहा जाता है इस नाटक की रचना कवि ने अपने छोटे भाई नीलकण्ठ के पढ़ने के लिये की थी। इनका समय १७वीं शताब्दी का पूर्वार्ध है।

प्रभावतीप्रद्युम्न- (ना.कृ.) यह पुराण कथा पर आधारित, रामकृष्ण लिखित नाटक है। कैटेलागस कैटेलागोरम II ७९ में इसका उल्लेख किया गया है।

प्रभावतीहरणम्- (ना.कृ.) भानुदत्त दैवत का १९वीं शती के मध्य का लिखा कीतनियां श्रेणी का रूपक। इसमें संवाद संस्कृत और प्राकृत में लिखे गये हैं और गीतों के लिये मैथिली भाषा का प्रयोग किया गया है। इसमें कृष्णपुत्र प्रद्युम्न और वज्रनाभ दैत्य की पुत्री प्रभावती के विवाह का अंकन किया गया है।

प्रभुदत्तशास्त्री- (ना.का.) ये दिल्ली के वीसवीं शताब्दी के कवि हैं। इनका लिखा संस्कृत वाग्विजयम् (उपनाम संस्कृत वाग्विभवम् या केवल संस्कृत विजयम् (दे.)) नाटक दिल्ली से ही सन् १९४२ में प्रकाशित हुआ था।

प्रभुनारायण सिंह- (ना.का.) ये काशी ष्टेट के राजा थे। इनका शासनकाल १८८६ से १९२५ तक रहा। इनका लिखा पार्थपाथेयम् १९२८ में प्रकाशित हुआ था।

प्रमाणादर्श- (ना.कृ.) शुक्लेश्वर (दे.) का लिखा नाटक। यह अभी तक साहित्य जगत् को प्राप्त नहीं हुआ है। इसका उल्लेख दशरूपकम् की हाल-लिखित भूमिका में किया गया है और कैटेलागस कैटेलागोरम सं. १.६५८ पर इसका संकलन किया गया है।

प्रमुदितगोविन्दम्- (ना.कृ.) सदाशिव लिखित रुपक। इसमें ७ अंकों में समुद्रमन्थन कथानक का अंकन किया गया है। शृङ्गार रस की प्रधानता है, किन्तु इसमें यथास्थान वीर रस का भी समावेश किया गया है। कीर्तनियाँ नाटकों की शैली में इसकी रचना हुई है। इसका रचनाकाल १८वीं शताब्दी है। इसका प्रथम अभिनय धारकोटे नरेश की राजसभा में किया गया था।

प्रयोगाभ्युदय- (ना.कृ.) अज्ञातनामा कवि का लिखा प्रकरण जिसका उल्लेख रामचन्द्र गुणचन्द्र के नाट्य दर्पण में किया गया है।

प्रवृत्ति- (ना.पा.) प्रबोधचन्द्रोदय (दे.) में यह मनस् की पत्नी है जिसका पुत्र महामोह है जो काम, रति, दम्भ, अहंकार, इत्यादि परम्परा का वंश विस्तार करने वाला है। इसकी सौत निवृत्ति है जिसका वंश अलग से विस्तारित होता है। प्रवृत्ति का पुत्र महामोह उग्रता के साथ निवृत्ति की वंश परंपरा को उसी प्रकार बिल्कुल दवा लेता है जैसे कौरवों ने पाण्डव पक्ष को बिल्कुल पराभूत कर दिया था। किन्तु परिणाम भी महाभारत का जैसा

ही होता है। निवृत्ति की सन्तान परम्परा में विवेक से उपनिषद् में प्रबोध नामक जो पुत्र उत्पन्न होता है वह प्रवृत्ति की सन्तति को समाप्त कर देता है; संघर्ष में प्रवृत्ति का भी वध कर दिया जाता है जो मनस् के दुःख का कारण बनता है।

प्रशान्तरत्नाकर– (ना.कृ.) कालीपद का लिखा ९ अंकों का नाटक। इस नाटक की रचना कृत्तिवास द्वारा बंगला में लिखित रामायण के वाल्मीकि चरित्र पर आधारित है। रत्नाकर एक पात्र है जो दरिद्रता से पराहत होकर आत्महत्या करना चाहता है, किन्तु उसी समय उसे डाकुओं द्वारा लूटी जाती हुई एक स्त्री दिखलाई पड़ती है। वह उस स्त्री को डाकुओं के चंगुल से छुड़ाता है, साथ ही वह डाकेजनी से धनोपार्जन की शिक्षा भी ले लेता है और डाकुओं के दल में शामिल हो जाता है। धीरे धीरे वह डाकुओं का सरगना बन जाता है। किन्तु डाकेजनी से प्राप्त धन को दीन दुखियों के हित में लगाता है। इसी व्यवसाय के प्रसंग में वह राजा कामेश्वर के कोश को लूटता है। राजा उसके पिता और पुत्र को पिटवाता है। रत्नाकर बदला लेना चाहता है। किन्तु उसका पिता च्यवन उसे सत्पथ पर लाने के लिये आत्मघात करता है। रत्नाकर की मां शोक में मर जाती है। उसका पुत्र क्षय रोग में मरता है और पत्नी विष खाकर आत्महत्या करती है। रत्नाकर अकेला रह जाता है तथा नदी में डूब कर आत्महत्या करना चाहता है। इसी समय 'सुमीत' आकर उसे शान्तिनिकेतन में भक्ति करने का उपदेश देती है। वहीं नारद उसे राममन्त्र देते हैं जिसके प्रभाव से वह वाल्मीकि बनकर रामायण की रचना करता है।

इस नाटक में बंगाल का अकाल, लूटमार, अग्निदाह, दुर्भिक्ष इत्यादि समसामयिक विषयों का अच्छा चित्रण किया गया है। इसका अभिनय संस्कृतपरिषद् के सदस्यों द्वारा किया गया था। यह बीसवीं शताब्दी की रचना है।

प्रसङ्गिका– (ना.कृ.) यह एक प्रहसन है जिसकी रचना **हरिजीवन मिश्र** ने १८वीं शताब्दी में की थी। हरिजीवन मिश्र का उल्लेख **कैटेलागस कैटेलागोरम १.५७०** में किया गया है।

प्रसन्नकाश्यपम्– (ना.कृ.) तीन अंकों के इस नाटक की रचना जग्गू श्रीवकुलभूषण (दे.) ने की थी। इसमें शाकुन्तलम के बाद की घटनाओं का चित्रण किया गया है। दुष्यन्त पत्नी और पुत्र सहित कण्वाश्रम में आते हैं और कण्व ऋषि का आशीर्वाद प्राप्त करते हैं। इसका प्रकाशन १९२१ में हो गया था।

प्रसन्नपार्थम्– (ना.कृ.) (१) नारायण शास्त्री लिखित ५ अंकों का नाटक।

प्रसन्नप्रसादम्– (ना.कृ.) दस अंकों के इस नाटक की रचना डा. रमा चौधरी ने २०वीं शताब्दी में की थी। इसमें बंगाली गायक रामप्रसाद की जीवनगाथा को चित्रित किया गया है। उनके गीतों का संस्कृतीकरण भी इस नाटक की एक विशेषता है।

प्रसन्नराघव– (ना.कृ.) यह जयदेव लिखित ७ अंकों का नाटक है जिसमें रामायण

की कथा को आधार बनाया गया है। नाटक को नवीनता और विचाररूपता प्रदान करने के लिये कवि ने अनेक नवीन उद्भावनायें की हैं। प्रथम अंक में सीतास्वयंवर में रावण और वाण एक ही समय पर आते हैं दोनों का कथोपकथन बहुत ही मनोरंजक बन पड़ा है। साथ ही उन का मजाक उड़ाया जाना भी मनोरंजक है। नाटक में नदियों और सागर की बातचीत से कथा सूत्र संयोजना और घटनाओं के विवरण की सूचना दी गई है। नाटक में दो विद्याधरों का प्रवेश भी अद्भुत है जो वियोगविकल राम को मायाशक्ति से रावण के यहां बन्दिनी सीता के दर्शन करा देते हैं।

जब रावण सीता को मारने के लिये तलवार उठाता है तब उसके हाथ पर हनुमान द्वारा मरे गये अक्ष का सर आ गिरता है।

प्रस्तावना में एक विचित्र कथा दी हुई है– सूत्रधार के भाई गुणराम से प्रभावित होकर दक्षिण में एक नट ने स्वयं को गुणराम कहकर उसकी कीर्ति का अपहरण कर लिया था। तब गुणराम ने दक्षिण में जाकर सुकण्ठ की सहायता से उसको पराजित किया। यह कथा सीताहरण, सुग्रीव सहायता और रावण की पराजय की ओर संकेत करती है।

इस नाटक में संवादों द्वारा कथानक की सूचनायें अधिक हैं, वास्तविक दृश्य अंश उसी अनुपात में कम हो गया है। अनेक संवाद उबाऊ हैं। पंचम अंक में समुद्र और नदियों का एकत्र दृश्य मनोरंजक है यद्यपि उसका सम्बन्ध मूल कथानक से विल्कुल नहीं है। समुद्र के ऊपर से उठते हुए ज्योतिष्पिण्ड को देखने के लिये सभी नदियां और समुद्र उद्ग्रीव हो जाते हैं जोकि वास्तव में समुद्र को पार करते हुये हनुमान हैं।

नाटक में हास्यरस की भी अच्छी सृष्टि हुई है। बड़े छन्दों को अधिक महत्व दिया गया है। मायामूलक घटनायें अद्भुतरस के क्षेत्र में आती हैं।

इस नाटक का प्रकाशन बम्बई से १८८४ में और पूना से उसी वर्ष हो गया था। इसका प्रकाशन मद्रास, कलकत्ता और बनारस से भी हो चुका है। **गंगानाथ झा द्वारा** अनुवाद बनारस से प्रकाशित हुआ है।

इस पर टीकायें हैं– लक्ष्मीधर की टीका, वेङ्कटाचार्य की टीका **(बम्बई से प्रकाशित)**, रघुनन्दन की टीका (कैटेलागस कैटेलागोरम II ८१ और II २११ पर उल्लिखित), लक्ष्मण की टीका (ओरियण्टल लायब्रेरी मद्रास की संस्कृत पाण्डुलिपियों की त्रैवार्षिक खोज रिपोर्ट III ३२२०), नरसिंह राव की टीका (त्रैवार्षिक रिपोर्ट III ३३९४)।

प्रहसन साहित्य– (ना.वि.) अद्भुतरंग (हरिजीवन मिश्र), आनन्दकोश, **कन्दर्प केलि**, कालिकान्त कौतुक (रामकृष्ण), कालिकेलि, कालेयकौतूहल (भारद्वाज) कुक्षिम्भरि **(वेङ्कटाचार्य)**, कुक्षिम्भरिभैक्षव (प्रधानि वेंङ्कटभूपति), कुहनाभैक्षव (तिरुमल नाथ), कुहनाभैरव **(अय्यलुनाथ)**, कैतुकरत्नाकर (कवितार्किक), कौतुकसर्वस्व (गोपीनाथ), चण्डानुरञ्जन (घनश्याम), देवदुर्गति, धूर्तचरित, धूर्तनर्तन (सामराज), धूर्तविडम्बन (महेश्वर), धूर्तसमागम (ज्योतिरीश्वर) नाटवाट

(यदुनन्दन), पयोधिमन्थन, पलाण्डुमण्डन, पाषण्ड विडम्बन, प्रासङ्गिका (हरिजीवन मिश्र), बृहत्सुभद्रक, भानुप्रबन्ध (वेङ्कटेश), मत्तविलास (महेन्द्र विक्रम वर्मा), मिथ्याचार (वैद्यनाथ), मुण्डित, लाटक मेलक अथवा दन्तुरा परिणय (शङ्खधर), लोकरञ्जन (श्रीनिवासाचार्य) विनोदरंग, विबुधमोहन (हरिजीवन मिश्र), वेङ्कटेशप्रहसन (वेङ्कटेश्वर), सहृदयानन्दन (हरिजीवन मिश्र), साण्डिल्य परिव्राजक, सान्द्रकुतूहल (कृष्णदत्त), सुभगानन्द (वासुदेव नरेन्द्र उपनाम श्रीवत्साङ्क), सोमवल्ली योगानन्द (अरुणगिरिनाथ) हास्य रत्नाकर, हास्यार्णव (जगदीश), हृदयविनोद (कविपण्डित)।

(यह सूची पूर्ण नहीं है, लेखकों के नाम कोष्ठक में दिये गये हैं। विवरण यथास्थान देखिये।)

प्रहस्त– (ना.पा.) प्रसन्नराघव में रावण का सहायक।

माल्यवान मन्त्री ने इसी के माध्यम से सेतुबन्ध और लंका पर राम के आक्रमण का चित्र रावण के पास भेजा है। किन्तु रावण उसे चित्रकार की कल्पना के अतिरिक्त और कुछ नहीं समझता।

रावण द्व्यर्थक भविष्यवाणी की भी परवा नहीं करता, किन्तु मन्दोदरी के साथ प्रहस्त भी वास्तविकता से भयभीत है। रावण उसकी आशंका को हंसकर उड़ा देता है।

प्रह्लादनदेव– (ना.का.) ये माउण्टआबू के परमारवंशीय यशोधवल के पुत्र और धाराधवल के भाई थे, युवराज पद पर अभिषिक्त थे। इनकी राजधानी चन्द्रावती में थी। युद्ध कौशल और साहित्यसाधना दोनों में इनको प्रतिष्ठा प्राप्त हुई थी। स्वतन्त्र युद्धों में इन्हें सफलता मिली ही थी, दिल्ली की सेना को खदेड़ने में वास्तुपाल की सहायता भी की थी। शस्त्र और शास्त्र एवं काव्य साधना इन सभी क्षेत्रों में प्रवीणता अपने भाई के तत्वावधान में प्राप्त की थी। इनका समय १२२० से १२६५ तक था।

इनका पार्थपराक्रम (दे.) नाम का एक व्यायोग प्राप्त होता है जिसमें विराट् पुर के युद्ध में अर्जुन के पराक्रम का चित्रण किया गया है। शैली की प्रौढता और स्पष्टता इनकी रचना के प्रमुख गुण हैं कीर्तिकौमुदी में इनकी प्रशंसा की गई है और सूक्तिमुक्तावली में उद्धरण दिये गये हैं।

प्रह्लादविनोदनम्– (ना.कृ.) नित्यानन्द लिखित प्रह्लादचरित्र विषयक पांच अंकों का नाटक। इसमें न तो अर्थोपक्षेपक हैं और न प्राकृत भाषा का प्रयोग किया गया है।

प्राकृतमणिदीप– (ना.कृ.) इस नाटक की रचना अप्पय्य दीक्षित ने १७वीं शताब्दी में की थी। इसके विषय में अन्य कुछ ज्ञात नहीं है।

प्राज्ञसामन्तम्– (ना.कृ.) (१) नारायण शास्त्री (दे.) का लिखा ५ अंकों का नाटक।

प्राभावतम्– (ना.कृ.) रघुनाथसूरि लिखित ७ अंकों का नाटक। इसमें प्रभावती और प्रद्युम्न की प्रणयलीला का चित्रण किया गया है। रचना शृङ्गार प्रधान है। रंगनाथ

यात्रोत्सव में इसका प्रथम अभिनय किया गया था। इसका रचनाकाल १८वीं शताब्दी है।

प्रायश्चित्तम्- (ना.कृ.) रमानाथ मिश्र लिखित ५ अंकों की नाट्यकृति। इसकी रचना काल्पनिक कथानक को लेकर हुई है। किसी किसान ने एक निराश्रित बालिका का पालन पोषण किया है। राजपुत्र उस कन्या पर अनुरक्त है। किन्तु राजा उस किसान से दुर्व्यवहार करता है और उसे दण्ड देता है। साथ ही वह राजकुमार को निर्वासित कर देता है। बाद में राजा पछताता है और राजकुमार का विवाह उस कन्या से तो कर ही देता है साथ ही प्रायश्चित रूप में अपनी कन्या का विवाह भी किसान के युवक से कर देता है।

यह नाटक नायिकाप्रधान है। इसकी रचना १९२१ में हुई थी और प्रकाशन सम्भवतः १९६१ में हो गया था।

प्रियदर्शिका- (ना.कृ.) महाराज हर्ष (दे.) की लिखी नाटिका। इसकी विषय वस्तु उसी प्रकार की है जिस प्रकार की रत्नावली (दे.) की है। इसमें चार अंक हैं।

अंगराज दृढवर्मा ने पुत्री प्रियदर्शीका का विवाह वत्सराज उदयन से करने का निश्चय किया है। किन्तु कलिंगराज उसे चाहता है, वह अंगराज पर आक्रमण करता है और उसे बन्दी बना लेता है। इसके पहले ही कञ्चुकी विनयवसु प्रियदर्शिका को लेकर चल देता है। मार्ग में उसे अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। अन्त में वह वत्सदेश में पहुंच जाता है और आरण्यका के नाम से प्रियदर्शिका को वासवदत्ता के पास दासी के रूप में रख देने में सफल हो जाता है। राजा युवती को देखता है और उस पर आसक्त हो जाता है। प्रियदर्शिका भी आसक्त है और अपना प्रेम दासी को बतला देती है। दोनों का वार्तालाप राजा सुन लेता है। सखी चली जाती है और तब भौंरे के सम्भ्रम से प्रियदर्शिका (आरण्यका) भागती है और संयोग से राजा के बाहुपाश में आ जाती है। दोनों का प्रणय सम्बन्ध चल निकलता है।

वासवदत्ता (रानी) अपनी वृद्धा सहेली सांकृत्यायनी से अपने विवाह का दृश्य नाटक द्वारा प्रस्तुत करने को कहती है। नाटक का आयोजन किया जाता है जिसमें आरण्यका को रानी की और मनोरमा को राजा की भूमिका दी जाती है। मनोरमा और विदूषक के प्रयत्न से राजा स्वयं अपनी भूमिका निभाने को राजी हो जाता है। वासवदत्ता नाटक देखने आती है। राजा और आरण्यका का अभिनय बहुत सफल होता है जिसे देखकर रानी जल उठती है और वहां से उठकर चली जाती है। वह सोते हुये विदूषक को जगाती है और विदूषक राजा के प्रेम की सभी बातें वासवदत्ता को बतला देती है। रानी राजा की किसी बहानेबाजी को सुनना नहीं चहती। वह आरण्यका को बन्दीगृह में डाल देती है। रानी को अपने मौसा दृढवर्मा के बन्दी बना लिये जाने का समाचार मिलता है। वह दुःखी हो जाती है। इसी बीच उसे समाचार मिलता है कि कलिंगराज हार गया है और

दृढवर्मा पुनः राज्य में प्रतिष्ठित हो गया है। किन्तु उसे पुत्री के खो जाने का दु:ख है। मनोरमा घवराई हुई आती है और आरण्यका के विष पी लेने का समाचार देती है। राजा को उसकी चिकित्सा करनी है। अतः वह वहां लाई जाती है। राजा उसे होश में लाते हैं; वह पहिंचान ली जाती है। जब वासवदत्ता को ज्ञात होता है कि वह उसकी मौसेरी बहन है तब वह उसका हाथ प्रसन्नता पूर्वक राजा को दे देती है और दोनों का विवाह हो जाता है।

प्रियदर्शिका सम्भवतः पहला नाटक है जिसमें गर्भाङ्क का प्रयोग किया गयाहै। वैसे यह नाटक पूर्ण रूप से रत्नावली का उल्था ही कहा जा सकता है। इसमें मौलिकता नहीं है। इसका लक्ष्य नये रूप में पुरानी वस्तु का रसास्वादन कराने के अतिरिक्त और कुछ नहीं।

प्रियदर्शिका– (ना.पा.) इसी नाम के नाटक की नायिका। वह अंगराज की बहन है, अभूतपूर्व सुन्दरी है जिसे कलिंगराज चाहता है। किन्तु उसका भाई उसे वत्सराज के लिये निश्चित कर चुका है और स्वयं उसे वत्सराज के पास भेज देता है। अनेक कठिनाइयों के बाद भाग्य उसे वत्स के राजघराने में पहुंचा देता है।

वह सुन्दरी तो है ही, वत्सराज का स्नेह प्राप्त करने में उसे कुछ भी कठिनाई नहीं होती। साथ ही उसने भावुक हृदय पाया है। वह स्वयं राजा से प्रेम करती है, रानी की वह कोप भाजन है, फिर भी अपने प्राप्य प्राप्त करने में जरा भी भयभीत नहीं है। वह कारागार का कष्ट भी भोगती है, प्रेम के आवेश में विषपान भी कर लेती है। किन्तु यह विषपान ही उसे उसका अभीष्ट प्राप्त करने में सबसे बड़ा सहायक सिद्ध होता है। वह कलाभिज्ञ भी है और कलाकार भी। जब उसे वासवदत्ता का अभिनय राजा के साथ करने के लिये दिया जाता है तब उसमें सफलता उसकी कलाभिज्ञता का एक बहुत बड़ा प्रमाण है।

प्रियम्बदा– (ना.पा.) देखो अनसूया।

प्रीतिविष्णुप्रियम्– (ना.कृ.) यतीन्द्र विमल चौधरी लिकित ११ अंकों का नाटक। इसमें चैतन्य महाप्रभु की पत्नी विष्णु प्रिया का चित्रण किया गया है। इसका प्रकाशन १९५८ में प्राच्यवाणी में और १९६१ में मञ्जूषा में हुआ था। इसी लेखक का लिखा 'भक्तिविष्णुप्रयम्' (दे.) नाटक इसका पूरक कहा जा सकता है।

प्रेमपीयूषम्– (ना.कृ.) राघवल्लभ त्रिपाठी (दे.) लिखित नाटक।

प्रेमविजयम्– (ना.कृ.) सुन्दरेश शर्मा लिखित ७ अंकों का कल्पित कथावस्तु को लेकर लिखा गया शृङ्गारप्रधान नाटक। इसका अभिनय संस्कृत एकेडमी द्वारा किया गया था। सम्भवतः इस नाटक का प्रकाशन हो चुका है।

हेमचन्द्र मगधनरेश प्रतापचन्द्र का रक्षक है और विदेह पर विजय के उपलक्ष्य में

पुरस्कार प्राप्त करता है। यह बात सेनाध्यक्ष दुर्मति को अच्छी नहीं लगती और कपटप्रयोग से हेमचन्द्र के वध का असफल प्रयोग करता है। इसी बीच राजकुमारी का हेमचन्द्र से प्रणय सम्बन्ध हो जाता है जिससे रुष्ट होकर राजा उसे बन्दीगृह में डाल देता है। किन्तु कुछ दिनों बाद युद्ध के निमित्त उसे मुक्त किया जाता है और वह शत्रुओं का नाश कर करता है। वह पहले ही सेनापति दुर्मति को मार चुका है। अतः विजय का श्रेय उसे ही प्राप्त होता है। वह विजय के पुरस्कार के रूप में राजकुमारी से विवाह का सौभाग्य प्राप्त कर लेता है। राजा स्वयं कन्यादान करता है।

इस नाटक में प्राकृत का प्रयोग नहीं किया गया है।

प्रेमाभिरामम्– (ना.कृ.) रविपति त्रिपुरान्तक (दे.) की रचना। इसका रचनाकाल १४वीं शताब्दी है।

प्रौढ़परन्तपम्– (ना.कृ.) (१) नारायण शास्त्री लिखित ७ अंकों का नाटक।

प्रौढाभिरामम्– (ना.कृ.) यह वेङ्कटनाथ लिखित रामविषयक नाटक है। ओरियण्टल लायब्रेरी मैसूर के संस्कृत पाण्डुलिपि अनुभाग की संख्या २७८ पर इसका उल्लेख किया गया है।

प्लुष्टखाण्डवम्– (ना.कृ.) (१) नारायण शास्त्री लिखित ५ अंकों का नाटक।

ब

बकुलभूषण– (ना.का.) देखो जग्गूबकुलभूषण।

बकुलमालिनीपरिणय– (ना.कृ.) यह श्रीनिवास (वीरवल्ली) (दे.) लिखित १७वीं शताब्दी का नाटक है। इसका संकलन ओरियण्टल लायब्रेरी पाण्डुलिपि अनुभाग ट्रायेनियल कैटेलाग सं. १.१०४७ पर किया गया है।

बंगीय प्रताप– (ना.कृ.) दे. वंगीय प्रताप।

बटुकनाथ शर्मा– (ना.का.) ये भारद्वाज गोत्र के ईश्वरी प्रसाद मिश्र के पुत्र थे और बनारस हिन्दू विश्व विद्यालय में संस्कृत के प्रोफेसर के पद पर अधिष्ठित थे। इन्होंने भरत के नाट्यशास्त्र और भाभह के काव्यालंकार का सम्पादन किया तथा कई अन्य महत्वपूर्ण ग्रन्थों का प्रणयन किया।

ललित साहित्य की दिशा में वल्लवदूतम्, शतकसप्तकम्, कालिकाष्टकम्, आत्मनिवेदन शतकम् इन लघु अथवा स्फुट काव्यों के अतिरिक्त सीतास्वयंवरनामक एक महाकाव्य तथा पाण्डित्य ताण्डवितम् नामक एक प्रहसन भी इनके साहित्य के अन्तर्गत आते हैं। इनके कई साहित्यनिबन्ध भी लिटरेरीजर्नल्स में प्रकाशित हुये हैं।

बद्धवाडवम्– (ना.कृ.) (१) नारायण शास्त्री लिखित ५ अंकों का नाटक।

बन्धुमती– (ना.कृ.) (दे.) बन्धुमतीशौनक।

बन्धुमतीशौनक– (ना.कृ.) अवन्ति सुन्दरी कथा में इनका उपाख्यान आया है। समझा जाता है यह एक नाटक रचना (प्रकरण) है। यह अनुमान कौमुदीमहोत्सव के निम्न लिखित पद्य के आधार पर लगाया गया है–

शौनकमिव बन्धुमती कुमारमविमारकं कुरङ्गीव।

अर्हति कान्तमतीयं कान्तंकुमारवर्माणम्॥

इस रचना को बन्धुमती इस संक्षिप्त नाम से भी याद किया जाता है।

इसका कथानक इस प्रकार है– 'बन्धुमती कोशल की राजकुमारी थी। एक वार जब शौनक गुरु सोमत्रात के साथ कोशल-दरवार देखने गया उसका राजकुमारी बन्धुमती से प्रेम हो गया। उनका गुप्त सम्बन्ध बहुत समय तक चलता रहा। बन्धुमती का विवाह त्रिगर्त के राजा के साथ तय हो गया था। जब त्रिगर्त का राजा बन्धुमती को लेने आया शौनक और बन्धुमती वहां से निकल गये और सरयू नदी में नाव पर धारा की ओर जल दिये। रास्ते में नावदुर्घटना हो गई और प्रेमी युगल बिछुड़ गये। शौनक बन्धुमती को तलाश करता हुआ इधर उधर भटकने लगा। उसे नदीतट पर एक सुन्दरी की लाश दिखलाई पड़ी। उसने उसे अपनी प्रेयसी बन्धुमती समझकर उसका दाह कर्म कर दिया। उसके वियोग की व्यथा जब असह्य हो गई तब शौनक ने आत्महत्या करने की सोची। उसी समय उसे एक तापसी दिखलाई पड़ी जिसके यहां बन्धुमती सुरक्षित थी। जब बन्धुमती ने अन्दर से शौनक की आवाज सुनी और पहिंचान लिया तब वह बाहर आ गई और इस प्रकार प्रेमी युगल का पुनर्मिलन हो गया। बन्धुमती ने बतलाया कि उसको एक ग्वालिन ने बचा लिया था। किन्तु उस ग्वालिन को सर्प ने डस लिया और उसकी अकाल मृत्यु हो गई। उसी की लाश का शौनक ने दाह कर्म किया था। पुत्री को तलाश करते हुये कोशल नरेश भी वहां आ गये त्रिगर्त राजा ने उन पर आरोप लगाया था कि उन्होंने जानबूझ कर अपनी पुत्री को भाग जाने दिया। इसीलिये उसने कोशल नरेश पर विजय प्राप्त कर उसे निकाल दिया। अन्त में शौनक ने युद्ध कर त्रिगर्त को पराजित कर कोशल नरेश को उनका राज्य पुनः दे दिया।

बन्धुरा– (ना.पा.) हास्यार्णव में एक कुट्टिनी जो वेश्यालय चलाती है। व्यक्तियों के चरित्र का अध्ययन करने के लिये राजा उसके यहां जाता है। वह राजा को अपनी लड़की मृगाङ्कलेखा से मिलाती है जिस पर धर्माध्यक्ष आदि जाने कितनों की निगाहें लगी हैं। विदूषक वैद्य को उसकी चिकित्सा के लिये बुलाया जाता है। किन्तु उसकी चिकित्सा रोग से भी भयानक है। वैद्य को भागना पड़ता है। अनेक ग्राहकों में बुड्ढों को मृगाङ्कलेखा मिलती है किन्तु नवयुवकों को बन्धुरा से सन्तोष करना पड़ता है।

बलराम– (ना.पा.) कृष्ण के भाई और क्रीड़ा सहचर। कई नाटकों में उनका पात्र

के रूप में उपादान हुआ है। दो एक उदाहरण–

(१) **बालचरित**– में वे कृष्ण के क्रीडा सहचर तो हैं ही उनको भी कृष्ण के साथ कंस के यहां बुलाया जाता है और वे भी कंसवध के अवसर पर कृष्ण के सहयोगी हैं।

(२) **उरुभंग**– में भीम और दुर्योधन के गदायुद्ध के अवसर पर वे भी उपस्थित होते हैं और दुर्योधन की क्षणिक सफलताओं पर वे उसका अभिनन्दन भी करते हैं क्योंकि गदायुद्ध में वह बलराम का शिष्य है। जब गदायुद्ध में नियमों के प्रतिकूल भीमसेन दुर्योधन की जंघायें तोड़ देते हैं तब वे भीम को दण्ड देने के लिये तैयार हो जाते हैं किन्तु दुर्योधन द्वारा वे रोक दिये जाते हैं।

(३) **वेणीसंहार**– में युधिष्ठिर के बलराम के प्रति उपालम्भ से भी उनके दुर्योधन के प्रति पक्षपात भी अभिव्यक्ति होती है।

बलिविजय– (ना.कृ.) जग्गूबकुलभूषण (दे.) लिखित वामनावतार परक नाटक। इसमें छाया तत्व की अधिकता और शिष्टहास्य की विशेषता है।

बहुरूपमिश्र– (ना.शा.का.) इन्होंने दशरूपक पर रूपदीपिका टीका लिखी है। टीका में पुष्पिका (colophone) में इन्हें महामहोपाध्याय कहा गया है। स्वयं मुरारि और भोज के बाद किसी ग्रन्थकार का उल्लेख न मिलने और मम्मट जैसे आचार्य का नामोल्लेख न होने से ज्ञात होता है कि इनका समय ईसा की १२वीं शताब्दी है। इन्होंने उक्त टीका में कई लक्ष्य-लक्षण ग्रन्थों और ग्रन्थकारों का उल्लेख किया है जिनमें निम्नलिखित नाट्यकृतियां सम्मिलित हैं–

अमृतमन्थन, उदात्तराघव, कामदत्ता, कुसुमशेखरविजय, कृत्यारावण, छलितराम, तरंगदत्त, तारकोद्धरण, देवी परिणय, पाण्डवानन्द, पुष्पभूषितक, प्रतिभाभीम, भगवदज्जुका, भीमविक्रम, मदलेखा, मालतिका, मेनकानहुष, रामाभ्युदय, ललितनागर, स्तम्भितरम्भक, स्वप्नवासवदत्तम्।

बहुलवालिशम्– (ना.कृ.) (१) नारायण शास्त्री लिखित ८ अंकों का नाटक।

बांगलादेशोदयम्– (ना.कृ.) इस नाटक के लेखक हैं रामकृष्ण शर्मा। वर्ष (१९७१ की सबसे महत्वपूर्ण घटना बंगलादेश की स्थापना है। उसी को लेकर इसकी रचना की गई है। इसमें बगलादेश के सामाजिक, राजनैतिक इत्यादि प्रश्नों का स्पर्श किया गयाहै।

इसका प्रकाशन भारतीयविद्याप्रकाशन कचौड़ी गली से हुआ है। इसमें डा. सत्यव्रत की विस्तृत महत्वपूर्ण अंग्रेजी भूमिका दी हुई है।

बाण– (ना.का.) सम्भवतः ये प्रसिद्ध बाण भट्ट ही है जिन्होंने अपनी कादम्बरी कथा का एक अंश लेकर शारदा चन्द्रिका नामक नाटक की रचना की थी।

बाण– (ना.पा.) प्रसन्न राघव में एक पात्र। सीता के विवाहेच्छुओं में वह भी एक है। वह रावण के साथ धनुष यज्ञ में आता है, धनुष चढ़ाने का असफल प्रयास करता है

और वहां उसका रावण के साथ लम्बा वाद विवाद होता है।

बाण– (ना.का.) देखो वामन भट्ट वाण।

बाणेश्वर विद्यालंकार– (ना.का.) ये योग्य पिता तर्कवागीश नैयायिक के योग्य पुत्र थे। इन्हें पिता से ही शिक्षा प्राप्त हुई थी। ये बंगाल के हुगली जिले के गुप्तपल्ली ग्राम के निवासी थे। इन्होंने कई आश्रयदाताओं के आश्रय में साहित्यसर्जना की थी। समय समय पर इनके आश्रय दाता थे नदिया के कृष्णचन्द्र, मुर्शिदावाद के अलीवर्दी खां, वर्दवान के चित्रसेन और कलकत्ता में शोभावाजार के महाराज नवकृष्णदेव।

इनकी साहित्य साधना का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य है २१ खण्डों में धर्मशास्त्र-विषयक विवादार्णव सेतु की रचना। वारेनहेष्टिङ्ज के आदेश पर इस ग्रन्थ का प्रणयन किया गया था। यह धर्मशास्त्र की विश्वकोश जैसी रनचा है। इसके अतिरिक्त भी इनका साहित्य अत्यन्त विस्तृत है जिसमें चम्पू, काव्य, स्तोत्र इत्यादि अनेक क्षेत्रों की रचनाओं का समावेश है। इन्होंने चन्द्राभिषेकनामक (दे.) ९ अंकों का एक नाटक भी लिखा था।

बाभ्रव्य– (ना.पा.) रत्नावली (दे.) में वत्स का कञ्चुकी। यौगन्धरायण ने उसी के द्वारा यह खबर फैलाई कि वासवदत्ता मर गई है। वह रत्नावली को लेने लंका को भेजा जाता है और वहां का राजा उसके तथा अपने मन्त्री के साथ पुत्री को उदयन के पास भेज देता है। मार्ग में प्रवहण भंग हो जाता है जिससे बचते बचाते किसी प्रकार सभी लोग किनारे लग जाते हैं। वह भी बच जाता है। इन्द्रजालिक द्वारा आग की घटना के बाद वही रत्नावली को सागरिका के रूप में पहिंचानता है। इस प्रकार कथानक की मूल घटनायें उसी के सहयोग से सम्पादित की जाती हैं।

बाल कवि– (ना.कृ.) ये मुल्लनद्रुम जिला उत्तरी अर्काट के निवासी थे। ये भरद्वाज गोत्री कालहस्त्री के पुत्र, मल्लिकार्जुन के पौत्र एवं उद्दण्ड के समसामयिक एवं कोचीन के रामवर्मा के दरवारी कवि थे। इनका समय १६वीं शताब्दी का मध्य भाग है। रामवर्मा ने भाई गोदावर्मा के लिये राज्य का परित्याग कर दिया था और बनारस की तीर्थ यात्रा की थी। बालकवि ने राज्यत्याग पर्यन्त उनके जीवन का वर्णन रत्नकेतूदय नाटक में किया है। इनके दो प्रतीक नाटकों का उल्लेख पाया जाता है शिवभक्तानन्द (दे.) और गैर्वाण विजय (दे.) इन तीन नाटकों के अतिरिक्त रामवर्मविलासम् (दे.) नामक एक अन्य कृति भी इनके नाम पर पाई जाती है।

बालकृष्ण– (ना.का.) मुदितराघव नाटक के लेखक।

बालचन्द्रिका– (ना.कृ.) (१) नारायण शास्त्री लिखित ९ अंकों का नाटक।

बालचरित– (ना.कृ.) यह भास का लिखा ५ अंकों का नाटक है। इसमें कृष्ण की बाललीला का चित्रण किया गया है। इस कथन का स्त्रोत क्या है इसका कुछ पता नहीं चलता। महाभारत या किसी प्राचीन ग्रन्थ में बालचरित का वर्णन मिलता नहीं और

श्रीमद्भागवत इत्यादि जिन ग्रन्थों में बालचरित मिलता है भास के पहले के नहीं हैं। कृष्ण की प्रचलित बाललीला से भास के बालचलित की लीलायें अनेक अंशों में भिन्न हैं।

इस नाटक की कुछ लीलायें सूच्य हैं और कुछ दृश्य। सूच्य अंकों में पूतना, शकट, धेनुक, प्रलम्ब, यमलार्जुन आदि के वध का वर्णन किया गया है। दृश्य प्रसंगों में कृष्णजन्म, बच्चे को नन्द के यहां पहुंचाना, कन्या का कंस द्वारा वध और उसकी देवी रूपता प्राप्ति, अरिष्टासुर एवं वृषासुर वध, कृष्ण का वृन्दावन में गोपियों के साथ नृत्यगान आदि लीलायें सम्मिलित हैं। कंस की सभा में कृष्ण के लोकोत्तर कर्म जिनमें हाथी का दमन, कुब्जा का कुब्जात्व से छुटकारा आदि घटनायें सूच्य हैं। कृष्ण चुने हुये मल्लों को पराजित कर कंस पर सहसा आक्रमण कर यमलोक पहुंचा देते हैं और उग्रसेन को बन्दी घर से छुड़ाकर राजा बना देते हैं। नारद प्रारम्भ में भी आते हैं और अन्त में भी गन्धर्वों और अप्सराओं के साथ कृष्ण की स्तुति करने के लिये उपस्थित होते हैं।

कृष्ण के बालचरित के विषय में जो पैराणिक उपाख्यान प्रसिद्ध हैं उनके अतिरिक्त भी भास की कुछ कल्पनायें पाई जाती हैं। जब वसुदेव कृष्ण को सुरक्षित स्थान पर पहुंचाने ले जाते हैं तब अभेद्य अन्धकार को दूर करने के लिये कृष्ण एक नई ज्योति उत्पन्न कर देते हैं। यशोदा के मृत लड़की पैदा हुई है जिसे दफनाने नन्द ले आते हैं। संयोग से या वृक्ष पर रहने वाले देवता की कृपा से उनकी भेंट वसुदेव से हो जाती है और वे कृष्ण की रक्षा के लिये राजी हो जाते हैं, किन्तु मृत बालिका के स्पर्श से उत्पन्न अशुद्धि को दूर करने के बाद ही वे कृष्ण का स्पर्श करना चाहते हैं। कृष्ण की प्रेरणा से वहीं तत्काल नई धारा प्रवाहित हो जाती है। इसी समय गोपालों के वेष में विष्णु के आयुध प्रकट होते हैं। इसी प्रकार कंस को दिया गया मधूक ऋषि का शाप चण्डालवेष में दलवल के साथ कंस की शक्ति को ग्रस लेता है। इस़ी प्रकार की कई अन्य कल्पनायें भास की विष्णुभक्ति को प्रकट करती हैं।

प्रविधि की दृष्टि से यह नाटक महत्वपूर्ण परम्परा स्थापित करता है। इसमें वीर रस प्रधान है क्योंकि कृष्ण वीरता का रूप है। किन्तु वीर रस शृङ्गार और अद्भुत से मिश्रित है। अनेक वीभत्स आकृतियां भयानक तथा वीभत्स के निष्पादन में भी कवि की दक्षता सिद्ध करती हैं। इस नाटक में भास के अन्य नाटकों की अपेक्षा पात्रों की संख्या सबसे अधिक है। कवि ने आयुध, राज्यश्री, शाप इत्यादि का मानवीकरण किया है जिसमें प्रतीक (दे.) की प्रविधि अपनाई गई है। सब मिलाकर यह एक सफल रचना है और इसमें नाट्य विधा को ही नहीं कृष्णचरित को नई दिशा दी गई है।

बालनाटकम्- (ना.कृ.) यह एक छोटा सा बच्चों के पढ़ने योग्य नाटक है। इसकी रचना वासुदेव द्विवेदी ने की है। संस्कृत प्रचार पुस्तकमाला वाराणसी से इसका प्रकाशन हो चुका है।

बालप्राहुणिकम्– (ना.कृ.) नारायण शास्त्री लिखित ६ अंकों का नाटक।

बालभारत– (ना.कृ.) राजशेखर (दे.) का अपूर्ण नाटक। अब तक इसके केवल दो अंक उपलब्ध हो सके हैं जिनमें प्रसाद गुणपूर्ण शैली में द्रौपदी स्वयंवर, द्यूत में राज्य का अपहरण, राजसभा में द्रौपदी का अपमान और पाण्डवों के वनगमन को अङ्कित किया गया है। इसका दूसरा नाम प्रचण्डपाण्डव भी है। इसका प्रकाशन स्ट्रैसवर्ग और बम्बई से हुआ है। विल्सन के थियेटर II ३६१ सं. पर इसका विवेचन किया गया है।

बालमार्तण्डविजयम्– (ना.कृ.) देवराज (दे.) लिखित ५ अंकों का नाटक। इसकी रचना १८वीं शताब्दी के मध्य मे हुई थी। कवि ने अपने आश्रयदाता मार्तण्ड वर्मा की प्रशस्ति में इस नाटक की रचना की थी जिसमें विजययात्राओं के साथ सम्पत्तियों के अधिग्रहण, मन्दिर के जीर्णोद्धार इत्यादि को नाट्य विषय बनाया गया है। इसका प्रकाशन त्रिवेन्द्रमसंस्कृतसीरीज ट्रावन्कोर से हुआ है जिसमें लेखक की भूमिका है। यह नाटक ऐतिहासिक घटनाओं से भरपूर है, परन्तु उनमें अतिरंजना अधिक है। यह नाटक अभिनेय कम पठनीय अधिक है.

बालरामायण– (ना.कृ.) राजशेखर (दे.) लिखित १० अंकों का विशाल नाटक (महानाटक) है। नाटक में ७४१ पद्य हैं जिनमें अधिकांश में बड़े छन्दों का प्रयोग किया गया है। इसमें रामायण की सम्पूर्ण कथा आ गई है। कवि ने केवल वाल्मीकि का ही नहीं भवभूति का भी आश्रय लिया है। कवि प्रायः प्रतिष्ठित रामकथा से कुछ हट जाता है। इस नवीनता में नाटकीयता की वृद्धि ही होती है। रावण प्रारम्भ से ही सीता के विषय में राम का प्रतिद्वन्दी दिखलाया गया है। इसमें रावण की उग्रता की उपेक्षा उसकी प्रेममयी कोमल भावनाओं को अधिक महत्व दिया गया है। राम के प्रेम चित्रण में राजशेखर स्वयं को वाल्मीकि भर्तृमेण्ठ (दे.) भवभूति (दे.) का अवतार मानते हैं। हर्षदेव और भवभूति के समान राजशेखर ने भी इस नाटक में नाटक के अन्दर एक नाटक रक्खा है। इसके अंक बहुत बड़े हैं। रावण (दे.) के सीता प्रेम पर विशेष ध्यान दिया गया है। राजशेखर की सफल अभिव्यञ्जना पद्धति के इस नाटक में भी यथेष्ट दर्शन होते हैं। ललित और आकर्षक पद्य इसकी अन्यतम विशेषता है।

इस नाटक में रामकथा के विषय में अनेक नई उद्‌भावनायें हैं। रावण सीता को चाहता है, किन्तु धणुष चढ़ाकर परीक्षा नहीं देता और धमकी देता है कि जो भी सीता से विवाह करेगा उसका वह अहित करेगा। रावण परशुराम से इस विषय में सहायता मांगता है, किन्तु इसे निराश होना पड़ताहै। राम और सीता का विवाह रावण की उपस्थिति में होता है। सीता और उसकी सहेलियां मजाक में धात्रीपुत्री की पुत्तलिकायें रावण को भेंट कर उसे मूर्ख बनाती हैं जिससे रावण धोखा खा जाता है। सेतु का भार वहन करने के लिये समुद्र को समझाया जाता है। सीता का कटा हुआ सर समुद्र के किनारे फेंका जाता है जिससे भ्रम पैदा होता है, किन्तु उस सर के बोलने में भ्रम मिट जाता है। वस्तुतः

वह बोलने वाली पुतली है। राम विमान द्वारा चन्द्रलोक होते हुये अयोध्या को लौटते हैं। इसी प्रकार की नई कल्पनाओं से रामकथा का रूप नया ही हो गया है।

इसके टीकाकार हैं- डा. विद्यासागर (कलकत्ता से प्रकाशित), लक्ष्मणसूरि (तंजौर से प्रकाशित), और एक अज्ञातनामा कवि की टीका।

बालवाल्मीकि- (ना.का.) मुरारि (दे.) का उपनाम। मुरारि स्वयं को वाल्मीकि कहलाने पर गर्व का अनुभव करते थे और इस उपाधि पर अपना अधिकार जमाते थे।

बालविधवा- (ना.कृ.) लीलाराव दयाल की कृति। एक ऐसी बाल विधवा की मनोरंजक कहानी जो अनूप के प्रेमपाश में फंस जाती है।

बालसूरि- (ना.का.) ये श्रीरंगम् के निवासी थे। इन्होंने पाञ्चाली परिणय (दे.) नाटक की रचना की थी। इन्होंने स्वयं कहा है कि इस नाटक की रनचा राजशेखर के आदर्श पर की गई थी।

बालिकावञ्चितक- (ना.कृ.) यह नाटक कृष्ण विषयक बतलाया जाता है। इसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम् खण्ड १ सं. ११९ में किया गया है। सम्भवतः यह रचना मधुसूदन की है। इसका उल्लेख रामचन्द्र गुणचन्द्र के नाट्यदर्पण में किया गया है।

बिन्दुमती- (ना.कृ.) दुर्मल्लिका उपरूपक का विश्वनाथ द्वारा दिया गया उदाहरण। यह रचना अप्राप्त है।

बिल्हण- (ना.का.) कौशिकगोत्रीय मध्यदेशीवर्ग के काश्मीरी ब्राह्मण थे। इनका जन्म पिता ज्येष्ठकलश और माता नागदेवी से १२वीं शताब्दी में हुआ था। इनका वंश विद्वानों का था जिनमें व्याकरण शास्त्र की प्रधानता थी। इनके पिता ने महाभाष्य पर टीका लिखी थी। इनके भाई भी कवि थे। शिक्षा समाप्त कर ये भारत भ्रमण के लिये निकल पड़े। मथुरा, कन्नौज, प्रयाग, बनारस, उज्जैन, गुजरात (सोमनाथ), रामेश्वरम्, कर्णाटक प्रभृति स्थानों पर जीवन के कुछ वर्ष बिताये थे। छठे विक्रमादित्य त्रिभुवन मल्ल ने इनका विशेष सत्कार किया और इन्हें विद्यापति (शिक्षासञ्चालक) बना दिया जहां इन्होंने जीवन का कुछ अधिक भाग बिताया। वहां इन्होंने प्रसिद्ध विक्रमाङ्कदेव की रचना की जो अपूर्ण है, क्योंकि इसमें विक्रमदेव के नर्मदा पार की विजय यात्रा का इतिहास प्राप्त नहीं होता।

विक्रमाङ्कदेव चरित के अतिरिक्त इनके साहित्य में कर्णसुन्दरी (दे.) नाटक भी प्राप्त हुआ है।

बिल्हणीयम्- (ना.कृ.) नारायण शास्त्री (दे.) लिखित ५ अंकों का नाटक।

बीभत्स- (ना.पा.) मुद्राराक्षस का एक पात्र। चन्द्रगुप्त के रहने के लिये जो भवन तैयार किया गया था उसमें राक्षस ने गुप्त रूप से एक सुरंग बनवा दी थी जिसमें बीभत्स जैसे कई व्यक्ति छिपा दिये गये थे जिनका उद्देश्य रात में चन्द्रगुप्त का वध करना था। चाणक्य उस भवन का निरीक्षण करने गया। जब उसने चावल के कण लिये चीटियों

को देखा तो अनुमान लगा लिया कि निश्चय ही इस भवन में कुछ लोग छिपे हैं। अतः उसने उस भवन को उड़ा देने की आज्ञा दे दी जिससे बीभत्स इत्यादि सभी राक्षसप्रतिनिधि मारे गये।

बुद्ध– (ना.पा.) (१) **अश्वघोष** (दे.) कृत शारिपुत्र प्रकरण में बुद्ध एक पात्र है। पहले शारिपुत्र का विदूषक से इस विषय में शास्त्रार्थ होता है कि क्षत्रिय बुद्ध का एक ब्राह्मण को उपदेश देने का क्या अधिकार है। विदूषक पराजित होता है। तब मौद्गल्यायन और शारिपुत्र बुद्ध के पास जाते हैं। बुद्ध उनका स्वागत करते हैं। अन्त में एक नित्य आत्मा के विषय में शारिपुत्र से उनका शास्त्रार्थ होता है और शारिपुत्र उनका शिष्यत्व स्वीकार कर लेते हैं। बुद्ध परम ज्ञानी होने के साथ ही एक उच्च मानव भी हैं। और गुण ग्राहक भी। उनमें व्यक्ति को पहिंचानने की भी अपूर्व क्षमता है।

(२) **अश्वघोष**– (दे.) के ही दूसरे (प्रतीक नाटक) में बुद्ध परम तत्व हैं। वे सब कहीं व्यापक है, आकाश में विचरण करते हैं, पृथ्वी में समाये हुये हैं, बादलों से वर्षा करवाते हैं, सायंकाल में सूर्य किरणों से अनुरञ्जित मेघ के रूप में दिखलाई देते हैं। वे अपने भक्तों के बीच में आते हैं और वार्तालाप में सम्मिलित होते हैं।

बुद्धि– (ना.पा.) अश्वघोष (दे.) के प्रतीक रूप में एक पात्र जो कीर्ति और धृति के साथ वार्तालाप करती है। इसकी भाषा संस्कृत है।

बृहत्सुभद्रक– (ना.कृ.) यह एक प्रहसन है। इसका उद्देश्य सिंह भूपाल के रसार्णव सुधाकर में किया गया है।

बृहन्नला– (ना.पा.) यह पञ्चरात्र (दे.) का एक पात्र है। अर्जुन ने इसी नाम रूप में अपना अज्ञातवास विताया था और इसी रूप में विराट पुर का युद्ध लड़ा था जिसमें कौरव सेना एकाकी अर्जुन से पूरी तरह पराजित हुई थी।

बोकील विनायक राव– (ना.का.) दे. विनायकराव वोकील।

बोधायन– (ना.का.) प्रसिद्ध दार्शनिक वृत्तिकार। इनका लिखा भगवदज्जुका (दे.) नामक प्रहसन बतलाया जाता है। सुकुमार ने अपने रघुवीरचरित नाटक में बोधायन की अत्यधिक प्रशंसा की है।

बौद्धनाट्यसाहित्य– (ना.सा.) बौद्धधर्म की दृष्टि से सभी संगीत नाट्य इत्यादि अवाञ्छनीय हैं (सर्वं प्रलपितं गीतं सर्वं नाट्यं विडम्बितम्)। किन्तु इसका आशय यह नहीं है कि बौद्ध साहित्य में नाट्यकला सर्वथा अज्ञात थी। बौद्धधर्मग्रन्थों में इसकी सत्ता का उल्लेख यत्र तत्र पाया जाता है। अवदानशतक में नर्तकी कुवलया का उल्लेख मिलता है जो अत्यन्त ख्याति प्राप्त कर गई थी और अभिनय के प्रभाव से भिक्षुओं को सत्पथ से डिगाती फिर रही थी। बुद्ध ने कुत्सित वृद्धा के रूप में उसे परिणत कर उसकी वृत्ति का अन्त कर दिया। बाद में बुद्ध की शरण में आकर उसने सद्गति प्राप्त की। ललित

विस्तर में स्वयं बुद्ध द्वारा नाट्य शिक्षा लेने का उल्लेख पाया जाता है। अवदानशतक से नाटक की अति प्राचीनता सिद्ध होती है। दिव्यादान में मार और उपगुप्त के विषय में जो कविता आती है वह किसी नाटक का खण्ड प्रतीत होती है। प्रथम नाटककार अश्वघोष (दे.) सम्भवतः बौद्ध ही थे जिनकी नाट्य कृतियां तुर्फान के ताम्रपत्रों में प्राप्त हुई हैं। उनकी शारिपुत्रप्रकरण (दे.) इत्यादि कृतियां बौद्ध साहित्य के अन्तर्गत ही आती हैं। चन्द्रगोमिन (दे.) का लिखा लोकानन्द (दे.) बौद्ध साहित्य के अन्तर्गत ही माना जाता है। इत्सिंग ने लिखा है कि वेस्सन्तर अथवा सुदानजातक (विश्वान्तर जातक) को पूर्वीभारत के सन्त चन्द्र ने कविता में रूपान्तरित किया था जिसका अभिनय के साथ गायन इत्सिंग के अनुसार प्रायः समस्त भारत में किया जाता था। बौद्धसाहित्य एवं रीतिरिवाजों में संवाद एवं अभिनय का रूप देखा जा सकता है। विण्टरनित्ज ने लिखा है कि आज भी वेस्सन्तर जातक का नाट्य जातक के रूप में प्रयोग किया जाता है; किसी भी नवीन शिष्य की दीक्षा प्रारम्भ करने के अवसर पर इस प्रकार का अभिनय किया जाता है। चीन में बौद्ध कथानकों का मठों मे नाट्यरूप में प्रस्तुतीकरण और तिब्बत में मठों में वसन्त और शारद् में प्राचीन नाटकों के अवशेषों का प्रदर्शन बौद्ध साहित्य में नाट्य सत्ता को सिद्ध करता है।

केवल यही नहीं कि बौद्ध नाट्य साहित्य की कृतियां भारत से मध्य एशिया चीन और तिब्बत ले जाई गईं और उनका अनुवाद वहां की भाषाओं में गिया गया– वहां की भाषाओं में मौलिक साहित्य भी लिखा गया जिस पर भारतीय नाट्यप्रविधि का पर्याप्त प्रभाव लक्षित किया जा सकता है। इस साहित्य में भगवान बुद्ध की जीवन गाथा का नाट्यवस्तु के रूप में उपादान किया गया है। चीनी नाटकों से उन विभेदों पर भी प्रकाश पड़ जाता है जो दूरी कृत व्यवधान के कारण उस प्रविधि में आ गये हैं।

बौद्ध साहित्य में नाट्यकला को स्वीकार करते हुये भी कहना न होगा कि संस्कृत साहित्य में बौद्ध नाट्य साहित्य की एक भी पूर्णकृति उपलब्ध नहीं होती। हर्ष के नागानन्द नाटक को भी पूर्ण बौद्ध नाटक नहीं कहा जा सकता। वह एक सामान्य नाटक ही है बौद्ध नाटक नहीं। क्योंकि उसमें बौद्ध सिद्धान्तों का प्रतिपादन नहीं किया गया है। कई भागों में विखरे कथानक को जीमूत वाहन को नायक बनाकर और उसके चरित्र में सभी भागों को जोड़कर उसकी एक रूपता की रक्षा की गई है। जीमूत वाहन का त्याग बौद्ध विचारधारा का परिचायक है किन्तु उसमें पौराणिक पात्र गरुड़ का समावेश और भगवती गौरी की चमत्कार पूर्ण दैवी शक्ति द्वारा कार्य का निर्वहण उसे पूर्ण बौद्ध नाटक की सीमा में नहीं आने देते और न उसकी तद्रूपता प्रमाणित की जा सकती है। अश्वघोष का शारिपुत्रप्रकरण भी आंशिक रूप में ही उपलब्ध हुआ है। चन्द्रगोमिन का लोकानन्द केवल तिब्बती अनुवाद में उपलब्ध होता है। चीन में कतिपय बौद्धकथानकों को नाट्यरूप में दिखलाने की प्रथा है। तिब्बत में ऋतुओं के अवसर पर एवं छात्रों के नवदीक्षा समारोह

में इस प्रकार के समारोह होते हैं। बुद्ध के सिद्धार्थरूप एवं अनेक बौद्ध कथानक नाट्य की श्रेणी में आते हैं अवश्य किन्तु उसका संस्कृत साहित्य से कोई वास्ता नहीं है। अतः कहा जा सकता है कि संस्कृत नाट्य परम्परा में बौद्ध साहित्य के कतिपय फुटकर खण्ड ही उपलब्ध हो सके हैं किसी पूर्ण नाटक का इस दिशा में सर्वथा अभाव है।

ब्रह्ममित्र वैद्यनाथ- (ना.का.) इनका लिखा भैरवविलासम् (दे.) नाटक प्राप्त होता है जिसका कथानक विचित्र प्रकार का है।

ब्रह्मविद्या- (ना.कृ.) नारायणशास्त्री लिखित १० अंकों का प्रतीक नाटक।

भ

भक्तध्रुव- (ना.कृ.) डा. वनमाला लिखित नाटक।

भक्त सुदर्शनम्- (ना.कृ.) मथुराप्रसाद दीक्षित (दे.) लिखित ६ अंकों का नाटक। इसमें अयोध्या के उत्तराधिकारसम्बन्धी संङ्घर्ष का चित्रण किया गया है। राजा ध्रुवसन्धि की मृत्यु के बाद वास्तविक उत्तराधिकारी सुदर्शन है। किन्तु उसका सौतेला भाई शत्रुजित् भी अधिकार चाहता है जिसमें उसके नाना युधाजित् उसकी सहायता करते हैं। युद्ध होता है जिसमें सुदर्शन के नाना वीरसेन मारे जाते हैं। सुदर्शन की माता पुत्र को लेकर भरद्वाज आश्रम में चली जाती है। वहां सुदर्शन जगदम्बिका की उपासना करता है। वाराणसी की राजकुमारी सुदर्शन को स्वप्न में देखती है और काम पीड़ित हो जाती है। उसके स्वयंवर के समय युद्ध होता है और शत्रुजित् मारा जाता है। सुदर्शन और शशिकला का विवाह होता है और वह अयोध्या का राजसिंहासन प्राप्त करता है।

इसके संवाद छोटे-छोटे एवं चटपटे हैं। तथा इसमें गीतों की अधिकता है।

भक्तिचन्द्रोदय- (ना.कृ.) यह वेङ्कटकृष्णराव की तीन अंकों की रचना है। पुरुषोत्तम नारायण नालन्दा में दुःखी है कि लोग शङ्कर, रामानुज इत्यादि को भूल गये हैं। मैसूर के वृन्दावन गार्डेन में शंकर, रामनुजाचार्य, माध्वाचार्य इसलिये दुःखी हैं कि लोग उनके दर्शाये मार्ग को भूल गये हैं। अन्त में 'यं शैवाः समुपासते शिव इति' इत्यादि पद्य को सर्वत्र प्रचारित कर और सौहार्द उत्पन्न करने का उपदेश देकर नाटक समाप्त हो जाता है।

यह नाटक भारतीयपरम्परा के अनुसार लिखा गया है। साथ ही इसमें रंग निर्देश भी प्रयुक्त किये गये हैं। सन् १९५७ में मञ्जूषा में इसका प्रकाशन हो गया था।

भक्तिभागवत- (ना.कृ.) यह जीवदेव (दे.) लिखित एक नाट्यकृति है। इसे भक्ति रसायन की भी संज्ञा दी जाती है। इसका उल्लेख गायकबाड़ ओरियण्टल सीरीज बड़ौदा की कवीन्द्र सूची में १९६७ संख्या पर किया गया है।

भक्तिविजय- (ना.कृ.) यह धूर्जटिप्रसाद काव्यतीर्थ (दे.) लिखित नाटक है जिसका

प्रकाशन कलकत्ता से हो चुका है।

भक्तिविष्णुप्रयम्– (ना.कृ.) यतीन्द्रविमलचौधरी (दे.) लिखित नाटक। यह प्रीति विष्णुप्रियम् (दे.) का पूरक अंश माना जा सकता है। पत्नी विष्णुप्रिया पर माता का भार सौंप कर चैतन्यमहाप्रभु परिव्राजक बन जाते हैं। विष्णुप्रिया जीवन भर वैष्णवधर्म का प्रचार करते हुये ही जीवन समाप्त करती है। इसकी रचना २०वीं शताब्दी में हुई। इसका प्रथम अभिनय पाण्डिचेरी के अरविन्दाश्रम में किया गया। १९६८ में राष्ट्रपति के सामने भी इसका अभिनय किया गया तथा प्राच्यवाणी द्वारा अनेकवार इसका अभिनय सम्पन्न हुआ।

भक्तिवैभव– (ना.कृ.) उड़ीसा के राजा गजपति के दरवारी कवि जीवदेवाचार्य का लिखा नाटक है। इसका रचनाकाल १५०० ई. के आस पास है।

भगवदज्जुका– (ना.कृ.) एक प्रहसन। इसका उल्लेख ६१० ई. के मामण्डुर के शिलालेख में किया गया है। कुछ लोग इसे ४थी शताब्दी से भी पहले की रचना मानते हैं। इसके लेखक के विषय में निश्चयात्मक रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। इस पर तीन टीकायें प्राप्त होती हैं, तीनों में लेखक के विषय में मतभेद है। टीकाकार नारायण ने इसे प्रसिद्ध दार्शनिक वृत्तिकार बोधायन की रचना माना है। अच्युत के शिष्य टीकाकार राम ने इसे भरत लिखित बतलाया है। यह कम सम्भव प्रतीत होता है कि इन महान लेखकों ने यह प्रहसन लिखा हो। अज्ञातनामा लेखक की एक अन्य टीका भी प्राप्त होती है जिसका उल्लेख मैन्युस्क्रिप्ट्स लायब्रेरी मद्रास के डिस्क्रिप्टिव कैटेलाग XXI ८४३७ संख्या पर किया गया है। इस टीकाकार ने प्रस्तुत प्रहसन के लेखक का नाम नहीं दिया है।

इस नाटक में प्रमुख्यतः तीन पात्र हैं– एक परिव्राजक, एक शिष्य और एक वेश्या। परिव्राजक और शिष्य में दार्शनिक विषय में विवाद हो रहा है। पास ही उद्यान में एक वेश्या विद्यमान है। शिष्य का पूरा ध्यान वेश्या की ओर है वह गुरु के धार्मिक वार्तालाप के प्रति पूर्ण रूप से उदासीन है। इसी बीच वेश्या को सांप डस लेता है और वह मर जाती है। योगी के लिये अपना प्रभाव दिखलाने का अच्छा अवसर मिल जाता है। वह योग के प्रभाव से अपनी आत्मा वेश्या के शरीर में सञ्चारित कर देता है और वेश्या जीवित होकर योगी जैसी बाते करने लगती है। लोग चकित हो जाते हैं। इसी बीच यमदूत को अपनी गलती मालूम पड़ जाती है कि वह और के स्थान पर और के प्राण लेकर चला गया है। वह लौटकर वेश्या के प्राण वापस करना चाहता है। किन्तु यह देखकर कि वेश्या जीवित है और योगी जैसी बाते कर रही है वह चकित हो जाता है और जब तक मरने वाले वास्तविक व्यक्ति के प्राण लेकर लौटे तब तक के लिये योगी के शरीर में वेश्या की आत्मा सञ्चारित कर देता है। अब वेश्या योगियों जैसी और योगी वेश्या जैसी बातें करने लगते हैं। शिष्य परेशान है कि आखिर यह मामला क्या है।

जब यमदूत लौटकर आता है योगी जी वेश्या का शरीर छोड़ देते हैं। वेश्या और योगी दोनों अपने अपने शरीरों में आ जाते हैं।

यह नाटक है तो प्रहसन किन्तु ज्ञात होता है भावनात्मक आधार पर बौद्ध धर्म के अनात्मवाद का खण्डन करने के लिये इसकी रचना हुई है।

भगवन्तराय- (ना.का.) इनका खा राघवाम्युदय नाटक कैटेलागस कैटेलागोरम II ११७ में उल्लिखित है। इसके अतिरिक्त इनके व्यक्तित्व के विषय में कुछ भी पता नहीं।

भग्नाशोकम्- (ना.कृ.) (१) नारायण शास्त्री (दे.) लिखित ७ अंकों का नाटक।

भञ्जमहोदय- (ना.कृ.) नीलकंठ (दे.) लिखित १० अंकों का नाटक। इसमें क्योंझर के भंजवंशी राजाओं का वंशानुगत परिचय है। प्रधानरूप से बलभद्र भंजदेव (१७६४-१७९२) का परिचय दिया गया है। रंगमञ्च पर केवल दो पात्र आते हैं- प्रियम्वदा और अंकलेश्वर। उनके संवादों से समस्त इतिवृत्त का परिचय प्राप्त हो जाता है। युद्धों के वर्णन के कारण रचना में सजीवता आ गई है। इसका रचनाकाल १८वीं शताब्दी है।

भट्टगोपाल- (ना.का.सं.) भवभूति (दे.) के पितामह।

भट्टनारायण- (ना.का.) प्रसिद्ध नाटक वेणीसंहार (दे.) के लेखक। ये शाण्डिल्य गोत्रीय कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इन्हें मृगराज उपनाम से भी याद किया जाता है। जल्हण ने इन्हें सूक्ति मुक्तावली में निशानारायण [illegible] कहा है, क्योंकि इन्होंने [illegible] का बहुत अच्छा वर्णन किया है। इनको संक्षेप में केवल नारायण नाम से भी अभिहित किया गया है।

कहा जाता है ७वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में बंगाल के आदिसूर राजा के निमन्त्रण, पर ये अन्य चार ब्राह्मणों के साथ बंगाल में रहने चले गये थे। उन्हीं से बंगाली ब्राह्मणों की परम्परा चली। धर्मकीर्ति के रूपावतार की टीका नीवी में लिखा है कि वाणभट्ट के कहने पर भट्टनारायण ने धर्मकीर्ति का शिष्यत्व स्वीकार कर लिया था और उनसे बौद्ध दर्शन पढ कर उन्हें पराजित कर दिया था। टीकाकार का कहना है कि रूपावतार कृति धर्मकीर्ति और भट्टनारायण की सम्मिलित रचना है। दण्डी ने अवन्तिसुन्दरी कथा में इनको तीन प्रबन्धों का कर्ता बतलाया है। किन्तु अब इनकी एक मात्र कृति वेणीसंहार ही उपलब्ध होती है। सुभाषितावली में इनके नाम पर एक पद्य प्राप्त हुआ है जो किसी नाटक का नान्दी पाठ ज्ञात होता है। अवन्तिसुन्दरी कथा में दण्डी ने इन्हें नाटकों का कर्ता बतलाया है।

इनके व्यक्तित्व के विषय में निश्चित रूप से केवल इतना ज्ञात है कि इन्होंने नाटक की प्रस्तावना में 'कवेर्मृगराजलक्ष्मणो भट्टनारायणस्य कृतिम् वेणीसंहार नाम नाटकम्।' कहकर बतला दिया है कि इस नाटक का रचनाकार भट्टनारायण नामक कवि है जिसे

मृगराज का चिन्ह प्राप्त था। मृगराज का अर्थ सिंह भी होता है और चन्द्र (मृगाङ्क) भी। इससे कुछ लोगों ने अनुमान लगाया है कि ये क्षत्रिय कुल में उत्पन्न हुये थे और सम्भवतः इनका जन्म चन्द्रवंश में हुआ था। किन्तु यह अनुमान तर्क पर खरा नहीं उतरता। क्षत्रिय कुल के लोग अपने नाम के अन्त में सिंह शब्द का प्रयोग करते हैं, उसका चिह्न धारण नहीं करते। नाम के साथ भट्ट शब्द का प्रयोग उन्हें क्षत्रिय की अपेक्षा ब्राह्मण अधिक सिद्ध करता है। किन्तु इस तर्क में भी कोई दम नहीं कि इन्होंने ब्राह्मणों के प्रति आदर भाव प्रकट किया है; अतः ये ब्राह्मण थे। ब्राह्मणों के प्रति आदरभाव अन्य जातियां भी प्रकट करती हैं। नाटकों की सामान्य परम्परा है कि भरतवाक्य में कवि अपने आश्रयदाता की शुभाशंसा करता है। किन्तु इस कवि ने भरत वाक्य में भी सामान्य जनता की या फिर अपनी रचना की शुभाशंसा की है।

बहिस्साक्ष्य के आधार पर इनके समय के विषय में कुछ प्रकाश डाला जा सकता है। मम्मट, भोजराज, क्षीरस्वामी, धनञ्जय, आनन्दवर्धन, अभिनवगुप्त, प्रभृति काव्यशास्त्राचार्यों ने तो इनके उद्धरण दिये ही हैं आठवीं शताब्दी के आचार्य वामन ने भी अलंकार सूत्र वृत्ति में इनके उद्धरण दिये हैं। इससे प्रमाणित होता है कि इनका समय निश्चित रूप से आठवीं शताब्दी के प्रारम्भ या उससे पहले का है। हर्ष और वाण द्वारा उद्धरण न दिया जाना या उल्लेख न किया जाना कोई पुष्कल प्रमाण नहीं माना जा सकता।

बंगाल की एक प्रसिद्ध परम्परा भट्टनारायण की याद करती है। इस परम्परा का उल्लेख क्षितीशवंशावलीचरित, बंगराजघटक इत्यादि कई ग्रन्थों में किया गया है। इसके अनुसार आदिसूर ने बंगाल के दक्षिण पश्चिम भाग में ११ राजाओं के राजवंश की स्थापना की थी और वे सूर तथा सेनवंश के संस्थापक थे। आदिसूर कौन थे इसका कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलता। ८वीं शताब्दी के मध्य में पालवंश के शासनारूढ होने के पहले सूर और सेनवंश वालों का शासन था। अनुमान किया गया कि यह मगध का ही वंश था। मगध के माधवगुप्त के पुत्र आदित्यसेन ने कान्यकुब्ज शासन से स्वतन्त्रता प्राप्त कर ली थी। सम्भवतः उसी ने सूर और सेनवंश की नीव डाली। उसी को आदिसूर की संज्ञा दी गई। परम्परा के अनुसार अपने राज्य की कल्याणकामना और अनर्थनिवारण के निमित्त यह आदिसूर ही कन्नौज से ५ कान्यकुब्ज ब्राह्मणों को वैदिकयज्ञ के लिये ले आया था जिसका प्रमुख था शाण्डिल्य गोत्रीय भट्टनारायण। आदि सूर ने दक्षिणा में उसे ५० गांव दिये थे। सम्भवतः कुछ समय बाद भट्टनारायण स्वयं भी कुछ क्षेत्र का शासक बन गया था।

इस लेखक के विषय में एक और उल्लेख पाया जाता है। दण्डी के नाम पर एक पद्य प्राप्त होता है–

व्याप्तुं पादत्रयेणापि यश्शक्तोभुवनत्रयम्।
तस्य काव्यत्रयव्याप्तौ चित्रं नारायणास्य किम्॥

(जो नारायण तीन पदों में तीनों भुवनों को घेर लेने की शक्ति रखते हैं, तीन काव्य (ग्रन्थों ?) की रचना करने में उनके लिये क्या आश्चर्य की बात है ?)

इससे ज्ञात होता है कि नारायण ने तीन काव्य लिखे थे। वाण के कहने पर भट्टनारायण द्वारा धर्मकीर्ति को शास्तार्थ में पराजित किये जाने की परम्परा तीनों लेखकों की समसामयिकता सिद्ध करती है। इनमें वाण सम्भवतः वरिष्ठ समसामयिक थे। यदि परम्परा पर विश्वास किया जाय और धर्मकीर्तिकालीन भट्टनायक को वेणीसंहारकार भट्टनारायण से अभिन्न माना जाय तो इनका समय ७वीं शताब्दी का मध्य भाग ठहरता है। इस मान्यता का विरोधी कोई विश्वसनीय प्रमाण नहीं है। किन्तु इस विषय में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता।

इनके माता पिता या परिवार के विषय में साहित्यजगत् को कोई ज्ञान नहीं है। किन्तु वेणीसंहार देखने से ज्ञात होता है कि ये स्मार्त ब्राह्मण थे। विष्णु और शिव दोनों के प्रति समान रूप से भक्ति प्रदर्शित की है। एक ओर जहां ये 'हरिचरणयोरञ्जलिरियम्' कहकर विष्णु भक्ति की अभिव्यक्ति करते हैं वहीं 'धूर्जटिः पातु युष्मान्' से शङ्कर जी के प्रति भक्ति को भी अभिव्यक्त करते हैं। वे वैदिक यज्ञादिविधि में निष्णात तो थे ही अनेक शास्त्रों का भी उन्हें ज्ञान था। सुभाषित संग्रहों में इनके नाम पर जो पद्य मिलते हैं उनसे ज्ञात होता है कि इन्होंने वेणीसंहार के अतिरिक्त भी नाटकों की रनचा की थी। दो एक पद्य तो इस प्रकार के प्रतीत होते हैं मानो वे किसी नाटक की प्रस्तावना से लिये गये हों। इन्हें नाट्यशास्त्र की मान्यताओं से अधिक लगाव था। इसीलिये कहीं कहीं शास्त्रीयमर्यादा के अनावश्यक पालन में भी रुचि दिखलाई है और शास्त्रीय समीक्षको की आलोचना का भी विषय बने हैं।

(२) **भट्टनारायण**– (ना.का.) इनका लिखा जानकीपरिणय नाटक बतलाया जाता है। ये वेणीसंहार के लेखक से भिन्न हैं।

भट्टवाण– (ना.का.) दे. वामन भट्टवाण।

भट्टराजीयम्– (ना.कृ.) (१) नारायणशास्त्री लिखित ५ अंकों का नाटक।

भट्टसंकटम्– (ना.कृ.) जीवन्यायतीर्थ (दे.) लिखित ५ अंकों का नाटक। इसका कथानक एक भट्टपरक है जो धार्मिक है और यज्ञों में लगा रहता है। उसकी पत्नी अत्यन्त कर्कशा है और वह उससे परेशान है। किन्तु यज्ञ में सहधर्मिणी के रूप में उसे चाहता अवश्य है। एक राक्षस यज्ञ से उद्विग्न है और यज्ञ में विघ्न डालने के लिये उसकी सहधर्मिणी का अपहरण कर लेता है। राजा भट्ट को समझाता है कि वह या तो दूसरा विवाह कर ले या पत्नी की स्वर्ण प्रतिमा बनवा ले। भट्ट दोनों बातों के लिये तैयार नहीं है। राजा राक्षस को मार कर भट्ट की पत्नी को छुड़ा लाने में सफल हो जाता है और भट्ट का यज्ञ यथाविधि समाप्त हो जाता है।

इसका अभिनय सरस्वती महोत्सव में किया गया था। इसका प्रकाशन कलकत्ता से साहित्य परिषद् पत्रिका में कर दिया गया था।

भद्राद्रिराम शास्त्री– (ना.का.) गोदावरी जिले में पीठापुर के गौतमगोत्रीय गंगा रामय्या के पुत्र एवं वेलनति वैदिकी ब्राह्मण थे। इनका जन्म १८५६ में तथा मृत्यु १९१५ में हुई थी। ये संस्कृत के उच्चकोटि के विद्वान एवं कवि थे। ये उर्लम् और लक्कवरम के जमीन्दारों के दरवार को सुशोभित करते थे। इन्होंनें श्रीरामविजय काव्य और शम्वरासुरविजयचम्पू के अतिरिक्त मुक्तावली (दे.) नाटक लिखा था।

भद्रायुर्विजय– (ना.कृ.) इस नाटक की रचना शङ्करलाल ने की थी।

भरत– (ना.पा.) प्रतिमा नाटक (दे.) में भरत एक महत्वपूर्ण पात्र है। रामायण में यही एक ऐसा पात्र है जिसके चरित्र में किसी प्रकार का दोष नहीं दिखलाया जा सकता। उसी का पालन इस नाटक में हुआ है। उनके पश्चात्ताप और आक्रोश में तथा क्रोधालाप में भ्रातृभक्ति तो है ही औचित्य और विपत्काल में तत्काल निर्णय लेने की क्षमता भी है। रूपरंग में वे राम के प्रतिरूप हैं। उनका व्यक्तित्व सङ्कल्पशक्ति पर आधारित है। उनके भावों में उदात्तता है। इस नाटक में उनका चरित्र राम से भी अधिक ऊँचा सिद्ध होता है और कुछ आलोचक तो राम के स्थान पर भरत को ही कथानायक मानते हैं।

भरतपिशरोटी– (ना.का.) ये केरल के निवासी थे। इनके लिखे एकभारतम् नाटक का उल्लेख केरल के नाट्यसाहित्य में किया जाताहै। सम्भवतः इसमें भारतविभाजन पर प्रतिक्रिया व्यक्त की गई है और पुनः भारत के एकीकरण पर बल दिया गया है। इनका समय है २० वीं शताब्दी।

भरतमेलनम्– (ना.कृ.) विश्वेश्वर विद्याभूषण लिखित रूपक। इसका विभाजन अंकों के स्थान पर दृश्यों में हुआ है। इसमें भरत का चरित्रचित्रण महत्वपूर्ण है। भरत मिलाप की कथा को इसमें नाटकायित किया गया है।

भरतराज– (ना.कृ.) हस्तिमल्ल (दे.) लिखित नाटक।

भरद्वाज– (ना.का.) इनका लिखा कालेयकौतूहल (दे.) पूना से प्रकाशित हो चुका है।

भर्तृहरिनिर्वेद– हरिहर (दे.) लिखित प्रतीकनाटक। इसमें भर्तृहरि का निर्वेद दिखलाया गया है। योगदर्शन की प्रशस्ति के साथ इसमें इसी दर्शन की शिक्षा दी गई है कि प्राकृतिक भौतिक तत्वों से आत्मा को किस प्रकार पृथक् किया जा सकता है और किस प्रकार सांसारिकता का परित्याग कर एकान्त आत्मतत्वचिन्तन में प्रवृत्त हुआ जा सकता है। इसके कथानकनायक गोरखनाथ हैं जो शिव का अवतार माने जाते हैं। भतृहरि की मृत्यु की झूठी खबर से भर्तृहरि की पत्नी की मृत्यु हो गई। यह समाचार जब भर्तृहरि ने सुना तो उनको इस बात का बहुत बड़ा आघात लगा। बाद में एक योगी के उपदेश

से उनका मन शान्त हो गया और इतना विराग उत्पन्न हो गया कि जब उनकी मृत पत्नी को पुनः जीवन लाभ हुआ तब भी संसार से उनकी विरक्ति दूर नहीं हुई। इसका प्रकाशन काव्यमालासीरीज बाम्बे से हो चुका है। एल.एन.ग्रे ने इसका अंग्रेजी में अनुवाद किया जिसका प्रकाशन जर्नल आफ अमेरिकन ओरियण्टल सोसाइटी से हुआ।

भवनुतचूड– (ना.का.) कोसलिका नाटिका के लेखक जिसका उल्लेख नाट्यदर्पण में किया गया है।

भवभूति– (ना.का.) संस्कृत नाटककारों में कालिदास के बाद भवभूति का ही नाम सबसे ऊपर लिया जाता है। भारतीय पण्डितों का यह प्रिय विषय रहा है कि कालिदास और भवभूति दोनों में कौन बड़ा कहा जाने का अधिकारी है। इनके लिखे राम विषयक दो नाटक प्रसिद्ध हैं– महावीरचरित (दे.) और उत्तररामचरित (दे.) इनके अतिरिक्त एक प्रकरण भी प्रसिद्ध है– मालतीमाधव (दे.)। वाक्पतिराज के गौडवहो में भवभूति के काव्यरत्नाकर का उल्लेख किया गया है जो अब प्राप्त नहीं होता। इसके अतिरिक्त इनके नाम कुछ पद्य भी प्राप्त होते हैं जो इनके नाटकों में नहीं हैं। इससे ज्ञात होता है इन्होंने कतिपय अन्य पुस्तकें भी लिखी होंगी।

इनके नाटकों की प्रस्तावनाओं एवं पुष्पिकाओं में इनके व्यक्तिगत जीवन की कुछ सामग्री प्राप्त होती है। उनके अनुसार ये कश्यप गोत्रीय उदुम्बर वंशीय ब्राह्मणों के परिवार में पैदा हुये थे उनका परिवार कृष्णयजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा का अनुयायी था। इनका ब्राह्मणों का शुद्ध परिवार था। ये पङ्क्तिपावन अर्थात् निकटता से दूसरों को पवित्र करने वाले और पञ्चाग्निपूजक थे। धार्मिक व्यवस्था के सच्चे अनुयायी, सोमपान करने वाले एवं धर्मशास्त्र के अध्येता थे। इनके बाबा का नाम भट्टगोपाल, पिता का नाम नीलकण्ठ और माता का नाम जतुकर्णी था। इनके वंश में महाकवि नाम के एक उच्चकोटि के विद्वान हुये थे। भवभूति का जन्म उनकी ५वीं पीढ़ी में हुआ था।

इन्होंने अपने नाम के साथ श्रीकण्ठपदलाञ्छन जोड़ दिया है। अतः यह शंका उत्पन्न हो गई है कि इनका वास्तविक नाम क्या था। क्या भवभूति इनका वास्तविक नाम था और ये श्रीकण्ठ नाम से जाने जाते थे अथवा श्रीकण्ठ इनका असली नाम था और भवभूति इन्हें इसी कारण कहा जातने लगा था। इनमें यह निर्णय करना कठिन है कि कौन सा विशेषण है कौन सा विशेष्य। इसीलिये टीकाकारों को विभिन्न व्याख्यायें करने का मौका मिला है। कुछ लोगों का विचार है कि इन्होंने दो एक स्थानों पर भवभूति शब्द का नई भंगिमा के साथ प्रयोग किया, इसीलिये इन्हें भवभूति कहा जाने लगा। वास्तव में इनका नाम श्रीकण्ठ ही था– 'श्रीकण्ठो नीलकण्ठ' किन्तु इनके परिवार में पिता के नाम से मिलता जुलता नाम रखने की प्रथा दिखलाई नहीं देती। स्वयं इनके पिता का नाम इनके बाबा के नाम के मेल में नहीं है। एक कल्पना यह भी की गई है कि इनके पिता ने शङ्कर जी की उपासना कर इन्हें प्राप्त किया होगा जिससे इनका नाम भवभूति

रक्खा गया– 'श्रीशङ्कर जी की कृपा से प्राप्त हुई विभूति।'

इनके नाम के विषय में एक और विवाद उठाया गया है– मालतीमाधव की एक प्रति प्राप्त हुई है जिसकी तीसरे अंक की पुष्पिका में लिखा है– 'इति श्री कुमारिलभट्ट-शिष्यकृते मालतीमाधवे तृतीयोङ्कः, तथा छठे अंक की पुष्पिका में लिखा है– 'इति श्रीकुमारिलस्वामिप्रसादप्राप्तवाग्वैभवश्रीमदुम्वेकाचार्यविरचिते मालतीमाधवे षष्ठोङ्कः, तो क्या इन नाटकों के कर्ता का नाम उम्बेक था? उम्बेक मीमांसक थे और मीमांसा पर उन्होंने कुछ कार्य भी किया था। वे भवभूति नाम से काव्य रचना करते थे और मीमांसा पर रचनायें करने के लिये अपना नाम उम्बेक रखते थे। यह भी हो सकता है कि उम्बेक ने भवभूति के लिखे प्रकरण के दो अंकों को संशोधित कर इन्हें नया रूप दिया हो। किन्तु इन कल्पनाओं को अधिक खींचना ठीक नहीं। केवल एक प्रति में उम्बेक नाम आया है 'नैकमुदाहाणं योगारम्भं प्रयोजयति।' इसे लेखक का प्रमाद कहना भी ठीक नहीं होगा। उम्बेक भवभूति का नामान्तर भी नहीं हो सकता है क्योंकि भवभूति ने अपने गुरु का नाम ज्ञाननिधि बतलाया है कुमारिल नहीं। किसी लेखक की शरारत मानकर इसकी उपेक्षा की जा सकती है। वास्तव में परम्परा भी महत्व रखती है। उद्धरणों में इन कृतियों का उल्लेख भवभूति नाम से ही किया जाता है। अतः भवभूति उनका वास्तविक नाम था और पिता के नीलकण्ठ के अनुकरण पर लोग इन्हें श्रीकण्ठ कहने लगे थे। यह उपाधि भी हो सकती है– 'इनके कण्ठ में श्री निवास करती है।'

नाम के विषय में जैसा विवाद है वैसा ही इनके निवास स्थान के विषय में भी है। इस विषय में उनके मलतीमाधव में 'दक्षिणापथे विदर्भेषु पद्मपुरम नाम नगरम्' यह पद्मपुर कहां है? इस विषय में मतभेद है। मालतीमाधव का घटना स्थल पद्मावती बतलाया गया है। अतः कुछ लोगों का विचार है कि कवि ने अपने ही नगर का उल्लेख किया होगा। इससे कल्पना की जा सकती है पद्मावती वास्तव में पद्मपुर है। भवभूति ने अपने नाटकों में गोदावरी और विन्ध्याचल का अत्यन्त मनोरम वर्णन किया है। अतः कुछ लोगों की कल्पना है कि यह पद्मपुर कुछ ऐसे ही परिवेष में स्थित होगा। ग्वालियर स्टेट में नरवर के निकट पवाया या पोलपवाया गांव को पद्मावती माना गया है। इसीलिये नलपुर, अमरावती, कोल्हापुर, उज्जैन, काश्मीर में पाम्पुर इत्यादि अनेक स्थानों की कल्पना की गई है। भवभूति को आजीविका के लिये भटकना पड़ा था। अतः हो सकता है ये पद्मावती और उज्जैन भी चले गये हों। उज्जैन से इनका सम्बन्ध इसलिये सिद्ध होता है कि इनके तीनों नाटकों का अभिनय कालप्रियानाथ के उत्सव में हुआ था। धारणा है कि कालप्रियानाथ वास्तव में उज्जैन के महाकालेश्वर ही है। पद्मपुर के विषय में युक्तियुक्त विचार यही मालूम पड़ता है कि यह स्थान विदर्भ (वर्तमान वरार) में नागपुर के आसपास कहीं होगा जहां कवि का जन्म हुआ था। जिस प्रकार के ब्राह्मणों का वर्णन भवभूति में किया है वैसी जातियां उस प्रदेश में अब भी पाई जाती हैं।

कल्हण ने राजतरंगिणी में कन्नौज के यशोवर्मा के दरवारी कवि के रूप में भवभूति का उल्लेख किया है–

कविवाक्पतिराजश्रीभवभूत्यादिसेवितः ।
जितो ययौ यशोवर्मा तद्गुणस्तुतिवन्दिताम् ।

कन्नौज के राजा यशोवर्मा ने गौडराज का वध किया था जिसका वर्णन वाक्पतिराज ने गौडवहो नामक प्राकृत काव्य में किया है। बाद में कल्हण के अनुसार यशोवर्मा को ललितादित्य ने पराजित किया। ललितादित्य का समय कनिंघम के अनुसार ६९३ ई. से ७२९ ई. तक माना जाता है। अतः यशोवर्मा का समय भी ७वीं शताब्दी का अन्त और ८वीं शताब्दी का पूर्वार्ध होना चाहिये। गौडवहो में भवभूति की काव्यकला की प्रशंसा की गई है। अतः भवभूति का समय भी इसी के आस पास सिद्ध होता है। इसकी संगति इससे भी बैठ जाती है कि इनका प्रथम उल्लेख वामन ने किया है जिनका समय ७वीं शताब्दी का उत्तरार्ध है। इनका उल्लेख बाण ने नहीं किया है। इसका आशय यह है कि इनका समय बाण और वामन का अन्तरालवर्ती है जो यशोवर्मा के समय से मेल खा जाता है। यतः इसका जन्म ७वीं शताब्दी का पूर्वार्ध माना जा सकता है।

भवभूति ने स्वयं को पदवाक्यप्रमाणज्ञ कहा है, जिसका आशय यह है कि ये व्याकरण, मीमांसा और न्याय वैशेषिक दर्शन के विद्वान थे। किन्तु इतना ही इनके ज्ञान का परिचय नहीं है। इनके ग्रन्थों को देखने से मालूम पड़ता है कि ये वेद, वेदान्त, उपनिषद्, योग, सांख्य, धर्म शास्त्र, राजनीति, नाट्यशास्त्र, कामसूत्र, तन्त्र, जातक इत्यादि अनेक विषयों के ज्ञाता थे तथा इनकी झलक इनकी रचनाओं में दृष्टिगत होती है। अतलस्पर्शी भावना की तीव्रता और अभिव्यञ्जन की निपुणता ने इन्हें कलाकारों की उच्चता तक पहुंचाया है और ये विश्वकवियों में स्थान पा सके हैं। इन्हें कालिदास की रचनाओं का ज्ञान था और इन्होंने उन का उपयोग भी किया है। किन्तु नाटकीय कला की निपुणता के कारण भवभूति को यश की इतनी अधिक प्राप्ति नहीं हुई जितनी भाषा के प्रयोग की दक्षता के कारण हुई है। भाषा के दृष्टिकोण से वे संस्कृत के मूर्धन्य कवियों में माने जाते हैं। स्वाभाविक सहानुभिति को वाणी देने की उनकी शक्ति अद्भुत है। जबकि अन्य भारतीय कवि प्रकृति की ललित एवं सुकुमार सुन्दरता का निरुपण करते हैं भवभूति उसके अत्युच्छ्रित स्वरूप का वर्णन करना पसन्द करते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि इसका कारण यह है कि इसके मस्तिष्क पर इनके जन्म स्थान के दक्षिण में स्थित भारतीय पर्वतों का प्रभाव पड़ा है। इसके अतिरिक्त वे केवल ऐसे ही चरित्रों को चित्रित करने में सिद्ध हस्त नहीं हैं जो कोमल, शरीफाना, रईसी मनोवृत्तियों से प्रेरित हैं किन्तु संरम्भात्मक मनोवृत्तियों की गहराई और शक्ति को प्रभावशाली अभिव्यक्ति देने में भी निपुण हैं। हास्य अभिनेता (विदूषक) की अनुपस्थिति उनका विशिष्ट लक्षण है। हास्यपरक एवं बुद्धिविलासजन्य (प्रत्युत्पन्नमति) तत्व का उसमें प्रवेश बहुत थोड़ी सीमा तक हुआ है। वे नाट्यकला को अत्यन्त गम्भीर

तत्व मानते हैं और हास्य के प्रयोग में लज्जा का अनुभव करते हैं। भाषा भी सम्वादों के अनुकूल नहीं है। लम्बे समास सिद्ध करते हैं कि उनकी रचनायें अध्ययन के अधिक अनुकूल हैं, रंगमञ्च के अनुकूल नहीं हैं। रामविषयक दोनों नाटक तो रंगमञ्च के अनुकूल हैं ही नहीं।

भवानीशङ्कर- (ना.क़ा.) सन् १९८१ में पंचम विश्वसंस्कृतसम्मेलन में अभिनय के लिये इन्होंने मोक्षमूलरवैदुष्यम् (दे.) नाटक की रचना की।

भवाल्कर डाक्टर- (ना.क़ा.) दे. वनमाला।

भागवतकृष्ण- (ना.क़ा.) ये मैसूर के निवासी थे। इनके नाम पर एक प्रेङ्खणक उद्धतवृकोदर (दे.) है जिसकी प्रति मैसूरपुस्तकालय के संस्कृत पाण्डुलिपि अनुभाग में सं. २७४ पर सुरक्षित है। इसके अतिरिक्त इसी नाम पर शर्मिष्ठाययाति (दे.) नामक एक नाटक और मिलता है। निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि ये दोनों भागवतकृष्ण एक ही व्यक्ति थे। यह भी सम्भव है कि इनका व्यक्तित्व शेषकृष्ण से अभिन्न हो।

(१) **भागुरायण-** (ना.पा.) मुद्राराक्षस (दे.) में चाणक्य का गुप्तचर है जिसने मलयकेतु से मित्रता कर रक्खी है, प्रत्येक अवसर पर उसके मन में राक्षस के प्रति सन्देह एवं विरोध भावना को बढ़ाने की चेष्टा करता रहता है। यह कार्य उसकी अन्तरात्मा का विरोधी है, किन्तु वह अपना उत्तरदायित्व पूरी तत्परता से निभाता है। उसका विचार है कि सेवक का कर्तव्य सर्वदा उसके स्वामी के आधीन होता है, वह स्वयं निर्णय करने का अधिकारी नहीं है। उसकी प्रशंसा इसी में है कि वह अपना कार्य अत्यन्त निपुणता के साथ करता है जिससे मलयकेतु कभी सन्देह नहीं कर पाता। चाणक्य की सफलता में उसका योगदान स्तुत्य है।

(२) **भागुरायण-** (ना.पा.) विद्धशाल भञ्जिका (दे.) में विद्याधर मल्ल का मन्त्री। यह परम स्वामिभक्त है। राजा ने सारा राज्यकार्य इसे सौंप रक्खा है और स्वयं शृङ्गारमय जीवन बिता रहा है। जब भागुरायण को ज्ञात होता है कि लाटेश्वर चन्द्रवर्मा की पुत्री मृगाङ्कावली भुवनसुन्दरी है और भविष्य वक्ताओं द्वारा बतलाया गया है- उसका विवाह जिससे होगा वह सम्राट बन जायेगा। इसके लिये वह उस लड़की को मृगाङ्कवर्मा बनाकर ले आता है और अपनी योजनाओं द्वारा ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर देता है कि उसका राजा से विवाह हो जाता है। यह उसकी स्वामिभक्ति और कार्यकुशलता का प्रमाण है।

भाग्यमहोदय- (ना.कृ.) जगन्नाथलिखित नाटक। यह एक प्रतीक पद्धति पर लिखा गया नाटक है। राजा वखतसिंह की प्रशंसा करने के लिये छन्दःशास्त्रीय शब्द यगण इत्यादि और काव्यशास्त्रीय अलंकार इत्यादि रंगमञ्च पर पात्र रूप में आते हैं तथा प्रशस्ति गाते हैं।

भाण-साहित्य- (ना.व.) चतुर्भाणी नामक चार भाणों का एक संग्रह प्राचीन काल

का बतलाया जाता है। भाण की यह विधा अत्यन्त जनप्रिय रही है और इसकी बहुत बड़ी परम्परा बतलाई जाती है। उनमें कुछ रचनायें इस प्रकार हैं- अनंगजीवन, अनंगतिलक (रंगनाथ), अनंगमंगल (सुन्दर कवि), अनंगलतिका (लक्ष्मीनृसिहं), अनंगविजय (१ शिव रामकृष्ण, २ जगन्नाथ), अनंगसर्वस्व (लक्ष्मीनृसिहं), कन्दर्पदर्प या कन्दर्पदर्पण (१ श्रीकण्ठ, २ श्रीकृष्ण, ३ राम रायवेल्लमकोण्ड), कन्दर्प विजय (कौशिक गोत्रीय धनगुरु), कामकला-विलास (प्रधानिवेङ्कट भूपति), कामविलास (वेङ्कप्पा), कामिनीकामुकोल्लास, कालिकेलि यात्रा (श्रीकण्ठ उपनाम नञ्जुण्ड), कुसुमवाण विलास, कैतवकलाचन्द्र (नारायण), गोपाल लीलार्णव (गोविन्द), चतुरीचन्द्रिका (वेङ्कटार्य), चन्द्रलेखा विलास, पञ्चवाण विजय (रंगाचार्य), पञ्चवाणविलास, पञ्चायुधप्रपञ्च (त्रिविक्रम), बल्लवीपल्लवोल्लास (मञ्जुलाचार्य उपनाम कृष्णामूर्ति कुमार), मदन गोपाल विलास (गुरुराम), मदन गोपाल (स्वयंभूनाथ), मदनलीला दर्पण (पद्मनाभ) मदनविजय (शेषाचार्य), मदनविलास (नागनाथ), मदनसाम्राज्य (भुजंग), मदनाम्युदय (कृष्णमूर्ति) मन्मथमोदन (सुब्रह्मण्य शास्त्री), मन्मथाम्युदय (वेङ्कटेश), महिशमंगल (पुरुवन मालावार के एक नम्बूद्रि ब्राह्मण), मुकुन्दानन्द (काशीपति), रसरत्नाकर (जयन्त), रसविलास (कोक्कनाथ), रसिकजनमानसोल्लास, रसिकजनरसोल्लास (वेङ्कट), रसिकरञ्जन (श्रीनिवास), रसिकामृत (शंङ्करनारायण), रसोदय (सुरपुरम् अण्णराय), रसोल्लास (श्रीनिवास वेदान्ताचार्य), वसन्तभूषण (नृसिंह सूरि), वसन्तभूषण (वरदराय), विलासभूषण (वेङ्कटकृष्ण), शारदातिलक (१ तिलक, २ शेषगिरि), शारदानन्दन (श्रीनिवासाचार्य), शृङ्गारकोश (गीर्वाणेन्द्र), शृङ्गारचन्द्रिका (श्रीवत्सगोत्रीय श्रीनिवास), शृङ्गारजीवन (कौशिकगोत्रीय वरद), शृङ्गार तरंगिणी (१ रामभद्र, २ श्रीनिवास ईच्चमवडि, ३ वैङ्कटाचार्य), शृङ्गारतिलक (अविनाश स्वामी), शृङ्गारदीपक (१ विज्ञानमूरि राघवाचार्य, २, वेङ्कटाध्वरीण), शृङ्गारमञ्जरी (१ गोपालराय, २ अवदानसरस्वती, ३ अज्ञातनामा कवि, ४ रतिकर, ५ केरलवर्मा) शृङ्गार रत्नाकर (सुन्दर ताताचार्य), शृङ्गाररसभृङ्गार (इन्द्रगन्ति कोण्डसूरि) शृङ्गाररसोदय (राम कवि), शृङ्गारराज (गोपाल राय), शृङ्गारलीलातिलक (भास्कर), शृङ्गार वापिका (विश्वनाथ), शृङ्गार विलसित (नारायण), शृङ्गार विलास (साम्बशिव), शृङ्गार शृङ्गाटक (रंगनाथ), शृङ्गार संजीवन (शठजित्कवि), शृङ्गारसर्वस्व (१ स्वामीशास्त्री, २ कौशिकनल्लबुध, ३ वेदान्ताचार्य, ४ भूमिनाथ, ५ राजचूडामणि दीक्षित, ६ अज्ञातनामा कवि), शृङ्गार सुन्दर (ईश्वर शर्मा), शृङ्गार स्तवक (नरसिंह), श्रीरंगनाथ (श्रीनिवास), सरसकवि कुलानन्द (रामचन्द्र), सारस्वतोल्लास (वेङ्कटराम), हरिविलास (हरिदास)।

(यह सूची पूर्ण नहीं है। लेखकों के नाम कोष्ठक में दिये गये हैं। विवरण यथास्थान देखिये।)

भानुदत्तदैवत- (ना.का.) प्रभावतीहरणम् नाटक के लेखक। इनका समय १९वीं शताब्दी (दे.) का मध्य भाग है।

भानुप्रबन्धप्रहसन- (ना.कृ.) वेङ्कटेश्वर (दे.) लिखित एक प्रहसन। इसका आधार

एक ऐसा कामुककथानक है जो नायिका विषयक कामुकता के कारण दण्डित किया जाता है और राजपुरुषों द्वारा पत्नी के पास पहुंचाया जाता है। इसका रचनाकाल १८वीं शताब्दी है। कैटेलागस कैटेलागोरम सं. १.४०५ पर इसका उल्लेख किया गया है।

भानुमती- (ना.पा.) वेणीसंहार में दुर्योधन की पत्नी। उसने स्वप्न में देखा है नकुल (नेवले) ने १०० सर्प मार डाले हैं। युद्धारम्भ में इस दुस्स्वप्न से वह चिन्तित है और कुछ पूजन इत्यादि के द्वारा अनर्थशमन का प्रयत्न करती है। किन्तु उसके स्वभाव में अभिमान की भावना आधिक है। वह द्रौपदी के खुले केशों का मजाक उड़ाती है जिसका उसे उचित उत्तर मिल जाता है। वह द्रौपदी से कहती है 'क्यों अब भी तुम्हारे बाल नहीं बंधे?' तब द्रौपदी की चेटी ही उसे उत्तर देती है- जब तक तुम्हारे बाल खुलेंगे नहीं तब तक इसके बंधेंगे कैसे? जब तक दुर्योधन की मृत्यु के बाद भीम सन्देश देते हैं कि अब भानुमती को द्रौपदी के खुले केशों की मजाक उड़ानी चाहिये तब उसे उचित उत्तर मिल जाता है।

भानुमती परिणय- (ना.कृ.) अज्ञातनामा कवि की विवाह विषयक रचना।

भामाभिषड्गम्- (ना.कृ.) नारायण शास्त्री लिखित ७ अंकों का नाटक।

भामिनी विलास- (ना.कृ.) गुरुप्रसन्नभट्टाचार्य (दे.) लिखित ६ अंकों का नाटक।

भारतचन्द्रराय- (ना.का.) इनका लिखा नाटक 'चण्डीनाटकम्' कलकत्ता से प्रकाशित हुआ है। इनका समय है १८वीं शताब्दी।

भारततातम्- (ना.कृ.) डा. रमा चौधरी लिखित ६ अंकों का नाटक। यह महात्मा गान्धी के विषय में लिखा गया नाटक है। जिसका अभिनय गान्धी जन्म शताब्दी के अवसर पर शिक्षा मन्त्रालय के तत्वावधान में किया गया था।

भारतपथिक- (ना.कृ.) डा. रमा चौधरी लिखित रूपक। इसका विभाजन दृश्यों में हुआ है जिनकी संख्या ५ है। इसमें राजा राममोहन राय का चरित्रचित्रण किया गया है। प्रमुख घटनायें हैं- सतीप्रथा उन्मूलन, अंग्रेजीशिक्षा प्रसार, ब्रह्मसमाज की स्थापना, विदेशयात्रा, ब्रिष्टल में देहावसान।

भारतराजेन्द्र- (ना.कृ.) यतीन्द्रविमल चौधरी लिखित राजेन्द्र प्रसाद जीवनगाथा विषयक रूपक। राजेन्द्र प्रसाद की कलकत्ता विश्व विद्यालय से प्रथम श्रेणी, नमक सत्याग्रह, हिन्दू-मुस्लिमएकता, भगलपुर आन्दोलन, छपरा जेल की घटनायें, राष्ट्रपतिपद पर निर्वाचन इत्यादि घटनाओं को अंकित किया गया है।

भारतलक्ष्मी- (ना.कृ.) यतीन्द्रविमल चौधरी लिखित झांसी की रानी लक्ष्मीबाई के चित्रण से सम्बन्धित रूपक इसमें १० अंक हैं।

भारतविजयम्- (ना.कृ.) मथुरा प्रसाद दीक्षित लिखित ७ अंकों का नाटक। इसकी रचना अंग्रेजी राज्य में हुई थी और १९३६ में सोलन में इसका अभिनय किया गया था।

अंग्रेजों ने इसे जप्त कर लिया था। फिर स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद इसे मुक्त किया गया। यह एक ऐतिहासिक नाटक है। इसके कथानक का आयाम अत्यन्त व्यापक है– गोरे लोग व्यापार के लिये भारत आते हैं और यहां की राजनीति में दखल देने लगते हैं। नवाब सिराजुद्दौला के खिलाफ उनके सेनापति मीर जाफर से एक सन्धिपत्र लिखवाया जाता है। मीरकासिम सन्धिपत्र का विरोध करता है, तब युद्ध होता है जिसमें मीर कासिम पराजित होता है। नन्दकुमार के पत्र को छिपाकर उसे फांसी दिलवाई जाती है। इसी प्रकार सन् ५७ का स्वतन्त्रता आन्दोलन, कांग्रेस का आन्दोलन और भारत स्वतन्त्रता ये सब नाटक के विषय हैं। इसमें विष्कम्भक और चूलिका का भी प्रयोग किया गया है। इसका प्रकाशन हो चुका है।

भारतविवेक– (ना.कृ.) यतीन्द्र विमल चौधरी लिखित विवेकानन्द विषयक १२ दृश्यों का नाटक। इसमें विवेकानन्द की सम्पूर्ण जीवन गाथा ऐतिहासिक परिवेष में चित्रित की गई है। विवेकानन्द जन्म शताब्दी के अवसर पर अभिनय के लिये इस नाटक की रचना की गई थी। २ नव. १९६२ को विश्वरूप थियेटर में इसका अभिनय किया गया था। प्राच्यवाणी में इसका प्रकाशन सन् १९६३ में हो गया था. बंगाल, दिल्ली, पाण्डिचेरी में इसका कई वार अभिनय हो चुका है।

भारतहृदयारविन्दम्– (ना.कृ.) अरविन्दघोष के जीवन पर यतीन्द्रविमल चौधरी लिखित नाटक। इसकी रचना १९५९ में एवं प्रथम-अभिनय पाण्डिचेरी के अरविन्दाश्रम में हुआ था। यह ५ अंकों का नाटक है।

भारताचार्य– (ना.कृ.) डा. राधाकृष्णचरित्र परक डा. रमा चौधरी लिखित नाटक। राष्ट्रपति भवन में १९६६ में अभिनीत। राष्ट्रपति द्वारा १५०० रूपयों से पुरस्कृत। अभिनय निर्देशन लेखिका ने ही किया था।

भावनापुरुषोत्तम– (ना.कृ.) यह श्रीनिवास दीक्षित रत्नखेट (दे.) लिखित एक प्रतीक नाटक है। दक्षिण के व्यक्तिगत पुस्तकालयों में सुरक्षित संस्कृत पाण्डुलिपियों की जो सूची गुस्तव ओपर्ट ने मद्रास से दो खण्डों मे प्रकाशित की थी उसकी सं. ३४२ पर इसका उल्लेख किया गया है।

लन्दन के ए.सी. वरनैल द्वारा तैयार किये गये संस्कृत पाण्डुलिपियों के क्लासिकल कैटेलाग के अनुसार तंजौर की पैलेस लायब्रेरी में यह सं. १७० पर उपलब्ध होती है। इसका अभिनय वासन्तिक महोत्सव में हुआ था।

भावना जीव देव की पुत्री है। उसने सिद्धाश्रम में भगवान के चतुर्भुज रूप के दर्शन किये हैं और पूर्ण प्रेमिका बन गई है। उधर पुरुषोत्तम भगवान भी भावना को चाहते हैं। सखी योगविद्या ऐसे साधन जुटाती है कि दोनों का मिलन हो सके। स्वयंवर होता है, सभी देवता आते हैं, भावना सभी का परित्याग कर देती है। तब परुषोत्तम आते

हैं, भावना उनको जयमाला पहिनाकर वरण कर लेती है।

इसका प्रधान रस शृङ्गार है। बीच बीच में अन्य रसों का भी समावेश हुआ है।

भाष्यकार– (ना.का.) आञ्जनेयविजय (दे.) के लेखक। इनका उल्लेख श्रीधर दास के सदुक्तिकर्णामृत में भी किया गया है।

भास– (ना.का.) उपलब्ध नाटक साहित्य में भास संस्कृत के प्रथम नाटककार या प्रथम नाटककारों में एक माने जाते हैं। इनके व्यक्तित्व के विषय में साहित्य जगत् को कोई विशेष ज्ञान नहीं है। कुछ लोग इन्हें मौर्यकाल या उससे भी पहले का मानते हैं तथा तीसरी शताब्दी ई. पू. तक ले जाते हैं जबकि दूसरे लोग इनकी परवर्ती सीमा ई. की तीसरी शताब्दी मानते हैं। उदयन विषयक नाटक लिखने के कारण कुछ लोग इनका निवास स्थान उज्जैन मानते हैं। इनके प्रायः प्रत्येक नाटक में राजसिंह को आशीर्वाद दिया गया है। क्या राजसिंह नामक कोई प्रतिष्ठित राजा इनका आश्रयदाता था या सामान्य रूप से किसी भी आश्रयदाता के लिये इस विशेषण का प्रयोग कर दिया गया है इस विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता।

सन् १९०९ के पहले भास की प्रशस्ति और कतिपय उद्धरणों के अतिरिक्त इनके विषय में और कुछ ज्ञात नहीं था। कालिदास ने अपने पूर्ववर्ती प्रतिष्ठित नाटककारों में इनका पहले नम्बर पर स्मरण किया है। बाणभट्ट ने इनके नाटकों की तुलना महान राजकीय प्रासादों से की है। राजशेखर का कहना है कि उनके स्वप्नवासवदत्ता नाटक को आग भी नहीं जला सकी। दण्डी उनके नाटकों को उनका यशः शरीर बतलाते हैं। जयदेव ने इन्हें कविताकामिनी का हास कहा है। इनके कुछ पद्य अभिनवगुप्त, सोमदेव इत्यादि की कृतियों और संग्रहों से प्राप्त होते हैं। इन प्रशस्तियों के अतिरिक्त वर्तमान साहित्य जगत् को १९०९ तक कोई कृति उपलब्ध नहीं हो सकी थी।

सन् १९०९ में महामहोपाध्याय गणपति शास्त्री (दे.) ने त्रिवेन्द्रम् के राजपुस्तकालय से कुछ प्रतियां प्राप्त कीं जिनमें किसी लेखक का नाम नहीं था। किन्तु विसेष अनुसन्धान करने पर स्पष्ट प्रमाणित हो गया कि ये कृतियां भास की हैं। ये सब मिलकर १३ नाटक हैं जिनमें नाट्यतत्व की अनेक विधाओं का समावेश हो जाता है। कुछ एकाङ्की नाटक हैं और कुछ पूर्ण नाटक। इन नाटकों में ७ की कथावस्तु महाभारत या कृष्ण साहित्य पर आधारित है, दो रामायण पर, दो प्रचलित कथासाहित्य पर आधारित हैं और दो की कथा वस्तु इतिहास से ली गई है। प्रथम वर्ग के नाटकों के नाम हैं– बालचरित (दे.) दूतघटोत्कच (दे.) दूतवाक्यम् (दे.) पञ्चरात्रम् (दे.) कर्णभार (दे.) मध्यमव्यायोग (दे.) और उरुभंग (दे.)।

राम विषयक नाटक है– प्रतिमा (दे.) और अभिषेक (दे.) लोक साहित्य से अविमारक (दे.) और चारुदत्त (दे.) लिये गये हैं। ऐतिहासिक नाटक हैं– प्रतिज्ञायौगन्धरायण (दे.) और

स्वप्नवासवदत्तम् (दे.)। अन्तिम नाटक सर्वोत्तम है। इनकी दो और नाट्यकृतियां दमक (दे.) और त्रैविक्रम (दे.) बतलाई जाती हैं। शकुन्तला की चर्चना (दे.) नामक टीका में वीणावासवदत्ता (दे.) और चाण्डाल रामायण (दे.) का भी उल्लेख किया गया है तथा उनकी समीक्षा की गई है। इन नाटकों में अंक, नाटक, प्रकरण, व्यायोग इत्यादि कई नाट्य विधाओं पर रचनायें प्रस्तुत की गई हैं।

भास एक महान नाटकार ही नहीं, महान नाटककारों का पथ प्रदर्शन करने वाले एक महान कलाकार हैं। भाषा, शैली प्रविधि, तक्नीक इत्यादि अनेक दृष्टियों से वे सभी कलाकारों से पृथक् अपना स्वतन्त्र अस्तित्व बनाये हुये है। वस्तु-विन्यास में उन्हें अभूतपूर्व सफलता मिली है। अन्तर्द्वन्द्व के चित्रण के साथ रसात्मकता का उनमें पूर्ण सामञ्जस्य पाया जाता है। कठोर और कोमल दोनों प्रकार के रसों के निष्पादन में उन्हें अत्यधिक सफलता मिली है और हास्य रस के क्षेत्र में भी वे दूसरों के लिये आदर्श सिद्ध हुये हैं। कल्पनाशक्ति, अभिव्यक्तिचातुर्य, नाट्यकलाभिज्ञता इत्यादि गुणों में वे बेजोड़ है। इन नाटकों में घटना प्रधानता, अन्तद्वन्द्व और रसात्मकता का मणिकाञ्चनसंयोग उन्हें नाटककारों की प्रथम श्रेणी में स्थान देने के लिये सर्वथा पर्याप्त है। इन्होंने अभिनय की दृष्टि से नाटक लिखे थे। इनके नाटकों में नाट्यशास्त्रीय प्रविधि का पर्याप्त निर्वाह हुआ है। इससे ज्ञात होता है कि इनके समय तक नाट्यकला बहुत कुछ परिनिष्ठित रूप ले चुकी थी।

भासोऽहासः– (ना.कृ.) यह तीन अंकों की रचना गजाननबालकृष्णपलसुले द्वारा भास नाटकों में हास्य की कमी को लेकर प्रस्तुत की गई है। भास कविता कामिनी के हास बतलाये जाते हैं जैसा कि उनके लिये 'भासो हासः' कहा गया था। यहां पलसुले दोनों शब्दों के बीच 'अ' (अवग्रह) मानकर और भास में हास्यरस नहीं है इस बात को लेकर प्रस्तुत नाटक की रचना की है। यह गद्य नाटक है जिसका प्रकाशन १९८० में कर दिया गया था। प्रकाशक हैं शारदागौरवग्रन्थमाला के सञ्चालक अनन्तगाडगिल।

(१) **भास्कर–** (ना.का.) ये श्रीवत्सगोत्रीय शिवसूर्य के पुत्र एवं राजा हलघट्टि के धर्माचार्य थे। इनका लिखा वल्लीपरिणय नाटक प्राप्त होता है। (दे. १ वल्ली परिणय)

(२) **भास्कर–** (ना.का.) इनका लिखा लीलातिलक नामक भाण प्राप्त होता है। ये उन्मत्तराघव एकाङ्की नाटक के लेखक भास्कर से भिन्न हैं तथा ये केरल के निवासी थे और विक्रमदेव के दरवारी कवि थे।

भास्कर कवि– (ना.का.) यदि ये विजय नगर के विद्यारण्य ही हैं जैसा कि इन्होंने स्वयं कहा है तो इनका समय १४वीं शताब्दी है। इनका लिखा उन्मत्तराघव कालिदास के विक्रमोर्वशी के चतुर्थ अंक का अनुकरण है। उन्मत्तराघव के आमुख में कहा गया है कि विद्यारण्य के अभिनन्दन समारोह में एकत्र विद्वानों के मनोरंजन के लिये नाटक की रचना की गई थी।

भास्करकेशवढोक- (ना.का.) श्रीकृष्णदौत्यम् (दे.) नाटक के लेखक।

भास्करयज्वा- (ना.का.) ये १६वीं शताब्दी के कवि हैं। इनके पिता वत्सगोत्रीय ईश्वरसूर्य थे। इनके लिखे कुमार विजय (दे. कुमार विजय २) का प्रकाशन मुसलीपट्टम से हो गया था।

भास्करोदयम्- (ना.कृ.) यतीन्द्रविमल चौधरी लिखित १५ अंकों का महा नाटक। इस नाटक में रवीन्द्रनाथठाकुर के जीवन वृत्त से संबंद्ध घटनाओं का चित्रण किया गया है। यह नई शैली की रचना है जिसमें विष्कम्भक प्रवेशक इत्यादि का प्रयोग नहीं किया गया है। प्राकृत का भी अभाव है। इसमें गीतों की अधिकता है। इसकी रचना तथा प्रथम अभिनय १९६० में हुआ था।

(१) **भिक्षु-** (ना.पा.) मृच्छकटिक का एक पात्र। यह पाटलिपुत्र का निवासी है। इसने बचपन में देह दवाने और मालिश करने की कला सीख रक्खी थी। यह देश विदेश में घूमने का शौकीन है और इसी प्रसंग में उज्जैनी आया है। यहां कुछ आमदनी के लिये चारुदत्त के यहां संवाहक (हाथ पैर दवाने वाले) की नौकरी कर लेता है। जब चारुदत्त के पास वेतन देने के लिये पैसा नहीं रह जाता तब जुआ खेल कर पेट पालता है। एक दिन जुये में १० मोहरें हार जाता है। जुआरी अपना पैसा वसूल करने केलिये इसे मारपीट रहा है। वह भाग कर वसन्त सेना के घर में घुस जाता है। वसन्तसेना उस पर कृपाकर उसका देय निर्यातित कर देती है। इस घटना से खिन्न होकर वह संवाहक का काम छोड़कर बौद्धसन्यासी बन जाता है। किन्तु उसे एक बात टीसती रहती है कि उसने वसन्तसेना का आभार स्वीकार किया है। वह अपने सन्यस्त जीवन को तब तक सफल नहीं मानता जब तक वसन्तसेना का बदला न चुका दे। ऐसा अवसर उसे मिल जाता है। पत्तोंढके वसन्त सेना के शरीर को वह निकालता है। मृत्यु से बचाता है और उसे उसके प्रेमी से मिला देता है तथा उसके प्रेमी को भी जीवन दान देने में कारण बनता है। वह सच्चे अर्थ में विरागी है और जब शासन सत्ता के बदल जाने के बाद उससे उसका अभीष्ट पूछा जाता है तब वह सन्यास को ही वरण करता है।

(२) **भिक्षु-** (ना.पा.) प्रबोधचन्द्रोदय (दे.) का एक पात्र। शान्ति अपनी मां श्रद्धा से बिछुड़ गई है। वह अपनी सखी करुणा के साथ उसकी खोज में निकलती है। श्रद्धा नामधारिणी अनेक महिलायें विभिन्न धर्मावलम्बियों के साथ दिखलाई पड़ती हैं। भिक्षु भी उनमें एक है जो बौद्धमत का प्रतीक है; उसके साथ एक श्रद्धा है। किन्तु वह शान्ति की मां नहीं है। ऐसी कोई विकृत श्रद्धा शान्ति की मां नहीं हो सकती। भिक्षु (बौद्धमत) का जैनमत से झगड़ा भी हो जाता है।

(१) **भीम-** (ना.पा.) भास (दे.) के मध्यम व्यायोग (दे.) का एक पात्र। इसमें भीम सेन की कारुणिकता, उदारता, वीरता, त्याग और सदाशयता का चित्रण किया गया है। एक ब्राह्मण बालक की जीवन रक्षा के लिये वह आत्म समर्पण कर देता है। और जब

बालक की प्राण रक्षा हो जाती है तब भी सभी को लेकर उस बालक के घर तक जाने की उदारता भीम की सदाशयता का एक प्रमाण है। उनकी सदाशयता, लोकोपकार की भावना और निर्भीकता जग जाहिर है और इन्हीं गुणों पर विश्वास कर हिडिम्बा अपने पुत्र को किसी मनुष्य को लाने के लिये नियुक्त करती है क्योंकि उसे विश्वास है कि ऐसा हो ही नहीं सकता कि भीमसेन किसी मनुष्य की प्राणरक्षा के लिये आगे न आयें और अत्यन्त शक्तिशाली पुत्र घटोत्कच को जीत न ले। उनकी मानवता और विवेक का भी उन्हें विश्वास है। वह समझती है कि संघर्ष में भी उसके पुत्र का कोई अनर्थ नहीं होगा। भीम त्यागी है, दक्ष है। हिडिम्बा ने उस पर जो विश्वास किया उसमें उसे निराश नहीं होना पड़ा।

(२) **भीम–** (ना.पा.) उरुभंग में दुर्योधन और भीमसेन के गदा युद्ध में महाभारत के महासमर का पटाक्षेप होता है। भीम द्वारा दुर्योधन की जंघायें तोड़कर उसके सभी अपकारों का बदला ले लिया जाता है। यद्यपि गदायुद्ध में जंघाओं पर प्रहार करना युद्ध नीति के प्रतिकूल है जिसके लिये बलराम भीम को दण्ड देने के लिये भी उद्यत हो जाते हैं, किन्तु भीम के इन कार्यों का समर्थन दुर्योधन के वचनों से भी हो जाता है। जब दुर्योधन अश्वत्थामा से कहता है कि 'राजन् मालूम पड़ता है कि भीमसेन ने गदा युद्ध में जंघाओं के साथ तुम्हारे स्वाभिमान को भी तोड़ दिया है' तब दुर्योधन उत्तर देता है– 'जिसने सभाभवन में द्रौपदी की वह दशा की, उसने अभिमन्यु जैसे पुत्र का उस प्रकार वध किया, जिसने १२ वर्ष के लिये उन्हें मृगों के साथ रहने के लिये वाध्य कर दिया उसके प्रति उनका यह कोई अन्याय या दर्पपूर्ण कार्य नहीं है।' सर्वदा अन्याय का व्यवहार करने वाले के प्रति यदि न्यायमार्ग से हटकर भीम ने बदला लिया भी तो यह अनुचित नहीं कहा जा सकता।

(३) **भीम–** (ना.पा.) पञ्चरात्र में जब पाण्डवों की तलाश हो रही है कीचकवध की सूचना से ही कौरव वर्ग अनुमान लगा लेता है कि यह कार्य भीम के अतिरिक्त किसी और का नहीं हो सकता, क्योंकि कीचकवध की शक्ति भीम के अतिरिक्त और किसी में नहीं। भीम विराटपुर में भी युद्ध में अभिमन्यु को पकड़ ले जाने में कौरव वर्ग पर वीरता की छाप लगा देता है।

(४) **भीम–** (ना.पा.) सौगन्धिकाहरण में भीम के पराक्रम की पुष्टि होती है। द्रौपदी के आग्रह पर भीमसेन स्वर्गीय कमल (पारिजात) को लेने के लिये चल देते हैं। हनुमान और यक्षों का सामना करते हुये भी वे पुष्प प्राप्त करने में सफल हो जाते हैं और द्रौपदी की मनचाहे पुष्प प्राप्त करने की आकाङ्क्षा पूरी हो जाती है।

(५) **भीम–** (ना.पा.) वेणी संहार में नाटक का नायक है। नायक की सभी अपेक्षित विशेषतायें उस में विद्यमान हैं। नाटक के प्रस्तावना भाग के समाप्त होते ही सर्वप्रथम रंगमञ्च पर भीम का प्रवेश होता है। नाटक के किसी भाग में वह बहुत समय तक अदृश्य

या उपेक्षित नहीं रहता और अन्त में द्रौपदी के वेणीसंहार के बाद ही उसकी भूमिका समाप्त होती है। वह फल भोक्ता भी है क्योंकि प्रतिज्ञा पूरी कर लेने का फल उसे ही मिलता है। वह वीर है और किसी भी भयानक से भयानक परिस्थिति में किसी भी सीमा तक जाने के लिये उद्यत है। प्रथम दृष्टि में देखने पर प्रतीत होने लगता है कि वह बहुत ही घमण्डी, बड़बोला और रक्त पिपासु है। वह युधिष्ठिर की आज्ञा और कृष्ण के समझौता प्रयासों को भी ठुकरा देने को तैयार है। उसके उद्धत स्वभाव की पराकाष्ठा उस समय दृष्टिगत होती है जब वह अर्जुन के साथ माता पिता (गन्धारी और धृतराष्ट्र) का अभिवादन करने जाता है, वह इन शब्दों में अपना परिचय देता है– 'समस्त कौरव-कुमारों को चूर चूर करने वाला, दुश्शासन के रक्त की मदिरा पीकर मदहोश और कुछ ही दिनों में दुर्योधन की जंघायें तोड़ देने के लिये तैयार यह भीम आपको सर से प्रमाण कर रहा है।' केवल धृतराष्ट्र के प्रति ही नहीं अपने बड़े भाई के प्रति भी उनका आक्रोश व्यक्त होता है। वे स्पष्ट रूप से सहदेव से कहते हैं– 'आज एक रोज के लिये न मैं उनका अनुज हूं और न वे मेरे गुरु। . . .वे आपके बड़े भाई होंगे मेरे नहीं। . . .वे तो अपना क्षात्र तेज भी जुये में हार गये हैं।

भीम के एक एक वाक्य से उनका औद्धत्य और अभिमान प्राकट होता है। किन्तु यह अकारण नहीं है। वे ठीक ही कहते हैं कि 'कुरुओं के साथ मेरा वैर वचपन से चल रहा है, उसमें कोई दूसरा कारण नहीं है।' दुर्योधन इत्यादि सभी कौरव भाई सामान्य रूप से सभी पाण्डवों से द्रोह करते थे, किन्तु भीमसेन से उनका विशेष वैर था। भीम को ही उन लोगों ने विष देकर मार डालने की चेष्टा की थी। द्रौपदी के खुले केश जितना भीम को पीडित करते थे उतना किसी दूसरे को नहीं। द्रौपदी भी अपनी प्रतिज्ञा पूर्ति के लिये भीमसेन पर ही आस्था जमाये बैठी थी।

वैसे भीमसेन में सद्गुणों का अभाव नहीं है– वे कृष्ण के स्वरूप से भली भांति परिचित हैं। जब उन्हें बतलाया जाता है कि द्रौपदी गुरुजनों का अभिवादन करने गई थी तब वे उसकी प्रशंसा ही करते हैं। परिस्थिति ने उन्हें क्रूर बना दिया है, वास्तव में वे क्रूर नहीं है। भाई की आज्ञा में वे वन वन भटकते रहे। अज्ञातवास के कष्टों को भी निर्लिप्त भाव से सहा है। क्या ये सब व्यवहार उनकी क्रूरता को न्यायोजित सिद्ध करने के लिये पर्याप्त नहीं हैं?

भीमकीचकीयम्– (ना.कृ.) विनायकराव बोकील (दे.) लिखित नाटक। रचनाकाल २०वीं शताब्दी।

भीमट– (ना.का.) इन्हें भीमदेव नाम से भी याद किया जाता है। राजशेखर का निम्नलिकखि पद्य इनके व्यक्तित्व और कार्य पर कुछ प्रकाश डालता है–

कलिञ्जरपतिश्चक्रे भीमटः पञ्चनाटकीम्।

प्राप प्रबन्धराजत्वं तेषु स्वप्नदशाननः॥

इस पद्य से ज्ञात होता है कि ये कालिञ्जर के राजा थे जोकि प्रयाग से १०० मील उत्तर पश्चिम में है। इससे यह भी ज्ञात होता है कि उनका सम्बन्ध जेजाकभुक्ति के चन्देल राजा हर्ष से था। इनका उल्लेख राजशेखर ने किया है जो कान्यकुब्ज नरेश महिपाल के आश्रय में रहने के कारण हर्ष के समसामयिक थे। राजशेखरद्वारा उल्लेख किया जाना ही प्रमाणित करता है कि इनका सम्बन्ध हर्ष से था। पद्य के अनुसार इन्होंने ५ नाटकों की रचना की थी जिनमें स्वप्नदशानन (दे.) इनका सर्वोत्तम नाटक था। अभिनवगुप्त ने इनके एक नाटक का उल्लेख किया है प्रतिभाचाणक्य (दे.) या प्रतिज्ञाचाणक्य। इनके एक अन्य नाटक मनोरमावत्सराज (दे.) का भी उल्लेख पाया जाता है। अभी तक इनका कोई नाटक उपलब्ध नहीं हो सकता है।

भीमदेव– (दे. भीमट)

भीमदेवद्वितीय– (ना.पा.) पारिजातमंजरी (दे.) में गुजरात चालुक्य राज जिन पर नाटक के नायक अर्जुन वर्मा ने विजय प्राप्त की थी। पारिजातमञ्जरी इन्हीं की पुत्री थी जिसका युद्ध काल में देहान्त हो गया था और जो दूसरे जन्म में पारिजात मंजरी के रूप में उत्पन्न होकर बाद में कन्या रूप में परिणत हुई थी।

(१) **भीमपराक्रम–** (ना.कृ.) यह नाटक शतानन्द के पुत्र अभिनन्द (दे.) का लिखा हुआ है। इसमें भीम और जरासन्ध के युद्ध का अंकन किया गया है। मद्रास ओरियण्टल लायब्रेरी में संस्कृत पाण्डुलिपियों के ट्रायेनियल कैटेलाग IV ४४४० पर इसका उल्लेख किया गया है। इसका उल्लेख रामचन्द्रगुणचन्द्र के नाट्यदर्पण में भी हुआ है। अभिनवगुप्त ने भी इसका उल्लेख किया है।

(२) **भीमपराक्रम–** (ना.कृ.) यह एक व्यायोग है जिसकी रचना व्यासमोक्षादित्य ने की थी। कहीं कहीं इसका नाम जरासन्ध वध भी पाया जाता है। कीथ ने इसका नाम भीमविक्रम भी लिखा है। इसका उल्लेख रामचन्द्र गुणचन्द्र के नाट्यदर्पण में भी प्राप्त होता है। इसकी प्रति मद्रास की ओरियण्टल लायब्रेरी के ट्रायनियल पाण्डुलिपि अनुभाग में विद्यमान है। इस व्यायोग की रचना प्रह्लादन के पार्थपराक्रम के अनुकरण पर सं. १३८५ सन् १३२८ में पोरबन्दर में हुई थी। इसकी प्रति बड़ौदा पुस्तकालय में भी विद्यमान है।

भीमभट्ट– (ना.का.) ये नीर्पाजे भीमभट्ट सिद्धान्त शिरोमणि के नाम से प्रसिद्ध है। ये दाक्षिणात्य थे; इनका जन्म ११ अप्रैल सन १९०३ को हुआ था। इन्होंने काश्मीर-सन्धान समुद्यम (दे.) नामक एकाङ्की की रचना की थी जिसमें इन्होंने भारतीय राजनीति की कश्मीर समस्या को संस्कृत रंगमञ्च पर लाने का कार्य किया था।

भीमरथी– (ना.कृ.) (१) नारायण शास्त्री लिखित ५ अंकों का नाटक।

(१) **भीमविक्रम–** (ना.कृ.) अज्ञातनामा कवि लिखित व्यायोग। मद्रास के प्राच्य

पुस्तकालय के ट्रायेनियल कैटेलाग (III ४४४०) में इसका उल्लेख है।

(२) **भीमविक्रम व्यायोग–** (ना.कृ.) यह मोक्षादित्य (दे.) नामक कवि की रचना है। यह रचना संवत् १३८५ (सन् १३२८) की है। उसी सन की एक हस्तलिखित प्रति उपलब्ध होती है। इसके लेखक मोक्षादित्यन का उल्लेख पोर बन्दर राज्य के संवत् १३२० (सन् १२७३) के प्रशस्तिपत्र में किया गया है।

भीमसेन– (ना.पा.) दे. भीम।

भीष्म– (ना.पा.) महाभारत के कौरव पाण्डवों के प्रपितामह भास के पञ्चरात्रम् एवं दूतवाक्यम् में इनका उपादान किया गया है। वेणीसंहार में भी इनका उल्लेख प्राप्त होता है।

भुजंग– (ना.का.) इनका लिखा मदनसाम्राज्य भाण मैसूर के ओरियण्टल पुस्तकालय की पाण्डुलिपियों में संगृहीत है।

(१) **भुजंगशेखर–** (ना.पा.) यह मुकुन्दानन्द (दे.) भाण का नायक है। यह साहसपूर्ण कार्यों का इस रूप में वर्णन करता है कि कृष्ण और गोपियों की लीला की ओर भी संकेत हो जाता है। इसके लिये द्व्यर्थक शब्दों का प्रयोग भी यत्र तत्र किया गया है।

(२) **भुजंगशेखर–** (ना.पा.) वसन्ततिलक (दे.) भाण का नायक। यह प्रियतमा हेमाङ्गी से वियुक्त है। किन्तु उसे आश्वासन दिया गया है उसका पुनर्मिलन होगा। वह गणिकाओं की गली में घूमता है, आकाशभाषित करता है, सपेरों, देवताओं और इन्द्रजाल का वर्णन करता है। अन्त में उसे उसकी प्रेमिका मिल जाती है।

भुवन पाल– (ना.पा.) हम्मीरमदमर्दन (दे.) का एक पात्र। यह सिंहन के सेनानायक का मन्त्री है। वह वीरधवल के साथ समझौता कराने में वास्तुपाल की सहायता करता है जिससे वास्तुपाल और वीरधवल शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने में समर्थ हो जाते हैं।

भुवनेश्वरबड़पंडा– (ना.का.) ये उड़ीसा के कवि हैं। इनके लिखे नाटक लक्ष्मणपरिणयम् का उल्लेख किया जाता है। इनके लिखे अन्य ग्रन्थ हैं– आनन्ददामोदरचम्पू, वमदराजवंशचम्पू, महानदीचम्पू।

भूजीवदेवाचार्य– (ना.का.) उड़ीसा के राजा गजपति के दरवारी कवि। इनका समय १५वीं शताब्दी का उत्तरार्ध और १६वीं शताब्दी प्रथम चरण है। इनकी लिखी दो नाट्य कृतियां प्रकाश में आई हैं– भक्तिवैभवम् (दे.) और उत्सावती (दे.)।

भूतारोद्धरणम्– (ना.कृ.) मथुराप्रसाद दीक्षित लिखित ५ अंकों का नाटक। इसमें अन्त समय में यादवों की परस्पर विनाश लीला को नाट्य का विषय बनाया गया है। कृष्ण का अन्तिम समय निकट है। अतः बलराम भी जल समाधि ले लेते हैं।

भूदेव शुक्ल– (ना.का.) ये १६वीं शताब्दी अथवा १७वीं शताब्दी के कवि हैं।

कुछ लोग इन्हें जम्मू का निवासी मानते हैं और कुछ अन्य लोग इनका जन्म स्थान गुजरात को स्वीकार करते हैं। इनके पिता का नाम शुकदेव पण्डित एवं गुरु का नाम श्रीकंठ था। इन्होंने धर्म विजय नाटक (दे.) की रचना की थी। इसके अतिरिक्त इनकी रसकलश नामक काव्य शास्त्रीय रचना भी बतलाई जाती है। इनकी अन्य कृतियाँ हैं- आत्मतत्वप्रदीप, ईश्वरविलासदीपिका, और सिद्धान्तमुक्तावली की न्यायटीका- मञ्जरी मकरन्द।

भूभट- (ना.का.) इनका एक छाया नाटक प्राप्त होता है जिसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम १.४ पर किया गया है। इन्होंने अपने नाटक की रचना दूताङ्गद के आदर्श पर की थी।

भूमिनाथ- (ना.का.) ये नल्ला दीक्षित उपनाम से प्रसिद्ध हैं। ये कौशिकगोत्रीय बालचन्द्र दीक्षित के पुत्र और रामचन्द्र दीक्षित के शिष्य थे। इनका समय १६वीं १७वीं शताब्दी है। इनके लिखे धर्मविजय चम्पू में तंजौर के राजा शाहजी के जीवनवृत्त का वर्णन किया गया है। इससे ज्ञात होता है कि ये ही इनके आश्रयदाता थे। इन्होंने अपना निवास स्थान कन्दरमाणिक्य बतलाया है जहां १५वीं शताब्दी में उद्दण्ड रहते थे।

इनके नाट्य साहित्य में सुभद्रापरिणय (नाटक) (दे.) शृङ्गारसर्वस्व (भाण) (दे.) और दो प्रतीक नाटक- चित्तवृत्तिकल्याण (दे.) और जीवन्मुक्ति कल्याण (दे.) साहित्य जगत् के सामने आ चुके हैं।

भूरिवसु- (ना.पा.) मालती माधव (दे.) का एक पात्र। यह मालती का पिता है। इसने अपने छात्रजीवन में अपने मित्र देवरात के साथ एक समझौता कर रक्खा था कि यदि दोनों मित्रों में एक के पुत्र का और दूसरे की पुत्री का जन्म हो तो उन दोनों का विवाह कर दिया जायेगा। संयोग से भूरवसु को पुत्री की प्राप्ति हुई जिसका नाम मालती रक्खा गया और देवरात को पुत्र प्राप्त हुआ जिसका नाम माधव रक्खा गया। यह भी संयोग ही था दोनों मित्रों को मन्त्री पद प्राप्त हुआ। भूरिवसु पद्मावती के राजा का मन्त्री बना और देवरात विदर्भराज का मन्त्री बना। दोनों मित्रों को अपने समझौते का ध्यान था। इसलिये दोनों ने उस दिशा में कदम बढ़ाये। भूरिवसु ने अपनी पूर्वपरिचिता कामन्दकी को मलती का विवाह माधव से करा देने का उत्तर दायित्व सौंपा और देवरात ने माधव को पद्मावती भेज दिया जिससे दोनों का विवाह सम्पन्न हो सके। विवाह में अनेक बाधायें आईं और अनेक विघ्न लगे। किन्तु सहयोगियों के उद्योग से अन्त में दोनों मित्रों की छात्रजीवन की आकाङ्क्षायें पूरी हुई और मालती तथा माधव का विवाह हो गया।

भैमीनैषधीयम्- (ना.कृ.) यह चार दृश्यों वाला एकाङ्की नाटक है। सीताराम आचार्य (दे.) ने सन् १९३६ में नाटकप्रतियोगिता में प्रस्तुत करने के लिये इसकी रचना की थी। इसमें नलदमयन्ती की प्रणय लीला का नाटक के रूप में प्रस्तुतीकरण किया गया है। इसका प्रकाशन भारती पत्रिका में जयपुर से हो गया था।

(१) **भैमीपरिणय**- (ना.कृ.) रामशास्त्री लिखित १० अंकों का नाटक। कथानक के रूप में इसमें समस्त नलकथा चित्रित की गई है। कथानक के निर्वाह और घटनाओं के क्रम विन्यास के साथ चित्रण में कवि की मौलिकता तथा कथा निपुणता के दर्शन होते हैं। अन्तर्नाटिका का समावेश इसकी अपनी विशेषता है जिसमें दमयन्ती के परित्याग के बाद नल के भ्रमण का चित्रण किया गया है। यह अन्तर्नाटिका समस्त नाटक को पर्याप्त प्रभावशालिनी बना देती है। इसका प्रकाशन गवर्नमेन्ट प्रेस से हो गया है। इसका दूसरा नाम नलविजय भी है।

(२) **भैमीपरिणय**- (ना.कृ.) श्रीनिवास दीक्षित (दे.) रत्नखेट लिखित नाटक। इसमें दमयन्ती स्वयंवर के कथनाक का उपादान किया गया है। इसकी प्रति लेविसरायस द्वारा तैयार किये गये संस्कृत पाण्डुलिपियों के कैटेललाग (सं. २३४, २३६) पर मैसूर और कुर्ग के राजपुस्तकालय में सुरक्षित है।

(३) **भैमीपरिणय**- (ना.कृ.) इसकी रचना वेङ्कटाचार्य ने की थी। इसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम १.४१६ में किया गया है।

(४) **भैमीपरिणय**- (ना.कृ.) देखो नलविजयम्।

(५) **भैमीपरिणय**- (ना.कृ.) गुरुप्रसन्न भट्टाचार्य (दे.) ने भी इसी नाम के नाटक की रचना की थी। किन्तु इस विषय में कुछ अधिक ज्ञात नहीं।

(६) **भैमीपरिणय**- (ना.कृ.) शठकोपाचार्य लिखित नाटक। इसका संकलन कैटेलागस कैटेलागोरम II ९५ पर किया गया है।

भैरवविलासम्- (ना.कृ.) ब्रह्ममित्र वैद्यनाथ लिखित नाटक। यह एक विचित्र कथानक है जिसमें भैरव को भोजन कराने के लिये भैरव के कहने पर ही दभ्रभक्त अपने पुत्र को मार कर उसके मांस से भैरव के लिये भोजन तैयार करता है। किन्तु जब भैरव को भोजन के लिये आमन्त्रित किया जाता है तब भैरव यह कह कर भोजन से इन्कार कर देता है कि वह पुत्रविहीन घरों में भोजन नहीं करता। तब दभ्रभक्त बाहर जाकर पुत्र को आवाज देता है और पुत्र उत्तर देता हुआ तत्काल उपस्थित हो जाता है किन्तु भैरव अदृश्य हो जाता है। उनके अदर्शन से सभी लोग प्राण छोड़ने को तैयार हो जाते हैं। उसी समय शिव विमान से आते हैं और सभी को स्वर्ग ले जाते हैं।

भैरवानन्द- (ना.कृ.) नैपाली कवि माणिक (दे.) का लिखा नाटक। इसका नायक भैरव और नायिका मदनवती है। जो एक अप्सरा थी और एक ऋषि के शाप से मृत्युलोक में अवतीर्ण हुई थी। इसमें साहसिक कार्यों को नाट्य रूप में प्रस्तुत किया गया है। जयस्थित मल्ल और राजुल्ला देवी के पुत्र जयधर्म मल्लदेव के विवाहोपलक्ष्य में इस नाटक का अभिनय किया गया था।

भैरवानन्द- (ना.पा.) कर्पूरमञ्जरी नाटक (दे.) का एक पात्र। यह एक योगी है।

यह लाट प्रदेश की राजकुमारी कर्पूरमञ्जरी को राजा के सामने प्रस्तुत करता है। महल में रहते हुये धीरे-धीरे राजा से उसका प्रेम बद्धमूल हो जाता है। किन्तु रानी द्वारा पैदा किया हुआ विघ्न विवाह का सबसे बड़ा व्याघातक है। भैरवानन्द योगी ही अन्त में आकर अपने चमत्कार के प्रभाव से रानी की स्वीकृति प्राप्त कर लेता है और इस प्रकार राजा से कर्पूरमञ्जरी का विवाह हो जाता है।

भोजचरित– (ना.कृ.) वेदान्तवागीश लिखित दो अंकों का नाटक। इसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम III ९८ पर किया गया है। इसमें एक घटना का वर्णन है कि एक व्यापारी ने समुद्र के किनारे कुछ शिलायें पाई थी जिन पर श्लोक खुदे हुये थे। वे श्लोक शब्दशः वर्तमान हनुमन्नाटक में मिलते हैं। भोजराज ने उन श्लोकों में एक को वहीं तत्काल पढ दिया था।

भोजराजद्वारा उल्लिखित नाट्यरचनायें– भोजराज के काव्यशास्त्र में कतिपय निम्नाङ्कित कृतियों को उद्धत किया गया है– अनंगवती, अब्धिमन्थन, अभिसारिकावञ्चितक, इन्दुलेखा, उदात्तराधव, कुन्दमाला, कुवलयाश्वचरित, चित्रलेखा, छलितराघवम्, तापसवत्सराजम्, देवीचन्द्रगुप्तम्, पार्थविजय, फुल्लसकम्, मत्स्यहसितम्, मलयवती, मालतिका, मुकुटताडितकम्, राघवानन्दम्, रामाभ्युदयम्, लक्ष्मीस्वयंवरम्, लीलावती, विक्रान्तशूद्रकम्, स्वप्नवासवदत्तम्, सुभद्राहरणम्, हयग्रीववधम्, हरिविलासम्, हरिश्चन्द्रचरितम्।

भोजराजसच्चरितम्– (ना.कृ.) वेदान्तवागीश भट्टाचार्य लिखित भोजराज प्रशस्तिपरक नाटक। कैटेलागस कैटेलागोरम सं. १.४१८ पर इसका उल्लेख किया गया है।

भोजराजाङ्क– (ना.कृ.) सुन्दरवीररघूद्वह (सुन्दरवीरराघव) लिखित (उत्सृष्टिकांक) जिसमें नियमानुसार अंक के लिये अनपेक्षित विष्कम्भक का भी प्रयोग किया गया है। भोजराज की प्रणय लीला और घरेलू प्रपञ्च एवं छलकपट का मिलाजुला रूप इसके कथानक के लिये अपनाया गया है।

भोज एक मेधावी छात्र था जो अल्पकाल में ही समस्त शास्त्रों में अचिरात् निष्णात हो गया। पिता सिन्धुलराज ने उसका विवाह आदित्यवर्मा की पुत्री लीलावती के साथ तय कर दिया जबकि भोजराज का झुकाव प्रेमिका विलासवती की ओर था। विवाहविधि सम्पन्न होने के पहले ही पिता के महाप्रयाण का अवसर आ गया। अब भोजराज के योगक्षेम का उत्तरदायित्व पितृव्य मुञ्जराज पर आ गया जो स्वयं राजा बनना चाहता था। किन्तु ज्योतिषियों ने भविष्यवाणी की थी कि भोज का राज्य ५५ वर्ष चलेगा। अतः मुञ्जराज ने छलकपट का सहारा लेकर भोज को नष्ट कर देने का निश्चय किया। पहले तो वाग्दत्ता युवती लीलावती का अपहरण करा दिया और फिर सेनापति वत्सराज को भोज की हत्या करने का आदेश दिया। वत्सराज आज्ञापालन हेतु भोज को वन में ले गया; वहीं भोज को छोड़ दिया और किसी जानवर का रक्त दिखला कर भोज की मृत्यु

का विश्वास दिला दिया।

भोज जंगल में भटकने लगे, वे माता शशिप्रभा और प्रेमिका विलासवती के वियोग की व्यथा से अत्यन्त पीडित थे। इधर मन्त्री बुद्धिसागर मुञ्ज के अत्याचारों से परेशान था। उसने बाग्दत्ता लीलावती के पिता आदित्यवर्मा को मुञ्ज पर आक्रमण के लिये प्रेरित किया। संयोगवश वन में भटकते हुये भोजराज को अपहृता लीलावती ने देख लिया। प्रथम दृष्टि में ही वह भोजराज पर अनुरक्त हो गई और वरगद के पत्ते पर पान से प्रेमपत्र लिख कर भोज के पास भेज दिया। अब भोज उसे तलाश करने लगे। अपहृता लीलावती का पिता जयपाल मुञ्ज पर आक्रमण करता है जिससे भोजराज की मित्रता पहले ही हो चुकी है। अन्त में भोजराज माता शशिप्रभा और प्रेमिका विलासवती से मिलता है, उसका राज्यारोहण होता है और बाग्दत्ता लीलावती से उसका विवाह हो जाता है। मुञ्ज विरक्त होकर जंगल को चले जाते हैं।

यह १९वीं शताब्दी की रचना है। इसमें शृङ्गार और करुणा का समन्वय देखा जा सकता है।

ट्रायेनियलकैटेलाग आफ संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट इन ओरियण्टल लायब्रेरी मद्रास में सं. II २४१३ पर इसका उल्लेख किया गया है। इसका प्रकाशन मलयमारुत् पत्रिका के दूसरे अंक में कर दिया गया है।

भोजराज्ये संस्कृतसाम्राज्यम्– (ना.कृ.) यह एकाङ्की नाटक है। इसकी रचना २०वीं शताब्दी के वासुदेवद्विवेदी (दे.) ने की थी। प्रकाशन संस्कृतप्रचारपुस्तकालय की ओर से किया गया था। इसमें मध्यकालीन भारतीयसंस्कृति का चित्रण किया गया है।

भोलानाथ शुक्ल– (ना.का.) १८वीं शताब्दी के राजस्थानी कवि, इनका लिखा कर्णकुतूहलम् नाटक बतलाया जाता है।

भ्रमभञ्जनम्– (ना.कृ.) पंजाबनिवासी सत्यव्रत शर्मा का लिखा नाटक।

भ्रान्तभारत– (ना.कृ.) २०वीं शताब्दी के बम्बई निवासी शालिग्रामद्विवेदी लिखित नाट्यकृति।

भ्रान्तिविलास– शैलदीक्षित लिखित (दे.) कमेडी आप एरर्स का अनुवाद।

म

(१) **मकरन्द–** (ना.पा.) मालतीमाधव का एक महत्वपूर्ण पात्र। ये नायक माधव के सहयोगी, मित्र एवं उपनायक हैं। माधव को अपना अभीष्ट प्राप्त करने में उनसे भरपूर सहायता मिलती है और उस उदार सहयोग का उसे पुरस्कार भी मिल जाता है। वह एक साहसी वीर व्यक्ति है। साथ ही करुण भावना भी उसकी विशेषता है। एक वाघ ने

जंगल के एक शून्य मन्दिर में एक युवती पर आक्रमण कर दिया है। उस युवती की करुण पुकार सुनकर वह अकेले ही वाध से भिड़ जाता है और उस युवती की रक्षा कर लेता है। युवती उसके इस साहस पूर्ण कार्य से प्रभावित होकर पूर्ण समर्पित हो जाती है। उसने मालती और माधव में प्रेम सम्बन्ध स्थापित करने के लिये अपना मित्रधर्म निवाहा है और उसे सफलता भी मिली है। किन्तु उन दोनों के प्रेम सम्बन्ध में विदर्भ का राजा एक बहुत बड़ा विघ्न है। राजा मालती का विवाह अपने मित्र नन्दन से कराने के लिये राजशक्ति का प्रयोग करता है और विवाह निश्चित कर देता है। मकरन्द इस विघ्न से बड़ी कुशलता से छुटकारा पा लेता है। स्वयं वह खूबसूरत है, वह स्वयं मालती के स्थान पर युवती का वेष धारण कर नन्दन से विवाह कर लेता है और मालती को माधव के साथ भाग जाने का उचित अवसर दे देता है। वह नैसर्गिक सुन्दरता के कारण युवती के रूप में छज भी जाता है। किन्तु जब प्रथम सम्मिलन में वह नन्दन के वश में नहीं आता तब नन्दन अपनी बहन मदयन्तिका से सहायता चाहता है। मदयन्तिका भाभी को डाट डपट कर उसे पत्नी का ठीक व्यवहार करने के लिये वाध्य करने के निमित्त जब भाभी के पास जाती है तब यह देखकर वह चकित हो जाती है कि भाभी के वेष में मकरन्द ही विद्यमान है जिसने वाघ से मन्दिर में उसकी रक्षा की थी और उस समय से जो उसका हृदय देवता बन गया था। अवसर पाकर दोनों भाग निकलते हैं। उनका पीछा किया जाता है जिसका वह माधव के सहयोग से वीरता के साथ सामना करता है। राजा उनकी वीरता से प्रसन्न होकर उन्हे विवाह की आज्ञा दे देता है और इस प्रकार माधव की सहयाता करने का पुरस्कार उसे पहले ही मिल जाता है।

(२) **मकरन्द**– (ना.पा.) कौमुदी मित्रानन्द (दे.) में मित्रानन्द का मित्र। वह मित्रानन्द की सहायता तो करता ही है स्वयं भी कौमुदी की सहायता से युवती सुमित्रा से विवाह करने में सफल हो जाता है और मित्रानन्द की सहायता से अपने कारवां की रक्षा भी कर लेता है।

मकलिंग शास्त्री– (ना.का.) ये मद्रास हाईकोर्ट में एडवोकेट थे। ये अप्पय दीक्षित के वंश में जुलाई १८९७ में पैदा हुये थे। इनके लिखे कई छोटे-छोटे काव्य प्रसिद्ध हैं जिनमें वनलता, नदीपूर, व्याजोक्ति रत्नावली, अर्थान्तरन्यासपञ्चाशत, भारती विषाद, भ्रमरसन्देश, दुर्जनहृदय, लघुपाण्डवचरित, द्रविडार्य और सुभाषितसप्तति सम्मिलित हैं। इन्होंने कलिप्रादुर्भाव जैसी कुछ कहानियां भी लिखीं और भासकथासार नाम से भास नाटकों का कथासार भी लिखा जिसका विश्वविद्यालयों में अत्यधिक सम्मान हुआ। इसके कतिपय मौलिक नाटक हैं उद्गातृ दशानन (दे.) प्रतिराजसूय (दे.) और कौण्डिन्यप्रहसन (दे.)।

इनकी कुछ पुस्तकें उद्यानपत्रिका में प्रकाशित हो गई थीं और कतिपय अन्य छोटी छोटी पुस्तकों का किङ्किणी नाम से सङ्कलन कर दिया गया था।

मंगलगिरिकृष्ण द्वैपायन– (ना.का.) ये आन्ध्रप्रदेश में विजयपाटन के निवासी

वेङ्कटरमणाचार्य के पुत्र थे। इनकी संस्कृत और तेलुगु में कई रचनायें प्रसिद्ध हैं जिनमें दो नाटक भी बतलाये जाते हैं- वसन्तमित्रभाण (दे.) और श्रीकृष्णादानामृत (दे.)।

मंगलनाटक- (ना.कृ.) जीवानन्द ज्योतीर्विद् (दे.) का लिखा नाटक; यह देवीमहत्ता परक ९ अंकों का नाटक है। इसका प्रकाशन बनारस से हो गया था।

मञ्जुलनैषधम्- (ना.कृ.) वेङ्कटरंगनाथ (दे.) लिखित ७ अंकों का नाटक। इसमें निषधराज नल की कथा का वस्तुरूप में उपादान किया गया है। वेङ्कट रंगनाथ शर्मा ने १८८६ में इसका प्रकाशन विशाखापट्टनम् से कराया था।

मङ्गलोत्सवम्- (ना.कृ.) रजनीकान्त साहित्याचार्य (दे.) लिखित नाटक। रचनाकाल २०वीं शताब्दी।

मञ्जुलमञ्जीरम्- (ना.कृ.) जग्गू श्री वकुल भूषण लिखित नाट्य कृति।

मञ्जुलमन्दिरम्- (ना.कृ.) (१) नारायण शास्त्री लिखित ६ अंकों का नाटक।

मञ्जुलाचार्य- (ना.का.) वशिष्ठगोत्रीय कवि एवं नाटककार। इनको कृष्णामूर्ति कुमार की भी संज्ञा दी जाती है। इनका लिखा वल्लवीपल्लवोल्लास (दे.) भाण मद्रास लायब्रेरी में प्राप्य है।

मणिक- (ना.का.) १४वीं शताब्दी के नैपाली कवि। इनका लिखा भैरवानन्द (दे.) नाटक प्राप्त होता है। इनके लिखे एक अन्य नाटक अभिरामराघव (दे.) का भी (लेवी २६८ पर) उल्लेख किया गया है।

मणिकाञ्चनसमन्वय- (ना.कृ.) विष्णुपद भट्टाचार्य लिखित दो अंकों का नाटक। इसमें बंगाल में प्रसिद्ध एक लोककथा का अंकन किया गया है। गुड और मधु वेचने वाले दो व्यक्तियों के झगड़े में धनपाल दोनों वस्तुओं को चखकर उन्हें बनावटी सिद्ध कर देता है और दोनों को गुड और मधु विक्रय के व्यवसाय को छुड़ाकर गाय चराने और आम का वृक्ष सींचने की नौकरी पर लगा देता है। आम्र वृक्ष के तले एक सुवर्ण पूरित घट मिलता है। दोनों उस घट को बरावर बांट लेने का निश्चय कर भाग जाते हैं। घट मधुविक्रेता शर्शरीक के घर में रक्खा जाता है। शर्शरीक पुत्र से यह कह कर कि यदि गुडविक्रेता दर्दुरक आये तब उससे कह देना कि पिताजी मर गये हैं और कलश के बारे में मैं कुछ नहीं जानता। दर्दुरक अविश्वास कर श्मशान तक जाता है। किन्तु वहां डाकुओं के आ जाने से एक झाड़ी में छिप जाता है। डाकू देखते हैं कि शव तो चिता में करवटे बदल रहा है तथा झाड़ी से दर्दुरक शोर मचाने लगता है। तब डाकू पिशाचों की आशंका कर लूटा धन छोड़कर भाग जाते हैं और दोनों मिलकर कलश के धन के साथ डाकुओं द्वारा छोड़ा गया धान भी बांट लेते हैं।

इस नाटक में स्त्री पात्रों का सर्वथा अभाव है। इसमें जनसामान्य की जीवनचर्या पर अच्छा प्रकाश डाला गया है। इसका प्रकाशन मञ्जूषा में हो गया था।

मणिचूड- (ना.पा.) लोकानन्द (दे.) नाटक का नायक।

(१) **मणिमञ्जूषा-** (ना.कृ.) रामचन्द्र शास्त्री (दे.) लिखित ७ अंकों का नाटक। इसमें उच्चकोटि की कविता के साथ गानों का भी बीच बीच में समावेश किया गया है।

(२) **मणिमञ्जूषा-** (ना.कृ.) रामनाथ शास्त्री एस.के. लिखित १८ दृश्यों की नाट्यकृति। इसमें दशकुमार चरित के अपहार वर्मा का चरित्र चित्रित किया गया है। इसमें गीतों की अधिकता है। प्रकाशन १९४१ में संस्कृत साहित्य परिषद् पत्रिका में हो गया था।

मणिमाला- (ना.कृ.) अनादि मिश्र लिखित चार अंकों की कल्पित कथा वस्तुपरक नाटिका। मणिमाला पुष्कर द्वीप की एक राजकुमारी है। वही इस नाटिका की नायिका है। उज्जयिनी के महाराज उसे स्वप्न में देखकर अनुरक्त हो जाते हैं। वे अपना स्वप्न महाराणी को सुनाते हैं और बतलाते हैं कि उन्होंने स्वप्न में देखा है कि जो उस राजकुमारी से शादी करेगा वह सम्राट बन जायेगा। रानी को यह बात अच्छी नहीं लगती। उधर पुष्कर द्वीप में गन्धर्वराज की मणिमाला के साथ विवाह की तैयारी चल रही है। किन्तु मणिमाला अभीष्ट वर न पाकर खिन्न है। इतने में सुसिद्धिसाधिनी एक नौका तैयार कर उसमें मणिमाला को बैठाकर उज्जयिनी की ओर प्रेषित कर देती है। नायक को मणिमाला के आगमन की सूचना मिल गई है। इसी बीच में द्वन्द्वदृष्ट नामक राक्षस उसका अपहरण कर लेता है। नायक वियोग वेदना से तड़पने लगता है। संयोग से अद्भुतभूति नामक साधक वहां आ जाता है, उससे राजा को ज्ञात हो जाता है कि द्वन्द्वदृष्ट के प्राण मणि-सम्पुट में रहने वाले एक कीट के अन्दर विद्यमान हैं। वह मणिसम्पुट क्रौञ्चपर्वत पर एक स्वर्णवृक्ष में स्थित है। वहीं मणिमाला प्राप्त की जा सकती है। यह सूचना पाकर उज्जयिनी के महाराज शृङ्गारशृङ्ग वहां जाकर उस राक्षस को मार डालते हैं और मणिमाला से विवाह कर लेते हैं।

इस नाटक की रचना १८वीं शताब्दी के मध्य में उत्कल के राजा नारायण मांगपार की प्रेरणा पर की गई थी। इसका प्रथम अभिनय उज्जयिनी में दुर्गा देवी के शारदीय उत्सव के अवसर पर किया गया था। इसमें संस्कृत के साथ प्राकृतभाषा का भी प्रयोग किया गया है। इसकी बहुत बड़ी विशेषता है इसमें अलंकारों की भरमार तथा बड़े छन्दों और कतिपय अप्रचलित छन्दों का प्रयोग।

मणिमेखला- (ना.कृ.) (१) नारायण शास्त्री लिखित एकाङ्की नाटक।

मणिहरण- (ना.कृ.) जग्गू श्री वकुलभूषण लिखित एकाङ्की रुपक। इसका कथानक भास के उरुभंग के बाद का है। दुर्योधन मारा गया है और सौप्तिक पर्व में द्रौपदी के पांचो पुत्रों का वध कर दिया गया है। द्रौपदी खिन्न है; अतः उसे सान्त्वना देने के लिये अश्वत्थामा के मस्तक को चीर कर मणि का अपहरण कर लिया जाता है।

चरित चित्रण की सशक्तता, कार्यव्यवहार का सातत्य तथा प्रतिक्रियात्मक एकोक्तियों का समावेश इसकी विशेषतायें हैं। इसका प्रकाशन संस्कृत प्रतिभा में हो गया था।

मण्डूक सूक्त- (ऋ ७.१०३) ऋग्वेद का एक सूक्त। यह एक प्रहसन कोटि का सूक्त है। इसमें कर्मकाण्डियों और वेदपाठी छात्रों की मजाक उड़ाई गई है। किन्तु कतिपय पाश्चात्य विद्वान इस व्याख्या से सहमत नहीं हैं। उनका विचार है कि ब्राह्मणों द्वारा सङ्कलित ग्रन्थ में ब्राह्मणों का उपहास आ ही नहीं सकता। कीथ ने वर्षा के टोटके के रूप में इसकी नृत्यपरक व्याख्या को अधिक संगत बतलाया है। यदि ब्राह्मणों द्वारा ब्राह्मणों की उपहासपरक व्याख्या की जाय तो भी कुछ अनौचित्य नहीं है। आपस में इस प्रकार का परिहास अनुभव सिद्ध है। यह भी मनोरंजन की एक प्रवृत्ति है। इस प्रकार के मनोरंजन से किसी वर्ग की निन्दा नहीं उसके प्रति प्रेम की अभिव्यक्ति अधिक होती है। आजकल विवाहोत्सवों में औरतों द्वारा गाली गाई जाना इस प्रवृत्ति का एक अच्छा उदाहरण है।

मतंग- (ना.कृ.) नागानन्द (दे.) में जीमूतवाहन का शत्रु। यह सेना लेकर जीभूतवाहन के राज्य पर आक्रमण करने वाला है; किन्तु जीमूतवाहन उसे शत्रु नहीं मानते। वे कहते हैं मेरा केवल एक शत्रु है और वह है पाप।

मति- (ना.पा.) प्रबोध चन्द्रोदय (दे.) में विवेक की पत्नी। वह विवेक और उपनिषद् को मिलाने का प्रयत्न करती है। इसके लिये उसके मन में सौतियाडाह बिलकुल नहीं है, क्योंकि भविष्यवाणी की गई है कि विवेक का जो पुत्र उपनिषद् (पत्नी) के गर्भ से उत्पन्न होगा वह महामोह का नाश करेगा। पति की विजय कामना से वह सौत को भी सहन करने को तैयार है। विवेक पत्नी की इस उदारता पर प्रसन्न है।

मत्तविलास- (ना.कृ.) महेन्द्र विक्रमदेव वर्मा (दे.) का लिखा हुआ प्रहसन। सम्भवतः यह संस्कृत साहित्य का प्रकाश में आया पहला प्रहसन है जो दक्षिण से प्राप्त हुआ है। लेखक ने भास की शैली पूर्णरूप से अपनाई है। नाट्यप्रविधि, आमुख (स्थापना) पात्रप्रवेश इत्यादि अनेक दिशाओं में भास का अनुसरण किया गया है।

इस प्रहसन में शैव, कापालिक, बौद्ध, आर्हत, पाशुपत इत्यादि की मजाक उड़ाई गई है। लेखक को बौद्ध धर्म का विशेष ज्ञान प्रतीत होता है। भाषा प्रवाहपूर्ण है; गद्य कहीं कहीं जटिल हो गया है।

इसमें काञ्ची का विशेष वर्णन किया गया है। इसका कथानक ऐसे दम्पति पर आधारित है जो दोनों शरावी हैं। पति शैव कापालिक है। उसकी पत्नी देवसोमा पति के साथ रंगमञ्च पर आती है। पत्नी नशे की झोंक में जब गिरने लगती है तब पति से सहारा मांगती है। पति स्वयं नशे में इतना उन्मत्त है कि उसमें सहारा देने की शक्ति नहीं है। पति को ग्नानि होती है और वह शराब छोड़ देने की प्रतिज्ञा करता है। किन्तु स्त्री उसे अपनी जीवन साधना करने से रोकती है। वह अपनी भूल सुधार लेता है और

सुरापान की प्रशंसा करने लगता है। मदिरालय का यज्ञस्थल सादृश्य के साथ वर्णन, मदिरा को शिवनेत्र ज्वाला से दग्ध कामदेव का स्वरूप कहना, कापालिक का मदिरा पात्र खो जाना, उसकी खोज, शान्तिभिक्षु पर कपाल के अपहरण का सन्देह, सुरा और सुन्दरी के योग का निषेध करने के कारण धर्मनिन्दा इत्यादि अनेक तत्व हास्य रस के अच्छे साधन हैं। कापालिक को प्रसन्नता है कि गुरु की कृपा से उसने मुण्डन करा लिया है जिससे उसकी प्रियतमा उसके बाल खींच नहीं पाती। इसी प्रकार देवसोमा का बाल पकड़ने की असफल चेष्टा में भूमि पर गिर जाना, बौद्ध द्वारा उसके उठाये जाने के कारण विवाद, न्यायाधिकरण में जाना, कपाल की चोरी में कुत्ते का पकड़ा जाना इत्यादि वर्णन मनोरंजन के अच्छे साधन हैं।

कीथ ने संस्कृत ड्रामा में इसका विशेष परिचय दिया है। साहित्य दर्पण में मैसूर पुस्तकालय के पाण्डुलिपि अनुभाग के कैटेलाग (परिशिष्ट) में और मद्रास के जर्नल आफ ओरियण्टल रिसर्च में कुछ लेखों में इसका परिचय दिया गया है।

मत्तविलास– (ना.का.उप.) यह मत्तविलास प्रहसन के लेखक महेन्द्रविक्रमवर्मा की उपाधि है। इसका उल्लेख स्वयं महेन्द्रविक्रमवर्मा ने दूसरी उपाधियों के साथ किया है। दूसरी उपाधियां हैं– अवनिभाजन और गुणभर। ज्ञात होता है कि यह प्रहसन जनता को इतना अधिक पसन्द आ गया था कि लोग इसके लेखक को ही इस नाम से पुकारने लगे।

मत्स्यहसित– (ना.कृ.) यह एक प्रकरण है। इसका उल्लेख भोजराज के शृङ्गार प्रकाश में किया गया है जिसके आधार पर विचारकों ने इसे प्रकरण माना है। इसका उल्लेख मणिकुल्या के उदाहरण के रूप में किया गया है। मणिकुल्या एक ऐसी कहानी को कहते हैं जिसमें मणि के वर्तन में जल के समान कहानी का स्वरूप पहले प्रकट नहीं होता किन्तु अन्त में उसका रहस्य खुलता है। इस प्रकरण की कोई प्रति अब तक उपलब्ध नहीं हुई है। कथासारित्सागर लम्बक १ तरंग ५ में बाजार में मरी मछली के हंसने की एक उपकथा श्लो. १६-२८) दी हुई है। इसी प्रकार शुकसप्तति में मछली के हंसने की कथा आई है। ये कथायें सम्भवतः मत्स्यहसित प्रकरण से ली गई हैं।

मथुरादास– (ना.का.) ये कृष्णदास के शिष्य थे यमुना के तट पर सुवर्णशेखर नाम के नगर में कायस्थ परिवार में इनका जन्म हुआ था। इन्होंने वृषभानुजा (दे.) नामक एक नाटिका लिखी थी।

मथुरानिरुद्ध– (ना.कृ.) यह चन्द्रशेखर (चयनी) का लिखा कृष्णविषयक एक नाटक है। इसमें ८ अंक हैं जिनमें उषा और अनिरुद्ध के गुप्त जीवन का चित्रण किया गया है। उषा की अनुचरी चन्द्रलेखा ने अनिरुद्ध का अपहरण किया था। इस नाटक का विश्लेषण विल्सन ने थियेटर (II ३९६) में किया है। इसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम (I ४२६) में किया गया है।

मथुराप्रसाददीक्षित– (ना.का.) हरदोई (उत्तर प्रदेश) के भगवन्तनगर के निवासी थे। इन्होंने काव्यकोश, व्याकरण, आयुर्वेद पर पुस्तकें लिखीं। इनके ६ नाटक वीरप्रताप (लाहौर १९३६) शङ्करविजय, पृथ्वीराज, भक्तसुदर्शन, गान्धीविजय, भारतविजय, भूतारोद्धरणम् प्रकाश में आये हैं। (इन नाटकों का परिचय यथास्थान देखिये।)

मदनकेतुचरितम्– (ना.कृ.) रामपाणिवाद (दे.) लिखित प्रहसन। सिंहल के राजा मदनकेतु और भिक्षु विष्णुत्रात वेश्यागामी हैं। युवराज मदनवर्मा शिवराज नामक कापालिक योगी की सहायता से उनकी यह लत छुड़ा देते हैं। इसका प्रथम अभिनय भगवान रंगनाथ के यात्रोत्सव में किया गया था। रचनाकाल १८वीं शताब्दी।

मदनगोपाल– (ना.कृ.) यह एक भाण है। इसकी रचना स्वयंभूनाथ ने की थी (मैसूर की ओरियण्टल लायब्रेरी के पाण्डुलिपि अनुभाग सं. २२५ से २८७ और ६३७ में जो पाण्डुलिपियां संकलित हैं उनमें इसका भी समावेश किया गया है।) राधाकृष्ण की प्रेम लीला का चित्रण इसका विषय है।

मदनगोपालविलास– (ना.कृ.) यह गुरुराम (दे.) का लिखा एक भाण है जिसमें कृष्ण और राधा की प्रेम लीला का चित्रण किया गया है। मद्रास पुस्तकालय के पाण्डुलिपि अनुभाग की विवरणात्मक ग्रन्थसूची (XXI ८४४०) तथा कैटेलागस कैटेलागोरम १.४२५ और II ९७) में इसका उल्लेख है।

मदनबालसरस्वती– (ना.का.) ये बंगाल के १३वीं शताब्दी के कवि एवं नाटककार हैं। ये परमारवंशीय अर्जुनवर्मा के गुरु थे। इन्होंने पारिजातमञ्जरी की रचना की थी। (विवरण के लिये देखिये पारिजातमञ्जरी।)

मदनभूषण– (ना.कृ.) यह अप्पा दीक्षित का लिखा एक भाण है। तंजौर की पैलेस लायब्रेरी के संस्कृत पाण्डुलिपि अनुभाग के (VIII ३५८२) में इसका उल्लेख है। इसका प्रथम अभिनय कावेरीतट पर गौरीमयूरनाथ मन्दिर की नाट्यशाला में वसन्तोत्सव के अवसर पर हुआ था। मदनभूषण नाम का विट अनेक अनुभव करता है और अनेक प्रकार के लोगों से मिलता है। उन्हीं अनुभवों का इसमें उपादान किया गया है। इन मिलने वालों में वाराङ्गनायें, ब्रह्मचारी, शैलूष, वैद्य, पौराणिक विद्वान इत्यादि सभी प्रकार के लोग सम्मिलित हैं। नीति की शिक्षा देकर समाज को सन्मार्ग पर लाना इनका उद्देश्य है।

मदनमञ्जरी– (ना.कृ.) यह एक नाट्यकृति है। जिसकी रचना युवराज ने की थी। इसकी प्रति आर्ष लायब्रेरी विजगापट्टम से प्राप्त की जा सकती है।

मदन मञ्जरी– (ना.पा.), लटकमेलक (दे.) प्रहसन की नायिका। यह वेश्या कुट्टिनी दन्तुरा के यहां रहकर रूप का व्यवसाय करती है। सभी प्रकार के व्यक्ति आते हैं जो मोल तोल करते हैं जिससे हास्य का वातावरण बनता है।

मदनमञ्जरीमहोत्सव– (ना.कृ.) विलिनाथ लिखित नाटक। इसमें पाञ्चाल के राजा

पराक्रमभास्कर की रुद्रभक्ति का प्रभाव दिखलाया गया है। पाटलिपुत्र के राजा चन्द्रवर्मन के साथ पाञ्चालराज के युद्ध में रुद्र ने मानव रूप में अपने भक्त की सहायता की जिससे पाञ्चालराज को विजय प्राप्त हो गई। ५वें अंक पर इस नाटक की समाप्ति एक दम हो जाती है।)

(तंजौर की पैलेस लायब्रेरी सं. VIII ३४४७ पर इसका उल्लेख है और मद्रास से इसका प्रकाशन हो चुका है।)

मदन महोत्सव– (ना.कृ.) श्रीकृष्णमञ्जुण्ड (दे.) लिखित एक भाण। मद्रास की ओरियण्टल लायब्रेरी के डिस्क्रिप्टिव कैटेलाग आप संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट सं. XXI ४३९६ पर इसका विवरण दिया गया है।

मदन लीलादर्पणभाण– (ना.कृ.) दे. लीलादर्पण।

मदनवती– (ना.पा.) प्रबुद्धरौहिणेय (दे.) का एक पात्र वह गृहस्वामी की पत्नी है। दस्यु उसका अपहरण कर उसे ले जाकर वैभार पर्वत पर रखते हैं। जब अपराधियों को अपराध बोध होता है वे राजा इत्यादि को ले जाकर अपहृत धन और एक युवक के साथ उसे भी लौटा देते हैं।

मदनविजय– (ना.कृ.) एक भाण। इसकी रचना कालहस्ती के विक्किराल परिवार में उत्पन्न शेषाचार्य ने की थी। इसका प्रकाशन मद्रास से हो चुका है।

मदनविलास– (ना.कृ.) नागनाथ लिखित भाण। मद्रास की ओरियण्टल लायब्रेरी के संस्कृत पाण्डुलिपियों के ट्रायेनियल कैटेलाग में सं. II २६१९ पर इसका उल्लेख किया गया है।

मदनसञ्जीवन– (ना.कृ.) घनश्याम (दे.) लिखित एक भाण। मद्रास में १९०५ में प्रकाशित संस्कृत मैन्युस्क्रिप्टस की एक रिपोर्ट में इसका परिचय दिया गया है। इस नाटक में वेश्यागामियों के अनेक पतन दिखलाये गये हैं। तथा विविध सम्प्रदायों की लम्पटता का चित्रण किया गया है। इसका प्रथम अभिनय चिदम्बरम् में हुआ था। इसका रचना काल १८वीं शताब्दी है।

मदन साम्राज्य– (ना.कृ.) भुजंग लिखित भाण। यह मैसूर के ओरियण्टल पुस्तकालय की पाण्डुलिपियों में संगृहीत है।

मदन सुभट– (ना.का.) दे. सुभट।

मधुसूदनशास्त्री– (ना.का.) इनका लिखा एक महाकाव्य 'हिन्दूविश्वविद्यालय' चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय द्वारा प्रकाशित किया जा चुका है। काशी हिन्दू विश्व विद्यालय (दे.) शीर्षक एक एकाङ्की भी प्राप्त होता है। ये काशी निवासी थे और १९३६ से १९६८ तक विश्वविद्यालय में संस्कृत विभागाध्यक्ष रहे।

मधुसूदनकाव्यरत्न– (ना.का.) ये १९वीं शताब्दी के बंगालनिवासी कवि एवं

नाटककार थे। इनके लिखे 'पण्डितचरितप्रहसनम्' का उल्लेख किया गया है।

मदनानन्द– (ना.कृ.) यह एक भाण है जिसकी रचना पार्थसारथि (दे.) ने की थी। नुजविद से इसका प्रकाशन हो चुका है।

(१) **मदनाभ्युदय**– (ना.का.) वेङ्कटेश लिखित नाटक। मद्रास ओरियण्टल लायब्रेरी के ट्रायनियल पाण्डुलिपि अनुभाग (III ३२०२) में प्राप्य। इसका नामान्तर है मन्मथाभ्युदय।

(२) **मदनाभ्युदय**– (ना.कृ.) अभिनव कालिदास लिखित नाटक। कुछ लोगों का विचार है कि कृष्णमूर्ति ही इस भाण के लेखक हैं जिनको अभिनव कालिदास के नाम से याद किया जाता है और जो स्वयं को इस उपाधि से पुकारा जाना पसन्द करते थे।

मदनिका– (ना.पा.) शूद्रक (दे.) लिखित मृच्छकटिक (दे.) में वसन्तसेना की दासी। वसन्तसेना ने उसे मूल्य देकर क्रय किया है; किन्तु यह शर्त भी स्वीकार कर ली है कि उसको वह तभी तक अपने दास्य कर्म में नियुक्त रक्खेगी जब तक उसके प्रदत्त मूल्य का निर्यातन न कर दिया जाय। वह भी अत्यन्त रुपवती है, वह शर्विलक की प्रेयसी है। शर्विलक उसके रूप का दीवाना है, वह ब्राह्मण होते हुये भी और धर्म अधर्म को समझते हुये भी उसके लिये चोरी जैसा अधर्म का कार्य करता है। वह गुणवती, विवेकशील और न्यायप्रिय महिला है। वह भी शर्विलक से प्रेम करती है किन्तु चोरी से प्राप्त धन के निर्यातन से छुटकारा प्राप्त करना और प्रेमी के पास जाना स्वीकार नहीं करती। वह उस धन के स्वामी को धन वापस कर देना अपना परम कर्तव्य समझती है।

अपने प्रेमी को चोर सिद्ध हो जाने के अपराध से बचाते हुये वसन्तसेना के धन को वापस करने की युक्ति भी निकाल लेती है। वह कर्तव्य परायण भी है, जब उसका प्रेमी उसे छोड़कर कर्तव्यपालन के लिये जाना चाहता है तब अपने सुख की परवा न कर उसे ऐसा करने की अनुमति दे देती है। यह उसके चरित्र की महत्ता है।

मदभूसिवेङ्कटाचार्य– (ना.का.) नैध्रुवकश्यपगोत्रीय अनन्ताचार्य के पुत्र थे। ये पूर्वीगोदावरी जिला के सामल कोट के निवासी थे। इनका शुद्धसत्वम् नामक एक प्रतीक नाटक प्रकाश में आया है जिसमें विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है। जिससे ज्ञात होता है कि ये विशिष्टाद्वैत के अनुयायी थे।

मदयन्तिका– (ना.पा.) यह मालती माधव प्रकरण की पताकानायिका है जो वाघ से प्राण रक्षा करने वाले के प्रति समर्पित हो जाती है। जब वह सुनती है कि उसके भाई नन्दन के प्रति उसकी भाभी का व्यवहार अच्छा नहीं है तब वह भाभी की भर्त्स्ना करने जाती है वहां उसे मालती के वेष में अपना प्रेमी मिल जाता है। वह प्रेम की इतनी दीवानी है कि प्रेमी के इस दुर्वयवहार के लिये भर्त्स्ना करने के स्थान पर अवसर का लाभ उठाकर प्रेमी के साथ भाग जाती है। उसका पीछा किया जाता है, संघर्ष होता है जिसमें उसे माधव की सहायता भी मिलती है। अन्त में उस प्रेमीयुगल को राजा की

ओर से क्षमा मिल जाती है और उसे अपना मनमाना प्रेमी पति रूप में प्राप्त हो जाता है।

मदलेखा– (ना.कृ.) यह आठ अंकों का एक उपरूपक त्रोटक है। शारदातनय के भावप्रकाशन में इसका उल्लेख किया गया है। अब यह रचना प्राप्त नहीं होती।

(१) **मदालसा**– (ना.कृ.) नारायणशास्त्री लिखित ७ अंकों का नाटक।

(२) **मदालसा**– (ना.कृ.) गोकुलनाथ (दे.) लिखित सात अंकों का नाटक। इसका नाम मुदितमदालसा अथवा मदालसापरिणय भी है। इसमें कुवलयाश्व के साथ मदालसा के विवाह का अंकन किया गयाहै। मदालसा विश्वावसु की पुत्री थी।

(डिस्क्रिप्टिव कैटेलाग आफ मैन्युस्क्रिप्टस, ओरियण्टल मैन्युस्क्रिपटस लायब्रेरी मद्रास XXI ८४४४ तथा ८४४६ में इसका उल्लेख है। इस पाण्डुलिपि में किसी अज्ञातनामा लेखक की टीका है।)

(३) **मदालसा**– (ना.कृ.) रामभट्ट लिखित नाटक। इसका संकलन कैटेलागस कैटेलागोरम में सं. १५० पर किया गया है। इसको उज्जीवितमदालसा नाम से भी याद किया जाता है।

मदालसाकुवलयाश्व– (ना.कृ.) यह गुरुप्रसन्नभट्टाचार्य (दे.) लिखित नाटक है। इसमें मदालसा और कुवलयाश्व के प्रणय सम्बन्ध का चित्रण किया गया है। यह पुस्तक अब उपलब्ध नहीं होती। कुछ समय तक इसकी पाण्डुलिपि लेखक के पास ढाका में या उनके घर पर रामकृष्णदास लेन में सुरक्षित रही। अब पता नहीं कहां है।

मदालसापरिणय– (ना.कृ.) यह शेषाद्रि (दे.) लिखित नाटक है। इसमें मदालसा और कुवलयाश्व के परिणय का कथानक के रूप में उपादान किया गया है। इसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम १.४२६ परकिया गया है।

मदालसापरिणय– (ना.कृ.) दे. मदालसा (२)

मद्यपान– (ना.पा.) मोहराजपराजय का एक पात्र। यह मोहराज के शासन में जनता पर अधिकार जमाये हुये व्यसन वर्ग में एक है। कृपा सुन्दरी ने कुमारपाल से विवाह करने की शर्त लगा दी थी कि राज्य से व्यसन वर्ग को निकाल देने पर ही वह विवाह करेगी। इस शर्त के अनुसार जिन व्यवसनों को निर्वासित किया गया उन अपने सहयोगियों के साथ इसे भी देश निकाला दिया गया।

मधुमती– (ना.पा.) प्रबोध च[illegible] का एक पात्र। यह महामोह द्वारा आदि पिता पुरुष को महामोह के अधिकार में बनाये रखने के लिये नियुक्त की गई है। इसमें इसे अपनी सहेली माया से भी सहायता मिल जाती है। तर्क आदि पुरुष को समझाता है और तब माया से उसका सम्बन्ध और सौहार्द्र छूट जाता है। तभी मधुमती से भी उसे छुटकारा मिलता है।

मधुमाधवीयम्– (ना.कृ.) (१) नारायण शास्त्री लिखित १० अंकों का नाटक।

मधुविधूननम्– (ना.कृ.) (१) नारायण शास्त्री लिखित ३ अंकों का नाटक।

(१) **मधुसूदन–** (ना.का.) इनका लिखा जानकी परिणय नामक नाटक प्रकाश में आया है जिसमें चार अंक हैं। इनका समय १७वीं शताब्दी का प्रथम चरण है।

(२) **मधुसूदन–** (ना.का.) ये भरद्वाजगोत्रीय वैद्येश्वर और गुणवती के पुत्र थे एवं विजयनगर के राजा कृष्ण राय के आश्रय में रहने वाले कवीन्द्राचार्य दिवाकर के भाई थे जिनका परिचय मद्रास प्राच्यपुस्तकालय के पाण्डुलिपि अनुभाग सं. IV ५६६४ में दिया हुआ है। इनके लिखे धूर्त विडम्बित भाण का उल्लेख प्राप्त होता है।

(३) **मधुसूदन–** (ना.का.) शाण्डिल्यगोत्रीय नारायण के पुत्र। ये मधुसूदन सरस्वती से भिन्न है। इनका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम १.११९ पर किया गया है। इनके लिखे कृष्णकुतूहलम् का भी उल्लेख वहीं किया गया है।

मधुसूदनकाव्यतीर्थ– (ना.का.) इनकी लिखी पण्डितचरितप्रहसन शीर्षक रचना प्राप्त होती है। इसके अतिरिक्त इनकी कई अन्य रचनायें भी बतलाई जाती हैं। इनकी रचनायें अब तक अप्रकाशित हैं।

मधुसूदन सरस्वती– (ना.का.) प्रतिष्ठित दार्शनिक और भक्ति एवं वेदान्त दोनों के अन्यतम प्रस्तोता मधुसूदन सरस्वती का जन्म १६वीं शताब्दी में हुआ था और १७वीं शताब्दी के प्रथम दशक के मध्य तक जीवित रहे। दर्शन के क्षेत्र में इनका महत्वपूर्ण योगदान है। इनका वास्तविक नाम कमलनारायण था और ये गौड़, कनौजिया कश्यप गोत्रीय ब्राह्मण थे। कहा जाता है स्वयं के अतिरिक्त अपने पिता पुरन्दर और भाई यादवानन्द के प्रति वारीसाल जिला के माधव पाशा के व्यवहार से असन्तुष्ट होकर इन्होंने सन्यास ले लिया और बनारस में रहने लगे। प्रसिद्ध अद्वैतसिद्धि इन्हीं की रचना है। गोस्वामीतुलसीदास इनके मित्र थे और इन्होंने उनके काव्य की प्रशंसा की थी। कुछ लोगों का कहना है कि पुरन्दर इनके पिता नहीं भाई थे। अकवर ने इन्हें अपने दरवार में बुलाया और इनके साथ दरवार के प्रतिष्ठित विद्वानों से शास्त्रार्थ करा कर उसमें पर्याप्त आनन्द लिया तथा इनका विशेष सम्मान किया।

इनके नाम पर एक नाटक कुसुमावचय (दे.) का भी उल्लेख किया जाता है। हो सकता है नाटककार मधुसूदन सरस्वती दार्शनिक मधुसूदन सरस्वती से भिन्न हों। मधुसूदन के नाम पर जानकीपरिणय नामक एक और नाटक भी प्रकाश में आया है। सम्भवतः यह उन्हीं की रचना है।

मध्यम– (ना.पा.) भास के मध्यमव्यायोग (दे.) में भीमसेन (दे.) के लिये प्रयुक्त। घटोत्कच मां की मनुष्य मांस खाने की इच्छा पूरी करने के लिये एक परिवार को अधिकार में लेकर उसमें किसी एक को रजामन्दी से ले जाने का समझौता करता है और उसके

अनुसार मध्यम पुत्र को ले जाने का निश्चय होता है। वह उसका नाम न पूछ कर उसे मध्यम कह कर पुकारता है। भीम भी अपने भाइयों में मध्यम ही है, वे स्वयं को पुकारा जाता समझकर उपस्थित हो जाते हैं। इसीलिये इस व्यायोग में उनको मध्यम नाम दिया गया है।

इसमें भीमसेन का मानवता के प्रति प्रेम एवं उनकी करुण भावना सर्वप्रथम ध्यान आकर्षित करती है। हिडिम्बा को विश्वास है कि भीमसेन कभी भी किसी मानव की हत्या होते हुये देख नहीं सकते और वे इस अन्याय को दूर करने के लिये अवश्य आयेंगे। वीरता तो उनमें है ही– वे युद्ध में एक दानव को पराजित कर देते हैं। मन्त्रशक्ति की निपुणता एक अन्य विशेषता है। जब घटोत्कच उन्हें माया द्वारा बांध लेता है तब वे मन्त्र के प्रभाव से स्वयं को मुक्त कर लेते हैं। इसमें उनके पारिवारिक जीवन पर भी प्रकाश पड़ता है। भीम का उस ब्राह्मण परिवार के साथ जाना भी उनकी सदाशयता को सिद्ध करता है।

मध्यम व्यायोग– (ना.कृ.) भास (दे.) का लिखा व्यायोग। इसका कथानक महाभारत पर आधारित है। किन्तु महाभारत से केवल इसके पात्रों का उपादान किया गया है। कथानक सर्वथा नवीन एवं कल्पनाप्रसूत है। वनवास के प्रसंग में कभी भीमसेन का हिडिम्बा से सम्पर्क हो गया था जिसका फल हुआ घटोत्कच का जन्म। हिडिम्बा पति को मिलने के लिये उत्कण्ठित है। उसने सुना है कि भीमसेन यहीं कहीं आस पास ही है। अब वह एक युक्ति निकालती है– भोजन के लिय मनुष्य मांस खाने की इच्छा प्रकट करती है। उसे विश्वास है जब पुत्र किसी मनुष्य को इस कार्य के लिये लाने का प्रयत्न करेगा तब भीमसेन उसकी रक्षा के लिये अवश्य आयेंगे। पुत्र घटोत्कच एक ब्राह्मण परिवार का पीछा करता है और उसके सामने प्रस्ताव रखता है कि यदि परिवार का एक व्यक्ति प्रसन्नता पूर्वक साथ में चलने को राजी हो जाय तो वह और सबको छोड़ देगा। परस्पर कुछ परामर्श के बाद ब्राह्मणपरिवार के मध्यम पुत्र का जाना निश्चित हो जाता है। घटोत्कच दैनिक आवश्यकता की पूर्ति के लिये उसे कुछ समय दे देता है। जब कुछ अधिक देर लगती है तब वह उसे मध्यम कहकर पुकारता है। भीम भी मध्यम ही है, अतः वे भी वहां पहुंच जाते हैं और घटोत्कच को ब्राह्मणपुत्र को छोड़ देने का आदेश देते हैं। उसके इन्कार करने पर स्वयं को इस शर्त पर प्रदान करते हैं कि शक्ति के द्वारा उन्हें ले जाया जाय। दोनों का युद्ध होता है; इस तथ्य से दोनो अवगत नहीं है कि उनका पिता पुत्र का सम्बन्ध है। अन्त में पुत्र पराजित होता है किन्तु भीमसेन फिर भी चले जाते हैं। हिडिम्बा भीससेन को देखकर प्रसन्न होती है तथा पुत्र को खेद प्रकट करने तथा भीम के सामने प्रणत होने का आदेश देती है।

नाटक के प्रारम्भ में नान्दी पाठ है और अन्त में विष्णु स्तुति। इसमें भरत वाक्य नहीं है। यह नाटक मातृ भक्ति का अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करता है। हिडिम्बा की कोमल

भावनायें भी दर्शनीय हैं। कवि युद्धोत्साह के वर्णन में तो सिद्ध हस्त है ही हिडिम्बा के पास भीमसेन को ले जाने में शिष्ट हास्य की भी अभिव्यक्ति हुई है। इसी प्रकार घटोत्कच द्वारा शिला से जल प्रवाहित करने, भीम को माया से बांधने और भीम के द्वारा मन्त्र शक्ति से मुक्त होने में माया शक्ति का चमत्कार दिखलाया गया है जो अद्‌भुत रस का पर्यवसायी है। नाटक में श्लोकों की भरमार से सिद्ध होता है कि यह नाटक भास की प्रारम्भिक रचना है। इसमें भीमसेन के उज्ज्वल त्यागमय चरित्र, हिडिम्बा की कोमल भावना तथा उसकी योजना निपुणता पर भी अच्छा प्रकाश पड़ता है। घटोत्कच की मातृभक्ति भी प्रशंसनीय है।

मनस्– (ना.पा.) कृष्णमिश्र (दे.) लिखित प्रतीकनाटक प्रबोधचन्द्रोदय (दे.) का एक पात्र। यह पुरुष (परमतत्व ब्रह्म) पिता और माया (माता) का पुत्र है। इसके दो पत्नियां हैं– प्रवृत्ति और निवृत्ति। प्रवृत्ति से महामोह का जन्म होता है और निवृत्ति से विवेक का। दोनों के पृथक् पृथक् वर्ग हैं जिनमें सङ्घर्ष होता है महामोह और उसका वर्ग समाप्त हो जाता है। मनस् प्रियपुत्र महामोह और प्रियतमा प्रवृत्ति की मृत्यु से दुःखी है। वेदान्तविद्या आकर उसे समझाती है तब वह अपनी दूसरी पत्नी निवृत्ति को साथ लेकर वानप्रस्थ आश्रम में चला जाता है।

मनोनुरञ्जनम्– (ना.कृ.) (२) अनन्तदेव लिखितहरिभक्ति परक ५ अंकों का नाटक। इस नाटक में कृष्ण की लीलाओं का अंकन किया गया है। अङ्गीरस भक्ति है जिसका पोषण शृङ्गार से होता है। नाटक में प्रमुख रूप से गोवर्धनोद्धरण, चीरहरण, और रासलीला का उपादान किया गया है। प्राकृत का सर्वथा अभाव है। कहीं कहीं सङ्गीतात्मकता दृष्टिगत होती है।

मनोभवपराभव– (ना.कृ.) शंकर मिश्र लिखित नाटक।

मनोरमा– (ना.पा.) यह प्रियदर्शिका (दे.) की एक पात्र है। कथानक विकास में इसका योगदान महत्वपूर्ण है। यह राजघराने की एक महत्वपूर्ण सेविका है। राजा और आरण्यका (प्रियदर्शिका) के परस्पर प्रणयविकास में योगदान देती है। जब रानी की इच्छा से महल में रानी (वासवदत्ता) और राजा के प्रणय व्यापार को नाट्यकला के माध्यम से दिखलाने की बात आती है तब आरण्यका को वासवदत्ता की भूमिका दी जाती है और राजा का अभिनय इसे (मनोरमा को) ही करना है। वह बड़ी निपुणता से विदूषक से मिलकर राजा की भूमिका स्वयं राजा को देने में सफलता प्राप्त कर लेती है जिससे अभिनय में ही सही राजा और प्रियदर्शिका को परस्पर निकट आने का अवसर मिल जाता है। अन्त में भी बन्दीगृह में पड़ी हुई प्रियदर्शिका के विष पी लेने का समाचार लाकर वही निर्वहण की सूत्रधार बनती है।

मनोरमा– (ना.कृ.) (१) नारायणशास्त्री लिखित ५ अंकों का नाटक।

मनोरमावत्सराज– (ना.कृ.) यह भीमट (दे.) का लिखा नाटक है। अभी तक इसकी कोई प्रति उपलब्ध नहीं हो सकी है। वत्सराज का चरित्र तो साहित्य जगत् में प्रतिष्ठित है, किन्तु मनोरमा से क्या अभिप्रेत है कुछ ज्ञात नहीं होता, हो सकता है इस नाम से वासवदत्ता ही अभिप्रेत हो और इस नाटक में वासवदत्ता और उदयन की प्रणयलीला को ही नाट्य विषय बनाया गया हो।

मन्थरा– (ना.पा.) यह रामायण का प्रसिद्ध पात्र है। राम को वन भेजने में यही माध्यम रही है। राम काव्यों में इसका इसी रूप में उपादान किया गया है। किन्तु महावीर चरित (दे.) और अनर्घराघव (दे.) में उसके और कैकेयी के चरित्र का परिमार्जन करने के लिये इन नाटकों के लेखकों ने कल्पना की है कि यह वस्तुतः मन्थरा का दोष नहीं था अपितु रावण के मन्त्री माल्यवान की यह चाल थी जिसने मन्थरा के वेष में शूर्पनखा को भेजकर यह कार्य करवाया था।

मन्दाकिनी– (ना.पा.) मल्लिकामारुत (दे.) की एक पात्र। वह योगिनी है और उसी के उद्योग से मल्लिका और मारुत का परस्पर सम्बन्ध जुड़ता है तथा अन्त में वे दोनों प्रणय सम्बन्ध में जुड़ जाते हैं। उसी के प्रयत्न से मल्लिका और मारुत तथा रमयन्तिका और कलकण्ठ दोनों युग्मों का प्रणय बन्धन सम्भव होता है।

मन्दारक– (ना.पा.) यह गोदावर्म युवराज लिखित रससदन भाण (दे.) का एक पात्र है। यह अपनी प्रेमिका की देखभाल और सदाचार रक्षा का भार अपने मित्र विट पर डाल कर कहीं चला जाता है। विट उसकी प्रेमिका से खूब बातें करता है और उसे खूब भ्रमण कराता है। किन्तु वह सुन्दरी अवसर पाकर उस विट को छोड़कर पुनः अपने प्रेमी मकरन्द के पास आ जाती है।

मन्दारमाला– (ना.कृ.) (१) नारायण शास्त्री लिखित ६ अंकों का नाटक।

मन्दारमालिका– (ना.कृ.) दामोदरन नम्बूद्रि (दे.) लिखित वीथी। इसकी रचना १९वीं शताब्दी में की गई थी।

मन्दारिकाविलासम्– (ना.कृ.) (१) नारायणशास्त्री लिखित ७ अंकों का नाटक।

मन्दोदरी– (ना.पा.) प्रसन्नराघव (दे.) की एक पात्र। यह रावण की रानी है और द्व्यर्थक वाणी सुनकर घबरा रही है कि लंका पर आक्रमण हो गया है। रावण को वह समझाती है पर रावण उसके भय को मजाक में उड़ा देता है। किन्तु कुछ ही समय बाद उसे ज्ञात हो जाता है कि वास्तव में युद्ध प्रारम्भ हो चुका है।

मन्मथनाथ भट्टाचार्य– (ना.का.) ये बंगाल के निवासी २०वीं शताब्दी के कवि एवं नाटककार हैं। इनके लिखे नाटक सावित्री चरित्रम् का उल्लेख किया गया है। सम्भवतः यह नाटक अब तक अप्रकाशित है।

मन्मथमन्थन– (ना.कृ.) दे. मन्मथमोदन।

मन्मथमोदन– (ना.कृ.) सुब्रह्मण्य सूरि शास्त्री (दे.) लिखित एक भाण। सम्भवतः मन्मथमन्थन भी इसका दूसरा नाम है जिसका परिचय मद्रास के सहृदयसंस्कृतजर्नल VII में दिया गया है।

मन्मथमन्थन नाम के एक डिम का भी उल्लेख पाया जाता है जिसके लेखक रामकवि बतलाये जाते हैं। इसका रचनाकाल १९वीं शताब्दी है।

सुब्रह्मण्य सूरि के नाम पर इस नाम के एक काव्यग्रन्थ का उल्लेख मिलता है। सम्भव है रामकवि का लिखा इस नाम का डिम हो और सुब्रह्मण्यसूरि का लिखा काव्य हो। यह भी सम्भव है कि सुब्रह्मण्य सूरि ने इस नाम का एक काव्य और एक भाण लिखा हो।

मन्मथ विजय– (ना.कृ.) वेङ्कटराघव लिखित नाटक। इसका प्रकाशन बम्बई से हुआ है। रचनाकाल १९वीं शती।

मन्मथाभ्युदय– (ना.कृ.) दे. (१) मदनाभ्युदय।

मन्मथोन्मथन– (ना.कृ.) यह एक नाट्य कृति है। इसे विद्वानों ने डिम के अन्तर्गत माना है। यह रामनामक किसी नाट्यकार की रचना बतलाई गई है। कीथ के अनुसार विष्कम्भक और प्रवेशक का समावेश किया गयाहै जो नियमानुसार डिम में नहीं होना चाहिये।

मयूरमार्जारिका– (ना.कृ.) एक प्रकरण जिसका उल्लेख भोजराज ने शृङ्गारप्रकाश के ११वें अध्याय में किया है। इस रचना की प्राप्ति अब तक नहीं हुई है।

मय्यान रामार्य– (ना.का.) ये त्रिवेन्द्रम के निवासी थे। इनके लिखे ययाति विजय की प्रति मैसूर के पुस्तकालय में प्राप्त की जा सकती है।

मरकतवल्ली परिणय– (ना.कृ.) इस विवाहविषयक नाटक के लेखक देवराज के पुत्र श्रीनिवास (दे.) हैं। इसका उल्लेख तंजौर के राजपुस्तकालय खण्ड ८ सं. ३४५० पर किया गया है।

मरुत्– (ना.पा.) ऋग्वेद के संवाद सूक्त १.१६५, १७० का एक पात्र। मरुत् शब्द देवता वाचक है। जिन देवताओं ने वृत्रासुर के साथ युद्ध में इन्द्र का साथ छोड़ दिया था उन पर इन्द्र कुपित हैं। देवता उन्हें शान्त करना चाहते हैं। अन्त में इन्द्र का क्रोध शान्त हो जाता है।

मर्कटमार्दलिकम्– (ना.कृ.) महालिंग शास्त्री लिखित एक भाण। इसमें डार्विन के विकासवाद की मजाक उड़ाई गई है जिसके अनुसार मनुष्य का ठीक पूर्वज बन्दर है। बन्दर की पूंछ घिस गई और वह आदमी बन गया। नाटक का कथानक इस प्रकार है– एक बन्दर की पूंछ में कांटा चुभ गया। एक नाई से उसने अपना कांटा निकवाया। धोखे से उसकी पूंछ कट गई। दण्डस्वरूप बन्दर ने नाई से अस्तुरा ले लिया और कूदते हुये

उसके बदले में एक बुढिया से एक टोकरा ले आया। टोकरे के बदले गाड़ीवान से बैल, फिर बैल के बदले घड़े भर तेल लेता है। बुढिया को तेल देकर पुये बनवाता है। कुछ पुये स्वयं खाता है और कुछ मार्दलिक (ढिंढोरची) को देकर उससे मर्दल लेकर बजाता है और घोषणा करता है कि पूंछ कट जाने से अब वह आदमी बन गया है। फिर घोषणा करता है कि अब मैं नेता बन गया हूं।

इसका प्रकाशन कलकत्ता से मञ्जूषा पत्रिका में सन् १९५१ में हो गया था।

मार्जिनाचातुर्यम्– (ना.कृ.) यह वीरेन्द्र कुमार भट्टाचार्य लिखित नाटक है।

मलयकेतु– (ना.पा.) मुद्राराक्षस (दे.) का प्रमुख पात्र। उत्तर पश्चिम राज्यों से चाणक्य की सहायता के लिये जो राजा लोग आये थे उनमें सर्वप्रमुख पर्वतक का यह पुत्र था। विषकन्या के प्रयोग से पर्वतक के मार दिये जाने पर स्वभावतः यह उनका उत्तराधिकारी बन गया। इसी को नेता बनाकर राक्षस ने नन्दवंश के विनाश का बदला लेने का प्रयत्न किया। यह प्रमुख पात्र अवश्य है किन्तु इसे नायक या प्रतिनायक का महत्वपूर्ण पद नहीं दिया जा सकता। चाणक्य और राक्षस के दांव पेंचों में केवल यह एक मोहरा है। इसका चरित्र भी समस्त नाटक व्यापी नहीं है। ७ अंकों के नाटक में केवल दो अंकों में इसके कार्य कलाप के दर्शन होते हैं। वैसे चन्द्रगुप्त की अपेक्षा इसके चरित्र का विकास अधिक हुआ है, क्योंकि इसे अधिक विषम परिस्थिति का सामना करना पड़ा है। वह पराजित हुआ है, फिर भी उसे हम गुणहीन या अविवेकी अथवा निर्णय न कर सकने वाला व्यक्ति नहीं कह सकते। राक्षस ने चाणक्य से बदला लेने के लिये उसी का आश्रय लिया है। यही इस बात का प्रमाण है कि वह समर्थ व्यक्ति है। चाणक्य भी उसी को मुकावला करने में समर्थ मानता है। इसलिये भागुरायण इत्यादि अनेक व्यक्तियों द्वारा घेरने की चेष्टा करता है। यह सच है कि वह ऐसे व्यक्तियों के चक्कर में फंस गया है कि जो उसे धोखा देना चाहते हैं। वह राक्षस इत्यादि अपने हितैषियों की वास्तविकता को नहीं पहिचान सका न उसने वास्तविकता को जांचने के चेष्टा की। वह उन सब बातों को मानता गया जो उसके साथी उसे सुझाते रहे। गर्हणा इस बात की थी कि उसने अपने ही साथियों को मृत्यु के घाट उतार दिया। किन्तु इसमें न तो उसका दोष है न विवेकशीलता का अभाव। जाल ऐसा बुना गया था कि विवेकशील से भी विवेकशील व्यक्ति चूक जाता। लेख सबसे बड़ा प्रमाण होता है, वह मौजूद ही है, कायदे से उस पर मोहर लगी हुई है। जेवरों की सीलबन्द पेटी उसके सामने है जिसका उल्लेख उस सीलबन्द पत्र में भी है। चन्द्रगुप्त द्वारा भेंट में दिये गये जेवरों का जो उल्लेख पत्र में किया गया है उसका प्रमाण सामने है, राक्षस ने वे ही जेवर पहन रक्खे हैं। कुशल अभिनेता सिद्धार्थ की गवाही विश्वास करने के लिये पर्याप्त है। भागुरायण पहले से ही उसके कान भरते रहते थे। उन कथनों पर विश्वास करने के सारे प्रमाण मौजूद हैं। और उसे विश्वास करने के लिये क्या चाहिये? यह सच है कि उत्तेजना में आकर उसने अनर्थ कर डाला

और पकड़ा गया। इसके लिये परिस्थितियां जिम्मेदार हैं, वह नहीं। यह भी सच है कि यदि वह भावना पर नियन्त्रण रख कर जांच पड़ताल करता और शकटदास को बुलाकर उससे पत्र की वास्तविकता जानना चाहता तो उस छल तक पहुंच सकता था। किन्तु इतनी सी चूक उसे विवेक शून्य सिद्ध नहीं कर सकती। चाणक्य ने उसे उसका अपना राज्य लौटाकर उचित ही किया जिसका वह अधिकारी था। चाणक्य की यह उदारता नहीं न्यायप्रियता थी।

मलयजा कल्याण– (ना.कृ.) (३) वीरराघव (दे.) लिखित चार अंकों की नाटिका। नायक देवराज शिकार खेलने मलय पर्वत पर जाता है, वहां उसकी दृष्टि मलयजा पर पड़ती है जो वस्तुतः उस प्रदेश (मलय प्रदेश) की राजकुमारी है। वह उस समय वीणा वादन में निरत है। देवराज उसके सौन्दर्य तथा स्वर लहरी पर मुग्ध हो जाते हैं। रानी (देवराज की पत्नी) को जब यह समाचार मिलता है वह मलय कन्या का रूप धारण कर वहां पहुंच जाती है और दोनों का वार्तालाप सुनकर कुपित होती है। इसी बीच नगर को रक्षक शून्य जानकर यवन उस पर आक्रमण कर देते हैं। अन्त में जामदग्न्य की मध्यस्थता से मलयजा और देवराज का विवाह हो जाता है तथा यवन पराजित होते हैं।

इस नाटक का पहला अभिनय तेलंगाना में सत्यव्रतक्षेत्र में भगवान् देवराज के फाल्गुनोत्सव पर किया गया था। इसकी रचना १८वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हुई थी। जवलपुर से इसका प्रकाशन किया गया।

मलयजापरिणय– (ना.कृ.) (३) वीरराघवलिखित नाटक। इन्हीं के नाम पर एक दूसरी कृति मलयजाकल्याण का भी उल्लेख किया जाता है जिसका प्रकाशन बाबूलाल शुक्ल ने जवलपुर से करा दिया है। सम्भवतः यह उसी रचना का नामान्तर है। यदि यह कोई दूसरी रचना है; तो अभी तक यह उपलब्ध हो नहीं सकी है।

मलयवती– (ना.पा.) नागानन्द की नायिका। यह नायक जीमूतवाहन की प्रेयसी एवं उनके मित्र मित्रावसु की बहन है। गौरी ने स्वप्न में दर्शन देकर उसे उसके जिस भावी पति के विषय में बतलाया वह जीमूतवाहन ही है और कोई नहीं। स्वप्न की बात सखी को सुनाने के अवसर पर जीमूतवाहन छिपकर सुन लेता है। वह भी मलयवती का प्रेमी बन जाता है।

वह अत्यन्त भावुक है। जब मित्रावसु अपनी बहन के विवाह का प्रस्ताव लेकर जीमूतवाहन के पास आता है और जीमूतवाहन अनजान में ही उस प्रस्ताव को ठुकरा देते हैं तब मलयवती फांसी लगाने को तत्पर हो जाती है। जीमूतवाहन उसे बचाता है और अपने प्रेम का विश्वास दिलाकर उससे विवाह .कर लेता है।

मल्लदेव– (ना.का.) अश्वमेध (दे.) नाटक के लेखक इस नाम के साथ 'सुमति जितामित्र' भी जुड़ा हुआ है। पता नहीं चलता यह उनकी उपाधि है या नाम का ही एक

भाग है। ये भलगांव के राजा थे।

मल्लारि आराध्य- (ना.का.) कृष्णा जिला के सर्वण आराध्य के पुत्र थे। इनका समय १८वीं शताब्दी है। इन्होंने शिवलिंगसूर्योदय (दे.) नाटक की रचना की थी।

मल्ला सोमयाजी- (ना.का.) मैसूर और कुर्ग की संस्कृतपाण्डुलिपियों की लीविस रायस ने खोजकर जो कैटेलाग तैयार किया था उसमें २५६ संख्या पर जीवन्मुक्तिकल्याण नामक प्रतीकनाटक का उल्लेख किया गयाहै जिसके रचयिता के रूप में मल्लासोमयाजी का नाम लिखा है। भूमिनाथ का नाम भी नल्लादीक्षित (दे.) है जिनके नाम पर कैटेलागस कैटेलागोरम में १.२०७ पर इसी प्रतीक नाटक का उल्लेख है। क्या ये दोनों रचनायें एक ही हैं? क्या नल्ला ही मल्ला हो गया है?

मल्लिका- (ना.पा.) यह मल्लिकामारुत (दे.) की नायिका है। यह विद्याधर राज के अमात्य की पुत्री है। इसका विवाह मारुत से निश्चित है, किन्तु सिंहलनरेश का इसके प्रति झुकाव होने के कारण विघ्न लगता है। सिंहल नरेश मारुत के मित्र कलकण्ठ का झूठा समाचार फैलाकर मारुत को आत्महत्या की ओर प्रेरित कर देता है, किन्तु आत्महत्या के अवसर पर ही कलकण्ठ आकर उसे बचाता है। एक बार हाथियों की जद से उसका और उसकी सहेली रमयन्तिका का जीवन सन्देह में पड़ जाता है, किन्तु वहां भी रक्षा हो जाती है। उसका प्रेमी मारुत उसे प्राप्त करने के लिये प्रेत साधना करता है। एक राक्षस मल्लिका का अपहरण कर लेता है जिसे मारुत मारता है। इस प्रकार की अनेक विघ्न वाधाओं को झेलने के बाद उसे अपना प्रेमी मारुत मिल जाता है। इस कार्य में उसे योगिनी मन्दाकिनी से सहायता मिलती है।

मल्लिकामकरन्द- (ना.कृ.) यह अज्ञात नामा कवि की कृति है। इसका उल्लेख रामचन्द्रगुणचन्द्र के नाट्यदर्पण में किया गया है। इसकी प्रति अब तक उपलब्ध नहीं हुई है।

मल्लिका मारुत- (ना.कृ.) उद्दण्डी (दे.) लिखित १० अंकों का नाटक। यह एक प्रकरण है जिसमें भवभूति (दे.) के मालतीमाधव (दे.) का अनुकरण किया गया है। इसमें दो प्रेमीयुग्मों की प्रेमलीला का नाट्यवस्तु के रूप में उपादान किया गया है- मल्लिकामारुत और रमयन्तिकाकलकण्ठ। मल्लिका विद्याधर राज के अमात्य की कन्या है और मारुत कुन्तल नरेश के अमात्य का पुत्र है। योगिनी मन्दाकिनी दोनों का विवाह करना चाहती है। किन्तु सिंहलनरेश भी मल्लिका से विवाह करना चाहता है। इससे दोनों के विवाह में विघ्न लग जाता है। कलकण्ठ मारुत का मित्र है। उसकी प्रेमिका रमयन्तिका है। मन्दिर में दोनों जोड़े उपस्थित हैं। दो हाथी बन्धनमुक्त होकर दोनों युवतियों को भयभीत कर देते हैं जिनसे उनकी रक्षा कर ली जाती है। सिंहल नरेश के चर से कलकण्ठ की मृत्यु का झूठा समाचार सुनकर मारुत आत्महत्या के लिये उद्यत हो जाता है, उसी समय कलकण्ठ आकर उसे बचा लेता है। प्रेतसाधना में लगा मारुत किसी राक्षस द्वारा मल्लिका

के हरे जाने की बात सुनता है; वह उसे बचाने जाता है और राक्षसों को मार कर विवाह के लिये मल्लिका को लेकर भाग जाता है। मदयन्तिका भी कलकण्ठ के साथ भाग जाती है। मल्लिका का दुबारा अपहरण किया जाता है। अन्त में मन्दाकिनी के संरक्षण में दोनों युग्मों का विवाह हो जाता है और राजा तथा माता पिता की भी अनुमति मिल जाती है।

यद्यपि प्रकरण अनुकरण पर आधारित है तथापि इसमें स्थान स्थान पर लेखक की मौलिकता भी दृष्टिगत होती है। कवि ने इसमें कहीं कहीं विशेषता तथा सुन्दरता का आधान किया है। भाषा सुन्दर है तथा पद्य संगीतात्मक। वक्तव्यों में दृष्टान्तों का उपादान किया गया है और सामान्य सूक्तियों का भी समावेश प्राप्त होता है।

इसका प्रकाशन जीवानन्द विद्यासागर ने करा दिया था।

मल्लिकार्जुन– (ना.का.) सत्यभामापरिणय (दे.) के लेखक विजय नगर डिण्डिमवर्ग से इनका सम्बन्ध था। ये भरद्वाज गोत्रीय लक्ष्मण और सावित्री के पुत्र एवं सभापति देशिक के शिष्य थे। प्रतिष्ठित साहित्यकार सोमनाथ इनके बाबा थे और इनका विवाह कुमार डिंडिम की पुत्री के साथ हुआ था। इस प्रकार इनका परिवेष पूर्ण रूप से साहित्यमय था। इन्हें स्फुलिंग कवि भी कहा जाता है।

महर्षिचरितामृत– (ना.कृ.) सत्यव्रत (दे.) लिखित ५ अंकों का नाटक इसमें महर्षि दयानन्द के कार्य कलापों का चित्रण किया गया है। शिवरात्रि के व्रत में उनका प्रबोध, गृहत्याग, गुरुदक्षिणा, पाखण्डखण्डन एवं मृत्युञ्जय इस नाटक के विभिन्न अंकों में प्रतिपाद्य हैं। इसका प्रकाशन १९६५ में बम्बई से हो चुका है।

महाकविकालिदास– (ना.कृ.) जीवन्यायतीर्थ (दे.) लिखित ५ अकों का नाटक। इसमें कालिदास की मूर्खता पर उनकी पत्नी विद्यावती की प्रतारणा, काली की उपासना और उनके फलस्वरूप महाकवित्वलाभ का कथानक के रूप में उपादान किया गया है। १९७२ में लेखक द्वारा नाटक चक्र में इसका प्रकाशन एवं १९६२ में उज्जयिनी में कालिदास समारोह के अन्तर्गत प्रथम अभिनय सम्पन्न हुआ।

महादेव– (ना.का.) अद्‌भुतदर्पण नामक नाटक के लेखक। ये १७वीं शताब्दी के नीलकण्ठ के समसामयिक एवं मद्रास प्रेसीडेंसी में पाल्मनेरनिवासी कौण्डिल्य गोत्रीय नृसिहं के पुत्र थे। इनका लिखा १० अंकों का नाटक अद्‌भुत दर्पण राम की लंका पर विजय का वर्णन करता है। इस नाम के कई कवि हुये हैं। दानकेलि कौमुदी माणिक्य के लेखक महादेव कवि शेखर सरस्वती, धूर्त विडम्बन प्रहसन के लेखक महादेव, उन्मत्तराघव के लेखक महोदय ये सब भिन्न व्यक्तित्व हैं।

महादेव– (ना.का.) इनका लिखा धूर्तविडम्बन (दे.) नामक प्रहसन प्रकाश में आया है।

महादेव कवीशाचार्य सरस्वती– (ना.का.) इनकी लिखी दानकेलिकौमुदी (दे.)

भाणिका प्रकाश में आई है।

महादेव शास्त्री– (ना.का.) उन्मत्त राघव (दे.) नामक नाटक के लेखक। ये अद्‌भुत दर्पण लेखक महादेव तथा दानकेलिकौमुदी के लेखक महादेव से भिन्न हैं।

महादेशिकचरित– (ना.कृ.) यह एक व्यायोग है जिसकी रचना रामानुजाचार्य ह्री ने की थी।

महानाटक– (ना.कृ.) राम विषयक नाटकों में सुर्वाधिक प्रतिष्ठित नाटक। इस नाटक में रामविषयक नाटकों की विशेषता, साहित्यिकता, ऐतिहासिकता सर्वाधिक मात्रा में प्रतिफलित हुई है। इसकी महत्ता का इसी से अनुमान लगाया जा सकता है कि इसका लेखक हनुमान को माना गया है। इसीलिये इसे हनुमन्नाटक भी कहा जाता है। इस नाटक के दो संस्करण प्रकाश में आये हैं– दामोदर मिश्र द्वारा सम्पादित गुजराती संस्करण जिसमें १४ अकों में ५८१ छन्द है और मधुसूदन द्वारा सम्पादित बंगाली संस्करण जिसके ९ अंकों में ७३० छन्द हैं। प्रथम संस्करण की टीका के अनुसार हनुमान ने इसे पत्थरों पर लिखा था। वाल्मीकि ने जब देखा कि इस रचना के सामने हमारी रामायण को कौन पढ़ेगा तब हनुमान को प्रसन्न किया और हनुमान ने अपनी रचना समुद्र में डाल दी। राजा भोज ने दामोदर मिश्र द्वारा उसका उद्धार कराया। किन्तु दूसरे संस्करण में स्वीकार किया गया है कि इसका उद्धार विक्रमादित्य ने कराया। आनन्दवर्धन ने इसका उल्लेख किया है। अतः इसका समय ८५० ई. के बाद का नहीं हो सकता। किन्तु इसका कलेवर बढ़ता रहा है तथा इसमें भवभूति (दे.) राज शेखर (दे.) मुरारि (दे.) इत्यादि राम विषयक नाटककारों के पद्य स्वतन्त्रता पूर्वक समाविष्ट किये गये हैं।

इस नाटक में राम विषयक कथानक का अधिकांश भाग आ जाता है। किन्तु समस्त कथानक पद्यों में या संवाद के माध्यम से व्यक्त किया गया है वस्तुतः इसे पूर्ण नाटक कहना ठीक नहीं यह महाकाव्य और नाटक के मध्य की एक नई ही विधा है। इसमें गद्य का प्रयोग बहुत ही कम है और जहां है भी वहां उचित स्थान पर नहीं है। पद्यो में ही कथानक और संवाद सभी कुछ है। रंगमंचीय निर्देश भी काव्य शैली में लिखे पद्यों में ही दिये गये हैं। न प्राकृत का प्रयोग है न विदूषक का। इसमें ठीक रूप से प्रस्तावना भी नहीं है। विण्टरनित्ज के अनुसार यह नाटक अभिनय के मन्तव्य से लिखा गया प्रतीत नहीं होता। ज्ञात होता है इसका पाठ कोई एक व्यक्ति करता था और दूसरे अभिनेता पाठ के अनुसार अभिनय किया करते थे। प्रो. लूडर्स ने इसे छाया नाटक के रूप में स्वीकृत किया है। इस नाटक का महत्व अभिनय की दृष्टि से कम काव्य की दृष्टि से अधिक है। काव्यात्मकता, कल्पनाशीलता, कलात्मकता और रसात्मकता पर्याप्त मात्रा में पाई जाती है। इसके लेखक का पता नहीं है और एस.के.डे. के अनुसार इसकी आवश्यकता भी नहीं है क्योंकि यह एक संग्राहमात्र प्रतीत होता है।

महानाटक में प्रायः समस्त राम कथा आवेष्टित हैं, किन्तु कतिपय वर्णनों को अधिक

महत्व दिया गया है। उनमें प्रमुख हैं– जनकपुरी में धनुर्भङ्ग, परशुरामसंवाद, रामविवाह, सीताराम विहार, राम का वियोग, हनुमान द्वारा सीता की खोज, अंगद रावण संवाद इत्यादि।

दामदोर संपादित संस्करण १४ अंकों में मोहनदास लिखित टीका के साथ बम्बई से और आर. शिरोमणि लिखित टीका के साथ कलकत्ता से प्रकाशित हुआ है।

९ अंकों का दूसरा संस्करण मधुसूदन द्वारा संपादित है। इसमें वर्णन कुछ संक्षिप्त है। इसका मोहनदास की टीका के साथ बम्बई से प्रकाशन हुआ है। इसका संकलन कैटेलागस कैटेलागोरम १.४३८, II १००, २१६ पर किया गया है। रामतरण शिरोमणि और चन्द्रशेखर ने तथा कलकत्ता से जे. विद्यासागर ने इसका प्रकाशन कराया है।

महानाटक सुधानिधि एक चयनिका प्रकार की रचना है जिसे विजयनगर के इम्मादि देवराय ने तैयार किया था। इसमें रामायण की पूरी कथा संकलित की गई है।

महाप्रभु हरिदास– (ना.कृ.) यतीन्द्र विमल चौधरी (दे.) की नाट्यकृति। इसमें हरिदास भक्त की महत्ता बतलाई गई है। उनके निन्दक गुम्पराज की दुर्दशा, साधना डिगाने के लिये भेजी गई वेश्या का सन्यासिनी बन जाना, कीर्तन पर प्रतिबन्ध लगाने वाले हुसेन साह का दुःखद अन्त और महाप्रभु चैतन्य के चरणों में देह त्याग उनकी उच्चकोटि के साधना के कुछ निदर्शन हैं। इस नाटक का कई स्थानों पर अभिनय किया गया।

महाभूसि वेङ्कटाचार्य– (ना.का.) ये कश्यपगोत्रीय अनन्ताचार्य के पुत्र थे। इनका समय १९वीं शताब्दी का उत्तरार्ध है। इनकी रचना 'शुद्ध सत्व' एक प्रतीक नाटक है। इसमें विशिष्टाद्वैत का नाटकीकरण किया गया है।

महाभैरवी– (ना.पात्र) प्रबोधचन्द्रोदय में एक पात्र। यह श्रद्धा और धर्म पर अधिकार कर लेती है और उन दोनों को लगभग खा जाने को तैयार है। उस समय उनकी रक्षा के लिये विष्णुभक्ति आ जाती है और उन्हें बचा लेती है। अन्यथा वह धर्म और श्रद्धा दोनों को चट कर गई होती।

महामोद– (ना.कृ.) गणपति (दे.) की एक रचना जिसकी प्रशंसा राज शेखर ने की है। उनका कहना है कि गणपति की पूजा तो विद्याधर भी करते हैं। क्या यह रचना एक नाट्यकृति है इस विषय में कुछ कहा नहीं जा सकता क्योंकि अब यह रचना लुप्त हो गई है।

महामोह– (ना.पा.) प्रबोधचन्द्रोदय (दे.) का एक पात्र। यह मनस् पिता और मूर्ति माता का पुत्र है। इसने मुक्तिस्थल काशी पर अधिकार जमा रक्खा है। श्रद्धा की पुत्री शान्ति को कैद में डाल रखने का आदेश दे दिया है। उसका वर्ग बहुत बड़ा है और चार्वाक इत्यादि उसके बहुत बड़े सहायक हैं। एक भविष्यवाणी से वह भयभीत है कि उसके सौतेले भाई एवं प्रतिद्वन्दी विवेक की जो सन्तान उपनिषद् में उत्पन्न होगी वह उसका नाश कर देगी। अतः मिथ्यादृष्टि की सहायता से वह प्रयत्नशील है कि विवेक

और उपनिषद् का संयोग न हो पाये। किन्तु अन्त में वह पराजित हो जाता है और मारा जाता है तथा विवेक राज्य की स्थापना हो जाती है।

महायात्रिक– (ना.पा.) हास्यार्णव (दे.) का एक पात्र। यह एक ज्योतिषी है। यह ऐसे योग बतलाता है जो हास्य की सृष्टि करते हैं। जैसे जब वह कोई ऐसा यात्रा मुहूर्त बतला देता है जो मृत्युसूचक होता है।

महालिंग शास्त्री– (ना.का.) मर्कटमार्दलिकम् आदि नाटकों (दे.) के लेखक। समय २०वीं शताब्दी। ये प्रसिद्ध आचार्य अप्पय दीक्षित के वंशज थे। इनका जन्म तंजावूर जिले में १८९७ ई. में हुआ था। ये मद्रास हाईकोर्ट में वकालत करते थे। इनकी अनेक प्रकाशित अप्रकाशित रचनायें साहित्य जगत् को ज्ञात हैं जिनमें निम्न लिखित नाटक भी शामिल हैं– कौण्डिन्यप्रहसन, प्रतिराजसूय, मर्कटमार्दलिकम् भाण, शृङ्गारनारदीय, उभय रूपक कलिप्रादुर्भाव, आदिकाव्योदय, उद्गात्दशानन और अयोध्या काण्ड। ये नाटक मद्रास संस्कृत अकादमी की अखिल भारतीय नाटक प्रतियोगिता में पुरस्कृत हुये थे।

महावीर चरित– (ना.कृ.) भवभूति का लिखा रामकथा विषयक ७ अंकों का नाटक। इसमें रामायण के प्रथम ६ काण्डों का समाहार किया गया है। किन्तु कवि ने रामकथा को तदवस्थ रूप में स्वीकार नहीं किया है, किन्तु उसे कल्पना द्वारा नया रूप दे दिया है जिसमें रामायण के कुछ प्रसंग दृश्य हैं एक सूच्य। राम और रावण का संघर्ष वन यात्रा और सीता हरण के बाद नहीं पहले ही आ जाता है। वह और उस का मन्त्री माल्यवान् शूर्पणखा की सहायता से राम को नष्ट करने का प्रयत्न करते हैं। कारण यह है कि रावण सीता पर आसक्त है और उससे विवाह करना चाहता है। किन्तु सीता और उसकी बहने विश्वामित्र के आश्रम में अकस्मात् राम और लक्ष्मण से मिलती हैं और उनमें एक आसक्ति उत्पन्न हो जाती है। विश्वामित्र के दिये अमोघ अस्त्रों से राम दुर्धर्ष हो गये हैं। इस बीच रावण दूत भेजकर विवाह का प्रस्ताव करता है किन्तु उसकी प्रतिज्ञा ठुकरा दी जाती है। विश्वामित्र की प्रेरणा से राम की शक्ति परीक्षा के लिये शिव धनुष मंगाया जाता है जो राम के हाथों टूट जाता है। राम अपनी शक्ति से सभी को प्रभावित करते हैं और राम सीता का विवाह हो जाता है। इस विवाह के हो जाने और अपनी प्रार्थना ठुकरा दुये जाने से रावण राम का भयानक शत्रु बन जाता है और उन्हें जैसे भी हो नष्ट करने की चेष्टा करता है। उसका मन्त्री माल्यवान बदला लेने के लिये अनेक प्रयत्न करता है। वह धनुर्भंग की सूचना देकर उग्रबुद्धि परशुराम को उकसाता है और परशुराम बदला लेने जनकपुर पहुंच जाते हैं जहां विवाह के समारोह में दशरथ का वर्ग भी विद्यमान है। परशुराम युद्ध के लिये राम को ललकारते हैं। दोनों का आक्षेप प्रत्याक्षेप चलता है। दशरथ और जनक, दोनों ओर के लोग एवं विश्वामित्र संघर्ष टालने का भरसक प्रयत्न करते हैं किन्तु युद्ध टलता नहीं। युद्ध नियमानुसुरा रंगमञ्च पर नहीं दिखलाया जाता किन्तु उसकी सूचना दे दी जाती है कि युद्ध में राम विजयी हुये हैं और परशुराम उनकी बन्दना

कर चले गये हैं।

अब राम से बदला लेने के लिये माल्यवान दूसरा उपाय निकालता है– वह रावण की बहन शूर्पणखा को कैकेयी की दासी मन्थरा का रूप देकर उसके हाथ एक जाली पत्र राम के पास भेजता है जो कैकेयी की ओर से है, जिसमे लिखा है कि दशरथ ने कभी उन्हें दो वरदान देने का वादा किया था। कैकेयी ने एक वरदान में भरत का राज्याभिषेक और दूसरे में राम का १४ वर्ष का वनवास मांग लिया है। यह पत्र राम को जनकपुर में मिलता है। भरत और उनके मामा युधाजित् तत्काल राम का राज्याभिषेक करने का आग्रह करते हैं। किन्तु राम पिता के दिये हुये वचन पर दृढ़ है और सीता तथा लक्ष्मण को लेकर वन को चले जाते हैं। भरत केवल राम के प्रतिनिधि के रूप में राज्य चलाने के लिये इस शर्त पर अयोध्या में रुक जाते हैं कि राम १४ वर्ष बाद लौट कर राज्य स्वीकार कर लेंगे। सीता हरण तक की मध्यवर्ती घटनायें सूच्य हैं जो जटायु और सम्पाति के परस्पर वार्तालाप से ज्ञात हो जाती हैं। सीता हरण के बाद रावण रुष्ट होकर विभीषण को निकाल देता है। वह राम से ऋष्यमूक पर्वत पर मिलना चाहता है। तब माल्यवान् उन्हें न मिलने देने के लिये वालि को उकसाता है। संघर्ष में राम वालि को मार देते हैं। मृत्युकाल में वालि छोटे भाई सुग्रीव को सीता खोज में राम की सहायता करने का आदेश देता है लंका दहन सूच्य प्रसंग है जो माल्यवान सुनाता है। अंगद का दूत्यकर्म असफल हो जाता है। रावण अंगद को बन्दी बनाने का प्रयत्न करता है किन्तु अंगद बच निकलता है। युद्ध सूच्य है जिसकी सूचना इन्द्र और चित्ररथ गन्धर्व की बातचीत से मिलती है। रावण युद्ध में आश्चर्य जनक शौर्य दिखलाने पर भी पराजित हो जाता है क्योंकि हनुमान अमृतवर्षा से राम पक्ष के मृत वीरों को भी जिला देते हैं। राम और मेघनाद जैसे वीरों के आहत हो जाने के बाद राम को सीता मिल जाती है, उनकी अग्निपरीक्षा हो चुकी है। राम आकाश मार्ग से उत्तर दिशा की यात्रा करते हैं, अयोध्या में सारावर्ग उनका अभिनन्दन करता है और विश्वामित्र राम का अभिषेक करते हैं, यहीं पर नाटक समाप्त हो जाता है।

इस नाटक में रामकथा के अन्दर रावण के मन्त्री की कूटनीति से नया चमत्कार उत्पन्न करने की चेष्टा की गई है। इसके साथ ही उनके चरित्रों का परिमार्जन और दोष निराकरण भी इसकी विशेषता है। राम कैकेयी की दुरभिसन्धि से नहीं माल्यवान की कूटनीति से निर्वासित होते हैं। इस विषय में कैकेयी निर्दोष है। रामायण में वालि वध बन्धुविरोध के कारण किया गया है और उसके लिये राम युद्ध के नियमों की भी परवा नहीं करते; बालि के इस प्रश्न का भी राम कोई उत्तर नहीं दे पाते कि 'आपने हमें क्यों मारा है? यदि आप शिकार की बात कहें तो मेरा मांस तो खाया नहीं जाता, यदि सीता की खोज में सुग्रीव की सहायता की बात कहें को सुग्रीव त्रिकाल में भी यह कार्य नहीं कर पायेगा जबकि यदि आप मुझसे सहायता लेते तो मैं रावण से मिलकर तत्काल पूरा कर देता।' इस नाटक में न तो बन्धुविरोध है, न राम का युद्ध, न मर्यादा का उल्लङ्घन,

न बालि के सामने राम का निरुत्तर हो जाना। यहां तो माल्यवान के वहकावे में स्वयं वालि विरोध में आ जाता है और राम का मुकाबला करता है। इसीलिये मारा जाता है।

हनुमान सञ्जीवनी द्वारा लक्ष्मण को ही जीवन दान नहीं देते अपितु अमृतवर्षा करके अपने पक्ष के समस्त सैनिकों को जिला देते हैं। रामायण के अनुसार दशरथ भरत को नन्साल भेज कर छलपूर्वक अपने वचन से मुंह मोड़ना चाहते हैं जिस अपराध का उन्हें राम के निर्वासन और अपनी मृत्यु के रूप में दण्ड भोगना पड़ता है। किन्तु भवभूति के दशरथ छल पूर्वक नहीं भरत की उपस्थिति में ही बल्कि भरत और उनके मामा युधाजित के आग्रह पर ही राम को राज्य देना चाहते हैं।

उक्त विशेषताओं के होते हुये भी इसमें दोष भी पर्याप्त रूप में विद्यमान है। एक तो सूच्य संवादों की भरमार नाटकीयता के प्रतिकूल है। कुछ घटनायें बहुत बढ़ा दी गई हैं और कुछ की सर्वथा उपेक्षा की गई है। राम और परशुराम का सङ्घर्ष दो अंकों तक चला जाता है।

बहुत समय तक यह नाटक केवल पांचवें अंक तक ही प्राप्त होता रहा। तंजौर में सं. १०७०३ और VIII ३४५४ पर जो प्रति प्राप्त होती है उनके अनुसार राजशेखर के पास पूरी पुस्तक विद्यमान थी। उसका अन्तिम भाग राजशेखर ने जला दिया तब उसका ५वें अंक तक का भाग ही शेष रह गया। शेष भाग की पूर्ति सुब्रह्मण्यं ने की। बाद में शेष भाग भी प्राप्त हो गया। उसमें सुब्रह्मणयं द्वारा जोड़ा गया एवं अनुसन्धान में प्राप्त भाग इन दोनों के पाठ एक में मिला दिये गये। उसमें वीरराघव की टीका भी सम्मिलित है। इसको टोडरमल ने लाहौर से, एफ.एच त्रेहन ने लन्दन से और जे फ्लैक फोर्ड ने अंग्रेजी अनुवाद के साथ लन्दन से प्रकाशित कराया। बम्बई से प्रकाशित इस रचना पर वीर राघव की टीका ५वें अंक के ४६ वें पद्य तक है। शेष भाग में सुब्रह्मण्यं द्वारा पूरे किये गये भाग की व्याख्या है। सुब्रह्मण्यं नाम से तो इनका दाक्षिणात्य होना सिद्ध ही होता है। वीर राघव भी दक्षिणात्य ही थे, उनके द्वारा सुब्रह्मण्यं कृति के साथ इसकी व्याख्या करना भी सुब्रह्मण्यं को दाक्षिणात्य सिद्ध करता है।

महाश्मशान– (ना.कृ.) यह एक दुःखान्तिका है जो हैदराबाद की कौमुदी पत्रिका में प्रकाशित हुई थी।

महाश्वेता– (ना.कृ.) वेङ्कटराम राघवन् लिखित प्रेक्षणक। इसमें कादम्बरी के महाश्वेतावृत्तान्त को रूपायित किया गया है। शिवविषयक संगीत में संलग्न महाश्वेता पूंछने पर अपना वृत्तान्त चन्द्रापीड को सुनाती है। इसका प्रसारण आकाश वाणी मद्रास से किया गया था।

महासेन– (ना.उ.पा.) उज्जैन के राजा प्रद्योत की उपाधि। ये वासवदत्ता के पिता थे। दे. स्वप्नवासवदत्ता और प्रतिज्ञायौगन्धरारायण।

महिमामय भारतम्– (ना.कृ.) यतीन्द्रविमल चौधरी लिखित ५ अंकों का नाटक। इसमें कार्य व्यापार तो कम है; मानस व्यापार और भावुकता इसकी विशेषतायें हैं। इसका परिवेष अत्यन्त व्यापक है। स्वर्ग से भारत भूमि तक विष्णु से परिशीलक जनता तक इसके नियोजन का विस्तार है। इसमें भारत को अनेक रूपों में देखा गया है– वैदिक, पौराणिक, इस्लामी, इत्यादि तथा आधुनिक भारत इसके विस्तार में समाहित हुये हैं। दामोदर घाटी, माइथन बांध, भाखरा नंगल, चम्बल, नागार्जुन सागर, मुचुकुन्द योजनायें, विद्युत् उत्पादन, मत्स्य पालन आदि नवीन योजनाओं के समावेश के साथ भारत के नव निर्माण के प्रति आशावाद प्रकट किया गया है और इसी के साथ नाटक की समाप्ति हुई है।

इसकी रचना १९५८ में हुई थी और प्रथम अभिनय प्राच्यवाणी द्वार २० अप्रैल १९५९ को दिल्ली में हुआ था।

महिलाविलासम्– (ना.कृ.) (१) नारायण शास्त्री लिखित ७ अंकों का नाटक।

महिशमङ्गलम्– (ना.कृ.) एक भाण जिसकी रचना नारायण नामक एक नम्बूद्रि ब्राह्मण ने की थी जो कि कोचीन में मालावार के पुरुवन स्थान का निवासी था। इस भाण की रचना कोचीन के राजराजवर्मा के निर्देश पर की गई थी। इसमें अनंगकेतु और अनंगपताका की प्रणय लीला का चित्रण किया गया है। इसकी प्रति मद्रास की ओरियण्टल लायब्रेरी के डिस्क्रिप्टिव पाण्डुलिपि अनुभाग में XXI ८४५५ सं. पर सुरक्षित है। इसका प्रकाशन १८८० में पालघाट और त्रिचूर से हो गया था।

महिषासुरवधम्– (ना.कृ.) (१) नारायण शास्त्री लिखित एकाङ्की नाटक।

महेन्द्रपाल– (ना.सं.) ये नवीं दसवीं शताब्दी में महोदय या कन्नौज के राजा थे जिनके अभिलेख ८९३ से ९०७ के मध्य पाये जाते हैं। यह राजशेखर (दे.) का समय था। इनके आदेश पर बाल रामायण का अभिनय किया गया था।

महेन्द्र विक्रमवर्मा– (ना.का.) ये काञ्चीनरेशसिंहविष्णु वर्मा के पुत्र थे। अपनी कुमार अवस्था में इन्हें कुछ समय तक प्रसिद्ध कवि भारवि के साथ रहने का सुयोग प्राप्त हुआ था। बाद में ये काञ्ची के राजा बन गये थे। ये सम्भवतः महाराज हर्ष के समसामयिक थे। इनका लिखा मत्तविलास नामक प्रहसन प्राप्त हुआ है। जिसके अनुसार इन्हें अवनिभाजन, गुणभार और मत्तविलास उपाधियां प्राप्त हुई थीं। ज्ञात होता है अन्तिम उपाधि अपनी रचना की सफलता के कारण इन्हें प्राप्त हुई थी। इन्हें मत्तविलास का कर्ता इसीलिये माना जाता है कि इनके एक शिलालेख में मत्तविलास का उल्लेख किया गया है।

महेन्द्रविजयम्– (ना.कृ.) यह एक डिम है जिसकी रचना प्रधानवेङ्कप्प ने १८वीं शताब्दी में की थी। इसमें समुद्रमन्थन के बाद अमृत के लिये देवासुरसंग्राम में देवताओं (महेन्द्र) की विजय दिखलाई गई है। श्रीरामपुर के तिरुवेङ्गलनाथ के महोत्सव में इसका

प्रथम अभिनय किया गया था।

महेश– (ना.पा.) त्रिपुरदाह के नायक। वत्सराज लिखित इस नाटक में शिव की शालीनता और औचित्य पालन की उनकी प्रवृत्ति की विशेष रूप से अभिव्यक्ति की गई है। वे कुमार को भी सीमा मे रहकर विजय लाभ का निर्देश देते हैं जिसकी प्रशंसा उनके विरोधी शुक्राचार्य भी करते हैं। जब उनकी स्तुति महर्षि और देवताओं द्वारा की जाती है तब उन्हें संकोच का अनुभव होता है।

महेश्वर– (ना.का.) इनके लिखे दो नाटक प्राप्त हुये हैं– सभानाटक और धूर्तविडम्बन प्रहसन इन कृतियों का उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम क्रमशः (I ३९६ और १.२७२) में किया गया है।

महेश्वर पण्डित– (ना.का.) ये गुजरात के बहादुर शाह १५२६-१५३७ ई. के दरवारी कवि थे। 'स्वर्णमुक्ताविवाद नामक नाटक में इन्होंने स्वर्ण और मुक्ता का विवाद दिखलाया है जिसमें निर्णायक की भूमिका श्रीनगरी के वलभद्र ने निभाई।

इसका संकलन कैटेलागस आफ संस्कृत मैन्युस्क्रिप्टस इन द इण्डिया आफिस एगलिङ् संख्या १६२३ में किया गया है।

महेश्वरानन्द– (ना.कृ.) यह एक अप्राप्त प्रकरण रचना है। जिसका उल्लेख रसार्णव सुधाकर में किया गया है।

महेश्वरोल्लास– (ना.कृ.) (२) नारायण शास्त्री लिखित २४ नाटकों में एक। इसका अभी तक प्रकाशन नहीं हुआ है।

मांसभक्षण– (ना.पा.) मोहराजपराजय (दे.) कृपासुन्दरी से विवाह की शर्त के अनुसार कुमार पाल ने राज्य से जिन व्यसनों को निर्वासित किया था उनमें यह भी एक था। पहले मोहराज के राज्य में इन व्यसनों की तूती बोलती थी, फिर इन सबको राज्याज्ञा से निर्वासित कर दिया गया।

माकन्दमकरन्दम्– (ना.कृ.) (१) नारायण शास्त्री (दे.) लिखित १० अंकों का नाटक।

मागधवती– (ना.पा.) अश्वघोष (दे.) की कृति गणिका विषयक रुपक (दे.) की नायिका। यह एक गणिका है जिसका विहार नायक सोमदेव के साथ दिखलाया गया है। कृति के खण्डित रूप में प्राप्त होने के कारण इसका चरित्र चित्रण सम्भव नहीं है। यह भी ज्ञात नहीं होता कि अन्य बौद्ध नायिकाओं के समान क्या इसकी भी परिणति साधना में ही होती है। कीथ का कहना है कि इसके नामकरण में सेना सिद्धा या दत्ता लगाने की वेश्याविषयक परम्परा का पालन नहीं किया गया है। यह भी सम्भव है कि कवि ने किसी पुरानी परम्परा से यह नाम ग्रहण किया हो। जितना अंश प्राप्त है उससे गणिकाओं के आमोद प्रमोद का चित्रण हो ही गया है। उसका ... विहार स्थल है ही, वह उद्यान को भी विहार के लिये चुनती है और पर्वत शिखर पर जाकर भी उत्सव मनाती

है।

माणवकगौरवम्- (ना.कृ.) यह कालीपद (दे.) का लिखा ७ अंकों का रूपक है। इसमें धौम्य ऋषि और उनके शिष्यों के चरित्र को चित्रित किया गया है। धौम्य ऋषि शिष्यों की कड़ी परीक्षा लेते हैं जिसका हारित नामक शिष्य विरोध करता है और आश्रम से निकाल दिया जाता है। इसके प्रतिकूल उपमन्यु सभी परीक्षाओं में पास होता है। धौम्य को प्रधान मन्त्रित्व का पद प्रदान किया जाता है किन्तु उसे आस्वीकार कर वह पद अपने शिष्य को दिलवा देते हैं। उपमन्यु सफल होकर उद्दालक मुनि के नाम से प्रसिद्ध होता है किन्तु हरीत पश्चात्ताप की आग में जलकर गुरु कृपा का अधिकारी बनता है।

यह एक संस्कृतिप्रधान नाटक है जिसका परिवेश आश्रम जीवन है। राजतन्त्र, संविधान, नीति इत्यादि का निदर्शन एवं गुरुभक्ति की स्तुति इसकी विशेषतायें हैं। इनका प्रकाशन प्रणयपारिजात एवं संस्कृत परिषद् पत्रिका में हुआ है। प्रथम अभिनय संस्कृत परिषद् की ओर से किया गया था।

माणिक- (ना.का.) ये राजवर्धन के पुत्र एवं नटेश्वर के शिष्य चौदहवीं शताब्दी के एक नैपाली कवि तथा नाटककार थे। इनके लिखे तीन नाटक प्रकाश में आये हैं- भैरवानन्द (दे.) राघवानन्द (दे.) और अभिराम रागव (दे.) इन नाटकों के अतिरिक्त इन्होंने मानव न्यायशास्त्र की न्याय विकासिनी टीका भी लिखी थी।

माणिक्य चन्द्रदेव- (ना.का.) १६वीं शताब्दी के नोआखाली के राजा थे। इन्हें लक्ष्मणमाणिक्य देव नाम से भी याद किया जाता है। इनका लिखा कुवलयाश्वचरित (दे.) प्रकाश में आया है। इनके नाम पर विख्यातविजयम् (दे.) नाटक भी बतलाया जाता है। सत्काव्यरत्नाकर भी इनकी एक काव्यात्मक रचना बतलाई जाती है।

माणिक्यवल्लिका- (ना.कृ.) शारदातनय ने कल्पवल्ली उपरूपक के उदाहरण के रूप में इसका उल्लेख किया है। अब यह कृति उपलब्ध नहीं होती।

माणिक्यसूरि- (ना.का.) ये वातगच्छ के निवसी थे। इन्होंने सेतुनाटक (दे.) की रचना की। इसके अतिरिक्त इनका लिखा १० स्कन्धों में विभाजित १०० सर्गों का नलायन अथवा कुबेरपुराण भी प्राप्त होता है जिसकी १६५८ की लिखी हुई एक प्रति जैसलमेर भण्डार में प्राप्त होती है। इनका साहित्यसार नामक एक अलंकार ग्रन्थ भी बतलाया जाता है। इनका उल्लेख पेटर्सन ने खोज रिपोर्ट सं. ११.३५७ पर किया है जो कि जैसलमेर के राज पुस्तकालय से प्राप्त की जा सकती है।

मातलि- (ना.पा.) अभिज्ञानशाकुन्तलम में इन्द्र का सारथि। असुरों पर विजय प्राप्त करने के लिये दुष्यन्त को बुलाने के निमित्त उसे भेजा है। राजा उस समय शकुन्तला के वियोग की तीव्र वेदना से पराहत है। मातलि विवेक के साथ अपना कर्तव्य निश्चित कर

लेता है और विदूषक को दबोच लेता है जिससे वह चीख पड़ता है और राजा को पुकार कर रक्षा की याचना करने लगता है। मातलि की इस क्रिया से राजा प्रबुद्ध हो जाते हैं। उसे ज्ञात हो जाता है कि व्यक्तिगत सुख दुःख के ऊपर भी कुछ कर्तव्य हैं। इस प्रकार भावान्तर को उत्पन्न कर वह राजा को इस अवस्था में ले आता है कि शकुन्तला विषयक वियोग वेदना से ऊपर उठकर इन्द्र के द्वारा निर्दिष्ट अपने कर्म को समझ जाते हैं। कर्तव्यपालन कर लौटने के अवसर पर भी वह राजा को कश्यप के आश्रम में ले जाता है जहां राजा को प्रियतमा शकुन्तला और पुत्र भरत दोनों मिल जाते हैं। इस प्रकार शकुन्तला के पुनर्मिलन में मातलि का बहुत बड़ा योगदान है।

मातृपूजनम्– (ना.कृ.) विश्वेश्वर विद्याभूषण लिखित नाटक।

मात्रराज– (ना.का.) दे. अनङ्गहर्ष।

माथुर– (ना.पा.) मृच्छकटिक के द्यूतकार। वह अत्यन्त कठोर स्वभाव वाला जुआरी है। दया का उसमें लेश भी नहीं। वह अपने पैसे वसूल करने के लिये संवाहक पर किसी प्रकार का अत्याचार करने को तैयार है और तब तक नहीं छोड़ता जब तक उस का पैसा वसूल नहीं हो जाता।

माधव– (ना.का.) सुभद्राहरण के लेखक। ये विजय नगर के दरवारी कवि माधव से भिन्न थे।

माधव– (ना.पा.) मालती माधव (दे.) का नायक। उसकी प्रेमिका का निर्णय और निर्देश उसके गुरुजनों ने ही कर दिया है। सम्बन्ध जोड़ने में उसे अपने मित्र मकरन्द की सहायता भी उपलब्ध है। साथ ही उसके पिता ने इस कार्य के लिये कामन्दकी भिक्षुणी को भी नियुक्त कर रक्खा है किन्तु राजा द्वारा विघ्न डालने के कारण उनका सम्मिलन इतना सरल नहीं है। माधव सच्चा प्रेमी है। जब मालती अपनी हृदय वेदना को अभिव्यक्त कर रही होती है माधव संयोग वश सुन लेता है कि ये वचनामृत मलिनजीवनकुसुम को खिलने वाले हैं, तृप्तिदायक है, समस्त इन्द्रियों को मोहित करने वाले हैं, आनन्द दायक हैं और हृदय के लिये रसायन हैं।

उसकी वियोग वेदना सीमातीत है, वाणी से सर्वथा परे है, उसकी वह अनुभूति न पूर्वजन्म में और न इस जन्म में सम्भव हुई है। विवेक नष्ट हो गया है जिससे गहन महामोह चारो ओर से घेरे हुये हैं, कोई अभूतपूर्व विकार अन्तःकरण को जड बना रहा है और सन्ताष भी प्रदान करता है। वह वियोग में मेघों से सन्देश भेजता है, प्रेमिका के चित्र बनाकर मनोरञ्जन करता है।

वह केवल प्रेमी ही नहीं है और न वियोग वेदना में केवल पीडित रहने की उसकी प्रवृत्ति है। वह उद्योगशील है और जब उसे मालूम पड़ने लगता है कि केवल कामन्दकी के सहारे मालती को प्राप्त करना सम्भव नहीं है तब वह पिशाचों का सहयोग लेने के

लिये महामांस विक्रय का धन्धा भी प्रारम्भ कर देता है। वह वीर है, अघोरघण्ट की तत्काल हत्या कर देता है। वह एक सच्चा मित्र भी है, मकरन्द को मदयन्तिका के प्राप्त करने में पूरी सहायता प्रदान करता है। उसका दृढ़ निश्चय और वीरता पूर्ण कार्य अन्त में राजा को भी झुका देता है और उसे मालती से विवाह करने की अनुमति दे देता है।

माधव भट्ट– (ना.क्रा.) ये मण्डलेश्वर भट्ट और इन्दुमती के पुत्र तथा हरिहर के भाई थे। विजय नगर के राजा विरुपाक्ष के दरवारी कवि थे उन्हीं महाराज के मन्त्री से इन्हे आश्रय प्राप्त हुआ था। इनका लिखा श्रीगदित 'सुभद्रा हरण' (दे.) प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त इनका ९ सर्गों का एक काव्य नरकासुर विजय और संङ्गीतचन्द्रिका नामक एक संगीत शास्त्रीय ग्रन्थ भी प्राप्त होता है। इनका समये १५वीं शताब्दी १६वीं शताब्दी माना जाता है।

माधव साधना– (ना.कृ.) नृत्यगोपाल कवि रत्न (दे.) लिखित नाटक। इनके नाम के अतिरिक्त केवल इतना ज्ञात है कि ये २०वीं शताब्दी के बंगाली कवि थे।

माधवसेन– (ना.पा.) मालविकाग्निमित्र में यह मालविका का भाई है। इसे इसका चचेरा भाई बन्दी बना लेता है और जैसे तैसे मालत्रिका निकलकर भाग जाती है।

माधवस्वातन्त्र्यम्– (ना.कृ.) यह गोपीनाथ दधीच का लिखा ७ अंकों का नाटक है जिसकी रचना १८८३ में हुई थी। इसमें उस समय की जयपुर राज घराने की मन्त्रियों की नियुक्ति के विषय में जोड़ तोड़ का चित्रण किया गया है। यह वह समय था जब ब्रिटिश भारत में १८५७ के विद्रोह के बाद कम्पनी का राज्य समाप्त हो चुका था और विक्टोरिया ने शासन अपने हाथ में ले लिया था। सन् १८८० में जयपुर के राजा रामसिहं का देहावसान हो गया और जयपुर की गद्दी पर सवाई माधौसिंह आसीन हुये। रामसिंह ने कान्तिचन्द्र को अमात्य नियुक्त कर दिया था जो पुराने अमात्य फतेहसिंह को पसन्द नहीं आया। अब कई ओर से संघर्ष प्रारम्भ हो गया। इस नाटक में महाराणी की अपनी नीति है, उसने सत्ता पर अधिकार प्राप्त करने के लिये अंग्रेज क्रासफोर्ड को बुला लिया है। कान्तिचन्द्र के विरोधियों में फतेहसिंह के अतिरिक्त रघुनाथ सिंह भी है, अनेक जाली आरोप लगाये जाते हैं। क्रासफोर्ड और माधवसिंह का सहारा लिया जाता है। किन्तु अन्त में कान्तिचन्द्र की विजय होती है। महाराणी विक्टोरिया के शासनादेश से माधवसिंह सर्वतन्त्र स्वतन्त्र घोषित कर दिये जाते हैं।

इस नाटक का प्रथम अभिनय जयपुर के रामलीला मैदान में राम प्रकाश नाट्यशाला में हुआ था। इसमे प्राकृत के स्थान पर हिन्दी और व्रजभाषा का प्रयोग किया गया है तथा अंकों का विभाजन दृश्यों में है। भाषा पात्रानुसारी है और अंग्रेजी शब्दों के लिये संस्कृत शब्द निर्मित कर लिये गये हैं।

माधवानल– (ना.कृ.) इसमें विक्रमादित्य का मित्र माधवानल दरवार की एक कुमारी

कामकन्दला से प्रश्नोत्तर करता है जिसमें विक्रमादित्य आनन्द लेते हैं। सुन्दरी कुमारी पराजित हो जाती है तब विक्रमादित्य विजेता माधवानल को वह कन्या पुरस्कार में देते हैं। इस विषय को लेकर लिखे गये इसी नाम के दो नाटक प्रकाश में आये हैं–

(१) **आनन्दधर लिखित नाटक**– कैटेलागस कैटेलागोरम सं. १.११८ पर इसका उल्लेख किया गया है।

(२) **कवीश्वर लिखित**– कैटेलागस कैटेलागोरम १.४५० और पेटर्सन द्वारा बम्बई में संस्कृत खोज रिपोर्ट १.११८ पर इस रचना का उल्लेख किया गया है।

माधवानल कामन्दकला– (ना.कृ.) इसमें माधवानल नाटक (दे.) के ही कथानक का उपादान किया गया है। इसके लेखक का पता नहीं चलता। कैटेलागस कैटेलागोरम III ९७ और पेटर्सन रिपोर्ट में इसका उल्लेख है।

माधवी वसन्त– (ना.कृ.) गणपति शास्त्री (दे.) लिखित नाटक।लेखक ने इस नाटक की रचना केवल १७ वर्ष की आयु में की थी। ट्रावन्कोर पुस्तकालय में सं. १८० पर यह कृति प्राप्त की जा सकती है।

मान विक्रम– (जमोरिन) (ना.टी.का.) १५वीं शताब्दी के प्रारम्भ में केरल के राजा थे। ये स्वयं विद्वान एवं कवि थे और इनका दरवार कवियों और कलाकारों को आश्रय देने के लिये प्रसिद्ध था। इनके दरवार में साढे १८ कवि प्रसिद्ध हैं जिनमें १८ पूर्ण कवि और एक आधा कवि जो संस्कृत और मलयालम दोनों में रचना करता था अतः आधा माना जाता है।

मान विक्रम– (ना.का.) दे. लक्ष्मी कल्याण (२)

मानवेद– (ना.का.) ये केरल के परम वैष्नव कवि थे और विष्णुमन्दिर में ही निवास करते थे। इनके धार्मिक गुरु विश्वमंगल थे। इन्होंने व्याकरण की शिक्षा कृष्ण पिशरोटी से पाई थी। इनकी लिखी दो पुस्तकें प्राप्त होती हैं– कृष्णगीति (नृत्यनाटक) और पूर्वभारत चम्पू। इनका उपनाम एलारपट्टीराज बतलाया जाता है। ये १७वीं शताब्दी में कालीकट के अधिकारी थे। इन्हें नारायण की रचनायें अत्यधिक प्रिय थीं और उन्होंने अपनी शैली को उनकी शैली से विल्कुल मिला दिया था। कहा जाता है इन्होंने चम्पू रामायण की टीका भी लिखी थी। रुद्रदास नामक कवि ने चन्द्रलेखा या मानवेदचरित नामक सट्टक लिख कर चन्द्रलेखा के साथ इनके विवाह का वर्णन किया है।

मामन भट्टवाण– (ना.का.) दे. वामन भट्टवाण।

माया– (ना.पा.) प्रबोधचन्द्रोदय (दे.) का एक पात्र। यह पुरुष (परम तत्व ब्रह्म) की पत्नी है जिससे मनस् नाम का पुत्र और उससे महामोह और विवेक नामक दो बुरे और अच्छे वंशों का जन्म होता है।

मायाकापालिक– (ना.कृ.) साहित्यदर्पण में संल्लापक उपरूपक का उदाहरण जो

अब अप्राप्य है।

मायाकुरङ्गिका– (ना.कृ.) यह एक नाट्य रचना है जिसका उल्लेख शिंगभूपाल के रसार्णव सुधाकर में किया गया है। कीथ के अनुसार यह एक ईहामृग है।

मायाजालम्– (ना.कृ.) लीलाराव दयाल लिखित रूपक। इसमें न तो एक्शन है न नाटकीकरण, केवल धूर्तों के चंगुल में पंसी चार कन्याओं मुग्धा, मध्या, मोहिनी और दया की करुण कथा इसमें अंकित है। माता की लिखी एक कहानी को लेखिका ने रुपक का रुप देने का असफल प्रयास किया है।

मायापुष्पक– (ना.कृ.) राम विषयक नाटक। अभिनवभारती में कक्ष्या विभाग के प्रकरण (अं. १३) में इसका उल्लेख किया गया है। इसी प्रकार साहित्यदर्पण, भोजराज के सरस्वती कण्ठाभरण, नाट्यदर्पण, भावप्रकाशन और दशरुपक में भी इसका उल्लेख किया गया है। न तो इसके लेखक का पता है और न यह अब तक साहित्य जगत् को प्राप्त हो सका है।

मायुराज– (ना.का.) दे. अनंगहर्ष मात्रराज।

मार– (ना.पा.) दिव्यावदान (बौद्धसाहित्य) में इनके नाम पर जो कवितायें दी हुई हैं वे किसी नाटक का अंग मालूम पड़ती हैं। इससे प्रतीत होता है कि ये किसी नाटक के पात्र थे। इनके साथी उपगुप्त (दे.) का इनके साथ ही उल्लेख किया जाता है।

मारि– (ना.पा.) मोहराज पराजय (दे.) का एक पात्र। कुमारपाल ने कृपा सुन्दरी की शर्त के अनुसार जिन व्यसनों का राज्य से निर्वासन किया था उनमें यह भी एक था।

मारीच– (ना.पा.) रामकथा का एक राक्षस पात्र जिसने हरिण वेष धारण कर सीता हरण में रावण को सहायता प्रदान की।

मारीच ऋषि– (ना.पा) अभिज्ञान शाकुन्तलम में महान ऋषि कश्यप जिनका पैत्रिक नाम मारीच है क्योंकि इनका जन्म मरीच से हुआ। सृष्टि को उत्पन्न करने वाले ब्रह्मा जी से केवल एक के व्यवधान से ही इनका जन्म हुआ– ब्राह्मा जी से मरीच और मरीच से कश्यप। देवकार्य समाप्त कर लौटते हुये मार्ग में दुष्यन्त इनके आश्रय में कुछ समय के लिये रुके जहां परित्यक्ता शकुन्तला पुत्र भरत के साथ रह रही थीं। वहां दुष्यन्त और शकुन्तला का पुनर्मिलन हुआ। कश्यप की महिमा अपार है। जहां वे तपस्या कर रहे हैं वहां सुख सुविधाओं के साथ वह सब ऐश्वर्य सामग्री विद्यमान है जो चिरकाल तपस्या करके प्राप्त की जा सकती है। सपत्नीक रहते हुये भी उनमें विषय वासनाओं का लेश मात्र भी शेष नहीं रह गया है। इस जीवन में भी उन्हें मोक्ष सुख का पूरा अनुभव प्राप्त हो रहा है। फिर भी लोक के हित चिन्तन एवं व्यवस्थापन से वे सर्वथा उदासीन नहीं हैं। व्यवस्था प्रदान करने में वे अनासक्त भाव से सर्वदा तत्पर रहते हैं। अकारण परित्यक्ता शकुन्तला को उनके यहां आश्रय प्राप्त होता है और अन्त में चिर विमुक्त दम्पत्ति का

उन्हीं के आश्रम में पुनर्मिलन होता है। साथ ही दम्पत्ति को आशीर्वाद भी प्राप्त हो जाता है।

मारीच वञ्चितक– (ना.कृ.) राम विषयक लुप्त नाटकों में एक। शारदातनय ने भाव प्रकाशन में इसका उल्लेख किया है।

मारुत– (ना.पा.) मल्लिकामारुत (दे.) ना नायक। यह मल्लिका का प्रेमी है और अनेक साहसिक प्रयत्नों और विघ्नों के बाद उसे प्राप्त करने में सफल हो जाता है।

मारुतिमैरावणम्– (ना.कृ.) नारायण शास्त्री (१) (दे.) लिखित ७ अंकों का नाटक।

मार्कण्डेय मिश्र– (ना.का.) ये उड़ीसा निवासी थे। इन्होंने विलासवती सट्टक (दे.) की रचना की थी। इनकी दूसरी रचनायें हैं– दो महाकाव्य– प्राकृतसर्वेश्वर और दशग्रीववध।

मार्कण्डेय विजयम्– (ना.कृ.) सुन्दरार्य (दे.) लिखित नाटक। इसकी रचना काञ्चीकामकोटि पीठाधिपति शङ्कराचार्य के आदेश पर हुई थी। संस्कृत साहित्य परिषद् के वार्षिक उत्सव में इसका अभिनय हुआ था। इसका प्रधान रस भक्ति है।

मालतिका– (ना.कृ.) एक वीथी। भोजराज ने इसका वीथी के उदाहरण के रूप में उल्लेख किया है। इसका कथानक इन्दुलेखा (दे.) से मिलता जुलता प्रतीत होता है। इन दोनों रचनाओं के विषय में राजा, विदूषक और नायिका के अतिरिक्त और कुछ भी ज्ञात नहीं है। यह एक हल्की फुल्की कमेडी (हर्ष एवं विनोद पूर्ण रचना) ज्ञात होती है। कुछ लोगों का विचार है कि मालतिका और इन्दुलेखा दोनों एक ही हैं, केवल एक कृति को दोनो नामों से जाना जाता है।

मालती– (ना.पा.) मालतीमाधव (दे.) नाटक की नायिका। प्रायः देखा जाता है कि कन्या भाव में उत्पन्न प्रेम में विघ्न माता पिता की ओर से आता है अथवा प्रेमपात्र की पूर्व विवाहिता पत्नी उस प्रेम में व्याघात उत्पन्न करती है। किन्तु मालती के मार्ग में ये दोनों अवरोध नहीं हैं। उसका अवरोध राजा की ओर से है जो वलात् अपने नर्म सचिव नन्दन के साथ उसका विवाह उसकी इच्छा के प्रतिकूल कराना चाहता है। किन्तु मालती को सहायक अच्छे मिले हैं। उसके प्रेम सम्बन्ध के जोड़ने में दोनों के पिता और पिता द्वारा नियुक्त सहायक कामन्दकी तथा मकरन्द सहायता करते हैं यहां तक की मकरन्द मालती का वेष धारण कर स्वयं नन्दन से विवाह कर मालती को नन्दन के चंगुल से बचा लेता है। मालती के प्रेम में विघ्न डालने वालों की ओर से ही विघ्न नहीं आते उसे दूसरी विपत्तियों का भी सामना करना पड़ता है। उसका दो वार अपहरण किया जाता है– पहले अघोरघण्ट और कपालकुण्डला मिलकर उसकी बलि चढ़ाना चाहते हैं। उस समय उसका प्रेमी माधव अघोरघण्ट को मारकर उसकी रक्षा करता है। दूसरी वार बदला लेने के लिये कपाल कुण्डला उसका अपहरण करती है जब कामन्दकी की शिष्या सौदामिनी

उसकी रक्षा करती है। अन्त में राजा उन प्रेमियों की दृढ़ता के सामने झुक जाता है और प्रेमियों को अपना अभीष्ट प्राप्त हो जाता है।

मालतीमाधव– (ना.कृ.) भवभूति (दे.) लिखित १० अंकों का प्रकरण। नियमानुसार प्रकरण की कथा कविकल्पित होनी चाहिए। किन्तु कीथ के अनुसार इसके कथानकसमत्ता के सूत्र खोजे जा सकते हैं, संयोजन मात्र कवि का अपना है। यह शृङ्गार प्रधान नाटक है जिसमें प्रेम तत्व की अभिव्यक्ति होती है।

भूरिवसु और देवरात इन दो मित्रों ने विद्यार्थी जीवन में एक समझौता कर रक्खा था कि यदि एक के पुत्र और दूसरे के पूत्री हुई तो दोनों को विवाह कर दिया जायेगा। संयोग वश भूरिवसु के कन्या मालती हुई और देवरात का पुत्र माधव हुआ। दोनों को अपने निर्णय का ज्ञान था। भूरिवसु पद्मावती के राजा का और देवरात विदर्भ के राजा का मन्त्री बना। भूरिवसु ने अपनी पूर्व परिचिता कामन्दकी को जो अब भिक्षुणी हो गई थी मालती का विवाह माधव से करा देने का उत्तर दायित्व सौंपा। उधर देवरात ने अपने वायदे के अनुसार माधव को पद्मावती भेज दिया जिससे उसका प्रेम सम्बन्ध और विवाह मालती से हो सके। किन्तु पद्मावती का राजा मलती का विवाह अपने मित्र नन्दन से कराना चाहता था। नन्दन की बहन मदयन्तिका मालती की सहेली है। माधव का मित्र मकरन्द भी उसके साथ आया है। कामन्दकी और मकरन्द के उद्योग और प्रबन्ध से मालती और माधव में परस्पर अनुराग बद्धमूल हो जाता है। दोनों प्रेमी शिव मन्दिर में मिलते हैं। वहां एक बाघ है जो मदयन्तिका पर आक्रमण कर देता है। मकरन्द उसकी रक्षा करता है और इस प्रकार मदयन्तिका तथा मकरन्द में भी प्रेम उत्पन्न हो जाता है। माधव स्वयं भी मालती को प्राप्त करने का उद्योग करता है और राजा के निर्णय का विरोध करने के लिये श्मशान वासी पिशाचों की सहायता प्राप्त करना चाहता है। वह महामांस विक्रय का व्यवसाय अपनाता है। इसी प्रसंग में उसे मन्दिर से रोने की आवाज सुनाई देती है, वह दौड़ पड़ता है और देखता है कि अघोरघण्ट अपनी शिष्या कपालकुण्डला के साथ चामुण्डा पर मालती की बलि चढ़ाना चाहता है। माधव अघोरघण्ट को मारकर मालती की रक्षा करता है। कपालकुण्डला बदला लेना चाहती है।

राजा के आदेश से मालती का विवाह नन्दन से तय हो जाता है। किन्तु मकरन्द मालती का वेष बनाकर अपना विवाह नन्दन से कर लेता है और मालती माधव के साथ भाग जाती है। जब नन्दन की बहन मदयन्तिका को पता चलता है कि उसकी भाभी का उसके भाई से व्यवहार ठीक नहीं है तब वह भाभी की भर्त्सना करने जाती है जहां उसे अपना प्रेमी मकरन्द मिल जाता है। वह उसके साथ भाग जाती है। किन्तु उनका पीछा किया जाता है। उस समय उसकी सहायता माधव करता है। मकरन्द के शत्रु पराजित होते हैं। और राजा उनकी वीरता के पुरस्कार के रूप में उन्हे क्षमा कर देता है। इस प्रकार मकरन्द और मदयन्तिका का प्रणय बन्धन हो जाता है।

माधव के उस ओर व्यस्त होने से अवसर पाकर कपालकुण्डला मालती को उड़ा ले जाती है और उसका बलिदान करना चाहती है किन्तु ठीक समय पर कामन्दकी की शिष्या सौदामिनी पहुंचकर उनकी रक्षा कर लेती है। अन्त में राजा अपनी स्वीकृति दे देता है। मालती और माधव का विवाह ठीक समय हर्षोल्लास के साथ सम्पन्न हो जाता है।

भवभूति की प्रकृति भयानक तथा करुण दृश्यों के विधान की ओर है और इस प्रकरण में भी उनकी इस गम्भीर प्रकृति के दर्शन होते हैं। किन्तु प्रस्तुत रचना में प्रेम प्रसंगों को आबद्ध करने में भी लेखक को पर्याप्त सफलता मिली है। इस नाटक में कामन्दकी के शानदार व्यक्तित्व के चित्रण में कवि पूर्ण रूप से सफल हुआ है। वस्तुतः नाटक की वही नायिका है और उसी के उद्योग से प्रेमी संयुक्त होते हैं तथा उनका विवाह बन्धन सम्भव होता है। इस नाटक में कवि ने गहराई से शृङ्गाररस और प्रेम सम्बन्ध का चित्रण किया है। इस दिशा में यह नाटक सभी अन्य नाटकों से बढ़कर है। कहीं कहीं तो ऐसा ज्ञात होने लगता है कि मानो कवि वात्स्यायन के कामसूत्र का उदाहरण पेश करना चाहता है। इस नाटक के कतिपय संक्षेप प्रस्तुत किये गये हैं।

इस नाटक का एक पद्य बद्ध संक्षेप ऋजुलध्वी नाम से मैथिल शर्मा द्वारा लिखा गया जिसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम सं. १.४५३ पर किया गया है। इस पर कई टीकायें भी लिखी गईहैं जिनमें प्रमुख हैं– धर्मानन्द की टीका (जिसका उल्लेख पेटर्सन की रिपोर्ट में किया गया है), जगद्धर की टीका (जिसका प्रकाशन बाम्बे संस्कृत सीरीज से हुआ है), त्रिपुरारी की टीका (मद्रास से प्रकाशित), नान्यदेव की टीका (मद्रास की त्रैवार्षिक रिपोर्ट में II २२२० पर उल्लिखित), विद्यासागर की टीका (कलकत्ता से प्रकाशित), पूर्ण सरस्वती की टीका (मद्रास की त्रैवार्षिक रिपोर्ट में III ४११८ पर प्रकाशित), और कुञ्ज बिहारी की टीका (कलकत्ता से प्रकाशित।)

मालविका– (ना.पा.) मालविकाग्निमित्र (दे.) की नायिका। नायक के अन्तःपुर में नायिका के रहने और प्रेम सम्बन्ध जोड़ने के कई कथानक संस्कृत नाटकों में अपनाये गये हैं। उनमें मालविकाग्निमित्र सर्वाधिक संघर्ष शील हैं। पहले तो भाई को बन्दी बना लिये जाने के बाद मालविका को घर से भागना पड़ता है और जैसे तैसे उसे अग्निमित्र के राज घराने मे स्थान मिल जाता है। संयोग से कौशिकी और विदूषक जैसे सहयोगी भी उसे मिल जाते हैं जिससे वह दो दो रानियों धारिणी और इरावती के प्रतिरोध का सामना करने में समर्थ हो जाती है। उसमें कलात्मक निपुणता की भी कमी नहीं है, जब वह प्रतियोगिता में उतरती है तब सरलता से प्रथम स्थान प्राप्त कर लेती है। यह उसकी साधना में संल्लग्नता का परिचय देने के लिये पर्याप्त है। वह वावदूक भी है। एकान्त के क्षणों में वह राजा पर कटाक्ष भी करती है। उसे बन्दी जीवन भी बिताना पड़ता है। अन्त में उसे रानियों का प्रतिरोध दूर करने में सफलता मिल जाती है।

मालविकाग्निमित्र– (ना.कृ.) महाकवि कालिदास की सम्भवतः पहली रचना। इसमें महान नाटककारों के होते हुये भी नया नाटक प्रस्तुत करने की धृष्टता के लिये क्षमा प्रार्थना की गई है। कतिपय विचारकों ने इसके कालिदास कृत होने में सन्देह व्यक्त किया है। इसमें विनोद परिहास और शालीनता का पुट पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है। रचना में गम्भीरता और गुरुता की कमी नहीं जो कालिदास की अपनी विशेषता है। यह नाटक ५ अंकों में विभाजित है।

विदर्भ की राजकुमारी मालविका के लिये भविष्यवाणी की गई है कि उसका विवाह विदिशा के राजा अग्निमित्र के साथ होगा। उसका चचेरा भाई यज्ञसेन उसके भाई माधवसेन को बन्दी बना लेता है। मालविका जैसे तैसे भाग निकलती है और वनचरों से बचती बचाती विदिशा पहुंच जाती है जहां पटरानी धारिणी के सेवाकार्य में नियुक्त हो जाती है। धारिणी के ही संरक्षण में रहते हुये नृत्यगीत कलाओं की शिक्षा लेती है। राजा उसके चित्र को देखकर उस पर मुग्ध हो जाते हैं। किन्तु धारिणी निरन्तर नियन्त्रण रखती है। अतः राजा मालविका को देख नहीं पाते। विदूषक गौतम उसके लिये योजना बनाता है और दो नृत्य शिक्षकों में होड़ उत्पन्न कर देता है। निर्णय राजा को करना है। राजा यह कार्य कौशिकी को सौंप देते हैं जो वस्तुतः मालविका की संरक्षिका बनकर विदर्भ से आई है। गणदास अपनी ओर से प्रतियोगिता में मालविका को प्रस्तुत करता है जो विजयिनी होती है। इस अवसर पर राजा मालविका के रूप सौन्दर्य का आनन्द लेते हैं और उस पर अनुरक्त हो जाते हैं।

राजा छिपकर मालविका और उसकी सहेली का वार्तालाप सुनते हैं और अनुभव करते हैं कि मालविका भी हृदय से उसे चाहती है। राजा बाहर आ जाते हैं और उसका आलिंगन कर लेते हैं। इसी समय छोटी रानी इरावती जो गुप्तरूप से सारी घटनायें देख रही थी बाहर निकलकर उनका अपमान करती है। धारिणी मालविका को बन्दी बना लेती है। तब उसको छुड़ाने के लिये विदूषक सर्पदंश का बहाना बनाता है और दवा के लिये धारिणी से अंगूठी प्राप्त कर लेता है तथा उसी मोहर से मालविका को छुड़ा लेता है। इसी अवसर पर विदर्भ पर विजय का समाचार मिलता है तथा साथ ही समाचार आता है पिता पुष्यमित्र को उत्तर पर विजय प्राप्त हो गई है। विजय के उपलक्ष्य में एक उत्सव मनाया जाता है जिसमें दो नर्तकियां भाग लेने विदर्भ से आती हैं और मालविका को पहिंचान लेती हैं। कौशिकी भी इस तथ्य को स्वीकार करती है। धारिणी अग्निमित्र का मालविका से विवाह कर देती है। सब कुछ आनन्द में समाप्त हो जाता है।

इस नाटक से प्राचीन भारतीय राजघरानों की चहल पहल पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। राजा के दाक्षिण्य और रानियों की ईर्ष्या के कारण अनेक जटिलतायें उत्पन्न होती हैं। मालविका को राजकुमारी के रूप में पहिचान लेने पर ही रानियों की ईर्ष्या समाप्त होती है क्योंकि तब वे उसे रानी बनने योग्य मान लेती हैं।

पांच अंकों का यह नाटक प्रसाद गुण पूर्ण सरस शैली में लिखा गया है। इसमें कला के महत्व पर प्रकाश पड़ता है और कला के प्रायोगिक पक्ष को भी दिखलाया गया है। निस्सन्देह कालिदास की वैदर्भी शैली के सर्वथा अनुकूल इसकी रचना हुई है। इस पहली रचना ने ही इसके कर्ता को यश के शिखर पर पहुंचा दिया होगा और हो सकता हे इसकी रचना ने ही इसके कर्ता को विक्रम के दरवार में पहुंचा दिया हो।

सानुवाद और व्याख्या सहित इसका प्रकाशन ए.एस. कृष्णाराव ने मद्रास से और अप्पाशास्त्री ने व्याख्या सहित कोल्हापुर से करा दिया था। इस पर कई टीकायें भी लिखी गईं जिनमें कतिपय टीकाओं का उल्लेख इस प्रकार किया जा सकता है- कात्यवेम की टीका (बम्बई और पूना से प्रकाशित), नीलकण्ठ की टीका (व्योमकेश पुरम् निवासी बालकृष्ण के पुत्र नीलकण्ठ द्वारा १७१२ संवत् में रचित एवं बम्बई से प्रकाशित), वीरराघव की टीका (कैटेलागस कैटेलागोरम् II १०४ और २१७), मृत्युञ्जय निशाङ्क की टीका (मद्रास से प्रकाशित), तर्क वाचस्पति की टीका (कलकत्ता से प्रकाशित), परीक्षित कुञ्जुन्निराज की टीका।

माला भविष्यम्- (ना.कृ.) स्कन्दशंकर खोत लिखित लघु नाटक। इसमें बम्बई के जीवन का चित्रण किया गया है जो परिहास पूर्ण है। इसका प्रकाशन नागपुर से हुआ है।

माल्यवन्त- (ना.पा.) यह रामायण का प्रसिद्ध पात्र है। यह रावण का मन्त्री है, किन्तु रामायण में इसके चरित्र का विकास नहीं हुआ है। कतिपय नाटक कारों ने कल्पना के आधार पर इसके चरित्र पर विशेष प्रकाश डाला है जिनमें अधिकतर उसकी मन्त्रित्व की योग्यता और कर्तव्यपरायणता व्यक्त होती है। कतिपय उदाहरण-

(१) **महावीरचरित-** में यह रावण का सच्चा हितैषी है। इसे ज्ञात है कि रावण सीता को चहता है। अतः रावण की सीता विषयक कामना को जैसे भी हो पूरा करने का प्रयत्न करता है। यह राजनीति में कुशल है और दांव पेंच से राम के पक्ष को पराजित करना चाहता है। जब इसे ज्ञात हो जाता है कि सीता का विवाह राम से तय हो चुका है तब परशुराम को उत्तेजित कर और जनकपुर भेजकर राम के विवाह में विघ्न डालने का प्रयास करता है किन्तु इस उद्योग में उसे सफलता नहीं मिलती। तब वह दूसरी चाल चलता है। शूर्पणखा को कैकेयी की दासी मन्थरा का रूप देकर और एक जाली पत्र बनाकर उसे राम के पास भेज देता है जिसमें लिखा है कि कैकेयी को दशरथ ने दो वरदान दिये हैं जिनमें एक के द्वारा भरत को राज्य और दूसरे के द्वारा राम को १४ वर्ष के वनवास की आज्ञा हुई है। राम इसे पिता की आज्ञा मानकर राज्य संभार छोड़कर वन को चले जाते हैं। उनके साथ सीता और लक्ष्मण भी जाते हैं।

सीता हरण के बाद युद्ध लगभग तय हो जाता है तब विभीषण ऋष्यमूक पर्वत पर सुग्रीव से मिलने जाने वाला है। माल्यवान वालि से कहकर उसके ऋष्यमूक पर्वत

पर जाने पर प्रतिबन्ध लगा देता है। वह कर्तव्य परायण मन्त्री है। अपने उत्तरदायित्व का पालन करने की सर्वत्र चेष्टा करता है। यह भाग्य की बात है कि उसे अपने उद्योग में सफलता नहीं मिलती। किन्तु शत्रु को वह अपनी योजना से परेशान करता है इसमें सन्देह नहीं।

(२) **बाल रामायण**- में माल्यवान की कूटनीति के हमें यत्किंचित् दर्शन होते हैं। राम ने सेतु बांध कर समुद्रपार करने की समस्या सुलझा ली है किन्तु माल्यवान की कूटनीति से समुद्र के किनारे सीता का कटा हुआ सर दिखलाई देता है, वह वस्तुतः एक बोलने वाली पुतली का सर है जो बोलने लगती है। इससे रहस्य खुल जाता है और माल्यवान का योजनाकृत कार्य नहीं हो पाता।

(३) **अनर्घराघव**- में महावीर चरित के आदर्श पर माल्यवान द्वारा शूर्पणखा के माध्यम से राम के वनवास की योजना बनाई जाती है और उसमें उसे सफलता भी मिलती है। उसकी योजना का महत्वपूर्ण भाग यह है कि वन में अकेले में घेर कर राम और सीता को अलग करने में आसानी होगी। इस योजना में भी उसे सफलता मिलती है। वह गुप्तचरों के माध्यम से राम की गतिविधियों का पूरा पता लगाये रहता है तथा अन्त तक रावण के युद्ध में उसका साथ देता है।

(४) **प्रसन्नराघन**- में माल्यवान् गुप्तचरों के माध्यम से राम सीता की गतिविधि की सूचना रावण को देता रहता है। राम के सेतुबन्ध का चित्र भी वह रावण के पास भेजता है जिसे रावण अविश्वास के साथ ठुकरा देता है।

मित्रानन्द- (ना.पा.) कौमुदीमित्रानन्द (दे.) का चरित्र नायक। उसने वरुण को प्रसन्न कर उससे मोहन मन्त्र प्राप्त किया है और उससे अनेक महत्वपूर्ण कार्य किये तथा अनेक स्थानों पर सफलता प्राप्त की। उसने अपने मन्त्र का प्रयोग सर्वदा अच्छे कार्यों के लिये ही किया। उसका सर्वाधिक महत्व पूर्ण कार्य है एक धूर्त के चंगुल से युवती कौमुदी को मुक्त कराना। इस प्रकार प्राप्त सिद्धि का लोकोपकार में ही प्रयोग उसके चरित्र की उज्ज्वलता का एक महत्वपूर्ण पक्ष है।

मित्रावसु- (ना.पा.) नागानन्द (दे.) में जीमूतवाहन का अभिन्न मित्र। वह अपनी बहन मलयवती का विवाह जीमूतवाहन से करवाता है। वह वीर है और सिद्ध गणों का नायक है। वह अन्त तक जीमूतवाहन का साथ देता रहता है।

मिथ्याग्रहणम्- (ना.कृ.) लीलाराव दयाल लिखित दो दृश्यों में विभाजित एकाङ्की जिसमें मुहम्मद की पत्नी अमीना मुहम्मद के बहुपलीत्व से दुःखी दिखलाई गई है।

मिथ्याचार- (ना.कृ.) वैद्यनाथ लिखित एक प्रहसन कैटेलागस कैटेलागोरम I ४५५ में इसका उल्लेख किया गया है।

मिथ्याज्ञान खण्डनम्- (ना.कृ.) यह रविदास (दे.) का लिखा प्रतीक नाटक है।

इसका प्रकाशन कलकत्ता से हो चुका है। इस नाम के एक अन्य नाटक का भी उल्लेख पाया जाता है। जो इससे भिन्न है। किन्तु उसके विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है।

मिथ्याज्ञान प्रहसन– (ना.कृ.) यह एक प्रहसन है जिसकी रचना वैद्यनाथ (दे.) ने की थी। इसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम में I १०३ पर किया गया है।

मिथ्याज्ञान विडम्बन– (ना.कृ.) रविदास लिखित एकाङ्की नाटक। यह एक सामान्य रूपक है। जिसमें नाटक के सामान्य नियमों का पालन किया गया है। यह एक प्रतीक नाटक ज्ञात होता है।

मिथ्या दृष्टि– (ना.पा.) प्रबोधचन्द्रोदय (दे.) में महामोह की परिचारिका।

मिवारप्रताप– (ना.कृ.) हरिदास सिद्धान्त वागीश लिखित ६ अंकों का रूपक। कतिपय अंक दृश्यों में विभाजित किये गये हैं। इसमें महाराणा प्रताप के जीवन का चित्रण किया गया है। नृत्य गीत का प्रचुर प्रयोग इसकी विशेषता है। लोकोक्तियों और अन्योक्तियों का भी प्रयोग इस नाटक में प्रचुर रूप में पाया जाता है। यह नाटक देश भक्ति की भावना से ओत प्रोत है। इसका प्रथम अभिनय कलकत्ता से स्टार रंगमञ्च पर प्राच्यवाणी प्रतिष्ठान की ओर से किया गया। इसका प्रकाशन कलकत्ता से १९४६ में किया गया।

मीनाक्षी परिणय– (ना.कृ.) यह नाटक अण्णाशास्त्री का लिखा हुआ है। मैसूर की प्राइवेट लायब्रेरी में संस्कृत पाण्डुलिपियों के कैटेलाग में सं. २७९ पर इसका उल्लेख है।

मीमांसा– (ना.पा.) प्रबोध चन्द्रोदय का एक पात्र। श्रद्धा की पुत्री शान्ति जिनसे परेशान है उनमें मीमांसा भी एक है। दूसरे परेशान करने वाले पात्र हैं यज्ञविद्या, तर्कशास्त्र, सांख्यदर्शन आदि। ये शान्ति को अपने आधीन रखना चाहते हैं किन्तु शान्ति उनके पास रहती नहीं।

मीराचरितम्– (ना.कृ.) मीरा के जीवन पर आधारित १३ दृश्यों में विभाजित लीलाराव दयाल (दे.) लिखित रुपक। कतिपय संवादों और रंग निर्देशों को छोड़कर यह पद्यमयी रचना है। क्षमाराव कृत मीरा लहरी नामक काव्य के आधार पर इसकी रचना की गई है।

मुकुटाभिषेकम्– (ना.कृ.) जार्ज पञ्चम के राज्यारोहण की घटना को लेकर नारायण दीक्षित द्वारा लिखा गया ५ अंकों का रुपक। इसका प्रकाशन १९१२ में मद्रास से हो गया था।

मुकुन्दमनोरथ– (ना.कृ.) यह नारायण (२) की कृति है। इसमें कृष्ण की गोपियों के साथ प्रेमलीला और उनके खेलों का वर्णन किया गया है। इसका प्रकाशन संस्कृत कामधेनु मे हुआ है।

मुकुन्द लीलामृतम्– (ना.कृ.) विश्वेश्वर दयाल चिकित्सक लिखित ७ अंकों का कृष्णलीला परक नाटक। इसमें कृष्ण की बाललीलाओं का चित्रण है। इसमें कृष्ण को गान्धी रूप और कंस को ब्रिटिश सरकार परक चित्रित कर आधुनिकता की अभिव्यक्ति की गई है। १९४५ में इसका इटावा से प्रकाशन हुआ था। इसका प्रथम अभिनय श्रीकृष्ण जन्माष्टमी के अवसर पर किया गया था।

मुकुन्दानन्द– (ना.कृ.) यह एक भाण है जिसका प्रकाशन मद्रास और बम्बई से हुआ है। इसका अभिनय नूतनपुरम् के निकट भद्रागिरि (भद्राचलम्) के उत्सव के अवसर पर किया गया था। यह कौण्डिन्य गोत्रीय रमापति के पुत्र काशीनाथ का लिखा हुआ है। इसका नायक भुजंगशेखर है जो साहस कार्य का इस रूप में वर्णन करता है और ऐसे शब्दों का प्रयोग करता है कि उससे कृष्ण और गोपियों की लीला की ओर भी संकेत हो जाता है। द्व्यर्थक शब्द प्रयोग में लेखक ने संस्कृत शब्दावली के ज्ञानप्रदर्शन में रस लिया है। इसका रचनाकाल १३वीं शताब्दी या उसके बाद का है।

मुक्तकेशी– (ना.कृ.) नारायण शास्त्री (१) लिखित एकाङ्की नाटक।

मुक्तधारा– (ना.कृ.) यह २०वीं शताब्दी की बंगीय रचना बतलाई जाती है। इसके विषय में नाम के अतिरिक्त और कुछ ज्ञात नहीं है।

मुक्तमन्दारम्– (ना.कृ.) नारायण शास्त्री (१) (दे.) लिखित १० अंकों का नाटक।

मुक्तमरन्दम्– (ना.कृ.) नारायण शास्त्री (१) (दे.) लिखित ५ अंकों का नाटक।

मुक्ताचरित– (ना.कृ.) शेषकृष्ण या कृष्णकवि का लिखा नाटक अल्वर स्टेट के पाण्डुलिपि पुस्तकालय (सं. १०१७) में प्राप्य। इसकी रचना सम्भवतः १६वीं शताब्दी में की गई। इसकी प्रस्तावना में उड़ीसा के मुकुन्ददेव का उल्लेख किया गया है। इसका पता पेटर्सन की खोज रिपोर्ट में सं. IV एवं XXI पर दिया गया है।

मुक्ताप्रवालम्– (ना.कृ.) नारायण शास्त्री (१) (दे.) लिखित ७ अंकों का नाटक।

(१) **मुक्तावली–** (ना.कृ.) नारायण शास्त्री (१) (दे.) लिखित ४ अंकों की नाटिका।

(२) **मुक्तावली–** (ना.कृ.) भद्राद्रिराम शास्त्री (दे.) लिखित नाटक। इसकी रचना १९वीं शताब्दी में की गई थी।

(३) **मुक्तावली–** (ना.कृ.) यह रामनाथ (दे.) का लिखा २०वीं शताब्दी का नाटक है। यह अभी प्रकाशित नहीं हुआ है। इसकी प्रति सिटीप्रेस कोकनद में इनके पुत्र गंगाधर के पास सुरक्षित है।

मुक्ति परिणय– (ना.कृ.) यह एक प्रतीक नाटक है जिसकी रचना सुन्दर देव (दे.) ने की थी। यह तंजौर की पैलेस लायब्रेरी के मैन्युस्क्रिप्ट कैटेलाग में VIII ३४५६ पर संकलित किया गया है।

मुक्तिशारदम्– (ना.कृ.) यतीन्द्र विमल चौधरी लिखित १२ अंकों का नाटक।

इसमें राम कृष्ण परम हंस की मृत्यु के बाद उनकी पत्नी शारदा मणि की साधना को नाट्य विषय बनाया गया है।

मुग्धबोधनम्– (ना.कृ.) नारायण शास्त्री (१) (दे.) लिखित, ९ अंकों का नाटक।

मुग्धमन्थरम्– (ना.कृ.) नारायण शास्त्री (१) (दे.) लिखित ६ अंकों का नाटक।

मुडुम्बई वेङ्कटराम नरसिंह आचार्य– (ना.का.) ये रामानुज सम्प्रदाय के मुडम्बई आचार्य के गोत्र में उत्पन्न हुये थे। इनके पिता का नाम वीरराधव और माता का नाम रङ्गाम्बा था। इनका समय १८४२ से १९२८ ई. तक माना जाता है। इन्होंने ११४ पुस्तकें लिखीं थी जिनमें गद्य, पद्य, चम्पू नाटक सभी कुछ था। इनके चार नाटकों का उल्लेख मिलता है– गजेन्द्रव्यायोग, राजहंसीय नाटक, वासवीपाराशरीय प्रकरण और चित्सूर्यालोक। अन्तिमरचना प्रतीक नाटक है। इनको वेङ्कटराम इस छोटे नाम से भी याद किया जाता है।

मुण्डित– (ना.कृ.) अज्ञात नामा कवि लिखित प्रहसन इसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम् १८ पर किया गया है।

मुदितकुमुदचन्द्र– (ना.कृ.) दे. मुद्रित कुमुदचन्द्र।

मुदित मदालसा– (ना.कृ.) दे. मदालसा।

मुदितमाधवम्– (ना.कृ.) शतं जीव मिश्र (दे.) का लिखा गीतिनाट्य।

मुदितराघव– (ना.कृ.) यह सलकृष्ण लिखित रामकथा विषयक एक नाटक है। इसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम खण्ड २ सं. १०६ पर किया गया है। कुछ लोग यह रचना राम कृष्ण की बतलाते हैं।

मुद्दुवेङ्कटार्य– (ना.कृ.) साहिती समुल्लास (दे.) के लेखक मैसूर पुस्तकालय के पाण्डुलिपि अनुभाग सं. २६६ पर इनका उल्लेख किया गया है।

मुद्रदुराम– (ना.का.) इनका लिखा रसिकतिलक भाण प्रकाश में आया है। रचनाकाल १८वीं शताब्दी।

मुद्राराक्षस– (ना.कृ.) विशाखदत्त (दे.) लिखित ७ अंकों का नाटक। संस्कृत साहित्य के प्रथम कोटि के नाटकों में इसका अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। नाटक रचना के लिये प्रेम, शृङ्गार, पौराणिक आख्यान इत्यादि जिन विषयों का प्रायः उपादान होता है उससे हटकर कवि ने छलकपटपूर्ण कूटनीति को नाटक का विषय बनाया है जो एक ऐसा विषय है कि उस पर बड़े से बड़ा कलाकार भी सफल कलाकृति प्रस्तुत करने का सामान्यतः साहस नहीं कर सकता। इस नाटक में कवि को जैसी सफलता मिली है उस पर आश्चर्य होता है। चाणक्य ने नन्द वंश के नाश की प्रतिज्ञा पूरी कर ली और कुलूत, मलय, काश्मीर, सिन्धु और पारसीक के पर्वतक इत्यादि राजाओं को आधा राज्य देने का वादा कर उनकी सैनिक सहायता से चन्द्रगुप्त को पाटलीपुत्र की गद्दी पर बैठा दिया। महानन्द

का परम भक्त महामन्त्री राक्षस बच कर निकल गया और स्वामी का बदला लेने के लिये प्रयत्न करता रहा। उसने पर्वतक इत्यादि को पूरा राज्य देने का वाद कर गुप्त समझौता कर लिया।

अब चाणक्य के सामने दो समस्याये हैं- राज्य की सुरक्षा के निमित्त राक्षस को मुख्यमन्त्री पद स्वीकार करने के लिये वाध्य करना और पर्वतक इत्यादि से पीछा छुड़ाना। राक्षस ने चन्द्रगुप्त को मारने के लिये जीवसिद्धि के साथ विषकन्या भेजी। जीवसिद्धि चाणक्य का भी गुप्तचर है। अतः सारा रहस्य चाणक्य को मालूम पड़ जाता है और वह विषकन्या को पर्वतक के पास भेजकर उसे मार डालता है। यह प्रसिद्धि हो जाती है कि राक्षस ने विषकन्या के प्रयोग से राक्षस को मार डाला है। अतः पर्वतक का पुत्र मलयकेतु राज्य के अन्य दावेदारों के साथ भाग निकलता है और राक्षस से मिलकर राज्य प्राप्त करने के लिये युद्ध की तैयारी में जुट जाता है। सारा काम इतनी निपुणता से किया गया है कि आम तौर पर लोगों को यही ज्ञात होता रहता है कि पर्वतक चाणक्य का आदमी है, अतः राक्षस ने पर्वतक को मारने का घृणित कार्य किया है जबकि मलयकेतु जो कि पर्वतक का पुत्र है पर्वतक और राक्षस के गुप्त समझौते को जनता है। अतः उस पर यह प्रभाव जमाना आसान है कि चाणक्य ने विषकन्या के प्रयोग से पर्वतक का वध कर दिया है। उसे समझा दिया जाता है कि वह भी चाणक्य के लक्ष्य में है अतः वह भागने में ही अपनी कुशल समझता है। इस प्रकार राज्य के एक और दावेदार से चाणक्य को छुटकारा मिल जाता है। साथ ही विरोधियों मे मलयकेतु के प्रमुख स्थान पर आ जाने से राक्षस का स्थान गौण हो जाता है और चाणक्य के लिये दो विरोधियों को लडाकर सफलता प्राप्त करने का रास्ता साफ हो जाता है।

चन्द्रगुप्त को मारने के लिये राक्षस जितनी भी योजनायें बनाता है चाणक्य की नीति से वे सब विपरीत पड़तीहैं और उनसे राक्षस के पक्षधर ही मारे जाते हैं। राक्षस का ध्यान केवल इस ओर लगा है कि किसी न किसी प्रकार चन्द्रगुप्त की हत्या कर दी जाय। इसी दिशा में वह प्रयत्नशील है, किन्तु चाणक्य की जागरुकता से उसके सभी प्रयत्न व्यर्थ ही नहीं होते अपितु चन्द्रगुप्त के राज्य के सभी कण्टकों का शोधन होता जाता है।

दूसरी ओर चाणक्य चन्द्रगुप्त के कण्टकों को शोधित करने के साथ राक्षस को फांसने के चक्कर में है। उसे गुप्तचर से पता चल जाता है कि राक्षस अपना परिवार चन्दनदास के यहां छोड़ गया है। अतः चन्दनदास को सपरिवार बन्दी बना लिया जाता है। इसी बीच राक्षस की मुद्रा (सील) भी चाणक्य के हाथ लग जाती है। चाणक्य एक जाली पत्र तैयार करता है और राक्षस के अन्तरंग लिपिक शकटदास से उसे लिखवा लेता है, साथ ही राक्षस के हस्ताक्षरों वाली मोहर भी उस पर लगा देता है। राजद्रोह के अभियोग में शकटदास को मृत्यु दण्ड देने की घोषणा की जाती है। किन्तु उसे वध्यस्थान तक ले

जाते समय चाणक्य के संकेत पर उसका गुप्तचर सिद्धार्थक शकटदास को ले भागता है। सिद्धार्थक के पास लिखाया हुआ जाली पत्र सील इत्यादि सभी उपयोगी सामग्री विद्यमान है। उसके पास जेवरों की एक पेटी भी है, उस पर भी राक्षस के नाम की सील लगी है। उस पेटी में पर्वतक के आभूषण हैं जो चाणक्य के शिष्यों को दान में मिले थे।

शकटदास के मृत्युदण्ड की सूचना से राक्षस अत्यन्त दुःखित है। उसी समय सिद्धार्थक शकटदास को लेकर राक्षस के पास पहुंच जाता है। राक्षस प्रसन्न होकर अपने शरीर का आभूषण उतार कर सिद्धार्थक को पुरस्कार में दे देता है। यह आभूषण उसे मलयकेतु से मिला था। सिद्धार्थक अंगूठी दे देता है जो राक्षस की पुरानी सील है। राक्षस अपनी सील प्राप्त कर प्रसन्न होता है और पुनः उसी को कार्यान्वित कर देता है। शकटदास पुनः राक्षस के लिपिक का काम करने लगता है और पुरानी सील भी काम में लाई जाने लगती है।

एक साधारण सी बात को लेकर योजनानुसार याणक्य और चन्द्रगुप्त में बनावटी कलह हो जाता है और चन्द्रगुप्त चाणक्य को मन्त्री पद से हटा देता है। अवसर पाकर विना आज्ञा पत्र लिये सिद्धार्थक सेना कैम्प से निकलने का प्रयत्न करता है और पकड़ा जाता है। उसके पास से चाणक्य द्वारा तैयार किया गया पत्र मिल जाता है जिससे सिद्ध हो जाता है कि राक्षस धीरे-धीरे चन्द्रगुप्त से मेल बढा रहा है और मलयकेतु को धोखा देना चाहता है। पत्र शकटदास का लिखा है और राक्षस की सील उस पर लगी है। सिद्धार्थक के पास राक्षस का दिया अभूषण भी है जिसे वह चन्द्रगुप्त के लिये राक्षस की भेंट बतलाता है। सिद्धार्थक अपने बयानों से इसकी पुष्टि कर देता है। फलतः मलयकेतु राक्षस को मन्त्रित्व पद से हटा देता है। उस पत्र में कुछ ऐसे वाक्य लिखे हैं जिनसे सिद्ध हो जाता है कि मलयकेतु के प्रतिकूल पश्चिम से आये हुये सभी राजा राक्षस के सहयोगी हैं, और उनका समझौता चन्द्रगुप्त से हो रहा है। अतः मलयकेतु अपने सभी सहयोगियों को मृत्यु के मुख में ढकेल देता है। एक ही झटके में चाणक्य के सभी विरोधी मृत्यु के घाट उतार दिये जाते हैं। मलयकेतु के सभी सहयोगी जो उसे घेरे हुये हैं चाणक्य के गुप्तचर हैं। वे अवसर पाकर मलयकेतु को बन्दी बना लेते हैं।

राक्षस दुःखी होकर कुसुमपुर आता है जहां उसके मित्र एवं परिवार के संरक्षक चन्दनदास को फांसी दी जाने वाली है। चाणक्य सामने आता है और प्रस्ताव रखता है कि वह या तो चन्द्रगुप्त का मन्त्रित्व स्वीकार कर ले और सबको छोड़ने की आज्ञा दे या उसके सामने उसके सभी मित्रों को मृत्यु दण्ड दिया जायेगा। राक्षस मन्त्री बन जाता है और चाणक्य की प्रतिज्ञा पूरी हो जाती है।

कार्यव्यापार की आद्योपान्त रोचकता, विशिष्टपदरचना शक्तिमत्ता, सुस्पष्टता, प्रसादगुणपूर्ण भाषा अलंकारों की स्वाभाविक नियोजना, चरित्रचित्रण की सत्यता और उदात्तता कवि को अतिशायी कलाकार का महत्व देने के लिये पर्याप्त है।

इस नाटक की एक बहुत बड़ी विशेषता है कि इसमें कार्यान्विति का ठीक रूप में निर्वाह किया गया है। समस्त कथानक एक सूत्र में बंधा है। जिसमें कालसंकलन, स्थलसंकलन और कार्य संकलन में कोई अन्तर नहीं पड़ता, साथ ही शास्त्रीय मान्यताओं का भी यथोचित सन्निवेश किया गया है। सारा कथानक एक इकाई के रूप में सामने आता है और परिशीलक की बुद्धि का कहीं व्यवच्छेद नहीं होता।

इस नाटक पर अनेक टीकायें और अनेक भाषान्तर प्रकाशित हुये हैं। इस नाटक पर लिखे गये साहित्य के अन्तर्गत कतिपय कृतियों का नामोल्लेख पर्याप्त होगा–

हिल ब्राण्ड (ब्रेस्ला) ने इसका प्रकाशन कराया। ष्टीन कोनो की इसकी समीक्षा प्रकाशित हुई (इण्डियन एण्टीकेरी XLIII ६४), लक्ष्मण के पुत्र ढुंढिराज की टीका बम्बई से प्रकाशित हुई जिसकी भूमिका में कथानक और समवर्ती विवरण दिये गये थे। विल्सन द्वारा अंग्रेजी अनुवाद (थियेटर II पृ १२५-२५४) काले द्वारा बम्बई से प्रकाशित अंग्रेजी अनुवाद। अन्य भाषाओं में भी इसके अनुवाद हुये हैं।

टीका ग्रन्थ– स्वामी शास्त्री की टीका (ओरियण्टल लायब्रेरी मद्रास का विवरणात्मक सूची पत्र XXI ८४६४), टी. तर्क वाचस्पति की टीका (कलकत्ता से प्रकाशित) महेश्वर, वटेश्वर, केशव उपाध्याय और अभिराम की टीकायें (कैटेलागस कैटेलागोरम I ४६१, II १०६ और २१८, III ९९) ग्रहेश्वर की टीका (मद्रास का विवरणात्मक सूची पत्र XXI ८४७२) विद्या सागर की टीका (कलकत्ता से प्रकाशित), शरभभूप की टीका (तंजौर पुस्तकालय VIII ३४७४), अनन्तपण्डित लिखित गद्य में कथानक (कैटे. १.४६१) रविकर्तन लिखित पद्यात्मक कथासार (कलकत्ता से प्रकाशित), मिथिला के गौरीपति मिश्र के पुत्र वटेश्वर मिश्र की टीका (कैटेलागस कैटेलागोरम में संकलित II १६०, २१८) एवं कई अन्य टीकायें, समीक्षाएं परिचय एवं परिचयात्मक विवरण।

मुद्रासुवेद– (ना.कृ.) यह एक प्रकरण है जिसका उल्लेख शृङ्गार प्रकाश में किया गया है। इसके विषय में और कुछ ज्ञात नहीं है।

मुद्रितकुमुदचन्द्र– (ना.कृ.) यशश्चन्द्र (दे.) का लिखा नाटक। इस नाटक में श्वेताम्बर जैन देवसूरि के साथ दिगम्बर कुमुदचन्द्र का शास्त्रार्थ होता है जिसमें दिगम्बर की पराजय होती है। दिगम्बर कुमुदचन्द्र के पराजित होने के कारण ही इस नाटक का नाम मुद्रित कुमुदचन्द्र पड़ा है। यह शास्त्रार्थ ११२४ में हुआ था। इसका प्रकाशन बनारस से हुआ। कृष्णमाचार्य ने इस कृति का नाम मुदितकुमुदचन्द्र लिखा है और इसका प्रकाशन भावनगर से बतलाया है। लेखक दोनों में एक ही यशश्चन्द्र ही बतालाये गये हैं। या तो यह छापे की भूल है या लेखक प्रमाद है अथवा दिगम्बर सम्प्रदाय वालों ने कुछ हेर फेर के साथ उसी कृति को भावनगर से प्रकाशित करा दिया जिसमें दिगम्बर सम्प्रदाय वालों को विजेता दिखलाया गया। यह रचना ११वीं १२वीं शताब्दी की है। अतः इस प्रकार का पाठ भेद सम्भव ही है।

मुनित्रय विजय– (ना.कृ.) यह रामानुजाचार्य (दे.) द्वी लिखित वीथी है। यह अभी तक प्रकाशित नहीं हुई है।

मुरला– (ना.पा.) उत्तररामचरित के मुरला नदी का मानवीकृत रूप। इसका तमसा के साथ संवाद होता है जिससे इस बात की सूचना दी जाती है कि यदि गंगा आश्रय न देती तो परित्यक्ता सीता आत्माहत्या कर लेती। उन्हीं से यह भी ज्ञात होता है कि गङ्गा ने सीता की रक्षा तो की ही दुरवस्था में उत्पन्न दो पुत्रों को शिक्षा के लिये वाल्मीकि आश्रम में भेज दिया। वहीं दोनों वालकों की शिक्षा चल रही है।

मुरारि– (ना.का.) अनर्घराघव (दे.) के प्रणेता। इनके समय के विषय में विद्वानों के में पर्याप्त मतभेद है। रत्नाकर के हरविजय (काव्य) के एक पद्य की द्व्यर्थकता के आधार पर इन्हें रत्नाकर का पूर्ववर्ती माना गया है। अतः इनका समय ९वीं शताब्दी का मध्य भाग ठहरता है। भट्टनाथ स्वामी ने इनका समय १०५० से ११३५ के मध्य माना है। दुर्गा प्रसाद इन्हें ९वीं शताब्दी के मध्य में वर्तमान मानते हैं। मंख और रुय्यक को इनका ज्ञान था। विंटरनित्ज ने इनका समय ९वीं शताब्दी का अन्त और १०वीं शताब्दी का प्रारम्भ मानना अधिक उचित ठहराया है। माहिष्मती के वर्णन के कारण कुछ लोगों ने इन्हें ८वीं शताब्दी के अन्त का कवि माना है।

इनके पिता का नाम वर्धमान भट्ट और माता का नाम तन्तुमती था। ये स्वयं को महाकवि एवं बाल वाल्मीकि बतलाते हैं। इनका अनर्घराघव नामक केवल एक नाटक उपलब्ध होता है।

पाश्चात्य विद्वानों ने इनका ठीक रूप से मूल्याङ्कन नहीं कर पाया है। और वे इनको सर्वथा महत्वहीन मानते हैं। परन्तु भारतीय विद्वानों की दृष्टि में इनका स्थान बहुत ऊंचा है। पाश्चात्य विद्वानों के मत में उच्चकलाकार होने के लिये विचारों की शुद्धता, भावनाओं की कोमलता और कल्पना की स्पष्टता इत्यादि जो गुण अपेक्षित होते हैं वे इनमें नहीं है। किन्तु भारतीय विद्वान इन गुणों की अतिशयता इनमें देखते हैं। यदि ये गुण इनमें न भी माने जायें तो भी पद रचना की दिशा में इनकी अद्वितीय शक्ति इन्हें बहुत ऊंचा उठाने में सर्वथा समर्थ है। व्याकरण के दुर्वोध प्रयोगों को इन्होंने पूरी कुशलता और सफलता के साथ प्रयुक्त किया है। सिद्धान्त कौमुदी में अप्रसिद्ध रूपों के उदाहरण के लिये आचार्य ने इन्हीं का आश्रय लिया है। पद प्रयोग की दिशा में इन्हें भवभूति से बढ कर पाया गया है। इन पर सूक्तियां भी लिखी गई हैं। कतिपय सूक्तियां इस प्रकार हैं–

'मुरारिपदचिन्ता चेत्तदा माघे रतिं कुरु।'

'मुरारि पद चिन्तायां भवभूतेस्तु का कथा।
भवभूतिं परित्यज्य मुरारिमुररीकुरु।'

'भवभूतिमनाद्दत्य निर्वाणमतिना मया
मुरारिपदचिन्तायामिदमाधीयते मनः॥'

मुरारि विजय- (ना.कृ.) इस नाम के निम्नलिखित तीन नाटक प्रकाश में आये हैं-

(१) **कृष्णकवि-** (उपनाम शेष कृष्ण) का लिखा नाटक कैटेलागस कैटेलागगोरम I ४६२ और II १०६ तथा संस्कृत पाण्डुलिपियों की पेटर्सन द्वारा की गई खोज रिपोर्ट (बाम्बे III २१) में इसका उल्लेख किया गया है।

(२) **जीवराम याजनिक-** ने ५ अंकों के नाटक में भागवत दशमस्कन्ध में आये कृष्ण चरित का चित्रण किया है। इसकी रचना सम्भवतः संवत् १५४१ (सन् १४८४) में हुई थी। संस्कृत कालेज कलकत्ता में सं. १४८ सन् १९०३ में इसे प्राप्त किया जा सकता है।

(३) **नृसिंह** के पुत्र विष्णुरुप कृष्ण भट्ट का नाटक। बम्बई पाण्डुलिपियों की पेटर्सन द्वारा की गई खोज रिपोर्ट सं. III २१,३४२ में इसका उल्लेख किया गया है।

मुरेश्वर- (ना.पा.) धूर्तनर्तक (दे.) एक शैव साधु है जो एक नर्तकी पर आसक्त है। उस नर्तकी पर मुरेश्वर की अनुपस्थिति में उसके शिष्य डोरे डालते हैं और राजा से मुरेश्वर की निन्दा करते हैं। किन्तु राजा की भी पापाचार की वैसी ही प्रवृत्ति है और मुरेश्वर को नर्तकी से स्वच्छन्द विहार की आज्ञा मिल जाती है।

मुष्टपाथेयम्- (ना.कृ.) नारायण शास्त्री (१) (दे.) लिखित ५ अंकों का नाटक।

मूढकौशिकम्- (ना.कृ.) नारायण शास्त्री (१) (दे.) लिखित ५ अंकों का नाटक।

मूलनाशक- (ना.पा.) धूर्तसमागम (दे.) प्रहसन में नाई जो अनंगसेना से अपना कर्ज वसूलने आता है और अनेक हास्यजनक चेष्टायें करता है।

मूलशंकर माणिकलाल याज्ञिक- (ना.का.) ३१ जनवरी सन् १८८६ के दिन नडियाड में गुजरात के बड़नगर में ब्राह्मण के ऐसे परिवार में इनका जन्म हुआ था जिसने गुजराती साहित्य को उच्चकोटि के विद्वान लेखक और शासन को उच्चकोटि के दीवान प्रदान किये। शिक्षा समाप्त कर ये कुछ दिनों बैंक की सेवा के बाद राजकीय संस्कृत महाविद्यालय बड़ौदा में प्रिंसिपल के पद पर आसीन हो गये। १९१६ में श्री गङ्गापीठ के शंकराचार्य अभिनव सच्चिदानन्द भारती ने इन्हें श्री विद्यासम्प्रदाय की दीक्षा दी। ऐतिहासिक अनुसन्धान की दिक्षा में इन्होंने सूर्य और चन्द्रवंशों की वंशावलियां तैयार की; विष्णु पुराण का गद्यात्मक सारांश लिखा। विजयलहरी की रचना की। इन्होंने ऐतिहासिक कथाओं पर आधारित तीन नाटकों की रचना की छत्रपतिसाम्राज्य, प्रतापविजय और संयोगिता स्वयंवर। इनके नाटकों में भाषा में स्वरमैत्री अभिव्यक्ति में चारुता दृश्यों का चयन ये सभी तत्व अत्यन्त प्रशंसनीय हैं। वाद्य यन्त्रों पर गाने योग्य गीतों का समावेश इनके

नाटकों को स्वाभाविकता प्रदान करता है।

मृकण्डुमोदम्- (ना.कृ.) नारायण शास्त्री (१) (दे.) लिखित ९ अंकों का नाटक।

मृगाङ्कलेखा- (ना.कृ.) त्रिमलदेव के पुत्र विश्वनाथ द्वारा लिखित चार अंकों की नाटिका। इसमें कामरूप की राजकुमारी मृगाङ्कलेखा और कलिंग के राजा कर्पूर के विवाह का चित्रण किया गया है। कर्पूर तिलक शिकार खेलने के प्रसंग में मृगाङ्क लेखा को देखता है। प्रथम दृष्टि में ही दोनों का प्रेम हो जाता है। किन्तु उनके सम्मिलन में शंखपाल दानव एक विघ्न है जिसकी अलौकिक शक्तियों का रहस्य केवल कलिंगराज के मन्त्री को ज्ञात है। वह एक दयालु जादूगर सिद्ध योगिनी को महल में बुलाता है और मृगाङ्कलेखा को रानी विलासवती की सखी के रूप में महल में रख देता है। सभी प्रबन्धों के होते हुये भी शंखपाल उसे भगाकर काली के मन्दिर में ले जाता है। खिन्न और उद्विग्न राजा घूमते हुये अपने उद्यान की सीमाओ के बाहर उस स्थान पर पहुंचता है, मृगाङ्कलेखा की रक्षा करता है और दानव को मार डालता है। तब राजा उस सुन्दरी के पिता और भाई को मिलता है और विवाह के लिये रानी की सहमति प्राप्त कर लेता है। संस्कार की समाप्ति के पूर्व ही शंखपाल का भाई बदला लेने आ जाता है जो मारा जाता है। वह एक बनैले हाथी के वेश में है। राजा मुकावला करता है और उसे मार डालता है। दोनों का विवाह सुविधा पूर्वक सम्पन्न हो जाता है।

यद्यपि इस नाटक की रचना बहुत कुछ रत्नावली के आदर्श पर हुई थी फिर भी इसमें अपना कथानक सौन्दर्य भी पर्याप्त मात्रा में विद्यमान है।

इस नाटक का प्रथम अभिनय १८वीं शताब्दी के अन्त में विश्वेश्वर के महोत्सव में हुआ था। इसकी प्रति संस्कृत कालेज कलकत्ता पाण्डुलिपि संग्रह (सं. १५२ सन् १९०३) में संकलित की गई है। इसका प्रकाशन सरस्वती भवन सीरीज बनरास से हो चुका है। विल्सन के थियेटर II ३९१ में इसका परिचय दिया गया है। इसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम १.४६५ में भी किया गया है।

मृगाङ्कलेखा- (ना.पा.) हास्यार्णव (दे.) में कुट्टिनी बन्धुरा की पुत्री। वह एक वेश्या है और सभी प्रकार के लोग उससे प्रेम करने आते हैं। सभी के कार्यों में हास्यसृष्टि होती है। विशेष बात यह है कि युवकों को बन्धुरा से सन्तोष करना पड़ता है जबकि बुड्ढों को युवती मृगाङ्कलेखा मिलती है।

मृगाङ्कावली- (ना.पा.) विद्धशालभञ्जिका की नायिका यह लाटेश्वर की पुत्री है और मृगाङ्कवर्मा के नाम से इसका पालन पोषण पुत्र रूप में किया गया है। इसके विषय में भविष्यवाणी की गई थी कि इसका पति चक्रवर्ती सम्राट् होगा। इसीलिये उज्जैन का मन्त्री उसे उज्जैन में ले आया और अनेक प्रयत्नों से राजा का उसके साथ प्रेम सम्बन्ध

स्थापित किया। रानी उसे अपना ममेरा भाई ही समझती रही। उसके अभूतपूर्व सौन्दर्य के कारण रानी को एक मजाक सूझी कि यदि इसे लड़की के कपड़े पहनाकर और राजा को इसकी ओर आकृष्ट करा कर शादी करा दी जाय तो बहुत मजा आयेगा। यह मजाक रानी के लिये भारी पड़ा और उसे एक सौत और मिल गई।

मृच्छकटिक– (ना.कृ.) शूद्रक (दे.) लिखित १० अंकों का प्रकरण। संस्कृत साहित्य की रसोन्मुख परम्परा से हटकर सामाजिक चित्रण करने वाली एकमात्र नाट्यकृति जिसमें रसात्मक परम्परा का भी यथोचित पालन किया गया है। संस्कृत के अधिकांश नाटक एक बंधी बंधाई लीक पर चलने के आदी हैं जिनमें बड़े लोगों और विशेष रूप से राजघरानों का चित्रण किया जाता है। इस नाटक में उक्त परम्परा से भिन्न सामान्य जन जीवन का उपादान है जिसमें चोर, जुआरी, गणिका, पुलिस, न्यायालय, धार्मिक व्यक्ति, राजा इत्यादि समाज के अनेक वर्गों का चित्रण किया गया है।

कवि ने भास (दे.) की वसन्तसेना और चारुदत्त की प्रणय कथा में तत्कालीन सामाजिक और राजनैतिक परिवेश जोड़कर एक महत्वपूर्ण प्रकरण की रचना कर दी है। इस नाटक के प्रथम चार अंक तो भास के चारुदत्त (दे.) का उल्था मात्र हैं, केवल दो एक नामों में परिवर्तन किया गया है जैसे चारुदत्त का सज्जलक शार्विलक हो गया है।

नाटक का प्रारम्भिक भाग चारुदत्त के कथानक को लेकर चलता है। प्रारम्भिक कथा भाग के लिये देखिये 'चारुदत्त (ना.कृ.)'। अग्रिम कथानक इस प्रकार है– वसन्तसेना चारुदत्त के घर पहुंचकर रात वहीं विताती है क्योंकि वर्षा के कारण वह लौट नहीं पाती। दूसरे दिन चारुदत्त का पुत्र दासी की दी हुई मिट्टी की गाड़ी से खेलना नहीं चाहता क्योंकि वह पड़ोसी लड़के की सोने की गाड़ी से खेल चुका है और सोने की गाड़ी की मांग कर रहा है। वसन्तसेना उसे गाड़ी बनवाने के लिये अपने जेवर उतार कर दे देती है। इसी आधार पर नाटक का नामकरण हुआ है।

चारुदत्त ने सैर के लिये एक गाड़ी, (प्रवहण) तैयार कराई है जिस पर वसन्तसेना को जाना है। दूसरी ओर संस्थानक की गाड़ी निकल रही होती है। वसन्तसेना धोखे से उसकी गाड़ी पर चढ़ जाती है। उधर शार्विलक का मित्र आर्यक जो राजा पालक के प्रतिकूल संघर्ष कर रहा है शार्विलक की सहायता से जेल छोड़कर भाग निकला है चारुदत्त की गाड़ी में बैठ जाता है। राजा के अधिकारी आर्यक की खोज करते हुये उस गाड़ी को पकड़ लेते हैं। उन्हें बतलाया जाता है कि गाड़ी में वसन्तसेना है। एक अधिकारी जांच के लिये गाड़ी के अन्दर जाता है किन्तु वहां वसन्तसेना के स्थान पर आर्यक को देखता है। वह आर्यक की रक्षा करने के लिये वसन्त सेना का होना प्रमाणित कर देता है और इस प्रकार आर्यक बच जाता है।

संस्थानक की गाड़ी वसन्तसेना को लेकर उद्यान में पहुंचती है। वहां शकार वसन्तसेना को अधिकार में लेना चाहता है। किन्तु वसन्तसेना के द्वारा उसके प्रणय को अस्वीकार

कर दिया जाता है, इससे रुष्ट होकर वह उसका गला दवा देता है तथा उसे मरी हुई समझकर वहां से चला जाता है। वसन्त सेना की जीवन रक्षा के लिये संवाहक आ जाता है जिसे कभी वसन्तसेना ने ऋण से मुक्ति दिलाई थी और जो अब बौद्ध भिक्षु के रूप में जीवन यापन कर रहा है।

स्त्रीहत्या का अभियोग न्यायालय में जाता है जहां संस्थानक चारुदत्त को वसन्तसेना का हत्यारा सिद्ध करता है। चारुदत्त के प्रतिकूल सभी प्रमाण मिल जाते हैं और उसे न्यायालय मृत्यु दण्ड देने का आदेश दे देता है। किन्तु मृत्युदण्ड दिये जाने के पहले ही वसन्तसेना आ जाती है और चारुदत्त को निरपराध सिद्ध कर उसे छुड़ा लेती है। इसी समय घोषणा की जाती है कि आर्यक का विद्रोह सफल हो गया है और पालक को गद्दी से उतार कर वह स्वयं राजा बन बैठा है। वह वसन्त सेना को वधूत्व प्रदान करता है तथा चारुदत्त के साथ उसका विवाह हो जाता है। चारुदत्त संस्थानक को भी माफ कर देता है, संवाहक विहारों का कुलपति बना दिया जाता है।

इस नाटक का यूरोप में विशेष सम्मान हुआ है। इसके सभी पात्र जीवनी शक्ति लिये हुये हैं। हास्य का प्रयोग व्यञ्जक भी है और वाक्चातुर्य पूर्ण भी। चित्रण की प्रधानता होते हुये भी रस निष्पत्ति की दिशा में कोई कमी नहीं रह गई है। सभी पात्र अपने वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। प्रणय कथा के साथ राजनीति और समाज का इसमें आश्चर्यजनक मिश्रण है। चरित्र चित्रण का निपुण गुम्फन, कथानक की स्पष्टता और सादगी तथा मध्यवर्ग की जीवन पद्धति का मनोरम रेखाङ्कन इस नाटक की अनन्य विशेषतायें हैं। हम इस नाटक के माध्यम से प्राचीन भारत के मध्यवर्गीय जीवन की स्पष्ट झांकी देख सकते हैं। कवि ने चोरी जैसे दुष्कर्म को वैज्ञानिक और नियमबद्ध व्यवसाय कह कर हास्य की उत्तम सृष्टि की है। वेश्या वसन्तसेना के भवन का उच्चकोटि का वर्णन कर कवि ने यह दिखलाने का प्रयत्न किया है कि उस समय सम्पन्नता का मानदण्ड क्या माना जाता था।

इस नाटक के विषय में विल्सन की टिप्पणी इस प्रकार है– 'अनेक दृष्टियों से संस्कृत नाटकों में मृच्छकटिक सर्वाधिक मानव परक नाटक है। चरित्रों का निपुणता पूर्ण चित्रण, नाटक में आये हुये अधिसंख्य पात्रों के जीवन और उनकी शक्ति तथा स्वयं नाटक की ही सीधी सादी एवं साफ सुथरी अभिव्यक्तियां इन सब दृष्टियों से नाटक में सेक्सपियर के नाटकों जैसी प्रतीति होने लगती है। १० अंकों के प्रकरण में मध्यवर्गीय जीवन और दृश्य उज्जैन नगर में प्रस्तुत किये गये हैं। इनका विषय प्रेम और विवाह विषयक कथानक है जिसमें अपनी उदारता के कारण दरिद्रता तक पहुंचाये गये ब्राह्मण व्यापारी चारुदत्त का वसन्तसेना नामक एक वेश्या के साथ विवाह दिखलाया गया है। तीसरे अंक में नकव लगाने का लम्बा हास्यजनक विवरण आता है जिसमें चोरी को एक कला या विज्ञान का दरजा दिया गया है जिसके नियम और कानून बने हुये हैं। नाटकीय अभिरुचि के अतिरिक्त इसका मूल्य इस बात में है कि इसमें प्राचीन भारतीय दैनिक

जीवन के स्पष्ट चित्र बहुत ही रुचिकर रूप में प्रस्तुत किय गये हैं। चतुर्थ अंक में नायिका के भवन का जैसा विस्तृत वर्णन किया गया है उससे हमें ज्ञात होता है कि उन दिनों विलासमय जीवन के क्या मानदण्ड थे। छठे अंक में चारुदत्त के पुत्र की खेल के लिये सोने की गाड़ी बनवाने के लिये नायिका द्वारा जेवर दिया जाने की घटना से नाटक का नामकरण हुआ है। यही घटना बाद में अदालत में प्रमाण का काम देती है। यह घटना कथानक को उलझा देती है और तब तक प्रभावशाली बनी रहती है जब तक पूर्व निर्णय को निरस्त करने का निर्णय नहीं कर लिया जाता।'

इस नाटक पर अनेक टीकायें लिखी गई जिनमें प्रमुख हैं- गणपति की टीका (कैटेलागस १.४६५), पृथ्वीधर की टीका (बम्बई से प्रकाशित), राममयशर्मा की टीका (मजूमदार द्वारा कलकत्ता से प्रकाशित), लल्लादीक्षित की टीका (एम.वी. गोडवोले द्वारा बम्बई से प्रकाशित), श्रीनिवासाचार्य की टीका (मद्रास से प्रकाशित), धरानन्द की टीका (१८१४ में लिखी गई मद्रास ओरियण्टल लायब्रेरी की पाण्डुलिपियों की विवरणात्मक सूची XXI ८४७५)

इस नाटक का A.W. Rider द्वारा अंग्रेजी गद्य और पद्य में अनुवाद प्रकाशित किया गया। विल्सन के थियेटर १.१८२ में इसका विवरण दिया गया। आंशिक रूप में इसका परिचय के.वी. परव द्वारा भी प्रस्तुत किया गया जिसका प्रकाशन बम्बई से हुआ है। अन्य यूरोपिय भाषाओं में जो अनुवाद और विवरण प्रस्तुत किये गये उनका परिचय स्किलर की विव्लियोंथेका में ८७ संख्या पर दिया गया है।

मेखला- (ना.पा.) विद्धशालभञ्जिका में रानी की दासी जिसने विदूषक से डमरूक के विवाह की योजना के हंसी मजाक में बढ़ चढ़कर भाग लिया। जिसका बदला विदूषक ने मन्दिर में कल्पित आकाशवाणी के द्वारा ले लिया।

मेघदूत नाटकम्- (ना.कृ.) नित्यानन्द लिखित ५ अंकों का नाटक। गीतात्मकता, एकोक्ति एवं छाया तत्व का प्रयोग इसकी विशेषतायें हैं। इसमें मेघदूत की वस्तु को अभिनयरुपता प्रदान की गई है।

मेघदौत्यम्- (ना.कृ.) यह वीरेन्द्र कुमार भट्टाचार्य का लिखित नाटक है।

मेघनाद- (ना.पा.) रामायण का एक महत्वपूर्ण पात्र। यह रावण का पुत्र है, रावण की सेना का सर्वाधिक शक्तिशाली योद्धा है। इन्द्र पर विजय प्राप्त करने के कारण इसे इन्द्रजित् कहा जाता है। इसने राम रावण युद्ध में रावण की ओर से सबसे अधिक प्रशंसनीय योगदान दिया था। अन्त में यह लक्ष्मण के हाथों मारा गया। राम विषयक नाटकों में अनेकशः इसका उल्लेख किया गया है-

(१) **महावीरचरित** में लक्ष्मण द्वारा मेघनाद वध की बात कही गई है।

(२) **अनर्घराघव** में नेपथ्य से ही सूचना दी जाती है कि मेघनाद ने युद्ध के लिये

प्रस्थान किया है और उसके वध की सूचना भी नेपथ्य से ही दी जाती है।

(३) **प्रसन्नराघव** में उसके युद्ध में आने और मारे जाने की सूचना दी गई है।

मेघप्रभाचार्य– (ना.का.) धर्माभ्युदय (दे.) नामक छाया नाटक के लेखक। इनके समय और व्यक्तित्व का कुछ पता नहीं है। इनका लिखा धर्माभ्युदय ही एक ऐसा नाटक है जिसको असन्दिग्ध रूप में छाया नाटक कहा जा सकता है। यह नाटक भी स्वयं को छाया नाटक प्रबन्ध कहता है और इसमें रंगमञ्चनीय निर्देश में यवनिका के अन्दर पुत्रिका (पुतली) रख देने का स्पष्ट निर्देश दिया गया है। कहा नहीं जा सकता यह पहला छाया नाटक है या इसके पहले भी कोई छाया नाटक लिखा गया था। यह भी निश्चित नहीं है कि छाया नाटक के रूप में कुछ विद्वानों द्वारा स्वीकृत दूताङ्गद (दे.) क्या इसके पहले की रचना है। इस नाटक को छाया नाटक विधा के प्रवर्तन का श्रेय दिया जा सकता है या नहीं इस विषय में कुछ भी निश्चयात्मक रूप से नहीं कहा जा सकता। इसे छाया नाट्यप्रबन्ध की भी संज्ञा दी जाती है।

मेघमेदुरमेदनीयम्– (ना.कृ.) डा. रमा चौधरी लिखित ९ दृश्यों का नाटक। इसमें मेघदूत के पूर्वापर प्रसंगों का काल्पनिक चित्रण किया गया है। यक्षकन्या कमलकलिका को अरुणकिरण नदी में डूबने से बचाता है। दोनों का प्रेम हो जाता है और कलमकलिका कुवेर के निकटवर्ती प्रचण्डप्रताप को ठुकरा कर अपने त्राता के साथ विवाह बन्धन में बंध जाती है। कुवेर उसके पति को कमलवनरक्षण में त्रुटि के अपराध में निर्वासित कर देते हैं। यही मेघदूत का मूल है, १ वर्ष का निर्वासन समाप्त करने के बाद सम्मिलिन होता है। इसका अभिनय कालिदास समारोह में किया गया था।

मेघविजय गणि– (ना.का.) युक्तिप्रबोध नामक नाटक के लेखक। ये कृपाविजय के शिष्य थे और हरिविजय की ५वीं पीढी में उत्पन्न हुये थे। व्याकरण, गणित, तर्कशास्त्र पर इनका पूरा अधिकार था। इन विषयों में इनकी रचनायें अत्यन्त गौरव के साथ पढी जाती हैं। कविता के विषय में इनकी प्रवीणता का पता इसी से चलता है कि इन्होंने सप्तसन्धान नामक काव्य में श्लेष के माध्यम से सात कथायें एक साथ कही हैं। इन्होंने शान्तिनाथचरित और देवान्दाभ्युदय काव्यों में नैषध और शिशुपाल वध की पंक्तियां लेकर पद्यों की पूर्ति अत्यन्त निपुणता के साथ की है। इनकी भाषा प्रसादगुण पूर्ण एवं प्रवाहमयी है साथ ही श्लेषगर्भित भाषा का प्रयोग कर एवं सात कथाओं को एक साथ कहकर संस्कृत भाषा की शक्ति का परिचय दिया है। इनके अन्य दो महत्वपूर्ण काव्य हैं– मेघदूतसमस्यालेख एवं दिग्विजय महाकाव्य।

मेधेश्वर– (ना.कृ.) हस्तिमल्ल का लिखा नाटक। इसका उल्लेख पाण्डुलिपि पुस्तकालय मद्रास के II ३२६ संख्या पर पाया जाता है।

मेधाव्रत शास्त्री– (ना.का.) गुजराती परिवार में २०वीं शताब्दी के अन्तिम चरण

में इनका जन्म हुआ था। इनकी शिक्षा आर्य समाजी वातावरण में हुई। कई विद्यालयों में इन्होंने अध्यापक एवं अध्यक्ष का कार्य किया जिनमें अधिकांश आर्यसमाजी विद्यालय ही थे। इनकी रचनाओं की संख्या बहुत अधिक है जिनमें अधिकांश पुस्तकें आर्य समाज के प्रचार के मन्तव्य से ही लिखी गई थीं। काव्यात्मक कृतियों में महाकाव्य, खण्डकाव्य स्फुटकाव्य, स्तोत्र, गद्यकाव्य इत्यादि अनेक काव्यरूप सम्मिलित हैं। इनका लिखा प्रकृतिसौन्दर्य (दे.) नामक नाटक भी प्रकाश में आया है।

मेनकानहुष– (ना.कृ.) यह नौ अंकों का त्रोटक है। इसका उल्लेख शारदातनय के भावप्रकाशन में किया गया है। यह कृति अब उपलब्ध नहीं होती।

मेनकाहित– (ना.कृ.) यह रासक उपरूपक का उदाहरण है। साहित्यदर्पण में उदाहरण के रूप में इसका उल्लेख किया गया है। अब यह प्राप्त नहीं होता।

मेलनतीर्थ– (ना.कृ.) यतीन्द्र विमल चौधरी (दे.) लिखित नाटक।

मैत्रेय– (ना.पा.) मृच्छकटिक में विदूषक। उसके चरित्र में कुछ ऐसी विशेषतायें हैं जो अन्य विदूषकों में नहीं पाई जाती। सामान्य रूप से तो वह एक पेटू ब्राह्मण ही है और हंसी मसखरी के द्वारा नाटक में मनोरञ्जन का सञ्चार करता है। किन्तु साथ ही वह कर्तव्य परायण व्यक्ति भी है। चारुदत्त की सम्पन्नता के दिनों में उसने सुख भोगा ही था किन्तु जब चारुदत्त दरिद्र हो जाता है तब भी वह उसका साथ नहीं छोड़ता। इधर उधर कुछ खा पी लेता है किन्तु निरन्तर चारुदत्त का साथ देता है। चारुदत्त उसे सर्वकालमित्र कहता है। वह विवेकशील भी है और चारुदत्त को सर्वदा लोक व्यवहार के अनुसार उचित ही राय देता है। आभूषणों की चोरी के बाद उसकी राय नहीं है कि इतनी कीमती रत्नमाला यों ही थोड़े से आभूषणों के एवज में दे दी जाय। वह सर्वदा चारुदत्त की हितकामना में ही लगा रहता है, कभी भी उसकी हानि देखना नहीं चाहता। वह एक डरने वाला ब्राह्मण है जो अंधेरी रात में कहीं जाने से घबराता है। किन्तु उचित अवसर पर उसे क्रोध भी आता है। शकार द्वारा झूठा मुकदमा चलाये जाने पर वह उससे लड़ पड़ता है। चारुदत्त को मृत्युदण्ड का राजकीय निर्णय सुनाये जाने के बाद वह पहले ही प्राणोत्सर्ग के लिये तैयार हो जाता है। वह अपने व्यवहार के कारण चारुदत्त का परिवारी जैसा बन गया है। उसके चित्रण में लेखक को पर्याप्त सफलता मिली है।

मैथिली कल्याणम्– (ना.कृ.) दे. मैथिली परिणय।

मैथिलीनाटक– (ना.कृ.) एक जैन लेखक द्वारा लिखित नाटक। लीविस राइस द्वारा सम्पादित एवं मैसूर और कुर्ग की पाण्डुलिपि सूची में सं. ०३०४ पर उल्लिखित।

मैथिलीपरिणय– (ना.कृ.) यह हस्तिमल्ल (दे.) का लिखा ५ अंकों का नाटक है। इसका प्रकाशन बम्बई से हो चुका है। इसी लेखक का एक नाटक मैथिलीकल्याण नाम से भी प्रसिद्ध है। सम्भवतः ये दोनों कृतियां एक ही हैं; एक ही कृति दो नामों से प्रसिद्ध

है।

मैथिलीयम्- (ना.कृ.) नारायण शास्त्री (१) (दे.) लिखित नाटक। इसमें १० अंक हैं। रामायण के कथानक को नाट्य विषय बनाया गया है। प्रसादगुण पूर्ण सरल भाषा, मनोरम चरित्र चित्रण, भावानुगत शैली और छायातत्व का समावेश इसकी अन्यतम विशेषतायें हैं। इसका प्रथम अभिनय कुम्भेश्वर के वसन्तोत्सव में किया गया था। इसका प्रकाशन मैसूर और चिदम्बरम से हुआ है।

मैथिली विजयम्- (ना.कृ.) नारायण शास्त्री (१) (दे.) लिखित ८ अंकों का नाटक।

मोक्षमूलर वैदुष्यम्- (ना.कृ.) तीन अंकों के इस नाटक के रचनाकार भवानीशंकर हैं। जर्मनी के संस्कृत विद्वानों और अनुसन्धाताओं में मैक्समूलर का नाम अत्यन्त प्रसिद्ध है वैदिक और लौकिक संस्कृत के क्षेत्र में इनका कार्य अत्यन्त महत्वपूर्ण माना जाता है। वाराणसी में सम्पन्न विश्वसंस्कृत सम्मेलन में प्रस्तुत करने के लिये इस नाटक की रचना की गई थी। इसमें रंगमञ्च पर अवतीर्ण होने वाले भारतीय विद्वानों विवेकानन्द इत्यादि के साथ मैक्समूलर रुडाल्फराथ इत्यादि पाश्चात्य विद्वान भी आते हैं। इसका प्रकाशन १९८१ में वाराणसी से हो गया है। इसका प्रसारण आकाशवाणी दिल्ली से भी हुआ था।

मोक्षादित्य- (ना.का.) भीमविक्रम व्यायोग के लेखक। ये भीम के पुत्र और हरिहर के शिष्य थे। इन्होंने अपनी रचना संवत् १३८५ सन् १३२८ में की थी। उसी सन् की एक हस्तलिखित प्रति उपलब्ध होती है। इसका उल्लेख पोरबन्दर राज्य के संवत् १३२० सन् १२६३ के प्रशस्ति पत्र में किया गया है। इन्हें व्यास श्रीमोक्षादित्य भी कहा जाता है।

मोडकवामन आबाजी- (ना.का.) ये १९वीं शताब्दी के महाराष्ट्रीय कवि थे। इनके लिखे उत्तरनैषधचरितम् का उल्लेख किया जाता है।

मोहम्मद द्वितीय- (ना.पा.) गंगादास प्रताप विलास (दे.) नाटक का प्रतिद्वन्दी पात्र है। नाटक में चरित्र नायक का इनके साथ युद्ध हुआ था। यह घटना १५वीं शताब्दी के मध्य की है।

मोहराज- (ना.पा.) यशः देव के मोहराज पराजय (दे.) में प्रतिनायक। जनमनोवृत्ति पर इसका शासन स्थापित हो गया और इससे इसका प्रभाव क्षेत्र बढ़ गया। इसने प्राक्तन शासक विवेक चन्द्र को निकाल बाहर किया। किन्तु अन्त में हेमचन्द्र से शक्ति प्राप्त कर विवेकचन्द्र इन्हें पराजित कर देता है और इनसे राज्य छीनकर पुनः जनमनोवृत्ति पर अपना शासन स्थापित कर लेता है।

मोहराजपराजय- (ना.कृ.) यशः देव (दे.) लिखित ५ अंकों का प्रतीक नाटक। इसमें हेमचन्द्र के प्रयत्नों से चालुक्यराज कुमारपाल के मत परिवर्तन का प्रतीकों द्वारा

वर्णन किया गया है। कुमारपाल ने ब्राह्मण धर्म का परित्याग कर जैन धर्म की दीक्षा ले ली थी। इस राजा ने जीव हिंसा पर पाबन्दी लगाई थी और लावारिस सम्पत्ति के राज्याधीन करने की जो प्रथा चली आर रही थी उसे समाप्त किया। उसी घटना को लेकर इस नाटक की रचना की गई जिसमें राजा कुमारपाल, हेमचन्द्र और विदूषक को छोड़कर सभी पात्र भावनात्मक तत्वों के मानवीकृत रूप हैं।

जनमनोवृत्ति नामक एक प्रदेश है जिस पर विवेकचन्द्र का राज्य था। मोहराज ने विवेकचन्द्र से उसे छीनकर अपना राज्य स्थापित कर लिया। अब जन मनोवृत्ति पूर्णरूप से मोहराज के आधीन हो गई। विवेकचन्द्र पत्नी शान्ति और पुत्री कृपासुन्दरी के साथ जैसे तैसे भाग निकला और साधु हेमचन्द्र के आश्रम में पहुंच गया। राजा कुमारापाल संयोगवश कृपासुन्दरी को देखता है और उस पर आसक्त हो जाता है। एक वार कृपासुन्दरी अपनी सखी सौम्यता से बातचीत कर रही थी कि राजा और विदूषक छिपकर उनकी बातचीत सुन लेता है और बाद में स्वयं बातचीत में शामिल हो जाता है।

रानी राज्यश्री की ओर से विघ्न उपस्थित होता है जिसमें रानी का साथ उसकी सखी रौद्रता भी देती है। रानी देवीमन्दिर में कृपासुन्दरी को विरूप कर देने के लिये प्रार्थना करने जाती है। किन्तु मन्त्री पुण्यकेतु देवी की मूर्ति के पीछे एक सेविका को बैठाकर यह कहला देता है कि राजा कृपा सुन्दरी से विवाह करके ही मोहराज को जीत सकता है। रानी इसे देवी की आज्ञा समझती है और कृपासुन्दरी के साथ राजा के विवाह का प्रयत्न करती है। कृपासुन्दरी की शर्त के अनुसार राज्य से द्यूत, मांसभक्षण, मद्यपान मारि (हत्या) चौर्य और पारदारिकत्व इन सात व्यसनों को निर्वासित कर देता है किन्तु वेश्याव्यसन रहने दिया जाता है। अन्त में विवेकचन्द्र को हेमचन्द्र के योग शास्त्र और वीतरागस्तुति की सहायता से मोहराज पर विजय प्राप्त हो जाती है। प्रासङ्गिक रूप में नगरश्री देशश्री को जैन धर्म स्वीकार करने के लिये समझाती है जिसमें वह सफल होती है।

सरल संस्कृत में लिखा गया यह नाटक ऐतिहासिकता से भी ओत प्रोत है। कुमारपाल ने जैनधर्म को बढ़ावा देने के लिये जो कुछ किया उसका परिचय हमें इस नाटक में मिलताहै। कृपासुन्दरी ऐतिहासिक पात्र है और कुमारपाल से उसका विवाह ११५९ में हुआ था। इस नाटक से अन्य विरोधी सम्प्रदायों का भी परिचय प्राप्त होता है। जैन धर्म में दीक्षा प्राप्त करने के अवसर का चित्रण इस प्रकार किया गया है कि कुमारपाल ने अर्हत् के समक्ष कृपासुन्दरी (करुणा का मानवीकृत रुप) के साथ विवाह किया जिसमें हेमचन्द्र को पुरोहित बनाया गया है।

उस समय धारापद सम्भवतः मारवाड़ की राजधानी थी। वहां पर कुमापाल ने महावीरविहार बनवाया था। उसमें मूर्ति की प्राणप्रतिष्ठा के अवसर पर अभिनय के लिये इस नाटक की रचना की गई थी। बाम्बे प्रेसीडेंसी में सन् १९८०-८१ में संस्कृत पाण्डुलिपियों

की खोज में इस नाटक की प्राप्ति हुई थी और कीलहोर्न की खोज रिपोर्ट में इसका उल्लेख किया गया है।

गायकवाड ओरियण्टल सीरीज बड़ौदा से सं. ९ सन् १९१८ में इसका प्रकाशन हो गया था।

मौद्गल्यायन– (ना.पा.) महाकवि अश्वघोष लिखित शारिपुत्र प्रकरण (दे.) का एक महत्वपूर्ण पात्र। वह एक उच्चकोटि का ब्राह्मण युवक है जिसकी कुलीनता और सदाचार पर वितूषक को गर्व है। वह शारिपुत्र का मित्र है और जब शारिपुत्र उससे मिलने आता है तथा बुद्ध के पास चलने का आग्रह करता है तब विदूषक आपत्ति उठाता है कि उसका जैसा महनीय ब्राह्मण अपने से नीचे की जाति वाले बुद्ध से शिक्षा कैसे ले सकता है। जब विदूषक को शारिपुत्र उचित उत्तर दे देता है तब ये मित्र शारिपुत्र के साथ बुद्ध के पास जाते हैं। भगवान् बुद्ध उनका स्वागत करते हैं और उनके गुणों को देखकर भविष्यवाणी करते हैं कि 'मेरे सब शिष्यों में तुम अत्यन्त ज्ञानवृद्ध सिद्ध होगे और तुम लोगों की मन्त्रशक्ति अत्यन्त बढ़ी चढ़ी होगी।'

य

यज्ञनारायण– (ना.का.) रघुनाथ विलास (दे.) नामक नाटक के लेखक। ये गोविन्द दीक्षित के पुत्र थे और तंजौर के रघुनाथ दरवार में रहते थे। सर्वाङ्गीण प्रतिभा के धनी थे और कवि के रूप में इन्हें ख्याति प्राप्त हुई थी। इस नाटक के अतिरिक्त इनके कई काव्य ग्रन्थ हैं जिनमें अधिकतर रघुनाथ की प्रशस्ति गाई गई है इनका समय १७वीं शताब्दी है।

यज्ञसेन– (ना.पा.) यह मालविकाग्निमित्र में मल्लिका का चचेरा भाई है। वह मालविका के भाई माधवसेन को बन्दी बना लेता है तब मालविका वहां से भाग निकलती है और जैसे तैसे विदिशा पहुंच जाती है। अन्त में उस पर (यज्ञसेन पर) विजय प्राप्त कर ली जाती है।

यज्ञोपवीत– (ना.कृ.) दे. शशिकला परिणय।

यतिराजविजय– (ना.कृ.) दे. वेदान्तविलास।

यतीन्द्रम्– (ना.कृ.) डा. रमाचौधरी लिखित नाटक। लेखिका के पति यतीन्द्र विमल चौधरी की मृत्यु के बाद उनके जीवन पर आधारित इस नाटक की रचना १९६४ में की गई। उसी वर्ष उसका अभिनय भी उनके शिष्यों द्वारा किया गया।

यतीन्द्र मोहन चौधरी– (ना.का.) ये आधुनिक काल के बंगाली कवि एवं नाटककार हैं। इनके लिखे नौ अंकों के देशबन्धु; देशप्रियः (दे.) नामक नाटक का उल्लेख किया

जाता है जिसमें देशबन्धु चित्तरञ्जनदास का जीवनवृत्त चित्रित किया गया है।

यतीन्द्रविमल चौधरी– (ना.का.) बंगाल के एक उद्‌भट विद्वान और उच्चकोटि के ग्रन्थकार थे। इनका जन्म बंगाल (अब बंगलादेश) में रसिक चन्द्र चौधरी और नयनतारा देवी से सन् १९०८ में हुआ था। इन्होंने लन्दन से डाक्ट्रियेट की उपाधि पाई थी। प्रेसीडेंसी कालेज में संस्कत विभागाध्यक्ष पद पर आसीन रहे। कलकत्ता विश्वविद्यालय में संस्कृत प्रवक्ता के रूप में कार्य किया। अनेक संस्थाओं में सक्रिय पदाधिकारी रहे। इंस्टीट्यूट आफ ओरियण्टल लर्निंग की स्थापना की। प्राच्यवाणी नामक अंग्रेजी त्रैमासिक पत्रिका का सम्पादन किया।

इनकी साहित्य सेवायें विस्तृत एवं बहुमुखी हैं। इन्होंने अनेक शोधकृतियां प्रदान कीं। अनेक अनुवाद प्रस्तुत किये। बंगला भाषा में अनेक ग्रन्थ लिखे। पाली भाषा में भी एक नाटक लिखा जो वर्मा में अभिनीत हुआ। इसके अतिरिक्त काव्य, चम्पू, नाटक इत्यादि रूप में ललितसाहित्य भी साहित्य जगत् को प्रदान किया। इनके लिखे प्रमुख नाटक हैं– महिमामयभारत, मेलनतीर्थ, भारतहृदयारविन्द, भास्करोदय, भारतविवेक, भारतराजेन्द्र, सुभाषसुभाषम्, रक्षक, गोरक्ष, निष्कञ्चन यशोधरम्, शक्तिसारदम्, आनन्दराध, प्रीतिविष्णुप्रियम्, भक्तिविष्णुप्रियम्, मुक्तिशारदम्, अमरमीरम्, भरतलक्ष्मी, महाप्रभुःहरिदासः, विमलयतीन्द्र, दीनदासरघुनाथ, धृतिसीतम् इत्यादि।

यथाभिमतम्– (ना.कृ.) आर. कृष्णामाचार्य द्वारा सेक्सपियर के नाटक 'ऐज यू लाइक इट' का संस्कृत में अनुवाद।

यदुनन्दन– (ना.का.) ये वासुदेव गयनी के पुत्र थे। इनका लिखा नाटक 'नाटवाट' प्राप्त होता है। जिसका प्रकाशन बम्बई से हुआ है।

यमयमी संवाद– (वे.सू.) ऋग्वेद के दशमण्डल १०-१० में यह संवाद आया है। यह प्रजनन संबन्धी संवाद है। यमयमी भाई बहन हैं। यमी प्रणय निवेदन करती है और भाई से सहवास की प्रार्थना करती है। किन्तु यम इस सम्बन्ध को स्वीकार नहीं करते। विशेष रूप से उन्हें भय है कि गुप्तचर सर्वदा टोह लेते रहते हैं। अतः यह सम्बन्ध छिप नहीं सकेगा। वह किसी अन्य से कामशान्ति कराने कि लिये यमी को परामर्श देकर इस बात को समाप्त कर देता है। मैकडानल के अनुसार यह आदिम कालीन मानव की प्रवृत्ति मूलक परम्परा का अवशेष है। अवेस्ता में भी यिम की बहन यिमेह का इसी प्रकार वर्णन है। वहां यिम विवन्ह्वन्त का पुत्र है जबकि वैदिक साहित्य में यम के पिता का नाम विवस्वत् है। यह सादृश्य दोनों संवादों की एक रूपता तथा एक स्रोत की ओर संकेत करता है।

यमी– (ना.पा.) ऋग्वेद के यमयमी सूक्त (दे.) की सुन्दरी यम की बहन जो भाई से सहवास की प्रार्थना करती है और भाई द्वारा उसकी अभ्यर्थना को ठुकरा दिया जाता

है।

यमुना– (ना.सं.) कृष्ण के जीवन से अभिन्न और अविच्छेय रूप में सम्बद्ध। (१) बालचरित में जब वसुदेव उन्हें नन्द के यहां पहुंचाने चले तब भाद्रपद की उमडती नदी यमुना ने स्वयं मार्ग दे दिया। यमुना में ही कूदकर कृष्ण के कालिय दामन किया और इसी के किनारे सभी प्रकार की क्रीड़ायें चलती रहीं।

(२) **प्रसन्नराघव–** में सुग्रीव यमुना का भाई है और जब बालि उसका दमन करता है तब वह गंगा से वालि की शिकायत करने आती है।

(१) **ययातिचरित–** (ना.कृ.) यह ७ अंकों का रुद्रदेव लिखित एक नाटक है जिसमें ययाति की शर्मिष्ठा के साथ प्रेम लीला का चित्रण किया गया है। शर्मिष्ठा दैत्यराज की पुत्री थी और दैत्यों के गुरु शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी थी। इन दोनों कन्याओं में एक घटना को लेकर विवाद हो गया था जिससे देवयानी के पिता शुक्राचार्य भी रुष्ट हो गये थे। अतः दैत्यराज ने देवयानी की यह मांग स्वीकार कर ली कि शर्मिष्ठा उसकी दासी बनकर रहेगी। देवयानी का विवाह ययाति के साथ हुआ था विवाह के समय शुक्राचार्य ने ययाति से वचन ले लिया था कि वह कभी भी शर्मिष्ठा का साथ नहीं करेगा। कुछ समय बाद ययाति ने वचन भंग कर गुप्त रूप से शर्मिष्ठा से मिलना प्रारम्भ कर दिया। परिणामतः देवयानी के दो पुत्र हुये और शर्मिष्ठा के तीन। यह रहस्य कुछ समय तो बना रहा किन्तु जब देवयानी को पता चला तो वह क्रोध में भर गई और शुक्राचार्य को भी राजा की वादाखिलाफी पर क्रोध आ गया। शुक्राचार्य ने ययाति को वृद्ध होने का शाप दे दिया। क्षमा प्रार्थना करने पर शुक्राचार्य ने शाप को नियन्त्रित कर दिया कि यदि कोई पुत्र उन्हें अपनी जवानी दे देगा तो वे फिर जवान हो जायेंगे। ययाति ने सभी पुत्रों से याचना की किन्तु पुरु के अतिरिक्त अन्य कोई पुत्र अपनी जवानी पिता को देने के लिये तत्पर नहीं हुआ। पुरु से जवानी लेकर ययाति ने लम्बे समय तक यौवन का उपभोग किया। अन्त में भोगों की असारता समझ ली और पुत्र को उसका यौवन तो लौटा ही दिया पुरस्कार में सारा राज्य भी उसे ही सौंपकर वन में तपस्या करने के लिये प्रस्थान किया। देवयानी के दो पुत्रों युदु और तुर्वसु से क्रमशः यादव और यवन वंश चले। शर्मिष्ठा के तीन पुत्रों द्रुह्यु, अनु और पुरु से क्रमशः भोज म्लेच्छ और पौरव वंश प्रचलित हुये। महत्वशाली केवल पौरववंश ही था जिसमें शकुन्तला के पति दुष्यन्त और कौरव पाण्डवों का वंश चला महाभारत की इसी कथा को लेकर नाटक रचना की गई है।

साहित्यदर्पण में जिस शर्मिष्ठाययाति का उल्लेख किया गया है वह सम्भवतः यही रचना है। इसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम १.७१ पर किया गया है। विल्सन के थियेटर में II ३८८ पर इसका विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। संस्कृत पाण्डुलिपियों के मित्राद्वारा प्रस्तुत नोटिसेज में इसका परिचय दिया गया है।

(२) **ययातिचरित–** (ना.कृ.) त्रिवेन्द्रम् के मय्यान रामार्य का ययाति कथा (दे.) (१)

ययातिचरित को लेकर लिखा गया नाटक। इसकी प्रति मैसूर के पुस्तकालय में सं. २८१ पर सुरक्षित है।

ययाति तरुणानन्द– (ना.कृ.) बधूलगोत्रीय वल्लीसहाय (दे.) लिखित यह नाटक ययाति की प्रेम कथा के विषय में है जिसमें शुक्राचार्य के शाप से पौरुष खो देने और पुत्र से पुनः जवानी प्राप्त करने की महाभारत की कथा वस्तु के रुप में उपादान किया गया है। (शर्मिष्ठा ययाति की कथा के लिये देखिये (१) ययातिचरित) इस नाटक का अभिनय विरञ्चिपुरम् में मार्गसहाय देव की वासन्तिक पूजा के अवसर पर किया था। इसका उल्लेख मद्रास की ओरियण्टल लायब्रेरी की पाण्डुलिपि में डिस्क्रिप्टिव कैटेलाग सं. XXI ८४७७ पर किया गया है।

ययाति देवयानी चरित– (ना.कृ.) इस नाटक के लेखक का ठीक रूप में पता नहीं चलता। यह वल्लीसहाय कवि का लिखा प्रतीत होता है। क्योंकि महाभारत के कथानक के उत्तर भाग पर ययातितरुणानन्द (दे.) एक पृथक् नाटक इनके नाम पर प्राप्त होता है जिसका यह पूर्व भाग है। इस नाटक की रचना कुछ गीतों को लेकर हुई है। इसका विभाजन अंकों में नहीं है इसका परिचय मद्रास की ओरियण्टल लायब्रेरी के पाण्डुलिपि अनुभाग के डिस्क्रिप्टिव कैटेलाग सं. XXI ८४७९ पर दिया गया है।

ययाति विजय– (ना.कृ.) इसका उल्लेख साहित्यदर्पण में किया गया है। इसके लेखक इत्यादि के विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता।

ययातिविजयम्– (ना.कृ.) मय्यानरामार्य (दे.) लिखित नाटक।

ययाति विषयक नाटक– (ना.सं.) राजा ययाति की एक अत्यन्त प्रसिद्ध कथा महाभारत में आई है (संक्षिप्त कथानक के लिये देखिये (१) ययातिचरित) इस कथानक को लेकर अनेक नाट्यरचनायें प्रकाश में आई हैं। नाटककारों में यह कथा अत्यन्त प्रसिद्ध रही है। इस कथानक को लेकर लिखी गई कतिपय रचनायें ये हैं— रुद्रदेव का ययातिचरित, वल्लीसहाय का ययातितरुणानन्द, ययातिदेवयानीचरित, शर्मिष्ठाययाति, ययातिविजय, भागवतकृष्ण कवि का शर्मिष्ठाययाति, नारायण शास्त्री का शर्मिष्ठाविजयम्, मय्यानरामार्य का ययातिविजय।

यशश्चन्द्र– (ना.का.) मुद्रित कुमुदचन्द्र (दे.) के लेखक। ये ११वीं १२वीं शताब्दी के कवि हैं। ये धर्कटवंश में उत्पन्न हुये थे तथा धनदेव के पौत्र एवं पद्मचन्द्र के पुत्र थे। सम्भवतः सपादलक्ष में किसी शाकम्भरी राजा के मन्त्री थे।

यशःपाल– (ना.का.) दे. यशोदेव।

यशोदा– (ना.पा.) बालचरित में नन्द की पत्नी एवं कृष्ण की पालक माता। उसने मृतबालिका को जन्म दिया है। प्रसववेदना से उसे मूर्छा आ गई जिससे वह यह नहीं जान सकी कि प्रसूत बच्चा बालिका है या बालक। वह कृष्ण की पालन पोषण करने

वाली माता है और कृष्ण का बाल-जीवन उसी के संरक्षण में व्यतीत हुआ है।

यशोदेव– (ना.का.) इनका उपनाम यशःपाल भी है। इनके लिये कीथ ने यशःदेव शब्द का ही प्रयोग किया है। एक ही नाम के अन्तर्गत संहिता नित्य होने के कारण यशोदेव रुप ही शुद्ध है। ये मोढ बनियांजाति के थे। इनके पिता का नाम्र धनदेव और माता का नाम रुक्मिणी था। उनके आश्रयदाता कुमारपाल एवं अभयदेव या अभयपाल थे जिसका शासनकाल कुमारपाल के बाद ११२९ से ११३२ ई. तक रहा। इन्होंने कुमारपाल द्वारा जैनधर्म स्वीकार करने को अपने प्रतीक रुपक का विषय बनाया। कुमारपाल द्वारा थारापद्र में बनवाये गये जैन मन्दिर में प्राण प्रतिष्ठा के अवसर पर खेलने के लिये मोहराजपराजय की रचना की थी। कीथ ने अनुमान लगया है कि सम्भवतः ये थारापद्र के निवासी थे या इन्हें थारापद्र में शासन का भार सौंपा गया था। ये उन प्रख्यात विद्वानों में एक थे जिन्हें पाटन में शान्तिनाथ के मन्दिर में मुनिरत्न के अमामस्वामिचरित के प्रथमवाचन को श्रवण कहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था।

यशोधर– (ना.का.) इनके लिखे धनञ्जय विजय का उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम I २६६ में किया गया है। कामसूत्र की टीका जयमंगला के लेखक यशोधर से सम्भवतः ये भिन्न थे।

यशोधरचरित– (ना.कृ.) १६वीं शताब्दी के वादिचन्द्र सूरि का लिखा नाटक। इसमें जैन महाराज यशोधर का चरित्रचित्रण किया गया है। इस विषय में कई अन्य काव्य भी पाये जाते हैं जिनमें श्रुतसागर सूरि, सोमकीर्ति, सकलकीर्ति इन १६वीं शताब्दी के कवियों की रचनायें पाई जाती हैं। क्षमाकल्याण कवि १९वीं शताब्दी के हैं; उनकी भी इस विषय की रचना पाई जाती है।

यशोवर्मा– (ना.का.) ईसा की अष्टम शताब्दी के पूर्वार्ध में ये कन्नौज के राजा थे। महाराज हर्ष देव की मृत्यु (सन् ६४७) के बाद कन्नौज की गद्दी पर राजाओं की परम्परा में यशोवर्मा का महत्वपूर्ण स्थान है। सन् ७३१ में इन्होंने चीन को राजदूत भेजा था। उनके नौ दस वर्ष बाद काश्मीर के ललितादित्य मुक्तापीड ने इन्हें पराजित कर अपदस्थ कर दिया था।

ये साहित्य के आश्रयदाता थे। इनके दरवार में प्रसिद्ध नाटककार भवभूति और गौडवहो के लेखक वाक्पतिराज रहते थे। इनका उल्लेख कल्हण ने भी किया है। ये स्वयं भी कवि थे और इन्होंने रामाभ्युदय (दे.) नाटक की रचना की थी। इनके रचे हुये फुटकर पद्य भी संग्रह ग्रन्थों में पाये जाते हैं। रामाभ्युदय का उल्लेख शारदातनय ने किया है। उनके अनुसार इस नाटक में ६ अंक थे जिनमें समस्त रामायण कथा इतिवृत्त के रूप में स्वीकार की गई थी। भोजराज के शृङ्गार प्रकाश में इनका एक पद्य उद्धृत किया गया है। उसका एक खण्ड आनन्दवर्धन ने ध्वन्यालोक में उद्धृत किया है और अभिनव गुप्त ने लिखा है कि यह खण्ड यशोवर्मा के रामाभ्युदय से लिया गया है। अभिनव गुप्त का

यह कथन यशोवर्मा द्वारा रामाभ्युदय की रचना को प्रमाणित कर देता है। किन्तु यह रचना अभी तक प्राप्त नहीं हुई है। उस समय की एक परम्परा थी कि अपनी रचना का आदर्श नाटककार प्रस्तावना में व्यक्त कर दिया करते थे। भवभूति की रचनाओं में यह प्रवृत्ति पाई जाती है। ज्ञात होता है कि उद्धृत पद्य भी प्रस्तावना का ही है और इससे उक्त रचना का आदर्श प्रकट हो जाता है कि पात्रानुकूल कथोपकथन का औचित्य, यथावसर रसपरिपोष, कथानक का निर्वाह, संविधानक में शब्द और अर्थ की प्रौढता इस नाटक में अपनाये गये दृष्टिकोण हैं।

यादवाभ्युदय– (ना.कृ.) हेमचन्द्र के शिष्य रामचन्द्र (दे.) लिखित नाटक। कैटेलागस कैटेलागोरम III १०७ में इसका उल्लेख किया गया है।

यादवेन्द्रराय– (ना.का.) २०वीं शताब्दी के बंगाली कवि; इनका लिखा स्वर्गीयप्रहसनम् नाटक उपलब्ध होता है। इसके अतिरिक्त इनके दो खण्डकाव्य भी हैं– आरण्यकविलास और मङ्गलोत्सव।

यादवोदय– (ना.कृ.) काव्य नामक एकाङ्की उपरूपक का उदाहरण। इसका उल्लेख साहित्य दर्पण में किया गया है। अब यह उपलब्ध नहीं होता।

यामिनीपूर्णतिलक– (ना.कृ.) यह पेरी काशीनाथ शास्त्री (१) (दे.) की कृति है। इसकी रचना १९वीं शताब्दी में की गई थी।

युक्तिप्रबोध– (ना.कृ.) यह मेघप्रभ गणि (दे.) लिखित प्रतीक नाटक है। इसका उद्देश्य जैनधर्म की दृष्टि से इतर दार्शनिक तत्वों का प्रतिषेध करना है। इसकी रचना १७वीं शताब्दी में की गई थी। ऋषभदेव केसरीमल श्वेताम्बर संस्था द्वारा रतलाम से इसका प्रकाशन किया गया था।

युगजीवनम्– (ना.कृ.) डा. रमाचौधरी लिखित रामकृष्ण परमहंस जीवन विषयक नाटक। रचनाकाल २०वीं शताब्दी। रामकृष्णमठ कलकत्ता में १९६७ में इसका प्रथम अभिनय किया गया था।

युगलाङ्गुलीयम्– (ना.कृ.) (१) दे. श्रीशैलताताचार्य। इसकी रचना १९वीं शताब्दी में की गई थी।

(२) इसी नाम का एक नाटक कालीपदतर्काचार्य (दे.) का लिखा भी बतलाया जाता है।

युधाजित्– (ना.पा.) महावीरचरित में भरत के मामा। इन्होंने राम को शीघ्र राज्य देने के लिये भरत के प्रयत्न में सहायता की थी।

युधिष्ठिर– (ना.पा.) वेणीसंहार का प्रमुख पात्र। किन्तु नाटक में उनका उपादान बहुत कम हुआ है। सन्धि का प्रस्ताव लेकर कृष्ण उन्हीं के परामर्श से हस्तिनापुर जाते हैं जो बात भीमसेन को पसन्द नहीं है। भीमसेन इस प्रस्ताव से इतना विचलित है कि

युधिष्ठिर को राजा मानने से भी इन्कार कर देते हैं। युधिष्ठिर शान्तिप्रिय व्यक्ति है, धर्मराज हैं और अनुचित कार्य को पसन्द नहीं करते। जब धृतराष्ट्र और गान्धारी युद्ध भूमि को देखने आते हैं तब उनके सामने ही भीम और दुर्योधन का विवाद छिड़ जाता है। इस अवाञ्छनीय घटना को युधिष्ठिर ही टालते हैं। वे भीम को बुला लेते हैं जिससे उस समय का संघर्ष टल जाता है। वे ठहरे युद्धयज्ञ के यजमान फिर भला वे ऐसा अनुचित कार्य कैसे सहन कर सकते थे। वे भाइयों को प्राणों से भी अधिक चाहते हैं। जब दुर्योधन का पक्षपाती एक राक्षस चार्वाक के वेष में छलपूर्ण सूचना देता है कि दुर्योधन के हाथों भीम का वध हो गया है तब वे प्राण त्यागने को उद्यत हो जाते हैं और जब रक्तरंजित भीमसेन द्रौपदी के केशसंयमन के लिये आते हैं तब उन्हें दुर्योधन समझकर युधिष्ठिर उनसे भिड़ जाते हैं। भ्रातृप्रेम के सामने वे दुर्योधन की गदा शक्ति की भी परवा नहीं करते। यह घटना सिद्ध करती है कि वे कायर नहीं हैं और अवसर आने पर शक्ति का प्रदर्शन भी कर सकते हैं यद्यपि वे मूलरूप से शान्ति प्रिय ही हैं।

युधिष्ठिर– (ना.कृ.) ठाकुर ओमप्रकाश शास्त्री लिखित तीन दृश्यों का एक नाटक। उसमें युधिष्ठिर के छात्र जीवन के तीन प्रसंग प्रस्तुत किये गये हैं। इस नाटक को 'क्षमाशीलो युधिष्ठिरः' इस नाम से भी याद किया जाता है।

युवचरितम्– (ना.कृ.) जग्गू शिग्रैया लिखित नाटक इसकी रचना बीसवीं शताब्दी में की गई।

(१) **युवराज**– (ना.का.) इनकी लिखी कई नाट्य कृतियां विजगापट्टम की आर्ष लायब्रेरी से प्राप्त की जा सकती हैं जिनमें प्रमुख हैं– वसन्ताभरण, अनङ्गतिलक, मदनमञ्जरी, रसोल्लास, और पञ्चवाणविलास।

(२) **युवराज**– (ना.का.) दे. गोदावर्म युवराज।

यौगन्धरायण– (ना.पा.) उदयन के मन्त्री के रूप में यौगन्धरायण का नाम अत्यन्त प्रसिद्ध है। उदयन कथा को लेकर अनेक पुस्तकें लिखीं गई जिनमें सुबन्धु की वासवदत्ता, सोमदेव का कथासारित्सागर, क्षेमेन्द्र की बृहत्कथा मञ्जरी अधिक प्रसिद्ध है। यौगन्धरायण मन्त्री के रूप में प्रसिद्ध हैं और अनेक नाटकों में इन्हें इसी रूप में अपनाया गया है–

(१) **प्रतिज्ञा यौगन्धरायण**– (दे.) में यह नायक है। उज्जैन के महासेन प्रद्योत ने अपनी पुत्री वासवदत्ता से प्रेम सम्बन्ध और विवाह का अवसर देने के लिये जब छल कपट से उदयन को बन्दी बना लिया तब यौगन्धरायण ने अपने स्वामी को छुड़ाने के लिये प्रतिज्ञा की और तीनों मन्त्री वेष बदल कर उज्जैन में रहने चले गये। स्वयं यौगन्धरायण उन्मन्तक का वेष बनाकर वहां पहुंच गया। किन्तु वहां जाकर उसे ज्ञात हुआ कि राजा वासवदत्ता के प्रेमपाश में फंस गये हैं और उनके विना निकलकर जाना नहीं चाहते। तब

उसने वासवदत्ता के साथ उदयन को निकाल लेने के प्रतिज्ञा की और नलगिरि हाथी को उन्मत्त कर ऐसा वातावरण तैयार कर दिया कि राजा घोषवती वीणा और वासवदत्ता के साथ निकल भागने में सफल हो गये। किन्तु यौगन्धरायण गिरफ्तार कर लिये गये। प्रद्योत ने चित्रों में वासवदत्ता और उदयन का विवाह संपन्न किया तथा यौगन्धरायण को स्वर्णपात्र देकर ससम्मान विदा किया।

(२) **स्वप्नवासवदत्तम्**- में यह वत्सराज उदयन का मन्त्री है। किसी भविष्यवक्ता ने भविष्यवाणी की है कि उदयन पर आपत्ति आयेगी और राजा का विवाह मगध राजकुमारी पद्मावती से होगा तब मगध की सहायता से राजा विपत्ति से छुटकारा पायेंगे। संयोगवश आरुणि के नियन्त्रण में शत्रु सेना उठ खड़ी होती है और भविष्यवक्ता की पहली वाणी सही सिद्ध हो जाती है। अतः पूरी भविष्यवाणी पर विश्वास कर यौगन्धरायण ऐसी योजना बनाता है कि राजा का पद्मावती के साथ विवाह भी हो जाता है और विपत्ति भी टल जाती है तथा राजा पूर्ण रूप से विजयी हो जाता है। इसके लिये पहले तो वह अपने और वासवदत्ता के जल मरने की खबर उड़ाता है फिर पद्मावती की एक घोषणा का चटपट लाभ उठाकर वासवदत्ता को अपनी बहन बतलाकर पद्मावती के पास धरोहर के रूप में रख देता है। पहली पत्नी के मर जाने के कारण राजा पद्मावती से विवाह कर लेता है और मगध की सहायता से उसे शत्रु पर विजय भी मिल जाती है।

यौगन्धरायण का सबसे बड़ा गुण है उसकी स्वामिभक्ति। वह राजा की रक्षा करने, उन्हें बन्दीभाव से छुड़ाने और उनकी विपत्तियों का निराकरण करने में निरन्तर तत्पर रहता है। वह कूट नीति में निपुण है, कार्य कुशल है, समय को समझता है और जो भी अवसर के अनुकूल होता है उसे कर गुजरने में उसे जरा भी संकोच नहीं होता। वासवदत्ता के जल जाने की खबर उड़ाना कोई मामूली अपराध नहीं था। किन्तु उसके बिना न तो राजा का पद्मावती से विवाह होता, न मगध की सहायता मिलती और न राजा को विजय लाभ हो पाता। अत एव बिना किसी प्रकार का आगा पीछा किये उसने उस कार्य को तत्काल कर उठाया। यह उसके साहस का बहुत बड़ा प्रमाण है। वह प्रभावशाली भी इतना अधिक है कि रानी भी उसके आदेश की वशवर्तिनी बन जाती है। सभी मन्त्री और राजा का पूरा अनुचर वर्ग उसके अनुशासन में बंधा हुआ है जो उसकी सफलता का एक बहुत बड़ा राज है।

(३) **रत्नावली**- में यौगन्धरायण स्वामिभक्त मन्त्री है। यहां भी वासवदत्ता के मरण की खबर उड़ाकर वह सिंहलेश्वर की पुत्री रत्नावली से राजा उदयन का विवाह कराना चाहता है क्योंकि उसके लिये भविष्य वाणी की गई है कि उसका पति चक्रवर्ती सम्राट होगा। वह प्रवहणभंग में लापता राजकुमारी के लौटने पर रानी वासवदत्ता के सेवाकार्य में उसे लगा देता है और उसे सागरिका नाम दे देता है। इसके साथ ही बड़ी कुशलता से ऐन्द्रजालिक की विभीषिका उत्पन्न कर राजा का विवाह रत्नावली से करा देता है।

यहां यौगन्धरायण का चरित्र स्वप्नवासवदत्तम् में चित्रित चरित्र से बहुत मेल खाता है। यहां उसे अपनी योजना में वासवदत्ता को विश्वास में लेने और उसे धरोहर के रूप में कहीं निक्षेप में रखने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

(४) **तापसवत्सराज**– में यौगन्धरायण की कार्यशैली बहुत कुछ स्वप्नवासवदत्तम् की कार्यशैली से मेल खाती है यहां भी आरुणि के आक्रमण और वासवदत्ता के जल मरने की खबर उड़ाई जाती है और वासवदत्ता को पद्मावती के पास प्रोषितपतिका बतलाकर धरोहर के रूप में रक्खा जाता है। किन्तु अन्तर यह पड़ जाता है कि यौगन्धरायण पद्मावती के पास उदयन का चित्र भेजकर उसके मन में राजा के प्रति प्रेम जागृत करता है। उधर राजा वासवदत्ता के वियोग से दु:खी होकर तपस्वी बन जाता है। पद्मावती भी निराश होकर तपस्विनी बन जाती है। राजा तापसवेष में राजगृह में तपस्विनी पद्मावती को देखता है और उसे ज्ञात होता है कि पद्मावती उसी के वियोग में दु:खी होकर कष्टमयी साधना कर रही है तब वह सहानुभूति में उससे विवाह कर लेता है। वासवदत्ता असह्य वियोगवेदना से पीडित होकर प्रयाग में आत्मदाह करने के लिये तैयार है वहीं योजनानुसार रुमण्वान् विजय की खबर लाता है। राजा भी पहुंच जाता है और जलती चिता को देखकर स्वयं आत्मदाह करना चाहता है। किन्तु वहां पद्मावती वासवदत्ता को पहिंचान लेती है और राजा यौगन्धरायण को पहिंचान लेता है। सभी लोग आनन्द में एक दूसरे से मिल जाते हैं। यह सब यौगधरायण की योजना का चमत्कार है।

यौवराज्यम्– (ना.कृ.) जग्गू वकुलभूषण (दे.) लिखित एकाङ्की नाटक जिसमें भरत के यौवराज्य प्रसंग का कथन किया गया है। इसमें छोटे छोटे चंचलता पूर्ण संवादों की विशेषता है इसका प्रकाशन संस्कृत प्रतिभा में हो गया था।

र

रक्तसारसम्– (ना.कृ.) नारायण शास्त्री (दे.) लिखित ८ अंकों का नाटक।

रक्षक:– (ना.कृ.) यतीन्द्रविमल चौधरी (दे.) लिखित नाटक। इसमें गोरखनाथ का चरित्र चित्रित किया गया है। इस नाटक को श्रीगोरक्ष नाम से भी याद किया जाता है।

रघुनाथ विष्णु वेलणकर– (ना.का.) ये मध्यप्रदेश के निवासी थे। इनका लिखा जगन्मोहन भाण (दे.) प्रकाश में आया है।

रघुनाथ– (ना.का.) ये तंजौर के राजा थे तथा कवि और कलाकारों के आश्रयदाता होने के अतिरिक्त स्वयं भी कवि थे। नाटककार राजचूडामणि दीक्षित ने अपने नाटकों की प्रस्तावना में इनके लिखे नलाभ्युदय (दे.) नाटक का उल्लेख किया है। इनका समय १७वीं शताब्दी है।

रघुनाथ- (ना.का.) प्रभावत (दे.) नाटक के लेखक। ये रामानुज महादेशिक की परम्परा से संबंद्ध थे; इनके पिता मैसूर निवासी शैलनाथसूरि थे। मैसूर पुस्तकालय के पाण्डुलिपि अनुभाग की ग्रन्थ सूची २७८ पर इनका उल्लेख किया गया है।

रघुनाथ विलास- (ना.कृ.) यज्ञनारायण (दे.) लिखित नाटक। इसमें ५ अंक हैं। यह तंजौर के पुस्तकालय में सं. VIII ३४८६ पर प्राप्त किया जा सकता है। इसका प्रकाशन मद्रास से सहृदय संस्कृत जर्नल में हो चुका है। रघुनाथ १७वीं शताब्दी में तंजौर के लब्धप्रतिष्ठ राजा थे जो स्वयं कवि थे और कवियों को आश्रय देते थे। नृत्य और संगीत कलाओं में भी निष्ठावान् थे और उनके नाम पर एक वीणा का भी नामकरण किया गया था। इन्होंने अनेक मन्दिर बनवाये थे और अनेक अग्रहारों को दान दिये थे।

रघुनाथ कवि के आश्रयदाता थे और कवि को रघुनाथ से पर्याप्त पुरस्कार मिले थे। कवि ने उनकी प्रशस्ति में इस नाटक की रचना की थी। नाटक शृङ्गार प्रधान है; तीर्थयात्रा में एक मकर से रघुनाथ ने एक ब्राह्मण की रक्षा की थी। उस मकर से पेट में एक नथुनी प्राप्त हुई थी। राजा उस नथुनी से उसकी स्वामिनी को ढूंढ निकालता है जो लंकाधिप विजयकेतु की पुत्री चन्द्रकला है। राजा कापालिक की प्रतिभावती से कतिपय योग सिद्ध वस्तुयें प्राप्त कर लेता है- जिनकी सहायता से वह चन्द्रकला तक पहुंच जाता है। इस समय चन्द्रकला का विवाह रघुनायक से चल रहा था किन्तु कापालिकी के प्रभाव से रघुनाथ उसे प्राप्त कर लेता है और दोनों का विवाह सम्पन्न हो जाता है।

यह ऐतिहासिक कथानक है किन्तु कल्पना से इसे अतिरञ्जित कर दिया गया है। शैली समास बहुला है और इसमें लम्बी एकोक्तियों का समावेश है। यत्र तत्र देशी शब्दों का भी समावेश किया गया है।

रघुनाथ विष्णु वेलण्कर- (ना.का.) ये मध्यप्रदेश के निवासी थे। इनका लिखा जगन्मोहन भाण (दे.) प्रकाश में आया है।

रघुनाथाचार्य- (ना.का.) ये सुभद्रापरिणय के लेखक है। इनका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम खण्ड १ सं. ७२८ पर किया गया है।

रघुवंशम्- (ना.कृ.) जीवन्याय तीर्थ (दे.) लिखित ६ अंकों का नाटक है। यह कालिदास के लिखे महाकाव्य रघुवंश का दृश्य रूप है। उज्जैन के कालिदास समारोह में इसका अभिनय किया गया था। प्रणवपारिजात में इसका प्रकाशन किया गया।

रघुविलास- (ना.कृ.) हेमचन्द्र के शिष्य रामचन्द्र (दे.) का लिखा नाटक। कैटेलागस कैटेलागोरम तृतीय भाग में इसका उल्लेख किया गया है।

रघुवीर चरित- (ना.कृ.) यह सुकुमार (दे.) लिखित नाटक है। ट्रावनकोर पुस्तकालय के संस्कृत पाण्डुलिपियों के कैटेलाग में इसका उल्लेख किया गया है।

रघुवीर विजय- (ना.कृ.) यह कस्तूरी रंगनाथ (दे.) लिखित सभवकार है। यह

राम विषयक नाट्यकृति है जिसमें सीता स्वयंवर से लेकर कथानक प्रवृत्त हुआ है। किन्तु स्वतन्त्र कल्पनाओं के द्वारा प्रतिष्ठित वस्तु में कुछ परिवर्तन भी किये गये हैं। सीताहरण स्वयंवर के अवसर पर ही होता है और बाद में अग्नि परिक्षा दिखलाई जाती है तब राम विवाह होता है। विद्युज्जिह्व राम का और शूर्पणखा सीता का रूप धारण कर आते हैं। छाया दृश्यों का समावेश किया गया है। पद्यों की अधिकता है समवकार की शास्त्रीय विधि के प्रतिकूल विष्कम्भक और प्रवेशक की योजना द्वितीय और तृतीय अंकों के साथ की गई है। इसका रचनाकाल १९वीं शताब्दी है और प्रथम अभिनय शेषाद्रि महोत्सव में किया गया। ओरियण्टल लायब्रेरी मद्रास की त्रैवार्षिक खोज रिपोर्ट में सं. II २४४४ पर इसका उल्लेख किया गया है।

(१) **रङ्गनाथ–** (ना.का.) ये शृङ्गार शृङ्गारक (दे.) शीर्षक भाण के लेखक हैं। इनका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम ११.१५८ पर किया गया है।

(२) **रंगनाथ–** (ना.का.) ये श्रीनिवास के पुत्र थे। इन्होंने अनंगतिलक (दे.) भाण की रचना की थी जिसका उल्लेख ओरियण्टल लायब्रेरी मद्रास के पाण्डुलिपि अनुभाग में सं. III ८१७३ पर प्राप्य है।

(३) **रंगनाथ–** (ना.का.) ये दमयन्ती कल्याण (दे.) नामक ५ अंकों के नाटक के लेखक हैं जिसका अब केवल कुछ भाग प्राप्त होता है।

रंगनाथ ताताचार्य– (ना.का.) शठमर्षण गोत्र के रघुनाथ के पुत्र थे। इनका जन्म १८९४ में राम दुर्ग में हुआ था। सरस्वती महल लायब्रेरी तंजौर के ये वरिष्ठ पण्डित थे। शुकसन्देश और हनुमत्प्रसादशतक के अतिरिक्त इन्होंने वाक्यार्थावली नामक एक पुस्तक संस्कृत महावरों पर भी लिखी थी। कतिपय गद्य ग्रन्थ भी इनकी कृतियों में सम्मिलित हैं। न्यायसभा और कुत्सितकुसीद नाटक भी इन्होंने लिखे थे। इनकी पुस्तकें आन्ध्र साहित्य परिषत्पत्रिका से प्रकाशित हुई हैं।

रंगनाथ– (ना.का.) पञ्चवाणविजय (दे.) के लेखक। इन्होंने रमानुजचम्पू और एक स्तोत्र की भी रचना की थी। इनके पिता का नाम भावनाचार्य था और ये वधूल गोत्र में उत्पन्न हुये थे।

रंगाचार्य– (ना.का.) पञ्चवाण विजय (२) के लेखक जिसका उपनाम पञ्चवाण विलास भी है।

रङ्गिलाल– (ना.का.) इनका लिखा आनन्द चन्द्रोदय (दे.) नाटक बड़ौदा से १९४९ में प्रकाशित हुआ था।

रजनीकान्त– (ना.का.) ये साहित्याचार्य की उपाधि से विभूषित थे। इनका जन्म १९वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हुआ था तथा ये चितगांव बंगाल के निवासी थे। ये बीसवीं शताब्दी तक विद्यमान रहे। इनके लिखे दो नाटक बतलाये जाते हैं– मङ्गलोत्सवम् (दे.)

और विबुधविनोद (दे.) इनके अतिरिक्त इनकी रचनायें हैं- दशमहाविद्याशतकम्, चत्तलविलाप और संस्कृतबोधव्याकरण।

रणजम्बुक– (ना.पा.) हास्यार्णव (दे.) में भाण्ड नायक जो बन्धुरा कुट्टिनी के यहां रहता है और रंगमञ्च पर आकर हास्य सृष्टि करता है। यह भी मृगाङ्कलेखा का प्रेमी है।

रणेन्द्रनाथ गुप्त– (ना.का.) इनका लिखा हरिश्चन्द्र चरितम् (दे.) शीर्षक ५ अंकों का नाटक प्राप्त होता है। ये बंगाल के निवासी थे। इनका समय २०वीं शताब्दी है।

रति– (ना.पा.) प्रबोधचन्द्रोदय (दे.) में कामदेव की पत्नी। कामदेव उसे अपने क्रिया कलाप की सूचनायें देता है कि उसने पर्याप्त सफलता प्राप्त कर ली है।

रतिमन्मथ– (ना.कृ.) जगन्नाथ (दे.) लिखित नाटक। इसमें रति और कामदेव की प्रणयलीला का नाटकीकरण किया गया है। पैलेसलायब्रेरी तंजौर के अनुभाग VIII ३४९० पर इसका उल्लेख किया गया है।

रतिविजय– (ना.कृ.) रामस्वामी शास्त्री लिखित ५ अंकों का नाटक। कुमार सम्भव की रति से प्रेरणा लेकर इस नाटक की रचना हुई है। इसमें कथानक को नया रूप और नई दृष्टि प्रदान की गई है। इसका लक्ष्य यह दिखलाना है कि धर्म और भगवान के प्रति सच्चाई में प्रेम के नये स्वरूप का आविर्भाव होता है जैसा कि गीता में कहा गया है– 'धर्माविरुद्ध काम वस्तुतः भगवान का ही स्वरूप है।'

रत्नकेतूदय– (ना.कृ.) बालकवि लिखित नाटक। रामवर्मा ने अपने भाई गोदावर्मा के हक में राज्य का परित्याग कर दिया था। इस नाटक में कवि द्वारा राज्यत्याग पर्यन्त घटनाओं का उपादान किया गया है। इस नाटक का उल्लेख मद्रास के जर्नल आफ ओरियण्टल रिसर्च (सं. V. १४१) में किया गया है। इसका प्रकाशन श्रीविद्या प्रेस कुम्भकोणम् से हुआ है। रचनाकाल १६वीं शताब्दी।

रत्नखेट श्रीनिवास– (ना.का.) दे. श्रीनिवास (रत्नखेट)

रत्नचूड– (ना.पा.) अनर्घराघव (दे.) में एक विद्याधर जो दूसरे विद्याधर हेमाङ्गद से वार्तालाप में लंकायुद्ध के अन्तिम भाग का परिचय देता है और उसके साथ ही नाटक की समाप्ति हो जाती है।

रत्नपाञ्चालिका– (ना.कृ.) दे. कुवलयवती।

रत्नपञ्चालिका– (ना.पा.) कुवलयवती नाटिका (दे.) में नायिका कुवलयवती का नामान्तर। कुवलयवती को इसी नाम से नारद ने रुक्मिणी को सौंपा था। नामकरण का कारण यह था कि नारद की दी हुई अंगूठी से यह रत्नजटित मूर्ति के रूप में परिणत हो जाती थी।

रत्नमञ्जरी– (ना.कृ.) सम्भवतः राजशेखर (दे.) लिखित यह एक नाटक है जो अब लुप्त हो गया है। आन्ध्रपत्रिका के १९३० के ७८वें अंक में वीरराधवाचार्य ने इस कृति

का उल्लेख किया है।

रत्नमाला– (ना.कृ.) नारायण शास्त्री (दे.) (१) लिखित ७ अंकों का नाटक।

रत्नावली– (ना.कृ.) महाराज हर्ष (दे.) कृत या उनके नाम से प्रसिद्ध चार अंकों की नाटिका। इस नाटिका का साहित्य जगत् में बहुत आदर हुआ है। यह नाट्यकृति शास्त्रीय नियमों से बंधी हुई हैं इसमें यही प्रमाण है कि नाट्यशास्त्रकारों ने इस नाटिका से बहुत अधिक उदाहरण दिये हैं। इसका कथानक बृहत्कथा में प्रतिष्ठित उदयन कथा ही है। किन्तु यह भास (दे.) के स्वप्नवासवदत्तम् (दे.) नाटक की कथावस्तु से मेल नहीं खाती। इसकी संरचना कालिदास के मालविकाग्निमित्र के नमूने पर हुई है। यद्यपि ये दोनों नाटक प्रथम कोटि के नाटक नहीं हैं फिर भी इनमें मौलिक सौन्दर्य के यथेष्ट दर्शन होते हैं।

मुख्य कथानक का प्रारम्भ चर्चरीनृत्य से होता है जो कन्नौज में आजकल भी होली के अवसर पर चांचर नृत्य के नाम से प्रचलित है। मुख्य कथानक प्रारम्भ होने से पहले पृष्ठभूमि के रूप में यौगन्धरायण के क्रियाकलाप का पता चल जाता है। दर्शक जान जाते हैं कि सिंहलेश्वर विक्रमबाहु की पुत्री रत्नावली अनुपल सौन्दर्य शालिनी है। किसी सिद्ध ने भविष्यवाणी कर रक्खी है कि उसका विवाह जिससे होगा वह चक्रवर्ती सम्राट बनेगा। यौगन्धरायण ऐसे अवसरों की तलाश में रहते ही थे; अतः अपने स्वामी उदयन को चक्रवर्ती सम्राट् बनाने के मन्तव्य से सिंहलेश्वर के पास रत्नावली के उदयन से विवाह का प्रस्ताव भेज दिया। किन्तु उदयन का विवाह वासवदत्ता से हो चुका था जो सिंहलेश्वर की भाञ्जी थी; अतः सिंहलेश्वर यह प्रस्ताव मानने को तैयार नहीं थे। पर यौगन्धरायण कब मानने वाले थे! उन्होंने कञ्चुकी वाभ्रव्य को भेज कर सिंहलद्वीप में यह खबर उड़वा दी कि वासवदत्ता लावणक नगर में आग से जलमरी है। अब सिंहलेश्वर को कोई आपत्ति नहीं थी। अतः उन्होंने अपने मन्त्री वसुभूति और कञ्चुकी बाभ्रव्य के साथ अपनी पुत्री रत्नावली को उदयन के पास भेज दिया। किन्तु मार्ग में जहाज टूट गया जिस दुर्घटना में सभी वह गये। संयोग से रत्नावली जहाज के एक तख्ते का सहारा लेकर किनारे लग गई। उसी जहाज में कौशाम्बी का एक व्यापारी भी यात्रा कर रहा था। वह भी जैसे तैसे किनारे लग गया। उसने रत्नावली को उसकी मणिमाला देखकर पहिंचान लिया। अतः उसे मन्त्री यौगन्धरायण को सौंप दिया। यौगन्धरायण ने यह कहकर कि यह लड़की सागर से मिली है उसका नाम सागरिका रख दिया और रानी वासवदत्ता की सेवा में समर्पित कर दिया। रानी ने मन्त्री के कहने से उसे अपनी सेवा में रख तो लिया किन्तु उसके मन में यह भावना भी पैदा हो गई कि इतनी अनिन्द्य सुन्दरी राजा की निगाह में नहीं पड़नी चाहिये। अतः वह प्रयत्नपूर्वक राजा की निगाह से बचाती रही। इसी पृष्ठभूमि में नाटक का प्रारम्भ होता है।

वसन्तोत्तसव (होलिकोत्सव) भारतीय समाज का आमोद-प्रमोदमय एवं आनन्दमय

समय होता है। वही उत्सव मनाया जा रहा है। लड़कियां गा रही हैं, नाच रही हैं। अबीर उड़ रहा है, पिचकारियों से रंग विरंगी जल धारायें निकल रही हैं। कामदेव का पूजन होना है। मूर्ति अशोकवृक्ष के नीचे स्थापित की गई है। रानी ने राजा को उत्सव में सम्मिलित होने के लिये आमन्त्रित किया है। रानी वासवदत्ता स्वयं समारोह स्थल पर आती है। उसके पूजन की सामग्री लेकर सागरिका भी अन्य दासियों के साथ आती है। रानी उसे देखकर आशङ्कित हो जाती है कि कहीं राजा उसे देख न ले। अतः दूर रखने के लिये उसे आदेश देती है कि सारिका को अकेले मन छोड़ना- महल में ही रहना। सागरिका 'जो आज्ञा' कह कर वहां से चल दी, किन्तु सोचने लगी- 'सारिका का उत्तरदायित्व तो सुसंगता को दे आई हूं। यहां रूक कर देख लूं कि यहां कामदेव का पूजन कैसे किया जाता है। इसके लिये वह एक ओर जाकर कुछ फूल चुनने लगती है। इधर वासवदत्ता कामदेव का पूजन कर पास ही एक चौकी पर राजा को बैठाकर उसका भी पूजन प्रारम्भ कर देती है। सागरिका फूल लेकर आती है और कञ्चुकी की ओट से राजा की पूजा देखने लगती है तथा सोचती है कि हमारे यहां तो मूर्ति बनाकर कामदेव की पूजा की जाती है। यहां कामदेव के समान रूपवान पुरुष को बैठाकर पूजा की जाती है। वह भी छिपकर फूल चढ़ा देती है। उत्सव मनाते मनाते शाम हो जाती है। वैतालिक यशोगान करने लगते हैं जिससे सागरिका जान लेती है कि यह तो उदयन है जिनके लिये मैं भेजी गई हूं। वह रूपासक्त हो जाती है और अपना दिल दे बैठती है। यहां पर प्रथम अंक समाप्त हो जाता है।

दूसरे अंक में अपने पीडित मन के विनोद के लिये सागरिका ने राजा का चित्र बनाया है जिसे वह कदलीमण्डप में एकान्त में बैठकर देख रही है। सुसंगता पीछे से आकर चुपके से देख लेती है। सागरिका के यह बहाना बनाने पर कि मैंने तो कामदेवार्चन के अवसर पर कामदेव का चित्र बनाया है सुसंगता उस चित्र के पास ही सागरिका का चित्र बना देती है और कहती है कि मैंने इस सूने चित्र में रति का भी चित्र शामिल कर दिया है। फिर उसके आग्रह करने पर सागरिका अपनी समस्त प्रेम वेदना उससे कह देती है। उसकी प्रेम वेदना को शान्त करने के लिये सुसंगता नलिनी दल लाकर शीतोपचार करती है। इतने में ही एक बन्दर का उपद्रव प्रारम्भ होता है। बन्दर उधर से ही आ रहा है अतः दोनों लड़कियां भयभीत होकर भाग खड़ी होती हैं और चित्र फलक वहीं पड़ा रह जाता है। बन्दर कदली गृह में आकर दही भात के लोभ में मैना का पिंजड़ा खोल देता है और मैना उड़ जाती है। उधर श्री खण्डदास नामक एक साधु ने राजा को एक ऐसा मन्त्र दिया है जिसके प्रभाव से लतायें वे सौसम ही फूल खिलाने लगती हैं। राजा अपने मन्त्र के प्रभाव को देखने के लिये विदूषक के साथ जा रहा है कि मैना उन लड़कियों का सारा संवाद दोहराने लगती है। राजा इस प्रेम कथा को सुनकर प्रभावित हो जाता है। विदूषक जोर से हंसता है तब मैना उड़कर कदली गृह की ओर जाती है। राजा और

विदूषक उसका पीछा करते हुये कदली गृह की ओर ही जाते हैं जहां उन्हें पड़ा हुआ चित्र फलक मिल जाता है। अब राजा सारी बाते समझ जाता है और उस सुन्दरी के प्रेमजाल में फंस जाता है तथा वियोग दशा का अभिनय करने लगता है। दोनों लड़कियां चित्र फलक लेने लौटती हैं तब राजा और सागरिका का मिलन हो जाता है किन्तु बात आगे नहीं बढ़ पाती। इसी बीच वासवदत्ता काञ्चनमाला के साथ अकालकुसुम देखने आती है तब लड़कियां छिपकर एक ओर हट जाती हैं। विदूषक चित्र फलक को वगल में छिपा लेता है। राजा वासवदत्ता से बात करने लगते हैं। इसी बीच चित्रफलक विदूषक की बगल से गिर जाता है जिसे रानी और काञ्चनमाला देख लेती हैं और सारा रहस्य जान लेती हैं। वह क्रुद्ध होकर सरदर्द का बहाना कर चली जाती है, राजा उसके पैरों पर गिरकर माफी मांगते हैं। रानी मानती नहीं और चली ही जाती हैं। यहां पर दूसरा अंक समाप्त होता है।

तीसरा अंक राजा और सागरिका को मिलाने के लिये विदूषक और सुसंगता की चेष्टा एवं वासवदत्ता द्वारा उसमें विघ्न डालने को लेकर चला है। इसे संकेत का नाम दिया गया है। विदूषक और सुसंगता ने मिलकर योजना बनाई है कि वासवदत्ता ने राजा और सागरिका को दूर रखने के लिये जो अपना परिधान सुसंगता को भेंट में दिया है उसे सागरिका को पहनाकर तथा स्वयं काञ्चनमाला का रूप धारण कर रात के कुछ अंधेरे में चित्रशाला में दोनों को मिला दिया जाय। इस विषय में विदूषक और सुसंगता जब गुप्त बात कर रहे थे तब छिपकर काञ्चनमाला सुन लेती है और निश्चित संकेत स्थान पर समय से कुछ पहले वास्तविक रानी और काञ्चन माला दोनों पहुंच जाती हैं। राजा और विदूषक उन्हें सागरिका समझकर प्रेम प्रदर्शन करना और वासवदत्ता की निन्दा करना प्रारम्भ कर देते हैं। रानी क्रुद्ध होकर लौट पड़ती है। राजा की सभी क्षमाप्रार्थनायें ठुकरा देती है। सागरिका और सुसंगता देर से आती हैं और जान लिये जाने के कारण सागरिका डर कर फांसी लगाने का उपक्रम करने लगती है। उधर राजा वासवदत्ता द्वारा आत्महत्या की सम्भावना से शंकित होकर उसे बचाने विदूषक के साथ चल पड़ते हैं। मार्ग में उन्हें सागरिका फांसी लगाने की चेष्टा करते हुये मिलती है। राजा उसे वासवद्तता समझकर मनाने लगते हैं और सागरिका को पहिंचान कर पुनः उससे प्रणय निवेदन करना प्रारम्भ कर देते हैं। उधर देवी वासवदत्ता कठोर व्यवहार के लिये पश्चात्ताप कर पुनः लौट पड़ती है। मार्ग में यह दृश्य देखकर छिपकर दोनों की बाते सुनती है और एकदम आगे बढ़कर स्वयं को प्रकट कर देती है। राजा यह कहकर बचना चाहते हैं कि तुम्हारे जैसे वेष को देखकर मैं धोखा खा गया। किन्तु राजा की बात चलती नहीं क्योंकि वासवदत्ता ने उनकी सब बातें सुन ली थीं। अतः क्रुद्ध होकर रानी विदूषक और सागरिका दोनों को पकड़ ले जाती है तथा बन्द कर देती है। यहां तीसरा अंक समाप्त हो जाता है।

चौथा अंक इन्द्र जाल विषयक है। प्रारम्भ में ज्ञात हो जाता है कि रानी ने सत्कार

पूर्वक विदूषक को छोड़ दिया है और खबर उड़ा दीहै कि सागरिका उज्जैन (वासवदत्ता के पीहर) भेज दी गई है। सागरिका रत्नमाला सुसंगता को देकर उसे किसी ब्राह्मण को दान देने के लिये कह देती है और सुसंगता उसे विदूषक को दे देती है।

राजा को युद्ध में विजय मिल जाती है जिससे रुमण्वान के साथ वसुभूति और बाभ्रव्य ने भी योगदान दिया था। ये प्रवहणभंग से बचकर निकल आये थे। उसी समय उज्जैन से एक जादूगर आता है। वह पीहर का जादूगर है, अतः वासवदत्ता राजा के साथ बड़े प्रेम से जादू का खेल देखती है। जादूगर ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्र और अप्सरा इत्यादि सभी को आकाश में दिखला देती है। विदूषक कहता है– इनको दिखला कर क्या करोगे सागरिका को दिखलाओ तब जाने। इसी समय वासवदत्ता के मामा सिहंलेश्वर के मन्त्री वसुभूति के आने का समाचार मिलता है। राजा उनके स्वागत के लिये इन्द्रजाल को फिर कभी देखने का वादा कर उठ खड़े होते हैं। जब राजा वसुभूति से बात कर ही रहे होते हैं भवन में आग लग जाती है। वासवदत्ता घबरा उठती है और भवन में कैद सागरिका को बचा लेने की राजा से प्रार्थना करती है। राजा आग में कूद पड़ते हैं और सागरिका को बचाकर लाते हैं। सागरिका (रत्नावली) और वसुभूति एक दूसरे को पहिंचान लेते हैं जिसमें प्रमाण विदूषक के गले में पड़ी रत्नमाला भी हो जाती है। यौगन्धरायण आकर सब रहस्य खोलता है क्योंकि यह सब उसी की योजना थी। वासवदत्ता यह जानकर अत्यन्त शर्मिन्दा होती है कि उसने अपनी ममेरी बहन से ऐसा बुरा व्यवहार किया और राजा तथा रत्नावली का विवाह स्वयं ही करा देती है। नाटक सुखान्तता में समाप्त हो जाता है।

नाटक पर एक दृष्टि– संस्कृत में उच्चकोटि के नाटको में इसकी गणना की जाती है। यह उदयन की चरित्र परम्परा में ही आता है। स्वयं हर्ष के शब्दों में उदयन के लोक प्रसिद्ध चरित्र में एक आकर्षण है 'लोके हारि च वत्सराजचरितम्' इसमें भास के स्वप्नसवदत्तम् से उदयन, वासवदत्ता, यौगन्धरायण, रुमण्वान, वसुन्धरा जैसे पात्रों का ही उपादान नहीं किया गया है– लावाणक में वासवदत्ता के जलकर मर जाने जैसी घटनाओं का भी आश्रय लिया गया है किन्तु उसमें आवश्यकतानुसार परिवर्तन भी कर लिये गये हैं। वासवदत्ता के जलकर मरने का प्रचार केवल सिंहल में ही किया गया है राजा को इसका पता नहीं। यह परिवर्तन राजा के विलासमय जीवन के चित्रण के लिये आवश्यक है। यद्यपि उदयन और वासवदत्ता दोनों के चरित्रों का अवमूल्यन हुआ है फिर भी तत्कालीन राजघरानों के वातावरण के चित्रण में उसमें स्वाभाविकता अधिक है। स्वप्नवासवदत्तम् के चरित्र आदर्शप्रवण हैं जबकि इस नाटक में सौतियाडाह का अच्छा चित्रण किया गया है।

इस नाटक की रचना में शृङ्गाररस, धीरललितनायक और कैशिकी वृत्ति की प्रधानता है। युद्ध का वर्णन सूच्य है और एक दो पद्यों में ही इसे समाहित कर दिया गया है।

रचना में धारावाहिकता, प्रवाहसौष्ठव और कल्पनाशीलता के साथ चमत्कार का उचित उपादान काव्य को मनोरम बनाने में पूर्ण सक्षम है। संस्कृत और प्राकृत दोनों भाषाओं का परिनिष्ठित प्रयोग इसकी अन्यतम विशेषता है। नाटक में कहीं भी नीरसता उत्पन्न नहीं होती। समग्ररूप में यह एक अच्छा नाटक बन पड़ा है।

इस नाटक का प्रकाशन अनेक स्थानों से हुआ है और इसपर स्वतन्त्र लेख भी लिखे गये हैं। अनेक टीकायें लिखी गई जिनमें कतिपय प्रमुख टीकाकारों के नाम हैं– भीमसेन मुद्गल देव (कैटेलाग १.४९२), गोविन्द (बम्बई से प्रकाशित), प्राकृताचार्य (कैटेलाग II ११५), विद्यासागर (कलकत्ता से प्रकाशित), के.एन. न्याय पञ्चानन (कलकत्ता से प्रकाशित), एस.सी. चक्रवर्ती (ढाका से प्रकाशित), शिव (हुल्टजन की रिपोर्ट पाण्डुलिपि संग्रह मद्रास II ३४, ११७), लक्ष्मण सूरि (कलकत्ता से प्रकाशित), आर.वी. कृष्णमाचार्य (मद्रास से प्रकाशित), एस.राय (श्रीरंगम् से प्रकाशित), वी.एस. अय्यर (कुम्बकोणम् से प्रकाशित), नारायण शास्त्री निगुधर (बम्बई से प्रकाशित जिसे अंग्रेजी प्रस्तावना के साथ जे.एम. जोगेल्कर ने प्रकाशित कराया) उक्त टीकाओं में अनेक में परिचय देने वाली अच्छी प्रस्तावनायें भी हैं। कई स्वतन्त्र पुस्तकें एवं भाषान्तर भी प्रकाशित हुये हैं।

रत्नावली– (ना.पा.) महाराज हर्ष लिखित रत्नावली नाटक की नायिका। यह सिंहलेश्वर विक्रमबाहु की पुत्री और प्रसिद्ध सुन्दरी प्रद्योतपुत्री वासवदत्ता की ममेरी बहन है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता है इसका अदृष्टपूर्व सौन्दर्य। विदूषक के शब्दों में वह अपूर्वाश्रीः है। उसका निर्माण कर ब्रह्मा भी आश्चर्यचकित रह गया होगा। उसके सौन्दर्य का इससे अधिक प्रमाण क्या हो सकता है कि जिस वासवदत्ता को साहित्य जगत् में इतनी प्रतिष्ठा मिली है वह भी इसके अभूतपूर्व सौन्दर्य को देखकर हतप्रभ रह जाती है, उसे भी उसके सामने अपनी उपेक्षा की आशङ्का हो जाती है। सुसंगता और विदूषक उसे प्रकृति का सर्वोत्तम तोहफा समझकर राजा को उससे मिलाने को आतुर है। प्रेमी स्वभाव भी उसकी एक विशेषता है। वह उन रूपवती मुग्धाओं में है जो निरन्तर किसी सुन्दर तथा विशिष्ट स्थिति वाले पुरुष की प्रेयसी बनने को आतुर रहती है। स्वयं भी उसमें भावना की तीव्रता हिलोरें मारती है। एक दृष्टि से ही पहली ही वार उदयन को देख कर वह उन्हें प्राप्त करने के लिये आतुर हो जाती है और जब अपने प्रेमी को प्राप्त करने में निराश हो जाती है तब अपना जीवन समाप्त करने की चेष्टा करने लगती है, यहांतक कि जब भवन में आग लग जाती है तब वह उसे अपना सौभाग्य ही समझती है। उसे वह अपने वियोग दुःख की समाप्ति का एक साधन मानती है।

लक्षणज्ञों के अनुसार वह जिसकी पत्नी बनेगी वह चक्रवर्ती सम्राट् बनेगा। किन्तु दुर्भाग्य उसे रत्नावली से सागरिका बना देता है। वह दास्य जीवन बिताने के लिये वाध्य हो जाती है। वह इतनी गम्भीर भी है और कुलाभिमानिनी भी कि अनेक कष्ट और पीड़ा सहते हुये भी वह अपनी वास्तविकता अपनी प्रिय सखी सुसंगता पर भी प्रकट नहीं होने

देती। उसे भय है कि कोई उसका विश्वास नहीं करेगा। कलाभिज्ञता भी उसकी अन्यतम विशेषता है। राजा को एक बार ही देख कर वह उनका ऐसा सच्चा चित्र बना देती है कि जो भी देखता है राजा को पहिंचान लेता है।

स्त्रीसुलभ कमजोरियां उसके अन्दर भी हैं। अवसर आते ही वह अपनी स्वामिनी वासवदत्ता को धोखा देने के लिये तैयार हो जाती है। उसके अन्दर ईर्ष्याभाव भी कम नहीं है। वह राजा को उपालम्भ देते हुये कहती है– 'भर्तः किमेतेनालीकदाक्षिण्येन जीवितादपि वल्लभाया देव्या आत्मानमपराधिनं करोषि।' (स्वामी इस झूठे दिखावे से क्या लाभ? महाराणी को तो तुम जीवन से भी अधिक प्यार करते हो, फिर मुझसे प्रेम का दिखावा कर तुम उसके अपराधी क्यों बनते हो?) सागर से प्राप्त होने के कारण वह सागरिका कहलाई। इसी प्रकार उसका नाम रत्नावली है तो घरेलू ही किन्तु इस तथ्य पर भी प्रकाश डालता है कि उसके पास जो रत्नावली (रत्नों की माला) है प्रवहण भंग के बाद व्यापारी द्वारा वह उसी माध्यम से पहिंचानी गई है।

रत्नेश्वरप्रसादन– (ना.कृ.) गुरुराम (दे.) लिखित नाटक। इसमें ५ अंक हैं। इसमें रत्नचूड के रत्नावली से विवाह का चित्रण किया गया है। रत्नावली गन्धर्व वसुभूति की पुत्री थी और वनारस के देवता रत्नेश्वर की कृपा से उसका पालनपोषण हुआ था। उसने देवता को अपनी भक्ति से प्रसन्न कर लिया था। इसकी प्रति मद्रास ओरियण्टल लायब्रेरी के विवरणात्मक पाण्डुलिपि अनुभाग में सं. XXI ८४८२ पर संकलित की गई है। इसका प्रकाशन १९३८ में हो गया था।

रदनिका– (ना.कृ.) मृच्छकटिक में चारुदत्त की दासी जो शौरसेनी बोलती है।

रमयन्तिका– (ना.पा.) मल्लिकामारुत (दे.) में पताकानायक कलकंठ की प्रेयसी जो अनेक कठिनाइयों के बाद प्रियतम को प्राप्त करने में सफल होती है। इसका चरित्र मालतीमाधव की मदयन्तिका की अनुकृति मात्र है।

रमाचौधरी– (डा.) ये २०वीं शताब्दी (आधुनिक काल) की प्रतिष्ठित बंगाली लेखिका है। इनका परिवार और सम्बन्धियों का वर्ग शिक्षितों का समाज था। ख्यातनामा प्रतिष्ठित लेखक डा. यतीन्द्र विमल चौधरी इनके पति थे। वैरिष्टर सुधांशुमोहन बोस पिता, कांग्रेसाध्यक्ष आनन्दमोहन वोस पितामह, और प्रसिद्ध वैज्ञानिक जगदीश चन्द्र वसु इनके पिता के मामा थे। इन्होंने स्वयं आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय से डी.फिल की उपाधि प्राप्त की थी। रवीन्द्रभारती विश्वविद्यालय में कुलपति तथा अनेक संस्थाओं की अध्यक्षा रहीं। जर्मन शासन ने १९७० में इनका सम्मान किया। इन्होंने १९७१ में रूस यात्रा भी की। संस्कृत, बंगला और अंग्रेजी तीनो भाषाओं में पर्याप्त साहित्य लिखा जिसमें संस्कृत के २१ नाटकों का उल्लेख किया जाता है, वे हैं– अग्निवीणा, अभेदानन्द, कविकुलकमल, कविकुलकोकिल, गणदेवता, चैतन्यचैतन्यम्, देशदीपम्, नगरनूपुरम्, निवेदितनिवेदितम्, पल्लीकमलम्, प्रसन्नप्रासाद, भारततातम्, भारतपथिक, भारताचार्य, मेघमेदुरमेदनीयम्,

यतीन्द्रम्, युगजीवनम्, रसमयरासमणि, रामचरितमानस, लेनिन विजयम्, शङ्करशङ्करम् और संसारामृतम्।

रमानाथ मिश्र– (ना.का.) ये उड़ीसा निवासी यदुनाथ मिश्र के पुत्र थे। इनका जन्म १९०४ में हुआ था। बालेश्वर नगंर के श्री रामचन्द्र संस्कृत विद्यालय मे अध्यापक थे। इनके लिखे निम्नलिखित नाटक बतलाये जाते हैं– आत्मविक्रय, कर्मफल, चाणक्यविजय, पुरातनबालेश्वर, प्रायश्चित्त, श्रीरामविजय और समाधान।

रमानाथ शिरोमणि– (ना.का.) ये मेदिनीपुर बंगाल के निवासी थे। इनका समय १९वीं २०वीं शताब्दी है। इनका लिखा पारिजातहरण (दे.) नाटक १९०४ में प्रकाशित हुआ था।

रमानाथ शास्त्री एस.के.– (ना.का.) दोलापञ्चीककम् नामक हास्यप्रधान नाटक एवं मणिमञ्जूषा (१) के लेखक।

रमामाधव– (ना.कृ.) यह विनायकरावबोकील की लिखी नाट्यकृति है। यह माधवराव पेशवा और रमाबाई के चरित्रचित्रण के उद्देश्य से लिखा गया नाटक है। इसका रचनाकाल २०वीं शताब्दी है।

रमेशचन्द्र– (ना.का.) इनका लिखा प्रतीकनाटक 'सरलचित्सुखीसार' प्राप्त होता है जिसमें शास्त्रीय तत्वों का नाटकीकरण किया गया है। मद्रास संस्कृत जर्नल में इसका प्रकाशन कर दिया गया था।

रम्भारावणीयम्– (ना.कृ.) यह सुन्दर वीर राघव (दे.) का लिखा चार अंकों का नाटक है। इसमें रावण द्वारा रम्भा के साथ वलात् संभोग का वर्णन किया गया है जिस पर क्रुद्ध होकर रम्भा के प्रेमी नलकूवर ने शाप दे दिया था कि यदि रावण किसी स्त्री से वलात् सम्भोग करेगा तो उसके सर के हजारों टुकड़े हो जायेंगे। (इसीलिये रावण सीता के साथ वलात्कार से दूर रहा।)

इस नाटक की रचना श्रीरंगम् के चैत्रोत्सव में अभिनय के लिये हुई थी। मद्रास की ओरियण्टल लायब्रेरी की त्रैवार्षिक खोज रिपोर्ट में II २३४६ पर इसका उल्लेख किया गया है।

इस नाटक में मानवपात्रों के नाम पशुपक्षिओं के नाम पर रक्खे गये हैं। रावण, वाणासुर और सहस्रार्जुन समसामयिक दिखलाये गये हैं। कई पात्र रूप बदलकर आते हैं। धोखा धड़ी की अधिकता है। कथानक में एक सूत्रता का अभाव है।

रविदास– (ना.का.) इनका लिखा मिथ्याज्ञानखण्डनम् (दे.) एक प्रतीक नाटक है। इसका प्रकाशन कलकत्ता से हो चुका है। इनके नाम पर एक दूसरे नाटक मिथ्याज्ञानविडम्बनम् (दे.) का भी उल्लेख पाया जाता है।

रविपति त्रिपुरान्तक– (ना.का.) ये १४वीं शताब्दी के आन्ध्र के कवि हैं। इनके

'प्रेमाभिरामम्' शीर्षक का उल्लेख किया जाता है।

रविवर्मा– (ना.का.) प्रद्युम्नाभ्युदय (दे.) के लेखक रविवर्मा का जन्म जयतुंगनाडु में १२६६-६७ सन् में हुआ था। इनकी उपाधि संग्रामधीर थी। इनके पिता का नाम राजा जयसिंहवीरकेरल और माता का नाम उमादेवी था। इनका विवाह पाण्ड्य राजकुमारी से हुआ था। ३३ वर्ष की आयु में इन्होंने केरल का राज्य प्राप्त किया था। अनेक पाण्ड्य, चोल वीरों को पराजित कर इन्होंने अपने राज्य का विस्तार कर लिया और ४६ वर्ष की आयु में काञ्ची के तट पर इनका राजतिलक सम्पन्न हुआ। ये बहुत ही दानशील थे। अनेक मन्दिरों को उदार दान दिये और धर्म को बढ़ाने का प्रयत्न किया। ये कवि तो थे ही गायक भी थे और कला को सब प्रकार का संरक्षण देते थे। इनकी सभा को कलाकार शोभित करते थे।

रसमयरासमणि– (ना.कृ.) डा. रमाचौधरी (दे.) लिखित १२ दृश्यों का नाटक। इसमें रासमणि नामक विधवा का चरित्रचित्रण किया गया है जिसने अंग्रेजों द्वारा सताई गई प्रजा की साहस के साथ रक्षा की।

रसरत्नाकर– (ना.कृ.) यह एक भाण है जिसकी रचना जयन्त (दे.) ने की थी।

रसविलास– (ना.कृ.) चोक्कनाथ विरचित भाण जिसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम खण्ड सं. ११६ में किया गया है। यह १७वीं शताब्दी की रचना है।

रससदनभाण– (ना.कृ.) यह गोदावर्म युवराज (उपनाम रामवर्मा) का लिखा एक भाण है। इसका प्रकाशन काव्य माला सीरीज बम्बई से हो चुका है। इसमें लोकोक्तियों का प्रयोग अधिक हुआ है। इसका नायक विट है जो अनेक वारवनिताओं के साथ केलिक्रीड़ायें करते हुये लोगों को बुराइयों से सावधान करने का प्रयत्न करता है।

नायक विट ने अपने मित्र मकरन्द की प्रेमिका की देखभाल करने का वचन दिया है। वह उस प्रेमिका को इधर उधर खूब घुमाता है। कभी मन्दिर में, कभी गलियों में, कभी अपने घर लेजाकर खूब बातें करता है। इसी बीच समीपवर्ती नगर की एक महिला उसे निमन्त्रण देती है जिसके लिये वह वहां चला जाता है। जब वह लौटकर आता है तब देखता है कि वह सुन्दरी तो अपने प्रेमी के पास चली गई।

(२) **रससदनभाण**– (ना.कृ.) यह राजकुमार का लिखा भाण बतलाया जाता है।

रसार्णवतरंग– (ना.कृ.) यह एक भाण है जिसके रचनाकार हैं– रंगनाथाचार्य के पुत्र कृष्णमाचार्य।

रसिकजनमानसोल्लास– (ना.कृ.)यह एक भाण है जो मैसूर पुस्तकालय सं. २८१ पर संकलित किया गया है। इसके लेखक हैं श्रीवेङ्कट। इस भाण में तिरुपति के देवता श्रीनिवास के वासन्तिक महोत्सव का चित्रण किया गया है। विटाचार्य कोक्कोकोपाध्याय द्वारा विट तथा वेश्याओं को प्रशिक्षण देने का चित्रण इसमें किया गया है।

रसिकजन रसोल्लास– (ना.कृ.) यह १८वीं शताब्दी के वेङ्कटकौण्डिन्य (दे.) द्वारा लिखित एक भाण है जिसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम में खण्ड ३ सं. १०६ पर किया गया है।

रसिक तिलकम्– (ना.कृ.) यह मुद्रदुराम (दे.) लिखित एक भाण है जिसकी रचना १८वीं शताब्दी में की गई थी। कमलापुरी तंजौर में त्यागराज के वसन्तोत्सव में इसका प्रथम अभिनय किया गया था। इसमें विट और नायिका क्रमशः रसिकशेखर और कनकमंजरी हैं।

रसिक भूषण– (ना.कृ.) उदयवर्मा लिखित भाण। इनका समय है १९वीं शताब्दी।

(१) **रसिकरञ्जन–** (ना.कृ.) सुन्दरराज (दे.) लिखित नाटक। इसकी रचना १९वीं शताब्दी के मध्य में की गई थी।

(२) **रसिकरंजन–** (ना.कृ.) यह एक भाण है जिसकी रचना श्रीनिवास (दे. श्रीनिवास ६) ने की थी। इसकी रचना १९वीं शताब्दी में की गई थी।

रसिक विनोद– (ना.कृ.) यह कमलाकर भट्ट (दे.) का लिखा त्रोटक है। इसमे गोकुलेश (वल्लभ के पौत्र) के जीवन के अनेक प्रसंगों का चित्रण किया गया है तथा उनकी वैष्णवी विचारधारा का प्रतिपादन करना इसका उद्देश्य है। गोकुलेश की गुर्जरयात्रा तथा सर्वभेद विरहित वृत्ति का इसमें अच्छा परिचय प्राप्त होता है। गीता, भागवत एवं गोकुलेश का सूक्ष्म परिचय इस रुपक में मिलता है। इसकी रचना १७वीं शताब्दी में हुई थी।

रसिकामृत– (ना.कृ.) यह शङ्कर नारायण (दे.) का लिखा एक भाण है। ई. हुल्ट्ज द्वारा की गई दक्षिण भारतीय पाण्डुलिपियों की खोज रिपोर्ट (II III) में इसका उल्लेख किया गया है।

रसोदर– (ना.कृ.) यह एक भाण है जो मैसूर की ओरियण्टल लायब्रेरी के पाण्डुलिपि अनुभाग में संकलित किया गया है। इसके लेखक हैं सुरपुरम् अण्णराय (दे.)।

रसोल्लास– (ना.कृ.) यह एक भाण है जिसकी रचना श्रीनिवास वेदान्ताचार्य (दे.) ने की थी। इसका संकलन तंजौर की पैलेस लायब्रेरी पाण्डुलिपि अनुभाग सं. VIII ३५४९ और मद्रास ओरियण्टल लायब्रेरी की त्रैवार्षिक खोज रिपोर्ट सं. १.१०१३ पर किया गया है।

रसोल्लास– (ना.कृ.) दे. युवराज।

राक्षस– (ना.पा.) मुद्राराक्षस (दे.) में प्रतिनायक। यह परम स्वामिभक्त है। अपने पुराने महाराज की पराजय और उनके अन्त का उसे अत्यन्त दुःख है और वह प्राणपण से अपने पुराने स्वामी का बदला लेना चाहता है। वह उन अतीत स्वामियों के कार्य स्थलों को देखकर भाव-विभोर हो जाता है। वह नीतिनिपुण और कार्य कुशल है तथा साथ ही विश्वसनीय व्यक्ति भी है। चाणक्य उसके गुणों पर मुग्ध है और समझता है

कि वही एक व्यक्ति राज्यशासन को स्थायित्व दे सकता है। अतः चाणक्य उसे मन्त्रीपद प्रदान करने के लिये उत्सुक है। किन्तु राक्षस की यह निपुणता उसे सफलता नहीं दे सकी। दुर्भाग्य से उसका सामना एक ऐसे व्यक्ति से है जो अपनी कूट नीति के लिये भारतीय इतिहास में मूर्धन्य माना जाता है। वह अपनी योजनाओं में बुरी तरह पराजित होता है और अन्त में ऐसी स्थिति बन जाती है जब उसे अपनी, अपने परिवार की और अपने मित्रों की रक्षा के लिये चाणक्य की योजना स्वीकार करनी पड़ती है। यह उसकी पराजय है किन्तु पराजय में भी विजय है क्योंकि कूटनीति और राजनीति का अन्वर्थावतार चाणक्य उसे योग्य मन्त्री मानता है और उसे मन्त्रीपद प्रदान करने के प्रयत्न में कोई कसर नहीं उठा रखता। यह उसकी योग्यता का सबसे बड़ा प्रमाण है।

कतिपय पाश्चात्य विद्वानों ने उसे नायक की मान्यता देने का प्रयास किया है। किन्तु उसका चित्रण प्रतिनायक के रूप में ही हुआ है। परिशीलक उसकी विजय नहीं चाहते किन्तु उससे सहानूभूति अवश्य रखते हैं। वह अपने उद्देश्य में पराजित अवश्य होता है। स्वभाव, आवेश, जल्दवाजी या महत्वाकांक्षा जैसे दुर्गुण उसे पराजय कीओर नहीं ले जाते। वह सारे कार्य ऐसे ही करता है जैसे एक कूटनीतिज्ञ से सम्भावित हैं। उसके पराजय का कारण एक मूर्धन्य कूटनीतिज्ञ के जाल में फंस जाना है जो स्वयं उसकी प्रशंसा करते नहीं थकता।

राक्षसी– (ना.पा.) वेणीसंहार (दे.) में एक पात्र। उसे हिडिम्बा ने अपने पुत्र घटोत्कच के वीरगति को प्राप्त हो जाने के बाद भीम के साथ रहने के लिये भेजा है। वह अपने पति के साथ युद्ध भूमि में घूम फिर कर मृत योद्धाओं के मांस और रक्त का आहार करती है।

रागविराग प्रहसन– (ना.कृ.) जीवन्यायतीर्थ का लिखा प्रहसन। राजा संगीतद्वेषी है और उसने अपने प्रदेश में संगीत पर प्रतिबन्ध लगा रक्ख है। किन्तु जब उसे ज्ञात होता है कि राजकुमार पिता की हत्या करना चाहता था और राजकुमारी प्रियकर के साथ भाग जाना चाहती थी, तथा ये दोनों अनर्थ संगीत के प्रभाव से बच गये तब राजा इतना प्रभावित हुआ कि उसने संगीत का विरोध छोड़ दिया। और संगीत पर प्रतिबन्ध हटा लिया। इसकी रचना १९५९ में हुई थी।

राधवाचार्य– (विजयमूरि) (ना.का.) ये काञ्चीवरम के रहने वाले कौशिक गोत्रीय थे। इनका लिखा शृङ्गारदीपक (दे.) भाण प्रकाश में आया है। मद्रास ओरियण्टल लायब्रेरी के डिस्क्रिप्टिव कैटेलाग XXI ८५३४ पर इसका संकलन किया गया है।

(१) **राघवानन्द–** (ना.कृ.) नैपाली कवि माणिक की इस नाम की रचना का उल्लेख किया जाता है। यह राम कथा परक रचना है।

(२) **राघवानन्द–** (ना.कृ.) यह ७ अंकों की नैधुव वेङ्कटेश्वर की रामकथापरक रचना

है। तंजौर पुस्तकालय के कैटेलाग में सं. ३४९६ पर इसका उल्लेख किया गया है। राम वनवास से लेकर अयोध्या लौटने तक श्रीराम कथा इसका विषय है। किन्तु कथानक में अनेक परिवर्तन किये गये हैं। ऐसे पात्रों की भरमार है जो बनावटी हैं और रूप बदल कर आते हैं। कुछ पात्र अदृश्य रूप में भी कार्य करते हैं। एकोक्तियों और वर्णनात्मक पद्यों का बाहुल्य है। चरित्रचित्रण का विकास उचित रूप में हुआ है। अद्भुत और भयानक रसों का सामञ्जस्य इस कृति की विशेषता है। इसमें मागधी और अपभ्रंश भाषाओं का प्रयोग हुआ है। इसका रचनाकाल १८वीं शताब्दी है।

(१) **राधवाभ्युदय–** (ना.कृ.) यह गंगाधर (दे.) लिखित नाटक है। इसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम ११.३६ पर किया गया है। यह रामकथा परक नाटक है।

(२) **राघवाभ्युदय–** (ना.कृ.) यह रामकाव्यविषयक नाटक भगवन्तराय का लिखा हुआ है। कैटेलागस कैटेलागोरम ११.११७ पर इसका उल्लेख किया गया है। रामकथा परक इस नाटक में विश्वामित्र के साथ राम के प्रयाण से प्रारम्भ कर रावणवध पर्यन्त कथानक का उपादान किया गया है। साथ ही कथानक में अनेक परिवर्तन भी किये गये हैं।

(३) **राघवाभ्युदय–** (ना.कृ.) हेमचन्द्र-शिष्य रामचन्द्र (दे.) लिखित नाटक। इसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम III १०७ पर किया गया है।

(४) **राघवाम्युदय–** (ना.कृ.) यह वेङ्कटेश्वर का लिखा नाटक बतलाया जाता है। इसका संकलन कैटेलागस कैटेलोगोरम I ५०० पर किया गया है।

राघवेन्द्रकवि– (ना.का.) राधामाधव (दे.) नाटक के लेखक। १८वीं शताब्दी के कवि हैं।

राजकुमार– (ना.का.) ये कोटिलिंगपुर के निवासी थे। रससदन भाण इनकी रचना है।

राजचूडामणि दीक्षित– (ना.का.) ये तंजौर के राजा रघुनाथ (दे.) के आश्रित कवि थे जिनका समय ईसा की १७वीं शताब्दी है। इनके पिता का नाम रत्नखेट श्रीनिवास (दे.) और माता का नाम कामाक्षी था। जिस प्रकार इनके पिता का साहित्य बहुक्षेत्रव्यापी था उसी प्रकार ये अपने योग्य पिता के योग्य पुत्र थे। ये मीमांसा के प्रकाण्ड पण्डित थे और इन्होंने जैमिनि के सूत्रों पर तन्त्रशिखामणि नामक एक महत्वपूर्ण टीका लिखी। इसके अतिरिक्त कई अन्य शास्त्रों पर भी इनकी कृतियां प्रसिद्ध हैं। शास्त्रीय साहित्य के समान ही इनका ललित साहित्य भी महत्वपूर्ण है। इनके कई काव्यग्रन्थ प्रसिद्ध हैं जिनमें १० सर्गों का रुक्मिणी कल्याण, ६ सर्गों का शङ्कराभ्युदय ये ग्रन्थ प्राप्त होते हैं। इनके अतिरिक्त कतिपय अन्य रचनायें हैं– भारतचम्पू, कंसवध, चित्रमञ्जरी और कामकथा। अपने पिता के जीवन पर भी इन्होंने रत्नखेट विजय नामक एक काव्य लिखा जिसमे यमक का चमत्कार

दृष्टिगत होता है। चमत्कार पूर्म दो अन्य काव्य भी बतलाये जाते हैं- राघवयादवपाण्डवीय और मञ्जुभाषिणी प्रथम में प्रत्येक पद्य के तीन तीन अर्थ हैं जिनमें रामकृष्ण और पाण्डव तीनों की कथा कही गई है तथा दूसरे ग्रन्थ में प्रत्येक अक्षर में श्लेष का प्रयोग किया गया है। कहा जाता है भोज के रामायण चम्पू के युद्धकाण्ड की रचना इन्होंने एक ही दिन में पूरी कर दी थी। इन्होंने काव्यदर्पण नामक एक अलंकार ग्रन्थ भी लिखा जिसमें अपने लिखे एक अन्य अलंकार ग्रन्थ अलंकारचूडामणि का भी उल्लेख किया गया है।

इनके लिखे नाट्यग्रन्थ हैं- (१) श्रृङ्गारसर्वस्व नामक भाण, (दे.) (२) आनन्दराघव नामक ५ अंकों का नाटक (दे.) (३) कमलिनीकलंहस नामक चार अंकों का नाटक। रुक्मिणीकल्याण नामक एक नाटक भी इनका लिखा बतलाया जाता है। कहा जाता है इन नाटकों का अभिनय तंजौर के महाराजा के दरवार मे उस समय किया गया था जब महाराज की चिदम्बर की यात्रायें हुई थीं।

राजरंजन विलास नाटक- (ना.कृ.) मद्रास के अन्तर्गत तंजौर राज्य के महाराजाओं के आश्रित कवियों और विचारकों ने जो ग्रन्थ तैयार किये थे उनमें इस नाटक का भी उल्लेख किया गया है। इस रचना के विषय में नाम के अतिरिक्त कोई अन्य जानकारी साहित्य जगत को नहीं है।

(१) **राजराजनाटक-** (ना.कृ.) यह एक प्रसिद्ध नाट्य रचना है। कीथ ने संस्कृत ड्रामा में इसका उल्लेख किया है। कहा जाता है ११वीं शताब्दी में तंजौर के राजराजप्रथम के आदेश से शिव मन्दिर में राजराजनाटक प्रतिवर्ष खेला जाता था। यह एक प्रसिद्धि मात्र है। न तो इसके लेखक का पता है न इसकी विषय वस्तु ज्ञात है।

राजराज वर्मा ए.आर.- (ना.का.) इनका समय है १८६३ से १९१८ तक। इन्होंने मद्रास में विद्यालयों के अधीक्षक, संस्कृत शिक्षण के अधीक्षक त्रिवेन्द्रम के महाविद्यालय में संस्कृत के प्राध्यापक आदि अनेक सरकारी पदों पर कार्य किया एवं संस्कृत के अभ्युदय की अनेक योजनायें बनाई।

ये स्वयं भी एक अच्छे कवि थे। महाकाव्य, गीतिकाव्य, निबन्ध, समीक्षात्मक ग्रन्थ, ज्योतिष एवं व्याकरण पर रचनाओं के अतिरिक्त गैर्वाणी विजय (दे.) नामक इनकी एक नाट्यरचना भी पाई जाती है। इन्होंने उद्दालकचरित नाम से सेक्सपियर के ओथैलो का संस्कृत गद्य में अनुवाद भी किया। मलयालम् में भी इनका कुछ कार्य प्राप्त होता है।

राजर्षिभरतः- (ना.कृ.) विश्वेश्वर विद्याभूषण लिखित नाटक।

राजर्षि सुरथः- (ना.कृ.) विश्वेश्वर विद्याभूषण लिखित नाटक।

राजशेखर- (ना.का.) ये यायावर राजशेखर के नाम से प्रसिद्ध है। इनके समय के विषय में विद्वानों में पर्याप्तमतभेद है। भण्डारकर इन्हें महेन्द्रपाल का अध्यात्मगुरु मानते हैं। इन्होंने नाटकों की प्रस्तावनाओं में स्वयं अपना परिचय दिया है और कन्नौज

के राजा महेन्द्रपाल का उल्लेख किया है तथा उनके पुत्र महीपाल को अनपा आश्रयदाता माना है। यह इस तथ्य से भी प्रमाणित होता है कि ८वीं शती के मध्यभाग में अमरकोश के व्याख्याकार कृष्णस्वामी ने इनकी कृति विद्धशालभञ्जिका से एक पद्य उद्धृत किया है। फ्लीट और कीलहोर्न इनका नवीं शताब्दी के अन्त और दसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में होना मानते हैं। कतिपय विद्वान् इनका समय जयदेव से कुछ पहले होना स्वीकार करते हैं। इनके अनुसार महेन्द्रपाल और क्षीरस्वामी का समय ११वीं शताब्दी है।

इनके पिता का नाम दुर्दुक और माता का नाम शीलवती था। दुर्दुक एक अच्छे पुरोहित और इनके बाबा अकालजलद एक अच्छे कवि थे। इनका विवाह पूर्ण विदुषी अवन्तिसुन्दरी के साथ हुआ था जो चौहान वंश में उत्पन्न हुई थी और काव्याशास्त्र में प्रवीण थी। राजशेखर का आवास स्थल विदर्भ और कुन्तल प्रदेश था। सम्भवतः इन्होंने सारे देश का भ्रमण किया था और इनका दक्षिण का ज्ञान अत्यधिक बढ़ा चढ़ा था। प्रदेशों का केवल भौगोलिक परिचय ही नहीं वहां के रीति रिवाजों वहां के कलाकारों इत्यादि का एक एक वाक्य में अच्छा परिचय दिया है। इन्होंने स्वंय को महेन्द्रपाल का अध्यात्म गुरु और उनके पुत्र महिपाल को अपना आश्रयदाता बतलाया है जिनका समय नवीं शताब्दी सिद्ध होता है। अतः यही समय इनका भी होना चाहिए।

राजशेखर ने भवभूति (दे.), वाक्पतिराज, उद्भट और आनन्दवर्धन का उल्लेख किया है तथा सोमदेव एवं धनञ्जय द्वारा इनका उल्लेख किया गया है। अतः इनका समय ९०० ई. के आस पास ठहरता है।

इनका परिवार विद्वानों का था. इन्होंने अपनी विदुषी पत्नी का बड़े गौरव के साथ उल्लेख किया है जिसकी काव्यशास्त्रीय योग्यता प्रतिष्ठित थी। ये महरट्ट प्रदेश के रहने वाले थे किन्तु इन्होंने सारे देश का भ्रमण किया था।

ये प्रमुख नाटककारों में एक माने जाते हैं। इन्हें अपने पूर्वजों की योग्यता और अपने भाषाज्ञान पर गर्व था। इन्हें संस्कृत और प्राकृत पर ही पूरा अधिकार नहीं था अपितु इन्होंने अनेक भाषाओं का सफल प्रयोग किया है। अप्रचलित एवं प्रान्तीय शब्दों का प्रयोग इनकी अन्यतम विशेषताहै। अलंकार युक्त शब्दों एवं मुहावरा प्रयोग में इन्हें विशेष कुशलता प्राप्त है।

इनके चार नाटक प्रसिद्ध हैं– कर्पूरमंजरी (दे.) विद्धशाल भञ्जिका (दे.) बाल रामायण (दे.) और बालभारत (दे.) इनके अतिरिक्त इनके दो और नाटक रत्नमञ्जरी (दे.) तथा हर विलास (दे.) प्रकाश में आये हैं। इनकी समग्र नाट्यकृतियों पर विचार करने से पिशेल का यह कथन सत्य प्रतीत होता है ये भाषाओं के ज्ञान के प्रयोग में सिद्धहस्त हैं। संस्कृत और प्राकृत दोनों के लिये इनके नाटक अत्यधिक उपयोगी हैं। वैसे तो बाल रामायण के अनेक प्रकरण नीरस एवं उबाऊ हैं, फिर भी उसके ललित तथा प्रवाह पूर्ण पद्यों में ऐसे प्रकरण मिल जाते हैं जो रीतिरिवाज और व्यवहार परम्परा पर प्रकाश डालते हैं।

नाटककार के रूप में उनकी सफलता पर भले ही प्रश्नचिन्ह लगाया जा सके किन्तु भाषा के क्षेत्र में उनकी प्रयोग योग्यता में उनकी सफलता असन्दिग्ध है। उसमें मोहावरों का भली भांति प्रयोग उनके लालित्य को अधिकाधिक बढ़ाने में सक्षम है।

परवर्ती विचारकों ने इनकी कृतियों से उद्धरण दिये हैं। उनमें कतिपय ऐसे उद्धरण हैं जो प्राप्त रचनाओं में नहीं मिलते। जल्हन ने सूक्ति मुक्तावली में कवियों की प्रशस्ति विषयक कतिपय ऐसे पद्य उद्धृत किये हैं जो वर्तमान कृतियों में उपलब्ध नहीं होते। इन पद्यों में त्रिलोचन, गणपति, प्रद्युम्न, भीमट, मायुराज, कादम्बरीराम की प्रशस्तियां आती हैं। हो सकता है ये उद्धरण राजशेखर की ऐसी कृतियों से दिये गये हों जो अब उपलब्ध नहीं होती। भोजराज ने इनकी अष्टदलपत्रलक्षण नामक कृति का उल्लेख किया है। राजशेखर के भौगोलिक ज्ञान के विषय में भी भुवनकोश नामक पुस्तक बतलाई जाती है। इनके वंश में सुरानन्द, तरल, कविराज, इत्यादि के होने का वर्णन किया गया है।

(२) **राजशेखर–** (ना.का.) माधवाचार्य ने शङ्करविजय में राजशेखर को केरल का महाराज बतलाया है और कहा है कि उन्होंने स्वयं तीन नाटकों की रचना कर महान शङ्कराचार्य को समर्पित कर दिया था। राजशेखर का एक शिलालेख भी पाया जाता है जो पुरातत्व विज्ञान के आधार पर ९वीं १०वीं शताब्दी का सिद्ध होता है। १६वीं शताब्दी के एक कवि ने लिखा है कि राजशेखर अन्धे थे। तथा उन्हें गंगाधर ने अन्धत्व से छुटकारा दिलाया था। विवेचन से निष्कर्ष निकाला गया है कि राजा राजशेखर प्रसिद्ध कवि राजशेखर से पहले हुये थे। कहा जाता है आत्मबोधेन्द्रसरस्वती की टीका में इनके नाटकों के नाम लिखे हुये हैं।

राज्यश्रीः– (ना.पा.) बालचलित में मानवीकृत पात्र। जब शाप (मानवीकृत) कंस को ग्रसने उसके महल पर आक्रमण करता है तब राज्यश्रीः उसे रोकती है। किन्तु जब शाप विष्णु की आज्ञा बतला कर अन्दर जाने की अनुमति चाहता है तब वह उसे जाने देती है।

राजसिंह– (ना.सं.पा.) भास के नाटको में भरत वाक्य में राजसिंह के एक छत्र शासन की कामना की गई है। इससे सिद्ध होता है ये भास के आश्रयदाता थे। इस नाम के एक राजा सातवीं शताब्दी में दक्षिण मे हुये थे। किन्तु भास का समय उनसे बहुत पहले का है। अतः वे भास के आश्रयदाता नहीं हो सकते। कीथ महोदय ने भास के नाटको के भरत वाक्यों पर गहराई से विचार किया है। कुछ नाटकों में राजसिंह के पृथ्वी पर शासन करते रहने की कामना की गई है। कुछ नाटकों में विपत्ति से पार पाने और शत्रुओं के नाश की कामना की गई है। राजसिंह के एकातपत्र शासन की कामना भी विद्यमान है। इससे सिद्ध होता है कि भास ऐसे राजा के आश्रय में रहे थे जो प्रारम्भ में शासक था; फिर शत्रुओं के दबाव से राज्यच्युत हो गया और बाद में पुनः राज्य प्राप्त कर लिया। कीथ के अनुसार गुजरात के क्षत्रप रुद्रसिंह से यह स्थिति मेल खाती है।

रुद्रसिंह का समय और प्रदेश दोनों भास की परिस्थिति से मेल खा जाता है। हो सकता है भास का अभिप्राय इन्ही क्षत्रप से हो।

राजहंसीय प्रकरणम्- (ना.कृ.) यह नरसिंहाचार्य (दे.) (मुडुम्बई वेङ्कटराम नरसिंहाचार्य) लिखित प्रकरण है। नायक युववर्मा और नायिका कर्णाटराज कृष्ण की पुत्री राजहंसी। इस शृङ्गारप्रधान रचना में कतिपय निषिद्ध तत्व भी सम्मिलित कर दिये गये हैं जैसे विवाह पूर्व पुत्रोत्पत्ति, रंगमञ्च पर भोजन इत्यादि। इसमें गीतों का बाहुल्य है। इसकी रचना १८८१ के आस पास हुई थी तथा प्रथम अभिनय गोविन्द के कल्याण महोत्सव में सम्पन्न हुआ था।

राजीविनी- (ना.कृ.) नारायण शास्त्री लिखित ६ अंकों का नाटक।

राज्यश्रीः- (ना.पा.) मोहराज पराजय (दे.) नामक प्रतीक नाटक के राजा विवेकचन्द्र की रानी। राजा के कृपासुन्दरी के प्रति प्रेम में यह विघ्न डालती है जिसमें इसे सखी रौद्रता का भी सहयोग प्राप्त होता है। किन्तु जब उसे ज्ञात होता है की मोहराज पर विजय प्राप्त करने के लिये राजा का कृपासुन्दरी से विवाह अत्यावश्यक है तब वह विवाह की सहर्ष आज्ञा दे देती है। यह उसकी उदारता का परिचायक है।

राधा- (ना.पा.) पुराणों में कृष्ण की सर्वाधिक निकटवर्तिनी प्रेमिका, कृष्ण के प्रेम का आलम्बन। रास मण्डल और यात्राओं के अन्तराल में झांकियों अभिनयों नृत्यों इत्यादि में सर्वाधिक महत्वपूर्ण पात्र। हास-परिहास, आमोद-प्रमोद, मानलीला, दानलीला, वियोग-शृङ्गार, संयोग शृङ्गार का आलम्बन और आश्रय। कृष्णविषयक अनेक नाटकों में इन्हें अपनाया गया है। कतिपय नाटको का उल्लेख किया जा रहा है-

(१) **विदग्धमाधव-** (दे.) और (२) ललित माधव (दे.) में इनकी प्रेम लीलाओं का चित्रण किया गया है जिनका आश्रय और आलम्बन कृष्ण है।

(३) **वृषभानुजा-** (दे.) इसमें राधा के ईर्ष्या विप्रलम्भ शृङ्गार का अच्छा चित्रण किया गया है। कृष्ण के पास एक नारी चित्र था जिसने राधा के मन में ईर्ष्या भाव जागृत कर दिया। वह ईर्ष्या भाव तब मिटता है जब ज्ञात हो जाता है कि वह चित्र राधा का ही है।

(४) **गीत गोविन्द-** (दे.) इस महत्वपूर्ण कृति में राधा और कृष्ण एक दूसरे के सहवास का भरपूर आनन्द लेते हैं, प्रेमियों का परस्पर मनमुटाव होता है, वियोग होता है, प्रतीक्षा की जाती है, सखियों की मध्यस्थता है, वासकसज्जा के दृश्य हैं। इसमें राधा के प्रेमिका रूप की अत्यन्त मनोरम झांकी प्रस्तुत की गई है। दोनों में मनमुटाव और उसके बाद सम्मिलन के दृश्य वस्तुतः अनूठे हैं।

(५) **गोपाल केलिचन्द्रिका-** (दे.) राधा और कृष्ण रंगमञ्च पर आते हैं। हास परिहास होता है, रासलीला प्रारम्भ हो जाती है, इसमें राधा और कृष्ण एक दूसरे से अद्वैत हैं।

कृष्ण पुरुषोत्तम भगवान हैं और राधा उनकी शक्ति।

राधाकृष्णविलास नाटकम्– (ना.कृ.) तमिलनाडू प्रान्त के अन्तर्गत तंजौर के राज परिवार के आश्रित कवियों और विचारकों ने जो साहित्य तैयार किया था उसमें इसका भी नाम है। इसके अतिरिक्त इस विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है।

राधामाधवम्– (ना.कृ.) ७ अंकों के इस नाटक की रचना राघवेन्द्र कवि (दे.) ने १८वीं शताब्दी के प्रथम चरण में की थी। इसमें राधा कृष्ण विलास को नाट्य रूप में प्रस्तुत किया गया है। रसोल्लास महोत्सव के अवसर पर इसका प्रथम अभिनय सम्पन्न हुआ था।

राधावल्लभ त्रिपाठी– (ना.का.) ये मध्य प्रदेश के बीसवीं शताब्दी के कवि हैं। इन्होंने प्रेमपीयूषम् (दे.) नामक नाटक की रचना की थी। इनका वाल्मीकि विमर्श नामक एक नाटक और नाट्य मण्डपम् शीर्षक एक ग्रन्थ भी बतलाया जाता है।

राधाविप्रलम्भ– (ना.कृ.) यह हेज्जल लिखित कृष्ण विषयक नाटक है। इसका उल्लेख नाट्य दर्पण और अभिनव भारती में किया गया है।

रानी महाग्निचिन्ननरसिहं कवि– (ना.का.) सामान्य रूप से इन्हें रानी चयनुलु भी कहा जाता है। इनका जन्म गोदावरी जिला के वेणुगुमहल नामक गांव में हुआ था। कुछ समय तक विजयानगरम् के आनन्द गजपतिराम के संरक्षण में रहकर ये सन्यासी हो गये थे। इसी शताब्दी मे इनका विजय वाड़ा में देहान्त हो गया था। ये गणित के पूर्ण विद्वान थे। इन्होंने कला मानोपपत्ति एवं तिथिमञ्जरी नामक गणितज्योतिष विषयक दो ग्रन्थ लिखे थे। इनका चित्सूर्यालोक (दे.) नामक एक प्रतीक नाटक भी पाया जाता है।

(१) **राम–** (ना.का.) दे. गुरुराम।

(२) **राम–** (ना.का.) येमन्मथोन्मथन (दे.) डिम के लेखक हैं। इनके व्यक्तित्व के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है।

राम– (ना.पा.) रामायण के कथा नायक भगवान राम भारतीय संस्कृति के अविच्छिन्न और अविच्छेद्य अंग बन गये हैं। वे मर्यादा पुरुषोत्तम हैं; गुणवान हैं; पराक्रमी हैं; धर्मज्ञ हैं; कृतज्ञ हैं; सत्यवादी हैं दृढ़निश्चय वाले हैं; त्याग और कर्तव्य परायणता की प्रत्यक्ष मूर्ति हैं; मित्रों के सर्वाधिक हित साधक हैं। जब युद्ध भूमि में क्रोध करते हैं तब देवता भी उनसे डरने लगते हैं। बिना विजय प्राप्त किये लौटते नहीं। प्रजावर्ग में सभी के कुशल क्षेम का ध्यान रखते हैं। कविवर वाल्मीकि ने उन्हें समस्त गुणों का आकार बना दिया है।

राम का चरित्र असीमित काल से कवियों और कलाकारों का उपजीव्य रहा है। हिन्दी में कवि मैथिलीशरण गुप्त ने ठीक ही कहा है कि राम का चरित्र स्वयं में एक महाकाव्य है जो कि किसी भी व्यक्ति को कवि बना देने की शक्ति रखता है–

राम तुम्हारा चरित स्वयं ही काव्य है।

कोई कवि बन जाय सहज सम्भाव्य है।

राम के चरित्र को लेकर निरन्तर काव्य और नाट्य रचनायें होती रही हैं। कतिपय नाट्य रचनाओं में राम के इन्हीं गुणों पर प्रकाश डाला गया है।

राम– (ना.पा.) भास के अभिषेक (दे.) नाटक में एक पात्र। वहां पर वे पूर्ण ब्रह्म हैं, विष्णु का अवतार हैं, देवताओं के भी आराध्य हैं।

राम– (ना.पा.) उत्तर राम चरित में नायक। इनका चरित्र समस्त नाटक में प्रारम्भ से अन्त तक व्याप्त है। समस्त कथानक के यही सञ्चालक हैं। फल के भोक्ता भी येही हैं। इस नाटक में राम के दो आदर्शों का चित्रण किया गया है वे आदर्श हैं– लोक रञ्जन एवं आदर्श पति के रूप में उनका चित्रण। लोक रंजन और लोक रक्षण के लिये उनकी प्रतिज्ञा है– 'लोकाराधन के लिये स्नेह, दया, सुख यहां तक की सीता को भी छोड़ना पड़े उसको छोड़ने में मुझे कुछ भी पीड़ा नहीं होगी।' यह केवल प्रतिज्ञा नहीं है उसे उन्होंने पूर्णतया कार्य रूप में परिणत करके दिखला दिया। उन्हें जैसे ही यह समाचार मिला कि लोक में रावण के घर पर रही सीता को स्वीकार करने के कारण उनकी निन्दा हो रही है उन्हें सीता परित्याग में एक क्षण की भी देर नहीं लगी। उसके लिये उन्हें स्नेह, दया, सुख सभी कुछ त्यागना पड़ा। ऐसी पत्नी का त्याग कोई साधारण बात नहीं थी जो घर में लक्ष्मी थी, नेत्रों के लिये अमृत की सलाई थी, जिसके स्पर्श में चन्दन का अतुल रस था। कण्ठ में पड़ी उसकी बाहें मोती की माला थी; जिसने राम ने सुख और दुःख में अभेद सम्बन्ध स्थापित कर रक्खा था। राम का दाम्पत्य सुख सभी अवस्थायों में सहयोगी बन गया था, वहीं उनका हृदय विश्राम पाता था वन में साथ-साथ रहने के अवसर पर राम जिसके विषय में कहा करते थे– कि यह मेरा जीवन है, यह मेरा दूसरा हृदय है, यह नेत्रों के लिये चांदिनी और शरीर स्पर्श में अमृत है। राम ने वियोग व्यथा झेली थी, जबकि राम को विरह व्यथित देखकर पत्थर भी रो पड़ते थे, वज्र का हृदय भी विदीर्ण हो जाता था। उस अपने जीवनसार प्रियतमा के निरवधि वियोग को विना किसी संकल्प, विकल्प के सहर्ष स्वीकार कर लिया। सबसे बड़ी बात यह थी कि राम ने इस विषय में जनता के प्रतिकूल किसी आलोचना को सहन नहीं किया और जनता के अविश्वास का समर्थन ही किया।

इतना बड़ा त्याग वस्तुतः लोक में दुर्लभ है। अन्त में भी जब नाटक में सीता की निर्दोषता सिद्ध की जाती है तब राम यही कहते हैं कि यह मुझे क्या दिखला रहे हो– यह तो जनता को दिखलाओ।

राम की एक अन्य बहुत बड़ी विशेषता है उनका प्रेमी हृदय। परित्याग के बारह वर्ष बाद जब वे जनस्थान में शम्बूक का वध करने जाते हैं उन्हें यह भी नहीं मालूम कि

सीता कहां है– जब जीवित है भी या नहीं। जनस्थान (दण्डक वन) में पूर्ण परिचित स्थानों और पशुपक्षिओं को देखकर राम को वार वार मूर्छा आती है। सीता अदृश्य रूप में उन्हें पुनरुज्जीवित करती है। 'राम का हृदय विदीर्ण हो रहा है, शरीर के बन्धन ढीले पड़ते जा रहे हैं; संसार सूना सूना सा दिखलाई पड़ता है निरन्तर विरह ज्वाला से हृदय जल रहा है। अंधेरे अन्धकार में अन्तरात्मा डूबती चली जा रही है। राम इतने क्षीण हो गये हैं कि अपने घर वालों द्वारा भी अनुभाव के कारण ही पहिंचान में आते हैं।

राम की वियोगजन्य पीड़ा के द्वारा, उनकी एक पत्नीव्रत साधना और आदर्श दाम्पत्य प्रेम को जितना मुखर रूप में इस नाटक में प्रस्तुत किया गया है उसकी समता दुर्लभ है। इसीलिये यह नाटक करुण रस का अनुपम निदर्शन बन गया है–

करुणे क्यों रोती है?

उत्तर मेंऔर अधिक रोई।

मेरी जो विभूति है

उसको क्यों भवभूति कहै कोई।

साहित्य में अनुकूल नायक का उदाहरण बहुत कम मिलता है; निस्सन्देह राम उसका निदर्शन है। जैसी परिस्थिति में राम पड़ गये हैं वैसी में कोई भी विचलित हो सकता था। किन्तु राम ने यज्ञ के लिये भी सीता की स्वर्णमयी मूर्ति बनवा ली है जो एकमात्र उनके विनोद का साधन है।

राम की इस भावुकता का क्षेत्र इतना व्यापक है कि पशु-पक्षी यहां तक की वृक्ष और पर्वत भी उसका आलम्बन बन जाते हैं। राम का प्रेम विषयक आदर्श बहुत ऊँचा है। इसमें उच्छृङ्खल वासना का नाम भी नहीं। यह हृदय की एक जन्मजात ग्रन्थि है जो जगन्नियन्ता से वरदान रूप में प्राप्त हुई है जिसमें बाहरी उपाधियों का तो कोई महत्व ही नहीं। इसमें पुट पाक के समान जलते रहने में भी एक आनन्द है।

अविकन्थन होना राम के चरित्र की अन्यतम विशेषता है। वे अपनी प्रशंसा और दूसरों के दोष सुनने में एकदम कतरा जाते हैं और उस विषय में किसी को कुछ कहने का अवसर ही नहीं देते। जब कैकेयी का वृत्तान्त सामने आता है तब वे एकदम आगे बढ़कर दूसरे दृश्य देखने लगते हैं। लक्ष्मण के यह कहने पर 'इयं मन्थरा' वे एक दम शृङ्गवेरपुर के दृश्य देखने लगते हैं। भवभूति राम के आदर्श रूप को सुस्थिर करने में सर्वथा पूर्ण सफल हुये हैं इसमें सन्देह नहीं। राम के चरित्र का भवभूति की दो पंक्तियों में पूरा समाहार हो जाता है–

वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादयि।

लोकोत्तराणां चेतांसि को हि विज्ञातुमर्हति॥

राम– (ना.पा.) प्रतिमा नाटक में कथानायक। कवि ने वाल्मीकि के राम का चरित्र

कुछ अधिक परिमार्जित रूप में प्रस्तुत किया है। वन गमन के अवसर पर रामायण में राम के चरित्र में जो हल्की सी आक्रोश की छाया दृष्टिगत होती है वह इसमें नहीं है। वे प्रसन्नता के साथ पितृशासन को स्वीकार कर लेते हैं और उसके पूर्ण रूप से पालन करने की चेष्टा करते हैं। उन्हें इसमें कोई नई या आश्चर्य जनक बात मालूम नहीं पड़ती कि पुत्र पिता की आज्ञा का पालन करता है।

राम– (ना.पा.) मायुराज (दे.) लिखित अनुपलब्ध नाटक उदात्तराघव (दे.) का चरित्र नायक पात्र। उद्धरणों से ज्ञात होता है कि कवि ने इस पात्र के चरित्र चित्रण में कहीं कहीं कुछ परिवर्तन किये हैं।

(१) **रामकवि**– (ना.का.) ये कश्यप गोत्रीय राम कृष्ण के पुत्र तथा गुण्टूर जिले के लिंगम गुन्त स्थान के निवासी थे। इनका समय १५५० के आस पास है। इनका लिखा शृङ्गार रसोदयभाण (दे.) प्राप्त होता है।

(२) **रामकवि**– (ना.का.) ये मालावार के राजकुमार थे। इनका लिखा सुवाला वक्रतुण्ड (दे.) नाटक प्राप्त होता है।

(३) **रामकवि**– (ना.का.) मन्मथमन्थन नामक एक डिम के लेखक बतलाये जाते हैं जिसका रचनाकाल १९वीं शताब्दी है। (दे. मन्मथमोदन)

रामकिशोर– (ना.का.) ७ अंकों के लक्ष्मीस्वयंवर के लेखक। इनका समय है १९वीं शताब्दी ।

रामकिशोर मिश्र– (ना.का.) एटा जिला उत्तर प्रदेश में माता कलावती तथा पिता होतीलाल से इनका जन्म सन् १९३८ में हुआ था इनकी दो नाट्य कृतियां प्राप्त होती हैं– अङ्गुष्ठदानम् और ध्रुव। इनके अतिरिक्त इनकी कतिपय अन्य रचनाये हैं– गीत जवाहर, किशोरकाव्यम्, अन्योक्तिशतकम्, बालचरितम्, विद्योत्तमा, अन्तर्दाह। ये सम्प्रति मेरठ विश्वविद्यालय में प्राध्यापक पद पर कार्य करते हैं।

रामकृष्ण– (ना.का.) इनका लिखा उत्तरचरित (दे.) राम के उत्तरकालीन चरित्र पर आधारित नाटक है। इन्होंने इस नाटक की समाप्ति पर पुष्पिका में स्वयं अपने पूर्वजों का परिचय दिया है जिसके अनुसार ये वत्सगोत्रीय जगन्नाथ भट्टारक के पुत्र थे। इन्होंने अपने पूर्वजों की विद्वत्ता एवं दानशीलता की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है। इन्होंने भवभूति उपनाम धारण किया था। सम्भवतः इसीलिये इन्होंने भवभूति के उत्तर रामचरित की स्पर्धा में उत्तरचरित की रचना की थी। ये रामेन्द्र सरस्वती के शिष्य थे। इनका समय १७वीं १८वीं शताब्दी बतलाया जाता है।

रामकृष्ण– (ना.का.) कालिकान्तकौतुक (दे.) प्रहसन के लेखक।

रामकृष्ण– (ना.का.) गोपालकेलिचन्द्रिका के लेखक। इनका समय अज्ञात है। इतना निश्चित है कि इनका समय महानाटक और भागवत के बाद का है।

रामकृष्ण– (ना.का.) प्रभावती प्रद्युम्न (दे.) नाटक के लेखक।

रामकृष्ण शर्मा– (ना.का.) ये २०वीं शताब्दी के कवि एवं नाटककार हैं। इनका लिखा बंगलादेशोदयम् नाटक बनारस से प्रकाशित हो चुका है।

(१) **रामचन्द्र–** (ना.का.) ये १६वीं शताब्दी के कवि एवं नाटककार हैं। इनका लिखा वासन्तिका (दे.) प्रकाश में आया है।

(२) **रामचन्द्र–** (ना.का.) ये प्रसिद्ध जैनाचार्य हैमचन्द्र के शिष्य हैं। कहा जाता है ये एकाक्षी थे। कहा जाता है इन्होंने अपनी एक आँख बचपन की शरारतों में फोड़ ली थी। कुछ लोगों का कहना है कि दण्ड स्वरूप इनकी आँख फोड़ी गई थी। हेमचन्द्र का शिष्य होने से इनका समय १२वीं शताब्दी ठहरता है। इनको प्रबन्ध शतकार कहा जाता है। इसका आशय यह है कि इन्होंने १०० पुस्तकें लिखी थीं जिनमें कुछ नाटक भी थे। इन्होंने अपने सहपाठी अथवा शिष्य गुणचन्द्र के साथ सम्मिलित रूप में नाट्य दर्पण की रचना की जिसमे अनेक रचनाओं और रचनाकारों के साथ स्वलिखित नाटकों का भी उल्लेख किया गया है। इन नाटकों की संख्या नौ दस है। इनका विवरण इस प्रकार है– नलविलास, रघुविलास, राघवाभ्युदय, यादवाभ्युदय, निर्भयभीम, वनमालिका, मल्लिकामकरन्द, सत्यहरिश्चन्द्र और कौमुदीमित्रानन्द (इन नाटकों का यथा स्थान परिचय दिया गया है।)

रामचन्द्र– (ना.का.) १९वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में मुसलीपट्टम् के निकट आदि पल्ली में रहते थे। कौण्डिन्य गोत्रीय कोराडा परिवार के लक्ष्मण पिता और सुवामा माता से उत्पन्न हुये थे। नोविलकालेज मुसलीपट्टम् में सस्कृत के अध्यापक थे। इनकी लिखी पुस्तकें हैं– कुमारोदयचम्पू, एक लम्बा काव्य देवीविजय और शृङ्गारसुधार्णव (दे.) नामक भाण।

(४) **रामचन्द्र–** (ना.का.) ये १८वीं शताब्दी के बंगाल के कवि थे। इनका ८ अंकों का ययाति चरित्र परक ऐन्दवानन्दम् (दे.) नामक नाटक बतलाया जाता है।

रामचन्द्र वेल्लाल– (ना.का.) १८वीं शताब्दी के दक्षिण भारतीय कवि। इनकी दो नाट्य कृतियां प्राप्त होती हैं– श्रीकृष्णाविजय (दे.) व्यायोग और सरसकविकुलानन्द (दे.) भाण। मैसूर के कृष्णराज द्वितीय के सेनापति देवराज ने इनका सम्मान किया था। ये वरद देशिक के शिष्य थे।

रामचन्द्रशास्त्री– (ना.का.) ये कौशिक गोत्रीय कृष्ण भट्टार के पुत्र थे। इनका जन्म पालघाट में हुआ था। ये सर्वशास्त्र निष्णात हो गये थे और मीमांसा के विषय में इन्हें अनेक उपाधियां मिलीं थीं। ये मद्रास विश्वविद्यालय के प्रोफेसर थे। इनका लिखा मणिमंजूषा (दे.) नामक नाटक प्राप्त होता है।

रामचन्द्रशेखर– (ना.का.) तंजौर के तुलज (१७६५-९७) के समय के एक नाटककार। ये व्याकरण में निष्णात थे और इन्होंने पुण्डरीक याग किया था। इनका लिखा

७ अंकों का कलानन्दक (दे.) नाटक पाया जाता है।

रामचन्द्र सुमनवंशमणि– (ना.का.) दे. गीतदिगम्बर।

रामचन्द्रानन्दम्– (ना.कृ.) यह उड़ीसा निवासी १५वीं शताब्दी के नारायणानन्द (दे.) का लिखा नाटक है।

रामचरितमानसम्– (ना.कृ.) तुलसीलिखित रामचरित मानस का डा. रमाचौधरी द्वारा १२ दृष्यों में नाटकीकरण। तुलसीकृत छन्दों का संस्कृत छन्दों में भाषान्तरण।

रामजन्मभाण– (ना.कृ.) यह ताराचन्द्र (दे.) का लिखा भाण है। जिसकी रचना १८७५ में प्रभु नारायणसिहं के पुत्रजन्म के अवसर पर की गई थी।

रामजय, तर्करत्न– (ना.का.) ये बंगालनिवासी नाटककार हैं। इनके लिखे 'कालविलासम्' नाटक का उल्लेख किया गया है। इनके विषय में और कुछ ज्ञात नहीं है।

रामजीवनमिश्र– (ना.का.) ये मध्यप्रदेश के वीसवीं शताब्दी के कवि एवं नाटककार हैं। इनके लिखे 'सारस्वतम्' नाटक का उल्लेख किया गया है।

रामतारण शिरोमणि– (ना.का.) ये बंगाल के कवि हैं। इनका लिखा प्रद्युम्न विजय (दे.) नाटक बतलाया जाता है।

रामदत्तपन्त– (ना.का.) १९वीं शताब्दी के अन्त और २०वीं शताब्दी के प्रारम्भ में अल्मोड़ा में इनका मूल निवासस्थान था। ये बरेली कालेज में संस्कृत के प्रोफेसर थे। इनका लिखा अपरपञ्चरात्र (दे.) नाटक प्राप्त होता है जो भास के पञ्चरात्र (दे.) के आधार पर उसी विषय में लिखा गया है।

रामदासझा– (ना.का.) ये बिहारी कवि हैं। इनका आनन्दविजय नाटक बतलाया जाता है।

रामदेव– (ना.का.) इनको वामदेव तथा चिरंजीव इन नामों से भी याद किया जाता है। ये शतावधानी राघवेन्द्र भट्टाचार्य के पुत्र और काशीनाथ के पौत्र थे। बंगाल में राधापुर इनका निवासस्थान था। ढाका के नायव दीवन यशवन्त सिंह इनके आश्रयदाता थे। इनका समय १८वीं शताब्दी का मध्य भाग है। इनके कई काव्य ग्रन्थ हैं। काव्यशास्त्र एवं छन्दः शास्त्र पर भी इनकी रचनायें प्राप्त होती हैं। नाटक के क्षेत्र में 'विद्वन्मोद तरंगिणी' (दे.) इनकी एक रचना है। इनको शतावधानी की उपाधि प्राप्त थी।

रामदेव व्यासश्री– (ना.का.) १५वीं शताब्दी के प्रारम्भ में रामपुर के कल्चुरी राजाओं के आश्रय में रहते थे। इन्होंने तीन नाटकों की रचना की थी– रामाभ्युदय (दे.) पाण्डवाभ्युदय (दे.) और सुभद्रापरिणय (दे.)।

रामनाथ– (ना.का.) इनका लिखा चन्द्रशेखर नामक एक चम्पू ग्रन्थ और मुक्तावली (दे.) नामक एक नाटक प्राप्त होता है। इनकी मृत्यु १९१५ के आसपास हो गई थी।

इनकी रचनाओं की पाण्डुलिपियां इनके पुत्र गंगाधर के पास सिटी प्रेस गोरखपुर में विद्यमान हैं।

रामनाथ शास्त्री– (ना.का.) मणिमञ्जूषा (२) (दे.) नाटक के लेखक। समय २०वीं शताब्दी।

रामनाम दातव्य चिकित्सालय– (ना.कृ.) यह प्रहसन जैसी रचना १८९४ में जीवन्याय तीर्थ द्वारा प्रस्तुत की गई थी। कोई शरावी रामनाम दातव्य चिकित्सालय खोलकर बैठ गया है और शय्यामूत्र, गुप्त रोग, राजयक्ष्मा, शर्करा की एक ही दवा बतलाता है– तुलसी वृक्षों के झुरमुट में बैठकर राम नाम का जाप करना।

रामपाणिवाद– (ना.का.) इनका वास्तविक नाम कुञ्जुन्निनम्वियार था। इन्हें संक्षिप्त रूप में राम भी कहा जाता है। इनका जन्म कोचीन स्टेट में कुन्नकुलम् के निकट मंगल ग्राम में क्षत्रिय परिवार में १८वीं शताब्दी में हुआ था। ये नारायण भट्ट के शिष्य थे और मालावार के उत्तम कवियों में माने जाते थे। संस्कृत के अतिरिक्त ये प्राकृत में भी काव्य रचना करते थे। इन्होंने नाट्य कृतियों के अतिरिक्त महाकाव्य, शास्त्रीय ग्रन्थ, स्त्रोत तथा टीका ग्रन्थ भी लिखे हैं। इनके नाट्यग्रन्थ हैं– ललित राघवीय, लीलावती, पादुका पट्टाभिषेक, सीताराघव इत्यादि। इन्होंने चन्द्रिका नामक एक वीथी और मदनकेतु चरित्र नामक एक प्रहसन भी लिखा था।

रामभट्ट– (ना.का.) मदालसा (३) के लेखक।

(१) **रामभद्र**– (ना.का.) इनको केवल राम या रामभद्रमुनि के नाम से भी जाना जाता है। ये देवसूरि के शिष्य थे जो स्वयं गुरुशिष्य की जैन परम्परा में जय प्रभसूरि के शिष्य थे। देवसूरि की मृत्यु ११६९ में हुई थी। इस प्रकार इनका समय १२वीं शताब्दी का उत्तरार्ध सिद्ध होता है। इनके लिखे नाटक प्रबुद्ध रौहिणेय (दे.) का प्रथम अभिनय श्रीयुगादिदेव तीर्थंकर ऋषभदेव के उत्सव के अवसर पर हुआ था। पार्श्वचन्द्र के दो पुत्रों यशोवीर और अजयपाल के बनवाये मन्दिर में उक्त उत्सव का आयोजन किया गया था। इस मन्दिर का निर्माण १२वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हुआ था। इससे भी इनका १२वीं शताब्दी के अन्तिम भाग में होना सिद्ध होता है। संवत् १२४२ और १२६२ (सन् ११८५ तथा सन् १२०५) के शिलालेखों में चौहान सरदारों की वदान्यता का वर्णन है जिससे सिद्ध होता है कि इनके लिखे नाटक का भी समय विक्रम की १३वीं शताब्दी ही है।

(२) **रामभद्र**– (ना.का.) शृङ्गार तरंगिणी भाण के लेखक।

रामभद्र दीक्षित– (ना.का.) इनका जन्म कुम्भकोणम् के निकट कन्द्रमणिक्य में चतुर्वेदी यज्वन लोगों के परिवार में १७वीं शताब्दी में हुआ था। ये १८वीं शताब्दी के प्रथम चरण तक विद्यमान रहे। इनके पिता का नाम यज्ञराम था जो स्वयं प्रकाण्ड पण्डित

और साहित्य साधक थे। इनकी शिक्षा सन्यासी बालकृष्ण और कोक्कनाथ के अन्तेवासित्व में हुई थी। नीलकण्ठ की कविता ने इनके अन्दर साहित्य चेतना जागृत की थी। इनके सभी भाई बहन साहित्यकार थे। इन्हें तंजौर के राजा शाहजी ने आश्रय प्रदान किया था। इनके शिष्य इनका विशेष आदर करते थे और इन्हें प्रेम में अय्या कहा करते थे।

इनकी रचनायें अनेक विधाओं में प्रवृत हुई थीं। जानकी परिणय (दे.) से इन्हें ख्यति प्राप्त हुई थी। इसके इतिरिक्त इन्होंने शृङ्गारतिलक (दे.) नामक एक भाण की भी रचना की थी जिसे इनके शिष्य अय्याभाण कहा करते थे और इस नाम से यह भाण साहित्य जगत् में प्रसिद्ध हुआ। इनकी नाटकेतर रचनायें हैं– पतंजलि चरित, रामवाणस्तव, रामचापस्तव, रामाष्टप्रास, प्रासस्तव, विष्णुगर्भस्तोत्र, पर्यायोक्त निष्यन्द, रामभद्रशतक और तुणीरस्तव, षड्दर्शन सिद्धान्त, परिभाषावृत्तिव्याख्यान इत्यादि।

राम माणिक्य– (ना.का.) ये बंगाली कवि हैं। इन्होंने कृतार्थ माधव नामक नाटक की रचना की थी। इनको कविराज की उपाधि प्राप्त हुई थी।

रामराज्याभिषेक– (ना.कृ.) यह वीरराघव (दे.) लिखित ७ अंकों का एक नाटक है। जिसमें वस्तु के रूप में रामायण कथा का उपादान किया गया है।

ओरियण्टल मैन्युस्क्रिप्ट लायब्रेरी मद्रास के डिस्क्रिप्टिव कैटेलाग आफ संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट में इसका उल्लेख सं. XXI ८४८४ पर किया गया है।

रामराय (वेल्लमकोण्डा) – (ना.का.) ये मोहनदास और हनुमायम्मा के पुत्र थे। इनका जन्म गुण्टूर जिले में १८७५ में भरद्वाज गोत्र में हुआ था तथा १९१३ में इनका देहान्त हो गया। दर्शन पर इनकी कई पुस्तकें हैं। इन्होंने कई चम्पू काव्य तथा दूसरे पद्यकाव्य लिखे हैं; साथ ही कन्दर्प (दे.) नामक एक भाण भी इनके नाम से प्रसिद्ध हैं।

रामवनगमनम्– (ना.कृ.) डा. वनमाला लिखित नाटक।

रामवर्ममहाराज– (ना.का.) ये केरल के २०वीं शताब्दी के कवि हैं। इन्होंने चन्द्रिकाकलापीड (दे.) नामक एक नाटक लिखा था। इसके अतिरिक्त इन्होंने वेदान्त परिभाषासंग्रह नामक एक दार्शनिक ग्रन्थ भी लिखा था।

रामवर्म (युवराज) – (ना.का.) दे. गोदावर्म युवराज।

रामवर्म वञ्चियुवराज– (ना.का.) १८वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में ये ट्रावनकोर के युवराज थे। इनके लिखे दो नाटक और दो चम्पू प्राप्त होते हैं–

(१) **रुक्मिणी परिणय नाटक**। इसका प्रकाशन बम्बई से हुआ है।

(२) **शृङ्गार सुधाकर नाटक–** यह ट्रावनकोर के पुस्तकालय संग्रह में ७९ सं. पर उल्लिखित है।

(३) **कार्तवीर्य विजय चम्पू–** इस का प्रकाशन बम्बई से हुआ है।

(४) **सन्तानगोपाल चम्पू–** यह ट्रावनकोर पुस्तकालय संग्रहालय सं. ८१ पर संगृहीत

है।

रामवर्म विलासम्- (ना.कृ.) बालकवि लिखित ५ अंकों का नाटक जिसमें कोचीन के राजाराम वर्मा का चरित्रचित्रित किया गया है। इसमें रामवर्मा के प्रणय और विजय का कथानक ऐतिहासिक नाटक की श्रेणी में आता है। इसकी रचना १६वीं शताब्दी में हुई थी।

(१) **रामवर्मा-** (ना.का.) इन्हें महाकवि कुञ्जिकुट्टमतम्बिरान के नाम से भी याद किया जाता है। युवराज रामवर्मा से इनका निकट का सम्बन्ध था तथा ये क्रैग्नोर के निवासी थे। इनका समय १८६५ से १९१३ तक था। इनके लिखे दो व्यायोग प्रकाश में आये हैं- किरातार्जुनीय (दे.) और जरासन्धवध (दे.)।

(२) **रामवर्मा-** (ना.का.) ये कोल्लम के राजा रविवर्मा और केरल वर्मा के भतीजे थे। इनका लिखा चन्द्रिकाकलापीड नामक नाटक प्रकाश में आया है।

(३) **रामवर्मा-** (युवराज) ये क्रैग्नोर राजपरिवार के एक युवा सदस्य थे। इनका समय १९वीं तथा २०वीं शताब्दी है। इनको कवि सार्वभौम कोञ्जुन्नितम्पुरान के रूप में याद किया जाता है। जब प्रिंस आफ वेल्स भारत आये थे तब उनसे इन्हें खिल्लत प्राप्त हुई थी। इनके काव्य त्रिपुरदहन में उच्चकोटि की कविता के दर्शन होते हैं इन्होंने दो नाट्यग्रन्थ भी लिखे थे- अनंगविजय (व्यायोग) (दे.) और विटराजविजय (भाण) (दे.) इनकी कतिपय अन्य रचनायें ये हैं- वल्ल्युद्भवम् विप्रसन्देश, देवदेवेश्वरशतकम्, उत्तररामचरितम् और वाणयुद्धचम्पू।

रामविलासभाण- (ना.कृ.) तमिलप्रदेश के राज्याध्यक्षों के आश्रय में संचित साहित्य के अन्तर्गत इस रचना का भी उल्लेख किया गया है। इसका लेखक और रचनाकाल दोनों अज्ञात हैं।

रामविषयक नाट्यकृतियां- (ना.सा.) अद्भुतदर्पण (महादेव); अनर्घराघव (मुरारि), अभिनव राघव (क्षीरस्वामी), अभिरामणि (सुन्दरमिश्र), अभिरामराघव (अनपोतनायक), अभिषेक (भास), अमोघराघव, आञ्जनेयविजय (भाष्यकार), उत्तरचरित (रामकृष्ण भवभूति), उत्तररामचरित (भवभूति), उन्मत्तराघव (भास्कर भट्ट), कुशकुमुद्वतीयम् (अतिरात्रयज्वन), कुशलवविजय (वेङ्कटकृष्ण), कृत्यारावण, छलितराम, जनकजानन्दन (नृसिंह), जानकीपरिणय (रामभद्र दीक्षित), जानकीराघव, निर्दोषदशरथ, प्रतिमा (भास), प्रपन्नविभीषण (लक्ष्मण सूरि), प्रसन्नराघव (जयदेव), प्रौढाभिराम (वेङ्कटनाथ), बालरामायण (राजशेखर), महानाटक (हनुमान), मायापुष्पक, मारीचवञ्चितक, मुदितराघव (सलकृष्ण), रघुवीरचरित (चक्रवर्ती वेदान्त सूरि), रामराज्याभिषेक (वीरराघव), रामाभिनन्द, रामायणनाटक (सोमेश्वरदेव), वालिवध, सीतानन्द (ताताचार्य), सीताराघव (रामपाणिवाद) हनुमन्नाटक (हनुमान), हर्षावसान (कन्हैयालाल पञ्चतीर्थ)

(१) **रामशास्त्री**– (ना.का.) सोण्ठीभद्राद्रि रामशास्त्री के नाम से प्रसिद्ध ये गोदावरी जिला के पीठापुर नामक स्थान के रहने वाले वैदिक ब्राह्मण थे। गौतमगोत्र के गंगारामय्या इनके पिता थे। ये संस्कृत के एक बड़े विद्वान थे और उर्लम तथा नक्कवरम् के जमीन्दारों के आश्रय में रहते थे। इनका लिखा एक काव्य श्रीराभ विजय और तथा संवरासुर विजय नामक चम्पू के अतिरिक्त मुक्तावली (दे.) नामक एक नाटक भी बतलाया जाता है। इनका समय है १८५६ से १९१५ ई.।

(२) **रामशास्त्री (मण्डिकल)** – (ना.का.) इनका लिखा भैमीपरिणय (दे.) गवर्नमेण्ट प्रेस मैसूर से प्रकाशित हो चुका है। कृष्णराज के समय में ये मैसूर राज्य दरवार के प्रधान पण्डित श्रीराम शास्त्री के पुत्र थे और पिता के बाद स्वयं उसी पद पर प्रतिष्ठित हो गये थे। इनकी लिखी दो और पुस्तकें प्रकाश में आई हैं– मेघप्रतिसन्देश जो मेघदूत के परिशिष्ट के रूप में लिखा गया है और कुम्भाभिषेक चम्पू। ये पुस्तकें मद्रास से निकलने वाले सहृदय संस्कृत जर्नल में प्रकाशित हुई हैं।

रामसिंह– (ना.का.) जानकी राघव (दे.) नाटक का लेखक इन्हें बतलाया जाता है। इनका समय १७वीं शताब्दी का पूर्वार्ध है और इनके पिता का नाम जयसिंह था।

(१) **रामस्वामी शास्त्री**– (ना.का.) के. सुन्दरम् और चम्पकालक्ष्मी के पुत्र थे। जि. जज के रूप में कार्य करते थे। संस्कृत साहित्य की इनकी समीक्षा आनन्द से ओतप्रोत रहती थी। इन्होंने रतिविजय (दे.) नामक एक छोटा सा नाटक लिखा था।

(२) **रामस्वामी शास्त्री**– (ना.का.) उषापरिणय (दे.) नाटक के लेखक। इनकी एक दूसरी कृति सीताचम्पू भी है। इनकी मृत्यु १९१८ में हो गई थी।

रामाङ्क– (ना.का.) धर्मगुप्त लिखित नाटिका। इसकी रचना १४वीं शताब्दी में हुई थी। कैटेलागस कैटेलागोरम १.२०८ पर इसका उल्लेख किया गया है। यह चार अंकों का रामायण कथापरक नाटक है।

रामानन्द– (ना.का.) ये त्रिपाठी वंश के सरयूपारीण ब्राह्मण थे। इनको दाराशिकोह से 'विविधविद्याचमत्कारपारंगत' की उपाधि प्राप्त हुई थी। इन्होंने सिद्धान्तकौमुदी पर तत्वदीपिका नामक टीका भी लिखी थी। इनका हास्यसागर (दे.) शीर्षक प्रहसन प्राप्त होता है। इनके अतिरिक्त अन्य अनेक नाटकेतर कृतियां भी इनके नाम पर पाई जाती हैं।

रामानन्द– (ना.कृ.) एक अप्राप्त श्रीगदित उपरूपक। इसका उल्लेख राम काव्यों में किया गया है। शारदातनय ने इसे श्रीगदित का उदाहरण माना है। कृष्णामाचार्य ने इसका समावेश प्रकरणों में किया है। शिगभूपाल के रसार्णवसुधाकर में भी इसका उल्लेख किया गया है।

रामानन्दराय– (ना.का.) ये चैतन्य महाप्रभु के अनुयायी थे। इन्होंने १४८० में उड़ीसा के राजा प्रतापरुद्रदेव के आदेश से ५ अंकों का जगन्नाथवल्लभ (दे.) नामक नाटक

लिखा था। गोविन्दवल्लभ (दे.) नाम का नाटक भी सम्भवतः इन्हीं का है।

(१) **रामानुज–** (ना.का.) त्रिवेल्लोर जि. चिंगलपुट के निवासी वधूल गोत्री शरणमाचार्य के पुत्र थे। इनका लिखा वसुलक्ष्मीकल्याण नामक नाटक प्रकाश में आया है। इनकी वार्धिकन्यापरिणय नामक एक नाट्यकृति भी बतलाई जाती है। इनके दूसरे ग्रन्थ हैं– वीरराघवकनकवल्लीविवाह, वेदपादरामायण और रामायणचम्पू। इनका समय १७वीं शताब्दी है।

(२) **रामानुज–** (ना.का.) इनका लिखा विवेकविजय एक प्रतीक नाटक है। इस नाटक का उल्लेख मद्रास की ओरियण्टल मैन्युस्क्रिप्ट लायब्रेरी के डिस्क्रिप्टिव कैटेलाग आफ संस्कृतमैन्युस्क्रिप्ट में ८५२१ संख्या पर किया गया है।

रामानुजाचार्य ह्वी– (ना.का.) इनका जन्म मद्रास के छत्र नामक गांव में हुआ था। इनको सर्वशास्त्रपारङ्गत, संस्कृतमहाकवीश्वर, कविरत्न, साहित्यभास्कर आदि अनेक उपाधियां प्राप्त हुई थीं। इन्होंने रूपक के विभिन्न अनेक भेदों पर एक एक कृति प्रस्तुत करने की चेष्टा की है। वे कृतियां इस प्रकार हैं– (१) नाटक– कलिकाकोलाहल, (२) प्रकरण– आत्मावली परिणय, (३) भाण– श्रीनिवास विलास, (४) व्यायोग– महादेशिका चरित, (५) समवकार– लक्ष्मीकल्याण, (६) डिम– दक्षमरवरक्षण, (७) ईहामृग– नहुषाभिलाषः, (८) अंक या उत्सृष्टिकाङ्क– अन्यायराज्य प्रध्वंसन (९) वीथी– मुनित्रयजय, (१०) प्रतीक नाटक– वाणीपणिग्रहण।

इनका लिखा कोई प्रहसन ज्ञात नहीं है। प्रतीक नाटक को जोड़कर १० की संख्या पूरी की जा सकती है। इन नाटकों के अतिरिक्त इनका लिखा रुक्माङ्गद चरित भी बतलाया जाता है। नाटकेतर साहित्य में इनका लक्ष्मीसहस्रनाम स्तोत्र भी बतलाया जाता है।

इनकी रचनायें प्रकाशित नहीं हुई हैं। कहा जाता है ये सब रचनायें अयोध्या में संस्कृतम् पत्रिका के सम्पादक पं. कालीप्रसाद त्रिपाठी के यहां कुछ समय पहले तक सुरक्षित थीं। कहा नहीं जा सकता कि अब इनकी स्थिति क्या है।

रामाभिनन्द– (ना.कृ.) रामविषयक एक नाटक जिसका उल्लेख मात्र मिलता है।

रामाभिषेक– (ना.कृ.) चौदहवी शताब्दी के नैपाली कवि धर्मगुप्त (दे.) लिखित नाटक।

(१) **रामाभ्युदय–** (ना.कृ.) व्यास श्री रामदेव (दे.) लिखित छाया नाटक। यह नाटक महाराणा मेरु के शासनकाल में प्रकाश में आया। निश्चयात्मक रूप से नहीं कहा जा सकता कि इसकी रचना छाया रूप में ही हुई थी। इसमें लंका पर राम की विजय, सीता की अग्निपरीक्षा और उनके अयोध्या लौटने का अंकन किया गया है।

(२) **रामाभ्युदय–** (ना.कृ.) इस नाटक का उल्लेख दशरूपक की टीका में धनिक ने अवमर्श सन्धि के भेद छलन के उदाहरण में और अभिनवगुप्त ने अभिनवभारती के

१९वें अध्याय में किया है।

(३) **रामाभ्युदय**– (ना.कृ.) यशोवर्मा (दे.) लिखित नाटक। इस नाटक से आनन्दवर्धन, धनिक और विश्वनाथ ने उद्धरण दिये हैं जिससे ज्ञात होता है कि यह एक उच्चकोटि का नाटक है। शारदातनय के अनुसार इस नाटक में ६ अंक हैं। किन्तु अभीतक यह नाटक उपलब्ध नहीं हुआ है। आनन्दवर्धन ने नाटक की प्रस्तावना में एक पद्य उद्धृत किया है। पूरा पद्य भी प्राप्त होता है। इससे नाटक की विशेषताओं पर प्रकाश पड़ताहै। उस पद्य के अनुसार 'प्रकृतियों की दृष्टि से वाणी का औचित्य, सर्वत्र पात्रानुकूलता, अपने अवसर पर रसकी पुष्टि, कथामार्ग का अतिक्रमण न करना, प्रस्तुत की सामग्री कल्पना में शुद्धि और शब्द तथा अर्थ की प्रौढता इनके अतिरिक्त ध्यान देकर विद्वानों द्वारा परिभावन की प्रेरणा– बस ये ही बातें हमें अभिष्ट हैं।' इससे ज्ञात होता है कि कवि ने रामचरित में कोई मूलभूत परिवर्तन नहीं किया है। प्रचलित रामचरित को लेकर ही नाटक की रचना की गई है।

रामायण नाटक– (ना.कृ.) यह सोमेश्वर (दे.) लिखित १३वीं शताब्दी का नाटक है। इसका उल्लेख बम्बई प्रदेश की संस्कृत पाण्डुलिपियों की पेटर्सन द्वारा की गई खोज रिपोर्ट में खण्ड ३ सं. ८९६ पर किया गया है।

रामायण नाटकम्– (ना.कृ.) १४वीं शताब्दी के नैपाली कवि धर्मगुप्त (दे.) का लिखा नाटक।

रामाराधा– (ना.कृ.) यह कृष्णविषयक नाटक बतलाया जाता है। शारदातनय के भावप्रदर्शन में इसका उल्लेख किया गया है। इसके लेखक तथा समय के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है। निश्चय ही यह शारदातनय (१२वीं १३वीं शताब्दी) के पहले की रचना होगी।

रामावतार शर्मा– (ना.का.) अपने समय के उद्‌भट विद्वान थे। इनका जन्म बिहार के छपरा जिले में सन् १८७७ में हुआ था और ये १९२८ तक विद्यमान रहे। इनके पिता देव नारायण और माता गङ्गादेवी थीं। इन्हें महामहोपाध्याय की उपाधि प्राप्त थी। पटना कालेज में संस्कृत के प्रोफेसर और हिन्दू विश्वविद्यालय बनारस में प्राच्य विभागाध्यक्ष के पदों को इन्होंने अलंकृत किया था।

इनका साहित्य बहुमुखी था और साथ ही इनकी साहित्य सेवायें भी बहुक्षेत्र व्यापिनी थीं। ललित साहित्य की दिशा में इन्होंने नाटक, गीत, काव्य, निबन्ध इत्यादि तो लिखे ही थे दर्शन के क्षेत्र में भी इनका लिखा परमार्थदर्शन अत्यन्त प्रसिद्ध हुआ। इन्होंने संस्कृत विश्वकोश की भी रचना की थी। इनका वाङ्मयार्णव नामक एक संस्कृत ज्ञानकोश ज्ञानमण्डल से प्रकाशित हुआ था। भारत के इतिहास पर भी इन्होंने लिखा था और अनेक शोध प्रबन्धों की रचना का भी इन्हें श्रेय प्राप्त है। एक पत्रिका का भी इन्होंने सम्पादन

किया था। संस्कृत के छात्र और विद्वान गौरव के साथ इनका नाम लेते थे. कहा जाता है इन्होंने केवल १५ वर्ष की आयु में धीरनैषध (दे.) नामक संस्कृत नाटक की रचना की थी। बिहारराष्ट्रभाषापरिषद् की ओर से रामावतार शर्मा ग्रन्थावली के नाम से इनकी कृतियों का प्रकाशन किया गया है। हर्षनैषधीयम् नाम का इनका एक अन्य नाटक भी बतलाया जाता है।

रामावदान– (ना.कृ.) नृत्यगोपाल कविरत्न लिखित नाटक।

रामिल– (ना.का.) शूद्रककथा (दे.) के लेखक। इनका नाम सोमिल के साथ लिया जाता है। सम्भवत: ये दोनों सगे भाई थे इनकी कोई रचना अब तक उपलब्ध नहीं हुई है। इनका उल्लेख कालिदास ने मालविकाग्निमित्र में किया है और इन्हें कविपुत्र कहा है। राजशेखर ने इन्हें शूद्रक कथा का लेखक बतलाया है जो श्रृङ्गार, वीर दोनों रसो की प्रधानता लेकर चलने के कारण इस रचना को अर्धनारीश्वर की उपमा दी गई है। कृष्णामाचार्य ने लिखा है कि गुरुरत्नमालिका पर आत्मबोधेन्द्र सरस्वती की टीका में रामिल के मणिप्रभा नाटक का उल्लेख किया गया है और उससे उद्धरण दिये गये हैं। इनके अनुसार रामिल और सौमिल आदि शङ्कराचार्य की २० वीं पीढ़ी में उत्पन्न अर्यक शङ्कर के समसामयिक थे।

रामेश्वर– (ना.का.) ये १८वीं शताब्दी के प्रथम चरण में उत्पन्न हुये थे। इनके पिता रामदेव तर्कवागीश थे और आश्रयदाता मान के राजा चित्रसेन। इनका चन्द्राभिषेक नाटक प्राप्त होता है। जिसमें चन्द्रगुप्त मौर्य के राज्यारोहण का कथानक अपनाया गया है। इसमें मुद्राराक्षस (दे.) की शैली अपनाने की चेष्टा की गई है किन्तु मुद्राराक्षस की कूटनीति के उस मात्रा में इसमें दर्शन नहीं होते और जो होते भी हैं उसमें वैसी मौलिकता नहीं है।

रामोदय– (ना.कृ.) श्रीवत्सलाञ्छन भट्टाचार्य लिखित नाटक। रचनाकाल १६वीं शताब्दी।

रायस अहोवलमन्त्री– (ना.का.) ये १६वीं शताब्दी के कवि हैं। इन्होंने ५ अंकों के कुवलयविलासम् (दे.) नाटक की रचना की थी।

रावण– (ना.पा.) रामायण का प्रतिनायक। इनका जन्म पुलस्त्य ऋषि के उच्च ब्राह्मण वंश में हुआ था। किन्तु कर्मो से यह राक्षस श्रेणी में पहुंच गया। प्रतिनायक की सारी विशेषतायें इसके अन्दर विद्यमान हैं। वह धीरोद्धत नायक है, वह पापी है, वह दुराचारी है– दुराग्रही है, लोभी है, व्यसनी है, स्त्रीलोलुप है। सीता का अपहरण करने के कारण ही उसके वंश का नाश हुआ है। राम विषयक नाटको में पात्र के रूप में उसका उपादान किया गया है। सामान्यचरित्र के अतिरिक्त उसके चरित्रचित्रण में कवियों ने अनेक कल्पनायें भी की हैं। इस विषय में निम्नलिखित नाटकों का उल्लेख किया जा

सकता है–

(१) **बालरामायण–** में कवि ने इसके उग्ररूप की अपेक्षा कोमलभाव और स्नेहिल प्रवृत्ति पर अधिक ध्यान दिया है। रावण प्रारम्भ से ही सीता को चाहता है और उससे विवाह करने का इच्छुक है। वह इस कार्य के लिये स्वयं जनकपुर आता है। किन्तु धनुष चढाकर परीक्षा देना उसके स्वाभिमान के प्रतिकूल है। वह बिना परीक्षा दिये धमकी देकर चला जाता है कि सीता का जिससे विवाह होगा वह उसका अहित करेगा। परशुराम से सहायता की प्रार्थना भी व्यर्थ जाती है। सीता का विवाह उसकी उपस्थिति में सम्पन्न होता है जहां सीता की सखियां मजाक में सीता और उसकी धात्री पुत्री की पुत्तलिकायें रावण को भेंट कर देती हैं जिससे वह बड़ी देर तक भ्रम में रहता है कि उसे असली सीता मिल गयी है। वह राम और सीता के विवाह में विघ्न डालने का प्रयत्न करता है किन्तु उसमें भी उसे सफलता नहीं मिलती। सीता का हाथ न मिल पाने से वह विक्षिप्त सा हो जाता है और प्राकृतिक तत्वों से अपनी प्रेयसी का पता पूंछने लगता है। उसकी इस विक्षिप्त अवस्था में उसकी बहन शूर्पणखा होश में लाती है और उसके अन्दर पुरुषोचित भावना जागृत करती है। वह छल कपट में भी शामिल होता है और सीता के बनावटी कटे सर को समुद्र के किनारे फिकवा देता है जिससे कुछ समय तक आतंक छाया रहता है परन्तु अन्त में भेद खुल जाता है।

(२) **प्रतिमा नाटक–** में रावण द्वारा सीता हरण के कथानक में नई कल्पना का समावेश किया गया है। राम पिता का श्राद्ध करना चाहते हैं। रावण सन्यासी के वेष में आता है और श्राद्ध कराने के लिये पौरोहित्य कर्म स्वीकार कर लेता है। वह राम को बतलाता है कि श्राद्ध में विशेष प्रकार के कृष्णसार का प्रदान शास्त्रीय विधि है। किन्तु इस प्रकार का कृष्णसार तो केवल हिमालय पर मिलता है। उसी समय वहां एक कृष्मसार दिखलाई दे जाता है जो वस्तुतः रावण की माया के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। राम उस कृष्णसार को पकड़ने चल देते हैं। लक्ष्मण पहले ही अनुपस्थित हैं क्योंकि तीर्थ से लौटे कुलपति के स्वागतार्थ लक्ष्मण पहले ही चले गये हैं। अवसर पाकर रावण सीताहरण कर लेता है और विरोध करने वाले जटायु का वध कर देता है।

(३) **अभिषेक नाटक–** इस नाटक में अधिकांश रूप में वाल्मीकि का पदानुसरण किया गया है। किन्तु फिर भी कवि ने यत्र तत्र कल्पना का सहारा लिया है। इसमे रावण की मायिकता की कल्पना की गई है। रावण सीता को वश में लेने के लिये राम और लक्ष्मण के मायिक सर बनवाता है और सीता पर यह प्रभाव डालने का प्रयास करता है कि राम और लक्ष्मण मारे जा चुके हैं और अब सीता के सामने रावण को स्वीकार कनरे के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं है। किन्तु सीता पर रावण के प्रलोभनों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता और उसका उद्योग व्यर्थ जाता है।

(४) **महावीरचरित–** में रावण का चरित्र रामायण से बहुत कम भिन्न है। रावण

प्रारम्भ से ही राम से विरोध मानता है और उन्हें नष्ट कर देने पर तुला हुआ है। इसमें रावण की इच्छा पूर्ति का सारा भार उनका मन्त्री माल्यवान वहन करता है। राम के वन गमन में उसी का हाथ है। उसने ही मन्थरा के वेष में शूर्पणखा को भेज कर राम को पत्र दिलवाया है जिसमें कैकेयी द्वारा राम को १४ वर्ष का वनवास मांगने की कल्पित बात लिखी है। राम जनकपुर में उस पत्र को प्राप्त करते हैं और पिता की आज्ञा समझकर उसे मानने पर आरुढ हो जाते हैं। वन में भी जब सीताहरण के बाद विभीषण अपने भाई रावण को छोड़कर ऋष्यमूक पर्वत पर राम से मैत्री करना चाहता है तब माल्यवन्त वाली को उकसाकर विभीषण के ऋष्यमूक पर्वत में प्रवेश पर प्रतिबन्ध लगवा देता है। यह सब रावण का ही क्रिया कलाप है।

(५) **अनर्घराघव-** में रावण का कोई विशेष योगदान नहीं है। महावीरचरित की भांति इसमें भी माल्यवान द्वारा शूर्पणखा को मन्थरा के वेष में भेजकर राम को वनवास दिलवाया गया है।

(६) **प्रसन्नराघव-** इसमें रामायण कथा वर्णनात्मक रूप में अधिक कही गई है और अभिनयात्मक कम है। सामान्य कथा के अतिरिक्त इसमें कल्पना का यत्र तत्र सहारा लिया गया है। सीता के स्वयंवर में रावण और वाणासुर दोनों आते हैं, दोनों का वाग्युद्ध होता है। रावण विना धनुष चढाये सीतारूप पुरस्कार प्राप्त करना चाहता है। वाणद्वारा अपमानित होता है। रावण सीताहरण के बाद उस पर वलात् अधिकार करना चाहता है। वह तलवार लेकर सीता का वध भी करना चाहता है किन्तु उसी समय उसके हाथ पर उसके पुत्र अक्षयकुमार का सर आकर गिरता है। माल्यवान मन्त्री उसके पास एक चित्र भेजता है जिसमें शत्रु के आक्रमण की सूचना दी गई है। वह इतना अभिमानी है कि उस चित्र को कोरी कल्पना कह कर एक ओर रख देता है। मन्दोदरी के समझाने और द्व्यर्थक भविष्यवाणी का भी उस पर प्रभाव नहीं पड़ता।

(७) **दूताङ्गद-** (ना.कृ.) अंगद के दूत्यकर्म परक इस नाटक में अंगद पर रावण प्रभाव डालना चाहता है कि सीता रावण से वास्तविक प्रेम करती है। किन्तु अंगद इस धोखे में नहीं आता।

महानाटक इत्यादि दूसरे नाटकों में भी रावण का पात्र के रूप में उपादान किया गया है।

रासलीला- (ना.कृ.) इसके लेखक हैं वेङ्कटराघवन। भागवत में भगवान् कृष्ण ने गोपियों के साथजो रासलीला की थी उसी को चार प्रेक्षकों में विभाजित कर नाटकायित किया गयाहै। यह एक प्रेक्षणक ओपेरा है जिसका प्रसारण आकाशवाणी मद्रास से किया गया था। यह अमृत पत्रिका में १९४५ में प्रकाशित किया गया था।

रासगोष्ठी- (ना.कृ.) यह अनादि मिश्र का लिखा एक उपरुपक है। किन्तु इसमें

कई उपरूपकों के मिले जुले लक्षण पाये जाते हैं। अतः इसे किसी एक उपरुपक की विधा में समाहित करना सम्भव प्रतीत नहीं होता। यह एक रासक है किन्तु इसमें नियम के प्रतिकूल सूत्रधार का प्रयोग किया गया है। अतः इसे उस विधा में नहीं रक्खा जा सकता। इसे संगीतक भी कहा जा सकता है। इसमें चूलिका से कथानक अनुसन्धेष है।

रुक्माङ्गदम्- (ना.कृ.) १८वीं शताब्दी के कणजयानन्द का लिखा नाटक। इसमें संस्कृत,प्राकृत और मैथिली भाषाओं का प्रयोग किया गया है। इसमें गीतों का बाहुल्य है और यह कीर्तनिया पद्धति पर लिखी गई नाट्यकृति है।

रुक्माङ्गदचरित- (ना.कृ.) रामानन्द ह्वी (दे.) लिखित नाटक।

रुक्मिणी- (ना.पा.) यह विदर्भ की राजकुमारी थी। इसके पिता ने इसका विवाह शिशुपाल से तय किया था। किन्तु इसका प्रेम भगवान् कृष्ण से था। विवाह के ऐन मौके से कुछ पहले रुक्मिणी ने कृष्ण को पत्र लिखकर अपने अपहरण का प्रस्ताव रक्खा और साथ ही यह भी लिखा कि यदि आप मेंरा अपहरण कर मुझे पत्नी के रूप में स्वीकार नहीं करेंगे तो आत्महत्या के अतिरिक्त मेरे पास कोई चारा नहीं रह जायेगा। पत्र में रुक्मिणी ने अपने अपहरण का स्थान और उपाय भी लिख दिया। कृष्ण ने अपहरण की प्रार्थना स्वीकार कर भरी पूरी सेनाओं के बीच से रुक्मिणी का वलात् अपहरण कर लिया। रुक्मिणी अपहरण की इसी प्रकार की घटना को रुक्मिणीहरण विषयक नाटकों में कुछ हेर फेर के साथ अपनाया गया है।

रुक्मिणी कल्याणम्- (ना.कृ.) विद्याचक्रवर्ती (दे.) लिखित नाटक।

(१) **रुक्मिणीपरिणय**- (ना.कृ.) यह विश्वेश्वर (दे.) का लिखा नाटक है। नाटककार ने अपने काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ अलंकार कौस्तुम में इसका उल्लेख किया है। इसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम II १२९ और काव्यमाला VIII ५२ में किया गया है।

(२) **रुक्मिणीपरिणय**- (ना.कृ.) यह कवि तार्किकसिंह का लिखा एक नाटक है। ये श्रीवत्सगोत्रीय थे और दक्षिण अर्काट जिले के गुप्तकुटी स्थान पर रहते थे। इस नाटक का उल्लेख मद्रास की ओरियण्टल लायब्रेरी के डिस्क्रिप्टिव कैटेलाग में खण्ड २१ सं. ८४१० पर किया गया है।

(३) **रुक्मिणीपरिणय**- (ना.कृ.) रामवर्म वञ्चि युवराज लिखित नाटक। इसका प्रकाशन बम्बई से हुआ है।

(४) **रुक्मिणीपरिणय**- (ना.कृ.) यह नाटक आत्रेय वरद का लिखा है जिसकी पाण्डुलिपि तंजौर की पैलेस लायब्रेरी में सुरक्षित है। कैटेलागस कैटेलागोरम में ८वें खण्ड की सं. ३५०२ पर इसका उल्लेख किया गया है। इसका प्रकाशन बम्बई से हुआ था।

(१) **रुक्मिणीस्वयंवर**- (ना.कृ.) प्रधानि वेङ्कट भूपति लिखित अंक (उत्सृष्टि काङ्क)।

(२) **रुक्मिणीस्वयंवर**- (ना.कृ.) यह अप्राप्त रचना नन्दीपति (दे.) लिखित बतलाई

जाती है।

(३) **रुक्मिणीस्वयंवर–** (ना.कृ.) रामकिशोर लिखित ७ अंकों की नाट्यकृति। इसका रचनाकाल १९वीं शताब्दी है।

रुक्मिणीहरण– (ना.कृ.) शेषनिरसिंह के पुत्र शेषचिन्तामणि लिखित नाटक। इसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम सं. १ से ५२७ पर किया गया है।

रुक्मिणीहरण– (ना.कृ.) वत्सराज (दे.) का लिखा चार अंकों का ईहामृग। इसका प्रकाशन गायकवाड ओरियण्टल सीरीज से हुआ है।

रुक्मी– (ना.पा.) यह रुक्मिणी हरण विषयक नाट्यकृतियों का एक पात्र है। यह रुक्मिणी का भाई है जिसने रुक्मिणी का विवाह शिशुपाल से करने का निश्चय किया था और अन्त तक उसका साथ दिया। इस प्रकार यह कृष्ण का विरोधी है।

रुचिपतिदत्त– (ना.टी.का.) इन्होंने अनर्घराघव की टीका नरसिंहदेव के पुत्र भीरव उपनाम हरिनारायण के निर्देश पर लिखी जो सम्भवतः १२२६ के आस पास उड़ीसा के शासक थे। ये कौकुल वंश में उत्पन्न हुये थे।

रुद्रदास– (ना.का.) मालावार के श्रीकण्ठ के शिष्य थे. इन्होंने चन्द्रलेखा (दे.) नामक चार अंकों का एक सट्टक लिखा था जिसकी रचना कर्पूरमञ्जरी सट्टक जैसी है। इसमें चन्द्रलेखा और मानवेदराज के विवाह का वर्णन किया गया है। इनका समय १७वीं शताब्दी है।

रुद्रदेव– (ना.का.) इनका लिखा उषापरिणय (दे.) प्रकाश में आया है जिसकी खोज राजेन्द्र मिश्र ने की थी।

रुद्रदेव– (ना.का.) जाम्बवतीकल्याण (दे.) नामक नाटक के लेखक। ये सम्भवतः वारंगल के शासक प्रतापरुद्रदेव से भिन्न थे।

रुद्रदेव– (ना.का.) इनका दूसरा नाम प्रताप रुद्रदेव भी था। ये एकशिला (बारंगल) के शासक थे और इन्होंने १२६८ से १३१९ तक एक विशाल साम्राज्य पर शासन किया था। ये स्वयं कवि थे और कवि तथा कलाकारों के बहुत बड़े आश्रय दाता थे। विद्यानाथ ने काव्यशास्त्र पर प्रतापरुद्र यशोभूषण लिखकर इनके नाम को अमर कर दिया। इनकी रचनाओं में उषा रागोदय नामक नाटिका (दे.) और ययातिचरित (दे.) नाटक केवल ये दो कृतियां उपलब्ध होती हैं। अगस्त्य विद्यानाथ के भतीजे इनके दरवार में रहते थे।

रुद्रशर्मा त्रिपाठिन्– (ना.का.) चन्द्रविलास (२) नाटक का लेखक। इनका लिखा चण्डीचरित (दे.) नामक एक और नाटक बतलाया जाता है जिसका उल्लेख हाल ने दशरूपकम् की प्रस्तावना में किया है। काश्मीर पुस्तकालय की पाण्डुलिपियों की ग्रन्थ सूची में भी इसका उल्लेख किया गया है।

रुमण्वान– (ना.पा.) वासवदत्ता विषयक नाटकों का एक पात्र। विशेष रूप से

निम्नलिखित नाटकों में इसका योगदान दिखलाया गया है–

(१) **प्रतिज्ञायौगन्धरायण–** में यह राजा का मन्त्री है और राजा को उज्जैन के बन्दीगृह से छुड़ाने के लिये यौगन्धरायण और वसन्तक के साथ वह भी प्रयत्नशील है तथा श्रमण का वेष बनाकर उज्जैन में निवास के लिये जाता है और राजा की निर्मुक्ति में सहायक होता है।

(२) **तापसवत्सराज–** में वत्सराज उदयन वासवदत्ता की कल्पित विपत्ति का समाचार सुनकर जब प्रयाग में आत्महत्या के लिये प्रस्तुत होता है और उधर वियोग वेदना न सह पाने के कारण वासवदत्ता भी आत्महत्या करना चाहती है उसी समय रुमण्वान दोनों को शत्रु पर विजय का समाचार देकर और दोनों प्रेमियों के मेल से उन्हें आत्महत्या से वचाकर इस नाटक को सुखान्त बना देता है।

(३) **रत्नावली–** में यह महाराज उदयन का सेनापति है। वह वीर है और अकेले ही कोशल नरेश को १०० वाणों से मार कर विजय लाभ प्राप्त करता है।

(४) **स्वप्नवासवदत्तम्–** में पात्र के रूप में रंगमञ्च पर तो नहीं आता; किन्तु उसका उल्लेख किया गया है। जब यौगन्धरायण वासवदत्ता के जल कर मर जाने की खबर उड़ा देता है और वासवदत्ता का प्रबन्ध करने चला जाता है तब राजा की संभाल करने और राज्य कार्य का मन्त्री के रूप में सञ्चालन करने का उत्तरदायित्व उसी पर आता है।

रुप गोस्वामी– (ना.का.) चैतन्य मतानुयायी वंगीय वैष्णव परम्परा के जाज्वल्यमात नक्षत्र। इनके पूर्वज कर्णाटक से बंगाल में आकर रहने लगे थे। पिता श्रीकुमार और माता रेवती से इनका जन्म १४९२ में हुआ था। ये भक्तिशास्त्र और रस शास्त्र के लब्ध प्रतिष्ठ आचार्य थे। १६वीं शताब्दी की वृन्दावन की भक्ति मण्डली के ये अग्रगण्य आचार्य थे। कहा जाता है मीराबाई ने इन्हीं से दीक्षा ली थी। भक्ति रस के अगुणी ग्रन्थ भक्तिरसामृतसिन्धु और उज्जवलनीलमणि इन्हीं की रचनायें हैं। इनके ललितसाहित्य में काव्य, स्फुट मुत्तक इत्यादि के अतिरिक्त तीन नाट्यकृतियां भी प्राप्त होती हैं– विदग्धमाधव (दे.), ललितमाधव (दे.) और दानकेलिकौमुदी (भाण) (दे.) इन्होंने लगभग १०० वर्ष की आयु पाई थी।

रेडियो एवं टेलीविजन– (ना.प्र.भा.) इनसे नाट्य कृतियां या उनके छोटे छोटे खण्ड प्रसारित होते रहते हैं। कभी कभी ये संस्थान अपनी ओर से भी नाटकों की रचना कराकर उनका प्रसारण करते हैं। इस प्रकार के नाटकीय खण्डों के उदाहरण विज्जिका, विकटनितम्बा, अवन्तिसुन्दरी इत्यादि।

रेवती हालाङ्क– (ना.कृ.) पुरुषोत्तम दीक्षित (दे.) लिखित नाटक। इस पुस्तक की प्रति तंजौर के पुस्तकालय III ३५०४ में सुरक्षित है।

रैवतमदनिका– (ना.कृ.) साहित्यदर्पण में गोष्ठी (उपरूपक) के उदाहरण के रूप

में इसका उल्लेख किया गया है। अब यह कृति उपलब्ध नहीं होती।

रोचनानन्द– (ना.कृ.) वधूलगोत्रीय वल्लीसहाय (दे.) लिखित नाटक। यह सम्भवतः ५ अंकों वाले किसी बड़े नाटक का एक खण्ड है। इसमें रुक्मवर्मा की पुत्री रोचना और अनिरुद्ध के प्रेम का चित्रण किया गया है। मद्रास ओरियण्टल मैन्युस्क्रिप्ट लायब्रेरी के संस्कृत पाण्डिलिपियों के डिस्क्रिप्टिव कैटेलाग में XXI ८४८९ पर इसका उल्लेख किया गया है।

रोहसेन– (ना.पा.) मृच्छकटिक में चारुदत्त का पुत्र। उसके बालहठ को पूरा करने के लिये ही वसन्तसेना अपने जेवर देकर उसके लिये सोने की गाड़ी बनवाती है, क्योंकि वह मिट्टी की गाड़ी से खेलना नहीं चाहता। चारुदत्त को मृत्युदण्ड घोषित हो जाने के बाद उसका पितृप्रेम और उसके प्रति पिता का वात्सल्य भली भांति प्रस्फुटित हुआ है।

रोहिणीमृगाङ्कम्– (ना.कृ.) इसका उल्लेख नाट्य दर्पण में किया गया है। इसके लेखक का पता नहीं चलता।

ल

लक्षण व्यायोग– (ना.कृ.) वीरेन्द्रकुमारभट्टाचार्य (दे.) लिखित व्यायोग। इसमें नक्सलवादी आन्दोलन की चर्चा की गई है। रचनाकाल २०वीं शताब्दी।

लक्ष्मण– (ना.पा.) रामायण के प्रमुख पात्रों में एक। कथा पुरष राम के साथ अविच्छिन्न और अविच्छेद्य सम्बन्ध। भ्रातृभक्ति का अभूतपूर्व उदाहरण। विश्वामित्र यज्ञ में, जनकपुर में, वनवास में, रावण के साथ युद्ध में प्रत्येक अवसर पर राम का दाहिना हाथ। राम विषयक नाटको में इनका उपादान हुआ है और कई में स्वतन्त्र चरित्र का विकास हुआ है। क्षमा शीलता, शान्ति और अवसर पर उत्तेजना वीरवृत्ति और क्रोध का विचित्र समन्वय दृष्टिगत होता है। कतिपय नाटकों में उनके चरित्र पर एक दृष्टि–

(१) **प्रतिमा नाटक**– एक महत्वपूर्ण पात्र। यहां हमें इनके चरित्र में दो विरोधी रूप दिखलाई देते हैं– राम के वनवास की खबर सुनकर उन्हें इतना अधिक क्रोध आता है कि वे विश्व को स्त्रियों से रहित कर देना चाहते हैं क्योंकि एक स्त्री के आग्रह पर ही यह अनर्थ होने जा रहा है। राम की क्षमाशीलता पर वे आक्षेप करते हैं कि क्या क्षमा में स्वाभिमान और मनस्वी होने की भावना का सर्वथा लोप हो जाता है (किं क्षमा निर्मनस्विता) वे परमवीर हैं। उनके क्रोध को देखकर राम भी डर जाते हैं कि कहीं लक्ष्मण क्रोध में आकर सारे विश्व को न जला दें। वे सहृदय भी हैं जब सीता उनसे शान्त होने की बात कहती हैं तब वे उत्तर में यही कहते हैं 'तुम इतनी स्वार्थिनी क्यों हो? यदि तुम्हारा राम के वायें पैर पर अधिकार है तो मेरा भी दाहिने पैर पर अधिकार है। वस्तुतः उनके क्रोध

लक्ष्मण

का भी हेतु भ्रातृ भक्ति ही है; भ्रातृप्रेम के लिये उनका अभूतपूर्व त्याग सर्वथा महान एवं स्तुत्य है।

(२) **अभिषेक नाटक**- में लक्ष्मण की स्नेह प्रवृत्ति और ज्येष्ठ के प्रति अनुशासन की भावना इन दोनों की अभिव्यक्ति सीता की अग्नि परीक्षा के अवसर पर उनके इस कथन से हो जाती है-

विज्ञाय देव्याः शौचं च श्रुत्वा चार्यस्य शासनम्।
धर्मस्नेहान्तरे न्यास्ता बुद्धिर्दोलायते मम॥

(हम जानते हैं कि देवी सीता के चरित्र में पूर्ण शुद्धता और परित्रता विद्यमान है, दूसरी ओर आर्य राम का आदेश है। इस प्रकार एक ओर स्नेह और दूसरी ओर कर्तव्य भावना इन दोनों के मध्य में पड़ी हुई मेरी बुद्धि झूले पर झूल रही है।)

(३) **महावीरचरित**- में राम का सीता से और लक्ष्मण का उर्मिला से पहले ही प्रेम हो जाता है। जब राम और लक्ष्मण विश्वामित्र के आश्रम में हैं दोनों बहने उस आश्रम में आती हैं वहीं दोनों युग्मों का प्रेम सम्बन्ध बद्धमूल हो जाता है जो बाद में विवाह में परिणत होता है।

(४) **उत्तररामचरित**- में चित्रशला की योजना लक्ष्मण ही करते हैं। चित्रशाला के पूर्ण हो जाने पर वे राम और सीता को चित्रवीथी के चित्र दिखलाते हैं जिन्हें देख देख कर राम भाव विभोर हो जाते हैं। उनके साथ ही लक्ष्मण की अपनी भावना भी चित्रित हो जाती है। इसमें देवर भाभी का एक मनोरंजक परिहास है- लक्ष्मण विवाहकाल के चित्र दिखलाते हुये बधुओं का परिचय कराते हुये सीता से कहते हैं- 'ये आप हैं, ये आर्या माण्डवी हैं, ये वेटी श्रुतकीर्ति हैं' सीता पूंछती है- 'यह एक और कौन?' लक्ष्मण शर्माकर उर्मिला के चित्र को हाथ से ढक लेते हैं। सीतापरित्याग का अवाञ्छनीय कार्य भी लक्ष्मण को ही करना पड़ता है।

(५) **उदात्तराघव**- में स्वर्णमृग को मारने राम नहीं लक्ष्मण जाते हैं और बाद में दीन मुनि की वाणी सुनकर उसकी रक्षा के लिये राम जाते हैं। इससे इस आरोप का समाधान हो जाता है कि लक्ष्मण के रहते हुये स्वयं राम को हिरण के पीछे जाने की क्या आवश्यकता थी। वहां पर राम के संकल्पविकल्प से लक्ष्मण के चरित्र पर भी प्रकाश पड़ता है- राम मुनि की दीन वाणी सुनकर विचार कर रहे हैं-'बेटा लक्ष्मण तो निर्भीकता का महासागर है, यह कैसे समझूं कि उसे राक्षस से कोई भय हो सकता है? किन्तु भयभीत मुनि भयातुर होकर चिल्ला रहा है इसलिये मेरा मन भ्रम में पड़ गया है। स्नेह के कारण गुरुजनों ने वार वार कहा है कि सीता को अकेली मत छोड़ना। इस स्थिति में मैं हतप्रभ हो गया हूं मैं निश्चय नहीं कर पा रहा हूं कि क्या करूं' लक्ष्मण को पहले भेजकर कवि ने सीता के लक्ष्मण के प्रति अवाञ्छनीय कथनों का भी समाधान प्रस्तुत कर दिया है।

(६) **अनर्घराघव**– में कवन्ध राक्षस से गुहनिषाद पीडित है। लक्ष्मण उससे अपने मित्र की रक्षा करते हैं। इसमे कबन्ध का दमन राम नहीं लक्ष्मण करते हैं। दुन्दुभि के कंकाल को राम नहीं लक्ष्मण उलटते हैं जिससे वालि वध का उपक्रम हो जाता है। वालिवध के कथानक का परिचय लक्ष्मण और गुह की बातचीत से ही मिलता है।

(७) **प्रसन्नराघव**– में जनकपुर में परशुराम के साथ संवाद में लक्ष्मण का भी योगदान है।

लक्ष्मण– (ना.टी.का.) इनकी लिखी टीकायें गीत गोविन्द और प्रसन्नराघव पर प्राप्त होती हैं।

लक्ष्मण माणिक्यदेव– (ना.का.) ये अकवर वादशाह के समय नोआखाली के राजा तथा प्रतिष्ठित नाटककार थे। कहा जाता है कि इन्होंने कई नाटकों की रचना की थी। किन्तु अब इनके केवल दो नाटक उपलब्ध होते हैं– कुवलयाश्वचरित और विख्यात विजय।

लक्ष्मण सूरि– (ना.का.) ये रामनद जिला में श्री वल्लिपुत्तूर के निकट पुनलवेली के निवासी मुत्थू सुब्बा अय्यर के पुत्र थे। इनका समय १८५६ से १९१९ तक था। ये सब शास्त्रों में निष्णात थे और इन्हें महामहोपाध्याय की उपाधि मिली थी। वे मद्रास के एक कालेज में संस्कृत के प्रोफेसर थे। इन्होंने कृष्णलीलामृत नामक एक बड़ा काव्य और कई छोटे छोटे काव्य लिखे। इनके नाटकों में दिल्ली साम्राज्य (दे.) (जार्ज पंजुम के दिल्ली दरवार का वर्णन) पौलस्त्य वध (दे.) और प्रसन्न विभषिण (दे.) (दोनों राम कथा पर आधारित) ये तीन नाटक प्राप्त होते हैं। इन्होंने कई महत्वपूर्ण टीकायें भी लिखी हैं जिनमें अनर्घराघव, उत्तर रामचरित, महावीर चरित, वेणीसंहार, बाल रामायण, और रत्नावली की टीकायें अधिक प्रसिद्ध हैं। इन्होंने साधारण गद्य का रूप भी प्रस्तुत किया और इस दिशा में कई ग्रन्थों की रचना की।

लक्ष्मणा स्वयंवर– (ना.कृ.) सुकुमार पिल्ले द्वारा लिखित नाटक। इसमें दुर्योधन की कन्या लक्ष्मणा और कृष्ण के पुत्र साम्ब के विवाह का वर्णन है।

लक्ष्मण परिणय– (ना.कृ.) उड़ीसा निवासी भुवनेश्वर बड़पंडा (दे.) लिखित नाटक।

लक्ष्मी– (ना.पा.) (१) **विक्रमोर्वशी** नाटक में उर्वशी वियोग वेदना से पीडित है। उसे लक्ष्मी-स्वयंवर में लक्ष्मी की भूमिका मिली हुई है। जब नाटक में प्रस्तुतीकरण में सखी उससे पूंछती है 'तुम किससे प्रेम करती हो' तो उसे कहना तो है पुरुषोत्तम (विष्णु) से किन्तु अपनी अभिनय की भूमिका भूलकर वह कह जाती है– पुरूरवा से। इसी अपराध में उसे मृत्युलोक में रहने का दण्ड मिलता है।

(२) **समुद्रमन्थन**– में समुद्र से लक्ष्मी की उत्पत्ति होती है जो विष्णु को प्राप्त हो जाती है।

(१) **लक्ष्मीकल्याण**- (ना.कृ.) रामानुजाचार्य ह्री (दे.) लिखित सभवकार।

(२) **लक्ष्मीकल्याण**- (ना.कृ.) सदाशिवदीक्षित लिखित ४ अंकों का नाटक। ट्रावनकोर पुस्तकालय के कैटेलाग सं. ७८ पर इसका उल्लेख किया गया है। लक्ष्मी ने पृथ्वी पर कन्या रूप में अवतार लिया और यहां उनका विष्णु के साथ विवाह हुआ। यही इस नाटक का मुख्य कथानक है।

(३) **लक्ष्मीकल्याण**- (ना.कृ.) मानविक्रम द्वारा लिखित नाटक। उल्लेख- ट्रावन्कोर पुस्तकालय के कैटेलाग सं. ०१९१ पर।

लक्ष्मीकान्तदास- (ना.का.) ये २०वीं शताब्दी के बंगाली कवि हैं। इनका लिखा हरिहरयुद्धम् नाटक का उल्लेख किया गया है।

लक्ष्मीकुमार ताताचार्य- (ना.टी.का.) इन्हें कविभूषण नाम से भी याद किया जाता है। ये शठमर्षण गोत्रीय तिरुवेङ्कट के पुत्र थे और ट्रिप्लीकेन मद्रास में रहते थे। इनका समय १९वीं शताब्दी का अन्त एवं वीसवीं शताब्दी का प्रथम चरण है। ये आशु कविता के लिये प्रसिद्ध थे। इनकी स्फुट काव्य परक कई रचनायें प्राप्त होती हैं जिनमें भवभूति भारती, पादुकास्तुति, सुभाषितरञ्जिनी, रामवाण सम्मिलित हैं। इन्होंने उत्तररामचरित की टीका भी लिखी थी जिसमें इन्होंने करुण के स्थान पर विप्रलाभ शृङ्गार को उसका अंगीरस सिद्ध किया था।

लक्ष्मी देवनारायणीय- (ना.कृ.) श्रीधर लिखित ५ अंकों का नाटक। ट्रावनकोर पुस्तकालय में संस्कृत पाण्डुलिपि सूची सं. ७८ में इसका उल्लेख किया गया है।

इस नाटक में अम्पल्लपुल ट्रावनकोर के देवनारायण नायक है और नन्दपुर के दिनराज की पुत्री लक्ष्मी (नायिका) के प्रति उनकी प्रणय लीला का चित्रण किया गया है। नायक नायिका के गुणों पर मुग्ध है; वह उसे भद्रनन्दन प्रदेश में बुलाता है। नायक ने उस प्रदेश से राक्षस को निकाल दिया है। अतः राक्षसराज प्रतिज्ञा करता है कि वह नायक से उसकी पत्नी का अपहरण कर बदला लेगा। नायिका निश्चित समय और स्थान पर नायक से मिलने आती है। उसके पहले ही राक्षसराज वनगज के रूप में सारे प्रदेश को ध्वस्त कर डालता है। जब नायक वनगज को मारने जाता है तव वह अवसर पाकर नायिका (लक्ष्मी) का अपहरण कर लेता है। राक्षस और नायक में युद्ध होता है और राक्षस मारा जाता है। किन्तु नायिका के वियोग में नायक तड़प उठता है क्योंकि उसे पता नहीं है कि नायिका कहां है। उसी समय आकाशवाणी होती है कि नायिका अपने पिता के घर सुरक्षित है। अन्त में दोनों का मिलन हो जाता है और दोनों प्रणयसूत्र में बंध जाते हैं।

इस नाटक में प्रस्तावना के लिये स्थापना शब्द का प्रयोग किया गया है। इसमें प्राकृतिक दृश्यों की भरमार है। देवनारायण द्वारा आयोजित यात्रा के उत्सव में इसका

अभिनय किया गया था। इसकी रचना १८वीं शताब्दी में की गई थी।

लक्ष्मीधर– (ना.टी.का.) इन्होंने गीत गोविन्द, अनर्धराघव और प्रसन्नराघव पर टीकायें लिखीं।

लक्ष्मी नारायण द्विवेदी– (ना.का.) ये २०वीं शताब्दी के उत्तर प्रदेश निवासी कवि हैं। इन्होंने दो नाटकों की रचना की थी– स्वर्णेष्टकीयम् और त्रिभाण्डपट्टक (भाण) इनके अतिरिक्त इनकी रचनायें हैं– ऋतुविलसितम्, आगमविश्वदर्शनम्, तर्करत्नावली, वागीश्वरीस्तवराजः।

लक्ष्मीनृसिंह– (ना.का.) इनके लिखे दो भाण प्रकाश में आये हैं– अनंगलतिका (दे.) और अनंगसर्वस्व (दे.।)

लक्ष्मीपति– (ना.का.) लवलीपरिणय (दे.) नाटक के लेखक।

लक्ष्मीमानवेद– (ना.कृ.) यह उद्वाहु सुन्दर के पुत्र दिवाकर (दे. दिवाकर (२)) की रचना है। ओरियण्टल लायब्रेरी के पाण्डुलिपि अनुभाग की त्रैवार्षिक खोज रिपोर्ट में सं. V ६३५१ पर इस नाटक का उल्लेख किया गया है।

(१) **लक्ष्मीस्वयंवर–** (ना.कृ.) यह एक ओपेरा (प्रेक्षणक) है जिसकी रचना डा. वेङ्कट राम राघवन् ने की थी। इसका प्रसारण आकाशवाणी मद्रास से सन् १९५९ में लक्ष्मीव्रत के अवसर पर किया गया था। इसमें समुद्रमन्थन से लेकर लक्ष्मी के साथ विष्णु के विवाह तक की कथा अंकित की गई है।

(२) **लक्ष्मीस्वयंवर–** (ना.कृ.) यह १८वीं शताब्दी की प्रधान वेङ्प्प की तीन अंकों की रचना है। लक्ष्मी प्रणयलह में नाराज होकर समुद्रकन्या के रूप में जन्म लेती है। स्वयंवर में सभी देवताओं का अतिक्रमण कर लक्ष्मी विष्णु के गले में जयमाला डाल देती है और विष्णु सभी देवों को भेंट के रूप में अमरता का वरदान देते हैं। इसमें प्रत्येक अंक के साथ एक विष्कम्भक जुड़ा है। इसका प्रथम अभिनय वेङ्गलनाथ के महोत्सव में हुआ था। इसे बिबुधानन्द नाम से भी याद किया जाता है।

(३) **लक्ष्मीस्वंयवर–** (ना.कृ.) इसकी रचना स्वयं सरस्वती ने की थी और इसका प्रथम अभिनय स्वयं भरतमुनि द्वारा इन्द्र की रंगशाला में किया गया था। शृङ्गार प्रकाश में इसका उल्लेख किया गया है।

(४) **लक्ष्मी स्वयंवर–** (ना.कृ.) यह रामानुज के पुत्र श्रीनिवास द्वारा लिखित एक प्रसिद्ध नाट्यकृति है। इसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम भाग १ सं. ७१ पर किया गया है।

(५) **लक्ष्मी स्वयंवर–** (ना.कृ.) पराशर भट्ट लिखित नाटक। इसका उल्लेख वेदान्त देशिक ने रहस्यत्रयसार में किया है।

लंका– (ना.पा.) रावण के पुराणोक्त देश का महावीर चरित में मानवीकृत रूप।

लटकमेलक– (ना.कृ.) शंखधर (दे.) लिखित प्रहसन इसका प्रकाशन बम्बई से हुआ है। साहित्यदर्पण में इसे संकीर्ण प्रहसन के उदाहरण के रूप में उल्लिखित किया गया है। इसकी नायिका मदन मञ्जरी है जो कुट्टिनी दन्तुरा के यहां रहकर रूप का व्यवसाय करती है। प्रेम के अनेक सौदागर आते हैं और मोल तोल करते हैं। जब नायिका के गले में मछली का कांटा उलझ जाता है। तब चिकित्सा के लिये सर्वथा अयोग्य वैद्य जन्तुकेतु आता है। वह ऐसी ऐसी बातें करता है जिससे हास्य की वृद्धि होती है। नायिका के जोर से हंसने में ही गले का कांटा निकल जाता है और वैद्य का कार्य पूरा हो जाता है। जिस विवाह का आयोजन किया गया है वह मुख्य नायिका के साथ नहीं है दन्तुरा कुट्टिनी के साथ दिगम्बर का विवाह है जो प्रस्ताव ही वास्तव में हास्य जनक है।

इसका प्रकाशन काव्य माला सीरीज सं. २०, १८८९ में हुआ था।

लम्बोदर प्रहसन– (ना.कृ.) दे. उन्मत्तकविकलश।

ललितमाधव– (ना.कृ.) रुपगोस्वामी लिखित नाटक। इसमें राधा कृष्ण की प्रेमलीला का श्रीमद्भागवत के आधार पर चित्रण किया गया है। इसमें १० अंक हैं। इसका प्रकाशन वरहानपुर मुर्शिदाबाद में हुआ था।

ललितरत्नमाला– (ना.कृ.) क्षेमेन्द्र (१) लिखित नाटक जिसका उल्लेख औचित्यविचारचर्चा में किया गया है। अब यह नाटक उपलब्ध नहीं होता। औचित्य विचारविमर्श में जो उद्धरण दिया गया है उससे ज्ञात होता है कि इसका कथानक हर्ष की रत्नावली के समान होगा।

ललितराघवीय– (ना.कृ.) यह रामपाणिवाद नामक कवि का लिखा नाटक है। इसमें राम के पूरे चित्रण का विषय वस्तु के रूप में उपादान किया गया है। मद्रास की ओरियण्टल लायब्रेरी के विवरणात्मक संस्कृत पाण्डुलिपियों के अनुभाग में खण्ड २१ सं. ८५४२ पर इसका संकलन किया गया है।

ललितविग्रहराज– (ना.कृ.) यह सोमेश्वर (दे.) का लिखा एक प्रशस्ति नाटक है। इसमें देशलदेवी और विग्रहराज के प्रेम प्रसंग का अंकन किया गया है। देसलदेवी इन्द्रपुर के राजा वसन्तपाल की पुत्री थी। इस नाटक में हम्मीर के साथ युद्ध का भी सन्दर्भ आया है यद्यपि वास्तविक युद्ध का वर्णन नहीं है। इस नाटक की खुदाई शिला खण्डों पर की गई थी जो अजमेर की मस्जिद के गुम्बजों में लगे हैं।

ललिता– (ना.कृ.) कृष्णन तम्पी का लिखा नाटक। इसमें आधुनिक शैली में राजपूत और इस्लामी युग का चित्रण किया गया है। इसका प्रकाशन सन् १९२४ में हो गया था।

लव-कुश– (ना.पा.) उत्तररामचरित में सीता के यमज पुत्र हैं। माता पिता से दूर वाल्मीकि की देखरेख में इनका पालन पोषण हुआ है जहां इन्हें शस्त्र-सञ्चालन इत्यादि

क्षात्रधर्म की शिक्षा के साथ मानवता के सद्गुणों और व्यवहार की भी बहुत उच्चकोटि की शिक्षा प्राप्त हुई है। जृम्भकास्त्र तो इन्हे जन्म से ही सिद्ध है। जिस समय शृङ्गी ऋषि के यज्ञ से लौटकर गुरु वशिष्ठ और अरुन्धती की देखरेख में राम का परिवार वाल्मीकि के आश्रम में आता है उस समय वाल्मीकि के निर्देश पर कुश अभिनय के लिये उत्तर रामायण की पाण्डुलिपि भरत को देने के लिये गया है। अतः इस समय आश्रम में अकेला लव विद्यमान है। इस नाटक में लव का ही चित्रण हुआ है कुश बाद में आ जाता है और यत्किञ्चित् प्रकाश उसके स्वभाव पर भी पड़ जाता है। किन्तु उसकी मानव प्रकृति का चित्रण प्रायः उपेक्षित ही रह गया है। लव स्वभाव से निहायत ही विनम्र और मानव गुणों से भरा पूरा है। सबसे पहले तो उसकी आकृति और सौन्दर्य ही परिवार वालों पर प्रभाव डालतेहैं। वे लोग उसकी आकृति में राम और सीता दोनों की प्रतिच्छाया का अनुभव करते हैं। वह अपने सद्व्यवहार और विनयशीलता से सभी को प्रभावित करता है। रामायणविषयक अपने ज्ञान से सभी की प्रशंसा प्राप्त कर लेता है। किन्तु क्षत्रियोचित दर्प भी उसके अन्दर विद्यमान है। उसे दूसरों की दर्पोक्तियां सहन नहीं होतीं। इसीलिये यज्ञ का अश्व अपने अधिकार में लेकर युद्ध की स्थिति बना देता है और जब राम द्वारा परशुराम को पराजित किये जाने की बात कही जाती है तब वह निस्सङ्कोच कह देता है कि ब्राह्मणों में शक्ति ही क्या होती है। एक ब्राह्मण को दवा लेने में राम की क्या प्रशंसा। राम की आलोचना करने में भी उसे संकोच नहीं होता यद्यपि वह इसमें राम के प्रति सम्मान भावना का परित्याग नहीं करता। जब अवसर आता है तब युद्ध कौशल प्रदर्शित करने में भी नहीं चूकता और उचित होने पर लक्ष्मण पुत्र चन्द्रकेतु के साथ मैत्री भाव भी बना लेता है।

जब रामायण की पाण्डुलिपि भरतमुनि को सौंपकर कुश लौटता है और उसे ज्ञात होता है कि किसी क्षत्रिय से युद्ध चल रहा है तब वह अमर्ष में भरकर वीरोचित कर्म करने के लिये तैयार हो जाता है। किन्तु जब लव उसे बतलाते हैं कि राम इत्यादि उसके दोस्त चन्द्रकेतु के पारिवारिक व्यक्ति हैं तब वह शान्त होकर लव के समान ही राम के पारिवारिक व्यक्तियों के प्रति श्रद्धा का व्यवहार करने लगता है।

लवणलक्ष्मणम्- (ना.कृ.) नारायण शास्त्री (१) लिखित ७ अंकों का नाटक।

लवलीपरिणय- लक्ष्मीपति लिखित एक नाटक। मैसूर की प्राइवेट लायब्रेरी के संस्कृत पाण्डुलिपि कैटेलाग में सं. २८२ पर इसका उल्लेख है।

लाक्षणिकनाट्य- (ना.वि.) दे. प्रतीक नाटक साहित्य।

लालकवि- (ना.का.) ये बिहार के कवि एवं नाटककार हैं इन्होंने गौरी स्वयंवर रुपक की रचना की थी।

लालावैद्यम्- (ना.कृ.) यह एक प्रहसन है जिसकी रचना खोत स्कन्द शंकर ने

की थी। लाला वैद्य स्वयं वैद्य नहीं है किन्तु उनके पिताजी वैद्य थे। उन्हीं का रजिष्ट्रेशन प्रमाणपत्र लेकर वह अपनी वैद्यक चला रहा है। उसे जलवैद्य, भस्मवैद्य जैसे कुछ सहचर भी मिल गये है जो वैद्य न होते हुये वैद्यक से काफी पैसा पैदा कर रहे हैं। वे अनेक ऐसे कार्य करते हैं जो हास्य जनक हैं, अन्त में पकड़े जाते हैं और उन्हें दण्ड मिलता है। यह रचना नागपुर से प्रकाशित हुई है।

लावण्यपाल– (ना.पा.) 'हम्मीरमदमर्दन' (दे.) नाटक का एक पात्र वह वास्तुपाल के भाई तेजः पाल का पुत्र है। वास्तुपाल अपने भतीजे लावण्यपाल की प्रशंसा करता है कि वह एक कुशल व्यक्ति है, बुद्धिमान है और उसके गुप्तचर महत्वपूर्ण सूचना लाते हैं। लावण्यपाल को चिन्ता लगी हुई है कि वह किसी प्रकार अपने चाचा की प्रशंसा के अनुकूल कार्य करके दिखलाये। उसके चाचा का सुझाव है कि हम्मीर पर आक्रमण करने के पहले मारवाड़ के राजाओं की सहायता ली जानी चाहिए। लावण्य पाल इस कार्य को सफलता के साथ पूरा कर अपने चाचा द्वारा की गई प्रशंसा को सत्य सिद्ध करके दिखलाता है।

लिंगादुर्गभेदन– (ना.कृ.) परमानन्द दादंभट्ट लिखित नाटक। कैटेलागस कैटेलागरोम १.५४४ में इसका संकलन किया गया है।

लीलातिलक– (ना.कृ.) यह एक भाण है जिसकी रचना केरल निवासी एवं दरबारी कवि भास्कर ने की थी। इसे शृङ्गारलीलातिलक नाम से भी याद किया जाता है। (दे. भास्कर २)

लीलादर्पणभाण– (ना.कृ.) यह पद्मनाभ (दे.) का लिखा भाण है। यह एक शृङ्गार परक रचना है। इसे मदनलीलादर्पण नाम से भी अभिहित किया जाता है। इसका प्रथम अभिनय बनारस के चैत्रोत्सव के अवसर पर किया गया था। मद्रास की ओरियण्टल लायब्रेरी की ट्रायनियल रिपोर्ट सं. III ३१७७ पर इसका संकलन किया गया है।

लीलारावदयाल– (ना.का.) ये बम्बई निवासिनी २० वीं शताब्दी की कवयित्री हैं। इनकी माता क्षमादेवी राव एक योग्य विदुषी एवं कवयित्री थीं। उन्हीं के लिखे कथानकों को इन्होंने नाट्य रूप में परिणत किया, माता से ही इन्हें लेखन की दिशा में प्रेरणा मिली। इनके नाटक हैं– असूयिनी, कटुविपाक, कपोतालय, क्षणिकविभ्रम, गणेशचतुर्थी, गिरिजायाप्रतिज्ञा, जयन्तु कुमाउनीयाः, ज्ञानेश्वरचरितम्, तुकारामचरितम्, बालविधवा, मायाजालम्, मिथ्याग्रहणम्, मीराचरितम्, वीरभा, वृत्तशंसिच्छत्रम् और होलिकोत्सवः।

इनके लिखे नाटक नवीन शैली में सामाजिक समस्याओं पर प्रकाश डालते हैं।

लीलावती– (ना.कृ.) रामपाणिवाद (दे.) लिखित वीथी। कर्णाटक के राजा की पुत्री लीलावती इस वीथी की नायिका है। राजा अपहरण के भय से उसे अन्य प्रदेश की रानी कलावती के संरक्षण में भेजे देते हैं। वहां का राजा उसे चाहने लगता है, किन्तु वह रानी

से भयभीत है। विदूषक सिद्धिमती योगीश्वरी की सहायता से दोनों प्रेमियों को मिलाने की चेष्टा करता है। योगमाया के प्रभाव से रानीको सर्प डसता है, वह मूर्छित हो जाती है। विदूषक सपेरा बनकर उसका विष दूर करता है। रानी प्रसन्न होकर उससे कुछ पारितोषिक मांगने को कहती है। विदूषक राजा और लीलावती का प्रणय सम्बन्ध मांग लेता है। दोनों का विवाह हो जाता है। किन्तु देवार्चन केलिये निकलने पर ताम्राक्ष नामक असुर लीलावती का अपहरण कर लेता है। राजा उस असुर को पराजित कर लीलावती को पुनः प्राप्त कर लेता है।

इस वीथी में विष्कम्भक का प्रयोग किया गया है जो वीथी के नियमों के प्रतिकूल है। कहा जाता है इसकी रचना अल्लमपल्ल के राजा देवनारायण के आदेश पर की गई थी।

एल.वी. शास्त्री– (ना.का.) २० वीं शताब्दी के मद्रास निवासी कवि एवं नाटककार। इनकी लिखी तीन नाट्यकृतियां प्राप्त होती हैं– लीलाविलास (दे.), चामुण्डा (दे.) और निपुणिका (दे.)।

लीलाविलासम्– (ना.कृ.) एक हास्यप्रधान नाटक। इसकी रचना मद्रास के एल.वी. शास्त्री ने की थी। इसका प्रकाशन पालघाट (केरल) से सन् १९३५ में हो गया था। इस प्रहसन की नायिका गौतम नामक ब्राह्मण की पुत्री लीला है। पिता उसका विवाह वेदान्त भट्ट से करना चाहता है, किन्तु मां मिल नामक एक शरावी से करना चाहती है। लीला का भाई सत्यव्रत बहन का मन जानकर उसका विवाह विलास से करना चाहताहै। विवाह के पहले एक दस्यु लीला का अपहरण कर लेता है। विलास उसे छुड़ा लाता है तब लीला और विलास दोनों का विवाह हो जाता है।

लेनिनविजयम्– (ना.कृ.) डा. रमाचौधरी लिखित नाटक जिसका प्रथम अभिनय रूस के प्रसिद्ध पुरुष लेनिन के शताब्दी समारोह के अवसर पर किया गया था।

लोकनाथभट्ट– (ना.का.) इनका जन्म १७वीं शताब्दी में हुआ था। इनके पिता वरदार्य या कविशेखर थे। इनका संबन्ध विश्वगुणादर्श चम्पू के लेखक वेङ्कटाध्ववीण से था। इनका लिखा कृष्णाभ्युदय नामक प्रेक्षणक प्रसिद्ध है।

लोकरञ्जन– (ना.कृ.) श्रीनिवासाचार्य लिखित प्रहसन मैसूर पुस्तकालय पाण्डुलिपि अनुभाग सं. १८२, २६३ में इसका संकलन किया गया है।

लोकानन्द– (ना.कृ.) चन्द्र (दे.) चन्द्रक, चन्दक, महसत्व चन्द्र या चन्द्रगोमिन की कृति। इसकी केवल एक प्रति तिब्बती अनुवाद के रूप में प्राप्त होती है। इसका नायक मणिचूड है जिसने अपनी पत्नी और वच्चों को किसी ब्राह्मण को दान कर दिया और इस प्रकार एक उदार व्यक्ति का यश प्राप्त किया। इत्सिंग ने लिखा है कि एक प्राचीन भारतीय बुद्धिमान व्यक्ति ने वेस्सन्तरजातक को प्रगीत नाट्य के रूप में प्रस्तुत किया था

जिसमें राजकुमार विश्वान्तर की कथा नाट्यकृति के रूप में प्रस्तुत की गई थी। उस समय तक राजकुमार विश्वान्तर के रूप में याद किया जाता था और भारत के सभी प्रान्तों में उस कथानक को नृत्य गीत और नाट्य के रूप में प्रस्तुत किया जाता था। सम्भवतः यह नाट्यकृति लोकानन्द ही है यद्यपि इसका नायक विश्वान्तर या सुदान नहीं मणिचूड है जिसका नाम चीन में कुछ कुछ प्रसिद्ध है। वर्मा में वेस्सान्तर जातक का अभिनय रंगमञ्च पर प्रस्तुत किया जाता है। प्रायः सभी नव शिक्षार्थियों को इसकी शिक्षा दी जाती है।

व

वक्रतुण्डगणनायक– (ना.कृ.) यह एक प्रकरण रचना है जिसका संकलन कैटेलागस कैटेलागोरम सं. १.५४ पर किया गया है।

वंगीयप्रताप– (ना.कृ.) यह हरिदास सिद्धान्त वागीश का लिखा वर्तमान शताब्दी का ८ अंकों का नाटक है। इसमें भारत की दुर्दशा का सूक्ष्म चित्रण किया गया है और उसके लिये ऐतिहासिक सामग्री उपयोग में लाई गई है। देशभक्त पात्रों का नवाब से संघर्ष इसका मुख्य विषय है। शङ्कर देशभक्त है जो जनता का पक्षपाती है। नवाब उसे दण्ड देना चाहता है जिससे डरकर वह जंगल की ओर भाग जाता है। वहां उसे अपने कार्य में यशोर के प्रतापादित्य का सहयोग मिल जाता है। दूसरी ओर नवाब अपने सेनापति सुरेन्द्रनाथ घोषाल को शङ्कर की सपरिवार गिरफ्तारी के लिये नियुक्त करता है। शंकर भागते समय परिवार की देख रेख का भार सूर्यकान्त पर सौंप गया था। नवाब की ओर से आक्रमण और युद्ध में शङ्कर का पक्ष पराजित हो जाता है और नवाब का सेनापति शङ्कर पत्नी कल्याणी नवाव को भेंट करना चाहता है। किन्तु समय पर शङ्कर और प्रताप पहुंचकर सुरेन्द्र को मार डालते हैं और इस प्रकार शंकर की पत्नी की रक्षा हो जाती है। अब प्रताप और शङ्कर के पक्ष को अकवर की सहायता मिल जाती है। नवाव यशोर (प्रताप के राज्य) पर आक्रमण करता है किन्तु बन्दी बना लिया जाता है। यशोर के राजा विक्रमादित्य के राज्यभार पुत्रों पर डालकर काशीवास के लिये चले जाने पर राज्य दो भाइयों प्रताप और वसन्त का हो गया था। अब नवाव के पराजित हो जाने से प्रताप का वर्चस्व बढ गया था। उससे ईर्ष्या में वसन्त मानसिंह की सहायता लेता है किन्तु पराजित होता है। अकवर की मृत्यु के बाद जहांगीर भवानन्द और मानसिंह के साथ यशोर पर आक्रमण करता है किन्तु वहां भी प्रताप की विजय होती है।

यह नाटक नवीन शैली का है जिसमें सामाजिक चित्रण पर्याप्त मात्रा में किया गया है। धीवरों के समूह गीत, दूरवीन से युद्ध देखना, गाली गलौज का समावेश सामाजिक व्यवस्था का प्रतिनिधित्व करते हैं। गीतों की अधिकता है, लोकोक्तियों का प्रयोग किया

गया है, छायातत्व का भी समावेश है। इसकी रचना १९१७ में हुई थी और उसी वर्ष उसका अभिनय भी उनसिया (कोटालिपाड़ा) में किया गया था। इसका प्रकाशन १९४४ में सिद्धान्त विद्यालय कलकत्ता से कर दिया गया था।

वज्रवर्मा– (ना.पा.) यह कौमुदी मित्रानन्द (दे.) का एक पात्र है। यह आदिवासियों का सरदार है, कौमुदी और उसकी सहेली सुमित्रा को गिरफ्तार कर लेता है किन्तु अन्त में लक्ष्मीपति का पत्र आ जाने से छूट जाता है। वज्रवर्मा मित्रानन्द का सहयोगी बन जाता है और मकरन्द के एक विवाद के निपटाने में भी सहायता करता है।

वणिक्सुता– (ना.कृ.) सुरेन्द्रमोहन (दे.) वालाजित् लिखित एकाङ्कीनाटक। इसमें एक ऐसी विधवा की कहानी है जो हिन्दु परम्पराओं का समर्थन करती है। इसका प्रकाशन मञ्जूषा में हो गया है।

वत्सराज– (ना.का.) इनका समय १२वीं १३वीं शताब्दी है। इन्होंने स्वयं को कालिञ्जर के परमार्दिदेव का मन्त्री बतलाया है। बाद में कुछ समय तक ये उनके पुत्र त्रैलोक्यवर्मदेव के भी मन्त्री रहे थे। इनकी ६ नाट्यकृतियां उपलब्ध होती हैं जो विभिन्न नाट्यप्रकारों पर रची गई हैं भाण– कर्पूरचरित, समवकारर– समुद्रमन्थन, डिम– त्रिपुरदाह, ईहामृग– रुक्मिणीहरण, व्यायोग– किरातार्जुनीय और प्रहसन– हास्यचूडामणि।

ये नाटक परमार्दिदेव और उनके पुत्र त्रैलोक्य वर्मदेव की राजसभाओं में अभिनीत किये गये थे और गायकवाड ओरियण्टल सीरीज बड़ौदा से सं. VII १९१७-१८ में रुपकशतक के अन्तर्गत प्रकाशित हुये थे।

वत्सराजचरित– (ना.कृ.) इसका एक दूसरा नाम वीणावासवदत्ता भी है। इसमें किसी लेखक का नाम नहीं है किन्तु नाट्यकला की दृष्टि से यह नाटक भास के नाटकों से मेल खाता है। दूसरी ओर यह भी कहा जां सकता है कि यह शूद्रक की रचना है। वल्लभदेव की सुभाषितावली में इसका नान्दीपाठ का पद्य शूद्रक के नाम पर उद्धत किया गया है और शूद्रक की एक विशेषता कुवलय शब्द का प्रायिक प्रयोग और उसकी प्रसादगुण पूर्ण शैली इसे शूद्रक कृत सिद्ध करती है। शकुन्तला की चर्चना नामक टीका में इसे भासकृत बतलाया गया है और उसकी समीक्षा की गई है। यह कृति केवल तीन अंक तक अविकल प्राप्त होती है, परवर्ती भाग के पद्यों का संकलन कर दिया गया है। अतः कथानक सूत्र कहीं कहीं उच्छिन्न हो जाता है।

उज्जैन के महासेन की पुत्री वासवदत्ता विवाह योग्य हो गई है। राजा मन्त्रियों के साथ सम्भावित वरों के विषय में विचार कर रहा है। अनेक राजकुमारों के नाम लिये जाते हैं और ठुकरा दिये जाते हैं। अन्त में वत्सराज उदयन का निश्चय किया जाता है। किन्तु उदयन स्वाभिमानी है। अतः एक योजना बनाई जाती है– उदयन को हाथी का शिकार करने का शौक है। अतः एक हाथी बनाकर जंगल में रख दिया जाता है। किसी

साधन से उदयन के पास सूचना भेजी जाती है और जब उदयन शिकार के लिये उस जंगल में आते हैं। महासेन के सैनिक उन्हें अधिकार में ले लेते हैं। उज्जैन में उदयन को सम्मान पूर्वक रक्खा जाता है।

मन्त्री यौगन्धरायण बहुत दुःखी है और आत्महत्या का निश्चय करते हैं। प्रजा शोकाकुल होकर विलाप कर रही है और यौगन्धरायण सबके सामने अग्नि में प्रवेश कर जाते हैं। किन्तु वह बनावटी आगहै। यौन्धरायण छिपकर उस आग से निकल आते हैं और रात्रि में कौशाम्बी में जाकर किसी न किसी प्रकार हाथी को वहां से निकाल लाते हैं तथा उज्जैन के निकट छोड़ देते हैं। हाथी मदमत्त है तथा वहां शोर मचाता है। उसको वश में लाने के लिये उदयन को कुछ समय के लिये छोड़ा जाता है और उदयन अनायास ही उस पर अधिकार कर लेते हैं।

महल के सौध से वासवदत्ता इस दृश्य को देख रही थी। अतः दोनों एक दूसरे को हृदय दे बैठते हैं। यह बात महासेन के मन्त्रियों को ज्ञात है। अतः मन्त्रियों के परामर्श से वासवदत्ता को वीणा सिखाने के लिये उदयन को नियुक्त कर दिया जाता है। दिन प्रतिदिन प्रेमियों का प्रेम बढ़ता जाता है। इसी बीच राजा से मिलने का यौगन्धरायण को अवसर मिल जाता है। राजा का प्रेम कुछ ही समय में पराकाष्ठा पर पहुंच जाता है।

एक अन्तर्नाटक का आयोजन किया जाता है जिसमें वासवदत्ता अपनी संगीत नाट्यकला का प्रदर्शन करती है। उसकी कलात्मक निपुणता को देखकर राजा पूर्ण रूप से आसक्त हो जाते हैं। दूतियों के माध्यम से एक दूसरे पर अपनी भावना प्रकट कर देते हैं और अंगूठी का भी आदान प्रदान हो जाता है। एक दिन नर्मदा तट पर महोत्सव में नागरिक संलग्न हैं। राजा महासेन भी बाहर गये हैं। यौगन्धरायण महल में एक कृत्रिम आग का आतंक उत्पन्न कर देते हैं तथा उसी भगदड़ में यौगन्धरायण उदयन तथा वासवदत्ता को निकाल ले जाते हैं। दोनों पहले से ही तैयार अपने प्रिय हाथियों पर कौशाम्बी पहुंच जाते हैं। प्रजा के हर्षोल्लास और दोनों की प्रेमलीला के साथ नाटक समाप्त हो जाता है।

इस नाटक में भास के प्रतिज्ञा यौगन्धरायण के कथानक को मूल आधार के रूप में स्वीकार किया ही गया है। यह असम्भव नहीं है कि जिस प्रकार शूद्रक ने भास के चारुदत्त को आधार बनाकर मृच्छकटिक की रचना की थी उसी प्रकार प्रतिज्ञायौगन्धरायण को आधार बनाकर शूद्रक ने ही इस नाटक की रचना की है। कुछ विचारक इस नाटक में शूद्रक की भी छाया देखते हैं। इस मान्यता में दण्डी का एक श्लोक भी प्रमाण रूप में मिल जाता है-

शूद्रकेणासकृज्जित्वा स्वच्छया खड्गधारया।
जगद्भूयोप्यवष्टव्धं वाचा स्वचरितार्थया॥

अर्थात् जिस प्रकार उदयन ने जेल में रहते हुये वासवदत्ता से प्रेम किया और यौगन्धरायण की सहायता से उसे भगा लाये तथा उससे विवाह कर लिया उसी प्रकार राजा शूद्रक ने भी स्वाति के बन्दी गृह में रहते हुये विनयवती से प्रेम किया और बन्धुदत्त की सहायता से कैद से छुटकारा पाकर विनयवती को भगा लाये तथा उनसे शादी कर ली। क्षेमेन्द्र ने औचित्य विचारचर्चा में दीपक कवि के नाम पर एक पद्य उद्धृत किया है जिसमें विनयवती का उल्लेख किया गया है।

इस नाटक का उल्लेख मद्रास की ओरियण्टल लायब्रेरी के ट्रायेनियल कैटेलाग आफ संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट के III ३९९५ पर किया गया है।

वत्सला– (ना.कृ.) दुर्गादत्त शास्त्री लिखित ६ अंकों का नाटक। यह हिमाञ्चल संस्कृति परक सामाजिक नाटक है।

वत्सलाञ्छन भट्टाचार्य– (ना.का.) ये १६वीं शताब्दी के बंगाली कवि हैं। इन्होंने रामोदय नामक नाटक की रचना की थी।

वनज्योत्स्ना– (ना.कृ.) कृष्णन तम्पी (दे.) लिखित नाटक। यह २०वीं शती का एकाङ्की नाटक है। इसमे प्रस्तावना और भरत वाक्य नहीं है तथा इसमें प्रातः सायं रात्रि के दृश्य पर्दा गिराकर दिखलाये गये हैं।

वनभोजनम्– (ना.कृ.) जीवन्यायतीर्थ (दे.) लिखित नाटक। ६ मित्र वन भोजन करने निकलते हैं। उनकी हास्योन्मादक चेष्टायें इस नाटक का विषय हैं। प्रणव पारिजात में इसका प्रकाश हो गया है। इसका प्रथम अभिनय ऋषि बंकिमचन्द्र महाविद्यालय में सम्पन्न हुआ था।

वनमाला– (ना.का.) ये मध्यप्रदेश की नाटककार हैं। इन्हें श्रीमती भवाल्कर के नाम से भी जाना जाता है। इन्हें डाक्टर की उपाधि प्राप्त थी। इनके लिखे ६ नाटक बतलाये जाते हैं– अन्नदेवता, पाददण्ड, पार्वती महेश्वरीयम्, भक्तध्रुव, रामवनगमनम्, और सीताहरणम्।

वनमाला नाटिका– (ना.कृ.) यह एक नाटिका है जिसकी रचना अमरचन्द्र नामक कवि ने की थी। इसका उल्लेख जैन गन्थावली में किया गया है।

वनमालिका– (ना.कृ.) हेमचन्द्र के शिष्य रामचन्द्र की नाट्यकृति। इसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम ख. १ सं. २९८ पर किया गया है।

वनमाली मिश्र– (ना.का.) ये उड़ीसा निवासी नाटककार हैं। इन्होंने अद्‌भुत राघवम् नामक रचना की थी।

वरगुणोदयम्– (ना.कृ.) नारायण शास्त्री (१) लिखित ७ अंकों का नाटक।

(१) **वरद**– (ना.का.) आत्रेय गोत्रीय श्रीनिवास के पुत्र रघुनाथ के भाई और विश्वगुणादर्श चम्पू के लेखक वेङ्कटाचार्य के चाचा थे। इनका समय १७वीं शताब्दी का

मध्य भाग है। इनका लिखा कृष्णाभ्युदय नामक एक काव्य और अनङ्गजीव नामक भाण (दे.) पाया जाता है।

(२) **वरद-** (ना.का.) ये कौशिक गोत्र में उत्पन्न हुये थे। इनका लिखा शृङ्गार जीवन (दे.) भाण प्राप्त होता है।

वरदराज शर्मा- (ना.का.) इनकी लिखी 'कस्याहम्' शर्षिक नाट्यकृति प्राप्त होती है।

(१) **वरदाचार्य-** (ना.का.) आत्रेय गोत्रीय वेङ्कटाचार्य के पुत्र थे जो सम्भवतः वरदार्य नामक कवि से अभिन्न थे। इन्होंने अनंग ब्रह्मविद्याविलास नामक एक भाण की रचना की थी जिसका उद्देश्य ट्रिप्लीकेन के एक उत्सव में अभिनय प्रदर्शित करना था।

डिस्क्रिप्टिव कैटेलाग आफ संस्कृत मैन्युस्क्रिप्टस इन दि ओरियण्टल लायब्रेरी मद्रास में सं. XXI ८३४५ पर इसका उल्लेख किया गया है।

(२) **वरदाचार्य-** (ना.का.) १८वीं शताब्दी के सुदर्शन के वंशज कवि हैं। ये घटिका शत सुदर्शन के पुत्र एवं काञ्ची के निवासी थे। ये रामानुज के भतीजे सुदर्शन के पौत्र नडाडुर अम्माल (वरद) की ५वीं पीढी के उत्पन्न हुये थे। रामभद्र दीक्षित के शृङ्गारतिलक (अय्याभाण) की स्पर्धा में वसन्ततिलक (दे.) भाण की रचना की जिसको अम्माल भाण की संज्ञा दी। इनका एक प्रतीक नाटक वेदान्त विलास (दे.) प्रकाश में आया है। इनको अम्मालाचार्य के नाम से भी याद किया जाता है।

(३) **वरदाचार्य-** (ना.का.) अनङ्गजीवन भाण के लेखक। इसी नाम के जो दूसरे नाटक लिखे गये हैं उनके लेखकों से ये भिन्न हैं। इनके व्यक्तित्व के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है।

वरदार्य- (ना.का.) ये कुमार वेङ्कटार्य के पुत्र थे, जोकि रामानुज के पितृव्य वरदगुरु के शिष्य थे। इनका लिखा अनंगब्रह्मविद्या विलास भाण एक उत्सव में अभिनय के मन्तव्य से लिखा गया था। मद्रास की ओरियण्टल लायब्रेरी की विवरणात्मक ग्रन्थसूची सं. XXI ८३४५ में इसका उल्लेख किया गया है। सम्भवतः वसन्तभूषण भाण भी इन्हीं का लिखा हुआ है जिसका उल्लेख मद्रास की ओरियण्टल लायब्रेरी के पाण्डुलिपि अनुभाग की त्रैवार्षिक सूची में सं. १०१९ में किया गया है।

वररुचि- (ना.का.) संस्कृतसाहित्य की उन महान विभूतियों में एक हैं जिनके नाम पर अपनी रचनायें प्रसिद्ध करने में दूसरे कवि गौरव का अनुभव करते हैं और दूसरे लोग उन्हें अपनी ओर खींचने और अपने समय का प्रसिद्ध करने में हर्षित होते हैं। वैसे तो ये महान् वैयाकरण के रूप में प्रतिष्ठित हैं। इनका प्राकृतव्याकरण और दो एक छोटी छोटी व्याकरण की पुस्तकें प्रसिद्ध हैं। किन्तु विण्टरनित्ज का कहना है कि इतने से ही इतनी ख्याति नहीं मिल सकती थी। पाणिनि सूत्रों पर वार्तिक लिखने वाले कात्यायन का

नाम कात्यायन वररुचि बतलाया जाता है। यदि यह सच है तो केवल यह ऐसा कार्य है जो इन्हें इतना ऊँचा उठा सकता है। कुछ लोग इन्हें नन्दकालीन मानते हैं कुछ लोग उदयनकालीन। कई कथानक ऐसे भी हैं जो इन्हें पाणिनि का प्रतिद्वन्दी बतलाते हैं। विक्रमादित्य के नवरत्नों में भी इनकी गणना की जाती है। वैयाकरण होने के अतिरिक्त इनके नाम पर चयनिकाओं की कतिपय कवितायें भी उद्धृत की गई हैं जिनमे कुछ अच्छी हैं। पतञ्जलि ने इन्हें कवि कहा है। इस विषय में कुछ कहा नहीं जा सकता कि क्या ये प्रसिद्ध वररुचि ही थे या इस नाम के कोई अन्य कवि थे। चतुर्भाणी में इनके नाम पर एक उभयाभिसारिका (दे.) नामक भाण भी सम्मिलित किया गया है। इनका नाम छन्दः शास्त्रकारों में भी लिया जाता है। श्यामिलक ने इन्हें छन्दः शास्त्रकार बतलाया है।

वरुण– (ना.पा.) इन्द्रवरुण संवाद में एक पात्र। दे. इन्द्र (२)

वर्णेकर श्रीधर भास्कर– (ना.का.) दे. श्रीधर भास्कर वर्णेकर।

वर्धमानस्वामी– (ना.उ.पा.) प्रबुद्धरौहिणेय (दे.) में वर्धमान का उल्लेख देवताओं की पहिंचान के लिये किया गया है। यह कहा गया है कि इन्होंने बतलाया है कि देवताओं को पसीना नहीं आता, उनकी मालायें नहीं कुम्हिलाती उनके पांव धरती पर नहीं पड़ते इत्यादि।

वल्लवी पल्लवोल्लास– (ना.कृ.) (१) एक भाण जिसकी रचना वशिष्ठ गोत्रीय मञ्जुलाचार्य ने की थी जिसको कृष्णमूर्ति कुमार की भी संज्ञा दी जाती है। मद्रास ओरियण्टल लायब्रेरी के ट्रायनियल कैटेलाग में इसका संकलन III ८६९६ पर किया गया है।

(२) इसी नाम का एक अन्य भाण भी प्राप्त होता है जिसके रचयिता का नाम ज्ञात नहीं है। उसका भी उल्लेख उसी कैटेलाग में सं. III २८७३ पर किया गया है।

वल्ली– (ना.पा.) विष्णु और लक्ष्मी की एक किरात द्वारा पालित पुत्री (परिचय के लिये देखिये वल्ली परिणय (१))

(१) **वल्ली परिणय**– (ना.कृ.) इसके लेखक वत्सगोत्रीय शिवसूर्य के पुत्र भास्कर हैं जो राजा हलघट्टि के धर्माचार्य थे। इन्होंने ५ अंकों का यह नाटक श्रीरंगम के निकट तिरुवानक्कावलम् में जम्बूनाथ के फाल्गुनोत्सव में प्रदर्शन के लिये लिखा था। मद्रास की ओरियण्टल लायब्रेरी में विवरणात्मक पुस्तकसूची खण्ड ११ सं. ८५८९ पर इसका उल्लेख किया गया है।

विष्णु का तेज किसी मृगी में सञ्चारित होकर एक कन्या को जन्म देता है जिस पर स्वामिकार्तिकेय और शूरपद्म दानव दोनों मुग्ध हैं। पालक पिता एक शवर है जिसने कन्या को वल्ली नाम दिया है। वह स्वामिकार्तिकेय को चाहती है किन्तु दानव वलात् उस पर अधिकार करना चाहता है। सुरक्षा की दृष्टि से वल्ली को तिरस्करिणी से आवृत कर शची के पास पहुंचा दिया जाता है जहां से वह कुमार और दानव का युद्ध देखती

है। कुमार विजयी होता है और दानव मयूर का रूप धारण कर कुमार की शरण में आ जाता है; तब विधि पूर्वक वल्ली और कुमार का विवाह होता है।

इसका प्रमुख रसशृङ्गार है और अंगभूत रस वीर है।

(२) **वल्ली परिणय**– (ना.कृ.) ५ अंकों के इस नाटक की रचना ईश्वर के पुत्र वीरराघव ने १९वीं शताब्दी के तंजौर के राजा शिवाजी के समय में की थी। कैटेलागस कैटेलागोरम खण्ड २ सं. ११८ पर इसका उल्लेख है। इसमें वल्ली और सुब्रह्मण्यम् के विवाह का वर्णन किया गया है। इसके संवाद अभिनयोचित है। प्रमुख रस शृङ्गार है साथ ही हास्य का भी पुट दिया गया है। मञ्च पर वर्ज्य प्रसंग युद्ध, आलिङ्गन इत्यादि भी दिखलाये गये हैं। व्याधराज की घोषित पुत्री इस नाटक की नायिका है।

(३) **वल्लीपरिणय**– (ना.कृ.) वल्ली और कुमार के परिणय को लेकर स्वामि दीक्षित द्वारा लिखा गया नाटक। इस विषय में अन्य कुछ भी ज्ञात नहीं है।

(४) **वल्लीपरिणय**– (ना.कृ.) टी.ए. विश्वनाथन लिखित ५ अंकों का नाटक। अंकों का विभाजन दृश्यों में किया गया है। इसमें किरात कुमारी वल्ली के साथ स्वामिकार्तिकेय के विवाह का चित्रण किया गया है। रचनाकाल २०वीं शताब्दी। सन् १९२१ में कुम्भकोणम् से इसका प्रकाशन किया गया।

वल्ली बाहुलेयम्– (ना.कृ.) सुब्रह्ण्यसूरि (दे.) का लिखा ७ अंकों का नाटक जिसमें वल्ली और स्वामिकार्तिकेय के विवाह का चित्रण किया गया है। वल्ली विष्णु और लक्ष्मी की पुत्री है और बाहुलेय स्वामि कार्तिकेय का एक नाम है। सन् १९२९ में मद्रास से इस नाटक का प्रकाशन किया गया था।

वल्लीसहाय– (ना.का.) नार्थ अर्काट जिले में वेल्लौर के निकट विरञ्चिपुरम् के रहने वाले वधूलगोत्रीय वल्लीसहाय १९वीं शताब्दी के मध्य में उत्पन्न हुये थे। ये नारायण के शिष्य थे। इनके दो नाटक प्राप्त होते हैं– ययातितरुणानन्द और रोचनानन्द। सम्भवतः ययाति देवयानीचरित नामक नाटक भी इन्हीं का लिखा हुआ है। इनके अतिरिक्त आचार्य दिग्विजय नामक एक चम्पू भी प्राप्त होता है जिसमें शङ्कराचार्य के जीवन पर प्रकाश डाला गया है साथ ही काकुत्स्थविजय नामक एक और चम्पू भी इनकी रचनाओं के अन्तर्गत सम्मिलित किया जाता है जिसका विषय राम चरित है। (इनकी नाटकीय रचनाओं का परिचय यथास्थान देखिये।)

वशिष्ठ– (ना.पा.) ये वैदिक (ऋग्वेद के) ऋषि हैं और राम के पारिवारिक गुरु हैं। साहित्य में इनका अनेकशः उल्लेख पाया जाता है–

(क) ऋग्वेद ७.३३ एक संवाद सूक्त है। इसमें वशिष्ठ और उनके पुत्रों का संवाद दिया गया है। इस सूक्त के अनुसार भरतों और तृत्सुओं के संघर्ष में वशिष्ठ तृत्सुओं के सहायक थे जिस संघर्ष में भरतों की पराजय हुई थी।

(ख) ऋग्वेद के कतिपय सूक्तो में वशिष्ठ और विश्वामित्र का संघर्ष दिखलाया गया है। कीथ के अनुसार ये सूक्त कर्मकाण्ड की धार्मिक परम्परा से व्यतिरिक्त सूक्तों में हैं। इस संघर्ष का पल्लवन रामायण की उपकथाओं में हुआ जहां राजदर्प में विश्वामित्र वशिष्ठ की गाय को वलात् अपने साथ ले जाने की चेष्टा करते हैं। किन्तु ब्रह्मतेज के सामने उनके सारे अस्त्र बेकार हो जाते हैं। तब वे ब्रह्मतेज प्राप्त करने के लिये हजार वर्ष तपस्या करते हैं और उन्हें ब्रह्मतेज भी प्राप्त हो जाता है।

(ग) राम विषयक परवर्ती नाटकों में वशिष्ठ का कोई महत्वपूर्ण योगदान नहीं है, फिर भी यत्र तत्र उनका उल्लेख किया गया है। महावीर चरित में राम और परशुराम के विवाद में वे संघर्ष को बचाने के लिये उद्यमशील के रूप में दृष्टिगत होते हैं। उत्तररामचरित में उनका राम को प्रजानुरञ्जन में तत्पर रहने के लिये उपदेश है और अनर्घराघव में राम राज्याभिषेक के अवसर पर उनके दर्शन होते हैं।

साहित्य कार के रूप में वशिष्ठ– ऋग्वेद में अनेक सूक्तों के ऋषि हैं। पारिवारिक मण्डलों में सप्तममण्डल उन्हीं के परिवार की रचना माना जाता है। ३० अध्याओं का वशिष्ठ धर्मसूत्र केवल पाण्डुलिपियों मे जीवित रहा है। यह उत्तर वैदिक युग की रचना है जिसमें परवर्ती काल में मिलावट भी पर्याप्त मात्रा में हुई है। कुमारिल ने इस धर्मसूत्र का उल्लेख किया है और इससे उद्धरण दिये हैं जो इस धर्मसूत्र में मिलते हैं। योगवशिष्ठ में भी वशिष्ठ के उपदेशों का सङ्कलन पाया जाता है किन्तु यह रचना उनकी नही है।

वसन्ततिलक– (ना.कृ.) वरदाचार्य (उपनाम अम्मालाचार्य) लिखित भाण। इसकी रचना रामभद्र दीक्षित लिखित शृङ्गारतिलक के अनुकरण पर हुई है। इसे अम्माल भाण भी कहा जाता है। शृङ्गारतिलक के समान ही इसमें भी जादू के खेलों और सपेरों के कर्तवोंका आकाश भाषित के माध्यम से प्रदर्शन किया गयाहै। इसका प्रदर्शन मद्रास से हो गया है। इसका नायक भुजंगशेखर प्रियतमा हेमाङ्गी से वियुक्त है, किन्तु उसे आश्वासन दिया गया है कि उसका पुनर्मिलन होगा। वह गणिकाओं की गली में घूमता है, आकाश भाषित करता है, सपेरों, देवताओं और इन्द्रजाल का वर्णन करता है। अन्त में उसे उसकी प्रेमिका मिल जाती है।

इसकी रचना १६६८ में की गई थी। कलकत्ता से १९७२ में प्रकाशन हुआ। भाषा सुबोध, सरल एवं नाटकोचित है लोकोक्तियों का भी प्रयोग हुआ है।

(१) **वसन्त भूषण–** (ना.कृ.) एक भाण जिसकी रचना वंगीपुर के नृसिंह सूरि (दे.) ने की थी। इसका उल्लेख मद्रास की ओरियण्टल लायब्रेरी के संस्कृत पाण्डुलिपि के ट्रायनियल कैटेलाग में सं. III ३६९६ पर किया गया है। इसका प्रथम अभिनय काञ्जीवरम् के उत्सव में किया गया था।

(२) **वसन्तभूषण–** (ना.कृ.) यह रचना वरदार्य (दे.) ने की थी। यह इसी नाम की

नृसिंह सूरि की रचना से भिन्न है।

वसन्तमित्र भाण- (ना.कृ.) मंगलगिरि कृष्णद्वैपायनाचार्य (दे.) लिखित भाण। विभिन्न परिस्थितियों में पड़ी हुई स्त्रियों के पतन का इसमें चित्रण किया गया है। इन स्त्रियों में देवदासी, नर्तकी, कुट्टनी, विधवा, विषम परिस्थिति में पड़ी गृहिणी सम्मिलित हैं। इसमें विधवा विवाह का पुरस्कार दिया गया है, अंग्रेज महिला का भी उपादान किया गया है जो अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग करती है। विभिन्न प्रदेशों की वेषभूषा का इसमें वर्णन किया गया है। काञ्ची के गरुड़ का वर्णन इसकी विषयवस्तु में सम्मिलित है।

(१) **वसन्तसेना-** (ना.पा.) भास (दे.) के अपूर्ण नाटक चारुदत्त की नायिका। इसके चरित्र के लिये (दे.) वसन्तसेना (२)

(२) **वसन्तसेना-** (ना.पा.) शूद्रक रचित मृच्छकटिक की नायिका। यह अवन्तिपुरी की सर्वाधिक सुन्दरी एवं सम्पन्न वेश्या है। इसके भवन और सम्पत्ति को देखकर भ्रम हो जाता है कि यह कुवेर का भवन है। किन्तु उसे सम्पत्ति की कोई इच्छा नहीं, वह गुणों की दीवानी है। वह चारुदत्त के गुणों पर मुग्ध है और स्वयं को चारुदत्त के गुणों से खरीदी हुई दासी कहती है। धन का उसके मन में जरा भी मोह नहीं। इसका सबसे बड़ा प्रमाण यही है कि राजा का साला उसे १०००० स्वर्ण मुद्रायें देना चाहता है, किन्तु वह उस भेंट को ठुकरा देती है। यौवन की मदमाती वेश्या होकर भी उसका लक्ष्य पैसा या कामक्रीडा नहीं है। वह किसी प्रतिष्ठित गुणवान की कुलवधू बनकर जीवन बिताना चाहती है और सौभाग्य से उसकी कामना पूरी हो जाती है।

वसन्तसेना का हृदय विशाल है। वह किसी का दुःख नहीं सह सकती। मदनिका को सुखी बनाने के लिये वह प्रसन्नतापूर्व उसे उसके प्रेमी को सौंप देती है। जब जुआरी संवाहक उसकी शरण में आता है वह बिना ही परिचय के उसके ऋण का स्वयं भुगतान कर उसे छुटकारा दिला देती है। वह तो यहां तक चाहती है कि यदि उसका वश चले तो सभी परिजनों को दासता से मुक्त कर दे। लोभ की तो उसके अन्दर इतनी कमी है कि वह एक बच्चे (चारुदत्त के पुत्र) की इच्छा पूरी करने के लिये उसकी सोने की गाड़ी बनवाने के निमित्त अपने सब जेवर उतारकर दे देती है। वह एक सच्ची प्रेमिका है।

वधू धूता के प्रति उसका व्यवहार बहुत ही नम्रता का है और उसके पुत्र को वह हृदय से चाहती है। उसके अन्दर इर्ष्या का नाम नहीं। वह रूपवती है, आभूषण से प्रेम करती है, कलाकुशल और विदूषी है। उसके अन्दर साहस की भी कमी नहीं। किसी अत्याचार के या किसी शक्ति के समाने वह झुकना नहीं जानती। शकार की प्रणय वासना को ठुकरा कर वह मरण का भी वरण करने को तैयार हो जाती है। अन्त में अपने प्रिय को प्राप्त कर उसका जीवन धन्य हो जाता है। उसे अपने गुणों का उचित पुरस्कार मिल जाता है।

संक्षेप में वह अनुपम सुन्दरी है। वेश्या होते हुये भी और वेश्यालय में रहते हुये भी अपने चरित्र की रक्षा किये हुये है। वेश्यालय के रीति रिवाज वह जानती है कि अनेक पुरुषों से सहवास करने वाली स्त्रियों के झूठ फरेब से वेश्यालय भरा रहता है। फिर भी अपने चरित्र को बचाये रहना १० हजार स्वर्ण मुद्राओं जैसी राशि को ठुकरा देना कोई मामूली बात नहीं। वह तो उससे भी बढ़कर चरित्र रक्षा के लिये जीवन भी देने को तैयार हो जाती है। वह अपरिमित धनराशि की स्वामिनी है फिर भी वह धन का सफल उपयोग परोपकार में ही समझती है। सच्चा प्रेम उसके चरित्र की अन्यतम विशेषता है। वह एक ही निगाह में अपने हृदयवल्लभ को पहिंचान लेती है और दिल दे देती है फिर उससे पीछे नहीं हटती।

वसन्ताभरण– (ना.कृ.) युवराज (१) लिखित नाटक।

वसुदेव– (ना.पा.) भास लिखित बालचरित का एक पात्र। कृष्ण के पिता जो उनके जन्म के बाद नन्द के यहां उन्हें सुरक्षित पहुंचाने गये थे।

वसुनाग– (ना.क़ा.) ये भीमट के पुत्र थे। इनके लिखे प्रतिभानिरुद्ध नाटक का उल्लेख रामचन्द्र गुणचन्द्र के नाट्य दर्पण में किया गया है। अभिनवगुप्त ने भी अभिनवभारती के १९वें अध्याय में इसका उल्लेख किया है। अब यह उपलब्ध नहीं होता।

वसुभूति– (ना.पा.) रत्नावली नाटिका में यह सिंहलेश्वर का मन्त्री है। सिंहलेश्वर ने पुत्री रत्नावली को इसके और उदयन के कञ्चुकी वाभ्रव्य के संरक्षण में रत्नावली को उदयन के यहां भेजा था। किन्तु मार्ग में प्रवहण भंग हो जाने से तीनों ही वच तो गये किन्तु एक दूसरे से अलग होकर भटक गये जिसके कारण उदयन के राजघराने में अनेक प्रकार की समस्यायें पैदा हुईं। इसके और वाभ्रव्य के दर्शन नाटक के अन्त में होते हैं जब राजा को विजय का समाचार मिल चुकता है। ये दोनों पहिंचान लेते हैं तब नाटक की नायिका सागरिका से रत्नावली बनती है।

वसुमंगल– (ना.कृ.) पेरुसूरि (दे.) लिखित ५ अंकों का नाटक। इसमें मरुत् कोलाहल की पुत्री गिरिका के साथ उपरिचर वसु के विवाह का चित्रण किया गया है। इसका अभिनय मदुरा के मीनाक्षी मन्दिर में किया गया था। मद्रास की ओरियण्टल मैन्युस्क्रिप्ट लायब्रेरी की संस्कृत पाण्डुलिपियों की विवरणात्मक सूची में इसका उल्लेख XXI ८४९७ पर किया गया है। इसमें अज्ञातनामा लेखक की एक टीका भी सम्मिलित है।

वसुमती– (ना.पा.) (१) वसुमती चित्रसेनाविलास (दे.) में राजा शक्तिमान की पुत्री जिसकी कल्याण कामना से उसका पिता प्रयाग में तपस्या कर रहा है किन्तु इस बीच निषादराज आक्रमण कर पूरे परिवार के साथ उसे बन्दी बना लेता है। महाराज चित्रसेन निषादराज से छुड़ाते हैं और उससे गान्धर्व विवाह कर लेते है। बाद में विजय के पुरस्कार

के रूप में रानी की उस विवाह के लिये स्वीकृति मिल जाती है।

(२) **वसुमती परिणय**– (दे.) में वह नायिका है।

वसुमती परिणय– (ना.कृ.) यह जगन्नाथ (दे.) का लिखा ५ अंकों का नाटक है जिसमें वसुमती के विवाह का वर्णन किया गया है। इस नाटक का उद्देश्य राजाओं को सत्पथ पर लाना प्रतीत होता है। वालाजी वाजीराव सभी गुणों से अलंकृत महाराज हैं जिन्हें अखिलगुणशृङ्गाटक विशेषण प्रदान किया गया है। इस नाटक में महत्वपूर्ण सांस्कृतिक चर्चायें हैं। राजनीति और अर्थशास्त्र की योजनायें हैं। यवनों से राष्ट्र को वचाने के लिये हिन्दूजाति की एकता पर वल दिया गया है। इसकी रचना १८वीं शताब्दी में की गई थी। दे. कैटेलागस कैटेलागोरम १.५५७

वसुमती चित्रसेनविलास– (ना.कृ.) १७वीं शताब्दी में अप्पय दीक्षित (दे.) लिखित नाटक। इस नाटक को वसुमती चित्रसेनीयम् नाम से भी जाना जाता है। कलिंग के राजा शक्तिमान अपनी पुत्री वसुमती की कल्याण कामना से प्रयाग में तपश्चरण में निरत रहते हैं। उसी अवसर पर उसकी राजधानी पर आक्रमण कर निषादराज उसके परिवार को बन्दी बना लेता है। महाराज चित्रसेन निषादराज को पराजित कर शक्तिमान के परिवार को छुड़ा लेते हैं। तभी चित्रसेन का साक्षात्कार वसुमती से होता है। दोनों प्रणयजाल में फंस जाते हैं और गान्धर्व विवाह कर लेते हैं। किन्तु चित्रसेन की पत्नी उसे स्वीकार नहीं करती। दोनों प्रेमी चतुरिका (वसुमती की सखी) की सहायता से मिलते हैं। इसी समय समाचार आता है कि राजकुमार ने दानवों को पराजित किया है इसकी प्रसन्नता के उपलक्ष्य में रानी राजा चित्रसेन को वसुमती से विवाह की अनुमति दे देती है।

(१) **वसुलक्ष्मी कल्याणम्**– (ना.कृ.) वेङ्कटसुब्रह्मण्यम् (दे.) लिखित ५ अंकों का नाटक। इसमें कवि के आश्रयदाता ट्रावन्कोर के श्रीवालरामवर्मा के सिन्धुराजकुमारी वसुलक्ष्मी के साथ विवाह की घटना को कथानक के रूप में अपनाया गया है। इस विवाह का मन्तव्य राजनैतिक लाभ प्राप्त करना था।

सिन्धुराज की पुत्री वसुलक्ष्मी ट्रावनकोर के राजा बालराम वर्मा पर अनुरक्त है। उसका पिता अपनी पुत्री की आकाक्षा का अनुवर्तन करना चाहता है। किन्तु माता का आग्रह है कि पुत्री सिंहलराज को प्रदान की जानी चाहिये। माता उसे सिंहलराज के यहां के लिये भेज देती है। किन्तु बुद्धिसागर मन्त्री उसे समुद्रतट पर ही रोककर ट्रावन्कोर को भेज देता है। ट्रावनकोर की रानी वसुमती उसका विवाह चेदिदेश के राजा वसुवर्मा से करना चाहती है। विवाह की तैयारी की जाती है, किन्तु वसुवर्मा के वेष में बालरामवर्मा बैठ जाता है और विवाह हो जाने पर रानी को यह सम्बन्ध स्वीकार करना पड़ता है।

इस नाटक की रचना १७८५ में हुई थी और त्रिवेन्द्रम संस्कृत सीरीज से इसका प्रकाशन हुआ। इसमें ऐतिहासिक पात्रों का उपादान किया गया है, किन्तु घटनायें काल्पनिक

हैं। पद्यों का अधिक प्रयोग किया गया है और वर्जित दृश्य आलिङ्गनादि भी दिखलाये गये हैं।

तत्कालीन कवि एवं चोकक्नाथ केपुत्र सदाशिव माखिन ने इन्हीं राजा बलराम वर्मा की प्रशस्ति में रामवर्मा यशोभूषण नाम की काव्य शास्त्र विषयक एक पुस्तक लिखी जिसमें नाटक विषयक अध्याय में इसी नाटक वासुलक्ष्मी कल्याण को एक नमूने का नाटक मानकर अपनी कृति में अन्तर्भुक्त कर दिया। राम वर्मा का समय १७५८ से १७९८ तक था।

(२) **वसुलक्ष्मी कल्याण–** (ना.कृ.) १८वीं शताब्दी के सदाशिव दीक्षित (सदाशिव माखिन) (दे.) की लिखी ५ अंकों की नाट्यकृति इसका कथानक वसुलक्ष्मी कल्याण (१) (दे.) से पर्याप्त मेल खाता है। केवल कतिपय परिवर्तन किये गये हैं– वसुलक्ष्मी को समुद्रतट पर रोककर सिंहल के स्थान पर ट्रावनकोर भेजने का कार्य मन्त्री बुद्धिसागर का नहीं बोधिका नामक योगिनी का है। ट्रावकोर की महारानी वसुमती वसुलक्ष्मी का विवाह चेदिदेश के राजा से नहीं पाण्ड्य देश के राजा से करना चाहती है।

इस नाटक का अभिनय पद्मनाभ देव के वसन्तोत्सव में किया गया था।

(३) **वसुलक्ष्मी कल्याण–** (ना.कृ.) यह रामानुज (दे.) का ५ अंकों का नाटक है। देवता रंगनाथ और प्रसिद्ध देवी वसुलक्ष्मी के विवाह को लेकर इस नाटक की रचना की गई है। इसका प्रथम अभिनय त्रिवल्लूर में वीरराघव के वसन्तोत्सव के अवसर पर किया गया था।

डिस्क्रिप्टिव कैटेलाग आप संस्कृत मैन्युस्क्रिप्टस् इन दि ओरियण्टल मैन्युस्क्रिप्टस लायब्रेरी मद्रास में सं. XII ८५०४ पर इसका संकलन किया गयाहै।

वाणीपाणिग्रहणम्– (ना.कृ.) यह एक प्रतीक नाटक है जिसकी रचना रामानुजाचार्य ह्वी ने की थी।

(१) **वादिचन्द्र–** (ना.का.) ये १७वीं शताब्दी के गुजरात में जैनाचार्य थे। ज्ञानभूषण के शिष्य प्रभाचन्द्र इनके गुरु थे। इनकी रचनाओं में गद्य काव्य, पद्य काव्य, चरित काव्य, दो पुराण (पार्श्व पुराण और पाण्डव पुराण) आदि तो सम्मिलित हैं ही मेघदूत के अनुकरण पर लिखा गया पवनदूत भी है। नाट्यसाहित्य के अन्तर्गत ज्ञानसूर्योदय (दे.) नामक एक प्रतीक नाटक भी आता है। इनका जन्म १६वीं शताब्दी के अन्त में गुजरात के मधूक नगर (महुवा) में हुआ था।

(२) **वादिचन्द्रसूरि–** (ना.का.) ये १६वीं के कवि हैं। इन्होंने यशोधर चरित (नाटक) की रचना की थी। इसी नाम से एक कवि ११वीं शताब्दी में भी हुये थे। इसके अतिरिक्त यशोधर चरित नामक चार सर्गों के एक काव्य की रचना १७वीं शताब्दी के वादिचन्द्र ने की थी। कहा नहीं जा सकता कि ये वादिचन्द्र उन दोनों से भिन्न थे या इनकी उनमें

किसी से एकात्मता थी।

वामदेव– (ना.का.) दे. रामदेव।

वामनभट्टवाण– (ना.का.) ये आन्ध्र के निवासी थे। इनका जन्म १४वीं शताब्दी के अन्त में हुआ था। ये वत्सगोत्रीय वरदाश्चित के पौत्र और कामन्दकी यज्वन् के पुत्र थे। ये विद्यारण्य के शिष्य थे। पहले ये विजय नगर में रहते थे जहां इन्होंने हरिहर नाथ का शान्दार शासन देखा था। किन्तु लगभग ३० वर्ष की आयु में कोण्डाविडु के शासक कोमती वेमभूपाल के संरक्षण में चले गये थे।

इनका अध्ययन बहुत विस्तृत और रचना में बहुक्षेत्र व्यापी है। इसी से इन्हें षड्भाषा वल्लभ और कविसार्वभौम की उपाधि मिली थी। ये स्वयं को वाण का नवावतार मानते थे क्योंकि वाण भी वत्सगोत्र में ही उत्पन्न हुये थे। इसीलिये ये अपना परिचय भट्टवाण या अभिनव वाण इन उपाधियों से दिया करते थे। इनकी आकाङ्क्षा इस प्रसिद्धि को झुठलाने की थी कि वाण केबाद कोई अच्छा गद्यकार हुआ ही नहीं। इसीलिये इन्होंने वाण के अनुकरण पर रचनायें की थीं। इन्होंने नलाभ्युदय (८ सर्ग) रामाभ्युदय (३० सर्ग) ये महाकाव्य और मेघदूत के अनुकरण पर हंस सन्देश लिखा। इनकी पद्य रचनाओं में वेम भूपालचरित्र, बृहत्कथा मञ्जरी और कोश ग्रन्थों में शब्द चन्द्रिका एवं शब्दरत्नाकर सम्मिलित हैं।

इन्होंने तीन नाटकों की भी रचना की थी– पार्वतीपरिणय (दे.) कनकलेखा (दे.) और शृङ्गारभूषण भाण। इनके पार्वतीपरिणय का भी उल्लेख किया गया है किन्तु उसकी उपलब्धि का कुछ पता नहीं चलता। कुछ लोगों ने इनकी अभिधा मामन भट्टवाण लिखी है जो लेखक का प्रमाद प्रतीत होता है।

वामनविजय– (ना.कृ.) शङ्करलाल (दे.) लिखित नाटक। सम्भवतः इसका प्रकाशन हो चुका है।

वार्तागृह नाटक– (ना.कृ.) यह रवीन्द्रनाथ ठाकुर का लिखा नाटक है जिसका अनुवाद ध्यानेश नारायण ने संस्कृत में किया है।

वार्धिकन्यापरिणय– (ना.कृ.) यह रामानुज (१) (दे.) का लिखा नाटक बतलाया जाता है।

वालिवध– (ना.कृ.) यह राम विषयक एक नाटक है जिसका उल्लेख प्रेङ्खण उपरूपक के उदाहरण के रूप में साहित्यदर्पण में किया गया है। शारदातनय ने भी इनका उल्लेख किया है। इसके कर्तृत्व इत्यादि के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है।

वालिबन्ध– (ना.कृ.) वैयाकरण महाभाष्यकार पतञ्जलि ने इस नाटक के प्रदर्शन का उल्लेख किया है जिससे ज्ञात होता है पतञ्जलि के समय में भी किसी न किसी रूप में नाट्यकला विकसित हो चुकी थी और उसके लिये कतिपय नाट्य कृतियां भी विद्यमान

थीं जिनका अभिनय किया जाता था।

वाली- (ना.पा.) रामायण का एक प्रसिद्ध पात्र। राम के सहयोगी सुग्रीव का भाई एवं शत्रु। राम ने छिपकर धोखे में उसका वध किया जो युद्ध के नियमों के प्रतिकूल था। साथ ही यह कार्य अविवेक पूर्ण था। मरते समय वाली ने जो हत्या के कारण के विषय में प्रश्न किया था राम उसका कोई भी युक्तियुक्त उत्तर नहीं दे सके उस उत्तर में भी राम को जवरदस्ती का एवं झूठ का सहारा लेना पड़ा। इस घटना का रामकथानक परक नाटकों में प्रायः उपादान किया गया है और उसमें इस प्रकार के कुछ परिवर्तन प्रस्तुत किये गये हैं जिनसे कहीं कहीं राम के इस चरित्र दोष का कुछ प्रच्छालन हो जाता है-

(क) भास के नाटकों में कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं हैं। केवल वाली और सुग्रीव के दो युद्धों को एक में मिला दिया गया है, तारा विलाप नहीं करती; क्योंकि उन्हें वालि ने अपनी मृत्यु पर रोने के लिये मना कर दिया था। **अभिषेक नाटक** में अंगद ने विलाप करते हुये जो शब्द कहे उनसे वाली की विषम दशा का पता चलता है- 'जो तुम पहले किसी समय अत्यन्त शक्तिशाली एवं सुखी जीवन विता रहे थे तथा वानरराज के प्रतिष्ठित गौरवपूर्ण पद के अधिकारी थे आज तुम्हारी सब अंगों की चेष्टायें समाप्त हो गई हैं और तुम भूमि पर लोट रहे हो।' कवि ने वाली की मृत्यु रंगमंच पर ही दिखलाई है जो नाटक की प्रतिष्ठित परम्परा के प्रतिकूल है। मरते समय वाली को गंगा इत्यादि पवित्र नदियों, अप्सराओं और सहस्त्र हंसों द्वारा खींचे जाने वाले वीर वाही विमान के दर्शन होते हैं।

(ख) भवभूति के नाटकों में **उत्तररामचरित** में लव द्वारा वाली वध के लिये राम की निन्दा की गई है। **महावीर चरित** में माल्यवन्त ने वाली को राम का विरोधी बना दिया। ऋष्यमूक पर्वत पर रावण का भाई विभीषण राम से मिलने आने वाला था, माल्यवन्त के कहने से वाली ने विभीषण के ऋष्यमूक क्षेत्र में प्रवेश करने पर प्रतिबन्ध लगा दिया। इस प्रकार अनेक विरोधी कार्यवाहियां करने के कारण आत्मरक्षा में रामद्वारा किया गया वालिवध उचित ठहराया गया है। वाली रावण का मित्र था, अतः राम द्वारा उसका वध उचित ही था। महावीर चरित में छल अंश को निकाल दिया गया है।

(ग) **उदात्तराघव** में यह घटना छोड़ ही दी गई है जिससे राम पर अनौचित्य के आरोप का निरसन हो जाता है।

(घ) **अनर्घराघव** में विरोध का कारण कुछ और ही है। लक्ष्मण जब कबन्ध से गुह निषाद की रक्षा कर रहे थे उन्होंने दुन्दुभि का अस्थिपञ्जर उलट दिया जिससे रुष्ट होकर वाली ने राम को युद्ध के लिये ललकारा और उस युद्ध में वालि मारा गया। इसम राम के चरित्र में किसी प्रकार का दोष नहीं आता। प्रच्छन्न प्रहार का वहां प्रसंग ही नहीं है।

वाल्मीकि- (ना.उ.पा.) (१) उत्तररामचरित में वाल्मीकि का अनेकशः उल्लेख हुआ

है। सीता को वाल्मीकि के आश्रम के निकट छोड़ा गया है, दुरवस्था में उत्पन्न हुये सीता के दो बच्चों को वाल्मीकि को ही समर्पित किया गया। आत्रेयी और वासन्ती की बातचीत से ज्ञात होता है कि वाल्मीकि के आश्रम में उच्च शिक्षा दी जाती है जहां अन्य आश्रमों में निम्नस्तर की शिक्षा प्राप्त कर वाल्मीकि आश्रम में उच्च शिक्षा के लिये छात्र प्रवेश लेते हैं। उन्हीं की बातचीत से यह भी ज्ञात हो जाता है कि वाल्मीकि के आश्रम में कोई दो प्रतिभा शाली वालक आ गये हैं जिनको जन्म से ही जृम्भकास्त्र सिद्ध हैं। उनके लिये ही वाल्मीकि रामायण की रचना कर रहे हैं। अन्त में वाल्मीकि का भी समर्थन प्राप्त हो जाता है जिससे सीता अपने अन्तःपुर में पुनः प्रवेश पा जाती है।

(२) '**वाल्मीकि संवर्धनम्**' नाटक के ये नायक हैं। इसमें इनके पूर्ववती जीवन और वाल्मीकि बनने का अंकन किया गया है।

वाल्मीकि प्रतिभा– (ना.कृ.) वेङ्कटरामराघवन लिखित नाटक।

वाल्मीकिसंवर्धनम्– (ना.कृ.) यह विश्वेश्वर विद्याभूषण लिखित ५ अंकों का नाटक है। इसमें वाल्मीकि के प्रारम्भिक जीवन की उस प्रसिद्ध घटना का चित्रण किया गया है जिसमें वे प्रारम्भ में दुराचारी बतलाये गये हैं और बाद में यह जानकर कि उनके दुष्कर्मों का फल भोगने के लिये उनके परिवार का कोई व्यक्ति भागीदार नहीं, सभी केवल दुष्कर्मों से उपार्जित सम्पत्ति के भागीदार हैं, वे विरक्त होकर साधना निरत हो जाते हैं और अन्त में महर्षि वाल्मीकि बनकर रामायण की रचना करते हैं। प्रारम्भ में उनका नाम दस्यु रत्नाकर बतला गया है। इस कृति में सांस्कृतिक महत्ता की चर्चा की गई है, प्रकृत्ति वर्णन एवं नृत्य गीतादि का भी पर्याप्त उपादान किया गया है।

इस नाटक का रचनाकाल २० वीं शताब्दी है। १९६६ में रुपकमञ्जरी नामक ग्रन्थ माला से इसका प्रकाशन हुआ है तथा आकाशवाणी से इसका प्रसारण भी किया जा चुका है।

वासन्तिक स्वप्न– (ना.कृ.) यह मूल रूप से सेक्सपियर के 'मिड समर नाट्स ड्रीम' का संस्कृत अनुवाद है। इसके अनुवादक हैं आर. कृष्णमाचार्य।

वासन्तिका– (ना.कृ.) रामचन्द्र लिखित नाटिका। यह रचना १६ वीं १७वीं शताब्दी में की गई थी।

वासन्तिका परिणय– (ना.कृ.) यह शठकोप (दे.) लिखित नाटक है। इसमें उच्चकोटि की कविता के ५ अंक हैं। अहोविलनरसिंह के साथ जंगल की परी वासन्तिका के विवाह का इसभें कथानक अपनाया गयाहै। सोर्सेज आप विजया नगरम्, हिष्ट्री आफ मद्रास में इसका उल्लेख मद्रास की ओरियण्टल लायब्रेरी के विवरणात्मक कैटेलाग की संख्या XXI ८५०० पर किया गया है। इसका प्रकाशन. १८९२ में मैसूर से हो चुका है।

वासन्ती– (ना.पा.) यह उत्तररामचरित (दे.) की एक पात्र है। यह वनवास काल में राम और सीता के परस्पर प्रेम और उनके विहार की साक्षिणी है। यह सीता की सहेली और दण्डक वन में वनदेवी है। कार्यव्यस्तता के कारण उसे अयोध्या की घटनाओं का पता नहीं चला था। संयोगवश उसे वाल्मीकि आश्रम से लौटी हुई आत्रेयी मिल जाती है जिससे उसे सीतापरित्याग, राम के अश्वमेघ, उसके लिये सीता की स्वर्णमयी प्रतिमा इत्यादि का पता चलता है। शम्बूक का वध करने राम दण्डक वन में आते हैं, वहां के पूर्वोपभुक्त प्रदेश उनके मनमें करुणवेदना जागृत करते हैं। राम वार वार मूर्छित होते हैं, उससे त्राण देने के लिये भगवती भागरिथी की कृपा से सीता और तमसा अदृश्य रूप में उनके साथ लगी हैं। मूर्छावस्थाओं में सीता के अदृश्य स्पर्श से उनकी मूर्छा दूर होती है। राम के साथ वासन्ती है। एक ओर अदृश्य सीता और तमसा तथा दूसरी ओर राम और वासन्ती इनसे भवभूति ने ऐसा वातावरण तैयार कर दिया है कि भावना के उद्वेलन से पत्थर भी रो पड़ते हैं और वज्र का हृदय भी विदीर्ण हो जाता है। वासन्ती वनवास काल की राम के विश्रम्भ विहार की साक्षिणी है। अतः उसका योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

वासव– (ना.पा.) इन्द्र का नामान्तर है। पार्थपराक्रम में इसी नाम से उनका उल्लेख है। युद्ध की सफलता पूर्वक परिणति पर अप्सरा के साथ विमान से आकर वधाई देते हैं और भरत वाक्य बोलते हैं।

वासवदत्ता– (ना.पा.) एक प्रतिष्ठित नायिका है जिसका मूल रूप में उपादान गुणाढ्य की बृहत्कथा मे हो गया था। बाद में अनेक गद्यपद्य काव्यों और नाटकों की वह नायिका बनी। कवियों की कल्पना और रस निष्पत्ति की आवश्यकता के अनुसार उसके चित्रण में परिवर्तन भी होता रहा है। प्रमुख नाटकों में उसकी भूमिका निम्नप्रकार की रही है–

(१) **प्रतिज्ञा यौगन्धरायण–** में वह महान पिता की प्यारी पुत्री है जिसके माता-पिता उसका प्रदान करने के लिये किसी लोकातिशायी व्यक्ति की तलाश में हैं और उन्हें उदयन के रूप में ऐसा व्यक्ति मिल भी जाता है। वह कला की प्रेमिका है और संगीत में विशेष आनन्द लेती है। दोनों में प्रेम उत्पन्न करने के लिये उदयन को गिरफ्तार कराया जाता है और पुत्री को वीणा सिखाने के लिये उन्हें महल में ही रख लिया जाता है। वह सच्ची प्रेमिका और सौन्दर्यानुरागिणी होने के कारण उदयन को सर्वात्मना अपना दिल दे देती है। इस प्रेम में उदनय की वीणा पटुता भी बहुत बड़ा कारण है। उसके सौन्दर्य इत्यादि गुणों का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि जब उदयन का मन्त्री कौशल से उदयन को छुड़ाने की सफल यौजना बना लेता है तब उदयन उसे छोड़कर राज्य में भी लौटना नहीं चाहते। वह भी प्रेम के लिये माता-पिता और सभी आत्मीयजनों का परित्याग कर उदयन के साथ भाग आती है और अपने प्रेम के प्रति सच्ची साबित होती है।

(२) **स्वप्नवासवदत्तम्–** में उसके गुणों और उदारता पूर्ण प्रवृत्तियों का ठीक रूप में

परिचय प्राप्त होता है। उसे पति का प्रेम इस सीमा तक प्राप्त होता है कि पति उसे एक क्षण के लिये भी छोड़ना नहीं चाहता। यहां तक की शिकार खेलने जाने पर भी साथ ही ले जाता है। उसे भी उसी सीमा तक पति से प्रेम है। किन्तु वह अपनी किसी भी स्वार्थपूर्ति के लिये पति की विजय और उसकी उन्नति में आड़े आना नहीं चाहती। केवल इतना ही नहीं अपितु इस कार्य के लिये वह बड़े से बड़ा बलिदान करने में भी नहीं हिचकती। पति पर आपत्ति आई है और उसके निराकरण के लिये मगध की राजकुमारी पद्मावती से राजा का विवाह आवश्यक है तथा इस निमित्त उसे कुछ समय के लिये अज्ञातवास करना है। वह प्रसन्नता पूर्वक मन्त्री के प्रस्ताव को स्वीकार कर लेती है। जब उसे धरोहर के रूप में पद्मावती के पास रख दिया जाता है तब वह बड़ी ही विषम स्थिति में पड़ जाती है। उसे राजा के दूसरे विवाह की पूरी तैयारी में जुट जाना पड़ता है। वह पति की विजय के लिये सौत का भार वहन कर लेती है। सौत की सहेली के रूप में रहते हुये भी कभी भी अपनी वास्तविकता प्रकट होने नहीं देती। कई वार प्रमाद स्खलित होता भी है तो भी निपुणता के साथ छिपा जाती है। पद्मावती के धोखे में वह राजा के पास लेट जाती है और राजा की स्वप्न की बड़बड़ाहट में वह वार्तालाप में साथ भी देती है; किन्तु अपनी स्थिति को तत्काल संभाल लेती है। स्त्रीसुलभ भावुकता की भी उसमें कमी नहीं है। जब वह भेद खुल जाने के भय से राजा के पास से भाग जाने का प्रयत्न करती है तब भी राजा की लटकती वाँह को ठीक रूप में रख देने के प्रलोभन का संवरण नहीं कर पाती यद्यपि इससे उसकी स्थिति कुछ न कुछ खुल ही जातीहै। वह कन्दुक क्रीड़ा माला गूंथने इत्यादि कला में अपनी निपुणता की धाक जमा देती है। उसे अपनी सरलता और त्यागवृत्ति इत्यादि गुणों का उचित पुरस्कार प्राप्त हो जाता है। उसका पति विजयी होता है और उसके माता पिता दोनों के चित्रों द्वारा उनकी विवाहविधि सम्पादित कर उनके गान्धर्व विवाह को स्वीकृति प्रदान कर देते हैं।

(३) **तापस वत्सराज**– में भी वासवदत्ता का वही रूप सुरक्षित है– केवल कथानक को नया रूप दे दिया गया है। किन्तु स्वरूप का विकास इतनी निपुणता से नहीं हो सका। फिर भी कथानक पुरानी परम्परा में आता है।

(४) **रत्नावली**– इस नाटक में इसके चरित्र का अवमूल्यन हुआ है। यहां वह अत्यन्त ईर्ष्यालु तथा अत्यन्त क्रोधी स्वभाव की है, उसमें स्त्री सुलभ सौतिया डाह अत्यधिक मात्रा में है। वह स्वप्नवासवदत्ता की वासवदत्ता के समान एक आदर्श रमणी नहीं है। हर्ष ने वासवदत्ता में यथार्थ भारतीय पारिवारिक रमणी के दर्शन किये हैं। उसमें वे सब कमजोरियां हैं जो प्रायः महिलाओं में होती हैं यद्यपि उसमें उदात्तता और सहृदयता भी यत्किचित् रूप में विद्यमान है। यहां भी लावणक में उसके जल मरने की खबर उड़ाई जाती है। किन्तु यहां यौगन्धरायण उससे परामर्श करना आवश्यक नहीं समझता। यहां उदयन के समान उससे भी उसके जल मरने की खबर छिपाई जाती है। उसके अन्तःपुर में अनेक

दासियां हैं किन्तु जब वह एक नई दासी सागरिका को देखती है और उसकी रूपराशि का साक्षात्कार करती है तब उसके मन में आशंका जागृत हो जाती है, वह हीन भाव से आक्रान्त हो जाती है। वह इस विषय में पुरुष की कमजोरी से परिचित है, इसीलिये सागरिका को राजा की निगाह से बचाये रहती है।

जब उसे पता चलता है कि राजा और सागरिका एक दूसरे के प्रति आकृष्ट हो गये हैं तब आशंका उसके मन में भय, निराशा और फिर क्रोध का स्थान ले लेती है। उसे मालूम है कि सागरिका और सुसंगता आपस में अत्यन्त घुली मिली हैं। अतः वह सुसंगता को फोड़ने के लिये उसे अपना अच्छे से अच्छा परिधान देकर अपनी ओर करने की चेष्टा करती है और उसको उत्तरदायित्व प्रदान करती है कि सागरिका और राजा मिल न सकें। किन्तु सुसंगता मैत्री सम्बन्ध को अधिक महत्व देती है और राजा तथा सागरिका को मिलाने में उसी परिधान का उपयोग करती है।

जब यह राज वासवदत्ता पर खुलता है तब वह मौके पर पहुंचकर उस मिलन में विघ्न तो डालती ही है साथ ही रूठने और क्रोध करने का अभिनय कर वह राजा की कोमल भावनाओं पर भी प्रभाव डालना चाहती है। हार कर वह नया कदम उठाती है– विदूषक और सागरिका दोनों को पकड़कर बन्द कर देती है। वह जानती है विदूषक राजा का निकटवर्ती है और राजा पर विशेष प्रभाव डालने की स्थिति में है। अतः वह उसे छोड़ ही नहीं देती उसका पर्याप्त सत्कार करती है– तथा उसे वस्त्र और स्वर्णाभरण की भेंट भी देती है। साथ ही वह यह प्रचार भी कर देती है कि सागरिका उज्जैन भेज दी गई है। इस योजना से उसे आशा है कि राजा कुछ दिनों में सागरिका को भूल जायेंगे। किन्तु वह इस दूरी के प्रभाव को देखना चाहती है, अतः वास्तव में उसे भेजती नहीं। एक तो घर की बात मैके में पहुंचाना ठीक नहीं दूसरे पता नहीं परिस्थिति क्या मोड़ ले और राजा पर उसका क्या प्रभाव पड़े। अतः उसको अपने पास ही सुरक्षित रख लेती है और केवल खबर उड़ाकर ही काम चला लेती है।

मैके के प्रति स्त्रियों की खास कमजोरी होती है। जब वह सुनती है कि मैके का जादूगर आया है तब उसमें एक विशेष आग्रह जागृत हो जाता है और राजा को प्रेरित कर वह राजा के साथ ही उसका आनन्द लेती है। पर जब उसे ज्ञात होता है कि मामा के यहां से मन्त्री आया है तब जादूगरी के खेल को छोड़कर तत्काल उनके स्वागत को उठ खड़ी होती है।

सुलभ कमजोरियां तो उसमें है हीं। उदात्तता और सहानुभूति की भी उसमें कमी नहीं। आग लगने की घटना से वह एक दम सागरिका के लिये व्याकुल हो जाती है और वचाने के लिये राजा से प्रार्थना ही नहीं करती स्वयं भी आग में कूद पड़ती है। सागरिका से छुटकारा पाने के लिये वह वेताव अवश्य है किन्तु मानवता को भी नहीं छोड़ती और अपने प्रतिद्वन्दी की जीवन रक्षा के लिये प्राणपण से चेष्टा करती है। जब

उसे ज्ञात होता है कि सागरिका वास्तव में उसकी ममेरी बहन है तब उसकी आत्मीयता उमड़ आती है, वह अपने किये पर पश्चाताप करती है और अपने हाथ से राजा का प्रणय बन्धन कर देती है। बड़ी बहन के समान यह भी कहती है कि इसके माता पिता बहुत दूर हैं– अब ऐसा करें कि यह माता पिता को भूल जाये। वस्तुतः सारे वातावरण को देखते हुये परिस्थिति से समझौता कर लेने में ही उसकी बुद्धिमानी है।

(५) **प्रियदर्शिका**– में भी इसका चित्रण रत्नावली के समान ही हुआ है। केवल प्रतिनायिका के नामकरण और कथानक के स्वरूप में अन्तर आया है।

वासवदत्ता नाट्यपार– (ना.कृ.) एक प्राचीन कवि एवं आचार्य सुबन्धु का लिखा नाटक। इन्होंने नाटक के जो चार भेद किये हैं– प्रशान्त, भास्वर, ललित और समग्र। उसमें समग्र को उन्होंने नाट्यपार या नृत्यपार कहा है और उसके उदाहरण के रूप में वासवदत्ता नाट्यपार की रचना की। अभिनव गुप्त ने अभिनवभारती में नाट्यपार का परिचय दिया है।

वासवीपाराशरीयम्– (ना.कृ.) नरसिंह आचार्य (दे.) लिखित १२ अंकों का नाटक। अकाल की स्थिति में ब्राह्मण लोग गौतम की शरण में चले जाते हैं और गृहस्थों की यज्ञक्रिया लुप्त हो जाती है, देवताओं को यज्ञभाग नहीं मिलता। देवता बदला लेने के लिये एक मायामयी गाय गौतम के पास भेजते हैं जो गौतम के हांकने पर मर जाती है और गौतम को गोवध का पाप प्रदान कर जाती है। गौतम रुष्ट होकर देवताओं को शाप देते हैं। इस शाप का अनुग्रह करने के लिये विष्णु भगवान पराशर के पुत्र के रूप में अवतार लेने का निश्चय करते हैं। पराशर दाशराज की कन्या वासवी की ओर आकृष्ट होते हैं और उसे वरदान देते हैं कि वह उनके पुत्र को जन्म देकर पुनः कन्या बन जायेगी और तब उसे चक्रवर्ती पति मिलेगा। वासवी व्यास को जन्म देती है जिससे देवताओं को गौतम के शाप से मुक्ति मिल जाती है।

इस नाटक की रचना १९वीं शताब्दी में हुई थी और विजय नगर से १९०२ में तेलुगु लिपि में इसका प्रकाशन किया गया। इसमें प्राकृत का प्रयोग नहीं है, रचना धर्म, प्रचारात्मक है जिसमें बौद्ध इत्यादि की लम्बी चर्चा है कहीं कहीं अश्लीलता भी आ गई है।

वासवीपाराशरीयप्रकरणम्– (ना.कृ.) यह मुडुम्बई वेङ्कटराम नरसिंह (दे.) का लिखा नाटक है। इसका रचनाकाल १९वीं शताब्दी है।

वासुदेव– (ना.टी.का.) मद्रास की ओरियण्टल लायब्रेरी के पाण्डुलिपि अनुभाग की त्रैवार्षिक खोज रिपोर्ट में सं. III ३८७८ पर विद्धशालभञ्जिका की एक टीका का उल्लेख है जिसके टीकाकार का नाम वासुदेव दिया हुआ है। इस नाम के कई कवि हुये हैं जिनमें मालावार के जमोरिन मानविक्रम के समय के वासुदेव अधिक प्रसिद्ध हैं। किन्तु टीकाकार

वासुदेव उनसे भिन्न थे। ये भी मालावार के ही निवासी थे। इन्हें विद्याधर मल्ल की उपाधि दी गई थी। ये करुणाकर के शिष्य थे।

वासुदेव द्विवेदी- (ना.का.) साहित्याचार्य एवं वेदशास्त्री की उपाधि धारण करने वाले, २० वीं शताब्दी के कवि हैं। ये उत्तर प्रदेश के देवरिया जि. के निवासी थे। इन्होंने काशी में सार्वभौम संस्कृत प्रचार कार्यालय की स्थापना की। व्याख्यानों और नाट्य प्रयोगों द्वारा संस्कृत का प्रचार करने के लिये भारत भ्रमण किया। संस्कृत प्रचार माला में मुद्रित कराने के लिये कई एकाङ्कियों तथा दूसरे प्रकार की पुस्तकों की रचना की। इनकी कतिपय नाट्यकृतियां हैं- कौत्सस्य गुरुदक्षिणा, भोजराज्ये संस्कृतसाम्राज्यम्, बालनाटकम्।

वासुदेव नरेन्द्र- (ना.का.) इन्हें श्रीवत्साङ्क उपाधि के साथ वासुदेव श्रीवत्साङ्क नाम से भी याद किया जाता है। श्रीवत्साङ्क नाम से गोपाल श्रीवत्साङ्क (दे.) तथा नरेन्द्र श्रीवत्साङ्क का भी नाम प्राप्त होता है। ज्ञात होता है ये सभी नाम एक ही व्यक्ति के थे। ये काश्मीर के प्रमुख अधिकारी थे। इनका लिखा सुभगानन्द (दे.) एक प्रहसन (दे.) प्राप्त होता है।

विकटनितम्बा- (ना.कृ.) एक प्रेक्षणक है जिसकी रचना वेङ्कटराम राघवन् ने की थी। विकटनितम्बा एक प्रतिष्ठित कवयित्री थीं जो आचार्य गोविन्द स्वामी की शिष्या थी। इनके पति केवल प्राकृत बोलते थे; इसके अतिरिक्त कुछ पढे लिखे नहीं थे। इस ओपेरा में विकटनितम्बा का चित्रण किया गया है जिसमें उनके द्वारा पति की मजाक बनाने को नाट्यविषय बनाया गया है। इसका प्रसारण आकाशवाणी मद्रास से किया गया था।

विक्रमाश्वत्थामीयम्- (ना.कृ.) इस व्यायोग की रचना डा. नारायण राव चिल्कुरी ने की थी। दुर्योधन मरणासन्न अवस्था में पड़ा है,उसके प्राण नहीं निकल रहे हैं। अश्वत्थामा भीमसेन का कटा हुआ सर लाते हैं तब उनके प्राण निकलते हैं। बाद में अश्वत्थामा कृपाचार्य को बतलाते हैं कि वह सर तो बनावटी था।

इस व्यायोग की भाषा नाट्यानुकूल है और इसमें छायातत्व का समावेश किया गया है। विभाजन दृश्यों में है। इसका प्रथम अभिनय अनन्त पुर की कलाशाला में किया गया था। सन् १९३८ में इसका प्रकाशन किया गया।

विक्रमोर्वशीय- (ना.कृ.) महाकवि कालिदास (दे.) कृत नाट्यरचना। विचारकों ने इसे त्रोटक की श्रेणी में रक्खा है। कुछ लोग इसे नाटक और दूसरे लोग इसे सामान्य रूपक (दे.) बतलाते हैं। नामकरण का आशय है- विक्रम या शक्ति के द्वारा उर्वशी को प्राप्त करने के कथानक को लेकर लिखी गई नाट्य रचना। पुरूरवा ने उर्वशी को शक्ति-के द्वारा ही पहले अस्थायी रूप से और फिर स्थायी रूप से प्राप्त किया था। विक्रमोर्वशीय के टीकाकार काट्यवेम के अनुसार पुरूरवा ने भी विक्रम की उपाधि धारण की थी। अतः नामकरण का अर्थ होगा विक्रम और उर्वशी को लेकर लिखा गया नाटक। कुछ भी हो

यहां कवि अपने आश्रयदाता विक्रमादित्य का नाम जान बूझकर रचना में सन्निविष्ट करना चाहता है।

पुरूरवा और उर्वशी की कथा बहुत पुरानी है। यह ऋग्वेद, शतपथ ब्राह्मण, मत्स्य पुराण इत्यादि कई स्थानों पर आई है। प्रस्तुत रचना का कथानक मत्स्य पुराण से विशेष मेल खाता है। इस नाटक में अंशिक घटना स्वर्ग लोक में घटती है और आंशिक मृत्युलोक में पुरूरवा एक दैत्य से उर्वशी की रक्षा करते हैं और अपनी वीरता से उर्वशी को प्रभावित कर लेते हैं। दोनों एक दूसरे की देखा-देखी में एक दूसरे पर आसक्त हो जाते हैं। इसी समय उर्वशी के लिये इन्द्र का बुलावा आ जाता है और वह व्यथित हृदय लिये वहां से चली जाती है। किन्तु गुप्त रूप से वह एक पत्र पुरूरवा के सामने डालती जाती है जो दुर्भाग्य से पुरूरवा की रानी के हाथ लग जाता है। रानी क्रोधाभिभूत हो जाती है। उधर उर्वशी को लक्ष्मी स्वयंवर नामक नाटक में लक्ष्मी की भूमिका निभानी है। किन्तु पुरूरवा के वियोग में दुःखी होने के कारण उसका अभिनय ठीक नहीं बन पाता। नाटक में जब मेनका उससे प्रश्न करती है कि तुम किससे प्रेम करती हो तब उसे उत्तर देना है– 'पुरुषोत्तम नारायण से'। किन्तु धोखे में उसके मुंह से निकल जाताहै– 'पुरूरवा से'। नाटक के बिगड़ जाने से भरत रुष्ट हो जाते हैं और उसे मृत्यु लोक वास का शाय देते हैं। उस शाप को इन्द्र कुछ नियन्त्रित कर देते हैं कि यह मृत्युलोक में तभी तक रहेगी जब तक इसका पति इससे उत्पन्न अपने पुत्र का मुख नहीं देख लेता। उर्वशी मृत्युलोक में आकर पुरूरवा के साथ आनन्दमय जीवन बिताने लगती है। रानी का विरोध भी शान्त हो जाता है। उर्वशी प्रेम में इतना खो गई है कि उसे पुत्र प्रेम की भी परवा नहीं है। वह एक पुत्र को गुप्त रूप से जन्म देती है जिसका पता पुरूरवा को भी नहीं चलता। वह पुत्र को अपने से दूर रखती है कि कहीं पुरूरवा उसका मुंह न देख लें और उसे अपने प्रेमी से दूर जाना पड़े।

एक वार ईर्ष्यावश क्रोध में भरकर उर्वशी कुमारवन में प्रवेश कर जाती है और पुरूरवा को दिखलाई नहीं देती। पुरूरवा वियोग व्यथा से पागल होकर इधर उधर भटकने लगते हैं। वे पागलपन में कभी बादल को अपनी प्रियतमा का अपहर्ता दानव समझते हैं, कभी नदी की धारा के रूप में परिणत हुई प्रियतमा दिखलाई देती है। वे मोर, नीलकण्ठ, कोयल, भ्रमर आदि से अपनी प्रियतमा का पता पूंछते हैं, नाचते है, गाते है, मूर्छित होते है, कभी प्रतिध्वनि को उसका उत्तर समझ लेते है। अन्त में संगमनीय मणि को लेकर वे लता का आलिंगन करते है। (कुमरावन की यह मान्यता है कि यदि कोई स्त्री उस वन में जायेगी तो वह लता के रूप में परिणत हो जायेगी और अपने रूप में तभी आयेगी जब उसका सम्पर्क संगमनीय मणि से होगा।) संगमनीय मणि के साथ आलिंगन करने पर उसकी प्रितयता उसकी बाहों में आ जाती है।

पुनः उसका आनन्दमय जीवन व्यतीत होने लगता है। संयोगवश एक गिद्ध संगमनीय

मणि को ले उड़ताहै और एक युवक के वाण से मारा जाता है। वाण पर लिखा है- 'पुरूरवा उर्वशी के पुत्र आयु का वाण'। राजा पुत्र मुख देखकर हर्षविभोर हो जाते है किन्तु उर्वशी अत्यन्त दुःखी हो जातीहै क्योंकि शर्त के अनुसार अब उसे अपने प्रेमी से अलग होकर स्वर्ग को लौट जाना है। इस बात को राजा अभी तक नहीं जानते थे। राजा अपनी प्रेमिका के होने वाले वियोग से अत्यन्त दुःखी हो जाते हैं। तभी नारद आते हैं और राजा को सन्देश देते हैं- दानवों पर विजय के लिये इन्द्र को उनकी आवश्यकता है और इस सेवा के उपलक्ष्य में भेंट रूप में उन्होंने सारे जीवन के लिये उन्हें उर्वशी प्रदान कर दी है।

यह नाटक कालिदास की कला का अच्छा निदर्शन है। इसका सर्वोत्तम भाग उर्वशी का लता के रूप में परिणत होना और राजा का अनेक तत्वों में अपनी प्रियतमा का दर्शन करना कहा जाता है। विद्वानों की सम्मति में यह एकालाप (मोनो एक्टिंग) के क्षेत्र में विश्वसाहित्य में अपना जोड़ नहीं रखता। जादू की संगमनीय मणि शाप, स्वर्गीयदूत इत्यादि के प्रयोग से दैव और मानव जगत का इसमें अच्छा समन्वय अधिगत होता है।

विक्रान्तकौरव- (ना.कृ.) हस्तिमल्ल (दे.) लिखित ६ अंकों का नाटक। ओरियण्टल लायब्रेरी मद्रास की पाण्टुलिपि विषयक त्रैवार्षिक रोज रिपोर्ट सं. १६८८ पर इसका उल्लेख किया गया है मोहनलाल ने भूमिका के साथ इसका सम्पादन किया और बम्बई से इसका प्रकाशन किया गया।

विक्रान्तराघवीय- (ना.कृ.) श्रीकृष्ण का लिखा व्यायोग।

विक्रान्तशूद्रक- (ना.कृ.) अज्ञातनामा कवि का लिखा एक प्रकरण। भोज राज ने शृङ्गार प्रकाश में इसका उल्लेख किया है। इसके अनुसार शूद्रक का एक भृत्य था नीचाक्ष या शिवगण। उसने स्वामिकार्य के लिये निर्दोष भी पत्नी को चिता में जला दिया और पत्नी प्रेम के कारण स्वयं भी दूसरी चिता में कूद गया। किन्तु दोनों चितायें मायामयी (जादुई) थीं। जब पत्नी की चिता से माया दूर हुई तब उसे ज्ञात हुआ कि पति उसके वियोग में जलमरा है। तब वह भी पति की चिता में कूद पड़ी। जब माया दूर हुई तो दोनों साफ सुथरे बाहर निकल आये। यह माया शूद्रक द्वारा तैयार की गई थी। इस घटना से राजा की शक्ति, भृत्यों की कर्तव्यपरायणता और पतिपत्नी का परस्पर प्रेम व्यक्त होताहै। एक दूसरे स्थान पर भोजराज ने इस कृति का एक पद्य भी उद्धृत किया है।

विख्यातविजय- (ना.कृ.) लक्ष्मणमाणिक्य देव (दे.) लिखित ६ अंकों का नाटक। इसमें नकुल और कौरवों के युद्ध का चित्रण किया गया है। साथ ही कर्ण पर अर्जुन की विजय दिखलाई गई है। रचना १६वीं शताब्दी की है। इसका संकलन कैटेलागस कैटेलागोरम III १२० पर किया गया है।

विग्रहराज- (ना.का.) इनका दूसरा नाम वीसलदेव भी है जो शाकंभरी या सांभर

के प्रसिद्ध चौहान राजा थे। पृथ्वीराज विजय के अनुसार इनके पिता का नाम अर्णोराज था। ये अजमेर के उनके उत्तराधिकारी राजा थे। इन्होंने मुसलमानों के प्रतिकूल सफल सङ्घर्ष किया था। इनका लिखा हरकेलि (दे.) प्रसिद्ध है। सुभाषितावली में भी इनका लिखा हुआ एक पद्य दिया हुआ है। इससे ज्ञात होता है नाटक के अतिरिक्त इन्होंने कतिपय अन्य पुस्तकें भी लिखी थीं। इनका समय १२वीं शताब्दी का अन्त एवं १३वीं शताब्दी का प्रारम्भ है। अपनी कृति सुरक्षित रखने के लिये इन्होंने अपना नाटक एवं सोमदेव या सोमेश्वर द्वारा इनकी प्रशस्ति में लिखी ललित विग्रहराज नाटिका पत्थरों पर खुदवाई थी। उन पत्थरों को बाद में मुसल्मान शासकों ने मश्जिद के गुम्बजों में लगा दिया था।

विचक्षणा– (ना.पा.) कर्पूरमञ्जरी (दे.) में नायिका की सखी जो राजा के साथ नायिका को प्रेम जोड़ने में सहायता करती है।

विजयपारिजात– (ना.कृ.) हरिजीवन मिश्र (दे.) लिखित नाटक।

विजयपाल– (ना.का.) ये गुजरात के कवि हैं। द्रौपदीस्वयंवर इनका लिखा (दे.) नाटक है। इनका समय सम्भवतः १३वीं शताब्दी है। चालुक्यराज भीमदेव के निर्देश पर इन्होंने रचना की थी।

विजययादवम्– (ना.कृ.) नारायणशास्त्री (दे.) लिखित ७ अंकों का नाटक।

विजयविक्रम– (ना.कृ.) यह कौण्डिन्यगोत्रीय आर्यसूर्य (दे.) का लिखा व्यायोग है। मद्रास के प्राच्य पुस्तकालय में ट्रायेनियल ग्रन्थ सूची सं. II १७५१ में इसका उल्लेख किया गया है। इस नाटक में जयद्रथवध का कथानक चित्रित किया गया है। इसका रचनाकाल १९वीं शताब्दी है।

विजयश्री– (ना.कृ.) दे. पारिजातमञ्जरी।

विजया– (ना.का.) दे. विज्जिका।

विजयाङ्का– (ना.का.) यह डा. रामराघवन लिखित प्रेक्षणक (ओपेरा) है। इसमें कर्णाटक के शासक महाराज चन्द्रादित्य का पत्नी विजयाङ्का का चरित्रचित्रण किया गया है। क्वींस मेरी कालेज मद्रास एवं संस्कृत एकेडमी मद्रास में इसका अभिनय किया गया था। इसका प्रसारण भी मद्रास से हो चुका है। इनका दूसरा नाम विज्जिका भी है।

विजयीन्द्रतीर्थ– (ना.का.) ये १६वीं शताब्दी के कर्णाटक के कवि हैं। इनका लिखा सुभद्राधनञ्जय नामक नाटक बतलाया जाता है।

विजयेन्द्रिरापरिणय– (ना.कृ.) यह सुब्रह्मणं की रचना है। कैटेलागस कैटेलागोरम खण्ड २ सं. १३५ पर इसका उल्लेख किया गया है।

विज्जिका– (ना.का.) इनका वास्तविक नाम विजया है जिसको प्राकृत भाषा में विज्जिका कहा गया है। इनकी प्रसिद्धि इस प्राकृत नाम से हुई है। कवयित्रियों में ये सर्वाधिक प्रतिष्ठित हैं और वैदर्भी शैलीकालिदास के वाद इन्हीं का नाम आता है–

सरस्वतीव कर्णाटी विजयाङ्का जयत्यसौ।
या वैदर्भगिरांवासः कालिदासादन्तरम् ॥

इनके फुटकर पद्य संग्रह ग्रन्थों में सुरक्षित हैं जिनमें बहुत ही उच्चकोटि का कवित्व विद्यमान है। मद्रास से कौमुदीमहोत्व (दे.) नामक जिस नाट्यकृति का उद्धार किया गयाहै सम्पादकों के मत से यह कृति विज्जिका की मालूम पड़ती है। एक तो इसकी रचना विज्जिका के नाम से उपलब्ध साहित्य से मेल खाती है। दूसरे इसकी पुष्पिका में लेखक का नाम कीड़ों से खा लिया गया है किन्तु दो अक्षर शेष हैं 'कया' अनुमान होता है यह शब्द 'विज्जिकया' (विरचित) होगा।

कौमुदीमहोत्सव (अंक ३ श्लो १५) में शौनक और अविमारक का नाम आता है। शौनक दण्डी की अवन्तिसुन्दरी कथा का एक पात्र है और अविमारक भास का एक नाटक है। इससे ज्ञात होता है इसका समय भास और दण्डी के बाद होगा। विज्जिका चन्द्रादित्य की रानी थी जिनका समय ७वीं शताब्दी है। यह समय उक्त उल्लेख से मेल खाता है। इस नाटक में चतुर्भाणी के लेखकों के नाम आये हैं और इसकी प्रविधि भी उनसे मेल खाती है। इससे ज्ञात होता है कि यह नाटक उसी वर्ग का है।

विज्जिका– (ना.कृ.) दे. विजयाङ्का।

विटराजविजय– (ना.कृ.) यह एक भाण है जिसकी रचना रामवर्मा ने की थी जिनको कुञ्जुन्नितम्बिरान नाम से प्रसिद्ध सार्वभौम उपाधिधारी रामवर्मा युवराज (दे. राजवर्मा ३) नाम से याद किया जाता है। यह नाटक रसात्मकता से भरापूरा है। इसका प्रकाशन त्रिचूर से हो गया था। इसमें एक रंगीले युवा व्यक्ति का वुड्ढी वेश्या से समागम चित्रित किया गया है जो हास्य से भरा है।

विट्ठल– (ना.का.) इनका लिखा छायानाटक (दे.) रायपुर आदिलशाही की वंसपरम्परा के शासन काल में १६वीं १७वीं शताब्दी में लिखा गया था।

विट्ठल कृष्ण विद्यावागीश– (ना.का.) हास्यकौतूहल प्रहसन के लेखक। रचनाकाल १८वीं शताब्दी।

विदग्धमाधव– (ना.कृ.) शङ्करदेव लिखित नाटक।

विदग्धमाधव– (ना.कृ.) रूपगोस्वामी (दे.) लिखित नाटक। इसमें ७ अंक हैं। श्रीमद्भागवत के आधार पर कृष्ण और गोपी की प्रेमलीलाओं का चित्रण इसका विषय है। जिसमें राधा कृष्ण की प्रेमलीला को प्रमुखता दी गई है। इस नाटक में भागवत का आधार नाम मात्र को लिया गया है; कथानक सर्वथा काल्पनिक है। अभिमन्यु नामक गोप से राधा का विवाह हो गया है जो उन्हें मथुरा ले जाना चाहता है। किन्तु राधा कृष्ण के प्रेम में फंसी है। विभिन्न सहेलियों और कृष्ण की विदग्धता से वे व्रज में ही रुक जाती हैं जहां कृष्ण के साथ उनकी प्रेमलीला चलती रहती है।

इसका पहला अभिनय केशितीर्थ में खुले आकाश में किया गया था। राधा की सखियों और विदूषकादि के संवादों में पद्यों में संस्कृत और गद्य में प्राकृत का प्रयोग किया गया है।

विल्सन के अनुसार इसका रचनाकाल १५५३ ई. है इसका प्रकाशन १९०२ ई. में वुरहानपुर मुर्शिदाबाद से हुआ था।

विदूषक- (ना.सा.पा.) इसकी परिकल्पना नाट्यशास्त्र की एक बहुत बड़ी विशेषता है। यह प्रायः एक हंसोड़ ब्राह्मण या ब्राह्मण का हास्यजनक विकृत रूप होता है। वह अपने अंग संस्थान वेषभूषा और भाषा सभी माध्यमों से हास्य सृष्टि करता है; कभी कूवड़, कभी गंजा या बौना रूप, बाहर को निकले हुये दांत लाल आंखें उसकी सामान्य विशेषतायें हैं। वह बहुत अधिक खाने वाला या सर्वदा खाने की बाते करने वाला, एक वेवकूफ और अज्ञानी व्यक्ति होता है। किन्तु राजा का वह विश्वासपात्र सच्चा हितैषी होता है और सच्चाई के साथ राजा के स्वार्थ साधन में तत्पर रहता है। किन्तु सारे कार्य विचित्र ढंग से एवं मनोरञ्जक रूप में करता है। किन्तु कभी कभी उसका हास्य जनक रूप पीछे पड़ जाता है और स्वामी के प्रति निष्ठा प्रमुखरूप में उमड़कर सामने आ जाती है।

विदूषक- (ना.पा.) विभिन्न नाटक में विदूषक का अपाक्षम-

(अ) **अद्भुतदर्पण-** यह रामविषयक नाटकों में एक है जिसमें सामान्य रूप से विदूषक का समावेश नहीं किया जाता है। किन्तु इसमें किया गया है।

(आ) **अभिज्ञान शाकुन्तलम-** में इसका नाम माधव्य है। राज्य के कर्तव्य पालन के मध्य व्यस्तता में वातावरण को हंसी मजाक से हल्का करने के लिये एक सहचर की आवश्यकता होती है। उसकी कही बात का बुरा नहीं माना जाता और सभी कुछ मजाक के रूप में लिया जाता है। कालिदास की कुशल लेखनी ने विदूषक के चित्रण में हंसी मजाक में मर्यादा का ध्यान रक्खा है। उसके हास्य परक वाक्यों में भी शिष्ट हास्य की प्रतीत होती है। वह राजा का मित्र है, राजा उससे अपने गुप्तप्रेम की बात कर मन को हल्का करने की चेष्टा करता है। उसका हास्य स्मित तक ही सीमित नहीं रहता। हास्य के साथ ही वह अपने कर्तव्य के प्रति जागरुक है। वह जानता है कि हास्य विनोद के साथ उसका कर्तव्य यह भी है कि यह राजा को गलत रास्ते पर न चलने दे। अतः जब राजा उसे शकुन्तला के प्रति अपने प्रेम की बात बतलाते हैं तब वह उसे उस गलत मार्ग पर जाने से रोकने के लिये कहता है- 'अच्छा अब तो आपकी नियत मुनिकुमारियों पर भी पडने लगी।' इस पर जब राजा उसे बतलाता है कि मुनि कुमारी नहीं क्षत्रिय विश्वामित्र की पुत्री है और छोड़ी जाने पर मुनि को प्राप्त हुई है तब वह हल्के रूप में कहता है- 'तब तो आप जल्दी जल्दी जाइये- कहीं मालकांगनी का तेल चुपड़कर अपने वालों को चिकना करके आये हुये किसी ऋषिकुमार के हाथ में न पड़ जाय। जब राजा वियोग व्यथा में कहते हैं कि इधर तो मेरा मुनिपुत्री विषयक विस्मरण दूर हुआ उधर कामदेव ने

आम का बौर रूप वाण भी धनुष पर चढ़ा लिया इस पर कह उठता है– 'लो अभी मैं कामदेव के इस वाण को डंडे से तोड़े देता हूं।' हरिणी के बच्चों के साथ पली लड़की के साथ मेरा प्रेम कैसे हो सकता है?' राजा के इस वहाने का सहारा लेकर कभी राजा को उस प्रेम की याद नहीं दिलाता। यह उसकी कर्तव्य परायणता का नमूना है। राजा उसे इतना सम्मान देता है कि माता के अनुष्ठान में अपने स्थान पर वह उसे ही भेज देता है और वह भी बिना चूके कह उठता है– 'तब तो मैं राजा का अनुज बन गया। एक और हास्य व्यङ्ग्य– राजा कहते हैं कि राजधानी में मां के अनुष्ठान में शामिल होना और वन में मुनियों की रक्षा करना– दोनों प्रदेश दूर दूर स्थित हैं। मैं निश्चय नहीं कर पाता कि मैं क्या करूं। इस पर वह कह उठता है– 'त्रिशंकु की भांति दोनों के बीचो बीच में खड़े हो जाओ, जब राजा अवकाश की घोषणा कर अपने सहयात्रियों को हटा देता है तब वह बड़े भोलेपन से कहता है– 'आपने सभी मक्खियां उड़ा दीं। जब राजा ने शकुन्तला की प्रेम चेष्टाओं का वर्णन किया तब वह कहता है– 'इतना तो सब उसने कर दिया और क्या आप चाहते थे देखते ही देखते वह आपकी गोद में आ बैठती?' संक्षेप में वह राजा का मुंह लगा व्यक्ति है। राजा से हंसी मजाक में बहुत कुछ कह लेता है राजा बुरा नहीं मानते। इस नाटक में उसके हास्य सामयिक एवं मर्यादित हैं। हास्य व्यङ्ग्य लिखने में भी कालिदास पूर्ण सफल हैं इसमें सन्देह नहीं।

(इ) **अविमारक**– में भास की लेखनी ने प्रारम्भ में ही इस पात्र का जो स्वरूप स्थिर कर दिया था वह आगे चलकर प्रतिभाशाली कवियों द्वारा कल्पना के साथ कुछ नवीन रूप देकर अपनाया गया। जब शापग्रस्त होकर विष्णुसेन एक अन्य रूप में अज्ञातवास करने के लिये वाध्य हो जाता है तब भी वह स्वामिभक्ति से मुंह नहीं मोड़ता। वह उसे जीवित या मृत खोज लाने के लिये कटिबद्ध है। यदि आवश्यकता पड़े तो परलोक तक उसका अनुगमन करने के लिये तत्पर है। अविमारक स्वयं उसके गुणों का कायल है। वह उसकी स्वयं प्रशंसा करता है। वह विदुषक की हास्योक्तियों पर मुग्ध है साथ ही उसकी वीरता, युद्ध कौशल और सान्त्वना पूर्ण वचनों की प्रशंसा करतां है। जब नायिका वियोग वेदना में रोती है तो वह भी रोना चाहता है। किन्तु आंसू नहीं आते तब वह याद करता है कि जब उसके पिता मरे थे तब भी उसके आंसू नहीं आये थे।

(ई) **कर्पूरमञ्जरी**– में नायिका की सहेली विचक्षणा के सहयोग में वह नायक-नायिका का संयोजन करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इस नाटक में उसकी उक्तियां सामान्य कोटि की हैं और दर्शक पर कोई महत्वपूर्ण प्रभाव नहीं जमातीं।

(उ) **नागानन्द**– इसमें विदूषक जीभूतवाहन के साथ संल्लग्न है वह अपने कर्तव्य का पालन करता है और जीभूत वाहन एवं मलयवती इन दो लज्जाशील प्रेमियों को मिलाने का सफल प्रयास करता है। किन्तु उसके हास्य कुछ गंवारू किस्म के मालूम पड़ते हैं। वह मक्खी, मच्छरों से पीछा छुड़ाने के लिये चादर छोढ़ कर लेटा रहता है।

विट उसे अपनी पत्नी समझ कर उससे आलिंगन इत्यादि प्रेम की चेष्टायें करने लगता है। उसने अपना वेष भी औरतों जैसा बना रक्खा है। उसी समय विट की पत्नी नवमालिका आ जाती है। वह पति को किसी परस्त्री से प्रेम करते हुये देखकर नाराज हो जाती है। तब विदूषक को मनाने के लिये विट उसे विवश करता है और विट की पत्नी के चरणों पर गिरकर और उसके आग्रह पर मदिरा पीकर उसे मनाता है। बाद में नवमालिका दम्पति के सामने तमाल रस से उसका मुंह रंग कर उसकी मजाक उड़ाती है।

(ऊ) **प्रियदर्शिका**– में विदूषक नायक नायिका को मिलाने में सहभागी तो होता है- मनोरमा के साथ उसके प्रयत्न से ही राजा नाटक में अपनी भूमिका स्वयं करने के लिये राजी हुये हैं जिसमें दोनों का प्रेम विकसित होने में सहायता मिलती है किन्तु उसके चरित्र में पेटूपन के अतिरिक्त और कोई विशेषता नहीं है।

(ए) **मालविकाग्निमित्र**– यद्यपि कालिदास की उतनी प्रौढ रचना नहीं है फिर भी विदूषक का चरित्र अकलात्मक नहीं है। भोजनप्रियता उसका सर्वमान्य शास्त्रीय चरित्र है। जब राजा चन्द्रमा की प्रशंसा करता है तब उसे मोदक की याद आती है। राजा के अवाञ्छित प्रेम का रहस्य जब खुल जाता है तब वह राजा को परामर्श देता है कि उसे तो चोर का व्यवहार करना चाहिए। जैसे सेंध लगाते हुये पकड़े जाने पर चोर बहाना करता है कि वह सेंध लगाने की कला सीख रहा था। राजा अपने अन्तःपुर से असन्तुष्ट होकर एक दासी से प्रेम कर रहे हैं इसकी तुलना वह ऐसे व्यक्ति से करता है जो मीठे पिण्डीखर्जूर खाते खाते ऊब गया हो अब इमली खाने के लिये ललचा रहा हो।

(ऐ) **मृच्छकटिक**– में इसका नाम मैत्रेय है। इसके चरित्र का एक वाक्य में समाहार हो जाता है– 'सर्वकालमित्रम्' अन्य नाटकों की अपेक्षा वह कुछ भिन्न है। अन्य नाटकों में उसका कर्तव्य होता है अभिनय में हास्य की सृष्टि करना और श्रान्त नायक का मनोविनोद करना। यहां नायक श्रान्त नहीं है क्योंकि वह समस्त सम्पत्ति खोकर दरिद्र बन चुका है। अतः उसके पास श्रान्ति लाने का कोई काम है ही नहीं। किन्तु मैत्रेय उन स्वार्थी लोगों में नहीं है जो सम्पत्ति में तो साथ देते हैं और विपत्ति आते ही किनारा कस लेते हैं। उसने चारुदत्त की सम्पन्नता में बहुत आनन्द उठाये हैं। एक वह समय था जब मिष्टान्नों से भरे हुये दोनों को छूकर छोड़ देता था अब यह स्थिति आ गई है कि दिन में कहीं इधर उधर भोजन का डौल बैठाना पड़ता है और रात में सोने के लिये वह चारुदत्त के पास चला आता है। फिर भी वह चारुदत्त का सच्चे हृदय से हितैषी है और निरन्तर उसके कल्याण की कामना करता ही रहता है। उसके प्रेम की यह सीमा है कि जब चारुदत्त को मृत्युदण्ड की सजा सुना दी गई है तब वह चारुदत्त के बिना जीवित रहना नहीं चहाता। वह चारुदत्त का विश्वास पात्र भी बहुत अधिक है। वह उसके हाथ चार समुद्रों की सारभूत रत्नावली भेज देता है। मैत्रेय भी विश्वासघात नहीं करता। वह अपना कर्तव्य समझकर चारुदत्त को कर्तव्य मार्ग पर लाने की चेष्टा करता है और कहता है कि

वेश्यागमन में बहुत अनर्थ होते हैं। वह अपने मित्र को इस दुर्व्यसन से रोकता है। अवसर आने पर क्रोध भी कर सकता है और झगड़े से भी नहीं डरता शकार से लड़ पड़ता है। उसके हास्य चुटीले हैं। वसन्त सेना की मां के मोटापे को देखकर कहता है– 'क्या इस कमरे में इन्हें बैठाकर यह कमरा बनाया गया होगा। जब उससे कहा जाता है कि इन्हें चैथिया ज्वर आ रहा है तब वह कहता है– 'भगवान चौथिया कभी मेरे ऊपर भी कृपा कर दे।'

संक्षेप में कहा जा सकता है वह सच्चा हित चिन्तक मित्र है, सम्पत्ति और विपत्ति में एक जैसा साथ देने वाला है। अन्य विदूषकों के चरित्र से उसका चरित्र सर्वथा भिन्न है। वह एक दरिद्र व्यक्ति का साथी है, वह केवल हंसी मजाक की बातें ही नहीं करता नायक के क्रिया कलाप में भी शामिल होता है। उसकी ईमानदारी पर नायक को विश्वास है। वह केवल पेटू ब्राह्मण ही नहीं है और न केवल खाने पीने के मन्तव्य से नायक के यहां पड़ा है किन्तु सच्चे हितैषी का कर्तव्य पालन करता है और मित्र को ठीक रास्ते पर लाने की चेष्टा करता है।

(ओ) **रत्नावली**– में इसका नाम वसन्तक है। संस्कृत नाट्य परम्परा का पालन करते हुये उसका नामकरण किया गया है। वह हंसोड़ पात्र तो है ही परम्परानुसार उसका पेटू ब्राह्मण होने का गुण भी विद्यमान है। जहां कहीं अवसर मिलता है वह खाने पीने की और विशेष रूप से लड्डुओं की याद अवश्य करता है। मदनमहोत्सव में जब चेटी द्रिपदीखण्ड की बात करती है तब उसे खण्ड (खांड) से लड्डुओं की याद आ जाती है और पूंछने लगता है कि क्या इस खांड से लड्डू बनते हैं? वह वायन लेने के लिये आतुर रहता है। जब बन्दीगृह से छूटने पर वह वासवदत्ता की कृपा का वर्णन करता है तब लड्डुओं से पेट भरने की ही बात करता है।

वह मनोरञ्जन करने के अतिरिक्त राजा का सहचर, उसके रहस्यों को जानने वाला एक सहायक भी है। वह प्रत्येक पद पर राजा का साथ देता है और राजा उसका विश्वास भी करता है। वह नाचने का शौकीन है। मदनमहोत्सव में नर्तकियों के साथ स्वयं भी नाचने लगता है। जब चित्र फलक देखने के अवसर पर वासवदत्ता आ जाती है तब राजा उसे चित्रफलक छिपा लेने का आदेश देता है और वह उसे वगल में दबा लेता है किन्तु चित्रफलक छिप जाने की प्रसन्नता से इतना भर जाता है कि उसे इतना भी ध्यान नहीं रहता कि अभी वासवदत्ता यहीं है। वह बाहें उठाकर नाचने लगता है, चित्रफलक गिर जाता है और वासवदत्ता उसे देख लेती है। विदूषक जो ठहरा।

(औ) **विद्धशाल भञ्जिका**– शृङ्गार प्रधान नाटिका है, इसीलये इसमें हास्यरसमय आमोद प्रमोद के अवसर भी अधिक हैं, अतः विदूषक की भूमिका भी कुछ अधिक महत्वपूर्ण है। राजा के समस्त आमोदप्रमोदों और रहस्यों का वह नर्म सचिव तो है ही राजा के प्रेम सम्बन्धों की योजना में सहायक भी है इसके साथ ही रानी की हंसी मजाक का वह विषय

भी है। रानी डमरुक नामक एक सेवक को लडकी बनाकर विदूषक का उससे विवाह रचाती है। उस लड़की के माता का नाम मृगतृष्णिका रक्खा गया और पिता का नाम शशशृङ्ग। स्वयं उस लड़की का नाम अम्वरमाला बतलाया गया। यदि विदूषक नामों पर ध्यान देता तो भी वह इस मजाक को समझ सकता था। किन्तु वह अपने विवाह की प्रसन्नता में फूला नहीं समाता। विवाह समाप्त होने के पहले ही जब राज खुलता है और लोगों को ते खूब मजा आता है किन्तु विदूषक की हालत खराब हो जाती है। इस मसखरी में प्रधान रूप से योजना और प्रबन्ध मेखला नाम की दासी का था। अतः विदूषक ने उससे बदला लेने के लिये एक दूसरी दासी को तैयार किया और उसे देवता की ओट में विठा दिया। जब मेखला पूजा करने आई तो देवता की ओट में बैठी दासी ने देवता की ओर से कहा कि– 'तुमने एक ब्राह्मण का अपमान किया है अतः मैं (देवता) तुमसे रुष्ट हूं और तुम मर जाओगी। उस ब्राह्मण के पैरों की पूजा कर उसकी जांघों के नीचे से निकलो तभी बच पाओगी।' मेखला बहुत घबड़ा गई, किन्तु रानी ने उसकी जीवन रक्षा के लिये देवता की सभी बातें पूरी की और जब विदूषक ने यह रहस्य खोला तब उससे लोगों को ज्यादा मजा आया। इस बदला लेने में राजा का भी परामर्श शामिल था।

(अं) **शारिपुत्र प्रकरण**– कनिष्क कालीन नाटककार अश्वघोष,की इस कृति में विदूषक का समावेश इस वास्तविकता को स्पष्ट रूप में प्रमाणित करता है कि उस सुदूर वर्ती काल में भी नाटकों में विदूषक का समावेश हो चुका था। उसका हास्यप्रधान रूप भी सुरक्षित है किन्तु वह बौद्धधर्म के प्रतिकूल ब्राह्मणधर्म के समर्थन में विवाद में भी भाग लेता है। कीथ के अनुसार उसके नामकरण में इस परम्परा का पालन किया गया है कि विदूषक का नाम पुष्प, वसन्त इत्यादि पर होना चाहिये। इसका नाम कौमुदगन्ध है जिसका अर्थ है कुमुदगन्ध की सन्तान। इस प्रकार यह नाम पुष्प (कुमुद) पर ही आधारित है। परवर्ती साहित्य के समान वह एक पेटू ब्राह्मण है किन्तु शास्त्रार्थ में भाग लेना उसकी अतिरिक्त विशेषता है।

(अः) **स्वप्नवासवदत्ताम्**– में जब वासवदत्ता को मृत समझकर राजा वियोग विदग्ध हो जाता है तब उराकी सान्त्वना का एक मात्र सहारा विदूषक ही रह जाता है। उसी के सम्पर्क में राजा अपनी पीडित आत्मा को विनोदित करते हैं। उसमें विदूषक की सामान्य विशेषतायें विद्यमान हैं। उसे खाने पीने का ही विशेष ध्यान रहता है। जब राजा पूंछता है कि 'तुम्हें पद्मावती और वासवदत्ता में कौन अधिक अच्छी लगती है। उस समय वासवदत्ता या अब पद्मावती ?' तब उसका यही उत्तर होता है कि मुझे दोनों अच्छी लगती हैं किन्तु वासवदत्ता मेरे खाने पीने का अधिक ध्यान रखती थी।

विद्धवेधनम्– (ना.कृ.) नारायण शास्त्री (१) लिखित ५ अंकों का नाटक।

विद्धशाल भञ्जिका– (ना.कृ.) राजशेखर (दे.) लिखित ४ अंकों की नाटिका जिसमें

हास्य के अनेक अवसर प्रस्तुत किये गये हैं। इसका नायक उज्जैन का विलासी राजा विद्याधर मल्ल है। यह धीर ललित नायक है जिसने राज्य का सारा भार मन्त्री भागुरायण को सौंपकर विलासचेष्टाओं में अपना मन लगा दिया है। सारा वातावरण श्रृङ्गारमय है। महाराणी पतिव्रता है और पति की इच्छा पूरी करने के लिये कोई भी वलिदान करने में प्रसन्नता का अनुभव करती है। इसीलिये उसने स्वयं ही मगध, मालव, पाञ्चाल, अवन्ती, जालन्धर, केरल इत्यादि राज्यों की राजकुमारियों के साथ राजा का विवाह करवा दिया। कुन्तलनरेश चण्डमहासेन जब पराजित होकर उज्जैन राज्य में आ गये तब एक दिन उसकी सुन्दरी पुत्री कुवलयमाला नर्मदा स्नान कर बाहर निकल रही थी कि राजा की निगाह उस पर पड़ गई और वह उस पर आसक्त हो गया।

लाट प्रदेश का अधिपति चन्द्रवर्मा विद्याधर मल्ल का मामा लगता था। उसके यहां एक पुत्री का जन्म हुआ जो अद्वितीय भुवन सुन्दरी थी। लाटेश्वर के यहां कोई पुत्र उत्पन्न नहीं हुआ था जो लाट राज्य का उत्तराधिकारी बन सकता। अत: वहां की रानी ने उसको लड़का बनाकर पालन पोषण किया। और मृगाङ्कावली के स्थान पर उसका नाम मृगाङ्कवर्मा रख दिया। उस कन्या के विषय में भविष्यवाणी की गई थी कि इसका पति चत्रवर्ती सम्राट् होगा। उज्जैन के गुप्तचरों से भागुरायण को यह सूचना मिल गई थी। अत: अपने महाराज को यह सौभाग्य प्रदान कने के लिये वह प्रयत्नपूर्वक मृगाङ्कवर्मा को अपने राज्य में ले आया। महाराणी अपने ममेरे भाई को प्राप्त कर अत्यन्त प्रसन्न हुई। मन्त्री ने एक विश्वस्ता दासी को विश्वास में लेकर उसे कुछ निर्देश दिये और मृगाङ्कवर्मा को स्फटिकशिला मन्दिर केलि कैलास के निकट उस दासी के संरक्षण में ठहरा दिया। दासी का कर्तव्य राजा को उस सुन्दरी की ओर आकर्षित करना था और वह वहाने बना कर राजा को उसके सौन्दर्य की झलक वार वार दिखला देती थी। साथ ही केलिकैलाश के स्तम्भों पर उस सुन्दरी के चित्र अंकित करा दिये गये और एक खम्भे को उत्कीर्ण कर उसे उस सुन्दरी की हू बहू मूर्ति (शाल भञ्जिका) के रूप में ढाल दिया गया। इसी आधार पर इस नाटिका का नामकरण किया गया है। मन्त्री ने परिसर में रत्नावली नामक चौकी पर उसकी ही मूर्ति की स्थापना कर दी।

राजा ने एक अभूतपूर्व सुन्दरी को स्वप्न में देखा। राजा उस रूपराशि पर मुग्ध हो गया। राजा ने उसके वस्त्र पकड़ने की चेष्टा की, किन्तु वह राजा के कण्ठ में हार डालकर अदृश्य हो गई। जागकर राजा ने चारायण को अपना स्वप्न सुनाया। जब वे उद्यान भ्रमण के लिये निकले तब उन्हें ऊपरी अट्टालिका पर कौञ्ची का क्रेङ्कार सुनाई दिया। जब राजा और विदूषक ने ऊपर को सर उठाया तब उन्हें एक अनुपम सुन्दरी झूले में पैंग भरते हुये दिखलाई दी। राजा यह देखकर चकित रह गया कि यह तो वह सुन्दरी है जिसे राजा ने स्वप्न में देखा था। जब राजा उस ओर बढे वह अदृश्य हो गई। ऊपर जाकर राजा ने उसी का चित्र लगा हुआ देखा तब कुछ और आगे बढ़कर शालभञ्जिका

(Statue) देखी। यह तो स्वप्नदृष्ट सुन्दरी की ही मूर्ति थी। राजा ने गले से हार उतार कर उस मूर्ति के गले में डाल दिया। इसी बीच राजा को उस सुन्दरी की झलक भी दिखलाई पड़ गई। किन्तु वह भी क्षण भर में अदृश्य हो गई। राजा पर सम्मोहन जादू का पूरा प्रभाव पड़ गया।

रानी को विदूषक से मसखरी करने की सूझी। उसने अपने परिचारक डमरुक को जनाने कपड़े पहनाकर यह कहला दिया कि पिता शशशृङ्ग और माता मृगतृष्णिका से उत्पन्न अम्बरमाला (आकाश कुसुम) नामक लड़की से विदूषक की शादी की जायेगी। सारा आयोजन किया गया और भांवरे पड़ने के ठीक अवसर पर उस दास ने स्वयं को प्रकट कर दिया जिस पर खूब हंसी हुई। विदूषक रुष्ट होकर चला गया।

जब राजा विदूषक के साथ इधर उधर घूम रहे थे तब परिसर में दीवाल की आड़ से आता हुआ युवतियों का वार्तालाप सुनाई दिया जिससे उन्हें ज्ञात हो गया कि उन्हीं की प्रेम दीवानी कोई युवती सहेली के साथ मिलने की योजना बना रही है। उसी समय उन्हें एक पत्र मिल गया। उससे कुछ पहले राजा ने उस सुन्दरी को गेंद खेलते देखा था और रत्नवती चौकी पर उसकी मूर्ति भी देखी थी। सखियों की बातचीत में ही राजा को ज्ञात हो गया कि उस सुन्दरी का नाम मृगाङ्कावली है और वह राजा के प्रति प्रेम भावना से आपादमस्तक आप्लावित हो गई है। अब दोनों एक दूसरे के सामने आ जाते हैं और राजा प्रणय निवेदन कर उसके गले में हार डाल देते हैं।

राजा के सहयोग से विदूषक बदला लेने की सोचता है। उस मिथ्याविवाह में मेखला दासी ने प्रमुख भाग लिया था। अतः विदूषक एक दूसरी दासी को तैयार कर पूजा के अवसर पर देवता की ओट से मेखला के प्रति कहला देता है कि क्योंकि उसने एक ब्राह्मण का अपमान किया है– इसलिये यह उस ब्राह्मण के पैरों की पूजा कर ब्राह्मण की जांघ के नीचे से नहीं निकलेगी तो वह भर जायेगी। उसका जीवन बचाने के लिये रानी सभी विधि पूरी कराती है।

जब रानी को वास्तविकता का पता चलता है तब वह राजा से बदला लेने की सोचती है। वह सोचती है कि मृगाङ्कवर्मा इतना खूबसूरत युवक है कि यदि उसे लड़की के कपड़े पहिना दिये जायें तो वह बहुत सुन्दर लड़की जंचेगी। वह राजा के पास सन्देश भेजती है कि मृगाङ्कवर्मा की बहन आई है। उसके साथ राजा के विवाह की तैयारी कर ली गई है। इस विवाह से राजा चक्रवर्ती सम्राट् बन जायेंगे। वैसे रानी को पता था कि राजा कुवलय माला के प्रति आकर्षित है। अतः रानी ने एक नई सौत से पीछा छुड़ाने के लिये मृगाङ्कवर्मा और कुवलयमाला की शादी करा देने की योजना बना रक्खी थी। अब वह सोचने लगी कि लड़की बनाकर उस लड़के (मृगाङ्क वर्मा) से शादी करा देने में खूब मजा आयेगा। शादी की रश्म जैसे ही पूरी होती है लाट नरेश का दूत आकर समाचार देता है कि मृगाङ्कावर्मा वास्तव में मृगाङ्कावली है। पुत्रहीन होने के कारण उसे

लड़का बनाकर पाला गया था। अब लाट नरेश के यहां पुत्र जन्म हो चुका है और लाट देश को अपना वारिश मिल गया है। अतः इस लड़की की शादी कहीं कर दी जाय। रानी राजा को मूर्ख बनाना चाहती थी किन्तु स्वयं मूर्ख बन गई। नवीन विवाह का पुरस्कार राजा को सर्वत्र शत्रु विजय के रूप में मिल गया।

चरित्रचित्रण, कथानक, संघटना इत्यादि सभी दृष्टियों से नाटक भले ही सदोष एवं पिछड़ा प्रतीत हो किन्तु कलात्मक सौन्दर्य की उसमें कमी नहीं और ऋतु, चन्द्रोदय, प्रातः सायं, सन्ध्यावर्णन में कल्पना शक्ति का चमत्कार दृष्टव्य है। उक्तियां कहीं कहीं कालिदास से होड़ लेती हैं।

इस नाटक का प्रकाशन वमनाचार्य ने वनारस से कराया। अंग्रेजी में 'THE LADY OF THE STATUE' नाम से कई अनुवाद प्रकाशित हुये जिनमें लेवी (थियेटर इण्डियन २४७) विल्सन (थियेटर II २५४) हेनरी एल.एच. ग्रे (अमेरिकन जर्नल आफ ओरियण्टल सोसाइटी XXVII-१) सम्मिलित हैं। इस पर कई एक टीकायें भी लिखी गई जिनमें नारायण की टीका (पूना संस्करण), घनश्याम (दे.) और दोनों पत्नियों की टीका (ई. हुल्ट्ज की दक्षिण भारतीय पाण्डुलिपियों की रिपोर्ट, मद्रास में सं. III ६७६ पर उल्लिखित), सत्यव्रत की टीका (कलकत्ता से प्रकाशित) जे. विद्यासागर की टीका (कलकत्ता से प्रकाशित), अज्ञातनामा कवि की एक टीका (जो करुणाकर का शिष्य है), इसकी प्रति मद्रास ओरियण्टल लायब्रेरी के डिस्क्रिप्टिव कैटेलाग XXI ८५१८ में और वासुदेव की टीका मद्रास पुस्तकालय की त्रैवार्षिक खोज रिपोर्ट III ८८७० पर उल्लिखित है।

विद्या– (ना.पा.) प्रतीक रूपक प्रबोधचन्द्रोदय का पात्र। यह विवेक और उपनिषद् की सन्तान है, प्रबोध उसका भाई है। यह महामोह तथा उसके वर्ग को निगल जाती है और राज्य पर विवेक का शासन स्थापित करने में उसकी सहायता करती है।

विद्याधर– (ना.पा.) यह देवयोनिविशेष का परिचायक वर्ग है। अनेक नाटकों में इनका समावेश किया गया है– (१) **अनर्घराघव** में दो विद्याधर रत्नचूड और हेमाङ्गद राम-रावण के अन्तिम युद्ध का वर्णन करते हैं। (२) **अभिषेक नाटक** में ३ विद्याधर राम रावण युद्ध का वर्णन करते हैं। (३) **अविमारक** में नायक को विद्याधर की जादुई अंगूठी मिलती है। जिसके प्रभाव से वह अदृश्य होकर राजकन्या का उपभोग करता है। (४) **उत्तररामचरित** में विद्याधर पत्नी के साथ आकाश मार्ग में जा रहा है, वह लव और चन्द्रकेतु के युद्ध का वर्णन करता है जिसमें दिव्यास्त्रों का भी प्रयोग किया गया है। (५) **कर्णसुन्दरी** में विद्याधर की पुत्री कर्णसुन्दरी के चालुक्य राज से प्रेम और विवाह का वर्णन किया गया है। (६) **कौमुदीमित्रानन्द** में एक स्त्री लोलुप विद्याधर के प्रतिकूल मित्रानन्द कापालिक को सहायता देता है।

(७) **नागानन्द** में नायक जीभूत वाहन विद्याधर राजकुमार है। नाटक के विभिन्न कथानकों का समन्वय उसी के चरित्र में हो जाता है। (८) प्रसन्नराघव में विद्याधर और

विद्याधरी रावणवध का वर्णन करते हैं।

(इस नाटक का परिचय यथास्थान देखिये।)

विद्याधर चक्रवर्ती- (ना.का.) ये १४वीं शताब्दी में कर्णाटक के निवासी थे। इनका लिखा विरुपाक्ष पञ्चाशिका नामक काव्य और रुक्मिणीकल्याण (दे.) नामक नाटक बतलाया जाता है। इनके नाम पर कतिपय टीकायें भी बतलाई जाती हैं।

विद्याधरमल्ल- (ना.पा.) विद्धशालभञ्जिका (दे.) का नायक। यह एक विलासी राजा है, यह धीरललित नायक की कोटि में आताहै। इसकी प्रवृत्ति के कारण सारा वातावरण शृङ्गारमय हो गया है। महाराणी ने उदारता पूर्वक राजा का विवाह मगधमालव, पञ्चाल, अवन्ती, जालन्धर केरल इत्यादि की राजकुमारियों से करा दिया है। अन्तःपुर में इतनी रानियों के होते हुये भी इसे सन्तोष नहीं है। कुन्तलनरेश जब पराजित होकर उज्जैन में शरण लेते हैं तब उनकी पुत्री कुवलयमाला पर भी इसकी नियत चल जाती है। दूसरी ओर मन्त्री भागुरायण लाट प्रदेश की राजकुमारी मृगाङ्कावली को पुरुष वेष में लाकर राजा का विवाह कराना चाहता है। रानी उसे लड़का ही समझती है और एक नई सौत कुवलयमाला से पीछा छुड़ाने के लिये मृगाङ्कवर्मा (मृगाङ्कावली का पुरुष रुप) के साथ चट पट उसका विवाह कराना चाहती है किन्तु उसे राजा से कुछ मजाक करने की सूझती है और वह मृगाङ्कावर्मा को लड़की बनाकर उसका विवाह उससे करा देती है। यहीं रानी चूक जाती है क्योंकि मृगाङ्कवर्मा तो मृगाङ्कावली नाम की लड़की ही है। इस प्रकार रानी को एक नहीं दो और सौतें मिल जाती हैं।

विद्याधरशास्त्री- (ना.का.) इनका जन्म वीकानेर राज्य के चुरु नामक नगर में १९०१ में हुआ था। इनके पिता विद्यावाचस्पति देवीप्रसादशास्त्री एक अच्छे विद्वान थे जिन्हें सर्वशास्त्र निष्णात होने की प्रतिष्ठा प्राप्त थी। इन्हें भी अनेक उपाधियां प्राप्त हुई थीं। शिवपुष्पाञ्जलि, सूर्यप्रार्थना, विद्याधरशतक जैसे इनके ग्रन्थ तो प्रसिद्ध ही हैं। इनके लिखे नाटक हैं पूर्णानन्द, कलिपलायनम् और दुर्बलबलम्। (यथास्थान देखिये।)

विद्यानाथ विडम्बन- (ना.कृ.) दे. प्रतापरुद्रविजयम् (२)।

विद्यापरिणय- (ना.कृ.) वेदकवि (दे.) विरचित प्रतीक नाटक। इसमें जीवात्मा का विद्या से विवाह दिखलाया गया है। जीव अविद्या और उसकी सहचारियों के चक्कर में पड़ा है। जीव का सचिव चित्त शर्मा निपुणतापूर्वक जीव को उस जाल से छुड़ाकर वेदारण्यनिवासिनी निवृत्ति से मेंल कराता है तथा उसे वेदारण्य लेजाकर सभी तान्त्रिक इत्यादि पाखण्डी सम्प्रदायों से वचाते हुये विद्या से अनुराग करा देता है तथा दोनों का विवाह हो जाता है। चित्तशर्मा अविद्या से जीव को धीरे धीरे अलग करता है। वह अविद्या का भी परामर्शदाता बन जाता है और उससे मान इत्यादि ऐसे कार्य कराता है कि जीव स्वतः विरक्त हो जाता है। वह मनोवैज्ञानिक रूप से ही अविद्या से दूर होता

जाता है। उसे ऐसा नहीं मालूम पड़ता कि चित्तशर्मा उसे बलात् अविद्या से अलग कर रहा है। इसके लिये चित्तशर्मा अविद्या को परामर्श देकर वेदारण्य तक साथ ही लगाये रहता है। किन्तु अविद्या को मान के अतिरिक्त कोप भवन में बैठाकर इतनी दूर करता जाता है कि जीव ऊब जाता है और इस प्रकार अविद्या को छोड़कर विद्या की ओर झुक जाता है।

इसका सम्पादन काव्यमाला में १८९३ में किया गया था। वस्तुतः इस नाटक की रचना वेदकवि ने ही की थी। किन्तु इस कवि ने अपने दोनों नाटकों (विद्या परिणय और जीवानन्द) की रचना कर उन्हें अपने आश्रयदाता को समर्पित कर दिया। अब ये नाटक आनन्दराय माकिन के नाम से ही प्रसिद्ध हैं।

विद्युन्माला– (ना.कृ.) व्यासराज शास्त्री लिखित रूपक। यह रामकथा से सम्बन्धित है। मन्थरा कैकेयी को रामराज्याभिषेक के विरोध में समझाती है, किन्तु कैकेयी पर उसका प्रभाव नहीं पड़ता। देवता परेशान हैं; यदि राम राजकाज में लग गये तो रावण वध नहीं हो पायेगा। अतः वृहस्पति विद्युन्माला को नियुक्त कर कैकेयी को विरोधिनी बनाते हैं। यह रचना अनेक दृश्यों में विभाजित है और छोटे संवाद अभिनय के अनुकूल हैं। विद्यासागर प्रकाशनालय, राजा अण्णरानलैपुरुम्, मद्रास से इसका प्रकाशन १९५५ में हो गया था।

विद्योत्तमम्– (ना.कृ.) विष्णुदत्त त्रिपाठी लिखित नाटक। रचनाकाल २० वीं शताब्दी।

विद्राण माधवम्– (ना.कृ.) नारायण शास्त्री (१) (दे.) लिखित ६ अंकों का नाटक।

विद्वन्मोदतरंगिणी– (ना.कृ.) यह रामदेव (दे.) लिखित एक विचित्र प्रहसन है। यह वास्तव में नाटक नहीं नाटक जैसी रचना है जो किसी सीमा तक नाटक कही जा सकती है या कहने के लिये नाट्यकृति है। इसमें धार्मिक, अधार्मिक, सामान्यजन, सम्प्रदायों के अनुयायी सभी एक मंच पर लाये गये हैं और वार्तालाप द्वारा विचित्र दार्शनिक विचारधाराओं में एक रूपता स्थापित की जाती है। इसका प्रकाशन कलकत्ता और मद्रास से हुआ है।

विधिविपर्यास– (ना.कृ.) जीवन्याय तीर्थ लिखित नाटक। विधि शब्द के दो अर्थ हैं– ब्रह्मा और कानून। विधि विपर्यास का अर्थ है– भगवान की बनाई व्यवस्था और मानव निर्मित सामाजिक विधिविधान दोनों में उलट फेर है। विनोद इस नाटक का नायक है जो स्त्री पुरुष समानाधिकार का समर्थक है और सन्तानोंत्पादन के लिये विवाह की आवश्यकता नहीं समझता। नायिका विवाह पर जोर देती है, किन्तु नायक विज्ञान की बातें कहकर उसे शान्त करने की चेष्टा करता है। इसी बीच एक डाक्टर एक नपुंसक को लेकर आता है और कहता है कि जब ये लोग विवाह नहीं करना चाहते तब इन्हें प्रजनन अंग की आवश्यकता नहीं। इनका अंग निकाल कर इस नपुंसक के अंग में लगा दिया जाय जिससे इसके अन्दर प्रजनन शक्ति आ जायेगी। यह सुनकर विनोद डर जाता है

और विवाह कर लेता है। बाद में ज्ञात होता है कि डाक्टर की घटना बनाई हुई थी जो विवाह के समर्थक लोगों की विनोद को विवाह के लिये राजी करने के लिये अभिनीत की गई थी।

हिन्दूकोड विलपर विचार करने के लिये पूना में जो मीटिंग बुलाई गई थी उसमें अभिनय के मन्तव्य से इस नाटक की रचना की गई थी। इसका प्रकाशन आचार्य पंचानन ग्रन्थमाला के अन्तर्गत हो गया था।

विधि विलसित– (ना.कृ.) एक प्रकरण। इसका उल्लेख शारदातनय के भाव प्रकाशन में किया गया है।

विनतानन्द– (ना.कृ.) गोविन्द का लिखा एक व्यायोग। दे. गोविन्द और प्रचण्ड गरुड़।

विनयवसु– (ना.पा.) प्रिय दर्शिका में अंगराज दृढ़वर्मा का काञ्चुकी। अंगराज ने पुत्री प्रियदर्शिका का विवाह वत्सराज के साथ करने का निश्चय कर रक्खा था। किन्तु कलिंगराज उसे चाहता था। उसने अंगराज पर आक्रमण कर दृढ़वर्मा को पराजित कर दिया। इसी बीच विनय वसु (कंचुकी) प्रियदर्शिका को किसी तरह बचाकर निकाल ले गया और अनेक कठिनाइयों का सामना करते हुये प्रियदर्शिका को वत्सराज के यहां पहुंचा दिया। वह आरण्यका नाम से वत्सराज के यहां सेविका बनकर रहने लगी। अन्त में दृढ़वर्मा के विजयलाभ कर लेने के बाद इसी कञ्चुकी ने प्रियदर्शिका को पहिंचान कर उसे अपना प्राप्तव्य दिलवाया।

विनायकरावबोकील– (ना.का.) २० वीं शताब्दी महाराष्ट्र निवासी कवि एवं नाटककार। इनका सम्बन्ध शिक्षा विभाग से रहा। इन्होंने फर्गुसन कालेज पूना में अध्यापक के पद पर और लगभग ६ वर्ष शिक्षा विभाग में इंस्पेक्टर के पद पर कार्य किया।

इनकी लिखी कृतियां हैं– भीमकीचकीय, रमामाधव श्रीकृष्णरुक्मिणीय, श्री शिववैभव और सौभद्र। नाटकों के अतिरिक्त इन्होंने कई बालोपयोगी पुस्तकें लिखीं। इनकी कतिपय रचनायें मराठी और अंग्रेजी में भी पाई जाती हैं।

विनोदरंग– (ना.कृ.) यह एक प्रहसन है जिसका संकलन कैटेलागस कैटेलागोरम सं. १.५७७ पर किया गया है। यह भी सम्भावित है कि यह रचना सुन्दरदेव (दे.) की हो।

विनोद विहारी– (ना.का.) ये १९वीं २०वीं शताब्दी के बंगाली कवि हैं। इनकी उपाधि काव्य विनोद भी थी। इनका लिखा कादम्बरीनाटक बतलाया जाता है।

विबुधदानव– (ना.कृ.) यह प्रधानिवेंकटभूपति (दे.) लिखित समवकार है।

विबुधमोहन– (ना.कृ.) १७वीं शताब्दी का हरिजीवन मिश्र (दे.) लिखित प्रहसन। साहित्यमाला का विवाह अखण्डानन्द के साथ होना निश्चित हुआ है। उसके पिता

सकलागमाचार्य ने शास्त्रार्थ का आयोजन किया है। अखण्डानन्द राजसभा में उपस्थित होकर शास्त्रार्थ में कन्यापक्ष को पराजित कर विवाह करता है। कन्यापक्ष की ओर से कन्या का भाई शास्त्रार्थ करता है। (कहीं कहीं बहुत समय तक यह प्रथा रही है कि विवाह के पहले कन्या और वर के दोनों पक्ष परस्पर शास्त्रार्थ करते थे। वर पक्ष के विजयी होने पर ही विवाह होता था। यह दूसरी बात है कि विवाह के मन्तव्य से कन्या पक्ष जान बूझकर पराजित हो जाता था।)

विबुधविनोद– (ना.कृ.) बंगीय कवि रजनीकांत साहित्याचार्य की २० वीं शताब्दी की नाट्यकृति।

विबुधानन्दम्– (ना.कृ.) दे. लक्ष्मीस्वंयवर (२)।

विभीषण– (ना.पा.) यह रामायण के प्रमुख पात्रों में एक है। यह रावण का भाई है और राम-रावण युद्ध की सम्भावना होने पर यह राम से मिल जाता है। कई नाटकों में इसका उपादान किया गया है– (क) **वाल्मीकि रामायण** में राम ने समुद्र पर कायदे से पुल बंधवाया था। किन्तु भास के विभीषण ने सेतु निर्माण के साथ पर समुद्र पर बल प्रयोग का परामर्श दिया। (ख) **महावीर चरित** में विभीषण राम से मिलने ऋष्यमूक पर्वत पर आना चाहता है। किन्तु रावण के मन्त्री माल्यवन्त के कहने से ही वाली उसके ऋष्यमूक पर प्रवेश पर प्रतिबन्ध लगा देता है। (ग) **प्रसन्नराघव** में रावण के वध के बाद विभीषण का राम के साथ अयोध्या आने का वर्णन किया गया है।

विमलयतीन्द्रम्– (ना.कृ.) यह यतीन्द्रविमलचौधरी (दे.) का लिखा १७ अंकों का नाटक है। इसमें रामानुजाचार्य का चरित्र चित्रित किया गया है। किसी शिष्य को यादव प्रकाश द्वारा उपनिषद् का गलत अर्थ बतलाये जाने पर जब रामानुज उसे शुद्ध कर देते हैं तब यादवप्रकाश उन्हें मार देने को तैयार हो जाते हैं। इस अनादर से दुःखी होकर रामानुज सन्यासी बन जाते हैं और विमलयतीन्द्र नाम धारण कर लेते हैं। वे ब्रह्मसूत्र का वैष्णव भाष्य लिखते हैं और द्रविड आम्नाय का प्रचार करते हैं। अपने शिष्य के साथ दिग्विजय के लिये निकलते हैं। स्वयं यादवप्रकाश उनका शिष्यत्व स्वीकार करते हैं। शैव चोल नरेश के अत्याचारों से भी उनका कार्य रूकता नहीं।

विमुक्ति– (ना.कृ.) यह दो अंकों का प्रहसन है जिसके लेखक हैं डा. वेङ्कटराघवन। रचनाकाल १९३१ ई. इसका विषय है पञ्चतत्व, मन एवं इन्द्रियों के द्वारा परवश बनाये गये आत्मा की विमुक्ति अर्थात् प्रकृति के बन्धन से छुटकारा। लेखक ने इसके लिये मानवचरित्रों की कल्पना की है। आत्मनाथ इसके नायक हैं तथा इसी प्रकार आत्मतत्वों को भी मानव व्यक्तियों के नामों से प्रस्तुत किया गया है। सन् १९६३ में मद्रास में धर्मप्रकाश थियेटर के मंच पर संस्कृतरंग के चतुर्थ स्थापना दिवस पर इसका अभिनय किया गया था।

विराजसरोजिनी– (ना.कृ.) इस नाटक की रचना हरिदास (दे.) ने कुछ आयु बढ जाने के बाद की थी। सम्भवतः इसका प्रकाशन कलकत्ता से हो चुका है। मालव नरेश हरिदश्व और गन्धर्व कन्या सरोजिनी की प्रणय लीला इस नाटक के कथानक का विषय है जिसमें दानवराज सुबाहु प्रतिद्वन्दी है। भाषा सरल एवं नाटकोचित है। इसकी रचना १९०० में की गई थी। सरल नाटकोचित भाषा, सूक्तियों और लोकोक्तियों का प्रचुर प्रयोग, नृत्यगीत का बाहुल्य इस नाटक की विशेषतायें हैं।

विराधक– (ना.पा.) मुद्राराक्षस में राक्षस का गुप्तचर यह छद्मवेष धारण कर शत्रु पक्ष से कोई समाचार निकाल लाने में निपुण है। चाणक्य की गतिविधि की सूचना इसी के माध्यम में राक्षस को मिलती है।

विरुपाक्ष– (ना.का.) ये विद्यानगर के संगमवंश के हरिहर द्वितीय और मुक्तादेवी के पुत्र एवं वुक्का के पौत्र थे। ये १४वीं शताब्दी के कवि एवं नाटककार हैं। विजयनगर के आधीन मरकतपुर, कर्णाट, चोल, पाण्ड्य मण्डलों में प्रशासक (वाइसराय) पदों पर कार्य करते रहे हैं। इनकी दो नाट्यकृतियां उपलब्ध होती हैं– उन्मत्तराघव (एकाङ्की) (दे.) और नारायणविलास (दे.)।

विलक्षकुरुपति– (ना.कृ.) यह विलक्षदुर्योधन भी कहलाता है। इसका उल्लेख नाट्यदर्पण और अभिनवभारती में किया गया है। महाभारत के पहले दुर्योधन के दरवार में कृष्ण के शान्ति प्रयत्नों का वस्तु रूप में इसमें उपादान किया गया है। इसके लेखक का पता नहीं चलता।

विलासभूषण– (ना.कृ.) यह एक भाण है जिसकी रचना वेङ्कटकृष्ण ने की थी। इसका उल्लेख मद्रास की ओरियण्टल लायब्रेरी के संस्कृत पाण्डुलिपियों के ट्रायेनियल कैटेलाग में किया गया है। इसका प्रथम अभिनय भद्राचलम् के उत्सव में किया गया था।

(१) **विलासवती**– (ना.कृ.) साहित्यदर्पण में नाट्यरासक का उदाहरण। यह अभी तक उपलब्ध नहीं हो सका है।

(२) **विलासवती**– यह एक सट्टक है जिसकी रचना उड़ीसा निवासी मार्कण्डेय मिश्र (दे.) ने की थी।

विलास शेखर– (ना.पा.) यह शृङ्गार भूषण भाण (दे.) का एक पात्र है जो वेश्याओं के मुहल्ले में जाकर अनंगमञ्जरी से मिलता है। तथा उस मुहल्ले में भ्रमण करते हुये आकाशभाषित के माध्यम से अनेक प्रश्नों का स्वयं उत्तर देता है। उसके कथन उस मुहल्ले की अनेक विशेषतायों का परिचय देते है।

विलिनाथ– (ना.का.) मदनमञ्जरी महोत्सव के लेखक। ये कौशिक गोत्रीय कनकसभापति के पुत्र और यज्ञ नारायण के पौत्र थे। इनके नाटक मदनमञ्जरीमहोत्सव का

राजा अच्युत (१५१७-१६१४) के दरवार में अभिनय किया गया था। तंजौर जिले का विष्णुपुरम् इनका निवास स्थान था।

विल्हण– (ना.का.) १३वीं शताब्दी के मध्य प्रदेश के कवि। इनका लिखा कर्णसुन्दरी (दे.) नाटक प्रकाशित हुआ है।

विवाह विडम्बनम्– (ना.कृ.) यह एक प्रहसन है जिसकी रचना जीवन्यायतीर्थ ने की थी। यह वृद्ध विवाह पर व्यङ्ग्य किया गया है। रतिकान्त नामक ६० वर्ष का वृद्ध विवाह के लिये उत्सुक है। उससे एक घटक कुछ रूपये ऐंठता है- २००० कन्या के पिता को देने के लिये १००० विवाह व्यय के लिये, १५०० जेवरों के लिये। इनके अतिरिक्त मुहल्ले के तरुणों का मुंह बन्द रखने के लिये भी कुछ राशि लेता है। जब वह वर-वेष में जाता है तब देखता है कि उस युवती का विवाह उसी के दिये हुये रुपयों में भास्कर नामक युवक के साथ हो चुका है। यह एक प्रकाशित रचना है।

विवाह विषयक नाट्यकृतियां– (ना.सा.) इन्दिरा परिणय (श्री शैलपुत्र वीरराघव), इन्दुमती परिणय (शिवाजी महाराज), उषा परिणय (श्रीनिवास), कनकवल्ली परिणय (श्रीनिवास शास्त्री), कल्याणी परिणय (श्रीनिवास १), कामाक्षीपरिणय, गोदापरिणय (१ श्री शैलश्रीनिवास, २ केशव नाथ), चन्द्रकलापरिणय (नृसिंह), जानकीपरिणय (१ नारायण भट्ट, २ सीताराम), द्रौपदी स्वयंवर (१ पेरीकाशीनाथ, २ नृसिंह पुत्र कृष्ण), नीला परिणय (१ धर्मराज पुत्र वेङ्कटेश्वर, २ दृघवत), पाञ्चालीपरिणय (श्री रंग के बालासूरि अद्दंकि), पार्वती स्वयंवर (शेषाद्रि), बकुलमालिनी परिणय (वीरवल्ली श्रीनिवास), भानुमती परिणय, भैमीपरिणय (१ रामशास्त्री, २ श्रीनिवास दीक्षित, ३ वेङ्कटाचार्य, ४ मण्डिकल राम शास्त्री, ५ गुरुप्रसन्न भट्टाचार्य, ६ शठकोपाचार्य), मदालसा परिणय (शेषाद्रि), मरकत वल्ली परिणय (श्रीनिवास), मीनाक्षी परिणय (अन्नाशास्त्री), रुक्मिणी परिणय (१ आत्रेयवरद, २ कवितार्किकसिंह), रुक्मिणी हरण (शेष चिन्तामणि), लक्ष्मीस्वंयवर (श्रीनिवास), लवलीपरिणय (लक्ष्मीपति), वल्लीपरिणय (१ भास्कर, २ वीरराघव, ३ स्वामिदीक्षित), विजयेन्दिरापरिणय (सुब्रह्मण्य), सीताविवाह (शेषाद्रि) सुभद्रापरिणय (१ नल्लाकवि, २ रघुनाथाचार्य), सौगन्धिकापरिणय।

(यह सूची पूर्ण नहीं है। कोष्ठक में लेखकों के नाम दिये गये हैं।)

विवेक– (ना.पा.) प्रबोधचन्द्रोदय (दे.) का यह एक प्रमुख पात्र है। मनस और निवृत्ति से इसका जन्म हुआ है। काशी पर इसका शासन था किन्तु इसके सौतेले भाई प्रवृत्ति की सन्तान महामोह ने इससे अधिकार छीन लिया। भविष्यवाणी की गई थी कि विवेक से पत्नी उपनिषद् में जो सन्तान होगी वह महामोह को पराजित कर पुनः सत्ता प्राप्त करेगी। दोनों पक्षों में लम्बा संघर्ष चलता है। महामोह और उसके पक्ष के लोगों का प्रयत्न है कि विवेक और उपनिषद् मिल न सकें जबकि विवेक के पक्ष के पात्र दोनों को मिलाने के लिये उद्यमशील हैं। अन्त में विवेक का सम्मिलन उपनिषद् से हो जाता है जिससे प्रबोध नामक पुत्र और विद्या नामक पुत्री का जन्म होता है। दोनों के सहयोग

से विवेक पुनः सत्ता प्राप्त कर लेता है और महामोह की समाप्ति हो जाती है।

विवेकचन्द्र– (ना.पा.) मोहराज पराजय (दे.) का प्रमुख पात्र। यह जनमनोवृत्ति प्रदेश का शासक है। मोहराज से पराजित होकर पत्नी शान्ति और पुत्री कृपासुन्दरी के साथ छिप कर निकल जाता है। हेमचन्द्र के आश्रम में पहुंचकर योगशास्त्र की शिक्षा लेकर उनके स्तोत्रों के प्रभाव से तिरस्करिणी का प्रभाव प्राप्त कर इन्होंने मोहराज के रहस्य जाने और उन पर विजय प्राप्त की।

विवेकचन्द्रोदय– (ना.कृ.) यह शिव (दे.) का लिखा प्रतीक नाटक है। इसका उल्लेख एई. गफ ने एन्शेण्ट संस्कृत लिटरेचर में किया है। इस कृति का उल्लेख गफ के प्राचीन संस्कृत साहित्य के अभिलेख में सं. १०६ पर किया गया है।

विवेकमिहिरम्– (ना.कृ.) हरियज्वा लिखित ५ अंकों का प्रतीक नाटक। मोहराज की राजसभा में कामक्रोधादि विकार अपना महत्व स्थापित करते हैं। आचार्य की आज्ञा से विवेक मोहराज पर आक्रमण करता है। भक्ति, श्रृद्धा, धृति, शम इत्यादि विवेक का साथ देते हैं। महामोह पराजित होता है और आचार्य के सामने विवेक इत्यादि नतमस्तक होते हैं।

इस प्रतीक नाटक का उद्देश्य वेदान्त के गहन सिद्धान्त को सरल भाषा में समझाना है। नटी भी संस्कृत बोलती है। इसमें प्रहसन का तत्व भी शामिल कर दिया गया है।

विवेक विजय– (ना.कृ.) यह एक प्रतीक नाटक है जिसकी रचना रामानुज (२) ने की थी। इस नाटक का संकलन मैन्युस्क्रिप्ट अनुभाग ओरियण्टल लायब्रेरी मद्रास के विवरणात्मक खण्ड सं. ८५२१ पर किया गया है।

विवेकानन्द चरितम्– (ना.कृ.) जीवन्यायतीर्थ लिखित तीन अंकों का नाटक। विवेकानन्द का जीवन एवं कार्यकलाप इस नाटक की नाट्यवस्तु है। इसका प्रकाशन विवेकानन्दशतदीपायन में हुआ है।

विवेकानन्दविजयम्– (ना.कृ.) यह १० अंकों का महानाटक है। इसकी रचना विवेकानन्द शिलास्मारक समिति के तत्वावधान में श्रीधर भास्कर वर्णेकर ने की थी। इसमें विवेकानन्द द्वारा अत्याचारियों से एक विधवा का छुटकारा, एक अन्धे को मार्ग दर्शन, रामकृष्ण दर्शन का अनुशीलन, मूर्तिपूजा पर शास्त्रार्थ, कन्याकुमारी में श्रीपाद शिला पर समाधि तथा उससे व्युत्थान, अमरीका प्रवास इत्यादि विषयों को नाटकीकृत किया गया है। इसका प्रकाशन विवेकानन्द स्मारक समिति की ओर से मद्रास से क्रिया जा चुका है।

विशाखदत्त– (ना.का.) मुद्राराक्षस (दे.) नाटक के लेखक। मुद्राराक्षस संस्कृत के प्रतिष्ठित नाटकों में एक है और उसका लेखक विश्व साहित्य में एक प्ररिद्ध व्यक्ति है। किन्तु उसके स्थितिकाल के विषय में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। भरत

वाक्य में राजा चन्द्रगुप्त की कल्याण कामना की गई है। इससे ज्ञात होता है कि चन्द्रगुप्त के समय में ही इनकी सत्ता रही होगी। काशी प्रसाद जायसवाल, कोनो, वी.ए. स्मिथ की सम्मति है कि ये चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के राज्यकाल में हुये थे। इसी प्रकार हिलब्राण्ड और टानी इन्हें ४१० के आसपास का मानते हैं। कहीं कहीं चन्द्रगुप्त के स्थान पर अवन्तिवर्मा भी पाठ पाया जाता है। अवन्तिवर्मा महाराज हर्ष के समय में मौखरी राजा थे अथवा नवीं शताब्दी के काश्मीर में भी अवन्तिवर्मा नाम के एक राजा हुये थे। इस प्रकार इनका समय ७वीं से नवीं शताब्दी तक पहुँच जाता है। के.एच. ध्रुव, तेलंग, कीथ इसी मत के हैं। निश्चय रूप से केवल इतना ही कहा जा सकता है कि इनका समय दसवीं शताब्दी से पहले का है क्योंकि इनका प्रथम उल्लेख १०वीं शताब्दी की रचना दशरूपकम् में पाया जाता है। भरतवाक्य में पद्य में दन्तिवर्मा भी एक पाठ मिलता है जो ८वीं शताब्दी के पल्लव राज का सूचक है।

इनके नाम पर 'देवी चन्द्रगुप्तम्' नामक एक अन्य नाटक का भी उल्लेख पाया जाता है। इस प्रकार इन्होंने अपने दो नाटकों का नायक चन्द्रगुप्त को बनाया है। इससे चन्द्रगुप्त से इनका विशेष सम्बन्ध सिद्ध होता है। मुद्राराक्षस की प्रविधि और अभिव्यञ्जना पद्धति भी कालिदासादि तत्कालीन नाटककारों की कृतियों से मेल खाती है। देवी चन्द्रगुप्तम् में एक ऐसे समय के कथानक को लिया गया है जब शक पूर्णतः भारत में प्रवेश नहीं कर सके थे। इन सब तथ्यों से सिद्ध होता है कि इनका समय ५वीं शताब्दी के आस पास ही था।

विल्फोर्ड ने एक प्रति में प्रस्तावना में ऐसा पाठ पाया है जिसके अनुसार इनके पितामह का नाम वटेश्वरदत्त और पिता का नाम महाराज प्रथु था तथा ये गोदावरी के तट पर रहते थे। किन्तु आजकल पुस्तकों में पिता का नाम भास्करदत्त पाया जाता है।

इनकी मुद्राराक्षस नामक केवल एक कृति पूर्ण रूप से उपलब्ध होती है। दो अन्य कृतियों का उल्लेख मिलत है– 'देवी चन्द्रगुप्तम्' और 'अभिसारिकावञ्चितकम्' इन कृतियों से उद्धरण पाये जाते हैं। वल्लभ देव की सुभाषितावली में इनके नाम पर कुछ पद्य दिये हुये हैं इससे सिद्ध होता है कि इन्होंने कतिपय अन्य नाटक भी लिखे होंगे। कहीं कहीं विशाखदत्त भरत वाक्य में चन्द्रगुप्त के स्थान पर अवन्ति वर्म, रन्तिवर्मा, रन्तवर्मा इत्यादि पाठ भी प्रकाश में आये हैं। ज्ञात होता है यह नाटक अतीत में बहुत प्रतिष्ठित रहा है और इसका अभिनय भी पर्याप्त मात्रा में किया जाता होंगा। इसीलिये विभिन्न अवसरों पर अपने अपने राजा लोगों का नाम जोड़कर इसका अभिनय किया जाता होगा। यदि यह विचार ठीक है तो इसका निष्कर्ष यही निकलता है कि इनमें सबसे प्राचीन राजा चन्द्रगुप्त के समय में ही इनकी रचना हुई होगी। किन्तु भरत वाक्य से इतना तो प्रमाणित होता ही है कि कवि इनमें किसी एक राजा के आश्रय में ही रहता होगा। फिर भी किसी राजा के दरवारियों में उसका उल्लेख न होना आश्चर्यजनक है। प्रो. जैकोबी ने प्रस्तावना

में चन्द्रग्रहण के विवरण से इनका अवन्तिवर्मा के यहां काश्मीर में होना अधिक सम्भव माना है क्योंकि वुध की चन्द्रग्रहण के प्रतिबन्धक होने की स्थिति ८६० ई. में आई थी। किन्तु यह भी कोई पुष्कल प्रमाण नहीं कहा जा सकता। सम्भव है जिसने चन्द्रगुप्त के स्थान पर अवन्तिवर्मा पाठ किया हो वह कोई गणितज्ञ ज्योतिषी रहा हो और उसने उस समय की ग्रहस्थिति का वर्णन चन्द्र और केतु (चन्द्रगुप्त और मलयकेतु) के श्लेष के आधार पर कर दिया हो। जेकोवी की इस मान्यता में भी कोई प्रमाण नहीं कि इस अवसर पर अवन्तिवर्मा के मन्त्री शूर ने इसका अभिनय कराया था। इसके प्रतिकूल यह अधिक प्रामाणिक है कि विशाखदत्त के दो नाटकों में मगध को ही कार्यक्षेत्र और चन्द्रगुप्त को ही नायक चुना गया। गौडाङ्गनाओं के केश प्रसाधन (मु.रा. ५.२३) का वर्णन भी इन्हें पूर्व देश की रीति नीति से अधिक परिचित सिद्ध करता है। वहां के इतिहास और तत्कालीन स्थिति से भी इनका अधिक परिचय ज्ञात होता है। किन्तु यह भी कोई पुष्ट प्रमाण नहीं है। यह भी हो सकता है कि अपने पैत्रक स्थान को छोड़कर ये बहुत समय तक पूर्व प्रदेश में रहे हों या इस प्रकार का ज्ञान अध्ययन के वलपर प्राप्त किया हो। बाबा, पिता और स्वयं अपना दत्तान्त नाम भी प्रदेश पर प्रामाणिक प्रकश नहीं डालते। पूर्व के अतिरिक्त अन्यत्र भी इस प्रकार के नाम प्राप्त होते हैं। आशय यह है इनके व्यक्तिगत जीवन के विषय में निश्चयात्मक रूप से कुछ कहीं कहा जा सकता।

इनके व्यक्तित्व के विषय में भले ही कुछ न कहा जा सके किन्तु इनके नाटकों से इनके शास्त्रीय ज्ञान और इनकी सामाजिक विचारधारा का पता अवश्य चलता है। इन्हें ज्योतिष् तर्कशास्त्र और नाट्य शास्त्र का विशेष ज्ञान था। इन्होंने कौटिल्य के अर्थशास्त्र का भली भांति परिशीलन किया था और कूटनीति को गहराई से समझने की चेष्टा की थी। मगध के इतिहास में इनकी विशेष रुचि थी और उसके साथ सीमावर्ती राज्यों के इतिहास की इनकी समझ बहुत गहरी थी। इनका धार्मिक दृष्टिकोण उदार था, स्वयं ब्राह्मण धर्म में आस्था रखते हुये भी दूसरे धर्मों को भी उचित सम्मान देते थे। समाजिक रीति नीति को ये बहुत अच्छी तरह समझते थे। यही कारण है कि शृङ्गारिक वातावरण का चित्रण न होते हुये भी इस नाटक ने सर्वदा जनमानस को अपनी ओर आकृष्ट किया है।

विश्वनगर– (ना.पा.) धूर्त समागम में गुरु, जो शिष्य दुराचार की प्रेयसी अनंगसेना पर अपना अधिकार जमाना चाहता है और इसके लिये निर्णय कराने के निमित्त जिस असज्जाति ब्राह्मण के पास जाता है वह ब्राह्मण उसे अपना बना लेता है तथा गुरु और शिष्य दोनों में किसी को कुछ नहीं मिलता।

(१) **विश्वनाथ–** (ना.का.) ये त्रिमलदेव के पुत्र थे और बचपन में गोदावरी के तट पर रहते थे। वहीं इन्होंने मृगाङ्कलेखा (दे.) नाटिका की रचना की थी।

(२) **विश्वनाथ–** (ना.का.) ये १३वीं १४वीं शताब्दी में वारंगल में प्रताप रुद्रदेव के आश्रय में रहते थे। बचपन में अनाथ के रूप में इनका परित्याग कर दिया गया था।

और इनकी शिक्षा मामा के संरक्षण में हुई थी। वारंगल दरवार में इन्होंने पण्डित समाज के समक्ष सौगन्धिकाहरण (दे.) नामक एक नाटक प्रस्तुत किया था।

(३) **विश्वनाथ**- (ना.का.) ये महादेव के पुत्र एवं ढुंढिराज के शिष्य थे। इन्होंने शृङ्गारवाटिका (अथवा शृङ्गारवापिका नामक एक नाटिका की रचना की थी जिसमें अवन्ति के राजा चन्द्रकेलि और चम्पावती की राजकुमारी कान्तिमती के विवाह का वर्णन किया गया है। इन्हें विश्वनाथभट्ट नाम से भी याद किया जाता है।

(४) **विश्वनाथ**- (ना.का.) श्रङ्गारमञ्जरी भाण के लेखक (दे. शृङ्गार मञ्जरी १)

विश्वनाथन् टी.ए.- (ना.का.) वल्ली परिणय के लेखक (दे. वल्ली परिणय ४)

विश्वनाथ निर्दिष्ट नाटक- (ना.सा.) विश्वनाथ कविराज ने साहित्यदर्पण में उदाहरण रूप में कतिपय नाटकों का उल्लेख किया है जिनमें अनेक नाममात्र शेष रह गये हैं। उन नाटकों की संक्षिप्त सूची इस प्रकार है- उदात्तराघव, कर्णपराक्रमम्, कुन्दमाला, कुसुमशेखरविजयम्, क्रीडारसातलम्, छलितरामम्, जानकीराघवम्, देवीमहादेवम्, धूर्तचरितम्, नर्मवती, पुष्पभूषितम्, बालचरितम्, बिन्दुमती, मायाकापालिकम्, मुक्तावली, मेनकाहितम्, ययातिविजयम्, राघवाभ्युदयम्, रामाभिनन्दम्, रामाभ्युदयम्, रैवतमदनिका, लटकमेलकम्, लीलामधुकरम्, विलासवती, शर्मिष्ठाययाति, शृङ्गारतिलकम्, समुद्रमन्थनम्, सतम्भितरम्भम्, हयग्रीववधः।

विश्वनाथ सत्यनारायण- (ना.का.) इनका जन्म आन्ध्रप्रदेश के नन्दमूरुग्राम, कृष्णा जिला में हुआ ता। इन्होंने एम.ए. एवं साहित्याचार्य तक शिक्षा पाई थी। इन्हें कविसम्राट की उपाधि भी प्राप्त हुई थी। तेलुगु रचना 'रामायण कल्पवृक्ष' पर ज्ञानपीठ और एक अन्य रचना पर मद्रासविश्वविद्यालय से पुरस्कार प्राप्त हुये थे। ये राजपण्डित थे और गुण्टूर में पहले तो तेलुगुपण्डित और बाद में लेक्चरर बन गये थे। इन्हें पद्मविभूषण की उपाधि प्राप्त हुई थी। इन्होंने संस्कृत में दो नाटक लिखे थे- गुप्तपाशुपतम् और अमृतशर्मिष्ठम्। तेलुगु में इन्होंने १०० से अधिक पुस्तकें लिखी थीं।

विश्वनाथसिंह- (ना.का.) १९वीं शती के मध्य में वघेलखण्ड के निवासी थे। इनके 'आनन्द रघुनन्दन' नामक हिन्दी गीति नाट्य का संस्कृत रुपान्तरण किया गया था। सम्भवतः रुपान्तरण भी इन्हीं का किया हुआ है। ये रीवां के राजा थे।

विश्वान्तरजातक- (ना.कृ.) दे. लोकानन्द।

विश्वरूपकृष्णभट्ट- (ना.का.) मुरारि विजय नाटक के लेखक (दे. मुरारि विजय।)

विश्वविलास नाटकम्- (ना.कृ.) तमिलनाडु के अन्तर्गत तंजौर राजघराने में आश्रित कवियों और ग्रन्थकारों द्वारा रचित साहित्य में इस नाटक का भी नाम है।

विश्ववीरव्रतम्- (ना.कृ.) नारायण शास्त्री १ लिखित ८ अंकों का नाटक।

(१) **विश्वामित्र**- (मन्त्रकर्ता एवं संवादसूक्त के नेता) ऋग्वेद के पारिवारिक मण्डलों

में तृतीय मण्डल इन्हीं के परिवार की रचना है। प्रसिद्ध गायत्रीमन्त्र के ऋषि ये ही हैं। तृतीय मण्डल में नदी सूक्त ३.३३ में इनका और नदियों का संवाद दिया गया है। विश्वामित्र और वशिष्ठ का पारस्परिक संघर्ष साहित्य जगत् में प्रसिद्ध है। वशिष्ठ सप्तम (पारिवारिक) मण्डल के प्रणेता हैं। विश्वामित्र भरतवंशियों के सहयोगी थे जबकि वशिष्ठ तृत्सुओं के सहायक थे। भरतवंशियों को व्यास और शतलज पार करने में कठिनाई हो रही थी तब नदी सूक्त के द्वारा जलों को शान्त कर भरतों को पार करने योग्य बना दिया। किन्तु इस युद्ध में वशिष्ठ से सहायता प्राप्त तृत्सुओं की विजय हुई।

(२) **विश्वामित्र-** (ना.पा.) रामकाव्य में इनका महत्वपूर्ण स्थान है। यज्ञ रक्षा के लिये राम-लक्ष्मण को ले जाना, उन्हें दिव्यास्त्रों की शिक्षा देना, जनकपुर धनुर्यज्ञ में राम का साथ देना ये सब सुप्रतिष्ठित कार्य हैं। राम विषयक अनेक नाटकों में इनका उपादान हुआ है-

(अ) **महावीर चरित-** में विश्वामित्र के आश्रम में ही संयोगवश सीता और उर्मिला आ जाती हैं जहां यज्ञरक्षा के लिये राम और लक्ष्मण मौजूद हैं। दोनों युग्मों में परस्पर प्रेम उत्पन्न हो जाता है जो धनुष् भंग के माध्यम से विवाह में परिणत होता है। यहां विश्वामित्र ने राम को दिव्यास्त्र प्रदान किये हैं। इस नाटक में परशुराम के साथ भी वशिष्ठ और विश्वामित्र दिखलाये गये हैं। लंका विजय के बाद जब राम अयोध्या को लौट आते हैं तब विश्वामित्र ही उनका अभिषेक करते हैं।

(आ) **अनर्घराघव-** में ये राम लक्ष्मण को दशरथ से मांगकर यज्ञ विघ्नों की समाप्ति के बाद उन्हें जनकपुर ले जाते हैं जहां धनुष तोड़कर राम सीता से विवाह करते हैं।

इसी प्रकार प्रसन्नराघव इत्यादि नाटकों में भी प्रसंगानुकूल उपादान किया गया है।

(३) **विश्वामित्र-** (ना.पा.) हरिश्चन्द्र विषयक चण्डकौशिक इत्यादि नाटकों में यथावसर इनका उपादान हुआ है।

विश्वेश्वर- (ना.का.) ये पटिया ग्राम जि. अल्मोड़ा के लक्ष्मीधर के पुत्र और उमापति के भाई थे। ये १८वीं शताब्दी के प्रारम्भ में उत्पन्न हुये थे। इन्होंने केवल १० वर्ष की आयु में रचना करनी प्रारम्भ कर दी थी। कहा जाता है इस प्रकार के प्रतिभाशाली लोगों का जीवन लम्बा नहीं होता। इनका देहान्त केवल ३४ वर्ष की आयु में हो गया था।

इनकी रचनायें बहुमुखी हैं- बनारस से आर्यासप्तशती नामक इनकी जो रचना प्रकाशित हुई है वह वस्तुतः शृङ्गार प्रधान रचना है, कवीन्द्राभरण चित्रकाव्य है जिसको चार अध्यायों में विभाजित किया गया है। प्रगीत मुक्तकों में वक्षोजशतक, आर्याशतक,

होलिकाशतक, लक्ष्मीविलास, षड्ऋतुवर्णन, रोमावली शतक इन रचनाओं का उल्लेख किया जाता है। मन्दारमञ्जरी नामक एक गद्य काव्य भी प्राप्त होता है। स्वतन्त्र ललित साहित्य के अतिरिक्त इन्होंने नैषध और रसमंजरी की व्याख्यायें भी लिखी हैं।

काव्यशास्त्र इनका मुख्य विषय था। जिसपर अलंकारकौस्तुभ, अलंकारकर्णाभरण, अलंकारकुलप्रदीप, अलंकारमुक्तावली, काव्यलीला, काव्यरत्न रसचन्द्रिका आदि ग्रन्थों की रचना की।

इनका नाट्य साहित्य भी महत्वपूर्ण और परिमाण में पर्याप्त विस्तृत है जिसमें नाट्य के एकाधिक प्रकारों का उपयोग किया गया है। रुक्मिणीपरिणय नाटक है, नवमालिका नाटिका है और शृङ्गारमञ्जरी प्राकृत में लिखा एक सट्टक है।

वस्तुतः इस नाम के कई कवि हुये हैं, चमत्कारचन्द्रिका के लेखक, साहित्यसार के लेखक, चन्द्रालोक के टीकाकार ये सभी लेखक भिन्न भिन्न व्यक्तित्व हैं।

विश्वेश्वरदयाल– (ना.का.) कृष्णलीलामृतम् नाटक के लेखक। समय २०वीं शताब्दी।

विश्वेश्वर विद्याभूषण– (ना.का.) ये कृष्णकान्त कविरत्न एवं कुसुमकामिनी देवी से उत्पन्न हुये थे। इनका निवासस्थान चट्टल ग्राम (बंगाल) था जहां इन्होंने शिक्षा पाई थी और वहीं अध्यापक हो गये थे। प्राध्यापक के पद से ही सेवानिवृत्त हुये थे और बाद में हुगली में रहने लगे थे। साहित्यकार होने के अतिरिक्त ये स्वयं अभिनय में भी रुचि लेते थे। इन्होंने गद्य और पद्य दोनों प्रकार के काव्यों की रचना की तथा गीतिकाव्य भी लिखा। बंगला में भी इनका साहित्य पाया जाता है। इनके नाम पर १५ नाटक बतलाये जाते हैं– अरुणाचलकेतनम्, उत्तरकुरुक्षेत्रम्, उमातपस्विनी, ओङ्कारनाथमंगलम्, काशीकोशलेशः, चाणक्यविजयम्, दस्युरत्नाकरः, द्वारावती, प्रबुद्धहिमालय; भरतमेलनम्, मातृपूजनम्, राजर्षिभरतः राजर्षिसुरथः, वाल्मीकि संवर्धनम्, और विष्णु माया।

इनके अनेक नाटकों का आकाश वाणी से प्रसारण भी किया गया।

वी.के. थम्पी– (ना.का.) राजपूत मुस्लिम युग के ऐतिहासिक रोमैण्टिक विषयों पर लेखक। इनके तीन नाटक बतलाये जाते हैं– धर्मस्य सूक्ष्मा गतिः, प्रतिक्रिया और वनज्योत्सना।

विष्टव्धचापलम्– (ना.कृ.) नारायण शास्त्री १ लिखित ५ अंकों का नाटक।

विष्णु– (ना.पा.) समुद्रमन्थन (दे.) समवकार में समुद्रमन्थन से जो लक्ष्मी उत्पन्न हुई वह विष्णु पर अनुरक्त हो गई। मञ्च पर विष्णु के चित्र को वह अपनी दो सहेलियों धृति और लज्जा के साथ तन्मयता पूर्वक देख रही है। बाद में विष्णु का प्रवेश होता है। लक्ष्मी विष्णु को प्राप्त हो जाती है।

विष्णुदत्तत्रिपाठी– (ना.का.) ये मध्यप्रदेश के २०वीं शताब्दी के कवि हैं। इनके

लिखे दो नाटक बतलाये जाते हैं- अनसूयाचरितम् (दे.) और विद्योत्तमम् (दे.)।

विष्णुपद भट्टाचार्य- (ना.क्रा.) ये २०वीं शताब्दी के बंगाली कवि हैं। इनके लिखे ५ नाटक बतलाये जाते हैं- अनकूलगलहस्तकम्, कपालकुण्डला, काञ्चनकञ्चुकीयम्, धनञ्जयपुरञ्जयम् और मणिकाञ्चनसमन्वय। (परिचय यथा स्थान देखिये।)

विष्णुपुरी- (ना.क्रा.) दे. वैकुण्ठपुरी।

विष्णुभक्ति- (ना.पा.) प्रबोध चन्द्रोदयनाटक का एक पात्र। यह उच्च गुणों वाली एक उदार महिला है जो सत्पात्रों की सदैव रक्षा करती है। धर्म और श्रद्धा को अनेक कष्टों से उवारती है। यदि वह सहायता न करती तो महाभैरवी धर्म और श्रृद्धा दोनों को निगल गई होती। विवेक को महामोह से युद्ध करने की प्रेरणा वही देती है और वही उचित अवसर का निर्देश करती है। महामोह का विनाश उसी की प्रेरणा से होता है। उसकी पुत्री शान्ति विवेक और उपनिषद् का मेल कराकर विद्या और प्रबोध के जन्म में कारण बनती है। वह वेदान्तविद्या के साथ सभी कार्यों की सूत्रधारिणी है इसमें यही प्रमाण है कि अन्त में भरत वाक्य उसी का है और अन्त में फलप्राप्ति की प्रशंसा वही करती है।

विष्णुमाया- (ना.कृ.) विश्वेश्वर विद्या भूषण लिखित नाटक।

वीणावती- (ना.कृ.) शारदातनय ने भावप्रकाशन में भाणिका के उदाहरण में इस रचना का उल्लेख किया है। अब यह रचना प्राप्त नहीं होती। विश्वनाथ ने विलासिका नाम के एक नये उपरूपक की कल्पना की है और कहा है कि कुछ लोग उसे लासिका कहते हैं और कुछ लोग उसका समावेश दुर्मल्लिका में करते हैं। किन्तु कुछ लोगों का विचार है कि भाणिका और विलासिका लगभग एक से ही उपरूपक हैं। विश्वनाथ ने विलासिका का कोई उदाहरण नहीं दिया है। भाणिका के उदाहरण में कामदत्ता का उल्लेख किया है। यदि संगति बैठानी हो तो विश्वनाथ के मत में विलासिका का उदाहरण वीणावती माना जा सकता है।

वीणावासवदत्ता- (ना.कृ.) दे. वत्सराज चरित।

वीरधर्म दर्पणम्- (ना.कृ.) परशुराम नारायण पाटणकर (दे.) लिखित ७ अंकों का नाटक। महाभारत युद्ध से सम्बन्धित इस नाटक में वीर रस प्रधान होकर आया है। शृङ्गार रस का सर्वथा अभाव है। भीष्म द्वारा शरशय्या ग्रहण करने से लेकर जयद्रथ वध तक की घटनाओं का इसमें उपादान हुआ है। इसकी रचना १९०५ में और प्रकाशन १९०७ में वनारस से हो गया था।

वीरधवल- (ना.पा.) हम्मीरमदमर्दन का एक पात्र यह गुजरात का राजा है जिसका मन्त्री वास्तुपाल है। हम्मीरमदमर्दन की प्रमुख घटनायें वास्तुपाल के नियन्त्रण में चलती है और वीरधवल के प्रतिनिधि के रूप में वास्तुपाल कार्यों को गति देता है।

वीरपृथ्वीराजम्- (ना.कृ.) मथुरा प्रसाद दीक्षित लिखित ६ अंकों का नाटक। जयचन्द्र की दुरभिसन्धि और पृथ्वीराज की उदात्तता तथा अन्त में पृथ्वीराज द्वारा मु. गोरी का वध और आत्महत्या नाटक के विषय हैं। इसमें रंगमञ्च पर धनुर्विद्या के कर्तव दिखलाये गये हैं। प्रथम अभिनय सोलन में दुर्गा भगवती के महोत्सव पर सम्पन्न हुआ था। इसकी रचना १९४९ में हुई थी।

वीरभद्रविजय- (ना.कृ.) यह एक डिम है जिसकी रचना अरुण गिरिनाथ II (कुमार डिण्डिम या डिण्डिम IV) ने १६वीं शताब्दी में की थी। इसमें दक्षयज्ञ विध्वंस के लिये वीरभद्र द्वारा विभिन्न साधनों के उत्पादन का वर्णन किया गया है। भूपतिराय पुरम् के उत्सव में इसका अभिनय किया गया था। मद्रास की ओरियण्टल लायब्रेरी के त्रैवार्षिक पाण्डुलिपि सूचीपत्र सं. II २७६ पर इसका उल्लेख किया गया है।

वीरभा- (ना.कृ.) लीलाराव दयाल (दे.) लिखित एकाङ्किका। इसमें वीरभा नामक एक ऐसी युवती का चित्रण किया गया है जो यौवनजन्य सुख सुविधाओं को छोड़कर सत्यागृह आन्दोलन में कूद पड़ी और आन्दोलन की नेत्री बन गई।

(१) **वीरराघव-** (ना.का.) ये कौण्डिन्य गोत्रीय ईश्वर और कामाक्षी के पुत्र थे। ये १९वीं शताब्दी में सहजीमहराजपुरुम् (तिरुवंशीनल्लूर) में रहते थे और इन्हें तंजौर के राजा शिवेन्द्र शिवजी का आश्रय प्राप्त था। इनके दो नाटक प्रसिद्ध हैं- वल्ली परिणय (दे.) और रामराज्याभिषेक (दे.)।

(२) **वीरराघव-** (ना.का.) ये श्रीशैल के पुत्र थे। इनका लिखा एक नाटक इन्दिरा परिणय (दे.) प्राप्त होता है। ई. हुल्ट्ज (E. Hultysen) द्वारा १९०५ में पाण्डुलिपियों की जो खोज रिपोर्ट प्रकाशित हुई थी जो मद्रास पुस्तकालय में सुरक्षित है उसकी सं. III १७४९ IX पर इसका संकलन किया गया है।

(३) **वीरराघव-** (ना.का.) ये वाधुल गोत्रीय नृसिंह के पुत्र थे। इनका जन्म १८वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में तमिलनाडु के चिंगलपुट जिला में हुआ था। इनकी कई अन्य रचनाओं के साथ मलयजा परिणय नामक एक नाटक भी बतलाया जाता है। यह नाटक तथा इनकी अन्य कृतियां अभी तक उपलब्ध नहीं हुई हैं। इन्हीं के नाम पर मलयजा कल्याण नाम की एक नाटिका भी प्राप्त होती है जिसका प्रकाशन जवलपुर से बाबूलाल शुक्ल ने करा दिया था। ज्ञात होता है मलयजा कल्याण का ही नामान्तर मलयजा परिणय भी है।

वीरराघवाचार्य- (ना.का.) पुरी के निवासी थे। इनका लिखा नीलाद्रिचन्द्रोदय नाटक काञ्चीवरम से प्रकाशित हुआ था। नाटक के आमुख में उड़ीसा के मुकुलदेव का उल्लेख किया गया है इससे इनका सम्बन्ध सिद्ध होता है।

वीरराघवीय- (ना.कृ.) प्रधानिवेङ्कप्पभूपति लिखित एक व्यायोग। यह मैसूर

पुस्तकालय में संस्कृत पाण्डुलिपि अनुभाग सं. २८८ में प्राप्य है। इसमें रामद्वारा विराध, खरदूषण त्रिशिरा का वध दिखलाया गया है। नाटकोचित सरल भाषा और संगीतमयी शैली इसकी विशेषताये हैं।

वीरविजय– (ना.कृ.) यह ईहामृग है जिसकी रचना विजयनगरम् के कृष्णामिश्र ने की थी। कोनों ने इस नाट्यकृति का उल्लेख अपनी नाट्यविषयक पुस्तक में किया है।

वीरवैश्वानरम्– (ना.कृ.) नारायणशास्त्री लिखित ८ अंकों का नाटक।

वीरसौभद्रम्– (ना.कृ.) जग्गू श्रीबकुल भूषण (दे.) लिखित नाटक।

वीरानन्द– (ना.कृ.) यह एक अप्राप्त प्रकरण है जिसका उल्लेख शिंग भूपाल ने रसार्णव सुधाकर में किया है।

वीरेन्द्रकुमार भट्टाचार्य– (ना.का.) ये बंगाली कवि एवं नाटककार हैं। इनका जन्म सिलहट (अब बंगलादेश) में १९१७ में हुआ था। ये दर्शन के विद्वान थे और कलकत्ता विश्वविद्यालय से १९४८ में डी लिट् की उपाधि प्राप्त की थी। ये प्रारम्भ में प्रोफेसर के पद पर कार्य करते रहे और बाद में प्रशासकीय सेवा में चले गये। इनका रचनाकार्य बहुत देर से ५० वर्ष की आयु के बाद प्रारम्भ हुआ। इनकी रचनायें संस्कृत, बंगला और अंग्रेजी तीनों में है। ओमर खैयाम की रुबाइयों का संस्कृत में अनुवाद भी इनकी रचनाओं में सम्मिलित है।

इनका संस्कृतनाटक साहित्य भी अत्यन्त समृद्ध है। इस दिशा में इनकी रचनायें हैं– कविकालिदास, कालिदासचरितम्, गीतगौराङ्ग, चार्वाकताण्डव, झंझावृत्त, मर्जिनाचातुर्यम्, मेघदौत्य, लक्षणव्यायोग, वेष्टनव्यायोग, शरणार्थिसंवाद, शार्दूलशकटम्, शूर्पणखाभिसार सिद्धार्थचरित और सुप्रभा स्वयंवर।

वीसलदेव– (ना.का.) दे. विग्रहराज।

वृत्तशंसिच्छत्रम्– (ना.कृ.) यह लीलाराव दयाल का लिखा रूपक है। १८ वर्ष की मीरा का विवाह २८ वर्ष के व्यक्ति से हो जाता है जो २६ वर्ष की सास पर डोरे डालता है और उससे फटकार खाकर घर से निकल जाता है। एक रेल दुर्घटना में उसकी स्मृति जाती रहती है। वह त्यागी बाबा बनकर घूमने लगता है। संयोग से एक विधवा को डूबने से बचाता है और उस पर आसक्त हो जाता है। वह विधवा नहीं उसकी पत्नी ही है। जब त्यागी बाबा उसके घर पर विवाह का प्रस्ताव लेकर जाता है तब उसकी सास पहिंचान कर उनका पुनर्मिलन करा देती है।

वृन्दा– (ना.पा.) गोपालकेलिचन्द्रिका की एक पात्र। वृन्दा (लक्ष्मी) राधा और कृष्ण के तादात्म्य का रहस्यात्मक प्रतिपादन करती है। कृष्ण परंमपुरुष हैं और राधा उनकी शक्तिरुपा हैं।

वृषभानुजा– (ना.कृ.) मथुरादास (दे.) लिखित नाटिका। इसमें राधा और कृष्ण के

प्रेम का वर्णन किया गया है। इसमें ईर्ष्या विप्रलम्भ शृङ्गार प्रधान है। कृष्ण के पास एक नारी का चित्र है जिससे राधा के मन में ईर्ष्या भाव जागृत होता है। किन्तु अन्त में सिद्ध होता है कि वह चित्र राधा का ही है। वृषभानु राधा के पिता थे। इसीलिये नाटिका का नाम वृषभानुजा रक्खा गया है। इसका प्रकाशन पण्डित, खण्ड तीसरे चौथे में और काव्य माला बाम्बे संस्करण खण्ड ४६ में सन् १८९५ में हुआ था।

(१) **वेङ्कटकृष्ण-** (ना.का.) ये वधूलगोत्रीय वेङ्कटाद्रि और मङ्गलाम्बा से १७वीं शताब्दी में उत्पन्न हुये थे। इन्होंने महाकाव्य कई छोटे काव्य और चम्पू काव्यों की रचना की। इनकी रचनाओं का मुख्य विषय रामकथा है। इनके अतिरिक्त इन्होंने कुशलवविजय नाटक भी लिखा जिसमें राम पर उनके पुत्रों कुश और लव की विजय और अन्त में निर्वासित सीता की पुनः प्राप्ति दिखलाई गई है। ट्रावन्कोर पुस्तकालय के पाण्डुलिपि अनुभाग सं. ७६ पर इसका उल्लेख किया गया है। इन्हें वेङ्कटेश नाम से भी याद किया जाता है।

(२) **वेङ्कटकृष्ण-** (ना.का.) ये विलास भूषण (दे.) भाण के लेखक हैं। जिसका संकलन मद्रास की ओरियण्टल लायब्रेरी में पाण्डुलिपियों में किया गया है।

वेङ्कटकृष्ण राव- (ना.का.) भक्ति चन्द्रोदय नाटक कें लेखक। समय २०वीं शताब्दी।

वेङ्कट कौण्डिन्य- (ना.का.) रसिकजनरसोल्लास (दे.) भाण के लेखक। रचनाकाल १८वीं शताब्दी।

वेङ्कटचलमय्य- (ना.का.) इनका जन्म पूर्वी गोदावरी जिले में मुक्तेश्वर के निकट मागाम नामक स्थान पर हुआ था। इन्होंने निजाम राज्य के इधर उधर अनेक स्थानों पर शिक्षा पाई थी। ये अनेक भाषाओं के जानकार थे। इन्होंने कतिपय छोटे छोटे काव्य लिखे थे। साथ ही इनकी रचनाओं में गोपीचन्द्र चरित भी सम्मिलित है।

वेङ्कटनाथ- (ना.का.) ये अनन्त सूरि के पुत्र थे और काञ्ची के निकट तुप्पल में पैदा हुआ थे। कहा जाता है कि ये भगवान् वेङ्कटेश के घण्टा का अवतार थे। इनका जन्म १२६८ में हुआ था। इन्होंने अपने मामा आत्रेय रामानुज से शिक्षा पाई थी। इनको कवि तार्किक सिंह, वेदान्त देशिक एवं सर्वतन्त्र स्वतन्त्र की उपाधियां मिली थीं। ये कविता, शास्त्रार्थ, वेदान्त में निष्णात थे ही सभी शास्त्रों पर इनका अधिकार था। इनकी लोकोत्तर शक्तियों के विषय में अनेक किंवदन्तियां प्रसिद्ध हो गई हैं। ये वेदान्त देशिक के नाम से विशेष रूप से जाने जाते हैं। ये श्री वैष्णव सम्प्रदाय के प्रवर्तक थे और इसीलिये दक्षिण के प्रायः सभी विष्णु मन्दिरों में इनकी मूर्ति की पूजा की जाती है।

ये जीवनभर अविराम साहित्य साधना करते रहे इन्होंने विभिन्न विषयों में १२१ पुस्तकों की रचना की जिनमें अधिकांश विशिष्टाद्वैत विषयक हैं। इनका संकल्पसूर्योदय

(दे.) नामक एक रूपक भी है जो प्रबोध चन्द्रोदय (दे.) के आदर्श पर लिखा गया है। इनकी मृत्यु १३६९ ई. में नवम्बर मास में हुई।

वेङ्कट भाण– (ना.कृ.) पेरुसूरि (दे.) लिखित भाण। इस लेखक के दूसरे नाटक वसुमंगल (दे.) की प्रस्तावना में इस भाण का उल्लेख मात्र प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त इसके विषय में और कुछ ज्ञात नहीं है।

वेङ्कटरंगनाथ– (ना.कृ.) मञ्जुलनैषधम् (दे.) एवं नलभूमिपाल नाटक के लेखक। इनका समय १८२२ से १९०० तक है। ये विजगापट्टम के रहने वाले थे।

वेङ्कटरमणाचार्य– (ना.का.) ये कर्णाटक के २० वीं शताब्दी के कवि एवं नाटक लेखक हैं। प्रारम्भ में बंगलौर में संस्कृत महाविद्यालय के अध्यक्ष पद पर और बाद में मैसूर संस्कृत विद्यालयों के निरीक्षक पद पर कार्य किया। इनकी रचनाओं में जीवसञ्जीवनी (दे.) नामक एक नाटक भी है। इसके अतिरिक्त इन्होंने कमलाविजय नाम से टेनीसन के एक नाटक का अनुवाद भी किया था।

वेङ्कटराघव– (ना.का.) कौशिकगोत्रीय राघवनाथ के पुत्र थे तथा श्रीरंगम् में (१८४९-१९०६ के मध्य) रहते थे। ये एस.पी.जी. कालेज त्रिचनापल्ली में संस्कृत के हेड पण्डित थे। इनकी अनेक काव्यात्मक रचनायें हैं। इन्होंने मन्मथ विजय नामक एक नाटक भी लिखा था जिसका प्रकाशन बम्बई से हुआ था।

वेङ्कटराम– (ना.का.) दे. मुडुम्बई वेङ्कटराम नरसिंह आचार्य।

वेङ्कटराम सी.वी. दीक्षितार– (ना.का.) कृष्णार्जुन विजय के लेखक।

वेङ्टराम राघवन– (ना.का.) वर्तमान शताब्दी के संस्कृत के महान उन्नायकों में एक। वेंकटराम अय्यर एवं मीनाक्षी देवी से तंजौर जिले के तिरुवायूर नगर में इनका जन्म फर्वरी सन् १८०८ में हुआ तथा। भोजराज के शृङ्गारप्रकाश पर इन्होंने पी.एच.डी. की उपाधि प्राप्त की थी। मद्रास विश्वविद्यालय के संस्कृत विभागाध्यक्ष के कार्य के अतिरिक्त देश-विदेश की अनेक संस्थाओं में सम्मेलनों में अध्यक्षता की। यूरोपीय संग्रहालय में पुरातत्व से सम्बन्धित ग्रन्थों का पर्यालोचन, पाण्डुलिपियों की खोज और प्रकाशन, मद्रास संस्कृत रंगमञ्च की स्थापना अनेक पत्रपत्रिकाओं का सम्पादन इनके अन्यतम कार्य हैं। इन्हें उपाधियां प्रदान की गई थीं। जिनमें विद्वत्कवीन्द्र, सकलकला कलाप, कविकोकिल उपाधियां प्रमुख हैं। पद्मविभूषण उपाधि देकर राजकीय स्तर पर भी इन्हें सम्मानित किया गया।

इनका लिखा साहित्य अत्यन्त विस्तृत एवं बहुमुखी है जिसमें इनकी विद्वत्ता के साथ अनुसन्धानात्मक प्रतिभा प्रतिफलित होती है। इनका मुख्य विषय काव्य शास्त्र है जिस पर इन्होंने छोटी बड़ी लगभग २५ पुस्तकें लिखी हैं। लघु काव्यों की भी संख्या पर्याप्त है। इन्होंने एक महाकाव्य भी लिखा था। इनका सर्वाधिक महत्वूर्ण कार्य है न्यू

काटेलागस कैटेलागोरम का सम्पादन।

इनका नाटक साहित्य भी पर्यप्त विस्तृत है जिनमें मौलिक और अनूदित दोनों प्रकार के रूपक सम्मिलित हैं। इनका नाटक साहित्य– अनारकली, अवन्ति सुन्दरी (ओपेरा), आषाढस्य प्रथमदिवसे, कामशुद्धि, नदीपूजा (अनूदित), पुनरुन्मेष, प्रतापरुद्रविजय, महाश्वेता, रासलीला, लक्ष्मीस्वयंवर, वाल्मीकिप्रतिभा, विकटनितम्बा (ओपेरा) विज्जिका (ओपेरा), और विमुक्ति।

वेङ्कटराम शास्त्री– (ना.का.) इनका लिखा सीता कल्याणम् नाटक १९५३ में प्रकाशित कर दिया गया। (दे. सीता कल्याणम् २)

वेङ्कटवरद– (ना.का.) इनका लिखा श्रीकृष्णविजयम् (दे.) डिम प्राप्त होता है। रचनाकाल १८वीं शताब्दी का पूर्वार्ध। इनका परिवार अत्यधिक शिक्षितों का था और कई पूर्व पीढियों में साहित्य रचना का कार्य चलता रहा। इनके वंश में श्रीनिवास वरद देशिक जैसे प्रतिष्ठित लेखक उत्पन्न हुये।

वेङ्कट सुब्रह्मण्यम्– (ना.का.) ये अय्ययदीक्षित (दे.) की वंश परम्परा से उत्पन्न हुये थे। अप्पय दीक्षित के पुत्र श्रीकण्ठाध्वरीण से ५वीं पीढी में इनका जन्म हुआ था। अपने आश्रयदाता ट्रावनकोर, नरेश रामवर्म (१७३४-१७९८) के सम्मान में इन्होंने 'वसुलक्ष्मी कल्याणम्' की रचना की थी।

(१) **वेङ्कटाचार्य–** (ना.का.) इनका लिखा ५ अंकों का श्रीकृष्णशृङ्गारतरङ्गिणी। नामक नाटक प्राप्त होता है। रचनाकाल १८वीं शताब्दी।

(२) **वेङ्कटाचार्य–** (ना.का.) भैमीपरिणय (दे.) के लेखक।

(३) **वेङ्कटाचार्य–** (ना.का.) श्रीनिवास ताताचार्य के भाई। सम्भवतः चित्तूर जिला के निवासी थे और इनके पिता का नाम अन्नयार्य था। इन्होंने शृङ्गार तरंगिणी की रचना की थी जिसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम १.६६० में किया गया है।

(४) **वेङ्कटाचार्य–** (ना.का.) ये १८वीं शताब्दी में गुलवर्गा (आन्ध्र) के निवासी थे। इनके पिता श्रीनिवास और माता वेङ्कटाम्बा थीं। इन्होंने अमृतमन्थन (दे.) नाम का ५ अंकों का नाटक लिखा था। रचनाकाल १२वीं शताब्दी।

वेङ्कटाध्वरीण– (ना.का.) इन्हें वेङ्कटाचार्य भी कहा जाता है। ये आत्रेयगोत्रीय रघुनाथ और सीताम्बा के पुत्र थे। इनका जन्म विद्वानों की वंश परम्परा में हुआ था। ये अप्पय दीक्षित के समसामयिक महान् ताताचार्य के भतीजे थे। रामानुज के शिष्य प्रणतारतिहर के ये वंशज थे। काञ्चीवरम् के निकट अरशाणिपालई में इनका जन्म हुआ था। और वहीं इनका निवास था। वेदान्तदेशिक के ये परम अनुयायी थे। सभी शास्त्रों में पूर्ण निष्णात थे एवं कविता के प्रति इनकी जन्मजात प्रवृत्ति थी। प्रसिद्ध गुणादर्श इन्हीं की रचना है।

इनकी रचनाओं की संख्या बहुत अधिक है जिनमें शब्द चमत्कार की प्रवृत्ति भी अत्यधिक पाई जाती है। विश्वगुणादर्श की क्लिष्टता तो प्रसिद्ध ही है- इनका दूसरा काव्य यादवराघवीयम् भी शब्दचमत्कार का एक अनूठा उदाहरण है जिसमें सीधे पढने में राम की और दूसरी ओर से पढने में कृष्ण की कथा आ जाती है। इनकी कृतियों में काव्य भी है, चम्पू भी है, स्पुट पद्य भी है, सूक्ति संग्रह भी है। इनके दो नाटक प्राप्त होते हैं- प्रद्युम्नानन्द (दे.) और शृङ्गार दीपिका भाण (दे.), एक अन्य नाटक सुभद्रापरिणय भी है जिसके केवल दो अंक प्राप्त होते हैं।

वेङ्कटार्य- (ना.का.) इनका लिखा चतुरीचन्द्रिका (दे.) भाण बतलाया जाता है। ये शरण्यपाद के पुत्र थे तथा सम्भवतः चित्तूर जिला के तिरुपति स्थान पर रहते थे।

वेङ्कटेश- (ना.का.) दे. वेङ्कटकृष्ण (१)।

वेङ्कटेश- (ना.का.) मदनाभ्युदय नाटक के लेखक। इन्हें कालिदास भी कहा जाता है।

वेङ्कटेश प्रहसन- (ना.कृ.) दे. वेङ्कटेश्वर। कैटेलागस कैटेलागोरम सं. १.६०२ पर इसका उल्लेख है। इसकी रचना १८वीं शताब्दी में हुई थी।

वेङ्कटेश्वर- (ना.का.) मनालूर के नैध्रुव कश्यपगोत्रीय धर्मराज के पुत्र एवं तंजौर के राजदर्वार के सभारत्न थे। तंजौर का राजदर्वार उन दिनों कवियों और कलाकारों से भरा हुआ था। सन् १६८४ से १७१० तक शाहजी का और १७११ से १७२८ तक सर्फोजी का शासन था। इन्हीं के शासनकाल में यह कवि इस दरवार को अलंकृत करता था। इसने भोंसले वंश का इतिहास लिखा था। इसके अतिरिक्त इस कवि के नाम पर ये सात और नाटक प्राप्त होते हैं- उन्मत्तकविकलश, नीलापरिणय, भानुप्रबन्धप्रहसन, राघवानन्द, राघवाभ्युदय, वेङ्कटेशप्रहसन, और सभापतिविलास, ये कृतियां पैलेस लायब्रेरी तंजौर के क्लासीफाइड इंडेक्स एवं ओरियण्टल लायब्रेरी में प्राप्त की जा सकती हैं। कहा नहीं जा सकता ये सब एक ही कवि की रचना हैं या एक ही नाम के दो अलग अलग कवि हैं।

वेङ्कण्णा- (ना.का.) दे. प्रधानिवेङ्कट भूपति।

वेणीसंहार- (ना.कृ.) भट्ट नारायण (दे.) लिखित नाटक। वेणीसंहार का अर्थ है चोटी को समेटकर बांधना। इसका कथानक महाभारत से लिया गया है। द्यूतक्रीड़ा में पराजित पाण्डवों को अपमानित करने के लिये कौरवों ने जो व्यवहार किया था उसमें सबसे प्रमुख था द्रौपदी की चोटी का दुश्शासन द्वारा राजसभा में वार वार खींचा जाना। उस समय द्रौपदी ने चोटी खोलकर प्रतिज्ञा की थी कि जब तक दुश्शासन का रक्त केशों पर नहीं पड़ेगा तब तक मैं अपनी चोटी नहीं बांधूगी। भीम ने भी दुश्शासन की छाती का खून पीने की और साथ ही उसके खून से रंगे हाथों द्वारा द्रौपदी के केश संयमन

की प्रतिज्ञा की थी। इन प्रतिज्ञाओं की पूर्ति ही नाटक का मुख्य विषय है। नाटक का प्रारम्भ कृष्ण के असफल दौत्यकर्म और भीम के क्रोध से होता है। प्रासङ्गिक रूप में महाभारत युद्ध की अनेक घटनाओं को प्रस्तुत किया गया है। इनमें कुछ तो दृष्य हैं और कुछ सूच्य।

महाभारत एक महासागर है जिसमें घटना-जलचरों की कोई इयत्ता नहीं। इस महासमर को पार करने में प्रमुख भूमिका कृष्ण और अर्जुन की ही मानी जाती है और महाकवि गान्डीव धनुष को ही विजय का श्रेय देते हैं। किन्तु अर्जुन को जो व्यामोह प्रारम्भ में हुआ था जिसका निराकरण भगवान कृष्ण ने किया उसकी कुछ न कुछ झलक पूरे भारत युद्ध में दिखलाई पड़ती है। अर्जुन ने किसी कुटुम्बी का वध नहीं किया। उनकी भूमिका केवल प्रतिरोध (कवरिंग देने) की रही। असली बदला तो भीमसेन ने ही लिया। भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य, कर्ण जैसे वीरों को उलझाये रखने का उत्तरदायित्व अर्जुन ने वहन किया जिससे भीमसेन को अपनी प्रतिज्ञायें पूरी करने का पूरा अवसर मिल गया।

भीमसेन और द्रौपदी की प्रतिज्ञा पूर्ति नाटक का फल हैं। फलभोक्ता भीम और द्रौपदी दोनों हैं, किन्तु कार्य व्यापार के सञ्चालक भीमसेन ही हैं। उनकी क्रियाशीलता समस्त नाटक में व्याप्त है। अतः वे ही नाटक के नायक हैं, दुर्योधन प्रतिनायक है।

नाटक का प्रारम्भ कृष्ण के दौत्यक्रम से होता है जो सूच्य है। प्रथम अंक में इस दौत्यकर्म पर भीमसेन और द्रौपदी की प्रतिक्रियायें दिखलाई गई हैं। दूसरे अंक में दुर्योधन और भानुमती की प्रणय लीला दिखलाई गयी है। वास्तविक युद्ध का प्रारम्भ तीसरे अंक से होता है। पहले कर्ण और अश्वत्थामा का क्रोधपूर्ण संलाप चलता है जिसमें दुर्योधन कर्ण का पक्ष लेकर उसे सेनापति बना देता है। क्रुद्ध होकर अश्वत्थामा प्रतिज्ञा करता है कि जब तक कर्ण जीवित रहेगा वह शस्त्रग्रहण नहीं करेगा। भीमसेन ललकार कर दुश्शासन की छाती का खून पी जाता है। कर्ण और दुर्योधन रक्षा करने आते हैं किन्तु अर्जुन दोनों को रोक लेते हैं। चतुर्थ अंक में कर्णपुत्र वृषसेन के मारे जाने का समाचार मिलता है और धृतराष्ट्र तथा गान्धारी संजय के साथ कुरुक्षेत्र में युद्ध का समाचार लेने आते हैं। पञ्चम अंक में धृतराष्ट्र, गान्धारी और सञ्जय दुर्योधन को युद्ध से विरत करने के चेष्टा करते हैं, पर दुर्योधन एक नहीं सुनता। इसी अंक में कर्ण के मारे जाने की सूचना मिलती है। भीम और अर्जुन माता पिता को देखने आते हैं। भीम की दर्पोक्तियों का दुर्योधन उसी के स्वर में उत्तर देता है। भीम वहीं दुर्योधन को युद्ध के लिये ललकारते हैं, किन्तु अर्जुन के कहने से रुक जाते हैं। युद्ध रुक जाने की युधिष्ठिर की आज्ञा प्रसारित की जाती है, युद्ध रुक जाता है। अश्वत्थामा बदला लेने का प्रस्ताव करता है पर दुर्योधन यह कह कर ठुकरा देते हैं– 'कर्ण में और मुझमें क्या अन्तर? कर्ण की भांति मेरे भी मारे जाने की प्रतीक्षा करो तब बदला लेना।'

छठे अंक में दुर्योधन को तलाश किया जाता है। भीम और दुर्योधन का गदायुद्ध

होता है। इसी बीच दुर्योधन का राक्षसमित्र चार्वाक कपट मुनि के वेष में युधिष्ठिर और द्रौपदी को भीम के मारे जाने की सूचना देकर चला जाता है। युधिष्ठिर के खेमे में करुणा छा जाती है। युधिष्ठिर और द्रौपदी आग में जल जाने को तैयार हो जाते हैं। इसी समय भीमसेन आ जाते हैं जिन्हें दुर्योधन समझकर युधिष्ठिर भिड़ जाने को तैयार हो जाते हैं। वास्तविकता प्रकट हो जाने पर द्रौपदी की चोटी गूंथी जाती है। राज्यारोहण की तैयारी होने लगती है और भरतवाक्य के साथ नाटक समाप्त हो जाता है।

कवि ने कल्पना का बहुत कम सहारा लिया है। पात्रों के चरित्र तदवस्थ हैं। प्रमुख रूप से केवल दो घटनाये कल्पित कही जा सकती हैं- भानुमती और दुर्योधन की प्रणय लीला जिससे उसकी निश्चिन्तता और समय की भीषणता की नासमझी पर प्रकाश पड़ता है, दूसरी कल्पना चार्वाकमुनि के विषय में है जिससे विचित्र, भयानक एवं शोकपूर्ण परिस्थिति के निर्माण में मदद मिलती है।

कवि को रसात्मक परिस्थिति के चित्रण में विशेष महारत हासिल है। वीररस अंगी है जिसके साथ आनुषङ्गिक रूप में भयानक एवं करुण रस का भी यथोचित अंगभाव सन्निविष्ट हो गया है। कवि ने युद्ध के रंगभूमि पर न दिखलाये जाने की मर्यादा का पालन किया है और युद्ध के विवरणों को सूच्य ही रक्खा है। फिर भी सूचनाओं से जो परिस्थिति उत्पन्न की गई है वह वीर, भयानक और करुण के आस्वादन के लिये अत्यधिक अनुकूल है। शृङ्गार का अलग से ही उपादान किया गया है जो वीर रस का अंग नहीं बन पाया है।

वर्णनों की अधिकता ने नाटकीयता को आच्छादित कर लिया है। किन्तु चरित्र चित्रण की दृष्टि से नाटक को काफी सफलता मिली है। शैली प्रसादगुणपूर्ण है और अपेक्षित ओजगुण की गरिमा विद्यमान है। भाषा में स्थान स्थान पर प्रयुक्त श्लेष की छटा दर्शनीय है। समास और असमास दोनों अवस्थाओं में पदयोजना वीर रस के अनुकूल है। अप्रस्तुतविधान मनोरम है जो रसात्मकता को आच्छादित नहीं करते- पुष्ट ही करते हैं। कथा भागों का चयन युक्तियुक्त एवं परिस्थिति के अनुकूल है। सामान्यतः नाटक सफल ही कहा जा सकता है।

इस नाटक पर कई टीकायें लिखी गई- जगद्धर की टीका (पूना से प्रकाशित), जगन्मोहन तर्कालंकार की टीका (कलकत्ता से प्रकाशित), सी.आर. तिवारी की टीका (वनारस से प्रकाशित), तर्कवाचस्पति की टीका (कलकत्ता से प्रकाशित), घनश्याम की टीका (हुल्ट्ज की १९०५ की रिपोर्ट मद्रास में सं. ११ पर उल्लखित), लक्ष्मण सूरि की टीका (मद्रास से प्रकाशित), अनन्ताचार्य द्वारा गद्य में सारांश (साहित्य संस्कृत जर्नल सं. XIX १६३)।

वेदकवि- (ना.का.) १८वीं शताब्दी के तंजौर के महाराज सभोंजी और तुक्कोजी के मन्त्री आनन्दराय मांकिन के आश्रय में रहते थे। इन्होंने विद्यापरिणय (दे.) और जीवानन्दन (दे.) नाम के दो प्रतीक नाटक लिखे जो इन्होंने अपने आश्रयदाता आनन्दराय माकिन को

समर्पित कर दिये। ये नाटक आनन्दराय माकिन के ही नाम से प्रसिद्ध हुये।

(१) **वेदान्त विद्या**– (ना.पा.) यह प्रतीक नाटक प्रबोधचन्द्रोदय (दे.) का एक पात्र है। पत्नी प्रवृत्ति से उत्पन्न सन्तान महामोह के मारे जाने से मनस् दुःखी है। महामोह के साथ प्रवृत्ति का भी वध किया जा चुका है। तब वेदान्त विद्या आती है। वह व्यासदेव से उत्पन्न है। इसीलिये इसे वैयासिकी सरस्वती भी कहा जाता है। यह आकर मनस् को समझातीहै और उसके शोक को दूर करती है जिससे वह अपनी दूसरी पत्नी एवं विवेक की माता निवृत्ति के साथ वानप्रस्थ में चले जाने का निश्चय करता है।

(२) **वेदान्तविलास**– (दे.) में वेदान्त नायक है।

वेदान्त देशिक– (ना.का.) दे. वेङ्कटनाथ।

वेदान्तदेशिक चरित– (ना.कृ.) श्रीशैल ताताचार्य (दे.) लिखित रूपक। इसमें नाट्यरूप में विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त दर्शन की विशेषतायें दिखलाई गई हैं। इसका रचनाकाल १९वीं शताब्दी का प्रथम चरण है।

वेदान्त वागीश– (ना.का.) इन्हें वेतान्तवागीश भट्टाचार्य नाम से जाना जाता है। इनके लिखे भोजराजप्रशस्ति परक 'भोजराज सच्चरितम्' (दे.) का उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम सं. १.४१८ पर किया गया है।

वेदान्तविलास– (ना.कृ.) यह १७वीं शताब्दी के वरदाचार्य (दे.) का ६ अंकों का प्रतीक नाटक है। इसमें रामानुज के जीवन चरित्र का चित्रण किया गया है। यह नाटक प्रतीक एवं लौकिक नाटकों का सम्मिलित कार्यकलाप लेकर चलता है। मानव पात्र प्रतीक पात्रों से वार्तालाप करते हैं। नायक वेदान्त है, नारद, भरत, शंकर आदि अन्य चरित्रनायक हैं, चार्वाक, जैन, बौद्ध, पाशुपत, मायावादी, भास्करीय, यादवीय, द्वैती आदि सम्प्रदायों की प्रमुख मान्यताओं की झलक दृष्टिगत होती है।

नायक वेदान्त मायावाद से प्रभावित होकर सुमति पत्नी का तिरस्कार कर देता है। इस कार्य में उसे चार्वाक और बौद्ध इन नास्तिक दर्शनों से प्रेरणा मिलती है। किन्तु यतिराज द्वारा प्रदत्त ज्ञान के प्रकाश में वह अपनी भूल समझ जाता है और सुमीत को पुनः स्वीकार करता है। इसका प्रकाशन तिरुपति से १९५६ में हो गया था।

वेदान्त सूरि– (चक्रवर्ती) (ना.का.) ये चिंगलपुट के निकट वल्लियम्बकम् के निवासी श्रीवत्स गोत्रीय ब्राह्मण थे। इनके लिखे रघुवीर चरित का मद्रास ओरिण्टल लायब्रेरी के ट्रायेनियल कैटेलाग खण्ड II सं. १२९ पर उल्लेख किया गया है।

वैदान्ताचार्य– (ना.का.) इनका लिखा शृङ्गारसर्वस्व भाण तंजौर की पैलेस लायब्रेरी में सं. VIII ३६११ पर प्राप्त किया जा सकता है। ये १६वीं शताब्दी में मदुरा के राजा रामभद्र के आश्रय में रहते थे।

वेदिका– (ना.कृ.) यह एक प्रकरण है जिसका उल्लेख साहित्यदर्पण में किया गया

है। इसके विषय में और कुछ ज्ञात नहीं है।

वेलण्कर श्रीराम भिकाजी- (ना.का.) ये महाराष्ट्र में रत्नागिरि के निवासी थे। इनका जन्म इसी शताब्दी के प्रथमचरण में हुआ था। डाक विभाग में उच्चाधिकारी थे। इस विभाग में इनकी सबसे बड़ी सेवा पिनकोड का प्रवर्तन था। गणित में इनकी विशेष रुचि थी। गुरु के आदेश पर इन्होंने अपना सारा जीवन संस्कृत प्रचार में लगा दिया था। इनको श्रीरामभिकाजी वेलण्कर के नाम से भी जाना जाता है।

इनकी रचनाओं की संख्या बहुत अधिक है जिनमें नवीन प्राचीन सभी प्रकार के विषय सम्मिलित हैं। संस्कृत के अतिरिक्त इन्होंने मराठी और अंग्रेजी में पुस्तकें लिखीं थीं। मूलकृतियों के अतिरिक्त इनकी दो एक अनूदित कृतियां भी उपलब्ध होती हैं। इनके निम्नलिखित नाटकों का उल्लेख पाया जाता है-

अवनिदमनम्, आषढस्य प्रथमदिवसे, कल्याणकोश, कालिदासचरित्रम, कैलासकम्प, छत्रपतिशिवराजः, जन्म रामायणस्य, तत्वमसि, तनयोराजा भवति कथं मे, तिलकायनम्, दूषणनिरसनम्, नभोनाटिका, नियतिलीला, बालगीतम्, मध्यमपाण्डव, मेघदूतोत्तरम्, राज्ञीदुर्गावती, रामचरितम्, श्रीलोकमान्यस्मृतिः, संगीतकालिन्दी, सौभद्र (अनूदित) स्वातन्त्र्यचिन्ता, स्वातन्त्र्यमणि, स्वातन्त्र्यलक्ष्मी और हुतात्मा दधीचिः।

वेष्टनव्यायोग- (ना.कृ.) यह वीरेन्द्रकुमार भट्टाचार्य का लिखा नाटक है। इसमें वेष्टन (घेराव) की नई पद्धति पर प्रकाश डाला गया है। यह कलियुग का एक महत्वपूर्ण अस्त्र है। इसका नायक सञ्जय है। उसके नेतृत्व में पांच श्रमजीवी अपनी मांगे लेकर श्रमाध्यक्ष और शिल्पाध्यक्ष के पास जाते हैं और अधिकारियों के स्वीकार न करने पर उनका घेराव कर देते हैं। अन्त में विवश होकर अधिकारियों को उनकी मांगे स्वीकार करनी पड़तीहैं और कलियुग प्रकट होकर उन्हे वधाई देता हैं।

वेस्सन्तर जातक- (विश्वान्तर जातक) (ना.कृ.) दे. लोकानन्द।

वैकुण्ठपुरी- (ना.का.) इनका लिखा नाटक शान्तिरस प्रतीक नाटक की श्रेणी में आता है। इनका नाम विष्णुपुरी भी कहा गया है। इनकी रचनाओं का उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम सं. १.५९१ पर किया गया है। पद्यावली मे इनके पद्य उद्धत किये गये हैं।

वैकुण्ठविजयम्- (ना.कृ.) १६वीं शताब्दी के अमर माणिक्य (दे.) का लिखा नाटक जिसमें उषा और अनिरुद्ध कथा को रुपकायित किया गया है।

वैदर्भीवासुदेवम्- (ना.कृ.) यह सुन्दरराज (दे.) का लिखा कृष्णविषयक ५ अंकों का नाटक है। इसका उल्लेख ट्रावनकोर के पुस्तकालय में संस्कृतपाण्डुलिपि विभाग के कैटेलाग सं. १८१ पर किया गया है। तिन्नेवेली जनपद कैलासपुर से इसका प्रकाशन हो चुका है। इस नाटक में १९वीं शती के भारतीय समाज एवं संस्कृति के विषय में महत्वपूर्ण सूचनायें दी गई हैं।

वैद्यदुर्ग्रहम्- (ना.कृ.) सुरेन्द्रमोहन लिखित लघु नाटक जो बच्चों के पढ़ने के लिये लिखा गया था। इसमें एव वैद्य का कथानक चित्रित किया गया है। जो एक अन्धी वृद्धा की चिकित्सा के बहाने उसकी वस्तुयें चुरा लेने में लगा रहता है।

वैद्यनाथ- (ना.का.) संस्कृत साहित्य में इस नाम के कई कवि हुये हैं। इनमें १७वीं शताब्दी के अन्त एवं १८वीं शताब्दी के प्रारम्भिक चरण के कवि वैद्यनाथ के नाम पर तीन नाट्यकृतियों का उल्लेख किया जाता है- सत्संगविजय नामक प्रतीक नाटक, मिथ्याचारप्रहसन और कृष्णलीलानाटिका। इनके व्यक्तित्व के विषय में साहित्य जगत् को कुछ भी ज्ञात नहीं है। यह भी सम्भव है इन नाटकों के कर्ता विभिन्न व्यक्ति हों। परिचय यथास्थान देखिये।

वैद्यनाथ- (ना.का.) इनका लिखा शृङ्गारपावन नामक भाण प्राप्त हुआ है। ये तंजौर जिले के तिरुवल्लूर नामक स्थान पर रहते थे। इनका जन्म वत्सगोत्र में हुआ था। ये कृष्ण कवि के पुत्र थे। इन्होंने भाण की प्रस्तावना में अपनी अनेक पुस्तकों का उल्लेख किया है जिनमें अधिकतर स्तोत्र हैं।

इस नाम के कई कवियों का उल्लेख पाया जाता है जिनकी एकता, अनेकता के विषय में निश्चयत्मक रूप से कुछ कहना कठिन है। सम्भव यही प्रतीत होता है कि ये सब विभिन्न व्यक्तित्व थे।

वैद्यनाथतत्सत्- (ना.का.) ये १७वीं शताब्दी (उत्तरार्थ) में तत्सत् गोत्र में उत्पन्न हुये थे। इनके नाम पर काव्य शास्त्रीय कई ग्रन्थों की टीकायें प्रसिद्ध हैं। कृष्ण लीला नामक नाट्यकृति इन्हीं की बतलायी जाती है।

वैद्यनाथ वाचस्पति भट्टाचार्य- (ना.का.) ये १९वीं शताब्दी के मध्य में नदिया में रहते थे। इन्होंने चैत्रयज्ञ (दे.) नामक नाटक की रचना की थी। इस नाटक की रचना ईश्वरदत्त के निर्देशन पर की गई थी। इस रचना को चित्रयज्ञम् नाम से भी याद किया जाता है।

वैद्यनाथ शर्मा- (ना.का.) इनका लिखा गणेशपरिणयम् (दे.) नाटक इण्डियन प्रेस प्रयाग से सन् १९०४ में प्रकाशित हुआ था। इनका लिखा गणेशसम्भव भी प्रकाश में आया है। ये आन्ध्रपण्डित रामशास्त्री के शिष्य थे और वाराणसी में रहते थे। इनको बालकवि भी कहा जाता है।

वैयासिकी सरस्वती- (ना.पा.) यह प्रबोधचन्द्रोदय (दे.) की एक पात्र है। यह वेदान्तविद्या का दूसरा नाम है। वेदव्यास वेदान्त सूत्रों के कर्ता बतलाये जाते हैं। इसीलिये वेदान्तविद्या को यह नाम दिया गया है।

वैरोधक- (ना.पा.) यह मुद्राराक्षस का एक पात्र है। यह रंगमञ्च पर नहीं आता, किन्तु उसका उल्लेख किया गया है। यह पर्वतक का भाई एवं मलयकेतु का चाचा है।

पर्वतक के मारे जाने और मलयकेतु के भाग जाने से यह अकेला राज्याधिकार प्राप्त करने के आग्रह में वहीं डटा रहा। चाणक्य के सामने उससे पीछा छुड़ाने की समस्या थी। चन्द्रगुप्त की रथयात्रा की घोषणा की गई। राक्षस ने उस यात्रा में चन्द्रगुप्त का वध करने के लिये कतिपय वधिकों को नियुक्त किया जिन्हें तोरण गिराकर चन्द्रगुप्त की हत्या करनी थी। चाणक्य ने चन्द्रगुप्त के स्थान पर वैरोधक को यह कह कर बिठा दिया कि आखिर यह भी राज्याधिकारी है। तोरण के गिरने से चन्द्रगुप्त के स्थान पर वैरोधक मारा गया और साथ ही तोरण गिराने के आरोप में चाणक्य ने उन सब वाधिकों को भी मृत्युदण्ड दे दिया। इस प्रकार वैरोधक से चाणक्य का पीछा छूट गया।

वैशम्पायन के.आर.– (ना.का.) ये २० वीं शताब्दी के कवि हैं। इनका लिखा 'देश स्वातन्त्र्यसमरकाले देशधर्मः' शीर्षक नाटक १९७० ई. में शारदा में प्रकाशित हुआ था।

व्यत्यस्तवक्रम्– (ना.कृ.) नारायण शास्त्री लिखित ७ अंकों का नाटक।

व्यायोग साहित्य– (ना.वि.) उरुभंग (भास), कर्णभार (भास), किरातार्जुनीय (वत्सराज), जरासन्धवध (मोक्षादित्य), जामदग्य विजय, दूतघटोत्कच (भास), दूतवाक्यम् (भास), धनंजयविजय (कंचन पण्डित अथवा कनकाचार्य), निर्भयभीम (रामचन्द्र), नृसिंह विजय (आर्यसूर्य) पार्थपराक्रम (प्रह्लादन देव), प्रचण्डगरुड (गोविन्द), प्रचण्डभैरव (सदाशिव), भीमविक्रम (मोक्षादित्य), मध्यमव्यायोग (भास), विक्रान्तराघवीय (श्रीकृष्ण), विजय विक्रम (आर्यसूर्य), विनतानन्द (गोविन्द), वीर राघवीय (प्रधानिभूपति), सौगन्धिकाहरण (विश्वनाथ)

व्यासराजशास्त्री, के.एल.– (ना.का.) ये २० वीं शताब्दी के कवि हैं। इनके लिखे नाटक हैं– चामुण्डा, निपुणिका, महात्मविजय, विद्युन्माला और शार्दूलसंपात। इनको विद्यासागर की उपाधि प्राप्त हुई थी।

व्यासश्रीमोक्षादित्य– (ना.का.) दे. मोक्षादित्य।

व्यासश्री रामदेव– (ना.का.) दे. रामदेव व्यासश्री।

व्रजराज नन्दन– (ना.कृ.) जोगीपटनायक (दे.) लिखित नाटक।

श

शकटदास– (ना.पा.) मुद्राराक्षस में राक्षस का पक्षधर पात्र। इसे चाणक्य ने बन्दी बनाया और उसी अवस्था में उससे एक महत्वपूर्ण पत्र की नकल करा ली। बाद में उसे मृत्युदण्ड की सजा सुनाई गई और जब उसे वधिक लोग वध्यस्थान की ओर ले जा रहे थे चाणक्य के निर्देश पर उसे सिद्धार्थक छुड़ा ले जाता है तथा उसे राक्षस के पास पहुंचा देता है। राक्षस कृतज्ञता पूर्वक सिद्धार्थक की पुरस्कार देता है, उसे अपने यहां रख लेता

है और शकटदास को अपना व्यक्तिगत सचिव का पुराना पद पुनः दे देता है। बाद में वही पत्र राक्षस की गिरफ्तारी में कारण बनता है।

शकार– (ना.पा.) मृच्छकटिक में प्रतिनायक। उसका वास्तविक नाम संस्थानक है। शास्त्रीय मान्यता के अनुसार प्रतिनायक लोभी, धीरोद्धत, जडस्वभाव वाला, पापी और व्यसनी होता है। इसके अतिरिक्त शास्त्र में शकार नामक एक विशेष प्रकार के पात्र का निर्देश किया गया है जो राजा की किसी रखैल का भाई होने से राजा का साला होता है जिससे (श्यालक शब्द के प्रथम अक्षर के अनुसार) उसे शकार कहा जाता है। उसके शकार नाम का एक और भी कारण है– वह 'स' को 'श' बोलता है जैसे 'वसन्तसेना' को वशन्तशेना'। वह धूर्तों, विटों इत्यादि निम्न पात्रों से घिरा हुआ है। उसकी मां व्यभिचारिणी थी। इसलिये उसे काणेलीमातः कहा गया है। उसकी बहन भी व्यभिचारिणी है जो राजा की रखैल बन गई है जिसका उसे बहुत बड़ा अभिमान है और वह बात बात पर 'मैं राजा का साला हूं' की धमकी देता है। उसके अभिमान की सीमा यहां तक है कि वह कोर्ट में खड़े होकर न्यायाधीश से कहता है कि 'तुम्हें वही निर्णय करना होगा जो मैं कहूंगा। यदि तुम नहीं मानोगे तो मैं अपने बहनोई (राजा) से कहकर तुम्हारी जगह किसी और को बैठा दूंगा।' उसे अपने रूप का भी अभिमान है क्योंकि वह एक सुन्दर बहन का भाई है। वह पढ़ा लिखा कुछ नहीं है। कतिपय पौराणिक पात्रों के नाम याद कर रक्खे हैं जिनको उल्टे सीधे रूप में बोलता रहता है। जैसे 'द्रोणपुत्रो जटायुः'। वह अत्यन्त दुष्ट एवं नीचकर्मा है। रास्ता चलते औरतों को छेड़ता है। वसन्तसेना जब उसका कहा नहीं मानती तब वह अपने साथियों को इधर उधर कर वसन्तसेना की हत्या भी कर देता है यद्यपि वह अपने भाग्य से बच जाती है। वह चारुदत्त का प्राणपण से इसलिये शत्रु है कि वसन्तसेना चारुदत्त पर अनुरक्त है और इसलिये कि उसके वश में नहीं आती। शत्रुता की भावना यहां तक बैठी हुई है कि स्वयं ही वसन्तसेना की हत्या कर और लाश पत्तों के ढेर से छिपाकर हत्या का झूठा मामला चारुदत्त पर चला देता है। संयोग से चारुदत्त के प्रतिकूल प्रमाण जुट जाते हैं, तब वह शीघ्र ही वध करने के लिये वधिकों पर जोर डालता रहता है। किन्तु जब राज्य परिवर्तन हो जाता है और उसको सजा देने की जुम्मेदारी चारुदत्त पर आ जाती है तब जिसके जीवन लेने के लिये उसने कोई कसर नहीं उठा रक्खी थी उसी से क्षमादान की प्रार्थना करने लगता है और उसे चारुदत्त की उदारता के कारण क्षमा मिल भी जाती है। वह अत्यन्त कायर और दुराग्रही है। संक्षेप में अत्यन्त क्रूर, निर्दयी, स्त्रीलम्पट, धूर्त, दगावाज, और पापी है। सभी दुगुणों की खान है। उसके साथी भी उसका विश्वास नहीं करते। वह समाज के दुर्गन्धित मलों में एक है। जिसका काम समाज को कलुषित करना ही होता है।

शकुन्तलानाटक– (ना.कृ.) दे. अभिज्ञानशाकुन्तल।

शकुन्तला– (ना.पा.) कालिदास के विश्वप्रसिद्ध नाटक 'अभिज्ञान शाकुन्तल' की

नायिका। वह जबानी की दहलीज पर कदम रखने वाली भोली भाली वन्य हरिणी है। उसके उठाव पर आरुढ यौवन को सखियां लक्षित करती हैं, और उसे चिढाती हैं, वह एक ऐसी मदिरा है जिसका अभीतक स्वाद नहीं लिया गया, वह ऐसा रत्न है जो अभी तक तराशा और छेदा नहीं गया। ऐसा सौन्दर्य किसी मानवी से तो उत्पन्न हो ही नहीं सकता, भला कहीं 'प्रभातरल ज्योति' भूमि से उत्पन्न हो सकती है– वह तो बादलों से ही उद्‌भूत होती है। उसका जन्म तो अप्सरा (मेनका से हुआ है) उसके उपभोग का सौभाग्य भी ऐसे व्यक्ति को ही प्राप्त होगा जिसने अखण्ड पुण्य किया हो। मौके से उसके यौवन को गुदगुदाने वाली सहेलियां भी मिल गई। वन्य जीवन में नागरिक वातावरण कहां सम्भव है? अतः वह वृक्षों लताओं और पशुपक्षियों के मध्य अपने पारिवारिक जीवन का आनन्द लेती है। वनज्योत्स्ना (लता) के पादप से लिपटने में वह प्रेमियों के सम्मिलन की कल्पना करती है। मृगशावकों को बच्चों के समान पालती है। फूलने वाली लतायें उसके आनन्द का साधन है।

जिस गुणग्राहक की उसे प्रतीक्षा है वह आ ही जाता है। पिता महीनों के लिये तीर्थयात्रा पर चले गये हैं। सहेलियों का सहयोग प्राप्त ही है। वह प्रेमी की चिकनी चुपड़ी बातों में आकर आत्मसमर्पण कर देती है और उसका गन्धर्व विवाह हो जाता है। यह उसके प्रेमी जीवन का दूसरा स्तर है। विलास चलता रहता है और वह गर्भवती हो जाती है। प्रेमी उसे शीघ्र ही बुला लेने का वादा कर चला जाता है क्योंकि वह कुलपति के लौटने की सम्भावना से भयभीत है। यह जीवन का अग्रिम पड़ाव है। पिताजी लौट आये हैं। अब सखियों के सामने भी समस्या है कि यह समाचार पिता जी को कैसे दिया जाय। इस समस्या का समाधान आकाश वाणी के माध्यम से हो जाता है। अब विदा की तैयारी होती है। जंगल का पूरा वातावरण पुत्री की विदा के अवसर पर शोकाकुल है। वह सर्वदा के लिये अनपे बालजीवन से नाता तोड़कर जा रही है। उसके पाले पोसे वृक्ष, उसके दुलारे हुये मृग सर्वदा के लिये छूट रहे हैं। उसका मन दो छोरों में बंटा हुआ है। एक ओर आवास छूट रहा है, दूसरी और हृदयवल्लभ से मिलने की उत्कण्ठा सता रही है। पिता के उपदेश और प्रियतम के प्रति उनके संदेश वाहक भ्रातृस्थानीय ऋषिकुमारों एवं माता गौतमी के साथ वह प्रियतम के घर की ओर प्रस्थान करती है।

परन्तु यह क्या? इतना बड़ा धोखा? प्रियतम तो उसे पहिंचानने से भी इन्कार कर देता है। वासना के आवेश में उसने जो कुछ किया है उसे मानने के लिये वह कतई तैयार नहीं। उसका भाई उसके पक्ष में जोरदार वकालत करता है; वह भी अपनी ओर से समझाने और प्रमाण देने की पूरी चेष्टा करती है। किन्तु राजा पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। उसके भाई उसे ले जाने को बिल्कुल तैयार नहीं। अन्त में इस बात पर समझौता हो जाता है कि प्रसव पर्यन्त वह पुरोहित के घर में रहेगी और बाद में बच्चे के लक्षणों को जांचकर निर्णय कर लिया जायेगा।

इस प्रकार पुत्रीद्वारा परघर में रहकर वेदनामय अपमानित जीवन बिताने को उसकी मां (मेनका) पसन्द नहीं करती और उसे अपने साथ लेजाकर सुरासुर गुरु कश्यप के आश्रम में रखती है। वहां वह एक बालक को जन्म देती है जिसके जातकर्मादि संस्कार कश्यप द्वारा किये जाते हैं। निस्सन्देह वह एक महान तेज का बीज है। बचपन में शेरों के साथ खेलता है। गुणानुरूप उसका नाम सर्वदमन रक्खा गया है जो आगे चलकर विश्व का भरण पोषण करने के कारण भरत नाम से अखण्ड यश प्राप्त करेगा। देवताओं के प्रयत्न से ऐसा संयोग भिड़ जाता है कि उसका पति (राजा) उसी आश्रम में आ जाता है जहां वह अपने धोखेबाज कौमारहर का आंखों में आंसू भरकर स्वागत करती है। वह वियोग वेदना से क्षीण हो चुकी है। नियमों के पालन करने के कारण उसका चेहरा कुह्मलाया हुआ है। मैले कुचैले फटे, पुराने कपड़े पहने हुये हैं। उसने पूर्ण रूप से पातिवृत्य धर्म का पालन किया है। उनका मिलन स्वर्ग भूमियों में होता है। कश्यप दोनों का संकोच दूर कर उन्हें एक दूसरे के प्रणय बन्धन के लिये आशीर्वाद देते हैं। इस प्रकार उसके कष्टों और वेदनाओं से भरे जीवन में एक वार फिर बहार आ जाती है।

वह एक सच्ची प्रेमिका है। पिता और परिवार की दुलारी है और स्वयं उनसे प्रेम करती है। पिता के प्रति उसकी श्रृद्धा अनुकरणीय है। यह उसका सौभाग्य ही है कि मां विपत्ति काल में उसे ऐसे स्थान पर भेज देती है जहां कल्पवृक्ष सभी सुविधायें जुटाते रहते हैं, जहां के जल सोने के कमलों की पराग से सुनहले रंग के हो जाते हैं। भवन रत्नों की शिलाओं के बने हैं। देवरमणियां स्वच्छन्द विहार करती हैं जिनका संसर्ग सभी दु:खों का विघातक होता है। ऐसे स्थान अखण्ड तपस्या के फल रूप में ही प्राप्त किये जा सकते हैं। क्या वह कण्व के आश्रम में लौटकर वही सम्मान, वही आनन्द दुवारा प्राप्त कर सकती थी? क्या उसे पति के समीप ही किसी दूसरे के घर पर रहना मरण से भी वदतर नहीं होता। यही वह पृथ्वी पर खिली कली है जिसका मेल स्वर्ग से हुआ है।

शक्तिभद्र- (ना.का.) आश्चर्यचूडामणि (दे.) के लेखक। परम्परा प्रसिद्धि है कि ये शङ्कराचार्य के शिष्य थे। यदि यह सत्य है तो इनका समय ८वीं ९वीं शताब्दी माना जा सकता है। आश्चर्यचूडामणि में प्रस्तावना में आश्चर्य प्रकट किया गया है कि केरल में भी नाटक की रचना हुई है। इससे ज्ञात होता है यह केरल का पहला नाटक है और १०वीं शताब्दी के कुलशेखर के नाटकों से भी यह पहले का है। मालावार में इनको बहुत अधिक प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखा जाता है और भास के नाटकों के समकक्ष इनके नाटकों को रक्खा जाता है। वहां इसका अभिनय कुछ पहले तक होता रहा है। इनके लिखे उन्माद वासवदत्ता (दे.) तथा दो एक अन्यकृतियों का भी उल्लेख पाया जाता है। किन्तु ये रचनायें अभी तक उपलब्ध नहीं हुई हैं।

शक्तिवल्लभ अर्ज्याल- (ना.का.) जय रत्नाकर (दे.) नाटक के लेखक। इनका

समय १८वीं शताब्दी है। ये १८वीं शताब्दी के नेपाली कवि थे। इन्हें पद्यकोटीश्वर की उपाधि प्राप्त हुई थी।

शक्तिवासकुमार– (ना.का.) अनङ्गसेना हरिनन्दिनी (दे.) नाटक के लेखक।

शक्तिसारदम्– (ना.कृ.) यतीन्द्रविमल चौधरी (दे.) लिखित रामकृष्ण परमहंस की पत्नी सारदामणि विषयक चार अंकों का रूपक। इसमें गीतों का प्रयोग किया गया है। भाषा सरल एवं पात्रानुसारी है। इसका प्रथम अभिनय २० जून १९५८ को पुरी में अखिल भारतीय संस्कृत परिषद् के अधिवेशन में किया गया। उसके बाद भी कई वार इसका अभिनय आयोजित किया जाता रहा।

शक्रानन्द– (ना.कृ.) यह समवकार है जिसका उल्लेख सागर नन्दी ने उदाहरण के रूप में किया गया है। अब यह रचना उपलब्ध नहीं होती।

(१) **शङ्करकवि**– (ना.का.) इनके लिखे शारदातिलक का उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम सं. I ६८३ पर विल्सन के थियेटर सं. II ३८४ पर और कीथ के संस्कृत ड्रामा में किया गया है।

(२) **शङ्कर कवि**– सम्भवतः दूसरे शङ्कर हैं जिनके गौरी दिगम्बर का उल्लेख कैटेलागस गैटेलागोरम सं. III ३७ और के. जायसवाल द्वारा मथुरा में की गई पाण्डुलिपियों की विवरणात्मक खोज रिपोर्ट सं. II ५५ में किया गया है।

शङ्करदत्त– (ना.का.) ये उत्तरप्रदेश के कवि हैं इनका लिखा 'हरिवंशहंसम्' शीर्षक नाटक और दो अन्य पुस्तकें अलंकारशंकर और राधिकामुखवर्णनम् प्रकाश में आई हैं।

शङ्कर दीक्षित– (उपनाम शंकर बालकृष्ण दीक्षित) (ना.का.) ये भरद्वाज गोत्रीय, महाराष्ट्र ब्राह्मण बालकृष्ण के पुत्र और ढुण्ढिराज के पौत्र थे। सम्भवतः ये वही ढुण्ढिराज थे जो १७१३ में व्यासयज्वन के रूप में विद्यमान थे। यह समय काशिराज चेतसिंह का था। इनका प्रद्युम्न विजय पन्ना के राजा सभा सुन्दर के राज्यारोहण के अवसर पर अभिनय के लिये लिखा गया था। सभासुन्दर बुन्देल खण्ड के इतिहास प्रसिद्ध राजा छत्रसाल के पौत्र थे। शङ्कर कवि का देहावसान १७८० में हुआ था। उक्त नाटक के अतिरिक्त इनके चम्पू काव्य भी प्रसिद्ध हैं।

शङ्करदेव– (ना.का.) विदग्धमाधव के लेखक।

शङ्कर नारायण– (ना.का.) रसिकामृत (दे.) नाटक के लेखक।

शङ्कर मिश्र– (ना.का.) बिहार प्रदेश के १५वीं शताब्दी के कवि। ये मीमांसक भवनाथ के पुत्र थे। स्वयं एक अच्छे नैयायिक थे। खण्डनखण्डखाद्य पर एक टीका लिखी थी। अन्य अनेक शास्त्रीय एवं दार्शनिक ग्रन्थों के अतिरिक्त इन्होंने तीन नाट्यकृतियों की भी रचना की थी– श्रीकृष्णविनोद, मनोभवपराभव और गौरीदिगम्बरप्रहसन।

शङ्करलाल– (ना.का.) १९वीं २०वीं शताब्दी के जामनगर निवासी भरद्वाजगोत्रीय

गुजराती ब्राह्मण थे। काठियावाड़ के प्रश्मोरा नगर ब्राह्मण परिचार में महेश्वर और मोधीवाई से इनका जन्म हुआ था। इनको जामनगर के राजा ने शीघ्रकवि एवं महामहोपाध्याय की उपाधियां प्रदान की थीं। मौरवी के संस्कृत महाविद्यालय में ये प्रधानाध्यक्ष के पद पर केवल २१ वर्ष की आयु से ही कार्यरत रहे। इनका साहित्य अत्यन्त विस्तीर्ण है जिसमें गद्य-पद्य, लघुकाव्य, महाकाव्य आदि अनेक विधाओं पर रचनायें सम्मिलित हैं। मोरवी स्टेट के राज परिवार के विषय में इन्होंने रावजी राज कीर्तिविलास नामक काव्य की रचना की। इनके नाटकसाहित्य में कृष्णचन्द्राभ्युदय, गोपालचिन्तामणि, ध्रुवाभ्युदय, पार्वतीपरिणय, भद्रायुर्विजय, वामनविजय और सावित्रीचरित का उल्लेख किया जाता है। इनमें अधिकांश रचनायें प्रकाशित हो चुकी हैं। इनके नाटकों में छाया नाटक तत्व के भी दर्शन होते हैं। इनकी रचनाओं के विषय में काठियावाड़ निवासी इनके पौत्र सुखदेव खेल शंकर (S.K. Bhatt) से अधिक जानकारी प्राप्त की जा सकती है। इनके प्रशंसकों ने शंकराश्रम की स्थापना की है जहां समय समय पर सन्यासियों तथा दूसरे विद्वानों से धार्मिक प्रवचन कराये जाते हैं।

शङ्करविजय– (ना.कृ.) मथुरा प्रसाद दीक्षित लिखित शंकराचार्य की विजय का अंकन। इसमें प्रत्येक अंक में एक प्रतिपक्षी पर विजय का अंकन किया गया है। इस प्रकार मण्डन मिश्र, चार्वाक, जैनसूरि, बौद्ध आचार्य और कोलाचार्य पर विजय दिखलाई गई है और अन्त में व्यास इत्यादि द्वारा शङ्कराचार्य का अभिनन्दन किया गया है।

शङ्करशंकरम्– (ना.कृ.) डा. रमाचौधरी (दे.) लिखित शङ्कराचार्य जीवन गाथा विषयक नाटक। इसमें अंकों के स्थान पर दृश्यों का प्रयोग किया गया है। दृश्यों की संख्या १४ है। एकोक्तियों की संख्या पर्याप्त है। प्रत्येक दृश्य में संगीत आता है।

इसका प्रथम अभिनय १९६५ में प्राच्यवाणी के २२वें प्रतिष्ठादिवस के अवसर पर किया गया था।

शङ्कुक– (ना.का.) रससूत्र के व्याख्या कार के रूप में प्रसिद्ध। इन्होंने इस विषय में लोल्लट की व्याख्या का खण्डन किया है। अभिनवगुप्त ने नाट्य शास्त्र की टीका अभिनव भारती में इनके उद्धरण दिये हैं जिससे ज्ञात होता है कि इन्होंने नाट्य शास्त्र की व्याख्या भी लिखी थी। ये सम्भवतः लोल्लट के उत्तरवर्ती समसामयिक थे। इनके एक काव्य ग्रन्थ भावनाभ्युदय का उल्लेख किया जाता है जिसकी रचना काश्मीर के राजा अजितापीड (८१४-८५१) के राज्यकाल में बतलाई जाती है। इस प्रकार आनन्दवर्धन से पहले इनका होना सिद्ध होता है। चयनिकाओं में भी इनके नाम पर कुछ पद्य पाये जाते हैं जिससे ज्ञात होता है कि नाट्यशास्त्रेतर विषयों में भी इन्होंने कुछ साहित्य लिखा था। इन्हें अमात्य शंकुक कहा जाता है। इनके नाम पर 'चित्रोत्पलावलम्बितक' (दे.) नामक एक प्रकरण भी बतलाया जाता है। इनका उल्लेख राजतरंगिणी में किया गया है। शार्ङ्गधरपद्धति और सूक्तिमुक्तावली में 'दुर्वाराः, स्मरमार्गणाः' इत्यादि प्रसिद्ध पद्य उद्धृत किया गया है।

सुभाषितावली में यह पद्य मयूर के पुत्र भट्ट शंकुक का लिखा बतलाया जाता है। यदि शंकुक वास्तव में मयूर के पुत्र थे तो इनका समय ७वीं शताब्दी रहा होगा। उस दशा में दो शंकुक सिद्ध होते हैं- एक मयूर के पुत्र और दूसरे रस सूत्र के व्याख्याकार। कहा नहीं जा सकता चित्रोत्पलावलम्बितक रचना किन शंकुक की है।

शङ्कुकर्ण- (ना.पा.) अभिषेक नाटक में रावण का एक सेनानी जो एक हजार सैनिकों के साथ हनुमान से युद्ध करने आया था और मारा गया।

शंखचूड- (ना.पा.) (१) **नागानन्द** (दे.) में एक नाग जिसे अपने परिवार का एक व्यक्ति गरुड़ के भोजन के लिये भेजने के निमित्त चुनना है। उसे ही बचाने के लिये जीमूतवाहन आत्मोत्सर्ग करता है।

(२) **शंखचूड वधम्**- (दे.) नाटक का एक प्रधान पात्र।

शंखचूड वधम्- (ना.कृ.) दीन द्विज लिखित तीन अंकों का नाटक। एक अनिन्द्य सुन्दरी कन्या तुलसी ने अच्छे वर की अभिलाषा से लम्बी तपस्या की जिस पर प्रसन्न होकर ब्रह्मा ने निर्देश दिया कि 'कृष्ण का पार्षद सुदामा राधा के शाप से ग्रस्त होकर शंखचूड दानव बन गया है। यदि तुम उससे विवाह कर लोगी तो वह शापमुक्त होकर तुम्हारे साथ कृष्ण को प्राप्त कर लेगा। इस निर्देश के अनुसार तुलसी उससे विवाह कर लेती है। शंखचूड वैभवशाली और उन्मत्त है। शङ्करजी उस पर आक्रमण कर देते हैं। किन्तु तुलसी के पातिव्रत्य के प्रभाव से शंकरजी उस पर विजय नहीं प्राप्त कर पाते। तब विष्णु भगवान शंखचूड का रूप धारण कर तुलसी का पतिव्रत्य भंग कर देते हैं जिससे शंखचूड मारा जाता है। रहस्य जानकर तुलसी विष्णु को शिला बन जाने का शाप दे देती हैं जिससे विष्णु शालिग्राम शिला में परिणत हो जाते हैं। शिवजी शंखचूड की हड्डियां समुद्र में फेंक देते हैं जो आज भी शंख के रूप में समुद्र में विखरी पड़ी हैं और तुलसी पौधे के रूप में परिणत हो गई है।

असम साहित्य सभा जोरहाट से १९६२ में इस नाटक का प्रकाशन हुआ था। इसकी रचना १८०३ में हुई थी। गीत संस्कृत और असमी भाषा में है। भाषा सरल संवादोचित है। सूत्रधार सभी के संवाद बोलता है।

शंखधर कविराज- (ना.का.) ये कन्नौज के राजा गोविन्दचन्द्र के राज्यकाल में १२वीं शताब्दी में हुये थे। इन्होंने 'लटकमेलक' (दे.) नामक एक प्रहसन लिखा था। इसके अतिरिक्त कविकर्पटिका नामक एक काव्य शास्त्रीय ग्रन्थ भी इन्होंने लिखा था।

शचीपुरन्दरनाटकम्- (ना.कृ.) तंजौर राजघराने के आश्रय में तैयार किये गये साहित्य के अन्तर्गत इसका भी उल्लेख किया गया है।

(१) **शठकोप-** (ना.का.) ये एलंकडु के भरद्वाजगोत्रीय श्रीनिवासाचार्य के पुत्र एवं दक्षिण भारत के अहोवल मठ के प्रसिद्ध ७वें मुख्य पुरोहित थे। विजयनगर के रंगराज

(१५१२-१५२२) का शासन काल था। इनका प्रारम्भिक घरेलू नाम तिरुमल था और इन्हें कवितार्किक कण्ठीरव की उपाधि मिली थी। कहा जाता है ये १०० व्यक्तियों को एक साथ वोलकर कविता लिखा सकते थे। गजपति राजकुमार मुकुन्देव ने इनकी पूजा की थी। इनकी नाट्यकृति वासन्तिकापरिणय (दे.) प्राप्त होती है।

(२) **शठकोप–** (ना.का.) तरुण भूषण (दे.) भाण के लेखक।

(३) **शठकोपाचार्य–** (ना.का.) इनके लिखे भैमीपरिणय का संकलन कैटेलागस कैटेलागोरम सं. II ९५ पर किया गया है।

शठ गोपाचार्य– (ना.का.) दमयन्ती कल्याणम् (दे.) नाटक के लेखक। इन्होंने अपनी परम्परा का अनुशीलन उरुपुत्थुरी अच्चन से किया है जो महान् वैष्णव आचार्य नादमुनि के ७ शिष्यों में एक थे।

शठजित्कवि– (ना.का.) इनका लिखा शृङ्गारसञ्जीवन (दे.) भाण प्राप्त होता है। ये भरद्वाज गोत्रीय ब्राह्मण थे। इनका परिवार काञ्जीवरम् में निवास करता था। बाद में इनके पिता गोदावरी के कुटालस्थान पर रहने चले गये थे।

शतंजीव मिश्र– (ना.का.) १७वीं शताब्दी के उड़ीसा के कवि। इन्होंने मुदितमाधवम् नामक गीति नाट्य की रचना की।

शतवार्षिकम्– (ना.कृ.) जीवन्याय तीर्थ (दे.) लिखित नाटक। कलकत्ता विश्वविद्यालय के शताब्दी समारोह के अवसर पर अभिनय के लिये लिखा गया नाटक। इसकी कथा काल्पनिक है। मर्त्यमणि अपने शरीर पर राकेट चिपकाकर ब्रह्मलोक जाता है। वहां द्वारपाल राकेटों को देखकर डर जाता है। मर्त्यमणि कहता है कि अभी तक मंगल पर ही राकेट छोड़ा गया है, शुक्र और बुध पर भी राकेट छोड़ने की योजना है। चन्द्र भी दुःखी है कि उसका निर्ममता पूर्वक अतिक्रमण किया गया है। वह अपनी दुर्गति सुनाता है। राहु को क्रोध आ जाता है, वह मर्त्यमणि से भिड़ जाता है। सभी ग्रह मर्त्यमणि को लेकर ब्रह्माजी के पास जाते हैं। ब्रह्मा सबको शान्त करते हैं। अन्तिम सन्देश है– या तो यान्त्रिक विज्ञान पर नियन्त्रण किया जाय नहीं तो १०० वर्ष में पृथ्वी ध्वस्त हो जायेगी। इस नाटक का प्रकाशन रुपकचक्रम् में किया गया था।

शतानन्द– (ना.पा.) रामायण में जनकपुर के राजा जनक के पुरोहित। इनका पात्रों में समावेश (१) महावीर चरित, (२) अनर्घराधव, (३) प्रसन्नराघव इन राम विषयक नाटकों में किया गया है।

शम्बूक– (ना.पा.) उत्तररामचरित का एक पात्र जो शूद्र होते हुये भी तपस्या कर रहा था। उसे मारने के लिये राम दण्डक वन को गये थे।

शरणार्थिसंवादः– (ना.कृ.) वीरेन्द्र कुमार भट्टाचार्य लिखित नाटक। बंगलादेश की स्वतन्त्रता के बाद वहां की दशा का चित्रण इसका विषय है। इसमें पाकिस्तान के

अत्याचारों से छुटकारा दिलाने में भारतीयों की सहृदयता का चित्रण किया गया है। इसमें हर्ष, शोक, द्वेष, उदारता इत्यादि भावनाओं के चित्रण के साथ व्यङ्ग्य का भी सहारा लिया गया है।

शरभविजयम्– (ना.कृ.) नारायण शास्त्री लिखित एकाङ्की नाटक।

शरभोजी– (ना.टी.का.) मराठा सम्राट्। इनके दरवार में संस्कृत के अनेक कवि और कलाकार विद्यमान थे। इन्होंने स्वयं मुद्राराक्षस की शब्दावली पर कार्य किया था।

शर्मिष्ठाययाति– (ना.कृ.) यह एक अंक (उत्सृष्टिकांक) है जिसकी रचना अभिनय के मन्तव्य से भरत ने की थी। इसका अभिनय स्वर्ग में नहुष के दरवार में किया गया था जब इन्द्र को वृत्रवध के प्रायश्चित के लिये इन्द्रासन से हट जाना पड़ा था और नहुष इन्द्रासन के अधिकारी बन गये थे। यह पुस्तक अब उपलब्ध नहीं होती।

(२) **शर्मिष्ठा ययाति**– (ना.कृ.) इसका उल्लेख विश्वनाथ के साहित्य दर्पण में किया गया है। वहां पर विश्वनाथ ने इसे अंक (उत्सृष्टिकांक) के उदाहरण के रूप में उल्लिखित किया है। कहा नहीं जा सकता विश्वनाथ का अभिप्राय किसकी रचना से है। कृष्णकवि (भागवत कृष्ण) के नाम पर इस नाम की रचना कही जाती है। इस विषय की एक दूसरी रचना ययातिचरित रुद्रदेव (प्रताप रुद्रदेव) के नाम पर भी प्रसिद्ध है। अतः यह निश्चय करना कठिन है कि इन दोनों में किस रचना से विश्वनाथ का अभिप्राय है। इन दोनों से भिन्न कोई अन्य नाटक भी अभिप्रेत हो सकता है।

(३) **शर्मिष्ठाययाति**– (ना.कृ.) भागवत कृष्ण (दे.) लिखित नाटक। इसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम खण्ड १ सं. ६३८ पर किया गया है। भागवतकृष्ण कवि के नाम पर उद्धतवृकोदर (दे.) नामक नाटक भी पाया जाता है। हो सकता है ये दोनों भागवत कृष्ण एक ही व्यक्ति न हों। हो सकता है इनमें एक व्यक्तित्व शेषकृष्ण से अभिन्न हो।

(१) **शर्मिष्ठा विजयम्**– (ना.कृ.) नारायण शास्त्री (दे.) लिखित एक नाटक। इसमें चार अंक हैं। नाट्य विषय के रूप में महाभारत की शर्मिष्ठा ययाति की कथा का उपादान किया गया है। इसमें शर्मिष्ठा और ययाति का विवाह दिखलाया गया है। इसका प्रकाशन मद्रास और चिदम्बरम् से हुआ है। इसका मुख्य रस उत्तान शृङ्गार है, जिसमें हास्य का भी पुट है। लोकोक्तियों का भी प्रयोग किया गया है। शुक्राचार्य इत्यादि भी पात्र रूप में मंच पर आते हैं। मदिरा में मत्तचेट विदूषक को प्रेयसी समझ लेता है।

(२) **शर्मिष्ठा विजयम्**– (ना.कृ.) नारायण शास्त्री (दे.) (१) लिखित चार अंकों का नाटक।

शर्विलक– (ना.पा.) शूद्रक (दे.) द्वारा रचित मृच्छकटिक के प्रमुख पात्रों में एक। यह हमारे सामने कई रूपों में आता है। यह प्रेमी है, अच्छा मित्र है, क्रान्तिकारी है, वीर है, विवेकशील है, स्वार्थसाधन के लिये चोरी जैसा गर्हित काम भी करता है, दीनता की

अपेक्षा चोरी करने को भी अच्छा समझता है। उसकी प्रेमिका वसन्तसेना की दासी मदनिका है जिसे छुटकारा दिलाने के लिये वह चारुदत्त के यहां चोरी करता है और संयोगवश वसन्तसेना के जेवर ही चुरा लेता है। चोरी करने के अवसर पर भी उसे यह दुष्कर्म टीसता अवश्य है। वह एक सच्चा मित्र है, जैसे ही वह सुनता है कि उसका मित्र आर्यक बन्दी बना लिया गया है वह अपनी कठिनता से पाई हुई प्रेमिका को भी मित्र के यहां छोड़कर आर्यक को बचाने चल देता है। वह वीर है- आर्यक को जेल से छुड़ा लेना उसी का काम है ! वह वेष बनाने और अनेक भाषायें बोलने में निपुण है। सफल क्रान्तिकारी है। राजा के महल में घुसकर राजा का वध करता है और चटपट आर्यक का तिलक भी कर देता है। अनेक गुणों के होते हुये चोरी करना उसका एक दोष है जिसका उसे ज्ञान भी है। किन्तु चोरी वह अपने प्रेम के लिये करता है। उसने चोरी करने की कला योगाचार्य नाम के किसी आचार्य से विधिवत् सीखी है। इसीलिये पढ़े हुये नियमों को यादकर कर वह उनका प्रयोग करता है। वह बड़े से बड़े काम के लिये जी जान से जुट जाता हे, तत्काल निर्णय लेता है। वह स्वाधीनता को इतना महत्व देता है कि निन्दित होने में भी बुराई नहीं समझता। उसे सबसे बुरा काम मालूम पड़ता है किसी के सामने हाथ फैलाना। वह कलाभिज्ञ और कलाप्रेमी भी है। सेंध काटने में भी वह कला का ध्यान रखता है। उसने जैसी सेंध की आकृति बनाई है उसकी प्रशंसा चारुदत्त भी करता है। मानव सुलभ ईर्ष्या उसके अन्दर भी है। जब मदनिका चारुदत्त की प्रशंसा करती है तब उसे अच्छा नहीं लगता और बिगड़ पड़ता है। वह स्त्रियों और वेश्याओं को बुरा भला कहता है। उसे धर्म का ज्ञान है और जब वह चोरी जैसा दुष्कर्म कर रहा होता है उस समय भी उसका ध्यान इस ओर रहता है कि वह गलत काम कर रहा है। किन्तु उस गलत काम को भी वह पूरी लगन से करता है। क्योंकि उसकी भावुकता उसकी धर्मभावना पर हावी है। वह समाज के ऐसे व्यक्तियों का प्रतिनिधि है जो अच्छे चरित्र वाले कहे जा सकते हैं, मित्रता निभाने वाले होते हैं और आवश्यकता पड़ने पर कठिन से कठिन काम कर गुजरने में संकोच नहीं करते। यदि आवश्यकता पड़ जाती है तो बुरे काम को भी निःस्सङ्कोच भाव से करते हैं।

शल्य– (ना.पा.) भास (दे.) के कर्णभार (दे.) का पात्र। महाभारत में शल्य का उद्देश्य कर्ण के उत्साह को कम करना और अर्जुन की विजय की परिस्थिति तैयार करना है। किन्तु कर्णभार में वह अपने सारथी होने का उत्तरदायित्व पूर्ण रूप से निभाता है। वह कर्ण को कुण्डल कवच देने से रोकता है यद्यपि कर्ण उसकी बात मानते नहीं। कर्ण को भी उस पर विश्वास है और कर्ण निस्सङ्कोच भाव से उसे परशुराम के शाप की और अपने छल की बात सुना देता है।

शशिकला परिणय– (ना.कृ.) ऋद्धिनाथ झा (दे.) के लिखे इस नाटक को यज्ञोपवीत का अभिधान भी प्रदान किया जाता है। इसमें भक्त सुदर्शन का शशिकला से विवाह

रूपकायित किया गया है। मिथिलाधिपति कामेश्वर सिंह के भतीजे जीवेश्वर सिंह के यज्ञोपवीत के अवसर पर इसका अभिनय किया गया था। इसीलिये नाटक को यज्ञोपवीत का अभिधान प्राप्त हुआ। इसकी रचना १९४१ में और दरभंगा से प्रकाशन १९४७ में किया गया।

शशिशारदीयम्– (ना.कृ.) नारायण शास्त्री (दे.) लिखित ६ अंकों का नाटक।

शाहजीराजविलासनाटकम्– (ना.कृ.) तंजौर साहित्य में परिगणित साहित्य राशि में किसी अज्ञात लेखक की नाट्यकृति।

शाकुन्तलम्– (ना.कृ.) दे. अभिज्ञान शाकुन्तलम्।

(१) **शान्ति–** (ना.पा.) प्रबोधचन्द्रोदय का एक पात्र। यह श्रद्धा की पुत्री है और अपनी मां से विछुड़ जाती है। महामोह उसे बन्दी बनाना चाहता है। मां के वियोग से यह अत्यन्त दु:खी है– यहां तक कि आत्महत्या करने को तैयार हो जाती है। उसे इस कार्य से उसकी सहेली करुणा बचाती है। शान्ति सखी करुणा के साथ माँ की खोज में निकल पड़ती है। वह दिगम्बर-जैन, बौद्ध, कापालिक इत्यादि अनेक परिवारों में तलाश करती है। उन सबके पास उनकी पत्नियां हैं जिन्हें वे सब श्रद्धा के नाम से पुकारते हैं, किन्तु उनमें शान्ति को अपनी मां श्रद्धा नहीं मिलती। वे सब श्रद्धायें बिगड़ी हुई हैं। अत: वे उसकी मां नहीं हो सकती। जैनधर्म इत्यादि सभी श्रद्धा की पुत्री शान्ति की खोज में लगे हैं किन्तु शान्ति उन्हें कहीं नहीं मिलती। दूसरी ओर शान्ति उपनिषद् और विवेक का सफलता पूर्वक मेल कराती है जिससे विद्या (पुत्री) और प्रबोध (पुत्र) का जन्म होता है। शान्ति को यज्ञविद्या, मीमांसा, सांख्य, न्याय इत्यादि से बहुत कष्ट मिलते हैं किन्तु वह उसे प्राप्त नहीं होती।

(२) **शान्ति–** (ना.पा.) महामोह पराजय (दे.) में विवेकचन्द्र की पत्नी जिसकी पुत्री कृपासुन्दरी का विवाह राजा कुमारपाल से होता है और उसके विवाह का परिणाम होता है धर्मराज्य की स्थापना।

शान्तिचरित– (ना.कृ.) एक बौद्ध नाट्यकृति जिसका उल्लेखमात्र प्राप्त होता है किन्तु उसके कर्ता या विषय वस्तु का कोई पता नहीं।

शान्ति भिक्षु– (ना.पा.) मत्तविलास (दे.) प्रहसन का एक पात्र। वह बौद्ध भिक्षु है और बुद्ध वचनों की अपनी स्वतन्त्र व्याख्या करता है।

शान्तिरस– (ना.कृ.) यह प्रतीक नाटक की श्रेणी में आने वाली प्रतीक रचना है। इसकी रचना वैकुण्ठपुरी (उपनाम विष्णुपुरी) ने की थी। इसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम १.५९१ पर किया गया है।

शाप– (ना.पा.) बालचरित में कंस को दिया गया मधूक ऋषि का मानवीकृत शाप चाण्डाल वेष में चाण्डाल युवतियों के साथ राज प्रसाद में घुसने की चेष्टा करता है जहां

वह राज्यश्री द्वारा रोक दिया जाता है। तब शाप विष्णु की आज्ञा बतलाने पर अन्दर जाने दिया जाता है जो वहां जाकर कंस की शक्ति को निगल जाता है जो एक अपशकुन है।

शामशास्त्री आर. (डा.) – (ना.अनु.का.) इन्होंने लेसिंग की एमेलिया कैलेट्टी का संस्कृत के अनुवाद किया था। (दे. अमीलिया गलन्ति)।

शारदा– (ना.का.) यह एक कवयित्री है। सालुव नरसिंह ने रामाभ्युदय काव्य में इनका उल्लेख करते हुये लिखा है कि इन्होंने १८ नाटक लिखे और प्राकृत काव्यों की भी रचना की। शारदा का इतना विस्तृत साहित्य प्रकाश में नहीं आया है। यह सम्भवतः राजघरानों के पुस्तकालयों में विखरा पड़ा होगा।

सालुव नरसिंह विजय नगर के राजा, कवियों साहित्यकारों एवं नाटककारों के आश्रयदाता तथा स्वयं कवि थे। इनका समय १५वीं शताब्दी का उत्तरार्ध है। अतः शारदा का समय भी इसी के आस पास होना चाहिए। रामाभ्युदय में शारदा विषयक निम्नलिखित पद्य पाया जाता है–

गद्यपद्यमयैः काव्यैस्साष्टादशनाटकैः।

साकं प्राकृतकाव्यैश्च साहित्यं शारदाभ्यधात्॥

शारदाचन्द्रिका– (ना.कृ.) शारदातनय के भावप्रकाशन में लिखा है कि वाण भट्ट ने इसमें चन्द्रापीड के कथानक को लेकर इसकी रचना की थी। दशरूपक में उत्सृष्टिकाङ्क के उदाहरण के रूप में इसका उल्लेख किया गया है। वहां इसे भट्टवाण की कृति बतलाया गया है। दशरूपक के अनुसार इसमें चन्द्रापीड के प्रत्युज्जीवन पर्यन्त कथानक का उपादान किया गया है।

शारदातनय द्वारा उल्लिखित नाटक रचनायें– (ना.सा.) अब्धिमन्थनम्, अमृतमन्थनम्, इन्दुलेखा, उदात्तकुञ्जरम्, कलिकेलि, कुन्दमाला, गंगाभागीरथम्, गौडविजय, तरंगदत्ता, तारकोद्धरणम्, त्रिपुरदाह, त्रिपुरमर्दनम्, देवीपरिणयम्, देवीमहादेवम्, नलविक्रमम्, नृसिंहविजय, पद्मावतीपरिणय, बालिवध, मदलेखा महानाटकम्, माणिक्य वल्लिका, मारीचवञ्चितकम्, मेनकानहुषम्, रामाराधा, वीणावती, वृत्तोत्तरणम्, शारदचन्द्रिका, शृङ्गारतिलकम्, सैरन्ध्रिका, सौभद्रिका, स्तम्भितरम्भकम्, स्वप्नवासवदत्तम्।

शारदातिलक– (ना.कृ.) १. दे. शङ्कर कवि (१) (२) दे. शेषगिरि। इस भाण का उल्लेख मैसूर की ओरियण्टल लायब्रेरी के संस्कृत पाण्डुलिपि अनुभाग सं. २८४ में किया गया है।

शारदानन्दन– (ना.कृ.) एक भाण। इसकी रचना कौशिकगोत्रीय श्रीनिवासाचार्य ने की थी। मद्रास की ओरियण्टल लायब्रेरी में संस्कृत पाण्डुलिपि अनुभाग में यह प्राप्य है। इस अनुभाग के विवरणात्मक सूचीपत्र में सं. ११८५३३ पर इसका विवरण दिया गया है।

शारद्वत- (ना.पा.) अभिज्ञान शाकुन्तल में कण्व का शिष्य। यह स्वभाव से गम्भीर एवं मितभाषी है। केवल सारगर्भित आवश्यक बात करता है। जब देखता है कि शार्ङ्गरव की बातचीत से अनर्थ हो जाने की सम्भावना है तब वह शार्ङगरव को बीच में ही रोक देता है- 'ज्यादा उत्तरप्रत्युत्तर की आवश्यकता नहीं। हमें जो कुछ कहना था कह दिया। शकुन्तला! अब तुम अपनी सफाई दो।' जब शार्ङ्गरव क्रोध पूर्ण बातें करता है और यहां तक कह देता है कि इस अधार्मिक कार्य से राजा को पतन ही प्राप्त होगा, तब बात बिगड़ते देखकर वह उपसंहार रूप में दो टूक बात कह देता है- 'आओ शार्ङ्गरव चलें, और राजा से कहता है- 'राजन् यह आपकी पत्नी है- इसे छोड़ें या स्वीकार करें। पत्नी पर पति का पूरा अधिकार होता है।'

शारद्वतीपुत्रप्रकरणम्- (ना.कृ.) दे. शारिपुत्रप्रकरण।

शारिपुत्र- (ना.पा.) बौद्ध अश्वघोष लिखित नाटक शारिपुत्र प्रकरण का एक पात्र। दे. शारिपुत्र प्रकरण।

शारिपुत्रप्रकरण- (ना.कृ.) बौद्धकवि अश्वघोष (दे.) की यह नाट्य कृति बहुत समय तक छिपी पड़ी रही। प्रो. लूडर्स ने तुर्फान के ताम्रपत्रों का अनुसन्धान करते हुये इसे खोज निकाला। कनिष्क के दरवारी कवि की रचना होने के कारण इसका रचनाकाल प्रथम शती ई. के आसपास माना जाताहै। यह नौ अंकों का एक नाटक है जिसमें अन्तिम पुष्पिका सुरक्षित है जो नाटक को अश्वघोष कृत प्रमाणित करती है। इसके कुछ उच्छिन्न अंश ही प्राप्त हुये हैं। इसमें युवक मौद्गल्यायन और शारिपुत्र का बुद्ध द्वारा मत परिवर्तन दिखलाया गया है। बुद्ध द्वारा दोनों शिष्यों के महत्तम ज्ञानी और सिद्ध होने की भविष्यवाणी के साथ नाटक की समाप्ति होती है। यह नाटक प्रविधि में नाट्यशास्त्र की प्रतिष्ठित परम्परा से मेल खाता है। इसमें प्रयुक्त प्राकृत परवर्ती नाटकों की प्राकृत से प्राचीनतर है। नाटक का नायक शारिपुत्र है जो धीरशान्त नायक कहा जा सकता है। वस्तु शृङ्गार रस से शान्त की ओर प्रवाहित होती है। इसका ही नामान्तर शारद्वतीपुत्रप्रकरण भी है। कथासार इस प्रकार है- 'शारिपुत्र अश्वजित् से मिलने जाता है। वहां दोनों का मित्र विदूषक से इस विषय में विवाद होता है कि बुद्ध का शिक्षक होने का दावा कहां तक उचित है?' उसका कहना है कि 'मेरा स्वामी एक ब्राह्मण है, वह एक क्षत्रिय से शिक्षा कैसे ले सकता है?' इस पर दूसरी ओर से उत्तर दिया जाता है कि एक शूद्र वैद्य की दवा भी रोगी को लाभ पहुंचाती है और एक शूद्र के दिये हुये जल से भी प्यास शान्त होती है। मौद्गल्यायन शारिपुत्र का स्वागत करता है और आने का कारण पूछता है। फिर उसके मन्तव्य को जानकर दोनों बुद्ध के पास जाते हैं। बुद्ध उनका स्वागत करते हैं और भविष्य वाणी करते हैं कि मेरे सब शिष्यों में तुम अत्यन्त ज्ञानवृद्ध सिद्ध होगे और तुम लोगों की मन्त्रशक्ति अत्यन्त बढ़ी चढ़ी होगी। इसके बाद शारिपुत्र और बुद्ध का दार्शनिक संवाद चलता है जिसमें किसी स्थायी आत्मा के प्रति विश्वास के प्रतिकूल एक विधि

समस्त सिद्धान्त का निश्चय किया जाता है। अन्त में बुद्ध अपने दोनों शिष्यों की प्रशंसा करते हैं और आशीर्वाद के साथ नाटक समाप्त हो जाता है।

इस नाटक के केवल अन्तिम दो अंक प्राप्त होते हैं। इससे इतना प्रकट हो जाता है कि इस नाटक में ९ अंक थे। इसका पूरा परिचय देना सम्भव नहीं है। जितना भी अंश प्राप्त हुआ है उससे यह तो सिद्ध हो जाता है कि अश्वघोष काव्यकला के समान नाट्यकला में भी सिद्धहस्त रचनाकार थे। प्राप्त अंश से ज्ञात हो जाता है कि इस नाटक का श्रोत विनय पिटक के महावग्ग का मौद्गल्यायन उपाख्यान रहा होगा जिसमें मौद्गल्यायन और उनके मित्र शारिपुत्र का संवाद दिया हुआ है। इससे निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि सम्पूर्ण नाटक के कथानक का उपादान बौद्ध धर्मग्रन्थ के त्रिपिटक से ही किया गया होगा।

शार्ङ्गरव– (ना.पा.) अभिज्ञान शाकुन्तल (दे.) में कण्व का शिष्य। कण्व ने शकुन्तला को पति के घर पहुंचाने के लिये जिन दो शिष्यों को नियुक्त किया था उनमें एक यह भी है। यह लोक व्यवहार में निपुण व्यक्ति है और साहस के साथ अपनी बात निस्सङ्कोच रूप से कह सकता है। अवसर के अनुसार तत्काल निर्णय लेने की योग्यता भी उसमें है। कण्व उसकी योग्यता से परिचित है अतः उसे ही राजा से सन्देश निवेदन करने के लिये समझाते हैं। वह अपना उत्तरदायित्व पूर्ण योग्यता से निभाता भी है जिसमें वह मर्यादा का पूरा ध्यान रखता है। जब राजा उसके और दूसरे मुनिजनों के कुशल के विषय में प्रश्न करते हैं तब वह यही कहता है– 'आप जैसे रक्षक को पाकर हम मुनिजनों का अकुशल कैसे हो सकता है?' किन्तु जब राजा कण्व की कुशल पूछता है तब गुरु के गौरव का ध्यान रखते हुये उत्तर देता है– 'जो लोग सिद्धि प्राप्त कर चुके हैं उनकी कुशल किसी अन्य व्यक्ति के हाथ में नहीं होती, कुशलता तो उनके आधीन होती है।' वह निपुणता के साथ कण्व की ओर से शकुन्तला को ले आने का सन्देश देता है और व्यवहार की बात कहता है– 'लड़की यदि बहुत दिनों पिता के यहां रहती है तो चाहे वह कितनी ही सदाचारणी हो लोग उसके चरित्र पर शंका करने ही लगते हैं। अतः वह प्यारी हो या न हो वधू के अपने बन्धु बान्धव यही चाहा करते हैं कि लड़की पति के ही यहां रहे।' किन्तु जब उसे ज्ञात होता है कि राजा तो इसी बात से इन्कार कर रहा है कि उसने कभी शकुन्तला से प्रेम किया था तब इस बात की परवा न कर कि वह राजा से बात कर रहा है दो टूक साफ साफ कह देता है कि जो लोग ऐश्वर्य के नशे में बेहोश हो जाते हैं और कर्तव्य अकर्तव्य नहीं समझते उनके अन्दर ये बुराइयां आ ही जाती हैं। वह सत्य बोलने मे जरा भी संकोच नहीं करता और राजा को एक डाकू तक की उपमा दे देता है। राजा के प्रति ही नहीं शकुन्तला के प्रति भी उसके मन में न मोह है न कठोर होने में उसे कुछ संकोच होता है। वह स्पष्ट कह देता है– 'यदि राजा सच कहता है और तुम दुराचारिणी हो तो तुम्हें लेकर हम क्या करेंगे? यदि तुम समझती हो कि तुम्हारा

व्रत पवित्र है तो पति के यहां सेवा टहल करना भी तुम्हारे लिये उचित है।'

जब देखता है कि बात बन नहीं रही है कोमल होकर कुछ समझाने के मन्तव्य से कहता है- 'आप परस्त्री समझकर इसे स्वीकार करना नहीं चाहते क्योंकि आप अधर्म से डरते हैं। यह हो सकता है कि राजकीय व्यस्तता के कारण आप पुरानी घटना भूल गये हों ते क्या अपनी पत्नी के परित्याग का आपको पाप नहीं लगेगा?' और बात बन जाती है। राजा इसके लिये राजी हो जाता है कि प्रसवपर्यन्त शकुन्तला पुरोहित के यहां रहे। फिर प्रसूति के लक्षण देखकर निर्णय कर लिया जायेगा। वह वरिष्ठ स्नातक है और बिना पिता की राय लिये इस अवसर पर स्वयं निर्णय कर लेता है। मातृस्थानीय गौतमी उपस्थित है। किन्तु वह भी निर्णय के लिये उसी का मुख देखती है। घर के ज्येष्ठ भाई के कर्तव्य का वह अत्यन्त निपुणता के साथ निर्वाह करता है। यदि उसके निर्णय के अनुसार शकुन्तला राजकुल में मौजूद रहती और अंगूठी मिलने पर राजा की विस्मृति समाप्त हो जाती तो बात बन ही जाती। किन्तु नियति पर किसका वश!

शार्दूल शटकम्- (ना.कृ.) वीरेन्द्र भट्टाचार्य लिखित ५ अंकों का नाटक। इसमें नवीन वातावरण का चित्रण किया गया है। परिवहन संस्था के कर्मचारी हड़ताल करते हैं जिनसे परिवहन संस्थाध्यक्ष का जैसे तैसे समझौता हो जाता है और बसें पुनः चालू हो जाती हैं। किन्तु कुछ ही दिनों बाद कलकत्ता इत्यादि शहरों में खबर आने लगती है कि मजदूर फिर हड़ताल पर जाने वाले हैं। मजदूरों ने हड़ताल के लिये अवसर इसलिये चुना है कि गवर्नर और मैजिस्ट्रेट परिवहन कर्मचारियों को सम्बोधित करने वाले हैं जिस आयोजन की पूरी तैयारी हो चुकी है। आमन्त्रण पत्र भी बंट गये हैं। मजदूर इस आयोजन को विफल करने की धमकी से लाभ उठाना चाहते हैं। एक हड़ताली मारा भी जाता है। मजदूर जुलूस बनाकर राजभवन तक जाते हैं। विवश होकर परिवहन के अध्यक्ष मजदूरों की मांग मान लेने का आश्वासन देकर हड़ताल तुड़वा देते हैं।

इस नाटक में टेलीफोन पुलिस के अत्याचार, मदिरापान इत्यादि वर्तमान परिस्थितियों और समस्याओं का चित्रण किया गया है।

इस नाटक का प्रकाशन १९६९ में संस्कृत साहित्य परिषद् कलकत्ता से हो गया था।

शार्दूल सम्पात- (ना.कृ.) व्यासराज शास्त्री लिखित व्यायोग जिसमें विश्वामित्र द्वारा यज्ञरक्षा के लिये दशरथ के पुत्रों की याचना को रूपायित किया गया है।

शालिग्राम द्विवेदी- (ना.का.) बम्बई के २० वीं शताब्दी के नाटककार। इन्होंने भ्रान्तभारतम् नाटक की रचना की।

शिगभूपाल द्वारा उल्लिखित नाटक- (ना.सा.सं.) कुर्नूल जिले में विन्ध्याचल और श्री सैल के मध्य लगभग १४वीं शताब्दी में एक विस्तृत क्षेत्र के शासक शिगभूपाल

ने रसार्णव सुधाकर में कई प्रकरणों का उल्लेख किया है जिनमें कतिपय हैं- कन्दर्प सम्भव, कामदत्ता, महेश्वरानन्द, रामानन्द और वीरानन्द।

शिवि वैभवम्- (ना.कृ.) जग्गू सिंग्रैया द्वारा राजा शिवि और कपोत की पौराणिक कथा को लेकर लिखा गया तीन अंकों का नाटक। इसकी रचना स्वतन्त्रता दिवस के स्मरणोत्सव पर अभिनय के लिये की गई थी। इसका प्रकाशन १९६१ में संस्कृत प्रतिभा में किया गया था।

शिव- (ना.पा.) भरतमुनि ने त्रिपुरदाह नामक डिम का उल्लेख किया है। अब यह रचना उपलब्ध नहीं होती। (१) **वत्सराज के त्रिपुरदाह** में शिव का चित्रण किया गया है। किन्तु इसमें उनके रुद्र रुप की अपेक्षा शालीन रूप का चित्रण अधिक है। कुमार विजय की ओर बढते जा रहे हैं कि इनका एक आदेश उन्हें वहीं पर रोक देता है। इनके विरोधी दैत्यों के गुरु शुक्राचार्य भी इनकी मर्यादापालन, शालीनता और अनुशासन की प्रशंसा करने के लिये वाध्य हो जाते हैं।

(२) भास्कर यज्वा लिखित **कुमार विजय** (दे.) और (३) घनश्याम लिखित **कुमार विजय** में भी इनका पात्र रूप में उपादान हुआ है।

शिव- (ना.क़ा.) एई.गफ के एन्शेट संस्कृत लिटरेचर के अभिलेख में इनका उल्लेख किया गया है। उसके अनुसार इनका लिखा विवेकचन्द्रोदय (दे.) एक प्रतीक नाटक है। (दे. एई.गफ प्राचीन संस्कृत साहित्य के अभिलेख सं. १०६)

शिवश्याम सुन्दरी परिणय नाटकम्- (ना.कृ.) तंजौर साहित्य में परिगणित एक अज्ञात कर्तृक रचना।

शिवदत्त त्रिपाठी- (ना.क़ा.) इनका निवास स्थान अजमेर के निकट पुष्कर था। रचनाकाल २० वीं शताब्दी का पूर्वभाग। इन्होंने धार्मिक विषयों पर अनेक पुस्तकें लिखीं थीं जिनमें रामायण, महाभारत, श्रीकृष्ण चरित्र, दुर्गाचरित्र, सूर्यस्तवम् के अतिरिक्त कर्मकाण्ड और नीति इत्यादि अनेक विषय सम्मिलित हैं। इन रचनाओं में 'दुर्वासस्तृप्तिस्वीकारः' (दे.) नाटक भी सम्मिलित है।

शिवदूतम्- (ना.कृ.) नारायण शास्त्री (१) लिखित ६ अंकों का नाटक।

शिवनन्दन- (ना.क़ा.) बिहार के २० वीं शताब्दी के कवि; इनका लिखा गजानन चरित नाटक बतलाया जाता है।

शिवनारायणदास- (ना.क़ा.) 'नन्दिघोष विजयम्' शीर्षक नाटक के लेखक। रचनाकाल १६ वीं शताब्दी।

(१) **शिवनारायण भंज महोदयम्**- (ना.कृ.) उड़ीसा निवासी नरसिंह कवि की ५ लोकों की रचना। (इस नाटक में अंक के स्थान पर लोक शब्द का प्रयोग किया गया है।) यह नाटक क्योंझर के राजा शिव नारायण के सम्मान में लिखा गया है। इस नाटक

का विषय तत्व चिन्तन है। इसे संक्षेप में शिवनारायण महोदय भी कहा जाता है। इसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम III १३४ पर किया गया है।

(२) **शिवनारायण भंजमहोदय**– (ना.कृ.) उड़ीसा के अज्ञात लेखक की रचना। यह उक्त रचना से सम्भवतः भिन्न है।

शिवनारायण महोदय– (ना.कृ.) दे. शिव नारायण भंज महोदय (१)।

शिवभक्तानन्द– (ना.कृ.) बालकवि (दे.) लिखित नाटक। इसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम सं. १.६५० पर किया गया है।

शिवराज्याभिषेक– (ना.कृ.) श्रीधर भास्कर वर्णेकर (दे.) लिखित ७ अंकों का नाटक। यह २०वीं शताब्दी की रचना है। यह शिवजी के राज्याभिषेक के त्रिशताब्दी समारोह में अभिनय के लिये लिखा गया था। इसका प्रकाशन वसन्तगाडगिल ने पूना से करा दिया था।

शिवरामकृष्ण– (ना.का.) इनका जन्म गौतमगोत्र में हुआ था। इन्होंने अनङ्गविजय (दे.) भाण की रचना नरेश महिपाल एवं उनके पुत्र कृष्ण युवराज के आग्रह पर की थी जिसका अभिनय वमलूर में किया गया था।

शिवलिंग सूर्योदय– (ना.कृ.) यह मल्लारि आराध्य (दे.) का लिखा प्रतीक नाटक है। इसमें ५ अंक हैं। वीरशैव सम्प्रदाय की महत्ता स्थापित करने के मन्तव्य से इसकी रचना की गई थी। कण्डुकूरि वंश के वासवेश्वर के लिये लेखक ने इसे लिखा था। सम्भवतः वासवेश्वर एक स्थानीय सामन्त थे। मद्रास की ओरियण्टल लायब्रेरी के ट्रायेनियल कैटेलाग (संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट) के III ८१२५ में इसका उल्लेख है।

शिवस्वामी– (ना.का.) कल्हण ने लिखा है कि काश्मीर के अवन्तिवर्मा के शासनकाल (८५५-८८३) में शिवस्वामी कवि एवं नाटककार के रूप में प्रतिष्ठित थे। ये कवि रत्नाकर के समसामयिक थे। इन्होंने अनेक नाटकों, नाटिकाओं और प्रकरणों की रचना की। परन्तु अब वे कृतियां उपलब्ध नहीं होतीं। अब केवल इनका नाम और यश ही शेष रह गया है। सुभाषितसंग्रह में इनका केवल एक पद्य पाया जाता है।

शिवाजी– (ना.का.) ये तंजौर के राजा तथा शरभोजि के पुत्र थे। इनका राज्यकाल १८३३-१८५५ तक था जबकि इनकी मृत्यु १८६५ में हुई थी। इनका लिखा नटेश विलास (दे.) पौराणिक कथा पर आधारित एक नाटक है। इन्दुमतीपरिणय (दे.) भी सम्भवतः इन्हीं शिवाजी की रचना है।

शिवाजिचरित्रम्– (ना.कृ.) हरिदास सिद्धान्त वागीश लिखित १० अंकों का नाटक। इसमें शिवाजी महाराज के चरित्र का चित्रण किया गया है। शिवाजी के चरित्र के द्वारा जनता में देशभक्ति जगाना इस नाटक का उद्देश्य है। इसमें अनेक गीतों और छायातत्व का प्रयोग किया गया है। लम्बी एकोक्तियों से कथानक का परिचय देना इसकी अन्यतम

विशेषता है। निर्वाह में नवीनता के भी दर्शन होते हैं। पारिपाश्विक तिरंगा लेकर रंगमञ्च पर आता है, मञ्च पर ही सर्कस दिखलाने की योजना की गई है। जयन्ती देवी स्त्रियों की सभा सजाती है। मञ्च पर ही शवयात्रा दिखलाई जाती है। इसकी रचना १९४५ में हुई थी।

शिवाजिविजयम्– (ना.कृ.) रंगाचार्य लिखित दो अंकों का एक प्रेक्षणक (ओपेरा)। इसमें आगरा में शिवजी के बन्दी होने से लेकर साधु वेष में राजधानी पहुंचने तक घटना का चित्रण किया गया है। इसमें नान्दी और भरत वाक्य नहीं है। प्रस्तावना भी नहीं है। पद्यों का प्रयोग नहीं किया गया है। संवाद कुछ लम्बे हो गये हैं।

इसका प्रकाशन कलकत्ता से सन् १९३८ में साहित्यपरिषद्पत्रिका के अन्तर्गत हो गया था।

शिवाभ्युदय– (ना.कृ.) श्यामवर्ण द्विवेदी (दे.) लिखित नाटक।

शिशुपाल– (ना.पा.) रुक्मिणीहरण (दे.) नाटक का एक पात्र। रुक्मिणी इसकी वाग्दत्ता है जिसका कृष्ण सफलतापूर्वक अपहरण करते हैं। उसे रुक्मी की सहायता प्राप्त है फिर भी कृष्ण के सामने पराजय का मुख देखना पड़ता है।

शिशुविनिमयम्– (ना.कृ.) नारायणशास्त्री लिखित ६ अंकों का नाटक।

शीतलचन्द्र– (ना.का.) इनका लिखा घोषयात्रा नामक डिम कलकत्ता से प्रकाशित हो चुका है। इसका रचना काल १९वीं शताब्दी का मध्य भाग है।

शीतसूर्य– (ना.कृ.) नरसिंहाचार्य स्वामी (दे.) लिखित नाटक।

शुकाभिपतन– (ना.कृ.) श्रीनिवास (दे.) की नाट्य रचना। मैसूर पुस्तकालय के पाण्डुलिपि अनुभाग (सं. २८४) में प्राप्य।

शुक्र– (ना.पा.) त्रिपुरदाह (दे.) में यह राक्षसों का गुरु है। फिर भी उदार व्यक्ति है और अपने विरोधी देवताओं के सेनानायक कुमार की इसलिये प्रशंसा करता है कि कुमार पिता के नियन्त्रण में है और मर्यादाओं का पालन करते हुये युद्ध करता है।

शुक्लेश्वर– (ना.का.) इनका उल्लेख हाल की दशरूपक की भूमिका में किया गया है। कैटेलागस कैटेलागोरम में भी १.६५८ पर इसका उल्लेख प्राप्त होता है। इनका लिखा नाटक प्रमाणादर्श है जो अभी तक साहित्य जगत के सामने आया नहीं है। अनुमान है कि यह एक प्रतीक नाटक होगा।

शुद्धसत्व– (ना.कृ.) मदभूसि वेङ्कटाचार्य (दे.) लिखित प्रतीकनाटक। इसमें विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है। कृष्णमाचार्य ने लिखा है कि इसकी प्रति गोदावरी जिला के रखोल गांव के निवासी संस्कृत के पण्डित पी.वी. सुब्रह्मण्य शास्त्री के पास है।

शुनः शेप– (ना.पा.) दे. पशुमेढ्र।

(१) **शूद्रक**– (ना.क्रा.) चतुर्भाणी में सङ्कलित पद्म प्राभृतक (दे.) भाण के लेखक। कहा नहीं जा सकता संकलनकर्ता का मन्तव्य मृच्छकटिक के लेखक शूद्रक से ही है या ये कोई दूसरे शूद्रक हैं।

शूद्रक– (ना.क्रा.) मृच्छकटिक नाटक के लेखक के रूप में प्रसिद्ध। संस्कृत साहित्य में शूद्रक का व्यक्तित्व अत्यन्त विलक्षण है। ये दो रूपों में हमारे सामने आते हैं– नाटककार के रूप में और प्रमुख पात्र (नायक) के रूप में। नाटककार के रूप में अपनी श्रेणी का अद्वितीय नाटक मृच्छकटिक प्रसिद्ध है। चतुर्भाणिका में समाविष्ट पद्मप्रभृतक भी इन्हीं के नाम पर बतलाया जाता है।

संस्कृत साहित्य में पौराणिक महा विभूतियों के बाद जिन व्यक्तियों को लोकोत्तर महत्ता प्राप्त हुई है तथा जिन्हें सामान्य कथा नायक के पद पर प्रतिष्ठित किया गया है उनमें उदयन और विक्रमादित्य के समान शूद्रक को भी महामानव के रूप में अधिष्ठित किया गया है तथा इन पर स्वतन्त्र रचनायें प्रस्तुत की गई हैं। कथा सरित्सागर में इन्हें शोभावती का राजा बतलाया गया है जिनके १०० वर्ष की आयु प्राप्त करने के लिये एक ब्राह्मण ने उपकार के बदले आत्मवलि दे दी थी। वेताल पञ्चविंशतिका में भी यही कथा आई है। किन्तु उसमें इन्हें वर्धमान का राजा बतलाया गया है। दशकुमारचरित और अवन्तिसुन्दरी कथा में इनके अनेक जन्मों के महान कार्यों का वर्णन किया गया है। हर्षचरित में चकोर के राजकुमार चन्द्रकेतु का इन्हें विरोधी बतलाया गया है। कादम्बरी इन्हें विदिशा का राजा बतलाती है। राजतरंगिणी ने इन्हें दृढ चरित्र का निदर्शन कहा है और विक्रमादित्य का पूर्ववर्ती बतलाया है। इनके जीवन के विषय में कई स्वतन्त्र कृतियां भी प्राप्त होती हैं जिनमें शूद्रकचरित (आख्यायिका) रामलसौमिल्ल लिखित शूद्रक कथा, पञ्चशिखलिखित शूद्रककथा (प्राकृत काव्य) विक्रान्तशूद्रक (एक नाटक) इन रचनाओं का उल्लेख किया जाता है। इस विषय में कई प्रश्न सामने आते हैं– क्या ये सब शूद्रक एक ही व्यक्ति थे? क्या रचनाकार शूद्रक और नायक शूद्र अभिन्न व्यक्ति हैं? क्या शूद्रक कोई ऐतिहासिक पात्र है या केवल काल्पनिक? इन प्रश्नों का निश्चयात्मक उत्तर अभी तक साहित्य जगत को प्राप्त नहीं हो सका है।

नाटककार शूद्रक का परिचय मृच्छकटिक के आमुख में दिया गया है जिसका सारांश यह है– 'शूद्रक नाम का एक परम तेजस्वी राजा हुआ जो अद्वितीय सौन्दर्य शाली होने के साथ ही द्विज मुख्य कवि था। ये वेद के विद्वान वैशिक शास्त्र एवं अश्वविद्या के विशेषज्ञ तो थे ही युद्ध में निरालस, विशेष उत्साही, हाथियों के युद्ध में अधिक आनन्द लेने वाले थे। इन्होंने अश्वमेध यज्ञ भी किया था और जब देखा कि पुत्र उन्नति की पराकाष्ठा पर पहुंच गया है तब उसे राज्य भार सौंपकर १०० वर्ष और १० दिन की आयु पूरी कर अग्नि समाधि ले ली। उन्हीं शूद्रक ने मृच्छकटिक नाटक की रचना की।

इतिहास में इन गुणों से सम्पन्न इस नाम का कोई राजा दृष्टिगत नहीं होता। इस

वर्णन को देखकर इतना प्रमाणित हो जाता है कि यह वर्णन स्वयं नाटककार का नहीं है और न इसमें शास्त्रानुगत इस परम्परा का स्वयं कवि ने पालन किया है कि आमुख में कवि अपना परिचय स्वयं देकर दर्शकों को रसास्वादन के लिये आकर्षित करे। इस वर्णन में तीन बातें ध्यान देने योग्य हैं– (१) इसमें प्रत्येक वाक्य के साथ 'किल' इस शब्द का प्रयोग किया गया है जिसका अर्थ होता है 'सुन रक्खा है पता नहीं सही भी है या नहीं। (२) इनमें 'वभूव' इत्यादि परोक्ष भूत का प्रयोग किया गया है जिसका आशय है कि शूद्रक की सत्ता बहुत पहले की बात है। लेखक ने उन्हें देखा नहीं था और (३) राजा की अग्नि समाधि का वर्णन है। जब राजा ने अग्नि समाधि ले ही ली तब मरने के बाद इन श्लोकों को बनाने के लिये वह पुनर्जीवित हो ही नहीं सकता था। इससे इस बात में सन्देह रह ही नहीं जाता कि इस नाटक में प्रस्तावना में कवि का परिचय नहीं था उच्छिन्न हो गया था और किसी परवर्ती कवि या अभिनय के अधिष्ठाता ने इस कमी को दूर करने के लिये इन पद्यों को इस रचना में जोड़ दिया, साथ ही 'किल' 'बभूव' इत्यादि शब्दों का प्रयोगकर और अग्निदाह की बात कहकर यह भी प्रकट कर दिया कि इस वर्णन की सच्चाई की जुम्मेदारी वह नहीं लेना चाहता। इन पद्यों का लेखक स्वयं एक अच्छा कवि था और अपने समय की प्रसिद्धि को स्थायित्व देने के लिये उसने उस प्रसिद्धि को पद्यबद्ध कर नाटक के प्रारम्भ में जोड़ दिया। साथ ही यह भी कहा जा सकता है इस प्रसिद्धि में कुछ न कुछ सच्चाई अवश्य होगी क्योंकि इसका लेखक भी एक प्राचीन व्यक्ति ही था और हो सकता है कि मूलनाटक की रचना से अधिक समय का व्यवधान न हुआ हो।

निश्चित प्रमाण के अभाव में विद्वानों ने इनके व्यक्तित्व के विषय में अनेक कल्पनायें की हैं–

(१) शूद्रक नाम की विलक्षणता के कारण प्रो. कोनो और डा. फ्लीट ने आन्ध्र के आभीर राजा शिवदत्त में शूद्रक के दर्शन किये हैं जिन्होंने आन्ध्रवंश के अन्तिम राजा का उच्छेद किया था अथवा उनके पुत्र ईश्वर सेन ने उस वंश का विनाश किया था। उनकी इस कल्पना के पक्ष में तर्क दिया जाता है कि मृच्छकटिक के पात्र आर्यक को गोपाल दारक कहना इस नाटक के कर्ता को शूद्रजाति का सिद्ध करता है। शूद्रक इस नाटक में आर्यक के रूप में विद्यमान है। (२) कुछ लोग आन्ध्र के शिशुक, शिमुक या शियुक में शूद्रक को देखते हैं। (३) अवन्तिसुन्दरी कथा में इन्द्राणिगुप्त को शूद्रक कहा गया है। अतः कुछ लोगों ने इन्द्राणिगुप्त को ही मृच्छकटिक का कर्ता शूद्रक माना है। (४) पं. चन्द्रवली पाण्डेय ने आन्ध्र वंशीय पुलुमावि को शूद्रक माना है क्योंकि पुलुमावि ही इन्द्राणिगुप्त है। किन्तु ये सारी कपोल कल्पनायें ही हैं। मृच्छकटिक का कर्ता नाम से तो शूद्रक है किन्तु 'द्विजमुख्यतमः' तपोधन' यज्ञकर्ता होने से ब्राह्मण सिद्ध होता है और समर व्यसनी होने से क्षत्रिय भी कहा जा सकता है। क्या उक्त राजा लोग हीन ग्रन्थि से पीड़ित

थे इसलिये उन्होंने उपनाम नहीं लिखा। किन्तु शूद्रक कहने से तो वह हीन ग्रन्थि और उजागर हो गई। कुछ लोगों ने यह भी माना है कि यह एक ऐसी रचना है जिसमें समाज और राजवर्ग की बुराइयों की खुलकर अभिव्यक्ति की गई है। अतः राजदण्ड के भय से लेखक ने अपना नाम प्रकट नहीं किया। किन्तु प्रस्तावना और अनेक कथानकों से तो ज्ञात होता है कि वह स्वयं राजा था। अतः राजदण्ड की बात कहना सर्वथा निरर्थक है।

कीथ ने शूद्रक का व्यक्तित्व सर्वथा काल्पनिक माना है और कहा है कि किसी परवर्ती कवि ने भास के दरिद्रचारुदत्त के कथानक में आर्यक के राजविद्रोह की कथा मिलाकर मृच्छकटिक का रूप खड़ा कर दिया। उस लेखक ने अपना नाम छिपाकर इसे शूद्रक के नाम से प्रसिद्ध कर दिया। कुछ लोगों ने माना कि लेखक ने अपना नाम इसलिये छिपाया क्योंकि वह अपनी रचना को अधिक सम्मानित देखना चाहता था। किन्तु यह मान्यता भी अधिक विश्वसनीय नहीं है क्योंकि शूद्रका का नाम अनेक रचनाओं में आया है और स्कन्द पुराण जैसी पौराणिक और राजतरंगिणी जैसी ऐतिहासिक रचनाओं में भी ऐतिहासिक व्यक्ति के रूप में उनका उल्लेख किया गया है। अतः उन्हें सर्वांश में काल्पनिक नहीं माना जा सकता। यद्यपि संस्कृत साहित्य में अपनी कृति दूसरे के नाम से प्रसिद्ध करने के उदाहरण कम तो नहीं है किन्तु एक इतिहास सम्मत व्यक्ति के नाम पर इतनी महत्वपूर्ण रचना समर्पित कर देना आश्चर्य जनक अवश्य है।

कुछ विचारकों ने कल्पना की है कि यह नाटक भास का लिखा हुआ है तथा कतिपय अन्य लोग इसका रचनाकार दण्डी को मानते हैं। किन्तु एक तो भास और दण्डी दोनों में कोई भी राजा नहीं था, दूसरे जब इन दोनों रचनाकारों ने अपनी कृतियां अपने नाम से ही प्रसिद्ध कीं तब केवल इस एक रचना को अन्य के नाम पर प्रसिद्ध करने की क्या तुक थी यह समझ में नहीं आता।

शूद्रक के देशकाल का प्रश्न भी महत्वपूर्ण है। मृच्छकटिक का परिवेश उज्जैन के आस पास का है किन्तु शब्दप्रयोग पर दक्षिण का प्रभाव अधिक लक्षित होता है। दुर्गादेवी को सह्यवासिनी कहा गया है। दाक्षिणात्य और कर्णाटकलह और कला का भी उल्लेख प्राप्त होता है। चन्द्रनक स्वयं को दाक्षिणात्य बतलाता है और दक्षिणी भाषाओं का नाम भी लेता है। प्रथम अंक में पैसे के अर्थ में नाणक शब्द का प्रयोग किया गया है। इसी आधार पर तैलंग ने इन्हें महाराष्ट्र निवासी बतलाया है। हो सकता है इनका आन्ध्र से भी सम्बन्ध हो।

शूद्र के काल के विषय में मतभेद है। नाट्यकला के परवर्ती सिद्धान्तों से प्रस्तुत रचनाकार परिचित नहीं है। मृच्छकटिक की भाषा भास की भाषा के समान सादगी लिये हुये है। प्राकृत का प्रयोग भी परवर्ती रचनाओं की प्राकृत से भिन्न है। ये भाषायें प्राकृत के नियमों का भलीभांति पालन नहीं करतीं तथा प्राकृत भाषाओं की प्रथम अवस्था की सूचक हैं। कालिदास ने सौमिल को अच्छे नाटककारों में याद किया है। राजशेखर ने

सौमिल को रामिल के साथ शूद्रक कथाकार कहा है। इसका अर्थ यह है कि शूद्रक कालिदास और सौमिल से भी पहले हुये थे। नाटक में विट और शकार का प्रयोग इसकी प्राचीनता का परिचायक है। किन्तु इसके प्रतिकूल कीथ इत्यादि कई पाश्चात्य विद्वान इस नाटक में प्राचीनता के लक्षणों के विषय में कहते हैं कि मृच्छकटिक के रचनाकार ने भास की कला का पूर्ण सफलता के साथ अनुकरण किया था। जहां तक सौमिल की शूद्रक कथा का सम्बन्ध है– शूद्रक कई हुये हैं या कालिदास ने जिन सौमिल का उल्लेख किया है वे दूसरे सौमिल थे। शूद्रक कथाकार रामिलसोमिल दो माने जाते हैं जिनमें रामिल प्रथम होने के कारण प्रधान हैं। यदि कालिदास का मन्तव्य उन्हीं सोमिल से होता तो निश्चित रूप से कालिदास ने सोमिल के साथ रामिल का भी नाम लिया होता या केवल रामिल का ही नाम लिया होता क्योंकि उनके साथ सोमिल गौंण है। कालिदास पर मृच्छकटिक का कोई प्रभाव नहीं है और इसमें समाज की गिरती हुई जिस परिस्थिति का चित्रण किया गया है वह विक्रमादित्य और हर्ष के मध्य की संस्कृति है जिसमें बौद्ध धर्म का ह्रास और ब्राह्मण धर्म का विकास हुआ था। अतः ये लोग शूद्रक का समय ६ठी शताब्दी का अन्त या ७ वीं शताब्दी का प्रारम्भ मानते हैं।

ज्ञात होता है कि कालिदास के बाद के किसी कवि ने भास को विशेष अध्ययन का विषय बनाया। उसे 'दरिद्रचारुदत्तम्' अपूर्ण दिखलाई दिया। अतः भास की शैली का ही अनुसरण कर उसमें अपने समय के परिवेश और आर्यक की राजनीति को जोड़कर नया नाटक तैयार कर दिया। अतः नाटक की नवीनता का प्रारम्भ वसन्तसेना की उदारता से होता है। जिसमें वह चारुदत्त के पुत्र द्वारा मिट्टी की गाड़ी के स्थान पर सोने की गाड़ी के लिये आग्रह करने पर सोने की गाड़ी बनवाने के लिये अपने सारे जेवर उतार कर दे देती है। इसी घटना के आधार पर नाटक का नामकरण किया गया है और इसकी भासकालिकता प्रमाणित करने के लिये तत्कालीन प्रसिद्ध व्यक्ति शूद्रक को ढूंढ निकाला और उसी के नाम पर इस कृति को प्रसारित कर दिया। यह भी असम्भव नहीं है कि जिस कवि ने यह पूर्ति की उसका भी नाम शूद्रक रहा हो। इस विषय में निश्चयात्मक रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। अनुसन्धान की बहुत बड़ी आवश्यकता है।

विभिन्न उद्धरणों के आधार पर कृष्णमाचार्य ने शूद्रक के जीवनवृत्त का भी कुछ परिचय दिया है जो इस प्रकार है– इन्द्राणीगुप्त नाम से प्रसिद्ध शूद्रक अश्मक प्रदेश के ब्राह्मणकुमार थे जिनका बचपन राजकुमार स्वाति (शिवस्वाति) के साथ बालक्रीड़ा में व्यतीत हुआ था। बालक्रीड़ा में ही उनमें आपस में विरोध हो गया। एक बार एक बौद्धभिक्षु उन्हे वहकाकर एक गुफा में ले गया और उनकी हत्या करने की चेष्टा की। किन्तु शूद्रक ने उन्हें अधिकार में ले लिया और निकल गये तथा मथुरा, उज्जैन, विदिशा इत्यादि अनेक नगरों में घूमते हुये उज्जैन पहुंचकर और वहां के राजा को पराजित कर शासक बन बैठे। बचपन के साहचर्य के कारण स्वाति को क्षमादान कर दिया। एक सम्राट् और एक महाकवि

होने के नाते शूद्रक का नाम परम्परागत उच्चकोटि की विभूतियों में लिया जाता है। उनके अवदात साहसिक कार्य विक्रमादित्य के जैसे ही हैं।

शूद्रक कथा– (ना.कृ.) राजशेखर ने रामिल और सौमिल की लिखी शूद्रक कथा का उल्लेख किया है। उनके कथन के अनुसार शूद्रककथा अर्धनारीश्वर भगवान शंकर का प्रतिरूप है। कीथ के अनसार अर्धनारीश्वर का अर्थ है शृङ्गार और वीर दोनों को प्रधानता देकर लिखा गया काव्य। यह काव्य सर्वथा लुप्त हो गया है और यह भी पता नहीं चलता कि यह दृश्य काव्य था या श्रव्य काव्य। कालिदास ने मालविकाग्निमित्र की प्रस्तावना में भास और कविपुत्र के साथ सोमिल का भी उल्लेख किया है। कालिदास ने कहा है– 'इन उच्चकोटि के नाटककारों के होते हुये मुझ नौसिखिया कवि की रचना का आदर कौन करेगा?' इसका आशय यह है कि सौमिल कोई महान कवि थे जिनका गुणगान कालिदास जैसे कलाकार को भी करना पड़ा। नाटक की प्रस्तावना में उक्त कथन है, इससे कल्पना की जा सकती है कि सोमिल की यह कृति नाटक ही होगी। अवन्तिसुन्दरी कथा में शूद्रक के अनेक जन्मों की कई कथायें आ गई हैं। अतः उन कथानकों को मिलाकर परिकथा की संज्ञा दी जा सकती है। किन्तु रामिल सौमिल की शूद्रक कथा का काव्यरूप स्थिर करने की दिशा में साहित्य जगत् सर्वथा अन्धकार में है। रामिल सोमिल के नाम पर दो एक पद्य प्राप्त होते हैं जो वस्तुतः अच्छे हैं। भोज के शृङ्गार प्रकाश में शूद्रककथा की एक घटना का उल्लेख किया गया है जिसमें नायिका और सन्देश वाहक तोते का उल्लेख है। हो सकता है नायिका शूद्रक की प्रेमिका हो। हरिमती वृत्तान्त से भोजराज ने एक प्राकृत गद्यखण्ड भी उद्धृत किया है जो एक तो अपूर्ण है दूसरे उसका कोई अर्थ समझ में नहीं आता। यह सभी कुछ अनुसन्धान सापेक्ष है। कहना न होगा कालिदास द्वारा उल्लिखित कवियों (नाटककारों) में भास भी बहुत समय तक अज्ञात अवस्था में पड़े रहे। शेष दोनों (कविपुत्र और सोमिल) की कृतियों को अभी तक उपलब्ध नहीं किया जा सका।

शूरमायूरम्– (ना.कृ.) नारायण शास्त्री (दे.) लिखित ७ अंकों का नाटक। इसमे स्वामिकार्तिकेय द्वारा असुरों पर विजय कर शूर नामक दानव राज को मयूर के रूप में परिणत कर उसे अपनी सवारी बना लेने को रूपायित किया गया है। इसी प्रसंग में कार्तिकेय का विवाह इन्द्र की पुत्री देवसेना से होता है। इसमें छोटे मोटे गेय छन्दों का प्रयोग किया गया है और चरित्र चित्रण अच्छे बन पड़े हैं।

प्रधान रस वीर है, फिर भी हास्य का अभाव नहीं है यद्यपि विदूषक का समावेश नहीं किया गया है।

शूर्पणखा– (ना.पा.) रामायण की प्रमुख पात्रों में एक। इसका उपादान कई नाटकों में नवीन भूमिका के साथ किया गया है–

(१) **महावीर चरित–** (दे.) में माल्यवान मन्त्री के निर्देश से वह कैकेयी की दासी

मन्थरा का रूप धारण कर कैकेयी का एक जाली पत्र मिथिला में राम को देती है जिसके आधार पर राम का वनगमन हुआ।

(२) **अनर्थ राघव**– (दे.) में वह माल्यवान को सीता स्वयंवर, रामसीता संयोग और परशुराम के मिथिला पहुंच जाने का समाचार देती है और माल्यवान के परामर्श से मन्थरा का रूप धारण कर राम और सीता के वन गमन में कारण बनती है।

(३) **बालरामायण**– (दे.) में सीता के साथ विवाह न हो सकने से रावण दुःखी है और उन्मत्त होकर वृक्षों इत्यादि में सीता की खोज करता फिरता है। शूर्पणखा राम पर आक्रमण कर देती है और आहत हो जाती है तब रावण को पुरुषोचित कर्म के लिये प्रोत्साहन देती है।

शूर्पणखाभिसार– (ना.कृ.) वीरेन्द्रकुमारभट्टाचार्य लिखित ५ दृश्यों का संगीत नाट्य। इसमें नृत्य गीतों की अधिकता है। प्राकृत का प्रयोग नहीं किया गया है। शूर्पणखा के प्रणयनिवेदन और लक्ष्मण द्वारा उसे विरूप करने का कथानक लेकर रचना की गई है।

संस्कृत प्रतिभा में इसका प्रकाशन हो चुका है।

शृङ्गार कोश– (ना.कृ.) इस नाम के दो भाण प्राप्त होते हैं–

(१) **गीर्वाणेन्द्र दीक्षित**– का लिखा हुआ, तंजौर की पैलेसं लायब्रेरी के पाण्डुलिपि अनुभाग में सं. VIII ४६४९ और मद्रास की औरियण्टल लायब्रेरी के पाण्डुलिपि अनुभाग में सं. १.९४९ में प्राप्त किया जा सकता है।

(२) **अभिनव कालिदास**– लिखित भाण। इसे शृङ्गार-शेखर की भी संज्ञा दी जाती है। उल्लेख– मद्रास की ओरियण्टल लायब्रेरी के पाण्डुलिपि अनुभाग के ट्रायेनियल कैटेलाग की सं. III ३८९१ पर किया गया है।

शृङ्गार चन्द्रिका– (ना.कृ.) श्रीनिवास (वत्स गोत्रीय) (दे. श्रीनिवास ८) द्वारा लिखित भाण। कैटेलागस कैटेलागोरम सं. II १५७ और मद्रास की ओरियण्टल लायब्रेरी के ट्रायेनियल कैटेलाग आफ संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट कैटेलाग III २९४९ पर इसका उल्लेख किया गया है।

शृङ्गार जीवन– (ना.कृ.) कौशिक गोत्रीय वरद लिखित भाण। कैटेलागस कैटेलागोरम सं. I ६६१ में इसका उल्लेख किया गया है।

(१) **शृङ्गारतरंगिणी**– (ना.कृ.) श्रीनिवासाचार्य ईच्चमवाडि (दे.) लिखित भाण।

(२) **शृङ्गारतरंगिणी**– (ना.कृ.) रामभद्र (दे.) लिखित एक भाण। इसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम १.६६० पर किया गया है।

(३) **शृङ्गारतरंगिणी**– (ना.कृ.) वेङ्कटाचार्य लिखित भाण। इसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम १.९२ पर किया गया है।

(४) **शृङ्गारतरंगिणी**– (ना.कृ.) यह जगन्नाथ (४) (दे.) लिखित एक भाण है।

(१) **शृङ्गारतिलक**– (ना.कृ.) यह साहित्यदर्पण एवं भाव प्रकाशन में प्रस्थान उपरूपक के उदाहरण के रूप में उल्लिखित नाट्यकृति है। यह न तो अभी तक उपलब्ध हुई है और न इन उल्लेखों के अतिरिक्त इसके विषय में कुछ ज्ञात ही है।

(२) **शृङ्गारतिलक**– (ना.कृ.) अविनाशी स्वामी लिखित भाण। मद्रास की ओरियण्टल लायब्रेरी के पाण्डुलिपि विषयक विवरणात्मक सूचीपत्र की सं. XXX ८५४० पर इसका विवरण दिया गया है। इसका अभिनय १९वीं शताब्दी के अन्तिम चरण में उत्पन्न मैसूर के राजा सामराज के राज्यकाल में श्री रंगपट्टम के निकट वरदराजपुर में हुआ था।

(३) **शृङ्गारतिलक**– (ना.कृ.) रामभद्र दीक्षित (दे.) लिखित भाण। इसका दूसरा नाम अय्याभाण (दे.) भी है। इस भाण की रचना मदुरा की मीनाक्षी देवी के विवाहोत्सव में खेलने के निमित्त हुआ था। इसका नायक भुजंगेश्वर है जो प्रेयसी हेमाङ्गी के वियोग में दु:खी हो रहा है। उसे आश्वासन मिला है कि घर लौटने पर उसकी प्रेमिका उसे मिल जायेगी। मुहल्ले में घूमता फिरता है और आकाश भाषित के द्वारा देवताओं सपेरों, ऐन्द्रजालिकों, पर्वतों इत्यादि का विस्तार के साथ वर्णन करता है। उसे उसकी प्रेमिका हेमाङ्गी पुनः मिल जाती है। कवि ने इसकी रचना अपने मित्र वरदाचार्य के लिये वसन्ततिलक भाण के अनुकरण पर की थी। इसका प्रकाशन मद्रास से हो गया था।

(४) **शृङ्गारतिलक**– (ना.कृ.) यह एक भाण है जिसका उल्लेख तंजौर के राज्याश्रित कवियों की रचनाओं के अन्तर्गत किया गया है। इसके विषय में और कुछ ज्ञात नहीं है।

शृङ्गारदीपक– (ना.कृ.) एक भाण जिसके लेखक हैं राघवाचार्य विज्ञमूरि (दे.)। इसकी नायिका शृङ्गारचन्द्रिका का विट राजशेखर के साथ समागम वर्णित है जिसमें अनंगशेखर साहयता देता है। काञ्चीपुरी में श्रीदेवराज की यात्रा के अवसर पर इसका अभिनय किया गया था।

शृङ्गारदीपिका– (ना.कृ.) यह एक भाण है जिसकी रचना वेङ्कटाध्वरीण (दे.) ने की थी। कैटेलागस कैटेलागोरम सं. १.१६१ पर इसका उल्लेख किया गया है।

शृङ्गारनारदीयम्– (ना.कृ.) महालिङ्गशास्त्री (दे.) लिखित प्रहसन। देवी भागवत की नारद कथा को लेकर इसकी रचना हुई है जिसमें यथोचित परिवर्तन भी किये गये हैं। इसमें लम्बे गीत और एकोक्तियां सम्मिलित हैं। इसकी रचना १९३८ में की गई थी।

शृङ्गारभूषण– (ना.कृ.) वामन भट्टवाण (दे.) लिखित भाण। इसका नायक विलास शेखर और नायिका अनंगमञ्जरी है। इसकी रचना १५वीं शताब्दी के अन्त या १६वीं शताब्दी के प्रारम्भ में हुई थी। नायक नायिका से मिलने उसके घर जाता है। वह गणिकाओं के मुहल्ले में घूमता है। वह आकाश भाषित करता है। मेषों के युद्ध, मुक्केवाजी मुर्गों

की लड़ाई, प्रतिद्वन्दियों के झगड़े इत्यादि का वर्णन करता है। इसमें दिन के विभिन्नकालों और मदनमहोत्सव का भी वर्णन किया गया है। इसकी पद्धति अय्याभाण (दे.) के प्रतिरूप है।

कवि की यह प्रारम्भिक रचना है जब कवि विजय नगर में रह रहा था और जहां उसने हरिहर का साम्राज्य वैभव देखा था। यह भाण विरूपाक्ष के उत्सव के अवसर पर अभिनय के लिये लिखा गया था। संगीतात्मक पद्यों में इसमें तत्कालीन नागरिक जीवन की अभिजात अवस्था का वर्णन किया गया है। इसका प्रकाशन काव्यमाला संस्कृत संस्करण बम्बई तथा मद्रास से हुआ है। इसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम III १३७ में हुआ है।

(१) **शृङ्गारमञ्जरी**– (ना.कृ.) अज्ञातनामा कवि का लिखा भाण। इसका उल्लेख मद्रास की ओरियण्टल लायब्रेरी संस्कृत पाण्डुलिपि अनुभाग ट्रायेनियल कैट्लाग V ६३०६ पर किया गया है।

(२) **शृङ्गारमञ्जरी**– (ना.कृ.) विश्वनाथ लिखित भाण। इसका उल्लेख मद्रास के ट्रायेनियल कैटेलाग आफ संस्कृत मैन्युस्क्रिप्टस इन ओरियण्टल लायब्रेरी मद्रास में सं. II २६१४ पर किया है।

(३) **शृङ्गारमञ्जरी**– (ना.कृ.) रतिकर लिखित भाण। इसका संकलन मद्रास के ओरियण्टल पुस्तकालय के पाण्डुलिपि अनुभाग में त्रैवार्षिक खोज रिपोर्ट सं. VI ७१४९ पर किया गया है।

(४) **शृङ्गारमञ्जरी**– (ना.कृ.) गोपालराय लिखित भाण जिसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम सं. II १५८ पर किया गया है।

इसी नाम के कतिपय अन्य निम्नलिखित भाणों का भी उल्लेख किया जाता है।

(५) तंजौर नरेश शाह जी लिखित। इसका विषय है साहित्य और रतिशास्त्र।

(६) राममनोहर लिखित।

(७) मानकवि लिखित।

(८) **केरल वर्मा लिखित**– ये ट्रावन्कोर के राजा थे।

(९) **अवधान सरस्वती**– (दे.) लिखित। तंजौर के राजपुस्तकालय में VIII ३५९९ पर संकलित।

(१०) **शृङ्गारमञ्जरी**– (ना.कृ.) शारदातनय ने उपरूपकों में भाण नामक एक नया प्रकार माना है जो प्रधान रुपकों के भाण से भिन्न प्रकार का है। इसके उदाहरण के रूप में इस कृति का उल्लेख किया है जो अब प्राप्त नहीं होती।

शृङ्गार मञ्जरी– (ना.कृ.) विश्वेश्वर पाण्डेय (दे.) लिखित सट्टक। इसका समय १८वीं शताब्दी है। इसकी रचना प्राकृत भाषा में कि गई थी। लेखक की दूसरी कृति

अलंकार कौस्तुम में इसका उल्लेख किया गया है। पेटर्सन द्वारा बम्बई में की गई संस्कृत पाण्डुलिपियों की खोज रिपोर्ट सं. IV ३१ एवं काव्यमाला VIII ५२ पर इसका उल्लेख है। बाबू लालशुक्ल द्वारा बनारस से इसका प्रकाशन भी कर दिया गया है।

शृङ्गारमञ्जरीशाहजीय– (ना.कृ.) यह अप्पादीक्षित लिखित नाटक है इसमें शाहजी के जीवन और इतिहास पर प्रकाश डाला गया है। शाहजी ने स्वप्न में एक सुन्दरी को देखा है और जागकर उसका चित्र बनाया है। ज्योतिषियों ने कहा कि यह सिंहल की राजकुमारी शृङ्गार मञ्जरी है। जब सिंहल पर सिन्धुराज का आक्रमण होता है तब शाहजी सिंहल की रक्षा करने पहुंच जाते हैं जहां नायक नायिका का प्रेम पल्लवित हो जाता है। किन्तु रानी कुछ विघ्न डाल देती है। पर उसे मना लिया जाता है और दोनों का प्रणय बन्धन निर्विघ्न रूप में समाप्त हो जाता है।

इसका अभिनय तिरुवैयर (तिरुवदी) में चैत्रोत्सव पर किया गया था। मद्रास की ओरियण्टल लायब्रेरी में संस्कृत पाण्डुलिपियों के अनुभाग के ट्रायेनियल कैटेलाग III २५७५ और कैटेलागस कैटेलागोरम II १५८ में इसका उल्लेख किया गया है।

शृङ्गार रत्नाकर– (ना.कृ.) यह सुन्दर ताताचार्य लिखित एक भाण है। जिसका उल्लेख एई.गफ के प्राचीन संस्कृत साहित्य अभिलेख सं. १८८ पर पाया जाता है।

शृङ्गाररसभृङ्गार– (ना.कृ.) एक भाण, इसकी रचना इन्द्रगन्ति कोण्डसूरि ने की थी। इसका प्रथम अभिनय श्री शैल में मल्लिकार्जुन के उत्सव में किया गया था। मद्रास लायब्रेरी के संस्कृत पाण्डुलिपि अनुभाग की त्रैवार्षिक खोज रिपोर्ट सं. III ३१७५ पर इसका संकलन प्राप्त किया जा सकता है।

शृङ्गार रसोदय– (ना.कृ.) एक भाण जो राम कवि (दे.) का लिखा हुआ है। बम्बई से इसका प्रकाशन हो चुका है। इसका विवरण ओरियण्टल लायब्रेरी मद्रास के विवरणात्मक सूचीपत्र सं. XXI ८५३९ पर दिया हुआ है।

शृङ्गारराज– (ना.कृ.) गोपालराय लिखित एक भाण जिसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम II १६० पर किया गया है।

शृङ्गार लीलातिलक– (ना.कृ.) दे. लीलातिलक।

शृङ्गार वाटिका– (ना.कृ.) इसका दूसरा नाम 'शृङ्गार वापिका' भी है। इसकी रचना विश्वनाथ भट्ट ने की थी। (दे.(४) विश्वनाथ) इसमें नायक उज्जैन के राजा चन्द्रकेलि और नायिका चम्पावती की राजकुमारी कान्तिमती के एक दूसरे के प्रति प्रेम को नाट्य वस्तु के रूप में अपनाया गया है। दोनों एक दूसरे को स्वप्न में देखकर हृदय दे बैठते हैं। जिसका पर्यवसान विवाह बन्धन में होता है। राजसभा की कविगोष्ठी का अंकन किया गया है। आमेर के राजा रामसिंह की राजसभा में इसका प्रथम अभिनय किया गया था. इसमें रामसिंह कां प्रशस्ति का भी समावेश है। ऐतिहासिक और संस्कृतिक दृष्टि से

यह रचना महत्वपूर्ण है।

कैटेलागस कैटेलागोरम I ६६१ और II १५८ पर इसका उल्लेख है। इण्डिया आफिस लायब्रेरी में एगलिंग द्वारा संकलित पाण्डुलिपियों में सं. II १५८ पर इसका विश्लेषणात्मक परिचय दिया गया है।

शृङ्गारविलसित– (ना.कृ.) यह नारायण (१) (दे.) लिखित भाण है। इसे मद्रास पुस्तकालय के पाण्डुलिपि अनुभाग में प्राप्त किया जा सकता है।

शृङ्गारविलास– (ना.कृ.) यह साम्बशिव लिखित भाण है जिसका संकलन मैसूर के ओरियण्टल पुस्तकालय के पाण्डुलिपि अनुभाग में किया गया है तथा मद्रास की ओरियण्टल लायब्रेरी की त्रैवार्षिक खोज रिपोर्ट में सं. IV ४९२५ पर इसका उल्लेख है। दोनों प्रतियों में आश्रयदाताओं का नाम पृथक् पृथक् है। मैसूर की प्रति में आश्रयदाता महाराज कृष्ण हैं और मद्रास की प्रति में जमोरिन मान विक्रम है।

शृङ्गारशृङ्गारक– (ना.कृ.) रघुनाथ लिखित भाण। इसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम सं. II १५८ पर किया गया है।

(१) **शृङ्गारशेखर–** (ना.कृ.) इसके रचनाकार श्रीवत्सगोत्रीय रामानुज हैं। इसका उल्लेख मद्रास पुस्तकालय के पाण्डुलिपि अनुभाग की त्रैवार्षिक खोज रिपोर्ट में सं. VI ७४०३ पर किया गया है।

(२) **शृङ्गारशेखर–** (ना.कृ.) दे. शृङ्गार कोश (२)।

(३) **शृङ्गारशेखर–** (ना.कृ.) इस नाम की एक अन्य कृति सुन्दरेश शर्मा की लिखी प्राप्त होती है। यह हास्यप्रधान रचना है इसका प्रथम अभिनय तंजौर के बृहदीश्वर के वसन्तोत्सव के अवसर पर सम्पन्न हुआ था।

शृङ्गार सञ्जीवन– (ना.कृ.) एक भाण– इसके लेखक हैं भरद्वाज गोत्रीय शठजित्कवि (दे.)। इसकी प्रति मद्रास की ओरियण्टल लायब्रेरी के संस्कृत पाण्डुलिपि अनुभाग में सं. III ३०४ पर प्राप्त की जा सकती है। इस नाटक का प्रथम अभिनय एलौर के शान्त गोपाल महोत्सव में किया गया था और राजवेङ्कटगोपाल ने इसे आश्रय दिया था।

(१) **शृङ्गार सर्वस्व–** (ना.कृ.) भूमिनाथ उपनाम नल्लादीक्षित लिखित भाण। नायक अनङ्गशेखर प्रियतमा से विछुड़ गया है। उसी समय एक हाथी आ जाता है जिससे गली के लोग आतङ्कित हैं और उसी भाग दौड़ में उसे अपनी प्रियतमा मिल जाती है। अनङ्गशेखर प्रियतमा की प्राप्ति के लिये शिव की प्रार्थना कर रहा है। अतः वह समझता है कि शिव ने प्रसन्न होकर गणेश को भेजकर उसकी सहायता की। अतः वह हाथी की पूजा करता है।

इसका प्रकाशन बम्बई से हुआ था। तंजौर की पैलेस लायब्रेरी के पाण्डुलिपि अनुभाग की सूची VIII ३६०० पर इसकी पाण्डुलिपि का उल्लेख किया गया है।

(२) **शृङ्गारसर्वस्व**– (ना.कृ.) यह कौशिक नल्लबुध (दे.) का लिखा भाण है। इसका उल्लेख तंजौर की पैलेस लायब्रेरी की पाण्डुलिपि सूची सं. VIII ३६०९ पर किया गया है।

(३) **शृङ्गारसर्वस्व**– (ना.कृ.) यह अनन्त नारायण के पुत्र एवं सुब्रह्मण्य के भाई स्वामी का लिखा एक भाण है। त्रिचनापल्ली में इसका अभिनय किया गया था। मद्रास की ओरियण्टल लायब्रेरी के डिस्क्रिप्टिव कैटेलाग सं. XXI ८५४२ पर इसका उल्लेख किया गया है।

(४) **शृङ्गारसर्वस्व**– (ना.कृ.) यह एक भाण है जिसकी रचना राजचूडामणि दीक्षित ने की थी। इसका अभिनय चिदम्बरम् में उस समय किया गया था जब महाराज रघुनाथ वहां की यात्रा करने गये थे। इसका उल्लेख काव्यदर्पण में किया गया था।

(५) **शृङ्गारसर्वस्व**– (ना.कृ.) यह एक भाण है जिसके लेखक हैं भरद्वाजगोत्रीय वेदान्ताचार्य। इनकी प्रति तंजौर की पैलेस लायब्रेरी की पाण्डुलिपि सूची सं. VIII ३६११ पर प्राप्त की जा सकती है। इसका प्रथम अभिनय तिरुपति में किया गया था।

(६) **शृङ्गारसर्वस्व**– (ना.कृ.) इस रचना का समावेश तंजौर राजघराने के आश्रित कवियों के साहित्य में किया गया है। इसके कर्ता का पता नहीं है।

शृङ्गार सुधाकर– (ना.कृ.) रामवर्मवञ्चियुवराजलिखित भाण। इसके नायक माधव की अनेक वेश्याओं से प्रणय क्रीड़ा का उपादान किया गया है। इन वेश्याओं में रतिरत्नमालिका, मन्दार वल्लरी, चम्पकलता, सुमनोवती, सीमन्तिनी, वकुलमञ्जरी आदि प्रमुख हैं। इसका प्रथम अभिनय त्रिवेन्द्रम में पद्मनाभ चैत्रोत्सव में हुआ था। रचनाकाल १८वीं शताब्दी।

शृङ्गारसुधार्णव– (ना.कृ.) कोराडा गोत्रीय रामचन्द्र (दे. (४) रामचन्द्र) का लिखा भाण। मुसली पट्टम् से इसका प्रकाशन हुआ है। इसका अभिनय भुद्राचलम् में राममन्दिर के वसन्तोत्सव के अवसर पर सम्पन्न हुआ था। इसमें विट भुजंगशेखर की दिनचर्या का आंखों देखा हाल है।

शृङ्गारसुन्दर– (ना.कृ.) इस भाण के लेखक हैं ईश्वर शर्मा (दे.) इसका उल्लेख ट्रावन्कोर पुस्तकालय के पाण्डुलिपि अनुभाग में सं.७९ पर किया गया है। इसका रचनाकाल १९वीं शताब्दी है।

शृङ्गारस्तवक– (ना.कृ.) यह एक भाण है जिसके लेखक हैं हारीतगोत्रीय नृसिंह कवि। यह भाण तंजौर की पैलेस लायब्रेरी के पाण्डुलिपि अनुभाग में खण्ड VIII सं. ३६०७ पर उपलब्ध किया जा सकता है।

शेखरक– (ना.पा.) नागानन्द में जीमूतवाहन का विट जो विदूषक के साथ हास्य रस की सृष्टि करता है।

शेषकृष्ण– (ना.का.) इनका समय अकबर बादशाह के राज्यकाल का अन्तिम भाग है। इन्हें कृष्णकवि भी कहा जाता है। इनके पिता शेषनरसिंह (दे.) एक अच्छे संस्कृत के विद्वान थे और उनके आश्रय में ही भट्टोजिदीक्षित और नागेशभट्ट जैसे प्रतिष्ठित वैयाकरणों की रचनायें सामने आई थीं। शेषकृष्ण के आश्रयदाता अकबर के वित्तमन्त्री टोडरमल के पुत्र गोवर्धनाधिकारी थे। इनकी कई रचनायें प्रसिद्ध हैं जिनमें कंसवध (दे.) इनका सर्वाधिक प्रसिद्ध नाटक है। इसके अतिरिक्त इनके तीन नाटक और प्रकाश में आये हैं– मुरारिविजय (दे.) मुक्ताचरित (दे.) और सत्यभामा परिणय (दे.) हो सकता है शर्मिष्ठाययाति (दे.) कृति इन्हीं की रचना हो। जिसका अंक के उदाहरण के रूप में उल्लेख किया गया है।

नाटकों के अतिरिक्त इनके तीन चम्पू ग्रन्थ भी प्राप्त होते हैं– पारिजात हरण, उषा परिणय और सत्यभामा विलास। कहा जाता है इन्होंने क्रियागोपन रामायण भी लिखी थी जिसके पद्यों में गुप्त क्रिया को ढूंढ निकालना पड़ता था।

शेषगिरि– (ना.का.) ये मैसूर के महाराजा कृष्ण राज कृष्णाराव ओड्यार के शिक्षक थे। इनका लिखा कल्पनाकल्पक (दे.) नाटक और शारदातिलक (दे.) भाण प्राप्त होते हैं।

शेषगोविन्द– (ना.का.) दे. गोविन्द।

शेषचिन्तामणि– (ना.का.) ये प्रसिद्ध वैयाकरण और दार्शनिक विद्वान तथा बनारस में व्याकरण शिक्षा के अधिष्ठाता शेषनरसिंह (दे.) के पुत्र थे। इनका लिखा रुक्मिणी हरण (दे.) नाटक प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त इनके अन्य ग्रन्थ भी प्रसिद्ध हैं जिनका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम १.७७ पर किया गया है।

शेषाचार्य– (ना.का.) मदन विजय भाण के लेखक। इनका जन्म कालहस्ती के विक्किराल परिवार में हुआ था। ये वेल्लोर में सी.एस. मिशन कालेज के संस्कृत के अध्यापक थे।

शेषाद्रि– (ना.का.) ये काञ्जीवरम के निवासी थे और इन्होंने रामविलास नामक एक काव्य लिखा था। इनके तीन नाटकों का पता चलता है। (१) मदालसापरिणय जिसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम खण्ड १ सं. ४२६ पर किया गया है, (२) पार्वतीस्वंयवर इसका भी उल्लेख उसी में सं. ३३६ पर किया गया है, और (३) सीताविवाह तञ्जौर की पैलेस लायब्रेरी के कैटेलाग में खण्ड ८ सं. ३५२४ में किया गया है।

शैलदीक्षातार– (ना.का.) १९वीं शताब्दी के अन्तिम चरण में इन्होंने भ्रान्तिविलास नाम से सेक्सपियर के कमेडी आप एरर्स का संस्कृत में अनुवाद किया था।

शैव कापालिक– (ना.पा.) मत्तविलास (दे.) का नायक।

शोभावती– (ना.कृ.) नारायणशास्त्री १ लिखित २ अंकों का नाटक।

शौष्कल– (ना.पा.) अनर्घराघव में रावण का दूत जो सीता से विवाह के लिये रावण का प्रस्ताव लेकर जनकपुर आया था। धनुष चढाने की परीक्षा देना रावण के

स्वाभिमान के प्रतिकूल था, अतः शौष्कल ने उसे अस्वीकार कर दिया। वह रावण की महत्ता का वखान करके ही विवाह का प्रस्ताव स्वीकार करा लेना चाहता था।

श्यामवर्ण द्विवेदी– (ना.का.) २०वीं शताब्दी के उत्तर प्रदेश के कवि एवं नाटककार। इनका लिखा शिवाभ्युदयम् नाटक प्रकाश में आया है। इनकी दूसरी रचनायें हैं 'विशाल भारतम्' और 'व्युत्पत्तिविनोदः'।

श्यामिलक– (ना.का.) चतुर्भाणी (दे.) के एक नाटक 'पादताडितक' के लेखक। ये ईश्वरदत्त या वीरेश्वर दत्त के पुत्र थे और स्वयं को इन्होंने औदीच्य कहा है। ईश्वरदत्त (दे.) चतुर्भाणी के एक लेखक भी हैं। क्या उनसे इनका पिता पुत्र का सम्बन्ध था? चतुर्भाणी के लेखकों में ये ही एक मात्र लेखक हैं जिनका कृतित्व प्रामाणिक है। इन्होंने पादताडितक की पुष्पिका में अपने कृतित्व का उल्लेख किया है।

श्येनदूतम्– (ना.कृ.) नारायण शास्त्री (१) (दे.) लिखित ५ अंकों का नाटक।

श्रद्धा– (ना.पा.) प्रबोधचन्द्रोदय (प्रतीक नाटक) में देववर्ग का एक प्रमुख पात्र। वह धर्म के साथ विवेक और उपनिषद् का मेल कराने के लिये प्रयत्न कर रही है। वह कुछ समय के लिये अज्ञातवास में चली जाती है जबकि उसकी पुत्री शान्ति उसकी खोज में लगी है। अनेक व्यक्तियों ने कल्पित श्रद्धायें बना लीं हैं किन्तु वे सब सच्ची श्रद्धायें नहीं हैं। शान्ति उन्हें अपनी मां नहीं मानती। अन्त में श्रद्धा मिल जाती है। उसे अनेक विपत्तियों का सामना करना पड़ा है। महाभैरवी तो उसे समाप्त कर देने पर ही तुली थी। देवपक्ष की विजय के साथ उसकी पुत्री शान्ति भी उसे मिल जाती है।

श्रमण– (ना.पा.) शारिपुत्र प्रकरण (दे.) का एक पात्र है। यह बुद्ध शिष्य कौण्डिन्य के साथ विवाद में भाग लेता है। इसकी भाषा संस्कृत है।

श्रवणा– (ना.पा.) अनर्घराघव (दे.) में यह एक तापसी है जो जामवन्त से वार्तालाप करती है। इस वार्तालाप से राम के वन में पहुचनें तक के कार्यों का वर्णन है। वह राम के स्वागत का स्वयं प्रबन्ध करती है और सुग्रीव को भी राम के स्वागत की प्रेरणा देती है।

(१) **श्रीकण्ठ–** (ना.का.) दे. भवभूति।

(२) **श्रीकण्ठ–** (ना.का.) कन्दर्पदर्पण भाण के लेखक। ये काञ्ची के निवासी तथा एकाम्रनाथ के उपासक थे। इन्होंने अपने पिता का निर्देश 'कलियुग का कालिदास' नाम से किया है; पिता का वास्तविक नाम नहीं लिखा। इनके पिता का लिखा एक भाण शृङ्गार शेखर या शृङ्गार कोश नाम से प्राप्त होता है। मालविकाग्निमित्र की इनकी लिखी टीका भी प्राप्त होती है।

(३) **श्रीकण्ठ–** (नञ्जुण्ड) ये आत्रेयगोत्रीय कवि एवं नाटककार थे। इनके लिखे कालिकेलियात्रा और मदनमहोत्सव ये दो भाण प्रकाश में आये हैं। इनका लिखा अभिनव

भारत भी बतलाया जाता है। ये बाल व्याघ्रपुर के रहने वाले थे। इन्होंने चिदम्बरकवि को अपना गुरु बतलाया है। इससे ज्ञात होता है इनका समय १६वीं १७वीं शताब्दी है। इनके पिता का नाम सामयार्य था।

श्रीकान्तगण– (ना.क़ा.) ये मथुरा निवासी १८वीं शताब्दी के कवि थे। इनका लिखा दो अंकों का श्रीकृष्णरहस्य (दे.) प्रकाशित हुआ है।

श्रीकृष्ण– (ना.पा.) भगवान कृष्ण विषयक कृष्णपरक सन्दर्भों के अन्तर्गत देखिये।

श्रीकृष्ण– (ना.क़ा.) इनका लिखा कन्दर्प दर्प नामक भाण प्राप्त होता है। मैसूर की संस्कृत लायब्रेरी के संस्कृतपाण्डुलिपि अनुभाग के कैटेलागस में १२वीं संख्या पर इसका उल्लेख किया गया है।

श्रीकृष्ण– (ना.क़ा.) दे. विक्रान्तराघवीय।

श्रीकृष्णचन्द्राभ्युदयम्– (ना.कृ.) महामहोपाध्याय शङ्करलाल लिखित ५ अंकों का शिवभक्ति विषयक नाटक। इसमें कुटुम्ब में सहयोग और सद्भावना का अच्छा निदर्शन प्रस्तुत किया गया है। कृष्ण की पत्नी जाम्बवन्ती ने कृष्ण से प्रार्थना की है कि उनकी सभी पत्नियों के समान संख्या में पुत्र उत्पन्न हों। कृष्ण उसकी पूर्ति के लिये शिव की आराधना करते हैं और शिव वरदान देते हैं कि सभी पत्नियों में प्रत्येक को १० पुत्र और एक पुत्री प्राप्त होगी। घर में पुत्रों के जन्म पर आनन्द मनाया जा रहा है कि रुक्मिणी के पुत्र का शम्बरासुर अपहरण कर लेता है। इसका शोक छा जाता है। जाम्बवती के पुत्र सम्ब का विवाह होने वाला है किन्तु जाम्बवती उस उत्सव में शामिल नहीं होती। क्योंकि रुक्मिणी के पुत्र के अपहरण के कारण दु:खी है। तब शंकर प्रकट होकर बतलाते हैं कि रुक्मिणी का पुत्र वास्तव में कामदेव है जिसे शंकर ने जला दिया था और शम्बर ने उसका अपहरण कर उसका संयोग उसकी पत्नी रति से करा दिया है। तब शोक का वातावरण समाप्त हो जाता है और सब लोग आनन्दोल्लास में शामिल हो जाते हैं। शङ्कर जी कृष्ण को चक्र प्रदान करते हैं।

इस नाटक की रचना १९१२ में की गई थी। इसमें छायातत्व की प्रधानता है। पृथक् पृथक् असम्बन्ध अनेक घटनायें हैं। गायन और वादन का प्रयोग अधिक मात्रा में किया गया है। इसका प्रथम अभिनय मौरवी नरेश ने कराया था।

श्रीकृष्णजन्मरहस्यम्– (ना.कृ.) १८वीं शताब्दी के श्रीकान्त.गण लिखित दो अंकों का नाटक। इसमें गीतात्मक संवादों द्वारा श्रीकृष्ण जन्म की कथा प्रस्तुत की गई है। इसका प्रकाशन प्रयाग से हो गया है।

श्रीकृष्ण त्रिपाठी– (ना.क़ा.) इनका लिखा सावित्री शीर्षक एकाङ्की नाटक प्रकाश में आया है।

श्रीकृष्णदानामृतम्– (ना.कृ.) मंगलगिरि कृष्णद्वैपायन (दे.) लिखित नाटक।

श्रीकृष्णदौत्यम्– (ना.कृ.) भास्कर केशव ढोक लिखित लघु नाटक। श्रीकृष्ण द्वारा पाण्डवों के दौत्यक्रम को इसमें रूपायित किया गया है। नाटक छोटा होने के कारण न प्रस्तावना है न भरत वाक्य। नान्दी प्रारम्भ में दे दी गई है। भारती पत्रिका में इसका प्रकाशन हो गया है।

श्रीकृष्णभक्तिचन्द्रिका– (ना.कृ.) अनन्ददेव लिखित उपदेशप्रवण नाटक। इसे नाटक इसीलिये कहा जा सकता है क्योंकि इसके लेखक ने इसे नाटक कहा है। वैसे संवाद के अतिरिक्त नाट्यकला के लिये मान्य कोई विशेषता इसमें नहीं है। पहले शैव वैष्णव शास्त्रार्थ चलत है। महावैष्णव आकर युक्तियों द्वारा उनका निपटारा करता है कि शिव और विष्णु में कोई भेद नहीं। फिर शब्दशास्त्री और तार्किक का विवाद चलता है जिसमें मीमांसक शामिल हो जाता है। तब कृष्णभक्त आकर समझाता है कि कृष्ण ही परब्रह्म है। तब वेदान्ती आता है– उसे भी कृष्णभक्त निरस्त कर देता है। अन्तिम निष्कर्ष यही है कि कृष्ण भक्ति ही परमतत्व है।

इसकी रचना १६वीं शताब्दी में हुई थी।

श्रीकृष्णरुक्मिणीय– (ना.कृ.) यह विनायकराव वोकील (दे.) का लिखा नाटक है। रचनाकाल २०वीं शताब्दी।

(१) **श्रीकृष्णविजयम्**– (ना.कृ.) वेङ्कटवरद लिखित डिम। इसमें अंक के स्थान पर यवनिका शब्द का प्रयोग किया गया है। कृष्ण ने अर्जुन से सुभद्रा के साथ विवाह करा देने का वादा किया है और इस कार्य के लिये वे उन्हें त्रिदण्डी (यति) वेष में अपने महल में ले आये हैं। बलराम उन्हें प्रमदवन में ठहराते हैं और सुभद्रा को उनकी सेवा के लिये नियत कर देते हैं। उनका गान्धर्व विवाह हो जाता है। बाद में उस विवाह का सभी अभिनन्दन करते हैं।

कहने को यह डिम है, किन्तु इसमें डिम की अनेक व्यवस्थाओं का अतिक्रमण किया गया है। डिम में अनियमानुसार ४ अंक होते हैं किन्तु इसमें ५ यवनिकायें हैं। (इसमे अंक के स्थान पर यवनिका शब्द का प्रयोग किया गया है।) डिम में शास्त्रीय नियमानुसार श्रृङ्गार रस नहीं होना चाहिए, इसमें श्रृङ्गार को ही अंगी बनाया गया है। डिम में विष्कम्भक और प्रवेशक नहीं होने चाहिये किन्तु इसमें हैं। नियम निर्वाह में लेखक ने पर्याप्त स्वतन्त्रता ग्रहण की है।

(२) **श्रीकृष्ण विजयम्**– (ना.कृ.) यह एक व्यायोग है जिसकी रचना रामचन्द्र वेल्लाल ने १८वीं शताब्दी में की थी। इसमें कृष्ण द्वारा रुक्मिणी को युद्ध से प्राप्त करने का कथानक अंकित किया गया है। इसका अभिनय श्रीरंगनायक के शारदोत्सव में किया गया था।

श्रीकृष्णविनोद– (ना.कृ.) शङ्कर मिश्र (दे.) का लिखा नाटक।

श्रीकृष्ण शृङ्गार तरङ्गिणी– (ना.का.) वेङ्कटाचार्य लिखित ५ अंकों का नाटक। नारद से कृष्ण को एक पारिजात प्राप्त होता है जो कृष्ण प्रेम में रुक्मिणी को दे देते हैं। इस पर सत्यभामा नाराज हो जाती है। तब कृष्ण उन्हें मनाने के लिये इन्द्रलोक जाकर इन्द्र से युद्ध करते हैं तथा उन्हें पराजित कर पारिजात पुष्प लाकर सत्यभामा को देते देते हैं। अन्तिम अंक में कृष्ण और सत्यभामा की प्रणय लीला वर्णित है। इसमें चुम्बन आलिङ्गन का प्रयोग किया गया है। इसका रचनाकाल १८वीं शताब्दी है।

श्रीकृष्णसंगीतिका– (ना.कृ.) श्रीधरभास्कर वर्णेकर (दे.) लिखित ८ अंकों का गीतिकाव्य।

श्रीगोरक्षः– (ना.कृ.) दे. रक्षक।

(१) **श्रीदामचरित**– (ना.कृ.) सामराज दीक्षित (दे.) विरचित ५ अंकों का एक प्रतीक नाटक (दे.) इसे कुछ लोग सुदामा चरित नाम से भी अभिहित करते हैं। कृष्ण के मित्र सुदामा की आकस्मिक धनप्राप्ति का उपाख्यान इस नाटक का विषय है। सुदामा का लक्ष्मी के प्रति द्वेष और सरस्वती के प्रति प्रेम है। अतः गरीवी और मूर्खता उन पर आक्रमण कर देती हैं क्योंकि जो लोग पवित्र और बुद्धिमान हैं उन पर सौभाग्य दृष्टि पात भी नहीं करता। वह उसी परिमाण में व्यक्ति से दूर होता जाता है जिस परिमाण में व्यक्ति का झुकाव दर्शन और उच्च गुणों की ओर होता है। दूसरी ओर जब धनवानों में विगाड़ उत्पन्न हो जाता है तब विष्णु या कृष्ण मूर्खता इत्यादि प्रतिनिधियों को नियुत्क कर उन्हें ठीक मार्ग पर लाने का प्रयत्न करते हैं। मूर्खता उन धनवानों के हृदयों में प्रवेश कर उन्हें दरिद्रता की ओर ले जाती है और जब वे विपत्ति में पड़ जाते हैं तब उन्हें सांसारिकता से विराग हो जाता है। उन्हें सांसारिक माया मोह से छुटकारा मिल जाता है और वे स्वर्ग के अधिकारी बन जाते हैं।

इस नाटक में मूर्खता का मानवीकरण कर उन्हीं तत्वों द्वारा सुदामा का तात्पर्य सिद्ध किया गया है। इन्हीं तत्वों के प्रभाव से सुदामा कृष्ण के निकट जाने और उनसे आतिथ्य प्राप्त करने के अधिकारी बन जाते हैं।

कैटेलागस कैटेलागोरम II ६८, III १४२ (इसके साथ टीका भी है।) विल्सन के थियेटर II ४०४-६ में इसका विश्लेषण किया गया है। इस नाटक की रचना १९४२ में हुई थी।

श्रीधर– (ना.का.) ये १८वीं शताब्दी के ट्रावन्कोर के निवासी थे और वहां के राजा देवनारायण ने इनका सम्मान किया था। इनका लिखा लक्ष्मीदेवनारायणीय (दे.) नाटक प्राप्त होता है।

श्रीधर पेरुभट्ट– (ना.का.) १८वीं शताब्दी के आन्ध्र के कवि हैं। इनका लिखा वसुमंगलम् नाटक प्रकाश में आया है। इन्होंने औणादिक पदार्णव नामक शब्दशास्त्रीय

ग्रन्थ की भी रचना की थी।

श्रीधरभास्करवर्णेकर- (ना.क़ा.) आधुनिक काल के सर्वप्रमुख लेखकों में एक। संस्कृत साहित्य के इतिहास का इनका विशेष अध्ययन है और अर्वाचीन संस्कृत साहित्य पर अधिप्रबन्ध में इन्हें नागपुर विश्वविद्यालय से सर्वोच्च डी लिट् की उपाधि प्राप्त हुई। साहित्यअकादमी, कालिदास आदि अनेक पुरस्कार प्राप्त किये।

इनका लेखन कार्य अत्यन्त व्यापक और बहुमुखी है। संस्कृत, मराठी और हिन्दी तीनों भाषाओं में इन्होंने पुस्तकें लिखी हैं जिनमें महाकाव्य, खण्डकाव्य, गीतिकाव्य, गद्य रचनायें आदि अनेक प्रकार के सृजनात्मक साहित्य-ग्रन्थ सम्मिलित हैं। जहां तक ग्रन्थों की विशालता का प्रश्न है इनका शिवराज्योदय महाकाव्य ६८ सर्गों का एवं कई नाटक दस और ग्यारह अंकों के हैं।

इनके साहित्य में निम्नलिखित दो नाटकों विवेकानन्द विजय और शिवराज्याभिषेक एवं श्री रामसंगीतिका और श्रीकृष्णसंगीतिका दो गीतिनाट्य भी शामिल हैं।

महत्वपूर्ण साहित्य सर्जना के अतिरिक्त संस्कृत और मराठी की पत्रिकाओं एवं संस्कृतवाङ्मय के सर्वाङ्गपूर्ण दो खण्डों के सम्पादन, देश विदेश की अनेक संस्थाओं और आयोगों की सदस्यता एवं अध्यक्षता तथा संस्कृत साहित्य और शिक्षा के क्षेत्र में अनेक अन्य गतिविधियों की प्रतिष्ठा भी आपको प्राप्त है।

(१) **श्रीनिवास-** (ना.क़ा.) इनके नाम पर कई नाट्य कृतियां प्रसिद्ध हैं। जिनमें कल्याणीपरिणय (उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम I ८६) कनकाक्षी परिणय (वही १८६) कनकवल्ली परिणय (वही १.९४ और उषा परिणय (वही १.७८) सम्मिलित है।

(२) **श्रीनिवास-** (ना.क़ा.) इनका लिखा शुकाभिपतन नाटक मैसूर पुस्तकालय के पाण्डुलिपि अनुभाग सं. २८४ पर प्राप्त किया जा सकता है।

(३) **श्रीनिवास-** (ना.क़ा.) ये रामानुज के पुत्र थे। इनका लिखा लक्ष्मीस्वयंवर नाटक कैटेलागस कैटेलागोरम सं. १.७१ पर उल्लिखित है।

(४) **श्रीनिवास (वीरवल्ली)** – (ना.क़ा.) इनका जन्म वीरवल्ली वंश में कौण्डिन्य गोत्र में १७वीं शताब्दी के प्रारम्भ में हुआ था। इनका लिखा ८ सर्गों का एक महाकाव्य, अनेक गद्य एवं चम्पू काव्य प्राप्त होते हैं। इनकी एक नाट्य रचना वकुलमालिनी परिणय का उल्लेख मद्रास की ओरियण्टल लायब्रेरी के पाण्डुलिपि अनुभाग में ट्रायेनियल कैटेलागस में सं. १.१०४७ पर संकलित की गई है।

(५) **श्रीनिवास-** (श्रीशैल) इनका लिखा गोदापरिणय (दे.) नाटक प्राप्त होता है जिसका संकलन ओरियण्टल मैन्युस्क्रिप्ट लायब्रेरी मद्रास में डिस्क्रिप्टिव कैटेलाग सं. १८३९९ पर किया गया है। इनका लिखा रामकथाशुभोदय नामक एक रामकाव्य भी है।

(६) **श्रीनिवास-** (ना.का.) ये प्रतिवादिभयंकरगोत्रीय नृसिंह के पुत्र और श्री संस्कृतकालेजकोयम्बटूर में प्रिंसिपल थे। इनकी मृत्यु १९०० में हो गई थी। इनका लिखा रसिकरञ्जन भाण प्राप्त होता है।

(७) **श्रीनिवास-** (ना.का.) ये देवराज के पुत्र थे, इनके लिखे मरकतवल्लीपरिणय (दे.) नाटक का उल्लेख तंजौर के राज पुस्तकालय में सं. ८.३४५० पर किया गया है।

(८) **श्रीनिवास-** (ना.का.) ये श्रीवत्सगोत्र में उत्पन्न हुये थे। इन्होंने आनन्द रंग नामक एक चम्पू लिखा था जिसमें आनन्द रंग के जीवन चरित्र का चित्रण किया गया है। इसके अतिरिक्त इनका शृङ्गार चन्द्रिका (दे.) नामक एक भाण भी है।

(९) **श्रीनिवास-** (ना.का.) इनका लिखा श्रीरंगनाथ भाण (दे.) मैसूर ओरियण्टल लायब्रेरी के पाण्डुलिपि अनुभाग में संकलित किया गया है।

(१०) **श्रीनिवास-** (ना.का.) इनके नाम पर सीतादिव्यचरित नाटक बतलाया जाता है।

श्रीनिवासदयाविलास- (ना.कृ.) अज्ञातनामा कवि की रचना। मैसूर पुस्तकालय के पाण्डुलिपि अनुभाग में प्राप्य।

श्रीनिवास दीक्षित- (रत्नखेट) (ना.का.) विश्वामित्र गोत्र के भाव स्वामी के पुत्र और कृष्ण के पौत्र थे। इनका समय ई. की २६ वीं शताब्दी का मध्य भाग है। इन्हें गिंगी के नायक चोल नरेश ने वर्णन शैली पर प्रसन्न होकर रत्नखेट की उपाधि प्रदान की थी और आगे चलकर ये उसी नाम से प्रसिद्ध हुये। ये अप्पय दीक्षित और गोविन्द दीक्षित के समसामयिक थे। ये बहुज्ञ एवं सफल लेखक थे। इनको षड्भाषा चतुर, अद्वैत विद्याचार्य, अभिनव भवभूति, आदि अनेक उपाधियां प्राप्त हुई थीं। दर्शन एवं अन्य शास्त्रों के अतिरिक्त कहा जाता है इन्होंने १८ नाटक और ६० काव्य ग्रन्थ लिखे थे। इनका दमयन्ती के विवाह को लेकर भैमी परिणय (दे.) नामक नाटक और रुक्मिणी को लेकर लिखा गया इसी नाम का एक चम्पू प्राप्त होता है। इनका एक प्रतीक नाटक भावना पुरुषोत्तम (दे.) भी प्राप्त होता है। इनके ग्रन्थों की सूची काव्यमाला के गंगावतरण की भूमिका में उद्धृत की गई है।

श्रीनिवास रंगाचार्य- (ना.का.) इनका लिखा गुरुदक्षिणा (दे.) नाटक प्रकाश में आया है।

श्रीनिवासविजयनाटिका- (ना.कृ.) यह नरसिंह दीक्षित की लिखी नाटिका है जिसकी रचना शक संवत् १५७२ (सन् १६५०) में हुई थी। मद्रास पुस्तकालय की त्रैवार्षिक खोज रिपोर्ट सं. IV ५४७९ पर इस नाटिका का उल्लेख किया गया है।

श्रीनिवासविलास- (ना.कृ.) यह एक भाण है जिसकी रचना रामानुजाचार्य ह्वी (दे.) ने की थी।

श्रीनिवास वेदान्ताचार्य– (ना.का.) ये काञ्जीवरम के नजदीक पुरुम्बुदूर के निवासी थे। इन्होंने रसोल्लास (दे.) नामक भाण की रचना की थी।

(१) **श्रीनिवासशास्त्री–** (ना.का.) उपहारवर्मचरित (दे.) नामक नाटक के लेखक। इनका जन्म कावेरी नदी के तट पर सहजपुरी नामक ग्राम में १९वीं शताब्दी के मध्य में हुआ था। इन्हें वेदवेदान्तवर्धक की उपाधि प्राप्त थी। इनके पिता का नाम वेङ्कटेश्वर और पितामह का नाम सुब्रह्मण्य शास्त्री था।

(२) **श्रीनिवासशास्त्री–** (ना.का.) सौम्यरसोदयम् (दे.) नाटक के लेखक।

(१) **श्रीनिवासाचार्य–** (ना.का.) ये तिरुवदी नामक स्थान के निवसी थे। इनका जन्म १८६३ मे हुआ था। राजमदन स्कूल बोर्ड में ये संस्कृत के पण्डित थे। इनके लिखे दो नाटक बतलाये जाते हैं क्षीराब्धिशयनम् (दे.) और ध्रुव (दे.)। इनके नाटक प्रकाशित नहीं हुये हैं कृष्णमाचार्य के अनुसार राजमदन में इनके पुत्र आर.एस. कृष्णाचार्य के पास अब भी सुरक्षित हैं। इनके दोनों नाटकों का अभिनय उसी स्कूल में हुआ था जहां ये कार्यरत थे। इनका देहावसान १९३२ में हो गया था।

(२) **श्रीनिवासाचार्य–** (ना.का.) लोकरंजन प्रहसन (दे.) के लेखक।

(३) **श्रीनिवासाचार्य–** (ना.का.) जाम्बवन्तीकल्याण (दे.) (२) के लेखक।

(४) **श्रीनिवासाचार्य–** (ना.का.) ये वरदाचार्य के पुत्र थे और चिंगलपुट जिला के श्री पेरुम्बुदूर नामक स्थान पर रहते थे। इनका लिखा शारदानन्दन (दे.) भाण प्रकाश में आया है। इनका लिखा अम्बुजवल्लीकल्याण नामक पंचागी नाटक भी बतलाया जाता है।

(५) **श्रीनिवासाचार्य–** (ईच्चमवाडि) (ना.का.) दक्षिण अर्काट जिला के तिरुवहिंड पुरम् के निवासी कौण्डिम्य गोत्रीय वेदान्ताचार्य के पुत्र थे। इनका समय १८४८ से १९१४ ई. है। ये गवर्नमेण्ट कालेज कुम्भकोणम् में संस्कृत के प्रोफेसर थे, एक प्रतिष्ठित कवि थे, कविता के क्षेत्र में कविता की दृष्टि से उन्हें उच्चकोटि की कला निपुणता का वरदान प्राप्त थां। मृच्छकटिक और नागानन्द की इनकी व्याख्यायें उच्चस्तर की मानी जाती हैं। कालिदास के ग्रन्थों और विशेषकर शाकुन्तल की इनकी व्याख्या अतुलनीय मानी जाती है। इन्होंने स्वयं भी दो नाट्य ग्रन्थ लिखे थे– शृङ्गारतरंगिणी भाण और उषापरिणय नाटक। इनके अतिरिक्त हंसविलास नामक ६ सर्गों का काव्य और कृष्णलीलायित तथा शार्ङ्गकोपाख्यान गद्य ग्रन्थ भी इनकी अन्यतम कृतियां हैं। सङ्गीतकला में भी इन्हें निपुणता प्राप्त थी जो कि इनकी कविताओं में प्रतिफलित होती है। गीतगोविन्द की शैली पर इन्होंने अमृतमन्थन नामक एक पुस्तक लिखी थी और उसी प्रकार की एक अधूरी रचना भी बतलाई जाती है।

(६) **श्रीनिवासाचार्य–** (ना.का.) सुदर्शनविजय नाटक के लेखक।

श्रीरंगनाथभाण– (ना.कृ.) इनके रचनाकार हैं श्रीनिवास (९) इसकी प्रति मैसूर ओरियण्टल पुस्तकालय के पाण्डुलिपि अनुभाग में संकलित है।

श्रीरंगराजचरित– (ना.कृ.) इस नाटक का उल्लेख त्रैवार्षिक रिपोर्ट मद्रास में सं. VI ७४२३ पर किया गया है।

श्रीराम भिकाजी वेलण्कर– (ना.का.) दे. वेलण्कर श्रीराम भीकाजी।

श्रीराम महाराज– (ना.का.) ये मालावार के राजकुमार थे इन्होंने 'सुबालावज्रतुण्ड' (दे.) नामक ५ अंकों का एक नाटक लिखा था।

श्रीरामराय– (वेल्लमकोण्ड) (ना.का.) भरद्वाज गोत्र में गुण्टूर जिले के पमिदिपाडु अग्रहारम् में १८७५ में पिता मोहनराय और माता हनुमायम्मा से इनका जन्म हुआ था। लगभग सभी शास्त्रों का इन्होंने अध्ययन किया था और दार्शनिक विषयों के अतिरिक्त इन्होंने अनेक चम्पू और अनेक छोटे बड़े काव्य ग्रन्थ लिखे थे। साथ ही इनका लिखा कन्दर्प दर्पण (दे.) नाम का एक भाण भी है।

श्रीरामविजयम्– (ना.कृ.) रमानाथ मिश्र लिखित ५ अंकों का नाटक। इसमें ताडकावध से रावण वध तक की घटनाओं का चित्रण किया गया है। कथानक में अनेक परिवर्तन भी किये गये हैं। इसकी रचना १९४० में हुई थी और वालेश्वर मण्डल संस्कृत नाट्यसंघ (उड़ीसा) से इसका प्रकाशन सन् १९५४ में किया गया था।

श्रीराम संगीतिका– (ना.कृ.) श्रीधर भास्कर वर्णेकर लिखित ११ अंकों का गीति नाट्य।

श्रीलोकमान्यस्मृति– (ना.कृ.) श्रीराम वेलण्कर लिखित दो अंकों का रुपक। इसमें लोकमान्यबालगंगाधर तिलक के जीवन के अन्तिम दृश्यों का उपादान किया गया है। इसका प्रकाशन १९७० में तिलकस्मारक मन्दिर पुणे की ओर से किया गया।

श्रीवत्सलाञ्छन– (ना.का.) इनको केवल श्रीवत्स नाम से भी जाना जाता है। ये बंगाल के निवासी थे। इन्होंने विद्यानाथ से उद्धरण दिये हैं और इनका कमलाकर ने उल्लेख किया है। इनकी सारबोधिनी की व्याख्या में चक्रवर्ती के सारसंग्रह का अनुसरण किया गया है। इन सब बातों पर विचार करने से इनका समय १६वीं शताब्दी सिद्ध होता है। इन्होंने विद्यासागर और जयराम की टीकाओं का भी सन्दर्भ प्रस्तुत किया है। इनकी लिखी कई पुस्तकों का पता चलता है जिनमें काव्यपरीक्षा, काव्यामृत इत्यादि सम्मिलित हैं। इनका रामोदय शीर्षक नाटक भी प्राप्त होता है जिसका कैटेलागस कैटेलागोरम १.५२६ पर उल्लेख किया गया है।

श्रीवत्साङ्क– (ना.का.) दे. वासुदेव नरेन्द्र।

श्रीशिववैभवम्– (ना.कृ.) यह विनायक राव वोकिल (दे.) का लिखा नाटक है। रचनाकाल २० वीं शताब्दी।

श्री शैलताताचार्य– (ना.का.) शठमर्षण गोत्र के वेङ्कट वरद के पुत्र थे और १८०२-१८२५ के मध्य काञ्चीवरम् में रहते थे। इन्होंने युगलाङ्गुलीय (दे.) नामक एक छोटा सा नाटक लिखा था। इसके अतिरिक्त वेदान्तदेशिकचरित नाटक (दे.) में विशिष्टाद्वैत दर्शन की विशेषताओं का वर्णन किया है। इन्होंने दुर्गेशनन्दिनी और क्षत्रियरमणी इन दो बंगली पुस्तकों का अनुवाद भी किया है।

ष

षणमतनाटकम्– (ना.कृ.) यह जयन्त भट्ट का लिखा प्रतीक नाटक है। इसका उल्लेख पैटर्सन रिपोर्ट में सं. V ४३७ पर किया गया है।

षाहजहांन्नृपतिराजनीति– (ना.कृ.) यह हजारीलाल शर्मन का लिखा नाटक है। जिसमें शाहजहां वादशाह की राजनीति का वर्णन किया गया है।

स

संयुक्ता– (ना.कृ.) जग्गूश्रीवकुलभूषण (दे.) लिखित नाटक।

संयोगितास्वयंवर– (ना.कृ.) यह मूलशंकर माणिकलाल यज्ञिक द्वारा लिखा नाटक है। इसमें भारत के अन्तिम क्षत्रिय सम्राट् पृथ्वीराज के कामुककपटजाल का चित्रण किया गया है।

यह नाटक बड़ौदा से प्रकाशित हुआ है। रचना १९२७ में और प्रकाशन १९२८ में सम्पन्न हुआ। इसमें गीतों का बाहुल्य है और छायातत्व का समावेश किया गया है।

संवाहक– (ना.पा.) दे. भिक्षु (१)।

संसारामृतम्– (ना.कृ.) डा. रमा चौधरी लिखित नाटक। अंकों के स्थान पर दृश्यों में विभाजित; दृश्य सं. सात। केलि एक गरीव कन्या है जिसे प्रतिनायक ने धोखा दिया है। किन्तु उसका प्रेमी मयूर उसे अपना लेता है।

संस्कृत वाग्विजयम्– (ना.कृ.) प्रभुदत्त शास्त्री लिखित ५ अंकों का नाटक। अंकों का दृश्यों में विभाजन। इसमें विभिन्न कालों में संस्कृत स्वरुपों का तुलनात्मक विवेचन किया गया है जिन में पाणिनि कालीन, भोज कालीन और आधुनिक कालीन संस्कृत की उच्चावचता पर दृष्टिपात मुख्य वस्तु है। विदूषक, विदूषिका हास्य सृष्टि करते हैं। प्राकृत के स्थान पर हिन्दी का प्रयोग इसकी एक विशेषता है। दिल्ली से १९४२ में इसका प्रकाशन हो गया था।

संस्थान– (ना.पा.) चारुदत्त का एक पात्र। यह मृच्छकटीक के संस्थानक का प्रतिरूप

है।

संस्थानक– (ना.पा.) मृच्छकटिक में राजा का साला। शकार (दे.) का वास्तविक नाम।

संकल्प सूर्योदय– (ना.कृ.) वेदान्त देशिक वेङ्कटनाथ द्वारा १३वीं शताब्दी में लिखित एक प्रतीक रूपक। वेङ्कटनाथ ने विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त पर यह रूपक लिखा है जिसमें कृष्णमिश्र (दे.) के प्रबोध चन्द्रोदय का अनुकरण किया गया है। जर्नल आफ एशियाटिक सोसाइटी आफ ग्रेट ब्रिटेन एण्ड आयरलैण्ड में सन् १९२१ में पृ. ५९१ पर इसका विवरण दिया गया। इसका सटीक प्रकाशन श्रीरंगम् से १९१७ में हुआ था। साथ ही मद्रास और बम्बई से भी इसका प्रकाशन हुआ। श्रीरंगम् के नारायणाचार्य रघुनाथ स्वामी ने इसका अंग्रेजी में अनुवाद किया जिसकी प्रति ओरियण्टल मैन्युस्क्रिप्ट लायब्रेरी मद्रास से सं. १४६०० पर प्राप्त की जा सकती है। कतिपय अन्य अनुवादकों का डिस्क्रिप्टिव कैटेलाग में उल्लेख किया गया है जिनका पता नहीं है। (कैटेलाग सं. XXI ८५४६-४९) उसी कैटेलागस में सं. XX ७९७७ पर कौशिक गोत्रीय श्रीनिवास के शिष्य द्वारा अनुवाद का उल्लेख किया गया है। यह प्रबोध चन्द्रोदय का उत्तर पक्ष है।

सङ्गीतयायातम्– (ना.कृ.) यह एक संगीत नाट्य (ओपेरा) है जिसमें बीच बीच में संगीत का प्रयोग किया गया है।

संगीतरघुनन्दनम्– (ना.कृ.) बघेल खण्ड के अधिपति विश्वनाथ सिंह की रचना। यह वास्तव में तो काव्य के रूप में लिखा गया है। विभाजन भी सर्गों में है। किन्तु पूर्ण रूप से गीत गोविन्द के अनुकरण पर इसकी रचना हुई है। शैली की दृष्टि से यह गीतिनाट्य की कोटि में आता है। विषय रामकथा।

सच्चरित्र– (ना.पा.) यह मोहराजपराजय (दे.) का एक पात्र है जो नीति देवी का पति और कीर्ति मञ्जरी का पिता है।

सज्जलक– (ना.पा.) यह भास के चारुदत्त (दे.) का एक पात्र है। मृच्छकटिक के शार्विलक (दे.) का यह पूर्व रूप है। चरित्र चित्रण केलिये दे. शार्विलक।

सञ्जय– (ना.पा.) वेणीसंहार का एक पात्र। इसने क्रुद्ध अश्वत्थामा को शान्त करने के लिये कौरवों की सेना की सहायता की।

सत्यचरितम्– (ना.कृ.) सुदर्शनपति लिखित नाटक।

सत्यभामा– (ना.पा.) कृष्णविषयक कतिपय नाट्यकृतियों में एक पात्र। पुराणों में भी कृष्ण के साथ उनकी पत्नियों में इसका चित्रण किया गया है।

(१) **सत्यभामापरिणय**– (ना.कृ.) सत्यभामा और कृष्ण के विवाह विषयक इस नाटक की रचना गर्भपुर के कृष्णकवि ने की थी। इसको मद्रास ओरियम्टल लायब्रेरी की त्रैवार्षिक खोज रिपोर्ट सं. III २९९७ में संकलित किया गया है।

(२) **सत्यभामा परिणय–** (ना.कृ.) औफ्रेट ने इस नाम के एक नाटक का उल्लेख किया है जिसे कृष्ण कवीन्द्र रचित बतलाया जाता है।

(३) **सत्यभामा परिणय–** (ना.कृ.) शेष कृष्ण (दे.) का लिखा बतलाया जाता है। इसकी रचना १६वीं शताब्दी में हुई थी।

(४) **सत्यभामा परिणय–** (ना.कृ.) यह ५ अंकों का नाटक है जिसमें सत्यभामा और कृष्ण के विवाह का वर्णन किया गया है। इसके रचनाकार हैं मल्लिकार्जुन (स्फुलिंग) और इसका अभिनय मुलन्द के उत्सव के अवसर पर किया गया था। इसकी प्रति मद्रास के ओरियण्टल पुस्तकालय के त्रैवार्षिक सूची पत्र में खण्ड III सं. २९५३ पर उपलब्ध है।

सत्यव्रत– (ना.का.) महर्षिचरितामृत (दे.) नाटक के लेखक। रचनाकाल २०वीं शताब्दी।

सत्यव्रतशर्मा– (ना.का.) भ्रमभञ्जनम् (दे.) नाटक के लेखक। ये पंजाब के निवासी थे।

(१) **सत्य हरिश्चन्द्र–** (ना.कृ.) हेमचन्द्र के शिष्य रामचन्द्र (दे. रामचन्द्र २) लिखित नाटक। इसका प्रकाशन बम्बई से हुआ है। इसका एक संस्करण फ्लोरेसं से इटैलियन अनुवाद के साथ भी प्रकाशित हो चुका है। हरिश्चन्द्र के प्रसिद्ध उपाख्यान का इसकी रचना में कथानक के रूप में उपयोग किया गया है। इसका रचनाकाल १२वीं शताब्दी है।

(२) **सत्य हरिश्चन्द्र–** (ना.कृ.) इस नाम की एक रचना हरिश्चन्द्र नामक किसी कवि की बतलाई जाती है। इसका उल्लेख रामचन्द्र गुणचन्द्र के नाट्य दर्पण में किया गया है।

(३) **सत्य हरिश्चन्द्र–** (ना.कृ.) यह रामचन्द्र (दे.) नामक कवि की रचना बतलाई जाती है। इसका उल्लेख जर्नल आफ रायल एशियाटिक सोसाइटी १९१४ के पृ. ११०४ पर किया गया है।

सत्याचार– (ना.पा.) कौतुक सर्वस्व (दे.) नाटक का नायक। यह हास्यरस का आलम्बन है। (चित्रण के लिये देखिये कौतुक सर्वस्व)।

सत्संग विजय– (ना.कृ.) वैद्यनाथ लिखित प्रतीक नाटक इसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम में १.६९० पर किया गया है। इसके पांच अंकों में गुर्जर प्रदेश के नारायणीय सम्प्रदाय की वुराइयां दिखाना प्रधान लक्ष्य रक्खा गया है। इसमें अच्छे और बुरे सभी प्रकार के प्रतीक पात्र है। नायक सत्संग, नायिका कीर्ति उसके सहायक हैं विद्या, तत्वविचार, प्रतिष्ठा, सत्य, आर्जव आदि। प्रतिनायक हैं– दुस्सङ्ग, उसके सहायक हैं– व्यभिचार, कुमति, मिथ्याभिशाप आदि।

सदाशिव– (ना.का.) प्रचण्ड भैरव (दे.) नाटक के लेखक।

सदाशिव दीक्षित– (ना.का.) ये भरद्वाज गोत्री चोक्कनाथ और माता मीनाक्षी से १८वीं शताब्दी में उत्पन्न हुये थे। ट्रावन्कोर के रामवर्मा के आश्रय में कुछ समय विताकर सन्यासी बन गये। रामवर्मा के नाम पर एक प्रशस्ति परक पुस्तक की भी रचना की थी। इनकी रचनायें धर्म और भक्ति परक होती हैं। इन्होंने दो नाटक भी लिखे थे– वसुलक्ष्मीकल्याण (दे.) और लक्ष्मीकल्याण (दे.)।

S.N.K. ताडपत्रीकर– (ना.का.) इनका समय २० वीं शताब्दी का मध्यकाल है। इन्होंने विश्वमोहन नाम से १९५१ में गोइट के फाउस्ट का संस्कृत में अनुवाद किया था।

सन्तुष्ट– (ना.पा.) अविमारक में विदूषक (दे. विदूषक)।

सन्तोष– (ना.पा.) सैनिक जिसने अन्यों के साथ मोहराज को पराजित करने में विवेक की सहायता की।

सन्मत नाटकम्– (ना.कृ.) यह जयन्त भट्ट (दे.) का लिखा प्रतीक नाटक है। बम्बई में संस्कृत पाण्डुलिपियों की पेटर्सन द्वारा की गई खोज रिपोर्ट (V ४३७ में इसका उल्लेख किया गया है।

सभानाटक– (ना.कृ.) महेश्वर लिखित नाटक। कैटेलागस कैटेलागोरम सं. १६९६ में इसका उल्लेख किया गया है।

(१) **सभापति विलास**– (ना.कृ.) यह वेङ्कटेश्वर का लिखा नाटक है। तंजौर पुस्तकालय के पाण्डुलिपि कैटेलाग में सं. ३५१८ पर इसका उल्लेख किया गया है। कैटेलागस कैटेलागोरम सं. १६९६ में लिखा है कि यहरचना धर्मराज की है। यह भूल से दे दिया गया है और यह भूल अन्यत्र भी दोहराई गई है। इसकी रचना १८वीं शताब्दी में की गई थी। इस रचना पर कवि को चिदम्बरम् की उपाधि प्राप्त हुई थी। इसका प्रंथम अभिनय चिदम्बरपुर के कनक सभापति (शिव) की यात्रा के महोत्सव में किया गया था। इसका प्रधान नायक व्याघ्रपाद और उपनायक पतञ्जलि है। प्रधानरस – शृङ्गार।

(२) **सभापतिविलासनाटकम्**– (ना.कृ.) तंजौर राज्य के राहित्य में सन्निविष्ट एक नाट्यकृति जिसका कर्ता अज्ञात है।

सभापर्वनाटकम्– (ना.कृ.) जयरन मल्लदेव (दे.) (अथवा जयराम महादेव या जयराम मल्लदेव) का लिखा नाटक। इसमें महाभारत के सभापर्व को रुपकायित किया गया है। इसकी एक संज्ञा पाण्डव विजय भी है।

समाधानम्– (ना.कृ.) रमानाथ मिश्र लिखित ५ अंकों का नाटक। छात्र और छात्रायें यूरोपीय पद्धति पर गन्धर्व विवाह कर लेते हैं उनसे जो समस्यायें उत्पन्न होती हैं उनके समाधान की इसमें चर्चा की गई है। इसकी रचना १९४५ में की गई थी।

समिद्धार्थक– (ना.पा.) मुद्राराक्षस (दे.) में एक पात्र। यह चाणक्य का स्वामिभक्त कर्तव्य परायण गुप्तचर है जो अपने कर्तव्य पालन के लिये चाण्डाल तक का वेष धारण

करने में संकोच नहीं करता।

(१) **समुद्रमन्थन**– (ना.कृ.) भरत के नाट्यशास्त्र में इस नाम वाले समवकार (दे.) का उल्लेख किया गया है। जब रंग पूजा इत्यादि की तैयारी ही चल रही थी पितामह ब्रह्माजी ने प्रथम अभिनय के लिये इसकी रचना कर डाली और भरत के शिष्यों को उसका अभ्यास भी करा दिया। रंगपूजा के बाद इसका अभिनय किया गया। भरत का कहना है कि यह समवकार धर्म अर्थ और काम का साधक था तथा पहले ही प्रदर्शन में पहुत सफल रहा। कर्मभाव के अनुदर्शन से इससे देवता और दावन प्रसन्न हुये। यह उत्साह का जनक था, आनन्द दायक था, देवताओं की प्रीति के लिये लिखा गया था। तथापि इससे दानव भी प्रसन्न हुये क्योंकि उसमें देवताओं के उत्साह का भी चित्रण किया गया था। अब यह रचना प्राप्त नहीं होती।

(२) **समुद्रमन्थन**– (ना.कृ.) धनिक ने समवकार के उदाहरण के रुप में इस रचना का उल्लेख किया है। यह वत्सराज लिखित समवकार है। इसके लिखने की प्रेरणा लेखक को सम्भवतः नाट्यशास्त्र के उल्लेख से मिली थी। इसमें दो पद्यों की नान्दी के बाद सूत्रधार और स्थापक का संवाद चलता है। फिर देवताओं और दावनों द्वारा सम्मिलित रूप में किये गये समुद्रमन्थन की पौराणिक कथा अभिनेय रूप में प्रस्तुत की जाती है। दशरूपककार का कहना है कि समवकार में देव और असुर दोनों मिलकर १२ नायक होते हैं जिनको पृथक् पृथक् फल प्राप्त होता है। प्रस्तुत समवकार में विष्णु को लक्ष्मी की तथा अन्यान्य देवासुरों को पृथक् पृथक् रत्नों की प्राप्ति हुई। धनञ्जय ने इसका उल्लेख अम्भोधिमन्थन के रूप में किया है। यह पुस्तक गायकवाड़ ओरियण्टल सीरीज बड़ौदा से प्रकाशित हो चुकी है। इसका अभिनय १२वीं शताब्दी के परमार्दिदेव और उनके पुत्र त्रैलोक्य वर्मदेव के मनोरञ्जन के लिये किया गया था।

इस नाटक में पहले अंक में लक्ष्मी अपनी दो सहेलियों धृति और लज्जा के साथ अपने प्रियतम विष्णु का चित्र तन्मयता से देख रही है। बाद में रंगमञ्च पर विष्णु का भी प्रवेश होता है। रुपक का कथानक इस प्रकार है– सूत्रधार और उसके ११ भाई साथ साथ सम्पत्ति पाना चाहते हैं। यह सम्भव नहीं है। स्थापक के परामर्श और नेपथ्य से किसी शब्द के द्वारा समुद्र के शरण में जाने की राय दी जाती है, क्योंकि समुद्र ही सभी इच्छाओं को पूरा करने वाला है। इसके साथ समुद्र मन्थन की प्रसिद्ध कथा का मञ्चन प्रारम्भ हो जाता है। समुद्र से जो १४ रत्न निकले हैं इनमें विष्णु को लक्ष्मी की प्राप्ति हुई। दैत्यराज ने वलात् अमृत पर अधिकार कर लिया। तब दैत्यों के भय से सभी रत्न समुद्र को लौटने लगे। समुद्र ने मानव रूप में प्रकट होकर सभी का भय दूर किया। विष्णु ने मोहनी रूप धारण कर दैत्यों से वह अमृत कलश पुनः प्राप्त कर देवताओं को प्रदान कर दिया।

समृद्धमाधव– (ना.कृ.) गोविन्दकविभूषण (दे.) लिखित नाट्यकृति। इसका संकलन

कैटेलागस कैटेलागोरम में सं. III १४४ पर किया गया है।

सम्पाति– (ना.पा.) रामकथानक का एक प्रसिद्ध पात्र। यह गृध्र है और जटायु का बड़ा भाई है। वह सीता की खोज में वानरों की सहायता करता है।

महावीर चरित– में जटायु के साथ उसके संवाद में राम के कार्यों की सूचना मिलती है। वह जटायु को राम की भली भांति रक्षा करने का आदेश देता है।

सरमा– (ना.पा.) इन्द्र की दूती जो पणियों (इस नाम से असुरों) के पास जाकर रोचक वाद विवाद करती है। (ऋग्वेद १०-१०८)

सरमापणिसंवादसूक्त– (ऋ.सू.) १०वें मण्डल का १०८वां सूक्त। सरमा इन्द्र की दूती है। वह अपहृत गायों की खोज में पणि नामक असुरों के पास जाती है। वह उनसे मनोरञ्जक वाद विवाद करती है। यह संवाद कूटनीति विषयक वार्तालाप का उदाहरण हैं।

सरयू– (ना.पा.) प्रसन्नराघव (दे.) में एक पात्र। यह सूचक पात्रों में एक है जो धनुर्भङ्ग और सीता स्वयंवर तक की घटनाओं की सूचना देती है।

सरल चित्सुखीसार– (ना.कृ.) एक प्रतीक नाटक है। इसकी रचना रमेशचन्द्र (दे.) ने की थी। इसमें शास्त्रीयतत्वों के मानवीकृत पात्र हैं जिनका नाटकीकरण किया गया है। इसका प्रकाशन सहृदय संस्कृत जर्नल मद्रास (सं. XVIII) से हो चुका है।

सरसकवि कुलानन्द– (ना.कृ.) वेल्लाल वंशीय रामचन्द्र लिखित भाण। इसका नायक भुजंगशेखर है। इसका अभिनय गोदावरी जिला के भद्राचलम् स्थान पर किया गया था। ओरियण्टल लायब्रेरी मद्रास के पाण्डुलिपि अनुभाग के ट्रायेनियल कैटेलाग सं. II १४३० में इसका उल्लेख है। इसकी रचना १८वीं शताब्दी में हुई थी।

सरस्वती कण्ठाभरण– (ना.कृ.) कविन्द्र (कवीन्द्र) आचार्य के संग्रह में इस नाटक का सङ्कलन किया गया है। कुछ लोगों का विचार है कि यह उनकी स्वयं की रचना थी।

सरस्वती वैयासिकी विद्या– (ना.पा.) प्रबोधचन्द्रोदय का पात्र। यह वेदान्त विद्या के लिये प्रयुक्त हुआ है। जब मोहराज और प्रवृत्ति की मृत्यु हो जाती है तब यह आकर समस्त भ्रान्तियों को दूर करती है।

सर्वचरित– (ना.कृ.) वाण भट्ट के नाम पर इस नाटक का उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम सं. I. ७०१ पर किया गया है।

सर्वदमन– (ना.पा.) अभिज्ञान शाकुन्तल (दे.) का एक पात्र। इसके माध्यम से कवि ने वात्सल्य रस और बाल्यजीवन के आमोद प्रमोद का चित्रण किया है।

सर्वविनोदनाटक– (ना.कृ.) कृष्ण अवधूत घटिकाशत महाकवि लिखित ईहामृग। इस नाटक का उल्लेख कीथ ने संस्कृत ड्रामा में किया है।

सर्वार्थसिद्ध– (ना.पा.) मुद्राराक्षस में नन्दवंश का अन्तिम अवशेष जो विरक्त होकर

सन्यासी बनकर जंगल को चला गया था। नाटक में इसका समावेश नहीं हुआ है, किन्तु मुद्राराक्षस की पृष्ठभूमि में इसकी सत्ता बतलाई जाती है।

सलकृष्ण– (ना.का.) मुदितराघव नाटक के लेखक जिसका संकलन कैटेलागस कैटेलागोरम में सं. II. १०६ पर किया गया है।

सहजानन्द– (ना.कृ.) दे. सहृदयानन्द।

सहदेव– (ना.पा.) वेणीसंहार (दे.) में कनिष्ठ पाण्डव। इसमें ये भीमसेन के अधिक निकटवर्ती हैं और समय समय पर भीमसेन के क्रोध को शान्तकरने का प्रयत्न करते रहते हैं।

सहृदयानन्दन– (ना.कृ.) हरिजीनव मिश्र लिखित प्रहसन। इसमें नायिकाभेद इत्यादि साहित्यिक तत्वों को हास्योत्पादक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। ब्रह्मानन्द की प्राप्ति के लिये कठिन साधना की आवश्यकता होती है जबकि नायिकाभेद आदि तत्व सुनते ही सुनते आनन्द देने लगते हैं। अखण्डानन्द के काव्यरसास्वाद को प्रथम स्थान मिलता है और राजा उसे पुष्कल पुरस्कार देता है।

इस नाटक को सहजानन्द संज्ञा भी दी जाती है। इसकी रचना १७वी शताब्दी में हुई थी।

सागरनन्दी– (ना.का.) 'नाटकलक्षण रत्नकोश' नामक काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ के लेखक के रूप में इन्हें प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है। इसके अतिरिक्त भी इन्होंने छन्दःशास्त्र, संगीत, निघण्टु आदि विषयक पुस्तकें भी लिखीं थीं। इनका लिखा 'जानकीराघव' नामक एक नाटक भी बतलाया जाता है।

सागरिका– (ना.पा.) रत्नावली नाटिका की नायिका। सिंहल की राजकुमारी रत्नावली इस नाम से वासवदत्ता (महारानी) की दासी बन कर रही थी जहां उसका राजा उदयन से प्रेम सम्बन्ध प्ररुढ हो गया था। (उसके चरित्र चित्रण के लिये देखिये रत्नावली ना.पा.)

साङ्कृत्यायनी– (ना.पा.) प्रियदर्शिका में वासवदत्ता की वृद्धा सहचरी। इसने ही अभिनय के लिये एक नाटक की रचना की थी और उसके प्रदर्शन का आयोजन किया था। उस नाटक की रचना उदयन और वासवदत्ता के प्रणय सम्बन्ध को लेकर की गई थी। अभिनय में स्वयं राजा ने अपनी भूमिका निभाई थी और वासवदत्ता की भूमिका आरण्यका (प्रियदर्शिका) को दी गई थी। वह अभिनय इतना सपल हुआ कि राजा और आरण्यका का प्रेम बढ चला जो नाटक की प्रमुख विषय वस्तु है।

साण्डिल्यपरिव्राजक– (ना.कृ.) अज्ञातनामा कवि लिखित प्रहसन। मैसूर पुस्तकालय संस्कृत परिशिष्ट (१३) में उल्लेख।

साधुहिंसक– (ना.पा.) हास्यार्णव (दे.) प्रहसन का एक पात्र यह आरक्षियों का सरदार है और बन्धुरा (वेश्या) के यहां मृगङ्कलेखा से प्रेम करने वालों में एक है।

साध्यवसान– (नावि.) कतिपय लेखक Symbolism का अनुवाद इस शब्द से करते हैं इसके विषय में देखिये प्रतीक नाटक तत्व।

सान्दुकुतूहल– (ना.कृ.) कृष्णदत्त (दे.) लिखित प्रहसन। रचनाकाल १७५२, विभिन्न अंकों में विभिन्न विषय। चतुर्थ अंक प्रहसन के लिये समर्पित। प्रथम तीन अंकों में विभिन्न विषय। यह एक मनोरंजक रचना है। इसके आमुख में बतलाया गया है कि इसके रचनाकाल तक राजा धर्मवर्मा की मृत्यु हो चुकी थी।

पेटर्सन द्वारा बम्बई में की गई संस्कृत पुस्तकों की खोज रिपोर्ट में इसका उल्लेख किया गया है तथा कैटेलागस कैटेलागोरम I ७०७ में भी इसको स्थान दिया गया है।

सामन्त सौविदल्लम्– (ना.कृ.) नारायण शास्त्री १ लिखित ७ अंकों का नाटक।

सामराज दीक्षित– (ना.कृ.) १७वीं शताब्दी के एक नाटककार। ये मथुरा निवासी विन्दुपुरन्दर गोत्रीय नरहरि के पुत्र थे। बुन्देलखण्ड के आनन्दराय इनके आश्रयदाता थे। इन्होंने १६८१ में श्रीदामचरित नाटक (दे.) की रचना की जो एक प्रतीक नाटक है। इनका एक प्रहसन धूर्तनर्तक (दे.) भी उपलब्ध होता है। इन नाट्यकृतियों के अतिरिक्त काव्यशास्त्र पर एक पुस्तक काव्येन्दु प्रकाश भी है और पार्वती स्तोत्र, त्रिपुर सुन्दरी स्तोत्र इनकी प्रसिद्ध रचनायें हैं।

सामवतम्– (ना.कृ.) अम्बिकादत्त व्यास का लिखा ६ अंकों का नाटक। दो मित्र सुमेधा और सामवान् विवाहार्थ धनोपार्जन के लिये विदर्भ की ओर चले। मार्ग में मदालसा का संगीत सुनने में तल्लीन हो गये और दुर्वासा की उपस्थिति नहीं जान सके। दुर्वासा ने क्रुद्ध होकर स्त्री बन जाने का शाप दे दिया। विदर्भ में चित्राङ्गद की रानी से दान लेने के लिये सामवान् स्त्री वेष बनाकर राज भवन में पहुंचाता है। एक तो दुर्वासा के शाप से दूसरे महाराणी के सत्यव्रत के प्रभाव से वह वास्तव में स्त्री बन जाता है। सामवान के पिता के लिये एकाकी पुत्र का स्त्री बन जाना एक आघात है, अतः वह देवी की आराधना कर उसके पुनः पुरुष रूप में परिणत हो जाने का प्रयत्न करता है। किन्तु रानी की साधना में अधिक शक्ति है। अतः उसके द्वारा स्त्रीत्व दिये जाने को देवी भी टाल नहीं सकती। अन्त में उसका सामवती नाम रखकर उसके मित्र सुमेधा से विवाह करवाने में ही सन्तोष करना पड़ता है।

इसका कथानक स्कन्द पुराण के ब्रह्मोत्तर खण्ड से लिया गया है। भूत-प्रेत, रंगमञ्च पर नाव खेना, झंझावात, होली का उत्सव, वन यात्रा का दृश्य, नौका का डूबना, रंगमञ्च पर स्थित पात्र का नेपथ्य स्थित पात्र से बात करना इत्यादि इस नाटक की विशेषतायें हैं।

इसकी रचना १८८० में प्रथम प्रकाशन मिथिला नरेश द्वारा कराया गया और दूसरा प्रकाशन १९४७ में व्यास पुस्तकालय मानमन्दिर काशी से किया गया।

साम्यतीर्थ– (ना.कृ.) जीव न्यायतीर्थ लिखित ५ अंकों का नाटक। यह रवीन्द्रनाथ के निबन्धों पर आधारित नाटक है। इसका उद्देश्य है राष्ट्रीय एकता का प्रतिपादन। कलकत्ता से १९६२ में इसका प्रकाशन किया गया।

साम्बशिव– (ना.का.) शृङ्गारविलास भाण के लेखक। ये वत्सगोत्रीय कनकसभापति के पुत्र थे एवं गोपालसमुद्र नामक गांव में रहते थे। इन्होंने केरल के महाराज मान विक्रम (दे.) को प्रसन्न करने के लिये शृङ्गार विलास नामक भाण की रचना की थी।

सारस्वतम्– (ना.कृ.) मध्यप्रदेश निवासी २०वीं शताब्दी के नाटककार रामजीवन मिश्र का लिखा नाटक।

सारस्वतोल्लास– (ना.कृ.) यह एक भाण है जिसके रचनाकार हैं वेङ्कटराम। इसकी पाण्डुलिपि मैसूर ओरियण्टल पुस्तकालय के पाण्डुलिपि अनुभाग में सुरक्षित है।

सालिग्राम– (ना.कृ.) अभिमन्यु नाटक (दे.) के लेखक।

सावित्री– (ना.कृ.) श्रीकृष्ण त्रिपाठी लिखित एकाङ्की नाटक। इसमें सावित्री के पातिव्रत्य धर्म का प्रभाव दिखलाया गया है। इसकी रचना १९५६ में हुई थी।

सावित्रीचरित्रम्– (ना.कृ.) २०वीं शताब्दी का नाटक जिसकी रचना मन्मथ नाथ ने की थी।

सावित्रीचरित्र– (ना.कृ.) सर्वथा आधुनिक रचना है। यह महेश्वर के पुत्र शङ्करलाल-प्रणीत नाट्यकृति है। इसमें कुल ७ अंक हैं। रचना १९वीं शती के अन्त में की गई थी और बम्बई से प्रकाशन भी उसी वर्ष हुआ था। कतिपय विद्वान इसे छाया नाटक मानते हैं। किन्तु दूसरे विद्वान मानते हैं कि इसमें छाया नाटक का कोई तत्व नहीं है।

साहिती समुल्लास– (ना.कृ.) यह मुद्दुवेङ्कटार्य की रचना है। मैसूर पुस्तकालय के पाण्डुलिपि अनुभाग सं. २६६ में इसे प्राप्त किया जा सकता है।

सिंहल विजयम्– (ना.कृ.) सुदर्शन पति लिखित ५ अंकों का नाटक। अंकों का दृश्यों में विभाजन किया गया है। संस्कृत के साथ उड़िया गीतों का इसमें समावेश किया गया है। इसमें उड़ीसा के वीरों की सिंहल पर विजय दिखलाई गयी है। इसका प्रकाशन वेहरामपुर से १९५१ में किया गया था।

सिद्धराज– (ना.पा.) कौमुदीमित्रानन्द का एक पात्र। वरुण ने निर्दयतापूर्वक उसे बांध दिया था जिसे मित्रानन्द ने अपने मित्र के साथ उसे छुड़ाया था। अन्त में उसी के घर पर पतिपत्नी का मिलन होता है।

सिद्धान्त भेरी– (ना.कृ.) सुदर्शनार्य की कृति। मैसूर पुस्तकालय के पाण्डुलिपि अनुभाग सं. २५६ पर प्राप्य।

सिद्धार्थक– (ना.पा.) मुद्राराक्षस में चाणक्य का गुप्तचर। यह अत्यन्त स्वामिभक्त और कर्तव्यपरायण चर है। नाटक के महत्वपूर्ण कार्यों की पूर्ति इसी के द्वारा हुई है।

शकटदास को मृत्युदण्ड से वचाकर ले जाना और राक्षस से उसे मिलाना, राक्षस के यहां नौकरी करते हुये घेरे को भेदकर गिरफ्तारी देना और महत्वपूर्ण पत्र, आभूषणों की मुद्रित पेटी तथा मौखिक सन्देश के द्वारा राक्षस को मलयकेतु की दृष्टि मे अपराधी बनाकर शत्रुओं में फूट डालने का कार्य तो करता ही है वहां मार भी खाता है और यहां तक कि चाण्डाल के वेष में राक्षस को फसाने में भी सहयोग देता है। वह एक सच्चा सेवक और कर्तव्य परायण गुप्तचर है। चाणक्य ने सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य उसे ही सौंपा है।

सिद्धार्थचरितम्– (ना.कृ.) यह वीरेन्द्रकुमार भट्टाचार्य का लिखा ८ अंकों का नाटक है। इसका उद्देश्य है हिंसा परायण जनता के सामने बौद्ध सिद्धान्त रखकर उन्हें हिंसा से विरत करना। इसका प्रारम्भ गौतम की वाल्यावस्था से होता है और राहुल को भिक्षुत्व में दीक्षित करने तक कथानक चलता है। इसमें नृत्य गीतों की अधिकता है। प्राकृत का प्रयोग नहीं किया गया है। अनेक असाधारण छन्दों का इसमें प्रयोग है। इसकी रचना २० वीं शताब्दी के सातवें दशक में की गई।

सिद्धिवरसिंह– (ना.का.) ये १७वीं शताब्दी में नैपाल के राजा थे इनका लिखा हरिश्चन्द्रनृत्यनाटक बतलाया जाता है।

सिद्धेश्वर चट्टोपाध्याय– (ना.का.) २० वीं शताब्दी के पूर्व बंगाल निवासी कवि। वर्धमान विश्व विद्यालय में संस्कृत के प्रध्यापक थे और संस्कृत साहित्य परिषद् के सचिव पद पर कार्य किया। इनकी रचना में अंग्रेजी बंगला और संस्कृत की कई अनुसन्धानात्मक कृतियां प्रसिद्ध हैं। इनके लिखे चार नाटक भी प्राप्त होते हैं– अथकिम्, धरित्रीपतिनिर्वाचनम्, ननावितादनम्, और स्वर्गीय प्रहसनम्। परिचय यथा स्थान देखिये।

(१) **सीता**– (ना.पा.) उत्तर रामचरित की नायिका। वह भगवती वसुन्धरा से उत्पन्न हुई है और 'प्रजापति सम' जनक उनके पिता हैं जो योगभोग की सफल साधना करने वालों के आदर्श हैं, व्याह कर वे ऐसे राजा लोगों के परिवार में आई है जिसका उद्‌भव सूर्य से हुआ है। दशरथ जैसे श्वशुर, राम जैसे पति और वशिष्ठ जैसे गुरु उन्हें मिले हैं। किन्तु उनके दुर्भाग्य का ठिकाना नहीं। उन्हें अपने जीवन के महत्वपूर्ण वर्ष वनवास में या अज्ञातवास में विताने पड़े जब उनके सभी सम्बन्धियों और स्वयं राम को इस बात का भय है कि उसकी दुवली पतली कोमल शरीर लतिका मांसाहारी जीवों द्वारा निश्चित रूप से विलुप्त कर दी गई होगी। इतने अधिक पवित्र परिवेश के होते हुये भी वह कलंक का एक लक्ष्य बन जाती है और अकारण ही उसे जन समाज में बदनामी और फिर असीमित कष्टों का सामना करना पड़ता है। वह वीरप्रसू है, अद्‌भुत गुणों वाले दो वीर बालकों को उसने जन्म दिया है जिन्हें जन्म से ही जृम्भकास्त्र सिद्ध हैं। उसे केवल ज्ञात है कि उसके दो पुत्र हैं। उसे कभी माता होने के आनन्द का सौभाग्य भी प्राप्त नहीं हुआ। वह कभी बच्चों के बाल विनोद का अनुरञ्जन प्राप्त नहीं कर सकी जो प्रत्येक पुत्रवती की सबसे बड़ी आकांक्षा होती है। कोई भी स्त्री पति के पुत्रप्रेम को देखकर

निहाल हो जाती है किन्तु उसके भाग्य में वह भी वदा नहीं था। यदि स्वयं नहीं तो पति को पुत्र होने से आनन्दित होते हुये देखकर वह धन्य हो जाती– 'मुझसे ज्यादा अधन्या कौन है जिसके पुत्रों के मुखकमल को आर्यपुत्र ने चूम नहीं पाया।'

अकारण परित्याग पर भी सीता के मन में पति के प्रति आक्रोश उत्पन्न नहीं होता। जब वासन्ती राम को उपालम्भ देती है तब वह वासन्ती को ही दारुण बतलाती है। जब अन्त में वह अपने पुत्रों और पति से मिलती है तब वह ठीक ही कहती है कि यह उसका दूसरा जन्म है। उसका सबसे बड़ा सहारा यही है कि उसे राम के प्रेम का पूरा विश्वास है और उसे इतने से ही सन्तोष लाभ हो जाता है कि राम ने यज्ञ के लिये उसकी स्वर्णमयी प्रतिमा बनवाई है।

(२) **सीता–** (ना.पा.) 'प्रतिमा' नाटक की एक महत्वपूर्ण पात्र है। रामायण में वाल्मीकि ने सीता को उग्र स्वभाव वाली दिखलाया है। वाल्मीकि ने वन जाने के आग्रह में और वन में मृगया में राम के जाने पर तथा राम की विपत्ति की सम्भावना में लक्ष्मण को राम की रक्षा के लिये भेजने के अवसर पर उनके अत्यन्त उग्र स्वभाव का चित्रण किया है। किन्तु प्रतिमा में दोनों अवसरों पर इन दोषों को बचाया गया है। वन गमन के अवसर पर राम के यह कहने पर कि मैं अकेला ही वन जाऊंगा वे हल्के रूप में कह देती हैं कि 'इसीलिये तो मैं भी साथ चलूंगी।' पुरोहित वेषधारी रावण के निर्देश पर पितृश्राद्ध के लिये राम के मृगया के लिये चले जाने के अवसर पर लक्ष्मण पहले ही अनुपस्थित हैं। वे तीर्थागत अभ्यागत की अर्हणा करने कहीं दूर जा चुके हैं। अतः क्रोध के अवसर को वचा दिया गया है। वे राम की अच्छी परामर्शदात्री है। कुटुम्ब को वांधकर रखने का किसी महिला का अपेक्षित गुण उनमें अत्यधिक मात्रा में विद्यमान है।

(३) **सीता–** (ना.पा.) अभिषेक नाटक में इस पात्र का रंगमञ्च पर प्रवेश अन्त में होता है। लक्ष्मण को सीता की अग्नि परीक्षा के लिये राम आदेश देते हैं। वहां लक्ष्मण के मन में संकल्प विकल्प उत्पन्न होते हैं– 'मैं देवी की पवित्रता से पूर्णरूप से परिचित हूं, दूसरी ओर आर्य का आदेश। एक ओर स्नेह और दूसरी और कर्तव्य पालन। इन दोनों भावनाओं के बीच में उलझी हुई मेरी बुद्धि लड़खड़ा रही है।' लक्ष्मण के इन विचारों से ही सीता का चित्रण हो जाता है।

(४) **सीता–** (ना.पा.) महावीर चरित (दे.) में राम और सीता का मिलन विश्वामित्र के आश्रम में होता है जहां दोनों का प्रेम बद्ध मूल हो जाता है। बाद में धनुष तोड़कर राम उनसे विवाह कर लेते हैं। रावण सीता के सौन्दर्य का दीवाना है। उसी की दुरभिसन्धि से राम और सीता को वनवास मिलता है। अन्त में अग्नि परीक्षा द्वारा उन्हें अपने चरित्र की शुद्धता प्रमाणित भी करनी पड़ती है।

(५) **सीता–** (ना.पा.) बालरामायण (दे.) में सीता के प्रति रावण के अनुराग को विशेष महत्व दिया गया है। वह स्वयं जनकपुर जाता है, किन्तु धनुष चढाकर परीक्षा

देना अपने स्वाभिमान के प्रतिकूल समझता है और धमकी देता है कि 'जो भी सीता से विवाह करेगा उसको चैन से बैठेने नहीं दूंगा।' और सीता का विवाह उसकी उपस्थिति में ही होता है। सीता की सहेलियां रावण को खूब मूर्ख बनाती है। पहले वे सीता की पुतली का हाथ रावण के हाथ में दे देती हैं तब रावण प्रसन्न हो जाता है। किन्तु जब उसे मालूम पड़ता है कि वह सीता का हाथ नहीं किन्तु एक लकड़ी है तब वह दु:खी हो जाता है। वह अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने के लिये सीता का अपहरण करता है। वह राम को भुलावा देने के लिये सीता का कटा सर समुद्र के किनारे फेंक देता है। किन्तु वह एक पुतली है। जब वह बोलने लगती है तब राम को वास्तविकता का पता चल जाता है।

(६) **सीता–** (ना.पा.) प्रसन्नराघव में राम सीता के वियोग में दु:खी है। दो विद्याधरों का प्रवेश होता है। वे माया शक्ति से रावण के यहां बन्दिनी सीता के दर्शन करा देते हैं। जब रावण सीता को मारने के लिये तलवार उठाता है तब उसके हाथ पर हनुमान द्वारा मारे गये अक्ष का सर आकर गिरता है।

(७) **सीता–** (ना.पा.) उन्मत्तराघव (दे.) में वन में सीता एक ऐसे पुष्पोद्यान में घुस जाती हैं जो दुर्वासा के शाप से शापित है। सीता उसमें प्रवेश करते ही हरिणी बन जाती है। राम व्याकुल होकर भटकने लगते हैं और स्वगत भाषण करते हैं। अन्त में अगस्त्य की कृपा से सीता को शाप से छुटकारा मिलता है।

सीताकल्याण– (ना.कृ.) इस नाम की निम्नलिखित रचनायें प्राप्त होती हैं–

(१) **वेङ्कट भूपति–** (दे.) लिखित वीथी रचना। सीतारामपरिणय की कथा इसका विषय है। इसमें शुद्ध विष्कम्पक का प्रयोग किया गया है जबकि शास्त्रीय दृष्टि से वीथी में उसका प्रयोग होना नहीं चाहिए।

(२) इसी नाम की दूसरी रचना वेङ्कटरामशास्त्री (दे.) की है जिसमें श्रीराम जन्म से लेकर विवाह तक की घटनायें दिखलाई गई हैं। इसमें ५ अंक हैं। इसका प्रकाशन १९५३ में किया गया है।

(३) इसी नाम की एक अन्य रचना सुब्रह्मण्यम् सूरि की बतलाई जाती है।

सीतानन्द– (ना.कृ.) ताताचार्य कृत नाटक। इसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम खण्ड II. २८७५ में किया गया है।

सीताराघव– (ना.कृ.) राम पाणिवाद लिखित ७ अंकों का नाटक। प्रतिष्ठित रामकथा में अनेक परिवर्तन किये गये हैं। विश्वामित्र राम को जनकपुरी ले जाने के लिये पहले ही दशरथ से आज्ञा ले लेते हैं। मारीच का शिष्य मायावसु दशरथ का रूप धारण कर पहले ही जनकपुरी पहुंच जाता है और उसका सेवक कर्मम्भक सुमन्त्र के वेष में वहां पहुंचता है। किन्तु शतानन्द (जनक पुरोहित) दोनों को पहिंचान लेते हैं। वे दोनों धनुर्भङ्ग

के पश्चात् परशुराम से सहायता लेने चले जाते हैं। शूर्पणखा अयोमुखी नामक राक्षसी को नियुक्त करती है जो मन्थरा के रुप में कैकेयी को वहकाती है। जब हनुमान सीता की खोज में लङ्का में ही है मायावसु चारण के रूप में सूचना देता है कि रावण ने सीता को और मेघनाद ने हनुमान को मार डाला है। किन्तु उसी समय दधिमुख सूचना देता है कि हनुमान सफल होकर लौटे हैं। तब वह भाग जाता है। मद्रास की ओरियण्टल लायब्रेरी में डिस्क्रिप्टिव कैटेलाग में सं. २१८५५३ पर इसका उल्लेख किया गया है।

सीताराम– (ना.व्या.) जानकी परिणय (४) के लेखक जिसका संकलन कैटेलागस कैटेलागोरम सं. १.२०६ पर किया गया है।

सीताराम आचार्य– (ना.कृ.) भैमीनैषधीयम् (दे.) नामक एकाङ्की के लेखक। समय २०वीं शताब्दी।

सीतारामाविर्भावम्– (ना.कृ.) नित्यानन्द लिखित तीन अंकों का नाटक। ये तीन अंक तीन पृथक् पृथक् कथानकों को लेकर चलते हैं जिनका योजकतत्व है कलियुग की बुराइयों का दिग्दर्शन। प्रथम अंक प्रतीक रूप है। राजा कलि काम क्रोधादि ६ मानव शत्रुओं से परामर्श कर विवेक को बन्दी बना लेता है साथ ही इस प्रकार का प्रयत्न करता है कि सभी ब्राह्मण लोभी बन जायें और सभी स्त्रियां व्यभिचारिणी हो जायें। दूसरे अंक में दो नास्तिक गुणधर और श्यामलाल इस विषय में वार्तालाप करते हैं कि धर्म से छुटकारा कैसे मिले। तभी उन्हें समाचार मिलता है कि एक नास्तिक ने गुणधर की सारी सम्पत्ति लूट ली है और उसकी स्त्री की हत्या कर दी है। तीसरे अंक में नारायण को नारद और धर्म सूचना देते हैं कि मर्त्य लोक में धर्म ग्लानि बहुत हो गई है। नारायण शीघ्र अवतार लेने का आश्वासन देते हैं।

इसकी रचना २०वीं शताब्दी में हुई थी और प्रथम अभिनय सीताराम दास ओंकार नाथ देव की जयन्ती पर आयोजित किया गया था।

सीताविजयेन्दिरापरिणय– (ना.कृ.) सुब्रह्मण्यम् (दे.) लिखित नाटक। मद्रास पुस्तकालय के डिस्क्रिप्टिव कैटेलाग में XXI ५१२ पर इसका उल्लेख किया गया है। सुब्रह्मण्यं के नाम पर ही एक अन्य कृति विजयेन्दिरापरिणय का उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम् II १३५ पर किया गया है। कहा नहीं जा सकता कि दोनों कृतियां तथा दोनों लेखक एक ही हैं या पृथक्-पृथक्।

(१) **सीता विवाह**– (ना.कृ.) शेषाद्रि (दे.) लिखित नाटक। इसका सङ्कलन तंजौर की पैलेस लायब्रेरी के कैटेलाग में खण्ड ८ सं. ३५२४ पर किया गया है।

(२) **सीता विवाह**– (ना.कृ.) कृष्णसूरि के पुत्र सुब्रह्मण्यम् का लिखा ५ अंकों का नाटक।

सीताहरणम्– (ना.कृ.) इस नाम की दो कृतियां प्राप्त होती हैं–

(१) नारायण शास्त्री (१) (दे.) लिखित ५ अंकों का नाटक।

(२) **वनमाला**– (दे.) लिखित नाटक।

सुकुमार– (ना.का.) १२वीं शताब्दी के कवि। इन्होंने रघुवीर चरित (दे.) की रचना की थी।

सुकुमार पिल्ले– (ना.का.) इनका लिखा लक्ष्मीस्वयंवर नाटक प्रकाश में आया है।

सुग्रीव– (ना.पा.) रामायण का एक प्रतिष्ठित पात्र। यह पताका नायक है और इसमें इस प्रतिष्ठा के सारे गुण विद्यमान हैं। इसका अपना स्वार्थ है जो राम की स्वार्थ पूर्ति के पहले ही पूरा हो जाता है। वह राम के स्वार्थ साधन में पूरा योगदान देता है, राम का परम भक्त है। कुछ लोगों ने इसे पीठमर्द भी कहा है (जो नायक से कुछ कम गुणों वाला उसका मित्र एवं सहायक होता है)। राम ने वाली के होते हुये ही इन्हें राजा बना दिया था। इस प्रकार व्यक्तित्व के अधिकार परिवर्तन के कारण साहित्य दर्पण में आरभटीवृत्ति के अंग संक्षिप्तक का भी इसे उदाहरण माना गया है।

राम विषयक नाटकों में इसका पात्र रूप में उपादान हुआ है जिनमें कतिपय निम्नलिखित हैं–

(१) **प्रतिमा नाटक**– सीताहरण के बाद राम ने सुग्रीव से मैत्री की और वाली के प्रतिकूल सहायता देने का वचन दिया। रामायण में वाली और सुग्रीव का दो वार युद्ध हुआ था। किन्तु प्रतिमा नाटक में दोनों युद्धों को एक में मिलाकर दिया गया। इससे युद्ध कुछ संक्षिप्त हो जाता है।

(२) **महावीर चरित**– में सीताहरण के बाद शोकाकुल राम और लक्ष्मण ऋष्यमूक पर्वत पर सुग्रीव से मैत्री करते हैं। अपहरण के मार्ग में सीता अपने आभूषण ऋष्यमूक पर्वत पर गिराती गई थी। वहां सुग्रीव से राम उन निशानियों को प्राप्त कर लेते हैं। लंका से निष्कासित विभीषण ऋष्यमूक पर्वत पर राम से मिलकर सीता का विवरण देना चाहता है किन्तु रावण का मन्त्री माल्यवान वाली से कहकर उससे विभीषण के ऋष्यमूक पर जाने पर प्रतिबन्ध लगा देता है।

राम अपनी प्रतिज्ञा पर डटे रहते हैं और अपने शत्रु वाली का वध करते हैं। मरते समय वाली अपने भाई सुग्रीव को सीता की खोज में राम की पूरी सहायता करने का आदेश देता है जिसे सुग्रीव पूरी तन्मयता से पूरा करते हैं और केवल खोज में ही नहीं सीता प्राप्ति में भी राम को सहायता देते हैं।

(३) **अनर्घराघव**– में कबन्ध राक्षस से गुह निषाद को बचाने के प्रयत्न में लक्ष्मण दुन्दुभि के कंकाल वृक्ष को उलट देते हैं जिससे क्रुद्ध होकर वाली युद्ध करने आता है और मारा जाता है। तब नेपथ्य में सूचना दी जाती है कि वाली के स्थान पर सुग्रीव का

राजतिलक किया जा रहा है और सीता की प्राप्ति के लिये सुग्रीव ने खोज करवाने का वचन दिया है। यह सब सूच्य ही है। मित्र गुह के साथ लक्ष्मण उस राज्याभिषेक में सम्मिलित होते हैं। अन्त में सुग्रीव कुवेर के पुष्पक विमान पर बैठकर अयोध्या की ओर आते हैं जिस यात्रा में अनेक प्रदेशों, नगरों और पर्वतों को पार करते है।

(४) **प्रसन्नराघव**– में रामकथा विभिन्न वर्णनों में कही गई है। सुग्रीव यमुना का भाई है जिसका वाली ने निर्वासन कर दिया है। अतः यमुना अपने दुःख का वर्णन गंगा से करती है। बाद में तुंगभद्रा आकर वालिवध और राम तथा सुग्रीव की मैत्री का समाचार देती है। अन्त में राम के दल के साथ सुग्रीव अयोध्या यात्रा करते हैं।

सुग्रीवकेलनम्– (ना.कृ.) शारदातनय द्वारा दिया गया काव्य नामक उपरूपक का उदाहरण। यह रचना अब तक उपलब्ध नहीं हो सकी है।

सुचेतना– (ना.पा.) यह अविमारक (दे.) में सौवीर राजा की पत्नी तथा सुदर्शना (सौवीर राज की पत्नी) की बहन है। इसने सुदर्शना से उसके पुत्र अविमारक को गोद ले लिया था।

सुदती समितिञ्जयम्– (ना.कृ.) नारायण शास्त्री (१) लिखित ७ अंकों का नाटक।

सुदर्शन– (ना.का.) ये पञ्चनद निवासी आचार्य थे इनका लिखा अनर्घनलचरित महानाटक कहा जाता है जिसका प्रकाशन चौखम्बा प्रकाशन बनारस से हुआ है।

सुदर्शनपति– (ना.का.) इनके नाम पर दो नाटक पाये जाते हैं– सत्यचरितम् (दे.) और सिंहल विजयम् (दे.) सम्भवतः ये दोनों कृतियां एक ही व्यक्ति (प्रस्तुत कवि ही) की कृति हैं। इनका सम्बन्ध उड़ीसा से प्रतीत होता है।)

सुदर्शनविजय– (ना.कृ.) श्रीनिवासाचार्य लिखित नाटक। इसमें पौण्ड्रक विनाश का कथानक अपनाया गया है।

सुदर्शनशर्मा– (ना.का.) शृङ्गारशेखर भाण के लेखक इनका समय २० वीं शताब्दी का मध्यभाग है।

सुदर्शना– (ना.पा.) अविमारक में काशिराज की पत्नी जिसने अग्निदेव से अविमारक को जन्म दिया था और बाद में सौवीरराज की पत्नी सुचेतना को गोद दे दिया था। सुचेतना उसकी बहन थी।

सुदर्शनार्य– (ना.का.) सिद्धान्त भेरी (दे.) नामक कृति के लेखक जिसका संकलन मैसूर के पुस्तकालय में किया गया है।

सुधीन्द्र– (ना.का.) (दे.) सुभद्रा परिणय (७)।

सुन्दर– (ना.का.) इनके लिखे अनंगमंगल भाण का उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम १.१२ पर किया गया है।

सुन्दर ताताचार्य– (ना.का.) इनके लिखे भाण शृङ्गार रत्नाकर का उल्लेख एई.गफ

नें अपने प्रचीन संस्कृत साहित्य के अभिलेख में किया है।

सुन्दरदेव- (ना.का.) इनका लिखा मुक्ति परिणय एक प्रतीक नाटक है। तंजौर की पैलेस लायब्रेरी के मैन्युस्क्रिप्ट कैटेलाग में सं. VIII ३४६५ पर इसका उल्लेख है। विनोद रंग नामक प्रहसन भी शायद इन्हीं का है जिसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम में सं. I ५७७ पर किया गया है।

सुन्दरमिश्र- (ना.का.) ये १७वीं शताब्दी के प्रथमचरण के कवि हैं। इन्हें सुन्दर जाज्जागिरि भी कहा जाता है। इनके लिखे एक नाटक अभिराममणि (दे.) और एक नाट्य शास्त्रीय कृति नाट्यप्रदीप का उल्लेख पाया जाता है।

सुन्दरराज आचार्य- (ना.का.) ये आत्रेयगोत्रीय वरदराज के पुत्र थे। इनका जन्म ट्रावन्कोर में एलाथुर अग्रहारम् के अन्तर्गत १८४१ में हुआ था तथा ६३ वर्ष पर्यन्त वहीं रहे। इन्होंने मारुतमन्त्र सिद्ध कर लिया था। इसलिये जब चाहते थे हनुमान की शक्ति प्राप्त कर लेते थे जिससे किसी रोग के वास्तविक कष्ट का इन्हें ज्ञान हो जाता था। इनकी पत्नी का नाम वेङ्कट लक्ष्मी था। ये संस्कृत के उद्भट विद्वान और जन्म जात कवि थे। इनको ट्रावन्कोर के शासकों का आश्रय प्राप्त था और ये राजकीय कवि केरलवर्मा के मित्र थे। इनका साहित्य बहु आयामी है जिसमें प्रमुख रुप से काव्य है, चम्पू है, नाटक है, टीकायें हैं। इनके भाई के पौत्र वरदराज ने इनके जीवन चरित्र को लेकर एक चम्पू की रचना की थी। इनके ५ नाटक प्राप्त होते हैं- पद्मिनी परिणय, रसिकरंजन, वैदर्भी वासुदेव, स्नुषाविजय और हनुमद्विजय। (परिचय यथास्थान)

इनकी रचनाओं का विवरण ट्रावन्कोर, एहियापुरम्, और मद्रास के पुस्तकालयों में पाण्डुलिपि कैटेलागों में दिया हुआ है।

सुन्दर वीररघूद्वह- (ना.का.) भोज राजाङ्कनाटक (अंक) के लेखक। समय १९वीं शताब्दी।

सुन्दर वीरराघव- (ना.का.) वधूल गोत्रीय कस्तूरी रंगनाथ के पुत्र और वीरराघव के पौत्र थे। इनका निवास स्थान दक्षिण अर्काट जिला में सिरुवल्लूर था। इनकी तीन नाट्यकृतियां उपलब्ध होती हैं- भोज राजाङ्क (दे.) रम्भारावणीय (दे.) और अभिनवराघव (दे.)।

सुन्दरार्य- (ना.का.) मार्कण्डेय विजयम् (दे.) के लेखक। समय २०वीं शताब्दी।

सुन्दरेश शर्मा- (ना.का.) प्रेम विजय (दे.) नाटक के लेखक। इनका समय वीसवीं शताब्दी है।

सुप्रभात स्वयंवरम्- (ना.कृ.) कलकत्ता निवासी वीरेन्द्र भट्टाचार्य लिखित नाटक। इसमें महाभारत की सुप्रभा और अष्टावक्र के प्रणय को कथानक के रूप में स्वीकार किया गया है।

सुवालावक्रतुण्ड– (ना.का.) यह राम कवि (२) (दे.) की रचना है। इसमें ५ अंक हैं। वज्रतुण्ड एक चूहा है जिसकी पत्नी का नाम सुवाला है। रक्ताङ्गद नामक सर्प सुवाला को अपने शिकार के रूप में पकड़ लेता है। उस सर्प को वज्रतुण्ड मार डालता है और पत्नी को छुड़ा लेता है।

(डिस्क्रिप्टिव कैटेलाग आफ संस्कृत मैन्युस्क्रिप्टस लायब्रेरी मद्रास XXI ८५५४ पर इसका उल्लेख किया गया है।)

सुबुद्धि– (ना.पा.) वत्सराज लिखित रुक्मिणी हरण (दे.) में एक स्त्री पात्र जिसकी भाषा संस्कृत है।

सुब्रह्मण्य– (ना.का.) इनका लिखा सीता विजयेन्दिरा परिणय नामक एक नाटक मद्रास पुस्तकालय के डिस्क्रिप्टिव कैटेलाग में सं. XXI ५१२ पर उपलब्ध हो सकता है। सम्भवतः इन्हीं सुब्रह्मण्यम् ने भवभूति के महावीर चरित के अन्तिम भाग की पूर्ति की। नाम से ही प्रकट होता है कि ये दक्षिण भारतीय थे। साथ ही वीरराघव ने महावीर चरित के अन्तिम भाग की व्याख्या के लिये इन्हीं के द्वारा पूरे किये गये भाग को स्वीकार किया। यह भी एक प्रमाण है कि ये दक्षिण भारतीय थे।

कीथ के अनुसार भारतीय परम्परा ५वें अंक के ४६ वें पद्य तक ही महावीर चरित की रचना भवभूति कृत मानती है। शेष भाग की पूर्ति सुब्रह्मण्य कवि द्वारा की हुई बतलाई जाती है। किन्तु कीथ ने इस प्रसिद्धि पर विश्वास नहीं किया है क्योंकि यह तभी सम्भव है जब महावीर चरित भवभूति की अन्तिम रचना हो। किन्तु ऐसा है नहीं। उत्तर रामचरित (दे.) अधिक प्रौढ है। अतः वही उनकी अन्तिम रचना होनी चाहिए। यह तर्क इस मान्यता पर आधारित है कि कवि की बाद की रचना ही अधिक प्रौढ होती है। किन्तु यह तर्क पूर्ण विश्वसनीय नहीं है। कभी कभी किसी प्रौढतम कृति के बाद की लेखक की रचनायें शिथिल भी पाई जाती हैं। अतः इस विषय में निश्चयात्मक रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता।

सुब्रह्मण्यसूरि– (ना.का.) इनका जन्म पुडुक्कोट्टा के निकट कडकुडि में १८५० में हुआ था। इनके पिता का नाम शङ्कर नारायण था। ये राजा कालेज पुडुक्कोट्टा में संस्कृत विभाग के प्रोफेसर थे। इनका ज्ञान बहुमुखी था– कविता, व्याकरण संगीत, नाट्य एवं चित्रकला इत्यादि अनेक दिशाओं में इनकी प्रतिभा का क्षेत्र व्यापक था। इनकी वाणी में माधुर्य था जिससे इनकी कथा का श्रवण करने के लिये बहुत बड़ा जन समूह एकत्र हो जाया करता था इन्होंने ७ अंकों का वल्लीबाहुलेयम् (दे.) नाटक और मन्मथमोदन नामक एक भाण लिखा था। इसके अतिरिक्त इनके लिखे अनेक गद्यकाव्य, लघुकथा-काव्य, प्रबन्धकाव्य, संगीतपरक कथानक, रामविषयक काव्य, पुराण परक रचनायें इत्यादि बहुत कुछ सम्मिलित हैं। विभिन्न देवताओं के विषय में दोलागीत और हल्लीसमञ्जरियां प्रसिद्ध हैं। इनका समस्त रामायण पर लिखा साहित्य अत्यन्त महत्वपूर्ण है। सुब्रह्मण्य

सूरी के नाम पर सीताकल्याणम् (दे.) नाटक बतलाया जाता है। हो सकता है वह इन्हीं की रचना हो।

सुभगानन्द– (ना.कृ.) वासुदेव नरेन्द्र (उपनाम श्रीवत्साङ्क) लिखित एक प्रहसन। गोविन्दश्रीवात्साङ्क के ही ये दूसरे नाम ज्ञात होते हैं। मालूम पड़ता है कि ये कश्मीर के प्रमुख अधिकारी थे। इस रचना का उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम १.७२७ और तंजौर पुस्तकालय के संस्कृत पाण्डुलिपि अनुभाग की ग्रन्थसूची VIII ३६३४ पर किया गया है।

सुभट– (ना.का.) दूताङ्गद (दे.) नाटक के लेखक। इनके कवित्व की प्रशंसा नमिसाधु और सोमेश्वर ने अत्यधिक मात्रा में की है। इनकी केवल यही एक कृति उपलब्ध होती है। इसके अतिरिक्त इनके व्यक्तित्व के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है। राजशेखर के अनुसार सोमेश्वर का समय १३वीं शताब्दी का पूर्वार्ध है। अतः इनका भी समय यही होना चाहिए। इन्हें कहीं कहीं मदनसुभट की भी संज्ञा दी गई है। ये गुजरात निवासी बतलाये गये हैं।

सुभद्रा– (ना.पा.) कृष्ण की बहन जिसका अपहरण कृष्ण की सम्मति से अर्जुन ने किया था। इस विषय पर अनेक नाट्यकृतियां प्रकाश में आई. हैं जिनका प्रस्तुत पुस्तक में यथा स्थान परिचय दिया गया है उन कृतियों की यह नायिका है।

सुभद्रा– (ना.कृ.) दे. सुभद्रानाटिका।

(१) **सुभद्राधनञ्जय–** (ना.कृ.) केरल के राजा कुलशेखर का लिखा नाटक जिसमें अर्जुन द्वारा कृष्ण की बहन सुभद्रा के हरण का कथानक नाट्य विषय बनाया गया है।

(२) **सुभद्राधनञ्जय–** (ना.कृ.) गुरुराम (दे.) लिखित ५ अंकों का नाटक। इसमें सुभद्रा के विवाह का वर्णन किया गया है। इसका प्रकाशन जर्नल आफ संस्कृत साहित्य परिषद् कलकत्ता से हुआ है। इसका संकलन मद्रास ओरियण्टल लायब्रेरी के विवरणात्मक पाण्डुलिपि अनुभाग में सं. XXI ८५५६ पर किया गया है।

(३) **सुभद्राधनञ्जय–** (ना.कृ.) विजयीन्द्रतीर्थ (दे.) लिखित नाटक।

सुभद्रा नाटिका– (ना.कृ.) १३वीं शताब्दी की हस्तिमल्ल जैनाचार्य लिखित नाटिका। इसमें चार अंक हैं। इसे केवल सुभद्रा, सुभद्रापरिणय और सुभद्राहरण इन नामों से भी याद किया जाता है। इसकी एक प्रति मैसूर के प्राच्य पाण्डुलिपि पुस्तकालय में सं. २८७ पर विद्यमान है।

(१) **सुभद्रा परिणय–** (ना.कृ.) यह व्यासश्री रामदेव (दे.) लिखित नाटक है जिसे छायानाटक के रूप में कतिपय विचरकों ने स्वीकार किया है। कृष्ण की बहन सुभद्रा का अर्जुन द्वारा अपहरण तथा विवाह इस नाटक का विषय है। इसका उल्लेख ब्रिटिशम्यूजियम् कैटेलाग में किया गया है। ब्रह्मदेव के राज्यकाल में इसका प्रथम अभिनय किया गया

था। इसका उल्लेख मद्रास की ओरियण्टल मैन्युस्क्रिप्ट लायब्रेरी में डिस्क्रिप्टिव कैटेलाग में एवं कैटेलागस कैटेलागोरम में भी किया गया है।

(२) **सुभद्रापरिणय–** (ना.कृ.) भूमिनाथ दीक्षित लिखित ५ अंकों का नाटक। ट्रायेनियल कैटेलाग आफ संस्कृत मैन्युस्क्रिप्टस इन ओरियण्टल लायब्रेरी मद्रास में सं. १.१०४० पर इसका उल्लेख किया गया है। इसका प्रथम अभिनय मध्यार्जुन प्रभु की विजय यात्रा पर आयोजित किया गया था।

(३) **सुभद्रापरिणय–** (ना.कृ.) दे. सुभद्रानाटिका।

(४) **सुभद्रापरिणय–** (ना.कृ.) इसके लेखक रघुनाथाचार्य हैं। इसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम १.७२८ पर किया गया है।

(५) **सुभद्रापरिणय–** (ना.कृ.) वेङ्कटाध्वरीण कृत नाटक। इसके केवल दो अंक प्राप्त होते हैं जो कवि के जन्म स्थान अरशाणिपलई में सुरक्षित हैं।

(६) **सुभद्रापरिणय–** (ना.कृ.) इस नाट्यकृति का उल्लेख तंजौर राजघराने के आश्रित कवियों की रचनाओं में किया गया है। रचनाकार और लेखक का पता नहीं है।

(७) **सुभद्रापरिणय–** (ना.कृ.) सुधीन्द्रलिखित नाटक।

सुभद्रार्जुन– (ना.कृ.) केशवशास्त्री का लिखा नाटक। ट्रावनकोर के पुस्तकालय में सं. १८२ पर सुरक्षित प्रति।

सुभद्रा विजय– (ना.कृ) यह सुभद्रा और अर्जुन के कथानक को लेकर लिखा गया नाटक है। इसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम सं. १७२८ मे किया गया है। इसके लेखक का पता नहीं।

(१) **सुभद्राहरणम्–** (ना.कृ) नारायण शास्त्री (१) (दे.) लिखित ६ अंकों का नाटक।

(२) **सुभद्राहरणम्–** (ना.कृ.) दे. सुभद्रा नाटिका।

(३) **सुभद्राहरणम्–** (ना.कृ.) माधव भट्ट लिखित श्रीगदित। इस नाटक का कथानक सुभद्रा के अर्जुन के साथ पलायन पर आधारित है। अर्जुन एक सन्यासी के रूप में सुभद्रा के घर पर जाकर रहते हैं और वहीं से उसका अपहरण कर लेते हैं। इस रचना में नाट्य शास्त्र की पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग विश्वनाथ के अनुसार किया गया है जिससे कीथ ने अनुमान लगाया है कि यह रचना विश्वनाथ के बाद की है। यह सम्भवतः १६०० ई. के पहले की रचना है। इसके एक पद्य के आधार पर अनुमान लगाया गया है कि इस नाटक का सम्बन्ध छायानाटक से है। कैटेलागस कैटेलागोरम में इसका उल्लेख I. ७४८ पर किया गया है और बम्बई से इसका प्रकाशन हुआ है। कीथ ने इस रचना को ही श्रीगदित का एकमात्र उदाहरण माना है।

सुभद्राहरण– (ना.कृ.) यह एक एकांकी है जिसकी रचना केरलवासी ताम्पूरन ने १९वीं शताब्दी में की थी।

(५) **सुभद्राहरण–** (ना.कृ.) दे. सुभद्रा नाटिका।

सुभाष सुभाषम्– (ना.कृ.) यतीन्द्र विमल चौधरी लिखित ६ अंकों का नाटक। इसमें सुभाषचन्द्र बोस द्वारा विदेश जाककर भारतीय स्वाधीनता के लिये उद्योग करने को नाटक का विषय बनाया गया है। इसमें झांसी की रानी ब्रिगेड आजाद हिन्द फौज इत्यादि का चित्रण किया गया है।

सुमतिजितामित्र मल्लदेव– (ना.का.) ये भलगांव के राजा थे। इन्होंने अश्वमेघ नाटक (दे.) की रचना की थी।

सुमित्रा– (ना.पा.) कौमुदी मित्रानन्द (दे.) का एक पात्र। यह एक सार्थवाह की पुत्री है और कोमुदी की सहचरी बन जाती है तथा उसके साथ ही आदिवासियों के सरदार वज्रदन्त द्वारा बन्दी बना ली जाती है। अन्त में राजा के पत्र द्वारा उसकी मुक्ति होती है और कौमुदी के प्रयत्न से मित्रानन्द के सहचर मकरन्द के साथ उसका विवाह हो जाता है।

सुरपुरम् अण्णराय– (ना.का.) इन्हें अण्णराय सुरपुरम् की भी संज्ञा दी जाती है। इनका लिखा रसोदर (दे.) भाण प्राप्त होता है।

सुरेन्द्र मोहन पञ्चतीर्थ– (ना.का.) ये वीसवीं शताब्दी के कलकत्ता निवासी नाटककार थे। इन्होंने बालोपयोगी अनेक लघुनाटकों की रचना की जिनमें प्रमुख हैं– वैद्यदुर्ग्रह, काञ्चनमाला, पञ्चकन्या, प्रजापतेः पाठशाला, अशोककानने जानकी, वणिक्सुता इत्यादि। इनके नाटकों का प्रकाशन मञ्जूषा में हो गया था (परिचय यथास्थान)।

सुसंगता– (ना.पा.) रत्नावली में सागरिका की सखी। वह एक योग्य तथा सहृदय सहेली है। जिसके उद्योग से ही सागरिका और राजा का सम्मिलन हुआ है। वह सागरिका के बनाये राजा के चित्र के पास सागरिका को काम देव की रति कहकर चित्रित कर देती है। वह नटखट भी है और हंसी मजाक में भी निपुण है। जब राजा कहते हैं– 'तुमने यह कैसे जान लिया कि मैं यहां हूं?' तब वह उत्तर देती है– 'आपको ही नहीं इस चित्र को भी जान लिया है। अब मैं सब बातें रानी से कहूंगी।' यह बात उसने मजाक में ही कही है, किन्तु राजा को भयभीत करने के लिये काफी है। वह अन्त तक सागरिका से प्रेम सम्बन्ध का निर्वाह करती है।

वह एक सच्ची सहेली है। वासवदत्ता द्वारा सम्मान के साथ उसे उत्तरदायित्व दिया जाता है कि वह राजा से सागरिका को दूर रक्खे। किन्तु वह मित्रता को महत्व देती है और रानी द्वारा दिये गये वस्त्र की सहायता से राजा और सागरिका को मिलाने की चेष्टा करती है। वह एक कलाकार भी है और बात की बात में राजा के चित्र के पास ही सागरिका का चित्र बना देती है। नाटक में उसका स्थान महत्वपूर्ण है।

सेतुनाटक– (ना.कृ.) माणिक्यसूरि का लिखा नाटक।

सेवन्तिका परिणय– (ना.कृ.) चोक्कनाथ (दे.) लिखित नाटक। इसमें मित्रवर्मा की पुत्री सेवन्तिका और वासवराज के विवाह का वर्णन है। मित्र वर्मा मालावार के राजकुमार थे। ये कोचीन के गोदावर्मन के साथ युद्ध में पराजित हो गये थे। तब उन्हें मुकाम्बा के मन्दिर में गिरफ्तार कर रक्खा गया था। बाद में वासवराज ने उन्हें अत्यन्त सम्मान के साथ एक महल और अनेक प्रकार की दूसरी भेंटे प्रदान की और इसी उपलक्ष्य में वासवराज के साथ मित्रवर्मा की पुत्री सेवन्तिका का विवाह हो गया।

सैरन्ध्रिका– (ना.कृ.) इसका उल्लेख शारदातनय के भाव प्रकाशन में किया गया है। अब यह कृति उपलब्ध नहीं होती।

सोमता– (ना.पा.) मोहराज पराजय (दे.) में एक पात्र। यह नायिका कृपासुन्दरी की सहेली हैं। जब दोनों सहेलियां बात कर रही थीं राजा ने छिपकर सुन लिया और उसी से उनका प्रेम अंकुरित तथा विकसित हुआ।

सोमदत्त– (ना.पा.) अश्वघोष के उच्छिन्न गणिका विषयक रुपक (दे.) का नायक। यद्यपि उपलब्ध नाटक भाग से नायकरूपता सिद्ध नहीं होती। नायक का नाम नायक ही दिया गया है किन्तु उपलब्ध भाग पर विचार करने से निष्कर्ष यही निकाला जाता है कि सोमदत्त सम्भवतः उस नाटक का नायक ही होगा।

(१) **सोमदेव–** (ना.का.) इनके लिखे नाटक रामायण कथा का उल्लेख अभिनव गुप्त ने किया है। वह नाटक अब प्राप्त नहीं होता। ये कथा सरित्सागर कार सोमदेव तथा ललित विग्रहराज नाटक के लेखक सोमदेव या सोमेश्वर से भिन्न हैं।

(२) **सोमदेव–** (ना.का.) ये १२वीं १३वीं शताब्दी के कवि हैं। इनका लिखा प्रशस्ति नाटक ललित विग्रहराज (दे.) अजमेर के शिलाखण्डों पर खुदा हुआ है। विग्रहराज ने यह खुदाई कराई थी और बाद में मुसल्मान आक्रान्ताओं ने उन शिलाखण्डों को अजमेर की मश्जिद में लगा दिया। ये सोमदेव कथासरित्सागर के लेखक सोमदेव से भिन्न हैं।

सोमवल्ली योगानन्द– (ना.कृ.) अरुण गिरिनाथ (१) दे. लिखित एक प्रहसन। इसमें एक गिरी हुई विवाहित महिला के प्रति एक सन्यासी की कामुक प्रार्थनाओं का वर्णन किया गया है जिसमें परिहास की समग्री भरी पड़ी है। इसकी पाण्डुलिपि तञ्जौर पुस्तकालय पाण्डुलिपि विभाग (२८) और मद्रास पुस्तकालय के विवरणात्मक पाण्डुलिप अनुभाग में प्राप्त की जा सकती है।

सोम सिद्धान्त– (ना.पा.) प्रबोध चन्द्रोदय (दे.) में एक पात्र। बौद्ध और जैन दर्शन के समान यह भी एक सुन्दरी लिये बैठा है और उसे श्रद्धा बतलाता है। किन्तु वह वास्तविक श्रद्धा (शान्ति की जन्मदात्री मां) नहीं है। वह झूठी श्रद्धा है। इसके दृश्य हास्य जनक हैं। नाटककार ने उपहास के लिये इसे नाटक में स्थान दिया है।

सोमिल– (ना.का.) दे. रामिल।

सोमेश्वर देव– (ना.का.) कहीं कहीं ये स्वयं को सोमशर्मा भी कहते हैं। कुमारपाल के राजपुरोहित कुमार और लक्ष्मी से इनका जन्म हुआ था। राजशेखर ने अपने प्रबन्धकोश में लिखा है कि ये वीरभद्र के दरवार में १२४३ से १२७१ तक रहे थे। ये और इनके पूर्वज चालुक्य वंश के आश्रय में रहते थे। अन्य रचनाओं के अतिरिक्त इनके दो नाटकों का भी उल्लेख पाया जाता है– उल्लाघराघव और रामायणनाटक जिसका उल्लेख बम्बई क्षेत्र में संस्कृत पाण्डुलिपियों की पेटर्सन की खोज रिपोर्ट में खण्ड ३ सं. ८९६ पर किया गया है। हो सकता है रामायणनाटक के लेखक कोई अन्य सोमेश्वर या सोमदेव रहे हों।

सौगन्धिका परिणय– (ना.कृ.) इसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम सं. १७३७ पर किया गया है। यह एक विवाह-विषयक नाटक है। इसके लेखक का पता नहीं है।

(१) **सौगन्धिकाहरण–** (ना.कृ.) भगवान बुद्ध के समय का एक रुपक जिसका अभिनय राजगृह में किया गया है। इसके अभिनेता थे भगवान बुद्ध के शिष्य उपतिष्य और भौद्गल्यायन। इसका पाठ्य अवदान शतक और दिव्यावदान में दिया गया है।

(२) **सौगन्धिकाहरण–** (ना.कृ.) विश्वनाथ का लिखा व्यायोग। इसका विभाजन दृश्यों या अंकों में नहीं किया गया है। एक छोटा सा मध्यान्तर अवश्य है। इसमें महाभारत के उस कथानक का नाटकीकरण किया गया है जिसमें गन्धर्वों द्वारा लाये गये पारिजात पुष्प को देखकर द्रौपदी उसके प्रति आकर्षित हो जाती है और भीम से वैसा ही पुष्प लाने का आग्रह करती है। भीम पुष्प की खोज में जाता है जहां मार्ग में उसकी भेंट अपरिचित भाई हनुमान से हो जाती है। दोनों का मुष्टामुष्टि युद्ध प्रारम्भ ही होने वाला है इसी बीच में कुबेर आकर दोनों की वास्तविकता बतलाकर संघर्ष शान्त कर देते हैं। वे भीमसेन को उसी प्रकार का गुच्छा देकर उनकी आवश्यकता पूरी कर देते हैं। संवाद ओजस्वी तथा वक्रोक्तियों से पूर्ण हैं।

इस समय प्राप्त होने वाली प्रति स्वयं को प्रेङ्खण बतलाती है जबकि विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण में इसे व्यायोग का उदाहरण बतलाया है। कीथ और विण्टरनित्ज इसे विश्वनाथ की स्वयं रची हुई रचना बतलाते हैं। यह कुछ समझ में नहीं आता कि अपनी ही एक ही कृति को कोई व्यक्ति पृथक् पृथक श्रेणी में कैसे स्थान दे सकता है। सम्भवतः व्यायोग के रूप में लिखी हुई कोई दूसरी कृति होगी जो अब उपलब्ध नहीं होती जिसका विश्वनाथ ने उदाहरण के रूप में उपयोग किया है।

इसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम सं. I ७२७ पर किया गया है। काव्यमाला सीरीज बाम्बे से इसका प्रकाशन हो चुका है जो १४५ पद्यों तक विस्तृत, वीर रस की अभिव्यक्ति से परिपूर्ण १ अंक का नाटक है। केवल भीमसेन और हनुमान की बातचीत की इसमें प्रधानता है।

सौदामिनी– (ना.पा.) मालतीमाधव में बौद्ध भिक्षुणी तथा कामन्दकी की शिष्या। यह मालती को कपालकुण्डला के चंगुल से छुड़ाती है और अन्त में मालती द्वारा धारण की हुई माला को प्रत्यभिज्ञान के रूप में प्रस्तुत करती है। यह सात्विक प्रवृत्ति की महिला है और इसके कार्य भी सात्विक हैं।

सौभद्र– (ना.कृ.) विनायक राव वोकील (दे.) लिखित नाट्य कृति। रचनाकाल २०वीं शताब्दी।

सौभद्रम्– (ना.कृ.) यह संगीतसौभद्रम् शीर्षक मराठी नाटक का संस्कृत अनुवाद है। इसके अनुवादक हैं वेलण्कर। मूल मराठी नाटक किर्लोस्कर का लिखा हुआ था। बम्बई में इसका कई वार अभिनय किया गया और इसे अच्छी लोकप्रियता प्राप्त हुई।

सौभद्रिका– (ना.कृ.) इसका उल्लेख शारदातनय के भाव प्रकाशन में किया गया है। रचना अभी तक प्राप्त नहीं हुई है।

सौभाग्य महोदय– (ना.कृ.) जगन्नाथ शीघ्र कवि (दे.(३) जगन्नाथ) लिखित प्रतीक नाटक। इसमें भावनगर के महाराजा वखतसिंह के दरवार में सभी अलंकार सभासद के रूप में उपस्थित होकर अपने कार्य कलाप का वर्णन करते हैं। यह १७वीं शताब्दी की रचना है। इसका परिचय माडर्न रिव्यू के १६वें अंक में दिया गया है। इसकी एक दूसरी संज्ञा सौभाग्य सूर्योदय भी है।

सौभाग्य सूर्योदय– (ना.कृ.) दे. सौभाग्य महोदय।

सौम्य सोमम्– (ना.कृ.) (२) श्रीनिवास शास्त्री लिकित ५ अंकों का नाटक। इसमें स्वामि कार्तिकेय का जन्म, दैत्यों का विनाश और इन्द्र के प्रभुत्व की पुनः स्थापना नाटक के विषय हैं। लम्बी एकोक्तियां और लम्बे संवाद इसकी विशेषतायें हैं।

स्कन्द शंकर खोत– (ना.का.) इन्होंने कई नाटकों की रचना की थी जिनमें उल्लेख्य है– ध्रुवावतार, मालाभविष्यम्, लालावैद्य और हा हन्त शारदे।

स्तब्धपौगण्डम्– (ना.कृ.) नारायण शास्त्री (१) लिखित ५ अंकों का नाटक।

स्तम्भितरम्भक– (ना.कृ.) साहित्यदर्पण और भावप्रकाशन में त्रोटक (उपरूपक विधा) के उदाहरण के रूप में इसका उल्लेख किया गया है। यह कृति अब उपलब्ध नहीं होती। यह ७ अंकों का रूपक बतलाया गया है जिसमें नाट्यशास्त्र के वार्तिककार हर्ष द्वारा बतलाया हुआ त्रोटक लक्षण घटित होता है।

स्नुषाविजय– (ना.कृ.) सुन्दरराज आचार्य (दे.) लिखित नाटक। इसमें एक ऐसे परिवार का समस्या मूलक चित्रण किया गया है जिसमें ससुर और पति पत्नी अच्छे पात्र हैं जबकि सास और ननद दुष्ट हैं। पात्रों के चरित्र उनके नामों से ही प्रकट होते हैं– *श्वशुर - सुशील, पति - सुगुण, बहू - सच्चरित्र, सास - दुराशा, ननद - दुर्ललित। बहू सर्वदा पर्दे में रहती है और उसके चरित्र का ज्ञान लोगों के संवाद से होता है। इसका*

रचनाकाल १९वीं शताब्दी है।

स्फुलिंगकवि- (ना.का.) दे. मल्लिकार्जुन।

स्यमन्तक- (ना.कृ.) जग्गू आलवार आयंगर (दे.) की रचना। जिसमें कृष्ण के स्यमन्तक विषयक प्रवाद को कथानक के रूप में अपनाया गया है। इसी नाम की एक रचना जग्गू श्री वकुलभूषण (दे.) की प्रशंसा में आई है। सम्भवतः यह एक ही कृति है, लेखक के दो नाम हैं जग्गू आलवार आयंगर और जग्गू श्रीवकुलभूषण।

स्यमन्तकोद्धार- (ना.कृ.) कालीपाद तर्काचार्य लिखित नाटक। इसका विभाजन दृश्यों में किया गया है। दृश्य भी अंकों के समान बड़े हैं। अंकों को ही दृश्य कह दिया गया है जिनकी संख्या ५ है। इसमें श्री कृष्ण के स्यमन्तक विषयक कथानक को अपनाया गया है। इसमें गीतों की अधिकता है। अङ्गीरस वीर है और अंगरस शृङ्गार है। सभी पात्र संस्कृत बोलते हैं। वनदेवी, विष्णुशक्ति इत्यादि पात्र मानव रूप धारण कर रंगमञ्च पर उपस्थित होते हैं।

स्वप्नदशानन- (ना.कृ.) यह भीमट (दे.) का लिखा नाटक है जिसका उल्लेख राजशेखर ने किया है। राजशेखर के अनुसार यह भीमट का सर्वोत्तम नाटक है। किन्तु अभी तक यह प्राप्त नहीं हो सका है।

स्वप्नवासवदत्तम्- (ना.कृ.) भास (दे.) के उपलब्ध साहित्य में प्रौढतम कृति। उदयन कथा पर भास ने दो नाटक लिखे थे- प्रतिज्ञायौगन्धरायण और स्वप्नवासवदत्तम्। प्रथम नाटक उदयन और वासवदत्ता के प्रणयबन्धन तक सीमित है और दूसरे में बाद की घटनायें दिखलाई गई हैं। किसी सिद्ध ने भविष्यवाणी की थी कि उदयन पर विपत्ति आयेगी और मगध की राजुकमारी से उनका विवाह हो जाने के बाद मगधराज की सहायता से उनकी विपत्ति दूर हो जायेगी। संयोगवशात् विपत्ति आ गई। किन्तु पद्मावती के साथ विवाह में सब से बड़ी वाधा थी उदयन का वासवदत्ता से सीमातीत प्रेम। मन्त्रियों ने वासवदत्ता को विश्वास में लेकर योजनानुसार प्रसिद्ध कर दिया कि लावाणक नगर में वासवदत्ता जलमरी है और उसको बचाने के उद्योग में यौगन्धरायण भी जल मरा है। इस विश्वास पर कि अब पद्मावती से उदयन के विवाह का मार्ग प्रशस्त हो गया है यौगन्धरायण अपनी विधवा बहन बतलाकर अवन्तिका के नाम से वासवदत्ता को पद्मावती के संरक्षण में दे देता है। पद्मावती और उदयन का विवाह हो जाता है। किन्तु उदयन वासवदत्ता के वियोग में बहुत दुःखी है। उसे सूचना मिलती है कि पद्मावती बीमार है। वह उसे देखने समुद्र ग्रहक में जाता है जहां पद्मावती नहीं है।राजा सूनी चारपाई पर लेट जाता है और उसे नींद आ जाती है। उसी समय बीमार पद्मावती को देखने वासवदत्ता भी आ जाती है। राजा स्वप्न की बड़बड़ाहट में वासवदत्ता से बातें करता है और वासवदत्ता कुछ देर बातों में बातें मिलाती है। पर जानलिये जाने के भय से वहां से चल देती है। किन्तु चलते चलते राजा की वाँह चारपाई पर ठीक करके रख देती है जिससे राजा जाग

जाता है और उसे पकड़ने की चेष्टा करता है। किन्तु वासवदत्ता पकड़ में नहीं आती।

अन्त में ज्योतिषी की भविष्यवाणी के अनुसार राजा को विजय मिल जाती है। वासवदत्ता और यौगन्धरायण प्रकट हो जाते हैं। उज्जयिनी से वासवदत्ता की धात्री और कञ्चुकी आकर सूचना देते हैं कि उज्जयिनी के महाराज प्रद्योत ने वासवदत्ता और उदयन के विवाह को स्वीकृति दे दी है। अन्त में भरत वाक्य के साथ नाटक समाप्त हो जाता है।

रचनाकाल से ही लेकर स्वप्नवासवदत्ता एक प्रतिष्ठित नाटक रहा है। कालिदास जैसे महाकवियों ने उदयन कथा का उल्लेख किया है। दण्डी और वामन ने इसके उद्धरण दिये हैं। समुद्रगृहक में वासवदत्ता और उदयन के मिलन का भोजराज ने उल्लेख किया है। शारदातनय ने तो इस नाटक की नाट्यसन्धियों तक का विवेचन किया है। इसी प्रकार सर्वानन्द अभिनवगुप्त, रामचन्द्र गुणचन्द्र इत्यादि लक्षणकारों की कृतियों में भी इस महत्वपूर्ण नाटक के उल्लेख या उद्धरण मिलते हैं।

यौवन जन्य उद्दाम भावना के साथ कर्तव्यबुद्धि का निर्वाह इस नाटक की अनन्य साधारण विशेषता है। यह नाटक प्रेम भाव के चित्रण में परवर्ती साहित्य का मार्ग दर्शक बन गया है। चरित्रचित्रण में कवि को वाञ्छनीय सफलता मिली है। नाट्यशैली, भाषा, संविधानक, भावाभिव्यक्ति इत्यादि अनेक दृष्टियों से यह नाटक वेजोड़ सिद्ध होता है।

इस नाटक का प्रकाशन अनेक स्थानों से हुआ है और इस पर कई टीकायें लिखी गई हैं।

स्वयंभूनाथ– (ना.का.) इनका सम्बन्ध विजयानगरम् के राजपरिवार से संबद्ध डिंडिम नाम से प्रसिद्ध कवियों से था। ये डिंडिम सार्वभौम राजनाथ द्वितीय के दौहित्र तथा स्वंयभू के पुत्र थे। अतः इनका समय १३वीं १४वीं शताब्दी सिद्ध होता है। इन्होंने भारवि की किरातार्जुनीय रचना को लेकर एक चम्पूकाव्य और कृष्णकाव्य को लेकर १४ सर्गों का एक महाकाव्य लिखा है। इनकी तीन नाट्य कृतियां भी पाई जाती हैं– सुभद्राधनञ्जय (दे.) रत्नेश्वर प्रसादन (दे.) तथा मदनगोपाल विलास भाण (दे.)। कुछ लोग इन नाटकों का रचनाकार इनके भाई गुरुराम को मानते हैं।

स्वर्गीयप्रहसनम्– (ना.कृ.) यादवेन्द्रराय (दे.) द्वारा लिखित नाटक। इसकी रचना रवीन्द्रनाथ ठाकुर के प्रहसन के अनुकरण पर हुई है। स्वर्ग में निर्वाचन का वातावरण चल रहा है। पारस्परिक उठापटक, वृहस्पति की कुटिलचालें इत्यादि हास्योत्पादक ढंग से प्रदर्शित की गई हैं। वर्तमान समस्याओं पर भी हास्योत्पादक रूप से प्रकाश डाला गया है।

स्वर्णमुक्ताविवाद– (ना.कृ.) महेश्वर पण्डित लिखित नाटक। इसमें सोने और मुक्ता का विवाद दिखलाया गया है। दोनों स्वयं को दूसरे से बढचढकर बतलाते हैं।

इस विवाद में मध्यस्थ श्रीनगरी के बलभद्र देव को बनाया गया है। इसकी प्रति इण्डिया आफिस एगलिंग कैटेलाग में सं. १६३२ पर प्राप्त की जा सकती है।

स्वातन्त्र्ययज्ञाहुति– (ना.कृ.) नारायण शास्त्री कांकर लिखित स्वातन्त्र्य सेनानियों के वलिदान के विषय में नाटक। इसका रचनाकाल वीसवीं शताब्दी है और इसका प्रकाशन संस्कृत रत्नाकर दिल्ली से सन् १९५६ में हो गया है।

स्वानुभूति नाटक– (ना.कृ.) अनन्त पण्डित लिखित ५ अंकों का नाटक। इसमें शङ्कराचार्य के केवलाद्वैत सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है। इसमें अनेक सिद्धान्त ग्रन्थों के उद्धरण दिये गये हैं। रचनाकाल १७वीं शताब्दी।

स्वानुभूत्यभिधा– (ना.कृ.) अनन्तराम (दे.) लिखित प्रतीक नाटक। इसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम I ७५२ में किया गया है।

स्वामिदीक्षित– (ना.का.) वल्ली परिणयनाटक के लेखक (दे. (३) वल्ली परिणय)

स्वामिशास्त्री– (ना.का.) ये त्रिचनापल्ली के निवासी थे। इनका लिखा शृङ्गारसर्वस्व (दे.) भाण मद्रास की ओरियण्टल लायब्रेरी में प्राप्त किया जा सकता है। इनकी लिखी मुद्राराक्षस की टीका भी प्राप्त होती है। जिसका परिचय ओरियण्टल लायब्रेरी मद्रास के पाण्डुलिपि विषयक विवरणात्मक सूचीपत्र में दिया गया है।

स्वैरचारः– (ना.कृ.) नारायण शास्त्री लिखित ३ अंकों का नाटक।

ह

हंसपदिका– (ना.पा.) अभिज्ञान शाकुन्तल (दे.) में दुष्यन्त की रानी जिसे हंसवती भी कहा गया है। संगीत के द्वारा इसने राजा के प्रति अपना उपालम्भ व्यक्त किया है जो अनजान में शकुन्तला के विषय में भी लागू होता है।

हंसवती– (ना.पा.) दे. हंसपदिका।

हजारीलाल शर्मन– (ना.का.) इनका उल्लेख सूर्योदय संस्कृत जर्नल काशी सं. VII ५१ पर किया गया है। सुरस्थल से इनका सम्बन्ध था। इनकी लिखी कई पुस्तकें हैं जिनमें षाजहाननृपतिराजनीति नामक एक नाटक भी है। हकीकत राय नामक एक एकाङ्की भी इनके नाम से प्राप्त होता है।

हनुमद्विजय– (ना.कृ.) सुन्दरराज आचार्य (दे.) लिखित नाटक। कवि ने अपने आराध्य देव की अभिशंसा में इस नाटक की रचना की है।

हनुमन्त– (ना.पा.) (अ) रामायण के प्रमुख पात्रों में एक। रामायण विषयक नाटकों में पात्ररूप में या सूच्य भाग में इनका उपादान हुआ है। प्रमुखरूप में (१) प्रतिमा नाटक, (२) अभिषेक नाटक, (३) महावीर चरित, (४) अनर्धराघव, (५) प्रसन्नराघव, (६) दूताङ्गद

इत्यादि में इनका उपादान हुआ है।

(आ) महाभारत परक कथानक से निर्मित सौगन्धिकाहरण में भी इनका उपादान किया गया है।

हनुमन्नाटक– (ना.कृ.) दे. महानाटक।

हम्मीर– (ना.पा.) जयसिंह सूरि लिखित हम्मीर मदमर्दन का प्रतिनायक। एक मुसलमान आक्रान्ता जो सम्भवतः मेवाड का १३वीं शताब्दी का शासक था और जिस पर गुजरात के राजा वीरधवल ने अपने मन्त्री वास्तुपाल की कूट नीति के वल पर विजय प्राप्त की थी।

हम्मीर मदमर्दन– (ना.कृ.) जयसिंह सूरि (दे.) का लिखा एक ऐतिहासिक (या ऐतिहासिक जैसा) नाटक। यह ५ अंकों का नाटक है जिसकी रचना मन्त्री वस्तुपाल के पुत्र जयन्तसिंह या जैत्रसिंह आग्रह पर की गई थी। इसकी रचना का मुख्य उद्देश्य २५ स्वर्णदण्डों के अनुदान की स्मृति को सुरक्षित रखना था। इसमें वास्तुपाल की सन्धि-विग्रह का वर्णन किया गया है और गुजरात पर मुसल्मान आक्रान्ता के आक्रमण पीछे हटा देने का विवरण दिया गया है। (जिस विहार के लिये उक्त अनुदान दिया गया था उसको मुसल्मान आक्रान्ताओं ने बाद में मस्जिद के रूप में परिवर्तित कर दिया।) इस नाटक की भाषा और कविता आकर्षक है और चुनी हुई उपमाओं का प्रयोग मनोरञ्जक है। राजनीति की चालें भी विवेकपूर्ण हैं।

वास्तुपाल संवत् १२७६ (सन् १२१९) में वीरधवल का मन्त्री बना था। अतः इस नाटक की रचना १२२० और १२३० ई. के मध्य हुई होगी। इसका प्रकाशन गायकवाड ओरियण्टल सीरीज से सी.डी. दलाल की भूमिका के साथ प्रकाशित हो चुका है।

हरकेलि– (ना.कृ.) यह विग्रह राज का लिखा नाटक है इसमें अर्जुन और महादेव के युद्ध का अंकन किया गया है जिसमें बाद में अर्जुन को पाशुपत अस्त्र का पुरस्कार प्राप्त होता है। इस नाटक की विषय वस्तु वही है जो किरातार्जुनीय की है। इस नाटक को स्थायित्व प्रदान करने के लिये पत्थरों पर खुदवाया गया था जो बाद में अजमेर मश्जिद के बुर्जों में लगा दिये गये। इस शिलालेख का समय संवत् १२१० (सन् ११५३) है।

हरगौरीविवाह– (ना.कृ.) १७वीं शताब्दी का नेपाली कवि जगज्ज्योतिमल्ल लिखित रूपक। यह रोचक गीतिनाट्य है जिसमें नाट्य की अपेक्षा संगीत रूपात्मकता अधिक है। इसके अधिकांश पद्य जनपदीय भाषा में लिखे गये हैं। यह इसकी सबसे बड़ी विशेषता है।

हरविलास– (ना.कृ.) यह राजशेखर (दे.) का लिखा नाटक बतलाया जाता है। अब यह उपलब्ध नहीं होता। हेमचन्द्र ने इसका उल्लेख किया है और उज्ज्वलदत्त ने

इससे उद्धरण दिया है।

हरिचरण भट्टाचार्य– (ना.का.) इनका जन्म पूर्वी बंगाल में १८७९ में एक शिक्षित ब्राह्मण परिवार में हुआ था। इनके पिता १९१० में कलकत्ता में रहने लगे थे। वहीं मैट्रोपोलिटन कालेज कलकत्ता में ये संस्कृत के प्रोफेसर पद पर कार्य करते रहे। बंकिम चन्द्र के कपाल कुण्डला उपन्यास का इन्होंने संस्कृत में नाटकीकरण किया है। इसके अतिरिक्त ओमर ख्य्याम की रुवाइयों का फिट्जराल्ड ने अंग्रेजी में जो रुपान्तरण किया था उस पर ७५ पद्यों की एक पुस्तक की रचना भी इनकी कृतियों में शामिल है।

हरिजीवन मिश्र– (ना.का.) १७वीं शताब्दी में राजा रामसिंह के आश्रम में रहते थे। इनके पिता का नाम लाटमिश्र था। संवत् १७३० (सन् १६७३) की लिखी विजयपारिजात नाटक की एक पाण्डुलिपि प्राप्त हुई है। इनके चार प्रहसनों की पाण्डुलिपियां भी मिलती हैं प्रासङ्गिका, सहृदयानन्दन, विवुधमोहन और अद्भुततरंग। पलाण्डुमण्डनम् एवं घृतकुल्यावली के लेखक हरिजीवन मिश्र सम्भवतः अन्य व्यक्ति थे।

(१) **हरिदास–** (ना.का.) पूर्वी बंगाल के उन्शिया, कोटवालपुर के कश्यप गोत्र के गंगाधर विधालंकार एवं विधुमुखी से सन् १८७६ में इनका जन्म हुआ था। विद्या की दृष्टि से इनका जन्मस्थान दूसरी काशी माना जाता है। यहां के ब्राह्मण सैकड़ों देवताओं की नित्य पूजा करते हैं। हरिदास के बाबा काशीचन्द्र वाचस्पति एक प्रतिष्ठित विद्वान थे। इनके पूर्वजों में यादवानन्दन्यायाचार्य और मधूसूदन सरस्वती जैसे प्रतिष्ठित विद्वान उत्पन्न हुये थे। ये जीवानन्द सरस्वती विद्यासागर के शिष्य थे।

१३ वर्ष की आयु में ही इन्होंने संस्कृत भाषा और साहित्य का पूरा ज्ञान प्राप्त कर लिया था और १४ वर्ष की आयु में ही इन्होंने एक नाटक और एक चम्पू की रचना की थी। यह क्रम लगातार चलता ही रहा और २० वर्ष की आयु तक ये कई पुस्तकें लिख चुके थे। उच्चकोटि की कई पुस्तकों की टीकायें, महाकाव्य, खण्डकाव्य, लघुकाव्य, चम्पू, नाटक इनके साहित्य के अंग हैं। महाभारत का बंगला में अनुवाद भी खण्डशः प्रकाशित हुआ था। इनकी नाट्य कृतियां हैं– कंसवध, जानकीविक्रम, विराजसरोजिनी बंगीयप्रताप, मिवाड़प्रताप, शिवाजीचरित; पेशे से ये अध्यापक थे। इन्हें सिद्धान्त वागीश की उपाधि प्राप्त हुई थी। इसके अतिरिक्त इन्होंने कई विषयों में तीर्थ की उपाधि भी प्राप्त की थी। इनकी अधिकांश पुस्तकें कलकत्ता से प्रकाशित हुई हैं। इन्हें महामहोपाध्याय की भी उपाधि प्राप्त हुई थी।

(२) **हरिदास–** (ना.का.) ये प्रौढ देवरायपुरम के निवासी थे। इनका लिखा हरिविलास भाण प्रकाश में आया है।

हरिदूत– (ना.कृ.) यह भास (दे.) के नाटक दूत वाक्य (दे.) के कथानक को लेकर लिखा गया है। कृष्ण सन्धि का प्रस्ताव लेकर दुर्योधन की सभा में जाते हैं। इस नाटक

में कोई नई विशेषता नहीं है। लूडर्स ने इसे छाया नाटक माना है जिसे कीथ ने स्वीकार नहीं किया। कीथ के मत से इसमें कोई ऐसी विशेषता नहीं है जो इसे छाया नाटक की श्रेणी में ला सके। इसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम १.७५७ पर किया गया है।

हरियज्वन– (ना.का.) इनका लिखा कंसान्तक प्राप्त होता है जो मैसूर **ओरियण्टल** पुस्तकालय के संस्कृत पाण्डुलिपि अनुभाग में ६३६ संख्या पर संकलित किया गया है।

हरिरामचन्द्र दिवेकर– (ना.का.) ये ग्वालियर के निवासी थे। इन्होंने महोत्सवम् (दे.) की रचना की थी जिसका अभिनय उज्जैन में कालिदास महोत्सव के अवसर पर किया गया था।

हरिवंश हंसम्– (ना.कृ.) शङ्करदत्त (दे.) का लिखा नाटक।

हरिविलास– (ना.कृ.) हरिदास (२) (दे.) लिखित भाण कैटेलागस कैटेलागोरम II १८३ पर इसका उल्लेख किया गया है। मद्रास की ओरियण्टल लायब्रेरी के पाण्डुलिपि परक विवरणात्मक कैटेलाग में सं. XXI ८५६३ पर भी इसका परिचय दिया गया है।

(१) **हरिश्चन्द्र–** (ना.का.) दिगम्बर जैन सम्प्रदाय के कवि थे। इनके पिता का नाम आद्रदेव और माता का नाम राधा था तथा ये कायस्थ परिवार के लक्ष्मण के भाई थे। इन्हें सरस्वती पुत्र की उपाधि प्राप्त हुई थी। राजशेखर ने कर्पूरमञ्जरी में इनका उल्लेख किया है। इनका लिखा २१ सर्गों का महाकाव्य प्राप्त होता है जिसमें १५वें तीर्थंकर धर्मनाथ का जन्म से निर्वाण तक अंकन किया गया है। टी.ए. कुप्पू स्वामी शास्त्री के अनुसार इन्होंने जीवन्धर चरितम् नाटक (दे.) की भी रचना की थी। इनकी भाषा मनोरम और प्रसादगुणपूर्ण है और उसमें संगीतात्मकता है। कुप्पूस्वामी शास्त्री के अनुसार इनका समय ९वीं १०वीं है तथा ये दक्षिण भारतीय थे।

(२) **हरिश्चन्द्र–** (ना.का.) सत्यहरिश्चन्द्र नाटक (दे.) के लेखक।

(१) **हरिश्चन्द्रचरित–** (ना.कृ.) यह अज्ञातनामा कवि की नाट्य कृति है। इसके उद्धरण भोजराज के शृङ्गार प्रकाश में दिये गये हैं। किन्तु भोजराज ने जो उद्धरण दिये हैं पौराणिक उपाख्यान से वे कुछ हट कर प्रतीत होते हैं। उनमें माधवी के विक्रय की बात कही गई है। किन्तु पुराण में हरिश्चन्द्र की पत्नी का नाम माधवी नहीं मिलता। इस विक्रय में विश्वामित्र के शिष्य गालव माधवी के विक्रय में योगदान देता है। महाभारत में विश्वामित्र के शिष्य गालव की कथा आई है जिसमें गालव विश्वामित्र की गुरुदक्षिणा चुकाने के लिये कन्या विक्रय करते हैं। हो सकता है इस अप्राप्त नाटक में विश्वामित्र और गालव की कथा आई हो। जो दूसरा उद्धरण दिया गया है उसमें स्पष्ट रूप में विश्वामित्र द्वारा पत्नी विक्रय की बात कही गई है। सम्भवतः यह अन्य नाट्यकृति है जिसमें हरिश्चन्द्र की प्रसिद्ध कथा का उपादान किया गया है। रुय्यक ने जो उद्धरण दिया है उसमें हरिश्चन्द्र की पत्नी का नाम औषीनरी बतलाया गया है। ज्ञात होता है वह दूसरी

हरिश्चन्द्र कृति का उद्धरण है।

(२) **हरिश्चन्द्र चरित**– (ना.कृ.) प्रभाकर श्रीनिवास लिखित नाटक। इसका उल्लेख भोजराज ने शृङ्गार प्रकाश में और रुद्रट ने काव्यालंकार में किया है। मैसूर ओरियण्टल पुस्तकालय सं. २८७ पर पाण्डुलिपि पुस्तक सूची में इसका उल्लेख है।

हरिश्चन्द्रचरितम्– (ना.कृ.) रणेन्द्रनाथ गुप्त लिखित ५ अंकों का नाटक। अंकों का दृश्यों में विभाजन किया गया है। इसमें हरिश्चन्द्र की पौराणिक कथा का उपादान हुआ है। उत्तर रामचरित से प्रभावित इस रचना में करुण रस का प्राधान्य है, किन्तु कहीं कहीं हास्य का पुट भी सम्मिलित कर दिया गया है। धर्म, महाव्रत आदि प्रतीकात्मक पात्रों की नियोजना की गई है। रंगमञ्चीय संविधान पाश्चात्य है। इसकी रचना १९११ में की गई थी।

हरिश्चन्द्र नृत्य– (ना.कृ.) १७वीं शताब्दी के सिद्धिवर सिंह (नैपाल नरेश) लिखित नाटक।

हरिश्चन्द्रयशश्चन्द्रचन्द्रिका– (ना.कृ.) अज्ञातनामा लेखक की एक नाट्यकृति। दक्षिण भारत के प्राइवेट पुस्तकालय में सुरक्षित पाण्डुलिपियों की खोज गुस्तव ओपर्ट ने की थी और उनकी सूची दो खण्डों में प्रकाशित की गई थी। उसमें सं. ६७०४ पर इसका उल्लेख किया गया है। औफ्रेट के कैटेलागस कैटेलागोरम लीपजिग सं. १७६१ पर भी इसका उल्लेख है।

हरिश्चन्द्रोपाख्यान– (ना.कृ.) १४वीं शताब्दी के जयसिंह वर्मा का लिखा नाटक।

हरिहर– (ना.का.) ये शैव सम्प्रदाय में दीक्षित मैथिल ब्राह्मण थे। इनके लिखे दो नाटक बतलाये जाते हैं– भर्तृहरिनिर्वेद (दे.) नामक प्रतीक नाटक और प्रभावती परिणय (दे.)। कुछ लोग दोनों कृतियां एक ही व्यक्ति की मानते हैं। दूसरे लोगों का विचार है कि ये दो पृथक् पृथक् व्यक्ति थे दोनों का समय भी भिन्न था।

हरिहर द्विवेदी– (ना.का.) नागराज विजयम् (दे.) रूपक के लेखक।

हरिहर युद्धम्– (ना.कृ.) २०वीं शताब्दी के बंगाली कवि लक्ष्मीकान्त दास का लिखा नाटक।

हरिहरानुसारण यात्रा– (ना.कृ.) यह नृसिंह भट्ट का लिखा नाटक है। जिसका उल्लेख कैटेलागस कैटेलागोरम I ७६३ में किया गया है। इसका प्रकाशन बम्बई से हो चुका है।

हर्ष– (ना.का.) ये प्रसिद्ध नाटककार हैं। इनके नाम पर तीन नाटक प्राप्त होते हैं– रत्नावली, प्रियदर्शिका और नागानन्द। इन नाटकों के विषय में सामान्य रूप से अनुमोदित तत्व हैं– (१) इन तीनों नाटकों की शैली शब्दयोजना, भाषा, प्रस्तावना, वस्तुयोजना इन सभी दृष्टियों से ये नाटक एक जैसे ही प्रतीत होते हैं। इससे स्वभावतः सिद्ध होता है

कि ये नाटक एक ही कलाकार की कृति हैं। (२) नाटकों के अन्तः साक्ष्य केआधार पर सिद्ध होता है कि इनके रचनाकार का नाम हर्षदेव था जो कोई राजा था- सामान्य राजा नहीं एक ऐसा राजा जिसके चरण कमलों कीआधीनता में राजा लोगों का समूह अपनी सत्ता बनाये हुये था तथा दूर दूर के प्रदेशों से राजसमूह आकर भेंटे देता था- (नाना दिग्देशागतेन राज्ञः श्रीहर्षदेवस्य पादपद्मोपजीविना राजसमूहेन)। (३) उन महाराज के जीवनकाल में ही उनकी कृतियों की प्रतिष्ठा व्याप्त हो गई थी और राजा लोग उनका अभिनय देखने के लिये उत्सुक रहते थे- (राजसमूहेनेक्तो यथा अस्मत्स्वामिना श्रीहर्ष देवेनापूर्ववस्तुरचनालंकृता रत्नावली नाम नाटिका कृता। सा चास्माभिः श्रोत्रपरम्परयाश्रुता न तु प्रयोगतो दृष्टा) इससे सिद्ध हो जाता है कि इस नाटक की रचना किसी हर्ष नामधारी सम्राट ने की होगी। संस्कृत साहित्य के क्षेत्र में हर्ष नाम के अनेक कवियों का होना सिद्ध होता है जिनमें १२वीं शताब्दी के कंन्नौज के राजा जयचन्द्र के दरवारी कवि नैषधकार का नाम सर्वाधिक प्रसिद्ध है। दूसरे हर्ष नामक कवियों में मुंजराज के पुत्र ११वीं शताब्दी के काश्मीरी शासक कवि, १५वीं शताब्दी के कवि हर्ष इत्यादि अनेक कवियों का उल्लेख प्राप्त होता है। कल्हण ने उज्जैन के महाराजा हर्षदेव विक्रमादित्य का उल्लेख किया है जो मातृगुप्त के आश्रयदाता थे। इनका समय ईसा की पहली या दूसरी शताब्दी है। अभिनवगुप्त, शारदातनय, बहुरुपमिश्र प्रभृति अनेक नाट्यशास्त्रकारों ने नाट्यशास्त्र के व्याख्याकार हर्ष का उल्लेख किया है। ७वीं शताब्दी के कन्नौज के राजा अन्यतम हर्ष हैं जो वाणमयूर जैसे कवियों के आश्रयदाता के रूप में प्रसिद्ध हैं। विचारणीय प्रश्न यह है कि इनमें प्रस्तुत नाटकों का रचयिता कौन है।

काव्यशास्त्र के अनेक रचनाकारों ने रत्नावली इत्यादि नाटकों के उद्धरण दिये हैं जिनमें सबसे प्राचीन उद्धरण ७वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में दामोदर गुप्त का है। इससे सिद्ध हो जाता है कि ७वीं शताब्दी के बाद जितने भी हर्ष हुये हैं उनमें कोई भी इन नाटकों का लेखक नहीं हो सकता। दूसरी बात यह है कि उन परवर्ती रचनाकारों में कोई भी महान सम्राट् नहीं है। अतः विचार क्षेत्र में दो हर्ष शेष रह जाते हैं- पहली या दूसरी शताब्दी के महाराज हर्ष विक्रमादित्य और दामोदर गुप्त के तत्काल पहले ७वीं शताब्दी के कन्नौज के राजा हर्षवर्धन। इन नाटकों की नाट्यविधा और रचना प्रविधि प्राचीन नाटककार इत्यादि से मेल नहीं खाती। अतः ये नाटक प्रथम द्वितीय शताब्दी के हर्ष विक्रमादित्य के नहीं हो सकते। दूसरी बात यह भी है कि यदि ये नाटक इतना पहले लिखे गये होते तो निश्चित रूप से इनका उल्लेख कालिदास के समय की किसी रचना में अवश्य प्राप्त हो जाता। अतः इसमें सन्देह नहीं रह जाता कि ये रचनायें इतनी पुरानी नहीं हो सकती।

अब विचारणीय है कि ७वीं शताब्दी के महाराज हर्षवर्धन कवियों के आश्रयदाता तो थे क्या कवि भी थे। इसका उत्तर हां में ही दिया जा सकता है। वाण कवि ने इनकी

कवित्वशक्ति की प्रशंसा की है– 'ये काव्यकथाओं में अमृत प्रवाहित करते थे ****** इनकी कवित्व की वाणी के क्षेत्र में कोई सीमा नहीं थी। इसके अतिरिक्त इनके राज्यकाल में चीनी यात्री ह्वेनसांग भारत आया था। उसने सन् ६३० से ६४४ तक भारत भ्रमण किया था। वह बहुत समय तक महाराज हर्ष के दरवार में रहा था। उसने लिखा है कि माहारजा हर्ष कवियों के आश्रयदाता होने के अतिरिक्त स्वयं भी एक महान कवि थे। चीनी यात्री इत्सिंग ने भी उल्लेख किया है कि राजा शीलादित्य ने बोधिसत्व जीमूतवाहन की कथा पद्य बद्ध रूप में प्रस्तुत की थी और उनके आश्रित नृत्यगीत मण्डलियों ने उसे गीत, नृत्य और नाट्य द्वारा जनता में प्रचारित किया था। हमें ज्ञात है कि नागानन्द के कथानक नायक जीमूतवाहन ही है। इन सब प्रमाणों से यह बात सिद्ध हो जाती है कि इन नाटकों की रचना कन्नौज के महाराज हर्ष ने की थी जिनकी उपाधियां थी शीलादित्य, आढ्यराज इत्यादि।

भारतीय और चीनी दोनों परम्पराओं में इन नाटकों का कर्ता कन्नौज के हर्षवर्धन को ही स्वीकार किया जाता है। विण्टरनित्ज के अनुसार इन परम्पराओं पर अविश्वास का कोई कारण नहीं। उक्त मान्यता पर कई सन्देह उठाये गये हैं– (१) इसमें सन्देह नहीं कि नाट्यकला और काव्य की दृष्टि से इनके नाटक अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं, किन्तु वासवदत्ता और उदयन के चरित्रों का जैसा अवमूल्यन हुआ है वह एक महान् सम्राट हर्ष की रचना में सम्भावित नहीं है। (२) वाण ने हर्ष के कवित्व की प्रशंसा की किन्तु उनके नाटकों का उल्लेख नहीं किया। (३) प्रस्तावना में 'श्रीहर्षो निपुणः कविः' कहा गया है। अपने लिये न तो श्री कहा जाता है और न 'निपुण कवि' कहकर कोई महान् व्यक्ति अपनी प्रशंसा स्वयं करता है। (४) रचनाकार का नाम हर्ष देव बतलाया गया है कहीं भी अन्यत्र हर्षवर्धन को हर्षदेव नहीं कहा गया। (५) हर्ष के नाम पर जो गाथायें संग्रहों में दी गई हैं वे नाटकों में नहीं मिलतीं। (६) काव्यप्रकाशकार मम्मट ने काव्य प्रयोजनों में काव्य से धन प्राप्ति का उदाहरण दिया है जैसे हर्ष से धावक को धन प्राप्त हुआ। इससे सिद्ध होता है कि ये नाटक किसी धावक कवि ने लिखे थे और हर्ष ने पैसा देकर उन्हें खरीद लिया।

सौत के प्रति उदारता और पति की सफलता के लिये मन्त्री के परामर्श पर सारा जीवन कष्ट में काटने की स्वीकृति एक आदर्श चरित्र है। किन्तु रत्नावली में वासवदत्ता के इस आदर्श चरित्र के स्थान पर यथार्थरुपता प्रदान की गई है जो कला के क्षेत्र में महान से महान व्यक्ति से भी असम्भावित नहीं है। उक्त तर्कों में केवल एक ही विचारणीय है कि मम्मट के कथन से सिद्ध होता है कि हर्ष ने धन देकर इन कृतियों को खरीदा था। कुछ लोगों ने धावक के स्थान पर वाण पाठ रक्खा है– 'हर्षादेर्वाणादीनामिव धनम्' उनका मानना है कि ये नाटक वाण ने लिखे थे। किन्तु वाण की शैली इन नाटकों से विल्कुल नहीं मिलती। गाथाओं का नाटकों में न मिलना कोई ठीक तर्क नहीं है। नाटकों

के अतिरिक्त हर्ष की अन्य रचनायें भी उपलब्ध होती हैं जिनमें दो बौद्ध स्तोत्र - सुप्रभात - स्तोत्र और अष्टमहर्षिचैत्यसंस्कार स्तोत्र तथा कुछ गाथायें चयनिकाओं में पाई जाती हैं। अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है– ये नाटक या तो हर्ष के लिखे हैं या धावक नामक किसी अन्य लेखक ने लिखे जिनको पैसे देकर हर्ष ने खरीद लिया।

हर्ष का जीवनवृत्त– हर्ष का जन्म सन् ५९० के आस पास कुरुक्षेत्र के निकट थानेश्वर में प्रभाकर वर्धन और प्रभावती से हुआ था। इनका एक बड़ा भाई राज्य वर्धन था और छोटी बहन राज्यश्री थी। बहन का विवाह कन्नौज के अवन्तिवर्मा के पुत्र ग्रहवर्मा से हुआ था। प्रभाकर वर्धन ने हूणों को पराजित कर लाट, मालव और गान्धार तक अपना राज्य बढ़ा लिया और उत्तर में विजय करने राज्यवर्धन को भेजा। किन्तु पिता की मृत्यु का समाचार सुनकर राज्यवर्धन लौट आये। इसी बीच समाचार मिला कि मालव राज ने ग्रह वर्मा को मारकर राज्यश्री को बन्दिनी बना लिया है। तब बदला लेने के लिये राज्यवर्धन ने मालव नरेश पर चढाई की और उसे युद्ध में मार डाला। किन्तु धोखा देकर बंगाल के राजा शशांक ने राज्यवर्धन की हत्या कर दी। इसी बीच राज्यश्री कैद से छूटकर विन्ध्याचल के जंगलों में भाग गई। वहां जब वह आत्महत्या के लिये आग में कूदने को तैयार थी उसे हर्ष ने तलाश कर लिया और बचाकर घर ले आये और कन्नौज को भी अपने राज्य से मिला लिया। शशांक से बदला लिया और उत्तर भारत में एक छत्र राज्य स्थापित कर दक्षिण विजय का विचार किया। किन्तु पुलकेशी द्वितीय से पराजित होकर दक्षिण विजय का विचार त्याग दिया। अब उनका हिमालय से लेकर नर्मदा तक और गान्धार एवं मालवा से लेकर बंगाल तक अखण्ड, समृद्ध, सुख शान्तिमय राज्य था। अन्तिम जीवन में इन्होंने बौद्धधर्म स्वीकार कर लिया किन्तु ब्राह्मण धर्म के प्रति भी उदारता बनाये रक्खी। इनका प्रयाग का महा परित्याग प्रसिद्ध ही है।

ये कवियों को आश्रय देते थे तथा स्वयं भी रचना करते थे। चीनी यात्री ह्वेसांग को भी राज्याश्रय दिया जो पर्याप्त समय तक इनकी राजधानी मे रहा। शिक्षा की पर्याप्त उन्नति की, बौद्ध स्तोत्रों की रचना की और दो नाटकों प्रियदर्शिका (दे.) एवं रत्नावली (दे.) की रचना बौद्ध धर्म स्वीकार करने के पहले तथा एक नाटक नागानन्द की रचना बौद्ध धर्म स्वीकार कर लेने के बाद की। इनकी रचना प्रसादगुणपूर्ण एवं प्रवाहपूर्ण है, ललित कला का अनूठा उदाहरण है जिसमें संस्कृत और प्राकृत का परिनिष्ठित रूप में प्रयोग किया गया है। इन नाटकों ने साहित्य जगत् में पर्याप्त प्रतिष्ठा प्राप्त की है।

हर्षदेव– (ना.का.) जगदानन्द नामक नाटक के लेखक; क्या ये कन्नौज के प्रसिद्ध राजा एवं इतिहास पुरुष ही हैं या कोई दूसरे हर्ष देव इसका निर्णय करना कठिन है।

हर्षनाथ झा– (ना.का.) १९वीं २०वीं शताब्दी के बिहार निवासी कवि, नाटककार एवं शास्त्रीय ग्रन्थकार। इनके लिखे कई शास्त्रीय ग्रन्थ एवं टीका ग्रन्थ प्राप्त हुये हैं। इनका लिखा उषाहरण (दे.) नामक एक नाटक भी प्राप्त होता है।

हर्षनैषधीयम्– (ना.कृ.) रामावतार शर्मा। (दे.) लिखित नाटक।

हर्षवाणभटीयम्– (ना.कृ.) रंगाचार्य लिखित हर्षवर्धन विषयक चार अंकों का नाटक। प्रभाकर वर्धन (हर्ष के पिता) की मृत्यु के बाद वाण से मिलने तक की कथा का इसमें उपादान किया गया है। यह २० वीं शताब्दी की रचना है। संस्कृत साहित्य परिषद् पत्रिका में इसका प्रकाशन कर दिया गया।

हर्षावसान– (ना.कृ.) यह कन्यैयालाल पंचतीर्थ (दे.) का लिखा राम कथा विषयक नाटक है। इसका प्रकाशन सह्याद्रि संस्कृत जर्नल मद्रास एवं कलकत्ता से हो चुका है।

हस्तिमल्ल– (ना.का.) ये वत्सगोत्रीय गोविन्द के पुत्र थे। बाद में इन्होंने जैनधर्म स्वीकार कर लिया था। इनका यह वास्तविक नाम नहीं था किन्तु जैसा कि अप्पयाचार्य ने जिनेन्द्र कल्याण में बतलाया है ये एक हाथी से लड़े थे जिससे इन्हें यह संज्ञा प्राप्त हुई। इस घटना की प्रशंसा में तत्कालीन पाण्ड्यराज ने १०० पद्यों में खुली सभा में इनकी प्रशंमा की थी। इनके पिता गुणभद्र के दूरवर्ती शिष्य थे। इनका समय सम्भवतः १३वीं शताब्दी है। कतिपय प्रबन्ध काव्यों और आदि पुराण के अतिरिक्त इन्होंने अनेक नाटकों की रचना की थी– उनके इन नाटकों का उल्लेख किया जाता है।– अञ्जनापवञ्जय, अर्जुनराज, भरतराज, मेधेश्वर, मैथिलीपरिणय, विक्रान्तकौरव और सुभद्रा नाटिका। (परिचय यथा स्थान देखिये।)

हारहैमवतम्– (ना.कृ.) नारायण शास्त्री (१) (दे.) लिखित ७ अंकों का नाटक।

हासामृत– (ना.कृ.) यह एक नैपाली रचना है और नैपाल के पुस्तकालय में सुरक्षित है। इसकी रचना बुन्देलखण्ड के सुजान सिंह के राज्यकाल में हुई थी।

हास्यचूड़ामणि– (ना.कृ.) वत्सराज (दे.) लिखित प्रहसन। इसका नायक है ज्ञानराशि। वह है तो भागवत सम्प्रदाय का आचार्य किन्तु वह केवली ज्ञान का ज्ञाता होने का दावा करता है जिससे वह गड़े धन और खोई वस्तु का पता लगा सकता है। उसका शिष्य दुर्निग्रह है जो अपने गुरु की मजाक उड़ाता है और इसके लिये वह गुरु के वचनों की इस रूप में शब्दतः व्याख्या करता है कि उससे हास्यसृष्टि होती है। शिष्य की व्याख्या के अतिरिक्त उसके अपने कारनामें ही हास्य सृष्टि करने में समर्थ है। छल कपट ही उसकी आजीविका का साधन है। गायकवाड ओरियण्टल सीरीज से इसका प्रकाशन हो गया है।

हास्य कौतूहल– (ना.कृ.) यह एक प्रहसन है जिसकी रचना विट्ठल कृष्ण विद्यावागीश ने की थी।

हास्य नाटक– (ना.कृ.) आचार्य कवीन्द्र (अथवा कविन्द्र) लिखित नाटक। यह नैपाल में लिखा गया नाटक है। आचार्य की पुस्तक सूची में इस नाटक का उल्लेख किया गया है जोकि बड़ौदा से प्रकाशित हो चुकी है।

हास्यरत्नाकर- (ना.कृ.) एक प्रहसन जिसका उल्लेख धनञ्जय के दशरूपक में किया गया है।

हास्यसागर- (ना.कृ.) १७वीं शताब्दी के रामानन्द का लिखा प्रहसन। इसमें संवाद संस्कृत में है और पद्य हिन्दी छप्पय छन्द में। औरंगजेब के समय में हिन्दुओं की दुर्दशा का चित्रण। ब्राह्मण की पत्नी बिन्दुमती कुट्टिनी द्वारा एक यवन के सम्पर्क में लाई जाती है जिसकी सूचना बिन्दुमती का भाई राजा को देता है। राजा का नाम कुलकुठार अन्य पात्र- मिथ्याशुक्ल, मण्डकचतुर्वेदी आदि।

हास्यार्णव- (ना.कृ.) जगदीश या जगदीश्वर लिखित प्रहसन। इसके कई संस्करण हो चुके हैं- कैप्लर जेन का आक्सफोर्ड संस्करण बंगाली अनुवाद के साथ, कलकत्ता संस्करण इत्यादि। विल्सन थियेटर II ४०८-९) में विश्लेषण। अंग्रेजी अनुवाद के साथ संस्करण।

कथानक- राजा अनयसिन्धु परेशान है कि उसके राज्य में बहुत बड़ी गड़बड़ी चल रही है। सबसे बड़ी परेशानी है लोगों का मर्यादा पालन, पतिव्रता स्त्रियां, एक पत्नीव्रत पुरुष; जूते बनाने का काम केवल चाण्डाल करते हैं, ब्राह्मण नहीं। राजा इन बातों से परेशान है और इन बुराइयों को दूर करने के लिये मन्त्री की राय से बन्धुरा कुट्टिनी के यहां जाता है वहां उसकी पुत्री मृगाङ्कलेखा से मिलने वैद्य, ज्योतिषी, धर्माध्यक्ष इत्यादि सभी आते हैं और उनके व्यवहार से हास्य सृष्टि होती है। नामकरण में हास्य का पुट है- राजा - अनयसिन्धु, रक्षाधिकारी - साधुहिंसक इत्यादि। ज्योतिषी जी का विचारा गया मुहूर्त मृत्युदायक होता है। बुड्ढों को मृगांङ्कलेखा मिलती है जबकि युवकों को बुड्ढी बन्धुरा से सन्तोष करना पड़ता है। हास्यरस का यह एक अच्छा खण्ड है।

हा हन्त शारदे- (ना.कृ.) २०वीं शताब्दी के स्कन्ध शंकर खोत का लिखा रूपक। स्त्री शिक्षा पर जोर डालना इसका उद्देश्य है। दो सहेलियां कीर्ति और मूर्ति गुड्डे गुड्डियों की शादी करती हैं और बाद में उनका भोज होता है। भोज में पत्तलों की जगह वे कागज काम में लाये जाते हैं जिन पर मूर्ति के पिता गोविन्द ने मूर्ति के भाई को पढ़ाने के लिये टिप्पणियां तैयार की हैं। दूसरे ही दिन मूर्ति के भाई की परीक्षा है किन्तु उसके अध्ययन की सारी सामग्री भोज में ही समाप्त हो गई। तब पितापुत्र को ज्ञात होता है कि स्त्री शिक्षा कितनी आवश्यक है।

हिडिम्बा- (ना.पा.) भास के मध्यमव्यायोग (दे.) का एक पात्र। यह दानवी है फिर भी भास ने उसके उदार गुणों का चित्रण किया है। अपने प्रियतम के प्रति उसमें अनुराग है, कार्यकुशलता है, एक विशिष्ट योजना के अनुसार वह प्रियतम को बुलाना चाहती है और उसमें उसे सफलता मिलती है। पुत्र पर उसका पूरा नियन्त्रण है। मानव मांस भोजी होते हुये भी सदाशयता की उसमें कमी नहीं

हिन्दुविश्वविद्यलयः– (ना.कृ.) मधुसूदनसरस्वती लिखित पूर्ण नाटक। विश्वविद्यालय की स्वर्णजयन्ती में इसका अभिनय हुआ था।

हृदय विनोद– (ना.कृ.) कवि पण्डित का लिखा प्रहसन कैटेलागस कैटेलागोरम II २८७ सं. पर इसका उल्लेख है।

हेज्जल– (ना.का.) राधा विप्रलम्भ (दे.) नाटक के लेखक।

हेमाङ्गद– (ना.पा.) एक विद्याधर जो अनर्घराघव (दे.) में एक दूसरे विद्याधर के साथ वार्तालाप में राम-रावण युद्ध की चरमावस्था का वर्णन करता है।

हेमाङ्गी– (ना.पा.) वसन्ततिलक (दे.) की नायिका।

हैदरावादविजयम्– (ना.कृ.) नीर्पाजे भीमभट्ट लिखित १० दृश्यों का एक ऐतिहासिक नाटक। सरदार पटेल द्वारा हैदरावाद राज्य के भारत में विलय को इस नाटक के कथानक के रूप में स्वीकृत किया गया है। कासिम रिवजी एक अत्यन्त दर्पनिष्ठ व्यक्ति है। हैदरावाद में रजाकारों के उपद्रव चरमसीमा पर हैं। नेहरु को तत्कालीन गवर्नर जनरल बतलाते हैं कि रजाकारों के उपद्रव में हैदरावाद और जूनागढ के नवाब मूल कारण हैं। नेहरु हैदरावाद पर अतिक्रमण की आज्ञा दे देते हैं; हैदरावाद पराजित हो जाता है और कासिम रिवजी भाग जाता है। नेहरू सरदार पटेल को वधाई देते हैं।

इसका प्रकाशन हैदरावाद से १९५४ में अमृत वाजार पत्रिका में हो गया था।

होलिकोत्सवः– (ना.कृ.) यह लीलाराव दयाल (दे.) का ३ दृश्यों का रूपक है। इसमें एक ग्रामीण परिवार का चित्र है। राधा होलिकोत्सव मनाने के लिये अपना जेवर (केयूर) गिरवी रखकर बच्चों के लिये कपड़े खरीदती है। उसका पति गणु जब पत्नी का केयूर पहने पर पुरुष को देखता है तब पत्नी को दुराचारिणी समझकर घर से निकाल देता है। अगले दिन उसे गिरवी की चिट्ठी मिलती है तब उसे पश्चाताप होता है। उसका भ्रम दूर हो जाता है और वह हंसी खुशी पत्नी को लाकर आनन्दमय जीवन बिताने लगता है।

नाट्यकोश-परिशिष्ट

(नाट्यशास्त्रीयतत्त्व जिनका उपयोग नाट्यकृतियों
के अध्ययन के लिये उपयोगी है)

देवानामिदमामनन्ति मुनयः कान्तं कृतुं चाक्षुषम्।
रुद्रेणेदमुमाकृतव्यतिकरे स्वाङ्गे विभक्तं द्विधा॥
त्रैलोक्योद्भवमत्र लोकचरितं नानारसं दृश्यते।
नाट्यं भिन्नरुचेर्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधनम्॥

विषय-सूची

नाट्य-कोश-परिशिष्ट

नाट्य-शास्त्र के उपयोगी तत्त्व

लक्षण सर्वदा लक्ष्यानुगामी होता है। पहले बच्चा पैदा होता है तब उसका नामकरण किया जाता है और उसके भी बाद उसके व्यक्तित्व का निखार होता है। जब उसका व्यक्तित्व प्रभावशाली बनकर सर्वातिशायी बन जाता है तब उसका नियन्त्रण माना जाने लगता है और उसका निर्देश क्रियाकलाप को गति देने वाला बन जाता है। शास्त्रीय परम्परा की भी कुछ ऐसी ही कहानी है। पहले कोई तत्त्व सामने आता है। तब लक्षण बनाये जाते हैं, नाम करण होता है; फिर विशेषताओं का अभिख्यान किया जाता है; उनसे शास्त्र तैयार होता है जिसका परवर्ती रचनाओं पर प्रभाव पड़ता है और चाहे अनचाहे शास्त्र का नियन्त्रण माना ही जाता है।

भारतीय शास्त्रों की एक और परम्परा है– लक्ष्य के आधार पर उनकी अभिख्या करने वाली और उनकी विशेषतायें बतलाने वाली छोटी-छोटी रचनायें सामने आती रहती हैं और लक्ष्य संकलित होता रहता है। फिर एक महान व्यक्तित्व सामने आता है जो उन प्राग्वर्ती सभी रचनाओं का पर्यवेक्षण कर किसी महान शास्त्रीय ग्रन्थ को जन्म देता है। वह ग्रन्थ इतना महान होता है कि उसका नियन्त्रण सभी रचनाकार नतमस्तक होकर स्वीकार कर लेते हैं और उस दिशा का उन्मीलन करने वाले छोटे छोटे पुराने ग्रन्थ लुप्त हो जाते हैं। आयुर्वेद में चरक, व्याकरण में पाणिनि की अष्टाध्यायी, अर्थशास्त्र में कौटिल्य का अर्थशास्त्र इसी प्रकार की रचनायें हैं।

काव्यशास्त्र की भी ऐसी ही कथा है। वैदिक काल से ही संहिताओं से ही कुछ ऐसा काव्य सामने आ रहा था जो प्रतीत हो रहा था मानों अभिनय के लिये लिखा गया हो। बाद में उसकी अभिनयरूपता की व्याख्या उत्तरवर्ती वैदिक साहित्य में ही कर दी गई। उदाहरण के लिये पुरूरवा-उर्वशी सूक्त को लीजिये– सूक्त में केवल संवाद दिया हुआ है; उस संवाद की पृष्ठभूमि और कथानक का विश्लेषण शतपथ ब्राह्मण में किया गया। सोमविक्रय इत्यादि के कतिपय लघुरूपक भी बना लिये गये। बहुत बड़े यज्ञों में जहां एक ओर यज्ञविधि का सम्पादन किया जाता था वहां दूसरी ओर उपस्थित जनता के मनोरञ्जन के लिये या तो विभिन्न पात्रों का रूप धारण कर दो व्यक्ति आते थे और वैदिक संवाद बोलते थे जिसमें कभी कभी हाथ इत्यादि अंगों के अभिनय भी शामिल रहते थे या लघु नाटकों का प्रदर्शन किया जाता था। इस प्रकार लक्ष्य पूर्ण रूप से विकसित

हो रहा था।

स्वभावतः कुछ लोगों के विचार में आया कि इन कविताओं और इन अभिनयों में वे ही शब्द आते हैं जो हम रोज बोलते हैं और वे ही बातें और व्यवहार आते हैं जिनका अभ्यास हम रोज करते हैं फिर इनमें वह क्या तत्त्व है कि इनके देखने सुनने में हमें आनन्द आ जाता है। इसी विचार धारा ने लक्षणों को जन्म दिया। फिर वे विचारक प्रस्तोताओं को सुझाव भी देने लगे और उनकी विवेकशीलता की धाक और उनके प्रति बड़प्पन भी धारणा ने प्रस्तोताओं में उनके नियन्त्रणों को मानते हुये रचनायें करने की प्रवृत्ति उत्पन्न कर दी। जिस प्रकार मानसून आने पर बादलों के छोटे छोटे टुकड़े इधर उधर से उठकर एक दिशा में चल देते हैं और उनका घटाटोप आकाश को आक्रान्त कर लेता है। शास्त्रों के विकास का यही क्रम है और इसी क्रम के अनुसार नाट्यशास्त्र के क्षेत्र में भरत की कृति का उद्‌भव हुआ। यह काव्यशास्त्र और नाट्यशास्त्र की पहली कृति मानी जाती है; किन्तु स्वयं इस रचना में प्राचीनों के अनेक उद्धरण दिये गये हैं और उनका उल्लेख किया गया है; जिससे स्पष्ट प्रमाणित होता है कि भरत के पहले इस शास्त्र की अनेक परम्परायें पनपीं थीं। इस महाग्रन्थ को देखने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि इस कृति की पृष्ठभूमि में लक्ष्य ग्रन्थों की बहुत बड़ी संख्या विद्यमान रही होगी जो काल-कवलित हो गई। अब उसका कोई अस्तित्व दृष्टिगत नहीं होता। इस महाग्रन्थ में रचना की जिस सामान्य पद्धति का परिचय दिया गया है– लक्ष्यग्रन्थों की महान साहित्यराशि के अभाव में वह सम्भव नहीं है।

कहने को तो यह नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थ है; किन्तु नाट्य शास्त्र से सम्बन्ध रखने वाले अनेक तत्व इतने सांगोपाङ्ग रूप में इसमें सन्निविष्ट हो गये हैं कि यह उन सभी तत्त्वों का एक विश्वकोश (इन्साइक्लोपोडिया) जैसा बन गया है। इसमें इतिहास है, भूगोल है, समाजशास्त्र है, आचार-विचार, रहन-सहन पहिरावा-उढावा, शृङ्गारविधि, आभूषण, नृत्यसंगीत वाद्य इत्यादि कलायें हैं, नृतत्त्वविज्ञान, स्त्री पुरुषों की सामान्य एवं प्रादेशिक विशेषतायें हैं, कामशास्त्र है, वैशिकशास्त्र है, शब्दशास्त्र है, रसशास्त्र है, वास्तुशास्त्र है, साहित्यशास्त्र है, मनोविज्ञानशास्त्र है, वास्तुविधि है, अभिनय की प्रायोगिक प्रक्रिया के अन्तर्गत विभिन्न अंगों से भावाभिव्यक्ति का विवेचन है, धार्मिक पूजा पद्धति है, धार्मिक रूढियां हैं। आशय यह है कि ज्ञान की नाट्योपयोगी कोई ऐसी शाखा नहीं है जिसका इसमें समावेश न किया गया हो।

इस पूरे ग्रन्थ में नाट्यशास्त्रीय तत्त्व विखरे पड़े हैं। यह ग्रन्थ व्यवस्थित नहीं है। अतः शुद्ध रूप में नाट्यशास्त्र के क्षेत्र में आने वाले विषयों के चयन में एक कठिनाई का अनुभव होता है। १० वीं शताब्दी के आसपास धनञ्जय ने दशरूपक की रचना कर नाट्यशास्त्रीय तत्त्वों का संकलन कर दिया और उस पर उनके भाई धनिक ने वृत्ति लिखकर उन जिज्ञासुओं के लिये मार्ग प्रशस्त कर दिया जो संगीतादि दूसरे शास्त्रों को वचाते हुये

शुद्ध नाट्यशास्त्रीय तत्त्वों का परिज्ञान करना चाहते थे। बाद में जो भी नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थ लिखे गये या काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में नाट्यतत्त्वों का समावेश किया गया उनमें दशरूपक की अपनाई पद्धति का ही प्रमुख रूप से पदानुसरण किया गया। जो नाट्य शास्त्रीय मान्यतायें पुरानी पड़ गई हैं उनका भी ऐतिहासिक दृष्टि से महत्व है। अतः यहां पर अध्ययन की सुविधा के लिये नाट्यतत्वों का संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है।

पूर्वरंग

आवश्यकता और सुविधा के अनुसार इसमें परिवर्तन होते रहे हैं। यह नाटक प्रारम्भ होने के पहले की कार्यविधि है और इसका मुख्य एवं प्रकट उद्देश्य है देवताओं को प्रसन्न करना जिससे नाट्यक्रिया सफलता पूर्वक सम्पन्न हो सके। नाट्य एक लोकोत्तर कला है– 'ऐसी कोई विद्या नहीं, ऐसी कोई कला नहीं; ऐसा कोई शास्त्र नहीं तथा ऐसा कोई व्यवहार नहीं जिसका उपयोग नाट्य में न हो।' ऐसी कला का सफलता पूर्वक प्रदर्शन कोई हंसी खेल नहीं। इसके लिये साधना और मनोयोग की आवश्यकता होती है। भगवान की कृपा के बिना कोई भी आरम्भ सफलता तक नहीं पहुंच सकता। इसीलिये प्रत्येक अनुष्ठान के पहले भगवदाराधन आवश्यक होता है; वही सफलता तक ले जाता है। उस अनुकम्पा को प्राप्त करने के लिये पूर्वरंग के विधान का विवेचन किया गया है।

पूर्वरंग का दूसरा उद्देश्य है अभिनेताओं की तैयारी। नेपथ्य विधान से लेकर रंगमञ्च की साजसज्जा तक ऐसे अनेक स्तर होते हैं जिन्हें सूत्रधार या अभिनेता को पार करना पड़ता है। उसे अभिनेताओं को सजाना पड़ता है, उनका स्वरूप भरना पड़ता है। सामग्री संकलित कर उसे यथास्थान लगाना पड़ता है, थोड़ा बहुत प्रायोगिक अभ्यास भी करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त और बहुत सी तैयारी करनी पड़ती है जिससे अभिनय के मध्य में दर्शकों का रसास्वादन व्याहत न हो जाय। इस प्रकार मुख्य अभिनय प्रारम्भ होने के पहले अभिनेताओं को तैयारी में जुट जाना पड़ता है। कभी कभी इस तैयारी में इतना समय लग जाता है कि नाटक ठीक समय पर प्रारम्भ ही नहीं हो पाता। एक ओर यह तैयारी चलती है दूसरी ओर दर्शक समय से पहले आने लगते हैं जिससे वे अपना ठीक स्थान ले सकें। भीड़ आ जाती है तब प्रबन्धकों के सामने उन्हें नियन्त्रित करने की समस्या भी उत्पन्न हो जाती है जिससे लोग ठीक रूप से बैठकर समय की प्रतीक्षा कर सकें। खाली मस्तिष्क से पूर्ण शान्त रहना असम्भव है। अतः उपस्थित जनता के सामने कोई प्रोग्राम प्रस्तुत करना अनिवार्य हो जाता है। इस प्रकार अभिनय की सफलता के लिये देवपूजन और उपस्थित जनता को आवद्ध रखने के लिये कोई प्रोग्राम प्रस्तुत करना ये दो समस्यायें व्यवस्थापकों के सामने थीं। इन दोनों की पूर्ति के लिये मुनि ने पूर्वरंग की व्यवस्था की। मुनि ने इन दोनों उद्देश्यों का स्वयं प्रकथन किया है। देवाराधन के विषय

में–

देवस्तुष्यति यो येन यस्य यन्मनसः प्रियम्।
तत्तथा पूर्वरंगे तु मया प्रोक्तं द्विजोत्तमाः॥
सर्वदैवत पूजार्हं सर्वदैवतपूजनम्
धर्म्यं यशस्यमायुष्यं पूर्वरंगप्रवर्तनम्॥ V. ५६,५७

[हे उत्तम ब्राह्मणों ! मैंने पूर्वरंग में वह सब बतलाया है जिससे जो देवता प्रसन्न होता है। और जिस देवता के मन में जो प्रिय वस्तु होती है। यह सब देवताओं की पूजा के योग्य है, इसमें सभी देवों की पूजा की जाती है; यह धर्म, यश और आयु को बढ़ाने वाला होता है।]

जनमनोरञ्जन के विषय में–

दैत्यदानवतुष्ट्यर्थं सर्वेषां च दिवौकसाम्।
निर्गीतानि सगीतानि पूर्वरंगकृतानि तु॥ V. ५८

[पूर्व रंग के कार्य चाहे गीत युक्त हों या विना गीत के हों इनका प्रयोजन दैत्यों, दानवों की तुष्टि है तथा सभी देवताओं की तुष्टि भी है।] नाटक की उत्पत्ति स्वर्ग लोक में हुई थी; अतः दर्शक दैत्य, दानव और देवता ही थे, उन्हें सन्तोष देने के लिये पूर्वरंग का प्रवर्तन किया गया था।

पूर्वरंग का स्वरूप

यन्नाट्यवस्तुनः पूर्वं रंगविघ्नोपशान्तये।
कुशीलवाः प्रकुर्वन्ति पूर्वरंगः सउच्यते॥

अभिनेय वस्तु से पहले रंग विघ्न की शान्ति के लिये अभिनेता लोग जिस नाट्यविधा का सम्पादन करते हैं उसे, पूर्व रंग की संज्ञा दी जाती है।

पूर्वरंग वस्तुतः छोटे छोटे लगभग २० नृत्यगीतों का समूह होता है, जिसमें देवाराधन की प्रधानता होती है और जिसका मन्तव्य होता है रंगशालानुरंजन। इसके अतिरिक्त इसका एक और महत्वपूर्ण प्रयोजन होता है– एक छोटा मोटा रिहर्सल। प्रायः देखा जाता है कि नाटक के प्रस्तुतीकरण में कभी कभी कई प्रकार के विघ्न उपस्थित हो जाते हैं। कभी साजों या दूसरी सामग्रियों की कमी पड़ जाती है, कभी संगीत में स्वर लहरी उच्छिन्न हो जाती है, कभी नर्तकियों का पदन्यास विशृङ्खलित हो जाता है। प्रधान अभिनय के प्रारम्भ के पहले पूर्वरंग की योजना कर लेना इस दिशा में लाभकारी होता है।

पूर्वरंग की भरत-सम्मत प्रक्रिया

भरत ने पूर्वरंग की प्रक्रिया पर नाट्यशास्त्र के ५वें अध्याय में प्रकाश डाला है। भरत के अनुसार इसको दो खण्डों में विभाजित किया जाता है– १ विधियां पर्दा उठने

के पहले पूरी की जाती हैं और १० विधियों का सम्पादन पर्दा उठने के बाद किया जाता है। सबसे पहले ढोल और तुरही बजाकर आरम्भ की सूचना दी जाती है। फिर दरी विछा दी जाती है और उस पर वाद्य यन्त्रों की स्थापना की जाती है। फिर गायक और वादकवृन्द अपने अपने स्थान ग्रहण करते हैं। अपने अपने साजों को लेकर सुर भरते हैं और उनकी संगति को ठीक रूप में लाने की चेष्टा करते हैं। साज समान की संगति बिठाई जाती है और वाद्य विशेषज्ञ अपने अपने साजों को ठीक करने का प्रयत्न करते हैं। जब सब वाद्य यन्त्र ठीक हो जाते हैं और उनका ठीक काम करने का विश्वास हो जाता है तब गायक लोग अपने अपने संगीत का अभ्यास करते हैं और वाद्य यन्त्र के साथ अपने ताल सुर मिलने की चेष्टा करते हैं; फिर अलग अलग वृत्तियों का अभ्यास करते हैं। वीणा को भी ताल स्वर से संयुक्त किया जाता है और इस रूप में लाया जाता है कि वाद्ययन्त्रों से उसकी संगति बैठ सके। गायक लोग अपने हाथों को विभिन्न संगीत विधियों में स्वर और ताल के अनुसार सञ्चालित करते हैं। इनका भी अभ्यास नेपथ्य के अन्दर ही किया जाता है। इसके बाद एक साथ वाद्य यन्त्र इस रूप से बजाये जाते हैं जिनसे एक समा सी बंध जाती है। इसके बाद एक एक कर फिर एक वार देख लिया जाता है। इस प्रकार रंगमञ्च पर आकर देवपूजन की तैयारी पूरी हो चुकती है।

इस समस्त तैयारी में विभिन्न स्तरों पर जो कार्य किये जाते हैं उनके नामकरण भी मुनि ने कर दिये हैं– सर्वप्रथम घोषणा के बाद वाद्य यन्त्रों का अपने स्थान पर रखना **प्रत्याहार** कहा जाता है। वादकवृन्द का अपना अपना स्थान ग्रहण करना **अवतरण** कहलाता है। फिर जब गायक कण्ठगति का अभ्यास करते हैं तब वह स्थिति **आरम्भ** कहलाती है। कण्ठ गति के अभ्यास के बाद जब वाद्य यन्त्रों के स्वरतालानुकूल सुव्यवस्थित करने का अभ्यास किया जाता है तब वह आश्रवणा विधि कहलाती है। विभिन्न शैलियों और विधियों में संगीत यन्त्रों का अभ्यास करना वक्त्रपाणि कहा जाता है। वीणा यन्त्र की डोरी को ठीक कर उसे मुखर बनाने को **परिघट्टना** की संज्ञा दी जाती है। **संघोटना** अगली स्थिति है जिसमें हाथों के संकेत का अभ्यास किया जाता है। गायक लोग वाद्य यन्त्राधिकारियों को अपने हाथ से संकेत देते चलते हैं। वे हाथ कण्ठ-स्वर के अनुकूल चलते हैं और वाद्य यन्त्रों को अनुसरण करने की प्रेरणा देते हैं। फिर जब सभी वाद्य यन्त्र एक साथ मिलकर समा सी बांध देते है उसे **मार्गासारित** कहा जाता है और कलाओं का पृथक् पृथक् छोटे बड़े और मझोले गीतों में अभ्यास करना **आसारित** शब्द से अभिहित किया जाता है। ये गीत अधिकांशतः देवपूजन विषयक होते हैं। ये ९ प्रयोग नेपथ्य के अन्दर रंगमञ्च पर देवपूजन के लिये सूत्रधार के प्रवेश के पहले किये जाते हैं। भरत ने संगीत प्रकरण में इनका पर्याप्त विस्तार से परिचय दिया है।

कुछ लोगों के मत में इनका विस्तार उपयोगी नहीं है किन्तु जैसा कि बतलाया जा चुका है इसके दो महत्वपूर्ण प्रयोजन हैं नृत्य और संगीत के लिये कलाविद् तैयार

हो जाते हैं और वाद्य यन्त्रों की जांच हो जाती है जिससे मुख्य अभिनय में उनसे निराशा नहीं होती। इस बात का विश्वास हो जाता है कि गायक, वादक और नर्तक रंगमञ्च पर पूरी निपुणता से अपनी कला का प्रदर्शन करेंगे। दूसरी बात यह है कि कार्य व्यस्तता के कारण सभी दर्शक एक साथ तो आते नहीं; जब तक रंगशाला भर न जाय तब तक मुख्य नाटक जमता नहीं। यदि अभिनय पहले ही प्रारम्भ कर दिया जाय तो उत्तरवर्ती आगन्तुक प्रारम्भिक भाग का आस्वादन करने से वञ्चित ही रह जायें। अत: समय भरना भी इस क्रिया का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य है। जब आसारित क्रिया में छोटे बड़े गीत गाये जाते हैं तब दर्शकों का मनोरञ्जन भी अधिक होता है और तब रंग स्थल पर उपस्थिति भी काफी हो जाती है। रंगमञ्च पर दिखलाये जाने वाले कार्यक्रम के लिये वातावरण तैयार करना इसका एक महत्वपूर्ण प्रयोजन है।

इसके बाद जब पर्दा उठा दिया जाता है तब पूर्वरंग का अगला कार्यक्रम प्रारम्भ कर दिया जाता है। अब रंगमञ्च पर मद्रकराग प्रारम्भ हो जाता है या वर्धमानक (नृत्य संवलित) राग का प्रदर्शन किया जाता है। अब सूत्रधार प्रवेश करता है और जर्जर को उठाकर विघ्नविनाश की क्रिया प्रारम्भ कर देता है। सूत्रधार के साथ दो अनुचर भी चलते हैं। उनमें एक दास के हाथ में ध्वज होता है और दूसरे के हाथ में पवित्र जलघट रहता है। सूत्रधार की वेषभूषा श्वेत होती है; वह श्वेत वस्त्र पहने रहता है और श्वेत पुष्पों की माला विखेरता चलता है। वह स्वर्ण घट से पवित्र होकर लोकपालों की बन्दना और स्तुति करता है; जर्जर की पूजा करता है; पुष्प चढ़ाता है। जर्जर की पूजा के लिये वह जिन अक्षरों का उच्चारण करता है वे होते तो निरर्थक हैं किन्तु जर्जर के लिये प्रभावशाली माने जाते हैं। जर्जर की पूजा के बाद सार्थक गीत और अभिनय प्रारम्भ होता है जो शृङ्गाररसप्रवण कोमल भी होता है और रौद्ररसानुकूल कठोर भी होता है। अब सूत्रधार अपने साथियों पारिपार्श्विक इत्यादि से वार्तालाप करता है। फिर सूत्रधार सफलता के लिये प्रार्थना करता है और नाटक में अभिनीत होने वाली वस्तु का तर्कपद्धति पर निर्देश करता है। वह रंगमञ्च पर आकर अपनी कला से दर्शकमण्डली को अनुरञ्जित करता है। यवनिका के अन्तर्गत वहिर्गीतों के समान और विधानों के भी नाम करण किये गये हैं। अभिनय का प्रारम्भ आशीर्वाद से होता है। यह पहला रंगमंचीय कार्य है अत: इसे **उत्थापना** कहा जाता है। सूत्रधार समस्त रंगमञ्च पर घूम फिर कर लोकपालों की स्तुति करता है अत: उसे **परिवर्तन** (घूमना) की संज्ञा दी जाती है। अब **नान्दी** का अवसर आता है जिसमें देवता, ब्राह्मण, राजा इत्यादि को आशीर्वाद दिया जाता है। इसमें आशीर्वाद के साथ स्तुति भी रहती है। जर्जर की पूजा के अर्थहीन शब्दों और अक्षरों का उच्चारण **शुष्कावकृष्टा** कहा जाता है। वास्तविक अभिनय इसके बाद ही प्रारम्भ होता है अत: उसे **रंगद्वार** की संज्ञा दी जाती है। अंगिक और वाचिक सम्मिलित इस अभिनय में शृङ्गाररस परक संचरण **चारी** कहा जाता है। यदि यह सञ्चरण रौद्र परक होता है तब उसे **महाचारी** की संज्ञा प्राप्त

होती है। त्रिगत में सूत्रधार, पारिपार्श्विक और विदूषक मिलकर बात करते हैं। सूत्रधार द्वारा तर्क वितर्क के साथ वस्तुनिर्देश करना **प्ररोचना** कहा जाता है।

दो रूपों में विभाजन का आधार

भरत ने उस परिस्थिति पर भी प्रकाश डाला है जिसके कारण पूर्वरंग को दो भागों में विभाजित करने की आवश्यकता पड़ी। नारद के तत्त्वावधान में संगीत समारोहों का आयोजन किया जाता था जिसमें नृत्य, गीत, वाद्य इत्यादि सभी प्रकार के मनोरंजनों का समावेश होता था और दर्शकों में दैत्य, दानव, देव, सभी उपस्थित होते थे। आयोजन दो प्रकार का चलता था– कुछ में गीत विल्कुल नहीं होते थे, केवल वाद्य और नृत्य का आनन्द लिया जाता था; कुछ कार्यक्रमों में केवल सांगोपाङ्ग संगीत चलता था। संगीत में अधिकतर देवताओं की स्तुति और उनकी विजय गाथाओं का उल्लेख होता था। दैत्यों, दानवों और राक्षसों को संगीत से द्वेष था, वे देवताओं की प्रशंसा से चिढ़ते थे। अब उन लोगों ने मिलकर एक योजना बनाई– जब निर्गीत कार्यक्रम उनके सामने आता था तब वे उसमें बहुत अधिक रुचि लेते थे और बार बार उसके सुनने के लिये मांग (फर्माइश) पेश कर देते थे और उसी में इतना समय निकाल देते थे कि संगीत सुनने का अवसर ही बहुत कम रह जाता था। उनकी यह प्रवृत्ति देवताओं को अच्छी नहीं लगी और देवताओं नें मांग रक्खी कि इस कार्यक्रम से निर्गीत को विल्कुल निकाल दिया जाय। किन्तु नारद ने इसे स्वीकार नहीं किया क्योंकि वीणा वादन इत्यादि अनेक कार्यक्रम बहुत ही महत्वपूर्ण थे उनका सर्वथा परित्याग आयोजन की बहुत बड़ी हानि थी। अत: नारद इत्यादि ने तब वह व्यवस्था की कि निर्गीत कार्यक्रम परदा उठने के पहले रख दिया गया और देवपूजा का कार्यक्रम परदा उठने के बाद रक्खा गया। साथ ही संगीत कार्यक्रम को नृत्यवाद्य इत्यादि निर्गीत कार्यक्रम से जोड़ दिया गया जिससे दानव और देव दोनों की मांग पूरी हो गई। निर्गीत कार्यक्रम के पृथक् और सम्मिलित दोनों रूपों में होने से दानवों को अपना मन चाहा कार्यक्रम मिल गया और देवता इसीलिये प्रसन्न हो गये कि उनकी प्रशंसा में किया जाने वाला कार्यक्रम निर्विघ्न चलने लगा।

पूर्वरंग की यह विधि उपयोगी थी– इससे देवपूजन भी हो जाता था; गायकों, नर्तकों, नर्तकियों और वाद्य यन्त्रों का एक हल्का पूरा पूर्वाभ्यास (रिहर्सल) भी हो जाता था और दर्शकों को एक प्रोग्राम भी मिल जाता था तथा उनको उलझाये रखने की समस्या भी हल हो जाती थी। किन्तु इसमें एक बुराई थी– यह कार्यक्रम बहुत लम्बा था और मुख्य अभिनय बड़ी देर से शुरु होता था। दर्शक थक जाते थे; उनकी मनोरंजन की आवश्यकता इस प्रोग्राम से पूरी हो जाती थी। वे मुख्य अभिनय का आनन्द नहीं ले पाते थे। जब यह शिकायत भरत के सामने रक्खी गई तब भरत ने इसके संक्षिप्तीकरण का निर्देश दिया–

कार्योनातिप्रसङ्गोत्र गीतनृत्तविधिं प्रति।

गीते वाद्ये च नृत्ये च प्रवृत्तेतिप्रसङ्गतः॥ V. १५३

खेदो भवेत्प्रयोक्तृणां प्रेक्षकाणां तथैवच।

खिन्नानां रस भावेषु स्पष्टता नोपजायते॥ V. १५४

ततः शेषप्रयोगस्तु न रागजनको भवेत्॥ V. १५५

[इस पूर्वरंग में नाचगान की दिशा में अत्यन्त विस्तार नहीं कर देना चाहिये। यदि संगीत, नृत्य, वाद्य इत्यादि की अत्यन्त अधिकता की जाती है तो प्रयोक्ता लोग तो थक ही जाते हैं दर्शक भी थक जाते हैं जिससे थकावट के कारण खेद का अनुभव होने लगता है। जब लोग खिन्न हो जाते हैं तब रस और भाव को स्पष्ट रूप में हृदयंगमन नहीं कर पाते। (प्रयोक्ता ठीक रूप में प्रयोग नहीं कर पाते और दर्शक उसे ठीक रूप से समझ नहीं पाते और तब उत्तरवर्ती प्रयोग लोगों को आनन्द देने वाला नहीं होता।]

भरत ने संक्षिप्तीकरण का निर्देश दिया अवश्य किन्तु बात बनी नहीं। लोगों को मुख्य नाटक देखने की उत्कण्ढा वलवती थी और उन्हें बीच का यह पूर्वरंग विधान व्यवधान जैसा लगता था। अतः भरत ने ही इसमें और संकोच किया–

प्रत्याहारादिकान्यङ्गान्यस्य भूयांसि यद्यपि।

तथाप्यवश्यं कर्तव्या नान्दी विघ्नोपशान्तये॥

[यद्यपि इस पूर्व रंग के प्रत्याहार इत्यादि बहुत से अंग हैं (और स्वयं में सभी आवश्यक भी हैं; फिर भी यदि उनसे मुख्य अभिनय में व्यवधान मालूम पड़े तो उसे छोड़ देना चाहिए) फिर भी विघ्न की शान्ति के लिये नान्दी का प्रयोग अवश्य कर लेना चाहिये।]

आशय यह है कि ढोल या तुरही बजाकर उद्घाटन की सूचना देने के बाद संक्षिप्त सा नान्दी का प्रयोग कर लेना चाहिये जिसमें देवता इत्यादि की स्तुति के साथ आशीर्वाद देने की प्रक्रिया पूरी कर लेनी चाहिये। यह क्रिया विघ्नविघात के लिये आवश्यक है।

इस प्रकार विस्तृत पूर्वरंग विधि के १९ अंगों के स्थान पर केवल एक छोटा सा नान्दी प्रयोग शेष रहा। अव व्यवस्था यह बन गई कि पर्दा के उठने के पहले अन्दर से नान्दी की क्रिया समाप्त कर ली जाती थी। तब पर्दा उठता था और तब सूत्रधार प्रविष्ट होकर देवस्तुति और आशीर्वाद परक वाक्य बोलकर ब्रह्मा के स्थान पर पुष्प मोक्षण करता था। इसका आशय यह है कि दो वार नान्दी पाठ होता था। एक वार परदा उठने के पहले और दूसरी वार पर्दा उठने के बाद रंगमञ्च पर आकर जो देवस्तुति और आशीर्वाद परक वाक्य बोला जाता था वह भी एक प्रकार का नान्दी पाठ ही था। कालिदास के पूर्ववर्ती नाटककारों में अश्वघोष, भास और शूद्रक का नाम लिया जा सकता है। अश्वघोष के पूरे नाटक प्राप्त नहीं होते। शूद्रक की पूर्ववर्तिता संन्दिग्ध है क्योंकि कालिदास ने

अपने पूर्ववर्तियों में शूद्रक का नाम नहीं लिया है। इस प्रकार केवल भास ही प्राचीन नाटककारों में उल्लेख्य रह जाते हैं जिनके पूरे नाटकों का पता है। इनके नाटकों में 'नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः' ये शब्द आते हैं। इसके सिद्ध होता है कि इन नाटकों के प्रारम्भ होने के पहले नान्दीपाठ समाप्त हो जाता था तब सूत्रधार रंगमञ्च पर आता था। सूत्रधार पुनः आशीर्वादात्मक वाक्य बोलता था जो वस्तुतः दूसरा नान्दी पाठ ही कहा जा सकता था। पूर्वरंग के नान्दीपाठ की यही स्थिति प्राचीन नाटकों में थी। शूद्रक ने इस प्राचीन परिपाटी को न अपनाकर परवर्ती नवीन शैली को अपनाया है।

उक्त पद्धति से ज्ञात होता है बहुत समय तक नहीं चल सकी। यह दोहरा प्रयास व्यर्थ था; अतः आगे चलकर पहले नान्दीपाठ का परित्याग कर दिया गया और प्रारम्भिक मङ्गलाचरण के पद्य को ही नान्दीपाठ मान लिया गया। यह बात इस तथ्य से प्रामाणित होती है कि कालिदास इत्यादि के नाटकों में प्रारम्भिक पद्य से पहले नहीं बाद में लिखा होता है– 'नान्द्यते ततः प्रविशति सूत्रधारः'। इसका अर्थ यही है कि पहले नान्दी पाठ नहीं हुआ था। नाटक का मङ्गलाचरण का पद्य ही नान्दी पाठ है।

नान्दीपाठ की यह प्रक्रिया अब तक चलती रही। यद्यपि उसे नान्दीपाठ का नाम सम्भवतः बहुत कम दिया जाता है किन्तु कार्य वही किया जाता है कि उसे नान्दीपाठ की संज्ञा दी जा सके। वैसे पूर्वरंग और नान्दीपाठ का पुराना रूप तो समाप्त ही कहा जायेगा; किन्तु उसका ध्वंसावशेष देवपूजन और आशीर्वाद के रूप में अब तक चलता रहा। कतिपय लोकनाटकों और नौटंकियों में वास्तविक नाटक प्रारम्भ होने के पहले पूजन किया जाता है। उसमें धूप, दीप, नैवेद्य इत्यादि आधुनिक पूजा पद्धति अपनाई जाती है और प्रसाद वांटा जाता है। कभी कभी कई अभिनेता मिलकर भारतमाता या सरस्वती की मूर्ति स्थापित कर स्तुति परक एक समूह गीत गाते हैं और पुष्पमोक्षण करते हैं। यह विधि शुभ फलदायक एवं नाटक के सफल अभिनय के लिये उपयोगी मानी जाती है। इससे वातावरण बनता है तथा दर्शकों में यह अनुभूति जागृत होती है कि नाटक का अभिनय एक पुनीत कार्य है और अभिनेता में आत्मवल जागृत होता है। बंगाल की धार्मिक यात्राओं में पूर्वरंग की छाप कुछ अधिक मात्रा में दृष्टिगत होती है।

पूर्वरंग विधि मानव की मनोगत धार्मिक भावना से उद्भूत होने के कारण स्वाभाविक है फिर चाहे वह विस्तार में हो या संक्षेप में। मानव स्वभावतः अपने क्रियाकलाप की समस्त सफलता लोकातीन परमशक्ति के प्रमाद के रूप में स्वीकार करता है और प्रत्येक असफलता या प्रत्येक सन्देह में उसी परमशक्ति का आश्रय लेकर आश्वस्त एवं निश्चिन्त हो जाता है। वह प्रत्येक असफलता का कारण उस शक्ति का प्रकोप ही मानता है। आज बुद्धिवादी युग है और पूर्वरंग की पुरानी विधि समाप्त हो चुकी है; फिर भी प्रत्येक कृति एवं कृतिकार में उस भावना की आस्था के दर्शन होते हैं। लोकोत्तर शक्ति की कृपा को उपार्जित करने के लिये मानव सर्वदा प्रयत्न शील रहता है।

आज के वैज्ञानिक युग ने जो लम्बे डग मरे हैं उनके प्रभाव से अभिनय कला ने भी नया रूप धारण कर लिया है। नाटकों का स्थान सिनेमेटोग्राफी ने लिया है। आज मानव के चलते फिरते चित्र हमारा मनोरंजन करने के लिये सन्नद्ध रहते हैं। बनी बनाई पूरी पिक्चर तैयार रहती है और घड़ी पल में ही चालू की जा सकती है। उसके लिये न संविधानक तैयार करने की आवश्यकता होती है, न स्वरूप भरने पड़ते हैं अतः पूर्वरंग के किसी रूप का अवसर ही नहीं रह गया है। जनता को अटकाये रहने की समस्या केवल कुछ मिनटों की पड़ती है जब एक शो के समाप्त हो जाने के बाद दूसरे शो के प्रारम्भ होने में कुछ मिनटों का व्यवधान पड़ता है। उसको भरने के लिये या तो पुराने गीतों की रील चढ़ा दी जाती है या विज्ञापन के दृश्य दिखला दिये जाते हैं जिससे दर्शक का मन लगा रहता है। फिर भी धार्मिक भावना का सर्वथा अपलाप नहीं होता। किसी भी फिल्म कम्पनी की स्थापना पर जो मुहूर्त किया जाता है वह इसी धार्मिक भावना के अन्तर्गत आता है। फिल्म कम्पनी ही नहीं विशिष्ट पिक्चर के प्रारम्भ करने के अवसर पर भी देवपूजन किया जाता है। इसके साथ ही प्रत्येक शो दिखलाने के अवसर पर भी किसी न किसी रूप में इसका उपादान दृष्टिगत हो जाता है। अलग अलग कम्पनियों ने इसके लिये अपनी अपनी व्यवस्थायें कर रक्खी हैं। उदाहरण के लिये बी.आर. चोपड़ा की फिल्मों में समुद्र से उठता हुआ ग्लोव दिखलाया जाता है और गीता का एक श्लोक वोला जाता है। जे.ओम. प्रकाश की पिक्चर्स में शङ्कर जी की मूर्ति दिखलाकर 'त्वमेवमाता च पिता त्वमेव' इत्यादि श्लोक गाया जाता है। जैमिनी की पिक्चर्स में दो बच्चे तुरही बजाते दिखलाये जाते हैं। मद्रास की पिक्चर्स में नटराज की मूर्ति सामने लाई जाती है। शान्ताराम की पिक्चर्स में कमल पर खड़ी हुई एक स्त्री दिखलाई जाती है। राजकपूर की फिल्मों में पृथ्वीराज कपूर पूजा करते हुये दिखलाये जाते हैं। कल्पेश्वर फिल्म में शंकर जी के दर्शन कराये जाते हैं और राजश्री प्रोडक्शन में चित्र का प्रारम्भ सरस्वती के दर्शन से होता है। कई फिल्म कम्पनियां अपनी फिल्में पूजा विधि से प्रारम्भ करती हैं। इस प्रकार पूर्वरंग विधि यद्यपि अपने पारिभाषिक रूप में समाप्त हो चुकी है; किन्तु यह भावना अब भी किसी रूप में निभाई जाती है।

सूत्रधार

मञ्च संचालन का सर्वोत्कृष्ट अधिष्ठाता सूत्रधार ही होता है; नाट्य सूत्र के सञ्चालन और व्यवस्थापन का वह सबसे बड़ा अधिकारी होता है। भरत ने उसके असीमित गुणों का उल्लेख किया है। वह सर्वशास्त्र विशारद होता है, देश विदेश का परिज्ञाता, व्यवहार कुशल और प्रयोग विज्ञान का महापण्डित तो होता ही है; गीत, नृत्य, नाट्य अभिनय की पद्धतियों और प्रयोगों की वारीकियों को खूब समझता है। वह नाटक का प्रारम्भ तो करता ही है कभी कभी स्वयं अभिनेता बनकर अभिनय में भाग भी लेता है।

सर्वगुण सम्पन्न होते हुये भी उसके विषय में एक सन्देह भी उत्पन्न हो गया है– वाण ने भास का परिचय देते हुये लिखा है कि भास के नाटक सूत्रधार द्वारा प्रारम्भ किये हुये होते हैं। तो क्या और नाटक सूत्रधार द्वारा प्रारम्भ किये हुये नहीं होते? वाण का ध्यान सम्भवतः भरत की इस स्थापना की ओर था कि पूर्वरंग का पूरा सञ्चालन सूत्रधार ही करता था। वही जर्जर पूजन का भी सर्व प्रमुख प्रतिष्ठापक होता है। फिर जब पूर्वरंग का कार्य समाप्त हो जाता है तब सूत्रधार समस्त कर्मचारी वर्ग के साथ रंगमञ्च से हट जाता है और तब उसी के जैसे गुणों वाला एक दूसरा व्यक्ति आकर नाटक की स्थापना और सञ्चालन करता है। हो सकता है यह व्यवस्था प्राचीन नाटकों में लागू रही हो और ऐसे कतिपय नाटकों का वाण को ज्ञान हो। ऐसा स्वाभाविक भी है। भरत प्रतिपादित पूर्वरंग विधि इतनी विस्तृत है कि कोई भी सञ्चालक श्रान्त होकर विश्राम की आवश्यकता का अनुभव करने लगे। भरत ने नाटकीय व्यवस्था का जितनी गहराई से जितना सांगोपाग विवेचन किया है पृष्ठभूमि में अनेक नाट्यकृतियों के न होने पर वैसा विवेचन सम्भव ही नहीं है। यह दुर्भाग्य की बात है कि वह साहित्य सर्वथा लुप्त हो गया है। अब जो परवर्ती साहित्य उपलब्ध है उसमें कहीं भी स्थापक द्वारा रंग सञ्चालन का उल्लेख नहीं किया गया है। प्रायः सभी उपलब्ध नाटकों में रंगसञ्चालक सूत्रधार ही है; कहीं स्थापक के दर्शन नहीं होते। यह ठीक भी है– जब पूर्व रंग की विधि ही समाप्त हो गई तब नाट्यारम्भ से पहले सूत्रधार के थक जाने का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता और न उसे अपने जैसे गुणवान किसी व्यक्ति को नियुक्त करने की आवश्यकता ही थी। सूत्रधार ही ताजे दिमाग और ताजी क्रियाशक्ति से सभी कार्य सञ्चालित कर सकता था। यही कारण है कि परवर्ती नाटकों में सर्वत्र सूत्रधार ही नाट्यमञ्च का सञ्चालक है। कहीं वह सूत्रधार के रूप में है और कहीं आवश्यकतानुसार कोई दूसरा रूप धारण कर लेता है। उदाहरण के लिये उत्तररामचरित में वह वैदेशिक का रूप धारण कर प्रस्तावना में भाग लेता है। परवर्ती काव्य शास्त्रकारों ने भी सूत्रधार और स्थापक के इस विभेद और पूर्ववर्ती या परवर्ती किसी भी नाटक में स्थापक के अभाव पर ध्यान दिया है। अभिनव गुप्त ने लिखा है– 'सूत्रधार एव स्थापक इति सूत्रधारः पूर्वरंगं प्रयुज्य स्थापकः सन् प्रविशेदिति न भिन्नकर्तृकता।' अर्थात् सूत्रधार ही स्थापक होता है। सूत्रधार पूर्वरंग का प्रयोग कर स्थापक बनकर प्रवेश करे, इसलिये पूर्वरंग और आमुख भिन्न व्यक्तियों द्वारा सम्पादित होते हैं ऐसा नहीं कहा जा सकता। किसी ने इस आशय के पद्य लिखकर भरत के मूल में शामिल कर दिये हैं। विश्वनाथ ने भी लिखा है– 'इदानीं पूर्वरंगस्य सम्यक् प्रयोगाभावादेक एव सूत्रधारः सर्वं प्रयोजयतीति व्यवहारः।' अर्थात् आजकल पूर्वरंग के ठीक प्रयोग की परम्परा न रहने से एकाकी सूत्रधार ही सभी कार्य कर लेता है।

वाणभट्ट ने भास के विषय में जो यह कहा है कि भास के नाटकों का प्रारम्भ सूत्रधार द्वारा किया जाता है सम्भवतः इसका आशय यही है कि अन्य नाटकों में सूत्रधार

के साथ दूसरे पात्र भी संवाद करते हुये नाटक का प्रारम्भ करते हैं जबकि भास के नाटकों में अकेला सूत्रधार ही अभिनय को सञ्चालित कर देता है। परवर्ती नाटकों में सूत्रधार दूसरे सहयोगियों के साथ बातचीत करते हुये कवि, काव्य और कभी कभी नाट्य विषय का भी परिचय देता है जबकि भास के नाटकों में स्थापना के नियमों का पालन नहीं किया जाता– न इसमें कवि का परिचय दिया जाता है, न नाटक का नाम बतलाया जाता है, उसकी सामान्य विधि इस प्रकार होती है– सूत्रधार आता है और मङ्गलाचरण पद्य के बाद कहता है– 'मैं आप लोगों को सूचित करता हूं कि__' (इसी समय उसे पर्दे के पीछे से कोई शब्द सुनाई देता है और वह कहता है) 'अरे यह क्या? जब मैं सूचना देने ही जा रहा था तभी यह कैसा शब्द सुनाई दिया?' फिर कुछ रुक कर और सुनने का अभिनय कर एकदम कहता है 'अरे समझ गया वे अमुक अमुक व्यक्ति अमुक अमुक कार्य कर रहे हैं।' यह कहकर सूत्रधार तो चला जाता है और जैसा उसने बतलाया होता है उसके अनुसार ही कार्य करते हुये पात्रों का प्रवेश होता है तथा मुख्य अभिनय प्रारम्भ हो जाता है। निस्सन्देह यह विधि परवर्ती नाटक साहित्य से सर्वथा भिन्न है जिसमें बड़ी ही कलात्मक पद्धति पर परिचय दिया जाता है और पात्रों का प्रवेश कराया जाता है। इसके लिये एक परिनिष्ठित शास्त्रीय परम्परा प्रचलित हो गई है।

प्रस्तावना अथवा आमुख

नाट्यशास्त्र में स्थापना, प्रस्तावना और आमुख इन शब्दों का एकार्थक रूप में प्रयोग किया गया है। यह पूर्वरंग और मुख्य नाटक का मध्यवर्ती आयोजन है जिसमें कवि, काव्य (नाट्य) और कभी कभी काव्यविषय का परिचय दे दिया जाता है। इस भाग का मन्तव्य होता है उपस्थित दर्शक गण को आकर्षित करना। कवि समाज में अपनी रचनाओं से प्रसिद्धि प्राप्त कर लेता है; जब उसका नाम सामने आता है तब दर्शक गण स्वभावतः आकृष्ट हो जाते हैं कि अमुक लेखक की रचना का आस्वादन करने का अवसर मिलेगा। किसी विशेषता के कारण ही अभिनय के लिये कोई नाटक चुना जाता है– या तो महत्वपूर्ण कवि की कृति हो, या कोई कथानक ही इतना प्रसिद्ध हो गया हो कि दर्शक उसे वार वार देखना चाहें। जहां ये दोनों बातें नहीं होतीं वहां भी दर्शकों में कौतूहल वृत्ति जागृत हो जाती है कि 'देखें अमुक कवि की रचना कैसी होती है।' समाज नवीनता को पसन्द करता है; अतः नवीन कथानक को दृश्यपटल पर अभिनीत होते हुये देखने की उसकी आकाङ्क्षा होती है। कथानक का ऐसा अंश भी कभी कभी बतला दिया जाता है जो अभिनीत वस्तु के समझने में सहायक होता है। फिल्म जगत् में एक और प्रवृत्ति बढ़ गई है– कवि की अपेक्षा अभिनेताओं को अधिक महत्त्व दिया जाता है और उनकी ओर दर्शक आकर्षित भी अधिक होता है; क्योंकि अभिनय कला में कतिपय अभिनेता अपनी धाक जमा लेते हैं और उनके प्रति जनता में प्रशंसा का भाव जागृत हो जाता है। यह प्रवृत्ति प्राचीन काल में नहीं थी। उस समय कलाकारों में नम्रता की भावना अधिक

थी; वे अपने मुख से अपनी प्रशंसा उचित नहीं समझते थे। अधिक से अधिक ऐसा एक वाक्य बोल देते थे जो प्रशंसा रूप नहीं आश्वासन रूप होता है– 'हम लोगों ने भली भांति अभ्यास कर रक्खा है; अतः अभिनय में कोई कमी नहीं रह जायेगी 'सुविहित प्रयोगतया आर्यस्य न किमपि परिहायिष्यते।'

प्रस्तावना का एक प्रयोजन और होता है– रंगस्थल में दर्शकों को शान्त कर रसास्वादन के लिये परिस्थिति तैयार करना। फिल्म जगत् के समान केवल नामावली ही प्रस्तुत नहीं की जाती किन्तु सारा परिचय इस प्रकार दिया जाता है कि प्रस्तावना भाग भी एक छोटा मोटा आस्वाद्य अभिनय-खण्ड बन जाता है। इसमें संवाद के लिये सूत्रधार के साथ नटी, विदूषक और पारिपार्श्विक आकर संवाद बोलते हैं, किसी ऋतु को लेकर या कभी कभी परिस्थिति को लेकर गीत का आयोजन किया जाता है और उसके प्रभाव पर सन्तोष किया जाता है– 'देखो तुम्हारे गीत से सारा रंगस्थल कितना शान्त हो गया है मानो सारा चित्र लिखित हो' या 'तुम्हारा संगीत इतना अच्छा बन पड़ा है कि मैं तो इतना आकर्षित हो गया हूं कि मुझे ध्यान ही नही रहा कि आगे की कार्यवाही चलानी है। प्रस्तुतीकरण के लिये एक छोटा सा कथानक बना लिया जाता है और उसी का प्रदर्शन कर दिया जाता है। किन्तु इस समस्त क्रिया में आंगिक अभिनय को नहीं संवाद को महत्व दिया जाता है, इसलिये नियम बनाया गया है कि प्रस्तावना में भारती वृत्ति की प्रधानता रहनी चाहिये। अभिनय के लिये भी नियम बनाया गया है कि इसका प्रदर्शन वीथी और प्रहसन जैसे नट्यप्रकारों का जैसा होना चाहिये। उसमें उन्हीं नाट्य प्रकारों के अंगों का उपयोग करना चाहिये। (इनकी विशेषताओं के लिये देखिये – भूमिका भाग।) ये अंग स्वतन्त्र नाट्य को प्रारम्भ में ही अधिक सुरुचिपूर्ण अधिक कलात्मक और अधिक आकर्षक बनाने की चेष्टा का एक अंग है।

नाटक के सूच्य अंश को भी नियम बद्ध कर दिया गया है। आचार्यों ने नियम बनाया है कि स्थापक को उसी प्रकार का रूप धारण कर रंगमञ्च पर आना चाहिए जिसकी वह सूचना देने जा रहा है– यदि सूचना किसी मानव के विषय में है तो उसे मानव रूप में आना चाहिये, यदि सूचना देव विषयक है तो देव बनकर आना चाहिये और यदि देव और मानव दोनों का सम्मिलित कथानक है तो दोनों में कोई भी रूप धारण कर वह रंगमञ्च पर आ सकता है। सूचना के लिये नियम है कि वह चार तत्वों में किसी एक की सूचना देता है– वस्तु, बीज, मुख या पात्र। उदात्तराघव में समस्त नाट्यवस्तु का *सारांश सा दे दिया गया है– 'राम पिता की आज्ञा को सरमाथे स्वीकार कर बन को चले गये; उनकी भक्ति से भरत ने माता के साथ ही राज्य का भी परित्याग कर दिया; प्रसिद्ध सुग्रीव और विभीषण राम के अनुयायी बने और राम ने सभी उद्धतशत्रुओं को मार डाला'* यह कथानक की सूचना है। रत्नावली नाटिका में बीज की सूचना दी गई है। नाटिका का बीज है– सिंहलद्वीप की राजकुमारी रत्नावली का प्रवहण भंग में बचते बचाते उदयन

के राजभवन में प्रवेश और फिर उदयन के साथ उनकी प्रणय लीला। इस बीज का परिचय स्थापक ने इन शब्दों में दिया है– 'अनुकूल विधाता दूसरे द्वीपों से भी, समुद्र के मध्य से भी और दिशाओं के छोर से भी लाकर अभिमत को मिला देता है।' मुख का आशय है श्लेष इत्यादि के द्वारा वस्तु की ओर संकेत करना। मुद्राराक्षस में स्थापक चन्द्रग्रहण के प्रसंग में कहता है कि 'क्रूर ग्रह केतु वलात् चन्द्र को अभिभूत करना चाहता है किन्तु चन्द्र की रक्षा वुध कर रहा है अतः केतु चन्द्र को दवाने में सफल नहीं हो सकता।' यहां केतु से मलयकेतु, चन्द्र से चन्द्रगुप्त और वुध से चाणक्य की ओर श्लेष मूलक संकेत कर कथानक में मुख की सूचना दी गई है क्योंकि यहीं से नाटक का प्रारम्भ होता है। पात्र की ओर संकेत अभिज्ञान शाकुन्तल में किया गया है– वहां स्थापक नटी का संगीत सुनकर उसकी प्रशंसा में कहता है– 'तुम्हारे इस आकर्षक संगीत के प्रेम से मैं ऐसा भुलावे में डाल दिया गया जैसे वेगवान हरिण इस राजा दुष्यन्त को भुलावे में डाले लिये जा रहा है।' यहां पर पात्र दुष्यन्त की ओर संकेत किया गया है और राजा शिकार खेलते हुये रंगमञ्च पर आ जाते हैं।

पात्र का जिस प्रकार प्रवेश होता है उसके आधार पर प्रस्तावना के भेद भी किये गये हैं– दशरूपक में तीन भेद किये गये हैं– कथोद्घात, प्रवर्तक और प्रयोगातिशय। **कथोद्धात** में स्थापक या सूत्रधार के वाक्य या उसके अर्थ को लेकर पात्र प्रवेश करता है यह प्रक्रिया मुद्राराक्षस और वेणी संहार में अपनाई गई है। **प्रवर्तक** में ऋतु वर्णन के साम्य के आधार पर पात्र प्रवेश होता है जैसा कि प्रियदर्शिका में किया गया है। **प्रयोगातिशय** में सूत्रधार 'वह आ रहा है' कह कर प्रत्यक्ष निर्देश के द्वारा सूचना देता है जो विधि अभिज्ञानशाकुन्तल में अपनाई गई है। साहित्यदर्पण में प्रस्तावना के दो भेद और बतलाये गये हैं उद्घात्मक और अवकलित। किन्तु इनका समावेश वीथी के अंगों में ही हो जाता है।

प्रस्तावना नाट्य रचना का एक महत्वपूर्ण तत्व है। इसका उपयोग नाट्य वस्तु का परिचय देने के लिये तो है ही नाट्यरसास्वादन के अनुकूल वातावरण बनाने के निमित्त भी इसका समावेश आवश्यक माना जाता है। इससे दर्शक आकर्षित होते हैं और उनके मन रमाने की पृष्ठभूमि भी तैयार हो जाती है। इसके लिये संगीत का भी प्रयोग किया जाता है और रोचक संवाद भी इस आवश्यकता को पूरा करते हैं। पात्र प्रवेश इतने कलात्मक ढंग से होता है कि दर्शक पूर्व परिचित के समान उनका आस्वादन करने में अनायास ही प्रवृत्त हो जाता है। इसके अतिरिक्त मुख्य अभिनय तक आते आते दर्शक सुव्यवस्थित भी हो जाता है और उसकी मनोवृत्ति भी आस्वादन के योग्य बन जाती है। पुरानी शैली की नाट्य मण्डलियों में इसका प्रचलन अब तक बना हुआ है यद्यपि नवीन शैली के नाटकों में इसका प्रत्याख्यान होता जा रहा है।

अर्थोपक्षेपक

ऊपर कवि, नाटक और कथानक सूचना का विवरण दिया गया। केवल प्रस्तावना में ही नहीं मुख्य कथानक के कलेवर में भी सूचना की आवश्यकता पड़ जाती है। कथानक का प्रत्येक भाग दृश्य रूप में दिखलाने योग्य नहीं होता। दृश्य रूप में वे ही भाग दिखलाये जाते हैं जिनमें रसनिष्पत्ति और रसास्वादन का अवसर होता है। किन्तु ऐसे भागों को दिखलाने से कथानक की क्रमबद्धता पूरी नहीं हो पाती जिससे उसके समझने में भी कठिनाई होती है। कुछ घटनायें दीर्घकाल व्यापी होती हैं, कुछ घटनाओं के मध्य बहुत अधिक व्यवधान पड़ जाता है, कभी कभी अन्तरालवर्ती समय में परिस्थितियां बदल जाती हैं जिससे अग्रिम दृश्य को समझने में व्याधात उत्पन्न हो जाता है। अतः कथानक को शृङ्खलाबद्ध करने के लिये उन अन्तरालवर्ती घटनाओं की सूचना दे देनी पड़ती है जो नवीन परिस्थिति को जन्म देने वाली होती है। होती तो वे नीरस हैं किन्तु रसात्मक दृश्यों के आस्वादन के लिये उनका बतलाया जाना आवश्यक माना जाता है। इस प्रकार की सूचना देने वाले भाग को अर्थोपक्षेपक कहा जाता है। ये अर्थोपक्षेपक ५ प्रकार के होते हैं– विष्कम्भक, प्रवेशक, चूलिका, अंकावतार और अंकमुख।

(१) **विष्कम्भक**– जो पात्र अपनी बातचीत के द्वारा विभिन्न घटनाओं का परिचय देते हैं उनमें यदि अमात्य, पुरोहित या कञ्चुकी जैसा मध्यम कोटि का भी पात्र सम्मिलित हो तो वह अर्थोपक्षेपक विष्कम्भक कहलाता है। यह दो प्रकार का होता है– शुद्ध और संकीर्ण। यदि वार्तालाप में लगे सभी व्यक्ति मध्यम पात्र हों तो वह शुद्ध विष्कम्भक होता है। यदि कुछ पात्र मध्यम श्रेणी के और कुछ निम्न श्रेणी के हों तो वह संकीर्ण विष्कम्भक होता है। शुद्ध विष्कम्भक में पात्र या तो संस्कृत में बात करते हैं या शौरसेनी में या दोनों की मिली जुली भाषा में बातचीत होती है। किन्तु संकीर्ण विष्कम्भक में क्योंकि निम्न पात्र भी वार्तालाप में सम्मिलित होते हैं; अतः संस्कृत और शौरसैनी के साथ निम्नस्तर की प्राकृत भी प्रयुक्त होती है। मध्यम पात्र संस्कृत या शौरसैनी का प्रयोग करते हैं और निम्न पात्र निम्न कोटि की प्राकृतों का प्रयोग करते हैं। चारायण ने लिखा है कि इसका प्रयोग नाटक और प्रकरण में होता है। ज्ञात होता है पहले इसका प्रयोग केवल नाटक में होता था; बाद में प्रकरण में भी किया जाने लगा। इसका प्रयोग अंक की आदि में या आमुख के बाद अथवा प्रथम अंक के प्रारम्भ में किया जाता है। दो अंकों के मध्य में भी इसका प्रयोग देखा जाता है। अभिज्ञान शाकुन्तल में तीसरे और चौथे अंक के बीच में दुर्वासा के शाप की सूचना विष्कम्भक के माध्यम से ही दी गई है। यह सर्वदा अंक के प्रारम्भिक भाग के रूप में ही आता है; न तो अंक के अन्त में आता है और न दो अंकों के मध्य में; इसकी स्वतन्त्र सत्ता होती है।

(२) **प्रवेशक**– इसका उपयोग और स्थिति विष्कम्भक से मिलती जुलती है। इसमें भी भूत और भावी घटनाओं की सूचना दी जाती है। किन्तु विष्कम्भक से अन्तर यह

होता है कि केवल नीच पात्र ही इसके प्रयोजक होते हैं; अतः केवल प्राकृत ही और वह भी मागधी आभीरी आदि निम्नकोटि की प्राकृत ही प्रयुक्त की जाती है। दूसरा अन्तर यह है कि इनकी स्थिति दो अंकों के मध्य में होती है। इसका प्रयोग नाटक और प्रकरण में किया जाता है। शारदातनय इत्यादि कतिपय आचार्यों का कथन है कि यदि उन दो नीच पात्रों की बातचीत में ब्राह्मण इत्यादि कोई मध्यम पात्र शामिल हो जाता है तो वह संस्कृत का भी प्रयोग कर सकता है। यह केवल दो अंकों के मध्य में आता है; इससे सिद्ध हो जाता है कि इसका प्रयोग प्रथम अंक में नहीं होता। युद्ध, देशध्वंस, मृत्यु इत्यादि की जो घटनायें रंगमञ्च पर नहीं दिखलाई जा सकतीं कथासूत्र की एक सूत्रता के लिये इस अर्थोपक्षेपक से उसकी पूर्ति कर दी जाती है।

(३) **चूलिका**– विष्कम्भक और प्रवेशक का प्रयोग अंक की आदि में या दो अंकों के मध्य में एक स्वतन्त्र संवाद के रूप में होता है। किन्तु कभी कभी अंक के मध्य में भी सूचना देने की आवश्यकता पड़ जाती है। इस प्रकार की सूचना देने का एक साधन चूलिका है। इसमें पात्र रंगमञ्च पर आकर सूचना नहीं देता किन्तु जवनिका के अन्दर से ही सूत, मागध या बन्दी इत्यादि कोई पात्र परदे के अन्दर से ही सूचना दे देता है। इसमें पात्रों के बहिर्गमन की आवश्यकता नहीं पड़ती। चूलिका का प्रयोग केवल अंक के मध्य में ही नहीं होता किन्तु उसका प्रयोग कभी कभी अंकारम्भ में कर दिया जाता है। इसका व्यतिरेकी लक्षण परदे के अन्दर से सूचना देना है। उदाहरण के लिये उत्तररामचरित में दूसरे अंक के प्रारम्भ में परदे के अन्दर से आवाज आती है– 'तपस्विनी का स्वागत हो' इससे दर्शकों को ज्ञात हो जाता है कि अब रंगमञ्च पर तपस्विनियों का प्रवेश होगा और उनका संवाद दिखलाया जायेगा। तब आत्रेयी और वासन्ती का प्रवेश होता है और दोनों के संवाद से उत्तररामचरित के कथांश सीता-परित्याग, इत्यादि का पता चल जाता है।

इसी प्रकार वीरचरित में चौथे अंक के प्रारम्भ में परदे के अन्दर से सूचना दी जाती है कि वैमानिक गण! रंगमहल इत्यादि की सजावट का आयोजन करो– राम ने परशुराम को जीत लिया है।

भास के नाटकों की प्रस्तावनाओं में सूत्रधार अन्दर की आवाज सुनते हुये कहता है कि 'अरे! मैं तो कुछ विज्ञापित करने जा रहा था यह शब्द कैसा सुनाई दिया अरे ज्ञात हुआ! यह कहते हुये हट जाता है और पात्र का प्रवेश होकर नाटक प्रारम्भ हो जाता है। इसे भी एक प्रकार की चूलिका ही कहा जा सकता है।

अंकमुख– विष्कम्भक और प्रवेशक में दो स्वतंत्र व्यक्तियों की बातचीत से कथा का उन्नयन किया जाता है, चूलिका में पर्दे के अन्दर से सूचना दी जाती है। अंकमुख सूचना देने का एक अन्य प्रकार है। इसमे चल रहे प्रसंग में ही कोई पात्र आकर कुछ सूचना देता है जिससे नवीन कथानक का अवतरण हो जाता है। साहित्यदर्पणकार ने इसकी दो परिभाषायें दी हैं– (१) जहां किसी एक अंक में सब अंकों की पूरी सूचना दे

दी जाय वहां अंकमुख नामक अर्थोपक्षेपक होता है। इसका उदाहरण दिया है– जैसे मालतीमाधव में प्रथम अंक की आदि में कामन्दकी और अवलोकिता ने भूरिवसु इत्यादि की भावी भूमिकाओं की संक्षिप्त सूचना दे दी है जिसका प्रासङ्गिक रूप में अभिनय किया जाने वाला है। किन्तु यह परिभाषा ठीक नहीं है– एक तो किसी नाटक की पूरी सूचना दी नहीं गई है, यहां भी मालती माधव के पूरी कथानक का परिचय नहीं दिया गया है। दूसरी बात यह है कि नाटक में कौतूहल वृत्ति अत्यन्त प्रयोजनीय होती है। रसास्वादन के अतिरिक्त कौतूहल वृत्ति भी दर्शकों को बांधे रहती है। यदि पूरी कथा का पहले ही परिचय दे दिया जायेगा तो कौतूहल वृत्ति तो समाप्त हो जायेगी; यह दर्शकों के आस्वादन में विघात ही उत्प करेगा। इसी अरुचि के कारण विश्वनाथ ने दूसरी परिभाषा दी है– 'जहां अंक समाप्त होने जा रहा है वहां उस अंक से सम्बन्धित ही कोई स्त्री या पुरुष प्रविष्ट होकर कोई ऐसी सूचना दे देता है जिससे अग्रिम अंक का प्रारम्भ हो जाता है।' यह परिभाषा दशरूपक से ली गई है। इसका उदाहरण वीरचरित के दूसरे अंक से दिया गया है। शतानन्द और जनक का संवाद चल रहा है; इसी बीच सुमन्त्र आकर कहते हैं– 'भगवान् वशिष्ठ और विश्वामित्र, परशुराम के सहित आप लोगों को बुला रहे हैं।' उनसे पूछा जाता है भगवान् वशिष्ठ और विश्वामित्र कहां हैं?' सुमन्त्र– 'महाराज दशरथ के पास।' तब सब लोग कहते हैं– 'तो उनके अनुरोध से हम सब वहीं चलते हैं।' इसके बाद अग्रिम अंक प्रारम्भ हो जाता है।

दूसरा उदाहरण अभिज्ञानशाकुन्तल के छठे अंक से दिया जा सकता है– राजा दुष्यन्त शकुन्तला के वियोग से पीडित हैं। इसी बीच विदूषक का करुणक्रन्दन सुनकर धनुषवाण चढ़ा कर उसकी रक्षा की तैयारी कर रहे हैं कि इतने में ही इन्द्र का सारथि मातलि आकर निवेदन करता है– 'इन्द्र ने तुम्हें राक्षसों के वध के लिये नियुक्त किया है; अतः उन्हीं पर तुम्हारे वाण चलने चाहिये। इससे छठे अंक की समाप्ति हो जाती है और सातवें अंक का प्रारम्भ हो जाता है।

धनञ्जय की यह परिभाषा नाट्यशास्त्र से मेल नहीं खाती है जो इस प्रकार है– 'स्त्री या पुरुष द्वारा श्लिष्ट रुप में भावी कथावस्तु का उपक्षेपण अंकमुख कहलाता है। वस्तुतः भरत की परिभाषा अनेक पाठभेदों में उलझ जाने से बहुत स्पष्ट नहीं है।

जिस प्रकार मुख देखकर व्यक्ति की पहिंचान हो जाती है उसी प्रकार अंक के जिस भाग को देखकर अग्रिम अंक के आने वाले कथानक का कुछ परिचय प्राप्त हो जाता है उसे अंकमुख कहा जाता है। यही इसके नामकरण का कारण है।

अंकावतार

एक अंक को बिना समाप्त किये जहां दूसरे अंक की सूचना दे दी जाती है तथा उसमें बीजपरक उक्ति का भी समावेश रहता है उसे अंकावतार कहा जाता है। इस व्यवस्था

से अग्रिम अंक का प्रारम्भ इस प्रकार किया जाता है मानों पहले अंक का ही क्रम जारी रक्खा गया है। पहले अंक के साथ ही दूसरा अंक अवतीर्ण हो जाता है अतः उसे अंकावतार कहा जाता है। इसमें और अंकमुख में एक अन्तर यह है कि अंकमुख में सूचना के साथ ही पहले अंक में चलने वाला कथानक समाप्त हो जाता है और अगला अंक नये कथा भाग को लेकर चल देता है। इसके प्रतिकूल अंकावतार में प्रचलन में विद्यमान कथानक का ही कोई पात्र कुछ सूचना देता है और उसे लेकर अगला अंक इस प्रकार प्रारम्भ हो जाता है मानों पहले अंक का कथाभाग ही चल रहा है। इसमें अंक के बदलने के साथ कथाभाग का विच्छेद नहीं होता।

उदाहरण के लिये मालविकाग्निमित्र में हरदत्त और गणदास पहले अंक में दिखलाये गये हैं; वहां यह भी दिखलाया गया है कि शिलष्ट क्रिया किसी के तो आत्मा में रहती है और दूसरे लोगों का संक्रमण का ढंग बड़ा ही विशेष होता है; जिसमें दोनों गुण हों वही शिक्षकों में अग्रगण्य होने का अधिकारी है। यह उक्ति ही वीज है। अच्छे शिक्षक की परीक्षा होनी है जिसमें दोनों को अपनी कला का प्रदर्शन करना है कि किसका शिष्य प्रतियोगिता में सफल होता है। आयोजन की सारी तैयारी है। अंकान्त में विदूषक कहता है– 'तो फिर तुम दोनों देवी के मन्दिर में जाकर संगीत का आयोजन करो और बाद में आयोजन पूरा हो जाने पर श्रीमानजी के पास दूत भेज देना अथवा मृदङ्गशब्द सभी को सूचना दे देगा।' इसके बाद दूसरा अंक प्रारम्भ हो जाता है जिसमें आयोजन का आनन्द लिया जा रहा है। कथानक बदला नहीं; उसी परम्परा में दूसरा अंक भी चल रहा है। इसके प्रयोग से प्रवेशक या विष्कम्भक की आवश्यकता नहीं रहती।

पिछले दिनों बी.आर. चोपड़ा ने जो महाभारत दिखलाया था उसमें समय को सूचक बनाया गया था। समय जो सूचनायें देता था उसी सिलसिले में कथानक प्रारम्भ हो जाता था। समय की सूचना और वस्तु प्रदर्शन में अन्तर नहीं आता था। इसे अंकावतार की संज्ञा नहीं दी जा सकती क्योंकि इसमें समय रंगमञ्च पर उपस्थित नहीं होता। यह चूलिका और अंकावतार का मिला जुला रूप है जिसे नये ही प्रकार का अर्थोपक्षेपक कहा जा सकता है।

नाट्यवस्तु

अभिनवगुप्त के अनुसार अभिनय के द्वारा जो कुछ दिखलाना कवि या अभिनेता का उद्देश्य होता है उसे नाट्य कहा जाता है और वह उद्देश्य नाट्य में सर्वदा रस होता है। अतः नाट्य का अर्थ है रस। कवि या नाटककार दर्शकों और श्रोताओं को रसास्वादन कराना चाहता है और दर्शक एवं श्रोता उसका आस्वादन करना चाहता है। अतः कवि का उद्देश्य होता है– रसनिष्पत्ति और परिशीलक का उद्देश्य होता है रसास्वादन।

कवि रसनिष्पत्ति के निमित्त जिस सामग्री का उपादान करता है उसे नाट्यवस्तु की

संज्ञा दी जाती है। इस प्रकार रस-निष्पत्ति भी एक प्रकार कार्य ही है। प्रत्येक कार्य के लिये कुछ सामग्री अपेक्षित होती है। मिट्टी से घड़ा बनाने में मिट्टी, चाक, कुह्मार इत्यादि अनेक तत्त्व कारण होते हैं। उनमें कोई एक कारण प्रधान होता है शेष अप्रधान। प्रधान कारण वही होता है जिसके नष्ट हो जाने से वस्तु नष्ट हो जाय। उदाहरण के लिये बना बनाया घड़ा कुह्मार के मर जाने से नष्ट नहीं हो जायेगा। जो गधा घड़ा बनाने के लिये मिट्टी लाया था उसके न रहने से घड़ा फूट नहीं जायेगा। अतः कुह्मार, चाक, गधा, कुह्मार का डण्डा ये सब तत्व मुख्य कारण नहीं है। यदि वह मिट्टी नष्ट हो जाय तो घड़ा भी नष्ट हो जायेगा। इस प्रकार के प्रधान कारण को समवायिकरण या उपादान कारण कहा जाता है।

रस निष्पत्ति के लिये आयोजक रंगमञ्च सजाता है, संगीत, वाद्य इत्यादि का प्रबन्ध करता है, पर्दे इत्यादि पर चित्रकारी करता है; दर्शकों को बैठने के लिये रंगशाला का प्रबन्ध करता है; ये सब रस निष्पत्ति में सहायक कारण अवश्य हैं; किन्तु मुख्य कारण नहीं है। मुख्य कारण है– कथानक और उसका प्रदर्शन। लोक में घड़े के बनाने के लिये मिट्टी तो प्रधान कारण होती ही है मिट्टी के विभिन्न भागों का जोड़ना भी प्रधान कारण होता है क्योंकि जोड़ के उखड़ जाने से भी वस्तु नष्ट हो जाती है। इस प्रकार शास्त्रकारों ने कारण तीन प्रकार के बतलाये हैं– मिट्टी इत्यादि कोई वस्तु जिससे रचना की जाती है वह समवायिकारण या उपादान कारण होता है; मिट्टी के अवयवों का जोड़ असमवायि-कारण कहलाता है, शेष सभी निमित्त कारण कहे जाते हैं। इसी प्रकार नाटक में भी प्रदर्शनीय वस्तु रामादि की कथा उपादान कारण होती है, उसका अभिनय असमवायि कारण होता है और रंगसज्जा इत्यादि सभी साधन निमित्त कारण की कोटि में आते हैं।

अब यहां प्रश्न उपस्थित होता है कि प्रदर्शनीय वस्तु का सीमा विस्तार क्या है। इस विषय में नाट्यशास्त्र में एक मनोरंजक उपाख्यान दिया हुआ है। ऋग्वेदादि से नाटय का निर्माण कर ब्रह्माजी ने देवताओं को प्रदान कर दिया। देवता लोग अपनी विजय और दैत्यों की पराजय का अभिनय करने लगे और उसी का प्रदर्शन प्रारम्भ कर दिया। दैत्यों को यह बात बुरी लगी और उन्होंने विघ्न डालना प्रारम्भ कर दिया जिससे देवता लोग परेशान होकर ब्रह्माजी के पास गये और ब्रह्माजी ने दैत्यों को बुलाकर विघ्न डालने का कारण पूछा। दैत्यों ने कहा कि आपने नाट्यकला का यह साधन देवताओं को दे दिया है जिससे ये लोग हमारी मजाक उड़ाते हैं। आपको यह पक्षपात नहीं करना चाहिये था; आपके लिये हम और देवता एक जैसे हैं। इस पर ब्रह्मजा ने कहा– 'दैत्यों तुम्हें क्रोध नहीं करना चाहिये, तुम दुःखी न हो। मैंने यह नाट्यवेद ऐसा बनाया है जो तुम्हारी और देवताओं की सभी की अच्छाइयों और बुराइयों पर प्रकाश डालने वाला है। यह तुम्हारे और देवताओं के कर्म और भाव दोनों की अपेक्षा करके चलने वाला है। यह केवल देवताओं की भावना का प्रतिनिधि नहीं है और न केवल तुम्हारी ही भावनाओं

और विचारों का प्रतिनिधि है। नाट्य तो तीनों लोकों के भावों का अनुकीर्तन है। कहीं इसमें धर्म का विवेचन है, कहीं क्रीडा का, कहीं धन का, कहीं शान्ति का, कहीं हास्य का, कहीं युद्ध का, कहीं काम का, कहीं वध का। अधर्म में प्रवृत्त व्यक्तियों को धर्म का उपदेश देने वाला है; जो काम-वासना के सेवन के लिये अत्यन्त आतुर है उन्हें काम कला की शिक्षा देता है; जो लोग उद्दण्ड और अमर्यादित हैं उन्हें नियन्त्रित करता है; जो लोग अनुशासित हैं उनमें अनुशासन के प्रति दृढ़ता को बढ़ाता है, वीरों में शक्ति का सञ्चार करता है; अल्पबुद्धि वालों की बुद्धि को विकसित करता है और विद्वानों की योग्यता को बढ़ाता है। यह सम्पत्ति शालियों में विलास, दुःखी व्यक्तियों में सहन शक्ति, धर्म लिप्सुओं को धन, उद्विग्नचित्तवालों को धैर्य प्रदान करता है। मैंने यह ऐसा नाट्यवेद बनाया है जो अनेक भावों से भरा हुआ, विभिन्न प्रकार की स्थितियों से युक्त है और समस्त लोकवृत्त का अनुकरण करने वाला है। यह अच्छे बुरे या सामान्य सभी व्यक्तियों के कर्मों का चित्रण करता है, धैर्य, क्रीडा और सुख के साथ हितोपदेश भी देने वाला है। न ऐसा ज्ञान है, न शिल्प है न विद्या है न कला है जिसका उपयोग इस नाट्य में न होता हो। सब शास्त्र सब शिल्प, विविध कर्म इस नाट्य में एकत्र होकर रहते हैं। इस नाटक में सप्तद्वीपा वसुमती का अनुकरण प्रतिष्ठित है। वैदिक साहित्य और महाभारत इत्यादि पुराणों के कथानकों को लेकर उनकी योजना नाट्य में इस प्रकार की जाती है कि उनमें आनन्द देने की शक्ति उत्पन्न हो जाती है। सब मनुष्यों की प्रकृति और हर्ष विषाद शारीरिक, वाचिक और आहार्य (वेषभूषागत) अभिनय द्वारा प्रस्तुत किये जाते हैं तब उसे नाट्य संज्ञा प्राप्त होती है।'

भरत के उक्त विवरण का आशय यही है कि नाट्य वस्तु के अन्तर्गत सभी लौकिक आचार व्यवहार, वस्तु स्थिति या कोई भी घटना सम्मिलित होने की अधिकारिणी है। इसीलिये भरत ने अपने अग्रिम अध्यायों में विस्तार पूर्वक लौकिक आचार विचार पर प्रकाश डाला है। प्रादेशिक रीतिरिवाज, स्त्री पुरुषों की प्रकृति, परिस्थिति सभी का वर्गीकरण कर विस्तार पूर्वक उनका विवेचन किया है। इसके साथ ही रस और भाव का भी विस्तृत परिचय दिया गया है और उसके उपकरणों रीति, वृत्ति, प्रवृत्ति संभाषण विधि, भूषण विकल्प इत्यादि का सांगोपाङ्ग विवेचन किया गया है। इससे सिद्ध होता है कि जिस प्रकार प्रपञ्चात्मक विश्व की इयत्ता नहीं उसी प्रकार उपादेय नाट्यतत्व की भी सीमा नहीं। समाज में नये नये परिवर्तन होते जाते हैं; नये नये वैज्ञानिक प्रवर्तन और नये सम्पर्क समाज को जब जब जैसा जैसा नवीन रूप देते जाते हैं वह सब नाट्यवस्तु के रूप में प्रयुक्त होता रहता है और भावी परिस्थितियां उन पर अपनी छाप छोड़ने के लिये सतत सन्नद्ध रहती हैं। सारांश यह है कि नाट्य वस्तु की इयत्ता है ही नहीं।

लोकधर्मी और नाट्यधर्मी

ऊपर के संक्षिप्त परिचय से स्पष्ट हो जाता है कि काव्यवस्तु का स्रोत लोकवृत्त ही है। लोक में लोग जिस प्रकार चलते फिरते उठते बैठते उद्योग धन्धे चलाते, आमोद प्रमोद करते हैं वही सब नाट्य में भी आता है। किन्तु इससे यह समझना भूल होगी कि नाट्य लोक की एक सच्ची फोटोग्राफी है। यह सच है कि नाटककार लोकवृत्त का अतिक्रमण नहीं कर सकता और न लोक में प्रतिष्ठित कथानकों एवं इतिहास-वृत्तों में उलट फेर कर सकता है; इसके साथ ही यह भी सच है कि कवि का कर्तव्य लोक के अन्धानुकरण की अपेक्षा बहुत अधिक महान है। लोक के साथ ही उसे कुछ ऐसे तत्वों का समावेश करना पड़ता है जो लोक में दृष्टिगत नहीं होते। लोक में लोग सीधी साधी भाषा में अपने विचारों और मनोभावों को व्यक्त कर देते हैं और सारे व्यवहार साधारण बातचीत से ही चलते रहते हैं। न तो कोई गा गा कर बातें करता है न कोई बातचीत में नाचने लगता है न उनमें वाद्य यन्त्रों की थाप की आवश्यकता होती है। भरत ने विभिन्न भावों को प्रकट करने के लिये जिन आंगिक चेष्टाओं का विवेचन किया है उनका लोक में कहीं व्यवहार नहीं देखा जाता। वस्तु के सुन्दरीकरण और आकर्षक रूप में सम्प्रेषण के लिये इस प्रकार की चेष्टाओं और नृत्य गीतादि के समावेश की नितान्त अपेक्षा होती है। इसीलिये शास्त्रकारों ने वस्तु को दो रूपों में विभाजित किया है- लोक से उपादेय वस्तु और केवल नाट्य में प्रयोजनीय वस्तु। पहले प्रकार की वस्तु को लोकधर्मी और दूसरे प्रकार की वस्तु को नाट्यधर्मी कहा जाता है। कवि काव्यवस्तु को ऐसे रूप में प्रस्तुत करता है कि लोक में प्रचलित परम्परा और व्यवहार का अतिक्रमण न होने पाये; साथ ही उन व्यवस्थाओं का भी पालन हो जो नाट्य परम्परा में प्रतिष्ठित हो चुकी है तथा नाट्य को सार्वजनीन एवं आकर्षक बनाने के लिये जिनका उपादान अत्यावश्यक है।

नाट्यधर्मी तत्वों का लोकधर्मी के समान सीमातीत विस्तार है। दैवी और लौकिक शक्तियों की क्रियाशीलता स्वर्गीय दृश्य और व्यक्ति, नदी, पर्वत, अस्त्रशस्त्र, विमान, कवच, पताका, पशुपक्षी इत्यादि का मनुष्य रूप में मनुष्य की भाषा में बातचीत करना यह सब नाट्यधर्मी ही है। कभी कोई व्यक्ति एक रूप में कार्य करता है और तत्काल बाद दूसरा रूप धारण कर लेता है। यह अभिनेताओं की कमी के कारण भी होता है और किसी अभिनेता की कई भूमिकाओं के कुशल निर्वाह की योग्यता के कारण भी होता है। कभी कभी जहां साधारण चाल होनी चाहिये वहां पात्र नाच नाच कर चलता है तथा अभिनय के साथ पाद विक्षेप करता है। कभी कभी निषिद्ध सम्बन्ध दिखलाये जाते हैं। सुविधा के लिये रंगमञ्च के विभाग कर उनसे आकाश इत्यादि की परिकल्पना कर ली जाती है। यह सब नाट्यधर्मी ही हैं। सारांश यह है कि नाट्यकार कथानक का उपादान लोक से ही करता है; किन्तु उसका उपस्थापन मुद्राओं और अभिनयों द्वारा ही किया जाता है तथा कभी कभी उसमें लोकोत्तर तत्व का भी समावेश कर दिया जाता है जो नाट्यधर्मी के

क्षेत्र में आता है।

नाटक में दोनों धर्मियों का पृथक्करण किञ्चित् अशक्य है। जो तत्व लोकोत्तर होते हैं उनकी सत्ता लोक में नहीं पाई जाती; लोकोत्तर पात्रों का समावेश और दैवी शक्तियों का उपादान इनमें नाट्यधर्मिता सन्दिग्ध रहती ही नहीं क्योंकि लोक में उनकी सत्ता होती ही नहीं। इसी प्रकार अंगाभिनय के द्वारा उपस्थापन भी लोकबाह्य ही होता है। इस प्रकार नाट्य में नाट्यधर्मी का महत्व अधिक है। यह उसी प्रकार होता है जिस प्रकार काव्य में स्वभावोक्ति की अपेक्षा वक्रोक्ति अधिक उपादेय मानी जाती है। भरत का कथन है कि नाट्य का प्रयोग सर्वदा नाट्यधर्मी प्रवृत्ति के साथ ही करना चाहिये क्योंकि अंगाभिनय के बिना कभी दर्शकों में राग जागृत ही नहीं किया जा सकता। सामान्य प्रवृत्तियां तो सभी में समान और सहजात होती हैं; उन सबका उपादान किसी विशेष उद्देश्य से ही किया जाता है। अतः अलंकृत अंगाभिनय सर्वदा नाट्य धर्मी ही माने जाते हैं।

कथानक के प्रकार

विकास की दृष्टि से वस्तु दो प्रकार की होती है– आधिकारिक औरं प्रासङ्गिक। अधिकार का अर्थ है फल का स्वामित्व। अधिकारी उस फल के स्वामी को कहते हैं। उसके द्वारा फल पर्यन्त पहुंचाई हुई व्यापक कथा वस्तु आधिकारिक कहलाती है। आशय यह है कि मुख्य कथावस्तु आधिकारिक कहलाती है जिसकी दो शर्तें हैं– एक तो वह कथावस्तु व्यापक हो। आदि से अन्त तक नाटक को घेरे हुये हो और उस कथानक का नायक फलभोक्ता हो। उस नायक के प्रयोजन को सिद्ध करने के लिये जो कथानक मध्य में प्रारम्भ कर दिया जाता है जिसका नायक प्रधान नायक के प्रयोजन को सिद्ध करने के लिये नाटक में समाविष्ट कर दिया जाता है वह कथानक प्रासंगिक कहलाता है।

प्रासङ्गिक कथानक दो प्रकार का होता है– पताका और प्रकरी। जो इतिवृत्त सानुबन्ध होता है अर्थात् मुख्य कथानक के साथ दूर तक चलता है उसे पताका कहा जाता है इसके प्रतिकूल जो कथानक मुख्य नायक का उपकारक तो होता है किन्तू दूर तक नहीं चलता उसे प्रकरी कहा जाता है।

रामायण के कथानायक राम का चरित्र प्रारम्भ से अन्त तक व्यापक है और रावण विजय, सीता की पुनः प्राप्ति रामायण के फल हैं जिसके भोक्ता भगावन् राम हैं। अतः उनसे संबद्ध कथानक आधिकारिक है। सुग्रीव का कथानक मध्य में सम्मिलित हो जाता है और बहुत दूर तक चलता है। अतः उनसे सबद्ध वृत्तान्त प्रासङ्गिक पताका कथा वस्तु है। शबरी का वृत्तान्त भी राम का उपकारक है क्योंकि उससे राम के चरित्र का विकास होता है। किन्तु वह कथानक एक स्थान पर सामने आता है और वहीं समाप्त हो जाता है। अतः उसे प्रकरी कहा जाता है।

यहां यह ध्यान रखना चाहिये कि कोई कथानक स्वभावतः न तो आधिकारिक

होता है न प्रासङ्गिक। रचना के अनुसार कोई कथा आधिकारिक हो सकती है और उसी की उद्देश्य के अनुसार प्रासङ्गिक रूप में योजना की जा सकती है। पताका नायक का भी कोई अन्य फल हो सकता है किन्तु उसकी सिद्धि बीच में हो जाती है। राज्य प्राप्ति का भोक्ता सुग्रीव भी है जो फल उसे राम से पहले ही प्राप्त हो गया।

पताका और प्रकरी का नाटक में समावेश अनिवार्य नहीं है। वैसे शास्त्रकारों ने नियम बनाया है कि पताका का प्रयोग गर्भ सन्धि में होना चाहिये। किन्तु ये सब शास्त्रीय विधान हैं जिनका अभिप्राय नाटककार को पराधीन बनाना नहीं है। ये सब केवल सुझाव हैं; यदि इस प्रकार की योजना से नाटक में सौन्दर्य का आधान करना सम्भव हो तो इस प्रकार की योजना की जा सकती है। भोजराज ने इन भेदों को कुछ थोड़े परिवर्तन के साथ स्वीकार किया; उनके अनुसार कथानक तीन प्रकार का होता है– आधिकारिक आनुषङ्गिक और प्रासङ्गिक। भोजराज ने आधिकारिक के अतिरिक्त दूसरे भेदों की व्याख्या नहीं की है। क्या आनुषङ्गिक और प्रासङ्गिक से उनका अभिप्राय पाताका और प्रकरी से है ?

कथानक के भेद

कथानक की अपनी प्रकृति के अनुसार उसके तीन भेद किये गये हैं– प्रख्यात, उत्पाद्य और मिश्र। रामादि प्रसिद्ध इतिवृत्त प्रख्यात कथानक कहलाता है; काल्पनिक इतिवृत्त उत्पाद्य और दोनों का मिला जुला रूप मिश्र कथानक की श्रेणी में आता है। महावीर चरित, उत्तररामचरित, वेणी संहार इत्यादि प्रख्यात कथानक के उदाहरण हैं; मालती माधव कथानक उत्पाद्य कथानक है। हर्ष चरित का प्रारम्भ सरस्वती की कथा से होता है जो उत्पाद्य है; फिर महाराज हर्ष की कथा आती है जो ऐतिहासिक प्रसिद्ध कथा है। इस प्रकार दोनों का मिला जुला रूप होने से यह मिश्र कथा का उदाहरण है।

भोजराज ने यह विभाजन कुछ अन्य प्रकार से किया है– इनके मत में कथानक ५ प्रकार का होता है (१) इतहासाश्रय जैसे कुमार सम्भव, हयग्रीववध इत्यादि इतिहास पुराण प्रसिद्ध कथानक को लेकर चलने वाली नाट्य कृति (२) कथाश्रयकाव्य जैसे वृहत्कथा के आधार पर अनेक नाटक लिखे गये। उदयन कथा को लेकर लिखे गये नाटक प्रसिद्ध ही हैं; (३) उत्पाद्य जैसे कादम्बरी में पुण्डरीक चन्द्रापीड इत्यादि का चरित्र; (४) अनुत्पाद्य जिसमें कल्पना का सहारा विल्कुल न लिया गया हो और (५) प्रति संस्कार्य इतिवृत्त जिसमें सीधे रूप में कथानक में अनेक दोषों की सम्भावना को देखकर प्रसिद्ध कथानक में काट छाट कर उसे दोष रहित बना दिया जाय।

श्रवण की दृष्टि से भेद

समर्पण की दृष्टि से दृश्य और सूच्य भेदों की पहले ही व्याख्या की जा चुकी जिसमें विष्कम्भक इत्यादि सूच्य भेदों का परिचय दिया गया। श्रवण की दृष्टि से कथानक

के तीन भेद किये जाते हैं– सर्वश्रव्य, नियतश्रव्य और अश्रव्य। श्रवण पर विचार रंगमञ्च पर अवतीर्ण पात्रों की दृष्टि से किया जाता है। परिशीलक तो सभी कुछ सुनता है; सभी प्रकार के सम्भाषण का लक्ष्य तो परिशीलक को सुनाना ही होता है। रंगमञ्च पर उपस्थित सभी पात्र जिस संवाद को सुनते और उसमें भाग लेते हैं वह संवाद सर्वश्रव्य होता है। कभी कभी दो पात्र रंगमञ्च पर उपस्थित किसी पात्र से छिपाकर कुछ कुछ बात करना चाहते हैं और ऐसा प्रतीत होता है कि वह पात्र उस बातचीत को नहीं सुन रहा है तब वह सम्भाषण नियत श्रव्य होता है। इस प्रकार का सम्माषण दो प्रकार का होता है– जनान्तिक और अपवारित। जहां हाथ की आड़ कर किसी के रहस्य की बात चुपके से किसी दूसरे पात्र से की जाय वह जनान्तिक होता है। जहां कुछ घूमकर या मुंह घुमाकर चुपके से कोई बात किसी दूसरे पात्र से कह दी जाती है वह अपवारित होता है। कभी कोई पात्र मानो अपने मन में ही कोई बात कहता है जिसे रंगमञ्च पर उपस्थित कोई पात्र सुनता प्रतीत नहीं होता वह कथन केवल दर्शकों को सुनाने के मन्तव्य से किया जाता है उसे अश्रव्य कथन कहा जाता है।

संभाषण का एक प्रकार और है– आकाशभाषित; इसमें एक पात्र रंगमञ्च पर आता है और अकेले ही इस प्रकार बात करता है मानो कोई दूसरा व्यक्ति कहीं दूर खड़ा हुआ उससे बात कर रहा है। वह अकेला ही दोनों की बात कहता है। अपना उत्तर तो देता ही है; दूसरी ओर की बात को 'क्या कहा?' कह कर पूरा कर लेता है।

पताकास्थानक

वस्तु से ही संवन्धित एक अन्य तत्व होता है पताकास्थानक। पताका में तो दूसरी कोटि का एक कथानक ही अभिनीत किया जाता है। उसको भी पताका इसीलिये कहा जाता है कि जिस प्रकार पताका को देखकर राजसत्ता का परिचय प्राप्त हो जाता है या आजकल विशिष्ट प्रकार की पताका देखकर पता चल जाता है कि यह किस पार्टी का आयोजन है उसी प्रकार अप्रधान कथानक को देखकर प्रधान कथानक का पता चल जाता है। उदाहरण के लिये वालि और सुग्रीव का अभिनय देखने से मालूम पड़ जाता है कि राम विषयक नाटक चल रहा है। पताकास्थानक उस प्रकार का कथानक भाग नहीं होता; वह पताका नहीं पताका जैसा होता है। उससे भविष्य में क्या होने वाला है इसका अनुमान लग जाता है। सफेद पताका को देखकर अनुमान लगा लिया जाता है कि विरोधी पक्ष सन्धि के लिये तैयार है और अब बहुत शीघ्र संघर्ष समाप्त हो जायेगा। इसका सम्बन्ध अर्थप्रकृतियों से है किन्तु इसे अर्थप्रकृतियों में शामिल नहीं किया जाता। न यह कोई व्यक्तित्व है और न सानुबन्ध है। यह कार्य व्यापार में शामिल अवश्य होता है।

भरत ने नाट्यशास्त्र में इसके चार प्रकार बतलाये हैं और उन्हीं का अनुकरण अनेक काव्यशास्त्रियों ने किया है– (१) किसी अन्य उद्देश्य से कोई कार्य करते हुये कोई बहुत

बड़ी उपलब्धि हो जाना पहला पताका का स्थानक है। उदाहरण के लिये रत्नावली में राजा सागरिका से अत्यन्त प्रेम करते हैं और उसे संकेत स्थान पर बुलाते हैं। रानी वासवदत्ता को पता चल जाता है। उधर सागरिका रानी से प्रताडित होकर फांसी लगाने की तैयारी करती है। राजा रानी को मनाने जाता है और मार्ग में सागरिका को फांसी लगाते देखकर समझता है कि रुष्ट होकर रानी फांसी लगा रही है। वह रानी की फांसी छुड़ाने जाता है जहां उसे अपनी प्रेमिका सागरिका मिल जाती है। इस प्रकार रानी को बचाने के प्रयत्न में राजा को सागरिका मिल जाती है।

२. जहां कोई बात बढ़ा चढ़ा कर कही जाय और अन्त में वह सत्य सिद्ध हो जैसे उत्तररामचरित में राम दर्प के साथ कहते हैं– 'स्नेह, दया और सौख्य यहां तक की सीता को भी छोड़ना पड़े तो लोकाराधन करने के लिये मुझे कष्ट नहीं होगा।' और अन्त में राम को वस्तुतः सीता परित्याग करना पड़ता है।

३. जहां कोई बात कही जाय और वह किसी दूसरे की कही बात से जुड़कर भविष्य की किसी महत्वपूर्ण घटना की सूचना दे दे। जैसे प्रेम के क्षणों में दुर्योधन भानुमती से कहता है– 'तुम्हारा आसन तो है हमारा उरु युग्म।' इस 'उरु युग्म' शब्द बोलने के साथ ही उसे सेवक की चिल्लाकर कही गई बात सुन पड़ती 'टूट गया।' सेवक वस्तुतः वायु से पताका टूट जाने की बात कह रहा था। किन्तु 'उरु युग्म टूट गया' इन शब्दों नें मिलकर अन्त में दुर्योधन की जंघाओं के टूटने की ओर संकेत कर दिया। इसी प्रकार प्रतिमा में सीता ने शौक में मुनि वस्त्र धारण किये थे जिससे कुछ ही समय बाद होने वाले वनवास की ओर संकेत हो गया।

४. जहां श्लेष गर्भित द्व्यर्थक शब्दों का प्रयोग किया गया हो और वह प्रधान कथा भाग के किसी अन्य अर्थ की ओर संकेत कर दे। जैसे रत्नावली में खण्डदास ने राजा को एक ऐसा मन्त्र दिया है जिसके प्रभाव से लतायें वेमौसम फूल खिलाने लगती हैं। राजा ने वह प्रयोग लता पर किया है और दावा किया है कि उसका प्रयोग सफल होगा। रानी ने चुनौती दी और दोनों में होड़ लग गई। राजा को सूचना मिली की लता में फूल निकल आये हैं। वह विजयगर्व में फूलकर विदूषक के साथ जाते कह रहा है– 'चलो देखें आज जब मैं समदना उद्दाम उत्कलिका लता को प्रेम पूर्वक देखूंगा तो रानी का मुख कोपारुण हो जायेगा।' यहां 'समदना' और उद्दाम उत्कलिका के दो दो अर्थ हैं– 'समदना' अर्थात् (१) मदनवृक्ष के साथ और (२) कामदेव की भावना से भरी हुई। उत्कलिका का है– (१) खिली हुई कलियों वाली और (२) उत्कण्ठित। यहां राजा के शब्द हैं कि जब मैं उस लहलहाती मदनवृक्ष से चिपटी हुई उत्कटकलियों से भरी हुई लता को प्रेम के साथ देखूंगा तब (अपनी पराजय के कारण) रानी ऐसी क्रोध में भर जायेगी मानो मैं किसी सुन्दरी परस्त्री को देख रहा होऊं।' यह एक संकेत है और कुछ ही समय बाद राजा के सागरिका के प्रति प्रेम को देखकर वास्तव में रानी को क्रोध आ

गया। यह श्लेष मूलक पताका स्थानक है।

दशरूपककार ने केवल चौथे प्रकार के पताका स्थान को स्वीकार किया है और उसमें अन्योक्ति मूलक एक भेद और जोड़ दिया है। अन्योक्ति मूलक पताका स्थानक का उदाहरण– 'दुष्यन्त और शकुन्तला एक लता मण्डप में मिल रहे हैं। उसी समय सन्ध्याकाल में गौतमी के आने की सूचना मिलती है और शकुन्तला बाहर जाने के लिये बाध्य है। वह लता मण्डप को सम्बोधित कर कहती है– 'लतामण्डप! पुनः परिभोग के लिये हम तुम्हें आमन्त्रित करती हैं।' यहां पर शकुन्तला और दुष्यन्त के पुनः लता कुञ्ज में मिलने के लिये यह संकेत हो जाता है। इस प्रकार दशरूपक कार के मत में इसके दो भेद हो जाते हैं। साहित्यदर्पण में भरत निरुपित ४ पताका स्थानकों का विवेचन किया गया है। साहित्यदर्पणकार के अनुसार कुछ लोग कहते हैं कि प्रथम चार अंकों में क्रमशः चारो पताका स्थानों का प्रयोग किया जाना चाहिये। किन्तु ऐसा कोई नियम नहीं; सभी सन्धियों में कितनी ही बार आवश्यकतानुसार पताकास्थानकों का प्रयोग किया जा सकता है। ये पताकास्थानक कभी मङ्गलार्थक होते हैं कभी अमङ्गलार्थक। प्रस्तुत उदाहरणों में ही पहले में उदयन को सागरिका के मिलन की माङ्गलिक प्राप्ति हुई है; दूसरे उदाहरण में सीता परित्याग रूप अमांगलिक परिणाम निकला है; तीसरे में दुर्योधन के उरु तोड़े जाने में परिणति अमांगलिक है और चौथे में वासवदत्ता की सौत आ जाने से उसके लिये अमांगलिक तथा राजा के लिये सुन्दरी युवती के लाभ के कारण माङ्गलिक है।

वस्तु का उदात्तीकरण

वस्तु चाहे प्रख्यात हो चाहे उत्पाद्य अथवा मिश्र सभी प्रकार की वस्तुओं में औचित्य का ध्यान अवश्य रखना चाहिये। वैसे कवि किसी भी प्रकार की वस्तु चुनने के लिये स्वाधीन होता है; किन्तु उसे इस बात का ध्यान रखना पड़ता है कि नाटक देखने में दर्शक को वितृष्णा उत्पन्न न हो; न तो उसे घटनायें अनुचित मालूम पड़ें और न उनमें असंभवनीयता का भान होना चाहिये। प्रख्यात वृत्त ऐसा ही होना चाहिये जिसे देखकर दर्शक यह समझे कि जिन घटनाओं को वह रंगमञ्च पर अभिनीत होते हुये देख रहा है वैसी घटनायें उसके आस पास नित्य होती रहती हैं। यदि थोड़ा बहुत अतिरिक्त शक्ति का परिचय दे दिया जाता है तो दर्शक उसे सहन कर लेता है। किन्तु उसमें मर्यादा का ध्यान अवश्य होना चाहिये। इसी प्रकार दर्शक की वितृष्णा उस अवस्था में भी हो जाती है जब वह ऐसे चरित्र देखता है जिसे वह दुराचार कहता है। ऐसी घटनाओं को बचाने की चेष्टा करनी चाहिये। जो बात प्रख्यात वक्तु के विषय में लागू होती है वही कल्पित वस्तु के विषय में भी कही जा सकती है। वस्तुतः कल्पित वस्तु भी इस अर्थ में प्रख्यात होती है कि उसमें जो कुछ दिखलाया जाता है वैसा लोक में घटित होता रहता है। उसमें केवल नाम और घटना ज्ञात नहीं रहती। कल्पित कथानक के पात्र भी थोड़े समय में परिचित हो

जाते हैं।

यह ध्यान रखना चाहिये कि कवि एवं कलाकार की निष्ठा कथानक की सच्चाई की ओर उतनी अधिक अपेक्षित नहीं होती जितनी भावना की सच्चाई आवश्यक होती है। कवि इतिहासकार नहीं है वह दर्शकों को भावना का आस्वादन कराना चाहता है। यदि घटना की अनिवार्यता के कारण कहीं भावना में विक्षेप उत्पन्न हो रहा हो तो उसे घटना में परिवर्तन करने का अधिकार शास्त्रकारों ने दिया है। इसमें भी उसे लोक-मनोवृत्ति का ध्यान रखना चाहिये। उसे इतनी तो छूट नहीं है कि वह अकवर को जहांगीर का बेटा बना सके परन्तु बद्धमूल सच्चाइयों को ध्यान में रखते हुये उसे व्यवहार और विवरण में परिवर्तन करने का पूरा अधिकार है। भावना की सच्चाई के लिये वह नई कल्पना कर सकता है; नये कथानक का समावेश कर सकता है, प्रख्यात कथा को नया रूप दे सकता है, नई संगति बैठा सकता है। पुराण का दुष्यन्त मनचला नायक है; चिकनी चुपड़ी बातें कर एक भोली भाली कुमारी को वहकाकर उसका शीलभंग करता है और फिर लोकापवाद से डरकर उससे बिल्कुल मुकर जाता है। लोकापवाद से डरना प्रेम की सच्चाई नहीं है। अतः महाकवि ने उसके चरित्र की रक्षा करने के लिये दुर्वासा के शाप की कल्पना करली है। राम का उदात्त चरित्र है; किन्तु वे छिप कर वालि का वध करते हैं और वालि के किसी प्रश्न का उत्तर नहीं दे पाते। उनके चरित्र का परिमार्जन करने के लिये उदात्तराघव में ऐसी परिस्थिति बनाई है कि उस घटना का ही परित्याग हो गया है। एक दूसरे कवि ने आत्मरक्षा के लिये वालिवध का औचित्य सिद्ध किया है।

कैकेयी दशरथ परिवार की एक प्रशस्त महिला है। राम को वनवास देने का उनका कार्य अत्यन्त घृणित है जिसकी महाकवि वाल्मीकि ने निन्दा की है। किन्तु उनके चरित्र में परिमार्जन की अनेक कवियों ने अपने अपने ढंग से चेष्टा की है। किसी ने माया के दशरथ और कैकेयी द्वारा राम को वनवास दिलवाया है; किसी ने रावण के मन्त्री माल्यवान की कूटनीति का सहारा लिया है। किसी ने शूर्पनखा को मन्थरा के वेष में लाकर उनके द्वारा राम को वनवास दिलाने की कल्पना की है। सरस्वती को उनकी जवान पर बैठाकर उनके द्वारा वनवास दिलवाने की कल्पना तुलसीदास की है। प्रतिमा नाटक में उनकी उदात्तता के लिये कल्पना कर उनके इस कार्य को अधिक महान बना दिया है। प्रतिमा नाटक के अनुसार कैकेयी को पता चल गया था कि दशरथ को शाप मिला है कि पुत्र वियोग में उनकी मृत्यु होगी। अब उन्हें चिन्ता सताने लगी। उन्हें चारों पुत्र एक समान प्यारे थे। किन्तु उक्त शाप के कारण उन्हें किसी एक पुत्र का जीवन खतरे में दिखलाई पड़ता था। अतः उन्होंने योजना बनाकर भरत और शत्रुघ्न को ननिहाल भेज दिया और समझ लिया कि राजा दशरथ वृद्ध तो हो ही गये हैं; जीवन का अन्त तो होना ही है। यदि भरत के वियोग में उनकी मृत्यु हो जाय तो शाप की भी पूर्ति हो जायेगी और चारों पुत्रों की जीवन रक्षा भी हो जायेगी। किन्तु वह दांव चूक गया। अब कैकेयी ने यह

परीक्षण राम पर करना चाहा। उनका विचार १४ दिन का वनवास मांगना था। किन्तु इतने अल्प वियोग में हो सकता है दशरथ की मृत्यु न होती। अतः संङ्कल्प विकल्प करते हुये मांगने के समय उनके मुख से १४ वर्ष निकल गया और राम को १४ वर्ष का वनवास भोगना पड़ा तथा उनकी अनेक परेशानियां और सीता वियोग की लम्बी वेदना तथा युद्ध की जटिलताओं का सामना करना पड़ा। इसी प्रकार प्रचलित कथानक में आवश्यकतानुसार परिवर्तन और काटछांटकर चरित्रों के उदात्तीकरण कर लिये जाने का कवि को अधिकार है।

समाज में कुछ बातें रूढ हो जाती हैं और उन पर जनता को विश्वास भी हो जाता है यद्यपि वे बातें समाज के अनुकूल नहीं पड़ती या समाज की दृष्टि में वे सम्भव नहीं होतीं। फिर भी न तो उन्हें बुरा माना जाता है और उन पर अविश्वास किया जाता है। उनका उपादान सदोष नहीं माना जाता। उदाहरण के लिये एक स्त्री के अनेक पतियों का होना सदाचार की मर्यादा के प्रतिकूल माना जाता है। इसी प्रकार पर पुरुष को बुलाकर उससे सन्तान उत्पन्न करना भी सदाचार की मर्यादा में नहीं आता। किन्तु द्रौपदी के ५ पतियों का होना बुरा नहीं माना जाता। कुन्ती का पर पुरुषों से सन्तान पैदा करना जनता में त्रास उत्पन्न नहीं करता। इन घटनाओं को जनता सह गई है। अतः इससे वितृष्णा उत्पन्न नहीं होती। ऐसी घटनाओं का उपादान निषिद्ध नहीं माना जाता। इसी प्रकार समुद्र का लांघना, पहाड़ लेकर आकाश में उड़ना मानव शक्ति के लिये असम्भव घटनायें हैं। किन्तु हनुमान जी के विषय में यदि इनका प्रकथन किया जाता है तो वह असम्भव नहीं माना जाता। किन्तु इस विषय में इतना ध्यान रखना चाहिये कि जिस सीमा तक जनता ने मान्यता दी हो या उसे सम्भव मान लिया हो उसी सीमा तक उसका वर्णन करना चाहिये; उससे आगे नहीं जाना चाहिये। देवताओं की ही बात नहीं राजाओं की अलौकिक शक्ति का प्रचार हो जाता है। शातवाहन का नागलोक जाना प्रसिद्ध ही है। विक्रमादित्य के विषय में भी अनेक किंवदन्तियां प्रसिद्ध ही हो गई हैं। अतः उनके सम्बन्ध में लोकोत्तर शक्ति का वर्णन बुरा नहीं माना जाता। किन्तु काल्पनिक कथाओं के विषय में ऐसी बात नहीं है। उनमें पात्रों के विषय में जनसाधारण की भावना बनी हुई नहीं होती। अतः काल्पनिक कथाओं की रचना करने में असम्भव घटनाओं का वर्णन नहीं ही करना चाहिए। ध्वनिकार का कहना है–

अनौचित्यादृते नान्यद्रसभंगस्य कारणम्।
प्रसिद्धौचित्यबन्धस्तु रसस्योपनिषत्परा॥

[अनौचित्य के अतिरिक्त रस भंग का कोई दूसरा कारण नहीं। प्रसिद्ध औचित्य का निबन्धन रस की सबसे बड़ी पराविद्या है।]

प्रसिद्ध औचित्यबन्ध में ध्वनिकार ने विभाव, भाव, अनुभाव, संञ्चारी भाव इन सभी के औचित्य पर विचार किया है। शृङ्गार रसमय रचना के लिये कवि को ऐसी रचना का

आश्रय लेना चाहिये जिसमें स्पष्ट रूप में ऋतु, माला इत्यादि के उपादान का अवसर हो, जिसमें लीला इत्यादि अनुभावों के अभिनय की गुञ्जाइश हो। यह बात लोक प्रसिद्ध है कि कौन से भाव उचित होते हैं, कौन से अनुचित। समाज में प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि कौन से प्रेम उचित होते हैं कौन से अनुचित। पुरुष का परस्त्री से प्रेम और परस्त्री का परपुरुष से प्रेम अनुचित माना जाता है। किसी स्त्री का अनेक पुरुषों से प्रेम उचित नहीं माना जाता, किन्तु वेश्या के विषय में यह नियम नहीं है। गुरुजनों के प्रति क्रोध अनुचित होता है किन्तु शत्रु के प्रति उचित माना जाता है। इसी प्रकार हास्य रस भी गुरुओं के प्रति उचित नहीं होता। उत्साह एक उत्तम भाव है जो लोक मर्यादा के स्थायित्व में कारण होता है। किन्तु यदि ब्रह्मवध या लोक मर्यादा के उल्लङ्घन के विषय में उत्साह दिखलाया जाय तो वह उचित नहीं होता। यदि भय किसी कायर में दिखलाया जाय तो उचित होगा; किन्तु अत्तम पात्र में भय दिखलाया जाय तो वह उचित नहीं होगा। पहिरावे उढावे में भी औचित्य का ध्यान रक्खा जाता है। जो रमणी प्रियतम से मिलने जा रही है उसकी वेषभूषा और प्रकार की होगी, वियोगिनी की और प्रकार की। इस विषय में भरत का कहना है कि प्रकृतियां नाना शीलवाली होती हैं; शील में ही नाट्य की प्रतिष्ठा होती है। लोक सिद्ध ही सिद्ध माना जाता है; शास्त्र लोक स्वभाव से उद्भूत होता है। अतः नाट्य प्रयोग में लोक ही प्रमाण है। जो शास्त्र है; जो धर्म है, जो शिल्प है, जो क्रियायें हैं लोकधर्म द्वारा सञ्चालित होने पर ही वे नाट्य संज्ञा की अधिकारिणी होती है। स्थावर और चर लोक का शास्त्र के द्वारा इयत्ता के रूप में निर्णय करना असम्भव है। अतः सदाचार की मर्यादा लोक से ही समझ ली जानी चाहिये। वस्तुतः धर्म और अधर्म तथा उचित और अनुचित की भावना प्रत्येक समझदार व्यक्ति के हृदय में स्वतः होती है। अतः लोक प्रवृत्त व्यक्ति अपनी अन्तरात्मा से ही उचित अनुचित का निर्णय कर लेता है। शास्त्रकार केवल दिग्दर्शन करते हैं।

नाट्य रचना

पूर्वरंग, प्रस्तावना (आमुख), अर्थोपक्षेपक, नाट्यवस्तु के अन्तर्गत लोकधर्मी, नाट्यधर्मी, कथानक प्रकार और उसके भेदों तथा औचित्य पर प्रकाश डाला जा चुका। नाट्यवस्तु के प्रस्तुतीकरण की भी एक परिपाटी है जिसका विवेचन शास्त्रकारों ने किया है। यहां यह ध्यान रखना चाहिये पाश्चात्त्य नाट्य शैली के समान भारतीय नाट्य रचना में सङ्घर्ष अनिवार्य नहीं होता, किन्तु यह नाट्यपद्धति किसी भी समस्या को या विषय को लेकर चलती है और उसका विकास दिखलाया जाता है। नाट्य में वस्तु का औदात्य प्रयोजनीय होता है; साथ ही उसका निपुण गुम्फन भी उसे आकर्षक बनाता है। सुन्दर से सुन्दर वस्तु यदि उपस्थापन में ठीक न बन पड़े तो उसकी रमणीयता पराहत हो जाती है और साधारण से साधारण वस्तु गुम्फन की निपुणता से रुचिकर प्रतीत होने लगती है। कलाकार को इस बात का ध्यान रखना पड़ता है कौन सी बात कहने योग्य है, किस वस्तु

का संकेत उसे रुचिकर बनाता है, क्या प्रदर्शनीय है, क्या सूच्य है। इसके साथ ही रचना भी आवश्यक है; प्रदर्शन के प्रकार पर भी ध्यान रखना आवश्यक होता है। कथानक का उचित परिमाण में विभाजन करना और योजनाबद्ध रूप में प्रदर्शित करना नाट्य की सफलता के लिये अत्यन्त उपयोगी होता है। इसी दृष्टि से शास्त्रकारों ने अर्थ प्रकृतियों, कार्यावस्थाओं और सन्धियों पर विचार किया है। किन्तु यह सारा विवेचन परामर्श मात्र है; इसको अनिवार्य नहीं मानना चाहिये। यदि इसमें रसास्वादन में सहायता मिलने की सम्भावना हो तो इसका अनुसरण करना चाहिये, नहीं तो इस योजना में यथेष्ट सुधार कर लेना चाहिये। लक्ष्य रसास्वादन होना चाहिये; योजना का परिपालन नहीं। फिर भी इस योजना का परिपालन प्रायः किया गया है और बड़े से बड़े कलाकारों ने इसका अनुसरण किया है तथा उससे उच्चकोटि की कलाकृतियां तैयार हुई हैं; अतः उन पर प्रकाश डालना अनिवार्य हो जाता है।

अर्थ-प्रकृतियां

अर्थ प्रकृतियां ५ मानी गई हैं– बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी और कार्य। कतिपय आचार्यों ने इनको दो भागों में विभाजित किया है– बीज और कार्य अचेतन अर्थ प्रकृतियां हैं क्योंकि इनमें क्रियाशीलता नहीं होती जबकि बिन्दु, पताका और प्रकरी क्रियाशील होने से चेतन अर्थ प्रकृतियां मानी जाती हैं। बीज का प्रारम्भ में निर्देश कर नाटक प्रवृत्त होता है जो नाटक का प्रमुख प्रेरक होता है और कार्य उसका फल है। शेष तीन चेतन अर्थ प्रकृतियां क्रियाशीलता की द्योतक हैं।

बीज

बीज उपमान पर आधारित है। जिस प्रकार एक बीज मिट्टी और पानी से संयुक्त होकर अंकुरित हो जाता है, बढता पौंड़ता है; शाखा-प्रशाखाओं में फैल फुटक कर झमड़े वृक्ष का रूप धारण कर लेता है तथा समय पर फलित होकर जन समाज के आस्वादन में कारण बनता है उसी प्रकार नाट्य बीज भी अभिनेताओं के क्रियाकलाप और साज सामग्री का आश्रय लेकर अंकुरित होता बढता पौंडता है; एक भरापूरा नाटक बन जाता है और अन्त में फल का रूप धारण कर परिशीलकों के रसास्वादन का कारण बनता है।

बीज का उल्लेख आमुख के बाद किसी पात्र द्वारा किसा जाता है। कारण यह है कि बीज नाटक के इतिवृत्त का एक अंश है; वह प्रस्तावनारूप नहीं हो सकता। कभी कभी आमुख में ही नट के मुख से बीज का उल्लेख करा दिया जाता है, तब मुख्य इतिवृत्त के प्रारम्भ होने पर कोई पात्र उसे पुनः दोहराता है। जब तक वह किसी पात्र के मुख से दोहराया नहीं जाता वह बीज का रूप धारण नहीं करता। उसके बीजरूपता धारण करने के लिये किसी पात्र द्वारा उसका दोहराया जाना नितान्त अपेक्षित होता है। रत्नावली, सत्यहरिश्चन्द्र, यादवाभ्युदय इत्यादि नाटकों में बीजोक्तियां आमुख में उल्लेख के बाद

इसी प्रकार दोहराई गई हैं।

रत्नावली नाटिका में दूरवर्ती सिंहल प्रदेश की राजकुमारी का वत्सदेश की ओर प्रस्थान, प्रवहण भङ्ग, जैसे तैसे कौशाम्बी के राजघराने में पहुंचना, वहां राजा से प्रेम और विवाह नाटिका की कथावस्तु का सार है। उसका बीज है– भाग्य विधान। उसका उल्लेख इस प्रकार किया गया है– 'अनुकूल दैव दूसरे द्वीप से भी, सागर की लहरों के बीच से भी, दिशाओं के छोर से भी लाकर अभिमत को मिला देता है।' वेणीसंहार में पाण्डवों द्वारा बदला लेना नाट्य वस्तु है; बीज रूप में भीमसेन के मुख से कहला दिया गया है 'मेरे जीते जी धृतराष्ट्र के पुत्र स्वस्थ कैसे रह सकते हैं?' यही बात मुद्राराक्षस में भी है। उत्तररामचरित में सीता परित्याग की कथा अपनायी गई है। प्रारम्भ में ही राम की प्रतिज्ञा सामने जाती है– 'लोकाराधन के लिये स्नेह, दया, सुख यहां तक कि जानकी को भी छोड़ने में मुझे व्यथा नहीं होगी।' अभिज्ञानशाकुन्तल में राजा दुष्यन्त एक खेला खाया सौन्दर्य का शिकारी है जिसने भोली भाली आश्रम की हरिणी जैसी शकुन्तला का शिकार किया है। उसी को व्यङ्ग्य रूप में प्रस्तुत कर कवि ने बीज रूप में राजा को शिकारी दिखलाया है। इस प्रकार बीज के अनेक रूप हो सकते हैं। यदि विपत्ति का निराकरण नाटक विषय हो तो बीज रूप में विपत्ति का उल्लेख कर देना ही पर्याप्त होता है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि नाट्यवस्तु किस दिशा में जा रही है इसका संक्षिप्त संकेत कर दर्शकों को नाट्य रसास्वादन के लिये तैयार कर लेना ही बीज का मुख्य लक्ष्य है। यह कभी नायक के आश्रय से प्रकट किया जाता है, कभी प्रतिनायक के और कभी किसी प्रधान सहायक (मन्त्री इत्यादि) के आश्रय से उपनिबद्ध किया जाता है। इस प्रकार जहां बीज के अनेक रूप होते हैं वहां उसके अनेक आश्रय होते हैं और उनके उपनिबन्धन के प्रकार भी अनेक हो सकते हैं।

बिन्दु

आचार्यों ने इसकी उपमा जल में पड़े हुये तेल के बूंद से दी है। जिस प्रकार जल में पड़ा हुआ तेल का बूंद जल में छिहर जाता है उसी प्रकार कथानक में भी बिन्दु सारे नाटक में विखरे हुये होते हैं। इसके लिये दूसरी उपमा सीनरी में प्रयुक्त रंगविरंगे विन्दुओं से दी गई है जिस प्रकार किसी सीनरी में रंगविरंगे बिन्दु डाल दिये जाते हैं जिनकी ओर स्वभावतः ध्यान चला जाता है और दर्शक यह समझ जाता है कि सीनरी का नया मोड़ अमुक स्थान पर आ रहा है। नाट्य दर्पण कार ने सृष्टि उत्पत्ति से इसकी तुलना की है। सृष्टि रचना में जो तत्व सर्वप्रथम उत्पन्न हुआ उसके तीन भाग थे– बीज, नाद और बिन्दु। बीज उसका अव्यक्त भाग था; नाद उभयनिष्ठ व्यक्ताव्यक्त और बिन्दु व्यक्त अंश था।

सामान्य रूप में कथानक में मोड़ को बिन्दु की संज्ञा दी जा सकती है। जब एक

ही प्रकार का कथानक बड़ी देर तक चलता रहता है तब दर्शक स्वभावतः ऊब जाता है और चाहता है कि कथानक में परिवर्तन आये। उस समय कोई नई परिस्थिति या घटना अथवा उक्ति उपस्थित होकर कार्य विधि को नई दिशा दे देती है तब कथानक नये परिवेष में प्रवेश कर जाता है। कथानक में मोड़ देने वाले इस तत्व को नाट्यशास्त्रीय भाषा में बिन्दु कहा जाता है।

उदाहरण के लिये रत्नावली में अनंगपूजन हो रहा है। सभी लोग आमोद प्रमोद में मस्त हैं। सारा आमोद प्रमोद इतने समय तक चलता रहता है कि दर्शकों के मन में कथानक के अग्रिम भाग को जानने की इच्छा जागृत हो जाती है। 'फिर क्या हुआ' की भावना लोगों के मनों को गुदगुदाने लगती है। उसी समय वैतालिक आकर राजा का गुणगान करने लगता है- 'यह राजसमूह चन्द्रकिरणों के समान उदयन के चरणों की प्रतीक्षा कर रहा है' सागरिका सुनकर सोचती है- 'क्या ये वे ही उदयन है जिनके लिये पिताजी ने मुझे भेजा है' और इस विचार के साथ ही प्रणयलीला का प्रवर्तन हो जाता है और कथानक का नया स्वरूप सामने आ जाता है।

अभिज्ञान शाकुन्तल में राजा शिकार खेल रहे हैं। हिरण की उछलकूद, पलायन ये सब जनता को आनन्द दे रहे हैं। राजा वाण का सन्धान करते हैं, उसी समय दो ऋषिकुमार उपस्थित होकर कहते हैं- 'यह आश्रम का मृग है, इसे मत मारिये, मत मारिये' राजा- 'क्या यह आश्रम का मृग है?' ऋषिकुमार बतलाते हैं- 'यह कण्व का आश्रम है, महर्षि सोमनाथ की यात्रा पर गये हैं और पुत्री को अतिथि सत्कार का भार सौंप गये हैं। आप आश्रम का आतिथ्य स्वीकार करें। यहीं से दुष्यन्त और शकुन्तला की प्रणय कथा का सूत्रपात हो जाता है।

प्रयोजन की सिद्धि के लिये अनेक फुटकर खण्ड बिखरे रहते हैं। उनकी विशृङ्खलता को दूर करना भी विन्दु की एक आवश्यकता होती है।

पताका

इसका परिचय नाट्यवस्तु के प्रकारों के प्रसंग में दिया जा चुका है। कर्म सम्पादन के लिये नायक को कतिपय सहयोगियों की आवशय्कता होती है। ऐसे प्रभावशाली व्यक्ति थोड़े ही होते हैं जो बिना सहायक के अनायास ही स्वकार्य सम्पादन कर लेते हैं। अतः अधिकांश कथानकों में पताका अपेक्षित होती है। किन्तु वह अनिवार्य नहीं है। किसी भी नायक पर यह प्रतिबन्ध नहीं है कि बिना सहायक के वह कार्य सिद्धि प्राप्त ही न कर सके। यदि उसमें शक्ति है तो वह स्वयं ही सारा कार्य बना लेता है।

किन्तु अधिकतर ऐसा होता नहीं है। राम जैसे उदात्त, दुर्धर्ष नायकों को भी सुग्रीव की सहायता की आवश्यकता पड़ गई; फिर साधारण व्यक्ति की बात ही क्या?

प्रकरी

इसका भी परिचय नाट्यवस्तु-प्रकारों के प्रसंग में दिया जा चुका है। प्रकरी शब्द का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है 'प्रकरोतीति प्रकरी' अर्थात् जो प्रकृष्ट रूप में सहायक सिद्ध हो। इसकी प्रकृष्टता यही है कि इसका किसी प्रकार का अपना स्वार्थ नहीं होता। यह केवल नायक की सहायता के लिये आता है और सहायता कर दृष्टि से ओझल हो जाता है; फिर घूम कर नायक से पुरस्कार प्राप्त करने की भी परवा नहीं करता। उदाहरण के लिये राम कथा में जटायु का वृत्तान्त प्रकरी ही है। शवरी का वृत्तान्त भी इसी प्रकार का है।

कार्य

'कृ' धातु से विध्यर्थ ण्यत् प्रत्यय होकर कार्य शब्द निष्पन्न होता है जिसका अर्थ है– करणीय या कर्तव्य। करणीय व्यापार में चेष्टा या क्रिया का भी समावेश होता है और फलरूप प्राप्ति भी उसमें सम्मिलित हो जाती है। भरत ने दोनों मिलित अर्थों में इसका नामकरण किया है। 'नाटक में आधिकारिक वस्तु के प्रयोजन की सिद्धि के लिये, योग्य व्यक्तियों द्वारा जो प्रयत्न किया जाता है वह कार्य कहलाता है।' बाद में आचार्यों ने फल को प्रमुखता प्रदान की है। दशरूपक में त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ और काम) को सम्मिलित या पृथक् पृथक् अथवा दो के योग से नाट्यफल या कार्य के लिये स्वीकार किया गया है। साहित्यदर्पण के अनुसार 'जो अपेक्षित साध्य हो, जिसको दृष्टिगत रखकर व्यापार का प्रारम्भ किया गया हो और जिसकी सिद्धि के लिये नाटक का समापन किया जाय उसे कार्य कहते हैं।

कार्यावस्था एवं सन्धि

कलात्मक कृति जैसा कि डा. नगेन्द्र का मत है किसी योजना की अपेक्षिणी नहीं होती। उसमें तो स्वाभाविक उच्छलन होता है। किन्तु यह कथन मुक्तक काव्य और गीतों के विषय में चरितार्थ होता है। प्रबन्ध काव्य और नाटक में किसी न किसी योजना की अपेक्षा अवश्य होती है। योजना के साथ नाटक रचना में कृति सुव्यवस्थित बन जाती है जिससे परिशीलकों और आलोचकों को परिशीलन में परेशानी नहीं होती तथा कृति का मूल्याङ्कन भी ठीक रूप में हो जाता है। योजनाबद्धता को दृष्टिगत रखते हुये आचार्यों ने कार्यावस्थाओं और सन्धियों की कल्पना की है।

भारतीय नाट्यशैली में नाटककार किसी बीज को लेकर क्रियाशीलता के द्वारा विकसित करते हुये उसे कार्य या फल तक पहुंचाता है। उसके लिये वह जिस व्यापार परम्परा की योजना करता है उसे ५ स्तर पार करने पड़ते हैं जिन्हें कार्यावस्था कहा जाता है।

कार्यावस्था

अवस्था का अर्थ है मुख्य फल के प्रति कायिक, वाचिक और मानसिक व्यापार। यह व्यापार, नायक, उपनायक, प्रतिनायक, नायिका आदि किसी के आधीन हो सकता है किन्तु फल भोक्ता प्रधान नायक ही होता है। कार्यावस्था, इस बात का परिचय कराती है की बीज विकसित होते हुये किस स्तर तक पहंच गया है। ५ कार्यावस्थाओं का क्रम इस प्रकार है– (१) पहली कार्यावस्था **आरम्भ** होती है जिसका प्रधान लक्षण है उत्कण्ठा। यह उत्कण्ठा फल प्राप्ति के लिये भी होती है और फल प्राप्ति के लिये किये जाने वाले साधनों के लिये भी होती है। (२) दूसरी कार्यावस्था **प्रयत्न** होती है जिसमें फल प्राप्ति के उपाय करने में त्वरा आ जाती है। इसमें निश्चय हो जाता है कि अमुक कार्य अमुक प्रयत्न से सफल होगा। आरम्भ अवस्था में भी औत्सुक्य होता है; किन्तु वह औत्सुक्य इस दूसरी अवस्था में तीव्रतर हो जाता है। साथ ही इस अवस्था में औत्सुक्य के साथ उत्कट व्यापार का भी सहयोग हो जाता है। (३) तीसरी कार्यावस्था है प्राप्त्याशा इसमें कार्य की प्रगति में विघ्न उपस्थित हो जाता है। फल प्राप्ति की आशा तो होती है किन्तु उसका निश्चय नहीं होता क्योंकि उपाय और विघ्न दोनों मिलकर अनिश्चय की स्थिति उत्पन्न कर देते हैं। इसमें कभी बीज लक्षित हो जाता है और कभी छिप जाता है। विघ्न आते हैं और उनका निराकरण भी होता जाता है। विरुद्ध परिणाम की सम्भावना कभी कम हो जाती है कभी अधिक। (४) चौथी कार्यावस्था होती है **नियताप्ति** इसमें विघ्नवाधाओं के निराकरण से फल प्राप्ति के निश्चय की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। प्रतिबन्धक धीरे धीरे शान्त होते जाते हैं और सहकारी कारण तथा सहायक जोर पकड़ते जाते हैं जिससे फल प्राप्ति सुदूर नहीं रह जाती। (५) पांचवीं कार्यावस्था है फलागम इसमें नायक को प्रत्यक्ष फल की प्राप्ति हो जाती है अर्थात् यह आशंसा नहीं रह जाती कि यदि इस जन्म में नहीं तो दूसरे जन्म में तो अपने प्रयत्न का नायक को फल मिल ही जायेगा। यहां यह ध्यान रखना चाहिये कि फल प्राप्ति का आवेश पांचवीं अवस्था है। पूर्ण फल प्राप्ति और उसका उपभोग तो नाटक का साध्य कहा जा सकता है जिसके बाद नाटक समाप्त हो जाता है।

उक्त पांचों कार्यावस्थाओं के अनुसार शास्त्रकारों ने ५ सन्धियों का विवेचन किया है। सन्धि शब्द 'सम्' पूर्वक 'धा' धातु से बना है जिसका अर्थ होता है सन्धान करना। मुख्य या अधिकारिक कथावस्तु के विभिन्न स्तरों का संधान करना या जोड़ना सन्धि कहलाता है। पांच सन्धियां बद्धरूप क्रम में इस प्रकार होती हैं– (१) आरम्भ कार्यावस्था में मुख सन्धि, (२) प्रयत्न कार्यावस्था में प्रतिमुख सन्धि, (३) प्राप्त्याशा कार्यावस्था में गर्भ सन्धि, (४) नियताप्ति कार्यवास्था में विमर्श सन्धि, और (५) फळागम कार्यावस्था में निर्वहण सन्धि। सन्धियां कार्यावस्थाओं के अनुसार ही होती है। ये उनका अतिक्रमण नहीं कर सकतीं।

कुछ लोगों का विचार है कि सन्धियां अर्थ प्रकृतियों का भी अनुसरण करती हैं। मुख सन्धि में आरम्भ कार्यावस्था और बीज अर्थ प्रकृति होती है; प्रतिमुख सन्धि में यत्न कार्यावस्था और बिन्दु अर्थ प्रकृति होती है; गर्भ सन्धि में प्राप्त्याशा कार्यावस्था और पताका अर्थप्रकृति होती है; विमर्श सन्धि में नियताप्ति कार्यावस्था और प्रकरी अर्थ प्रकृति होती है और निर्वहण सन्धि में फलागम कार्यावस्था और कार्य अर्थ प्रकृति होती है। किन्तु अर्थप्रकृतियों के विषय में यह मत ठीक नहीं है। इतना निश्चित है कि बीज अर्थ प्रकृति मुख सन्धि में आती है और कार्य अर्थ प्रकृति निर्वहण सन्धि में आती है। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि ये अर्थ प्रकृतियां अन्यत्र नहीं आतीं; बीज का अनुसन्धान कहीं भी कर लिया जाता है। कार्य या फल समस्त नाटकीय गतिविधि का प्रेरक होता है और उसकी ओर ध्यान देने वाली अर्थप्रकृतियां हैं। यह सहायता लेने वाले आधिकारिक कथानायक पर निर्भर करता है कि कब किसकी सहायता लेता है और यह भी कि उसे कब और कैसी सहायता उपलब्ध हो जाती है। यह भी निश्चित नहीं है कि सभी नाटकों में पताका और प्रकरी हो ही। अनेक नाटकों में इनका उपादान किया ही नहीं जाता। मुद्राराक्षस में न कोई पताका है न कोई प्रकरी। भागुरायण, सिद्धार्थक इत्यादि ने जो सहायता दी है वे तो आधिकारिणक कथा भाग के ही अंग हैं और चाणक्य के अनुचरों में हैं। उन्हें पृथक् सहायता देने वाला व्यक्ति नहीं माना जा सकता। मालतीमाधव में माधव और कामन्दकी दोनों को पताका नायक कहा जा सकता है। किन्तु दोनों का समावेश मुख सन्धि में ही हो जाता है। बिन्दु तो सामान्य मोड़ को कहते हैं। इस प्रकार के बिन्दु सारे नाटक में बिखरे रहते हैं। सारांश यह है कि अर्थप्रकृतियों की कोई क्रमबद्धता नहीं होती और न इनका सम्बन्ध कार्यावस्थाओं से है।

एक कुशल कलाकार आत्मप्रेरणा से रचना करता है; उसकी योजना भी आत्म प्रेरणा पर ही आधारित होती है। अर्थप्रकृतियों की योजना कलाकार के विवेक पर ही निर्भर है। फिर भी यदि पताका की योजना की जाय तो इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि पताका नायक मुख्य नायक को छाप न ले और उसके समकक्ष न आ जाये। यदि मुख सन्धि में प्रारम्भ से ही पताका का समावेश कर दिया जायेगा तो नायक के समकक्ष उसकी गतिविधि सञ्चालित हो जायेगी और नायक के महत्व में कुछ कमी अवश्य आ जायेगी। फल प्राप्ति में भी यदि दोनों नायकों की समसामयकिता होगी तो नायक की फल प्राप्ति का महत्व नहीं रहेगा। इसीलिये नायक को अपने स्वयं के प्रयत्न का पहले कुछ समय तक अवसर देकर पताकानायक का समावेश अधिक अच्छा रहता है। इसी प्रकार यदि पताका नायक का अपना कोई स्वार्थ हो तो उसकी पूर्ति पहले हो जानी चाहिये जिससे अपने विषय में निश्चिन्त होकर पताका नायक मुख्यनायक का अच्छा सहायक बन सके। प्रकरी के विषय में तो ऐसी कोई कठिनाई है ही नहीं उसका कोई स्वार्थ होता ही नहीं और वह कुछ समय के लिये सहायक बनकर दृष्टि से ओझल हो जाता है।

आशय यह है कि कोई बुराई न हो और अन्यत्र आवश्यक न हो तो पताका का समावेश गर्भ सन्धि में अधिक अच्छा रहता है।

मुखसन्धि और उसके अंग

मुख सन्धि नाटक की पहली सन्धि है। जिस प्रकार किसी व्यक्ति की पहिंचान मुख देखर ही होती है उसी प्रकार नाटक की मुख सन्धि के द्वारा ही इस बात का पता चलता है कि नाटक में किस रस से सम्बन्धित क्या दिखलाया जाने वाला है। इसमें बीज का अवतरण होता है और शृङ्गार इत्यादि रसों को उतने अंश में दिखलाया जाता है जितना प्रारम्भ के लिये उपयोगी हो। आशय यह है कि मुखसन्धि में प्रथम कार्यावस्था प्रारम्भ का प्रवर्तन इस रूप में कर दिया जाता है कि उसमें भावनात्मकता के साथ बीज का उपक्षेप कर दिया जाता है जिसमें नाटक का मुख्य बीज अंकुरित अवस्था में रहता है और दर्शक यह समझ जाता है कि अग्रिम कथा भाग में कौन सा रस सामने आने वाला है। इसमें कभी कभी कई रसों का स्फुरण हो जाता है और विभिन्न रसों की निष्पत्ति की पूर्व सूचना मिल जाती है। अभिनवगुप्त ने मुखसन्धि का सारांश इस प्रकार दिया है– 'प्रारम्भ में उपयोगिनी जितनी अर्थ राशि आपातत: विचित्र आस्वाद वाली आ उपस्थित हो जाती है वही मुख सन्धि है और वह उसको कहने वाला रूपक का एक भाग होता है। उदाहरण के लिये रत्नावली में अमात्य का वीररस, वत्सराज का शृङ्गार और अद्‌भुत तथा बाद में केवल शृङ्गार। इतना सब उस क्रियाकलाप के लिये उपयोगी है जो अमात्य ने सागरिका के राजा द्वारा देखे जाने के लिये उपयोगी बनाया है। अत: रस और अर्थ दोनों दृष्टियों से यह मुख सन्धि है।

मुखसन्धि के अंग

आचार्य भरत ने मुख सन्धि के १२ अंग बतलाये हैं जिन्हें तीन उपविभागों में विभाजित किया गया है– बीजोंद्‌गम सम्बन्धी ६ भाग, रस सम्बन्धी ४ भाग और उपाय सम्बन्धी दो भाग। इनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है–

(अ) **वीजोद्गम सम्बन्धी अंग**– (१) सामान्य रूप से बीज का उपस्थापन **(उपक्षेप)** (२) बीज का विस्तार **(परिकर)** (३) सिद्धि के विश्वास की अभिव्यक्ति **(परिन्यास)** ये तीनों केवल मुख सन्धि में और इसी क्रम से आते हैं। अन्य सन्धियों में इनका उपादान नहीं होता। (४) कुछ अन्तर देकर पुन: एक बार बीज की ओर संकेत **(समाधान)** (५) बीज का अंकुरण या कुछ रहस्यात्मक कथन जिससे बीज अंकुरित रूप में दृष्टिगत होने लगता है **(उद्‌भेद)** (६) बीज के अनुकूल थोड़ा सा कार्य प्रारम्भ कर देना **(करण)** ये तीनों अंग भी केवल मुख सन्धि में आते हैं किन्तु उनमें इसी क्रम से आने का नियम नहीं है। ये विपर्यय से सन्धि के अन्तर्गत आ सकते हैं। इस सन्धि के दूसरे अंग नियमित रूप से केवल इसी सन्धि में नहीं आते; दूसरी सन्धियों में भी आते हैं उनका मुख सन्धि

में उल्लेख केवल प्रायिकत्व को लेकर कर दिया गया है। इस प्रकार मुख सन्धि के सुनिश्चित अंग केवल ये ६ ही हैं।

दूसरा वर्ग रस सम्बन्धी है जिसमें इसे अंकुरित रूप में दिखलाया जाता है और बीज के प्रति भावुकता प्रकट की जाती है। इस वर्ग में ४ अंग आते हैं– (७) किसी वस्तु **(बीज)** या पात्र के गुणों का आख्यान करना तथा प्रशंसा करना जिससे उस वस्तु या पात्र के प्रति दृढ़ आस्था जाग उठे **(विलोभन)** (८) सुख और दु:ख की प्राप्ति **(विधान)** इसमें किसी एक ही के सुख दु:ख का वर्णन रहता है या केवल सुख या दु:ख का वर्णन किया जाता है। (९) सुख या सुखहेतु की कुछ अन्वेषण के बाद प्राप्ति **(प्राप्ति)** (१०) अद्‌भुत रस का आवेश अर्थात् किसी के लोकातिक्रान्त गुण पर रीझना कि अमुक वस्तु क्या है ? क्योंकि ऐसी वस्तु लोक में तो देखी नहीं जाती **(परिभावना)** तीसरा वर्ग उपाय सम्बन्धी है जिसमें किसी प्रयोजन को सिद्ध करने के लिये उपायों की खोज की जाती है। ये दो अंग होते हैं– (११) अपनी शक्ति, सामग्री तथा दूसरे उपयोगी तत्वों का परिशीलन **(युक्ति)** और (१२) किसी कर्तव्य कर्म के प्रति प्रोत्साहन **(भेद)** इस (भेद) के दो और रूप स्वीकृत किये जाते हैं– जैसे पात्र प्रयोजनवश कार्यानुष्ठान के लिये जब इधर उधर घूमते हैं, अथवा किसी कृत्य को स्वीकार कर उसके करने के लिये रंगमञ्च से बाहर चले जाते हैं उसे भी भेद की संज्ञा दी जाती है। कुछ लोग भेद की दूसरे रूप में व्याख्या करते हैं– उनका कहना है कि मुख्य कार्य में यदि प्रतिपक्ष संघटित हो और बीज तथा फलोत्पत्ति में रुकावट डाल रहा हो तो उसमें भेद डालकर उसके विघटित कर देने की प्रक्रिया भेद कहलाती है।

मुख सन्धि के १२ भागों में बीज सम्बन्धी तत्व सभी रुपकों में अनिवार्य होते हैं क्योंकि मुख सन्धि तो सभी रुपकों में होती है। इसमें केवल करण अनिवार्य नहीं होता। उसके स्थान पर युक्ति तत्व अनिवार्य होता है। नाटक का वास्तविक आरम्भ आमुख के बाद होता है। अतः मुख सन्धि के अंग भी आमुख के बाद ही आते हैं। यदि बीजोपन्यास इत्यादि दो एक तत्व आमुख में आ जाते हैं तो भी वे मुख सन्धि के अंग नहीं माने जाते। इन अंगों में भेद एक ऐसा अंग है जो प्रवेशक, विष्कम्भक तथा दूसरी सन्धियों के अंकों के अन्त में अवश्य सिद्ध किया जाता है क्योंकि पात्रों का निर्गम तो सर्वत्र होता ही है जो भेद का प्रमुख लक्षण है।

प्रतिमुख सन्धि और उसके अंग

कार्यसिद्धि के निमित्त प्रयत्न में संल्लग्नता प्रतिमुख सन्धि का प्रधान लक्षण है। उसमें बीज कहीं लक्षित किया जाता है कहीं अलक्षित ही रहता है। इसका प्रारम्भ प्रायः कथानक के किसी मोड़ से होता है। प्रतिमुख सन्धि का सम्बन्ध आधिकारिक कथा भाग से होता है। मुखसन्धि में गम्भीरता के साथ जिस बीज का न्यास किया जाता है उसको

ही प्रवलता के साथ उद्घाटित करते हुये सफलता की ओर अग्रसर होता हुआ दिखलाया जाता है। प्रथम अवस्था के समाप्त हो जाने पर मुख सन्धि भी समाप्त हो जाती है और द्वितीय अवस्था के प्रारम्भ के साथ प्रतिमुख सन्धि का प्रारम्भ हो जाता है। इस प्रकार मुख के प्रति अभिमुख होने के कारण इसका नाम प्रतिमुख सन्धि पड़ा है। यह सन्धि प्रयत्नावस्था से परिच्छिन्न होती है।

प्रतिमुख सन्धि के अंग

मुखसन्धि में बीज का केवल समारम्भ दिखलाया जाता है और फल की महत्ता के प्रति ध्यान आकर्षित किया जाता है; किन्तु प्रतिमुख सन्धि में बीज को फल पर्यन्त ले जाने के लिये प्रवल प्रयत्न की स्थिति बन जाती है। उसमें सुख और दुःख दोनों प्रकार की समय समय पर अनुभूति होती है। कहीं बीज लक्षित होता है; कहीं उसके प्राप्त करने की चेष्टा की जाती है। कहीं सफलता से प्रसन्नता होती है; कहीं विफलता के भय से विषाद होता है। कहीं वैराग्य उत्पन्न होता है; कहीं विघ्नों के निराकरण के लिये अनुनय विनय करना पड़ता है; कहीं बीज के प्रति विशेष आकर्षण दिखलाया जाता है तो कहीं उसे युक्ति से प्रकट किया जाता है; कहीं कठोर शब्दों का प्रयोग किया जाता है तो कहीं सभी सहायकों को एकत्र करने की चेष्टा की जाती है।

उक्त आधार पर प्रतिमुख सन्धि के १३ भेद किये गये हैं– (१) सर्वप्रथम फल के लिये तीव्र उत्कण्ठा व्यक्त की जाती है **(विलास)**, (१) लक्ष्य भूत व्यक्ति का अन्वेषण करना पड़ता है **(परिसर्प)**, (३) अनुनय विनय को या सन्धि प्रयत्नों को ठुकराया जाता है **(विधूत)**, (४) विघ्नों को देख कर वेदना जन्य अभिभूति होती है **(तापन)**, (५) साथियों की हंसी मजाक तथा आक्षेप सहने होते हैं **(नर्म)**, (६) दोषों को छिपाने के लिये जो बहाने किये जाते हैं उनकी हंसी उड़ाई जाती है **(नर्मद्युति)**, (७) उत्तर प्रत्युत्तर किया जाता है **(प्रगमन)**, (८) अभीष्ट सिद्धि में विघ्नों के उपस्थित होने पर खेद की अनुभूति होती है **(निरोध)** (९) रुष्ट व्यक्तियों को समझाया बुझाया जाता है, (खुशामद की जाती है), **(पर्युपासन)**, (१०) विशेष वचन तथा परिस्थिति की अनुकूल व्याख्या की जाती है **(पुष्प)**, (११) कठोर वचनों का प्रयोग किया जाता है **(वज्र)**, (१२) विशेष निपुणता के साथ अपना अभीष्ट सिद्ध करना पड़ता है **(उपन्यास)**, (१३) सभी साथियों को एकत्र किया जाता है **(वर्ण संहार)**।

प्रतिमुख सन्धि के उक्त १३ अंगों में परिसर्प परिगमन, वज्र, उपन्यास और पुष्प प्रधान हैं।

गर्भ सन्धि और उसके अंग

मुखसन्धि में बीज की उत्पत्ति होती है; प्रतिमुख सन्धि में फल प्राप्ति की त्वरा के साथ उसका उद्घाटन तथा विकास होता है। इसी तीसरी गर्भ सन्धि में यह बीज फल

प्राप्ति की ओर अग्रसर होता है किन्तु गर्भित (गुप्त) रहता है। इसीलिये इसे गर्भ सन्धि कहा जाता है। इस सन्धि का सामान्य लक्षण है प्राप्त्याशा; यही इस सन्धि में कार्यावस्था होती है। कहीं कहीं इसका पाठ प्रत्याशा भी है। इसमें बीज सफलता और असफलता के मध्य झूलता रहता है। कभी सफलता की ओर बढता दिखलाई देता है; फिर असफलता में विलीन हो जाता है; फिर सफलता की ओर बढता है, फिर कोई विघ्न आ जाता है और उसमें असफलता बलवती हो उठती है। यही क्रम चलता रहता है। इसमें फल प्राप्ति की आशा और निराशा दोनों में कोई निश्चित नहीं रहती। कुछ आचार्यों के मत में प्राप्ति की सम्भावना तो रहती है किन्तु प्रधानता तो अप्राप्ति अंश की ही होती है। अन्यथा उसके अग्रिम विमर्श सन्धि में समाविष्ट होने की सम्भावना हो जाती है।

गर्भ सन्धि के अंग

गर्भ सन्धि सङ्घर्ष प्रधान सन्धि है। इसके मूल तत्व तीन हैं– प्राप्ति, अप्राप्ति और अन्वेषण। कभी बीज की प्राप्ति होती है; कभी अप्राप्ति, और अप्राप्ति के बाद पुनः अनुसन्धान किया जाता है। इस सन्धि के आचार्यों ने १२ अंग माने हैं– (१) छल कपट का प्रयोग और इस प्रकार या तो बीज में विघ्न डालना या उसे अग्रसर करना **(अभूताहरण)** इसमें कपट पूर्ण वचन विन्यास होने के कारण इसे असत्याचरण भी कहा जाता है; (२) ठीक बात वतलाना जिससे नायक या किसी अन्य की चिन्ता दूर हो सके। मार्गण शब्द का अर्थ खोज करना भी होता है। अतः उसके अन्दर खोज करने का भाव आ जाता है (मार्ग), (३) किसी के उत्कर्ष और सफलता का वर्णन कर नायक में उत्साह और आशा का सञ्चार करना **(उदाहरण)**, (४) साम और दान की उक्तियों और नीति वचनों एवं उपदेशों का इसमें संग्रह किया जाता है सम्भवतः नीतिगत सभी उपायों पर संकलित रूप में विचार करना भी इसी के अन्तर्गत आता है **(संग्रह)**, (५) आवेश पूर्ण वाक्यों का प्रयोग। हर्ष क्रोध इत्यादि आवेशपूर्ण वचनों से हृदय स्वभावतः विदीर्ण हो जाता है। इसीलिये इसे विदीर्ण करने के अर्थ वाली यह संज्ञा प्राप्त हुई है– अर्थात् तोड़ने वाला (त्रोटक), (६) कपट आचारण के द्वारा विरोधी को पराजित करने की चेष्टा करना या विरोधी के कपट पूर्ण व्यवहार को कपट के द्वारा ही व्यर्थ करना। जिसमें अधिक बल होता है वही सफल हो पाता है **(अधिबल)**, (७) राजा, शत्रु या दस्यु से भय **(उद्वेग)**, (८) शङ्का, भय या त्रास के कारण होने वाली उत्तेजना **(विद्रव)**, (९) तर्क वितर्क द्वारा वस्तुतत्व को समझने की चेष्टा करना। विचित्र अर्थ का तर्क जाल के द्वारा प्रतिपादन करना **(रूप)** (१०) किसी लिङ्ग (चिन्ह) देखकर वस्तु तत्व का अनुमान लगाना **(अनुमान)**, (११) गर्भगत बीज को प्रकट कर देना **(आक्षेप)** गर्भ सन्धि में बीज प्राप्त्याशा से निबद्ध रहता है; उसको ठीक रूप में प्रकट कर देना इस अंग की विशेषता है। (१२) चिन्तित वस्तु की प्राप्ति जो मूल बीज से भिन्न हो। कुछ लोग इसके अन्दर भाव ज्ञान को लेते हैं **(क्रम)**।

नाट्य दर्पण कार ने १३वां प्रार्थना परक अंग भी माना है जिससे किसी भाव की भावना की जाती है। किन्तु इसके मानने पर अंगों की संख्या व्याहत हो जायेगी।

नाट्य शास्त्र की कुछ पुस्तकों में विद्रव के स्थान पर संभ्रम पाठ है। दश रूपक कार ने सम्भ्रम पाठ ही माना है। नाट्य दर्पण के अनुसार जो भय आ पड़ा हो वह उद्वेग होता है और जिस भय की सम्भावना होती है वह सम्भ्रम होता है।

गर्भ सन्धि के उक्त अंगों में अभूताहरण, मार्ग, त्रोटक, अधिवल और आक्षेप प्रधान हैं।

विमर्श सन्धि और उसके अंग

विमर्श शब्द का अर्थ है छानबीन। इसकी परिभाषा भरत मुनि ने इस प्रकार की है– 'बीजरूप फलहेतु गर्भ सन्धि में प्रकट होता है, उस विषय में जिस कथानक भाग में विलोभन से, क्रोध से अथवा व्यसन से छानबीन की जाय उसे विमर्श कहा जाता है।' आशय यह है कि मुख सन्धि में बीज की उत्पत्ति होती है; प्रति मुख सन्धि में उसका उद्घाटन होता है और गर्भ सन्धि के अन्त तक आते आते उसकी फलोन्मुखता प्रकट हो जाती है, तब इस विमर्श सन्धि में उस पर विचार किया जाता है। उसमें कार्यावस्था नियताप्ति होती है अर्थात् सफलता निश्चित हो जाती है। अनिवार्य तो नहीं, किन्तु उसमें प्रकरी (एकदेसीय इतिवृत्त) का समावेश प्रायः देखा जाता है।

यहां पर अभिनव गुप्त ने एक नया प्रश्न उठाया है– जब फलोन्मुखता स्पष्ट हो गई और सफलता दृष्टिगत होने लगी तब विचार-विमर्श का प्रश्न ही कहां उठता है। तार्किकों की मान्यता है कि सन्देह और निर्णय के बीच तर्क रहता है। जब निर्णय हो चुका तब तर्क कैसा? इसका उत्तर देते हुये उन्होंने कहा है कि लोक में प्रायः देखा जाता है कि सफलता के निश्चित हो जाने के बाद भी कहीं किसी ओर से कोई विघ्न उद्भूत होता है वह सफलता को सन्दिग्ध बना देता है। कभी कभी विघ्न बहुत शक्तिशाली होता है और वह सफलता के समकक्ष आ जाता है। इस प्रकार इस तुल्यवल विरोध में विघ्नों का अपसारण कर बीज को फल पर्यन्त ले जाना ही इस सन्धि की विशेषता है। वस्तुतः नायक की प्रतिभा उसके सामर्थ्य और ओजस्विता की अभिव्यक्ति इस सन्धि में ही विशेष रूप से होती है। सफलता, निश्चित है उसे प्राणपण से हाथ से सरकने नहीं देना नायक की सबसे बड़ी कुशलता है। इस दिशा में बहुत सोच समझ कर कार्य करना पड़ता है यही इस सन्धि की विमर्शरुपता है।

कुछ लोग इसका नामकरण अवमर्श करते हैं और उसका अर्थ करते हैं विघ्न। ऐसी दशा में बीज का अर्थ है बीज का फल और इस अर्थ से उसकी निवृत्ति अभिप्रेत है। अतएव इस समस्त सन्दर्भ का अर्थ हो जाता है– 'बीज रूप फल की जो उपलब्धि गर्भ सन्धि में दिखलाई पड़ने लगी थी (नवीन विघ्नों के कारण) उसकी निवृत्ति अर्थात्

असम्भवनीयता प्रकट होने लगती है; उसमें विलोभन, क्रोध या व्यसन इत्यादि अनेक कारण हो सकते हैं। उन सबको टालकर सफलता को पुनः उसी स्तर पर लाना इस सन्धि का क्षेत्र है। यदि आवश्यक हो तो पुनः उसके लिये किसी अल्प कालिक सहायक (प्रकरी) की सहायता ली जा सकती है।

वस्तुतः दोनों मतों में अन्तर नहीं है। दोनों में विघ्नों के अपसारण का सिद्धान्त माना जाता है। दशरूपक में इसे अवमर्श ही कहा गया है। इस विषय में अभिनव गुप्त और सागर नन्दी ने कई मतों की समीक्षा की है।

विमर्श सन्धि के अंग

इस सन्धि के १३ अंग बतलाये गये हैं जिनमें कुछ तो विघ्न परक हैं और कुछ बीज के अनुकूल (१) दोषों का प्रकथन **(अपवाद)** ,(२) रोष भाषण **(सम्फेट)** , (३) बन्धन इत्यादि **(विद्रव)** , (४) गुरुओं का तिरस्कार **(द्रव)** , (५) डाटना, डपटना **(द्युति)** , (६) अपमान करना **(छलन)** , (७) क्रोध से भरे हुये व्यक्तियों के साथ क्रोधपूर्ण वार्तालाप **(विरोधन)** ,(८) अपनी शान हांकना और बढ बढ कर बाते करना **(विचलन)** , ये ऐसे अंग हैं जिनमें क्रोध पूर्ण एवं दीप्ति की स्थिति का चित्रण रहता है। ये अंग नायक गत होने से बीज के अनुकूल भी हो सकते हैं और प्रतिनायक गत होने से विरोधी भी। कतिपय अंग सरलता लिये हुये होने से सात्विक अंग कहे जा सकते हैं। वे हैं– (९) विरोध का शमन **(शक्ति)** , (१०) गुरुओं का कीर्तन **(प्रसंग)** (११) अपनी शक्ति का वखान **(व्यवसाय)** , (१२) सिद्धों के आमन्त्रण से भविष्य का ज्ञान **(प्ररोचना)** और (१३) कार्य संग्रह **(आदान)** , ये १३ अंग विमर्श सन्धि के बतलाये गये हैं।

निर्वहण सन्धि और उसके भेद

नाटक का उपसंहार निर्वहण सन्धि के नाम से प्रसिद्ध है। समस्त नाटक में बीज विखरा रहता है। कहीं उत्पत्ति रूप में कहीं उद्घाटन के रूप में और कहीं फलोन्मुखता के रूप में। उस बीज का आरम्भ इत्यादि कार्यावस्थाओं, बिन्दु इत्यादि अर्थ प्रकृतियों, स्थायी सञ्चारी इत्यादि भावों और नायक प्रतिनायक नायिका इत्यादि के व्यापारों से निरन्तर अभिवर्धन होता रहता है। अन्त में सबका पर्यवसान फल में हो जाता है। इस प्रकार फलागम नामक कार्यावस्था की सत्ता में निर्वहण सन्धि होती है। सभी रूपकों में मुख और निर्वहण ये दो सन्धियां ही अनिवार्य होती हैं। अन्य सन्धियां आवश्यकतानुसार प्रयुक्त की जाती हैं। फल दो प्रकार का होता है– सुख प्राप्ति और दुःख हानि। यदि फल सुख प्राप्ति हो तो रति हास उत्साह, विस्मय का स्थायी भावों में और घृति, गर्व, मद, औत्सुम्य इत्यादि का सञ्चारीभावों में बाहुल्य होता है। दुःख हानि के साध्य होने पर शोक भय जुगुप्सा ये स्थायी भाव और आलस्य औग्र्य इत्यादि व्यभिचारी भाव बहुलता से आते हैं।

निर्वहण सन्धि के अंग

निर्वहण सन्धि के सभी १४ अंगों में फल प्राप्ति की गूंज रहती है और यह प्रतीत होता रहता है कि नाटक का उपसंहार हो रहा है– (१) कहीं बीज की याद दिलाई जाती है कि याद करो हमने जो कहा था कर दिखलाया **(सन्धि)** ; (२) कहीं उन व्यक्तियों द्वारा रहस्य को समझने की चेष्टा की जाती है जो अनभिज्ञ होते हैं **(विबोध)** , (३) कहीं अभिनय द्वारा कार्यपूर्ति दिखलाई जाती है **(ग्रथन)** , (४) जो व्यक्ति किसी बात को नहीं जानते उन्हें समझाने की चेष्टा की जाती है **(निर्णय)** , इसमें कोई पात्र अपना अनुभव बतलाकर वास्तविकता को समझाता है। (५) कहीं दो व्यक्ति आपस में बातचीत करते हुये पश्चात्ताप व्यक्त करते हैं या अपनी निन्दा करते हैं **(परिभाषा)** , (६) कहीं शुभ समाचार सुनाकर दूसरों को प्रसन्न किया जाता है **(प्रसाद)** (७) कही वाञ्छित प्राप्ति के आनन्द का अनुभव किया जाता है **(आनन्द)** , (८) कहीं दु:ख से छुटकारे की बात कही जाती है **(समय)** , (९) कहीं प्राप्त फल के स्थिरीकरण की चेष्टा की जाती है **(कृति)** , (१०) कहीं सम्मान इत्यादि की प्राप्ति का वर्णन रहता है **(भाषण)** , नाट्यदर्पण के अनुसार साम और दान की उक्ति भाषण कहलाती है। (११) कहीं कार्य के पहले दर्शन का वर्णन रहता है **(पूर्वभाव)** , (१२) कहीं अद्‌भुत की प्राप्ति का वर्णन रहता है **(उपगूहन)** , (१३) कहीं श्रेष्ठ वस्तु की प्राप्ति का कथन रहता है **(काव्य संहार)** और (१४) **कहीं मंग की आशंसा रहती है (प्रशस्ति)** ।

नाट्य रचना के ६४ अंगों का परिचय ऊपर दिया गया। इन अंगों के ६ प्रयोजन भी आचार्यों ने बतलाये हैं– (१) जिस अर्थ की रचना करनी हो उसका ठीक निर्वाह हो जाय, उसमें कोई अंश छूट न पाये। (२) जिस बात को गुप्त रखना है वह गुप्त रह सके। (३) जिसका प्रकाशित करना अभीष्ट है उसका प्रकाश कर दिया जाय। (४) प्रयोग या अभिनय के विषय में लोगों का अनुराग जागृत हो सके। (५) प्रयोग चमत्कार पूर्ण हो जाय और (६) वृत्तान्त का उपक्षय भी न हो।

ऊपर जिन अंगों का परिचय दिया गया है उनमें अधिकांश का प्रयोग और उपयोग एक से अधिक सन्धियों में किया जा सकता है। किसी विशिष्ट सन्धि में उनका समावेश औचित्य और बाहुल्य के आधार पर किया गया है। प्राय: सभी आचार्यों का मत है कि अंगों का यह निरूपण कलाकार को बन्धन में डालने के लिये नहीं है। ये अंग कहीं भी अनिवार्य नहीं बतलाये गये हैं। इनका प्रयोजन केवल इतना है कि रचनाकार को रचना की योजना बनाने में कुछ सहायता मिल जाय। वैसे रचनाकार इनके स्वीकार करने, परित्याग करने, अन्य अंगों का अन्यत्र प्रयोग करने इत्यादि सभी दृष्टियों से स्वतन्त्र है। इन ६४ अंगों के अतिरिक्त नये अंगों की भी कल्पना की जा सकती है। किन्तु आचार्यों के प्रति सम्मान की भावना बनाये रखने की दृष्टि से परम्परा पालन के लिये इस संख्या और इनका निर्धारण निस्सन्देह लाभ कर है अत: उसका सम्मान किया जाना चाहिये।

नाट्यवृत्तियां

वृत्ति शब्द 'वृतुवर्तने' धातु से क्तिन् प्रत्यय होकर बनता है जिसका अर्थ है वर्तमान होना और वतेन या व्यवहार करना। नाट्य से इसका समास करने पर इसका अर्थ हो जाता है नाट्य में वर्तमान होना या तद्विषयक व्यवहार करना। नाट्यशब्द का अभिनव गुप्त ने अर्थ किया है रस; क्योंकि सभी उपकरणों से कवि रस निष्पत्ति करता है परिशीलक रसास्वादन करता है। रस ही निष्पत्ति और आस्वादन दोनों दृष्टियों से समस्त नाटकों और काव्यों का उद्देश्य होता है। आन्तरिक भावनायें ही रस रूप से अभिव्यक्त होकर आस्वादन में कारण बनती हैं। जब तक ये भावनायें हृद्गत रहती हैं रसनीयता का रूप नहीं धारण कर सकती हैं जब संविधान के द्वारा उसे व्यक्त किया जाता है तभी उनमें रसनीयता आती है। संविधानक रस में विद्यमान रहता है और उसका वर्तन (व्यवहार या प्रयोग) रस को रसनीय बनाता है अतः इस प्रकार के प्रयोग को वृत्ति की संज्ञा दी जाती है। आस्वादन के उद्‌भव में हेतु होने के कारण इन वृत्तियों को काव्य की माता कहा जाता है।

अभिनव गुप्त के अनुसार ये एक प्रकार की चेष्टायें हैं जो कि अभिनय से अभिन्न मानी जाती हैं। ये चेष्टायें अनादि काल से सारे विश्व में व्याप्त हैं। किन्तु ये लौकिक चेष्टायें रसनिष्पत्ति में कारण नहीं होतीं। इनसे भिन्न काव्यशास्त्रीय चेष्टायें कवि, नायक और दर्शक सभी के अन्तः करणों में सामान्य रूप से वर्तमान रहती हैं जो अलौकिक होती हैं। लौकिक और अलौकिक भावनाओं में अन्तर यह होता है कि लौकिक चेष्टा प्रवर्तक होती है और अलौकिक चेष्टा आस्वादक होती है। उदाहरण के लिये यदि लोक में कहीं आग लग जाती है या कहीं झगड़ा हो जाता है हम आग बुझाने या झगड़ा निपटाने के लिये एक दम दौड़ पड़ते हैं। किन्तु अभिनय में यदि कहीं आग का दृश्य सामने आता है या दो पक्षों में झगड़ा होता है हम उसे निपटाने दौड़ते नहीं किन्तु घटनाक्रम के अनुसार उसका आस्वादन करते हैं। दूसरा अन्तर यह है कि लौकिक कार्यकलाप में हमारी दृष्टि कुछ और होती है और रंगमञ्च की घटना हमारे अन्दर भिन्न प्रवृत्ति जागृत करती है। लोक में घटनाक्रम को हम इस दृष्टि से देखते हैं कि अमुक घटना हमसे सम्बन्धित है, या हमारे शत्रु या मित्र से सम्बन्धित है अथवा उदासीन से सम्बन्धित है। उसमें हम घटना के सम्बन्धी के अनुसार या तो पसन्द करेंगे या उससे द्वेष करेंगे या उदासीन हो जायेंगे। किन्तु काव्य की सभी घटनायें हमारे अथवा हमारे शत्रु या मित्र सभी व्यक्तियों के लिये एक ही प्रकार की भावना जागृत करने वाली होती है। लौकिक सुख में हम किसी दूसरे को शामिल करना नहीं चाहते हम उसका उपभोग एकाकी रूप में करना चाहते हैं; किन्तु काव्य और नाट्य में हमारी भावना यही होती है कि हमारे सुख और आनन्द में सभी लोग सम्मिलित हों। लोक में हम सुख के कारणों से सुखी और दुःख के कारंणों से दुःखी होते हैं। हम दुःख की परिस्थिति में पड़ना नहीं चांहते। किन्तु काव्य में सुख दुःख

सभी में हम आनन्दित होते हैं और दु:खात्मक अभिनयों को भी शौक से देखते हैं। लौकिक चेष्टाओं के लिये किसी प्रकार की ट्रेनिंग की आवश्यकता नहीं होती किन्तु काव्यात्मक चेष्टाओं के लिये अभिनेता को ट्रेनिंग भी लेनी पड़ती है और उसका अभ्यास भी करना पड़ता है तथा उसमें शास्त्रीय मर्यादाओं का भी ध्यान रखना पड़ता है। यही कारण है कि काव्यात्मक व नाट्यात्मक चेष्टाओं को अलौकिक कहा जाता है। ये अलौकिक चेष्टायें या अभिनयविधा नाट्य वृत्ति नाम से अभिहित की जाती है। ये नाट्य वृत्तियां चार प्रकार की मानी जाती हैं- भारती, सात्वती, आरभटी और कैशिकी।

वृत्तियों के उद्भव का पौराणिक उपाख्यान

भरतमुनि ने वृत्तियों के उद्भव के लिये एक पौराणिक उपाख्यान का उल्लेख किया है। सम्भवत: इसका कारण यह है कि भरत नाट्य के उद्भव में चारों वेदों और तीनों देवताओं को भी शामिल कर लेना चाहते थे। चारों वेदों के आश्रय की तो व्याख्या कर दी गई थी। तीनों देवताओं में ब्रह्माजी ने तो नाट्यकला को जन्म ही दिया था; शङ्कर जी ने लास्य और ताण्डव को उसमें सम्मिलित कर दिया था। किन्तु विष्णु के योगदान की कोई व्याख्या नहीं की जा सकी थी। अत: वृत्तियों के उद्भव के लिये विष्णु के योगदान की कल्पना कर ली गई।

मार्कण्डेय पुराण के परिशिष्ट (दुर्गा सप्तशती) में एक कथा आती है कि विष्णु के कान के मैल से दो राक्षस मधु और कैटभ उत्पन्न हुये जो ब्रह्मा को मार डालने का उद्योग करने लगे। तब ब्रह्मा जी ने रात्रिसूक्त के द्वारा भगवान को जगाया और उनसे उन राक्षसों को मार डालने की प्रार्थना की। भगवान ने युद्धकर उन राक्षसों को मार डाला। इसी कथा का आश्रय लेकर भरत ने विष्णु के युद्ध के उद्योग के आधार चार वृत्तियों की कल्पना कर ली और कथानक को एक नया रूप दे दिया।

सर्वप्रथम दोनों पक्षों की ओर से भयानक वाद विवाद हुआ जिसमें आक्षेप पूर्ण वचन विन्यास इतना उग्र हो गया कि मानों समुद्र कांप रहा हो; तब ब्रह्मा जी ने कहा यह वाणी का ही व्यापार क्यों चल रहा है- इस असुर को शीघ्र मारिये। तब विष्णु भगवान ने कहा- 'यह तो मैंने वक्ताओं और कवियों के सामने वक्तृता का आदर्श उपस्तित करने के लिये भारती वृत्ति की रचना की है। अब मैं इन राक्षसों का वध करुंगा। एक ओर पैंतरे बाजी और दूसरी ओर जोरदार शब्दों के प्रयोग से पृथ्वी पर एक बहुत बड़ा भार पड़ा। इसीलिये इस वृत्ति का नाम भारती वृत्ति पड़ गया। इस वृत्ति का निर्माण भरतों (अभिनेताओं) के प्रयोग के लिये हुआ था। इसलिये भी इसका नाम भारती वृत्ति पड़ा। अब विष्णु ने युद्ध की तैयारी प्रारम्भ की। इसमें सत्व अर्थात् मनोवृत्ति को ठीक करना अधिक आवश्यक था। सत्व की प्रेरणा से उद्भूत होने के कारण इस वृत्ति का नाम सात्वती वृत्ति पड़ा। अब युद्ध अनिवार्य हो गया। युद्ध में प्रस्थान के पहले तैयारी

करने में विष्णु ने अपने केशों को सजाया संवारा जिसमं लक्ष्मी की शृङ्गार करने की चेष्टाओं की स्मृति भी सम्मिलित थी। शृङ्गार में केशों की बनावट और सजाने संवारने का महत्व सर्वाधिक है। अतः शृङ्गार प्रधान सजावट के आधार पर इस वृत्ति का नाम कैशिकी पड़ा। युद्ध में तेजी आई। अमर्ष और क्रोध से भरी हुई अनेक प्रकार की चारियों से युक्त घनघोर संग्राम होने लगा; तब उस समय की आर (कोड़े या तलवार जैसी) भटी (योद्धाओं) की आंगिक क्रियाओं से जो वृत्ति निर्मित हुई उसका नाम आरभटी वृत्ति पड़ा। ब्रह्माजी ने भगवान् विष्णु की तत्कालीन विचित्र, विषम, और ललित क्रियाओं पर विचार कर चार वृत्तियों की रचना की और उन्हें देवताओं को प्रदान कर दिया। देवताओं से परम्परा से ये वृत्तियां भरत को प्राप्त हुईं जिनका समावेश नाट्यकला में किया गया। विभिन्न चेष्टाओं से न्याय की रचना की गई। इस प्रकार ब्रह्मा और विष्णु का तो वृत्तियों के उद्भम में योगदान था ही कैशिकी वृत्ति की रचना में शङ्कर जी के नृत्य से भी प्रेरणा प्राप्त की गई थी। अतः इस क्रिया में तीनों देवताओं का आशीर्वाद प्राप्त था।

विष्णु की चेष्टाओं के अतिरिक्त वृत्ति के उद्भम में चारो वेदों से सहायता ली गई थी– ऋग्वेद से पाठ्य प्रधान भारती वृत्ति, यजुर्वेद से अभिनय प्रधान सात्वती वृत्ति, सामवेद से शृङ्गार प्रधान कैशिकी वृत्ति और अथर्ववेद से उग्रता प्रधान आरभटी वृत्ति का पादुर्भाव हुआ।

शारदातनय के अनुसार कतिपय आचार्यों ने वृत्तियों का उद्भम एक अन्य प्रकार से बतलाया है– ब्रह्मा जी शिव-पार्वती का नृत्य देख रहे थे। उसी समय उनके चार मुखों से चार वृत्तियों का उद्भम हो गया जिनमें पृथक् पृथक् रसों का समावेश था।

मनोवाक्काय व्यापार को वृत्ति संज्ञा दी जाती है। इसी आधार पर भरत ने वृत्तियों के चार भेद किये हैं– मानसिक व्यापार में सात्वती, वाग्व्यापार में भारती, कायव्यापार में शृङ्गार में कैशिकी और कठोर रसो में आरभटीका प्रयोग किया गया।

भोजराज ने इनके अतिरिक्त एक मिश्र या विमिश्र वृत्ति नामक एक अतिरिक्त वृत्ति और स्वीकार की। किन्तु सभी वृत्तियां मिश्रित ही होती हैं। जब तक अभिनेता मनोभूमि में अभिनय वस्तु से एक रूपता स्थापित नहीं कर लेता उसके अभिनय में सजीवता आ ही नहीं सकती। इस प्रकार सभी वृत्तियों से सात्वती की एक रूपता सिद्ध हो जाती है। वाग् वृत्ति की अपरिहार्यता और व्यापकता सिद्ध ही है। अभिनय के लिये आंगिक चेष्टाओं का होना भी अनिवार्य है। कोई एक वृत्ति दूसरी के अभाव में निष्पन्न हो ही नहीं सकती। इस प्रकार सभी वृत्तियों का सम्मिश्रण तो स्वतः सिद्ध है। प्रधानता के आधार पर ही वृत्ति को विशिष्ट श्रेणी प्रदान की जाती है। अतएव पृथक् रूप में मिश्रावृत्ति मानने की आवश्यकता नहीं है। उद्भट के नाम पर एक अतिरिक्त 'अर्थवृत्ति' की कल्पना की गई। किन्तु इसका कोई अतिरिक्त क्षेत्र ही निर्दिष्ट नहीं किया गया है। अतः इसको भी मानना आवश्यक नहीं है।

आनन्दवर्धन ने इन चारों वृत्तियों को आर्थीवृत्ति बतलाया है। भरत ने ऐसा कोई विभाजन नहीं किया है। जिस भारती वृत्ति को उन्होंने वाग्वृत्ति कहा है उसमें भी अर्थ का सहारा लिया जाता है। फिर उसका क्षेत्र अत्यन्त सीमित कर दिया गया है। समस्त वाचिक अभिनय उसके क्षेत्र में नहीं आता। इस प्रकार वाचिक अभिनय का क्षेत्र शेष ही रह जाता है। इस कमी की पूर्ति उद्‌भट ने तीन शाब्दी वृत्तियों को मानकर की है– परुषा (कठोर वर्ण वृत्ति), उपनागरिका (मृदुवर्ण वृत्ति) और ग्राम्या (तदितर वर्ण वृत्ति)। मम्मट ने इन्हीं शब्दवृत्तियों को मान्यता दी है। रुद्रट ने तीन के स्थान पर ५ शब्द वृत्तियां मानी हैं– मधुरा, परुषा, प्रौढा, ललिता और भद्रा।

वृत्ति के समान दो और तत्वों का विवेचन मिलता है मार्ग और रीति।

नाट्यवृत्तियों का परिचय

भारतीवृत्ति

जिस प्रकार वर्तमान फिल्मों के विषय में दो शब्द प्रयुक्त किये जाते हैं– मूवी औ टाकी, इसी प्रकार प्राचीन भारतीय परम्परा में मूकाभिनय करने वालों को नट और संवादपरक अभिनय करने वालों को भरत कहा जाता है। भरतों की कला भारती कहलाती है जिसमें अभिनय के साथ संवाद सम्मिलित होता है। सम्भवतः इसीलिये भारती को वाणी का पर्याय माना जाने लगा है। किन्तु भारती वृत्ति को शब्दवृत्ति कहना ठीक नहीं है; आनन्दवर्धन के अनुसार भारती वृत्ति भी अर्थवृत्ति ही है क्योंकि इसमें भी अर्थ की प्रेरणा तो रहती ही है। भारतीवृत्ति शब्दप्रयोग का पर्याय नहीं है; इसके लिये अलग से उद्‌भट कल्पित शब्दवृत्तियां विद्यमान हैं। भारती वृत्ति का क्षेत्र उनसे भिन्न है। शास्त्रीय परिभाषा से इसे सीमित कर दिया गया है।

सामान्यतः भारती वृत्ति की ये विशेषतायें हैं– (१) इसका प्रयोग प्रस्तावना में विशेष रूप से होता है, (२) यह वृत्ति करुण तथा अद्‌भुत रसों में विशेष रूप से आती है, (३) इसमें वाग्व्यापार की प्रधानता होती है अथवा यह वाग्व्यापार रूप ही होती है। (४) पुरुष इसका प्रयोग करते हैं, (५) स्त्रियों के लिये यह वर्जित है और (६) इसमें संस्कृत पाठ्य रहता है प्राकृत नहीं। इन नियमों से यह सिद्ध हो जाता है कि भारती वृत्ति सामान्य वाचिकाभिनय की वाचक नहीं है– यह एक योगरुढ शब्द है और वाचिक अभिनय के अर्थ में यौगिक होते हुये भी उक्त अर्थों में रूढ बना दिया गया है। उक्त अर्थों में यह रूढ क्यों बना है इसके कारण हैं– प्रस्तावना का मन्तव्य दर्शकों को अभिनेय नाट्यकृति के विषय में बतलाना और उन्हें उस विशिष्ट अभिनय का आस्वादन करने के लिये जागरूक करना है। यह कार्य कलात्मक शैली पर किया जाता है और उसके लिये नृत्य गीत एवं चमत्कार पूर्ण मनोरम संवाद का आयोजन किया जाता है। अतः स्पष्ट ही है कि उसमें अंगाभिनय का विशेष अवसर नहीं होता। सूचनायें वाचिक ही दी जाती हैं। अतः प्रस्तावना

में वाग्व्यापार मूलक भारती वृत्ति का प्राधान्य तर्क संगत ही है। करुण और अद्‌भुत इन दोनों रसों में क्रियाशीलता नहीं होती जैसी कि शृङ्गार वीर इत्यादि दूसरे रसों में होती है। शोक की अभिव्यक्ति के साधन विलाप प्रलाप ही हैं जो वाचिक अभिनय के क्षेत्र में आते हैं। आश्चर्य की अभिव्यक्ति में भी शारीरिक क्रियाशीलता नहीं होती। केवल शब्दों द्वारा आश्चर्य प्रकट किया जाता है। अतः अद्‌भुत रस में भी भारती की प्रधानता स्वाभाविक है। जब यह परम्परागत नियम बन गया कि भारती वृत्ति संस्कृत भाषा के प्रयोग तक ही सीमित है तब स्वतः सिद्ध हो जाता है कि पुरुष ही इसका प्रयोग करते हैं; क्योंकि परम्परा के अनुसार स्त्रियों के लिये संस्कृत का प्रयोग विहित नहीं है। प्रस्तावना में संस्कृत का ही प्रयोग होता है; क्योंकि संस्कृत कोई प्रादेशिक भाषा नहीं है। यह ऐसी भाषा है जो सभी प्रदेशों में सामान्य रूप से समझी जाती है। सभी प्रान्तीय भाषाओं का मूल होने के कारण यह किसी सीमा तक सर्वजनसंवेद्य बन गई है। प्रस्तावना में नाट्यकृति का परिचय दिया जाता है, अतः उसके लिये ऐसी ही भाषा प्रयोजनीय हो सकती है जिसको सभी प्रदेशों के लोग समझ सकें। भारती के प्रस्तावना में प्रमुख होने का यह भी एक कारण है।

भारती वाग्व्यापार बतलाई गई है। अयोगव्यवच्छेद और अन्ययोगव्यवच्छेद से इसके दो अर्थ हो सकते हैं– 'वाग्व्यापारविषया भारती' में भारती विशेष्य है और शेष अंश विशेषण है। एव शब्द का प्रयोग दोनों अर्थों में एक को स्वीकार्य बना देता है। यदि इसका प्रयोग विशेष्य के साथ किया जाय– 'भारती एव वाग्व्यापारविषया' अर्थात् वाणी के व्यापार का विषय केवल भारती ही है और कोई नहीं तो यह अन्ययोगव्यवच्छेद होगा। किन्तु यह अर्थ ठीक नहीं है क्योंकि पहले ही बतलाया जा चुका है कि भारती का प्रयोग सीमित है; वाणी के व्यापार का विषय उसकी अपेक्षा बहुत विस्तृत है। अतः यह कहना ठीक नहीं कि केवल भारती ही वाणी के व्यापार का विषय है। अब दूसरा अयोग व्यवच्छेद लीजिये। इसमें 'एव का प्रयोग विशेषण के साथ किया जाता है 'वाक्व्यापारविषया एव भारती' अर्थात् भारती में केवल वाणी का व्यापार होता है। यह अर्थ ठीक है क्योंकि भारती में केवल वाणी का व्यापार होता है।

भारती के भेद– आचार्यों ने भारती के ४ भेद किये हैं– (१) **प्रोचना–** इसमें कवि और काव्य की प्रशंसा की जाती है। संस्कृत नाटकों की प्रस्तावनाओं में कवि और काव्य की प्रायः प्रशसा की गई है। इस विषय में मृच्छकटिक सबसे आगे है। रत्नावली में महाराज हर्ष की प्रशंसा की गई है। कहीं कहीं अभिनय कुशलता की भी प्रशंसा की जाती है। अभिज्ञान शाकुन्तल में केवल एक वाक्य में अभिनय कुशलता का परिचय दिया गया है– 'सुविहितप्रयोगमतया आर्यस्य न किमपि परिहायिष्यते।' अर्थात् अभिनेताओं ने भलीं भांति पूरा अभ्यास कर रक्खा है। अतः अभिनय में कोई कमी नहीं रह जायेगी। वत्सराज चरित में भी नटों ने अभिनयकौशल की प्रशंसा की गई है। (२) **वीथी** और (३)

प्रहसन ये दोनों रूपक के प्रकार हैं; उनकी विशेषताओं का प्रयोग प्रस्तावना में भी विहित है। प्रस्तावना में इनका प्रयोग होने से परिचय के साथ दर्शकों को रसास्वादन भी प्राप्त हो जाता है। (४) भारती का चौथा प्रकार है **आमुख**। इसमें सूत्रधार नटी और पारिपार्श्विक का वार्तालाप होता है। (प्रस्तावना के विषय में पिछले पृष्ठों पर उसके प्रकरण में देखिये)

सात्वती वृत्ति

'सात्वती' शब्द सत्व से बना है। इसका व्युत्पति लभ्य अर्थ है सत्व से निष्पन्न व्यवहार। सत्व का अर्थ है रजोगुण और तमोगुण से अस्पृष्ट मन (रजस्तमोभ्यामस्पृष्टं मनः सत्वमिहोच्यते) भरत ने इसका परिचय इस प्रकार दिया है– 'जो वृत्ति सत्व के गुण (उसके उत्थान) और न्याय के आचरण से मुक्त हो, जिसमें हर्ष की अधिकता हो, शोक का भाव समेट लिया गया हो उस वृत्ति को सात्वती वृत्ति की संज्ञा दी जाती है।' इसमें वाणी और अंग का अभिनय इस प्रकार किया जाता है कि संवाद और आङ्गिकाभिनय में सत्व के उत्थान की प्रतीति होती रहती है। वीर, अद्‌भुत और रौद्र रसों में इसका उपयोग होता है शृङ्गार अद्‌भुत और करुण रसों के यह वृत्ति अनुकूल नहीं पड़ती। इसमें अद्‌भुत पात्रों का बाहुल्य होता है और पात्र एक दूसरे को संघर्ष में दबाने का प्रयत्न करते हैं।

संघर्ष में दो स्थितियां हो सकती हैं– (१) विना आगा पीछा देखे क्रोध के साथ शक्ति का प्रयोग करते चले जाना या (२) दिमाग पर पूरा अधिकार रखते हुये विवेक के साथ तथा योजनाबद्ध रूप से पछाड़ने और वीरता प्रदर्शन करने में शान्त चित्त से आगे बढ़ते जाना तथा उसमें आनन्द लेना। दूसरी स्थिति सात्वतीवृत्ति का क्षेत्र होती है। दूसरे को पराजित करने की मनोवृत्ति इसमें कम नहीं होती। किन्तु प्रयोक्ता इसमें मस्तिष्क का सन्तुलन खो नहीं देता। शृङ्गार और करुण में इस वृत्ति का अवसर नहीं होता। शृङ्गार में प्रयोज्य पर विजय प्राप्त करने की चेष्टा नहीं की जाती। प्रेम के प्रतिवन्धक पिता इत्यादि पर विजय प्राप्त करने की चेष्टा की जाती है, किन्तु वह शृङ्गार का क्षेत्र नहीं है। करुण में परिस्थिति से बचने के लिये संघर्ष किया जाता है। किन्तु वास्तविक करुण दशा तब उपस्थित होती है जब अभिलाषित वस्तु या व्यक्ति का अन्तिम रूप से विनाश हो जाता है और शोकग्रस्त व्यक्ति पूर्ण रूप से निराश हो जाता है। जब तक वह स्थिति उपस्थिति नहीं होती प्रयत्न प्रमुख रहता है, आशा बनी रहती है और व्यक्ति शोकग्रस्त नहीं होता। इसीलिये इस वृत्ति को विशोका वृत्ति कहा गया है। सारांश यह है कि जिन रुपकों में तेजोदीप्ति का उत्थान दिखलाया जाता है उनमें वाचिक और आंगिक अभिनय वाली तेज की अधिकारपूर्ण क्रिया का प्रदर्शन किया जाता है उनमें सात्वती वृत्ति होती है। इसमें साहसी, उत्साही पुरुषों की भरमार होती है। क्रियाकलाप और उद्योग में आनन्द लेना इसका मुख्य लक्षण है। रौद्ररस में क्रोध पूर्ण परिस्थिति होती है; उसमें हर्ष नहीं होता और विवेक खो देने से सत्व का समावेश भी नहीं रहता; फिर भी सात्वती वृत्ति

की सत्ता इसमें इसलिये मानी गई है कि किसी किसी के क्रोध में उसकी चेतना जागृत भी रहती है। काम, क्रोधादि पर विजय प्राप्त करना भी तो वीरता का ही कार्य है। इसलिये शान्त रस में भी इसकी सत्ता मानी गई है। अद्‌भुत रस में यद्यपि अपनी तेजस्विता नहीं होती फिर भी दूसरों के लोकोत्तर कार्यों को देखकर ही विस्मय उत्पन्न होता है। इसलिये अद्‌भुत में भी सात्वती वृत्ति स्वीकार की जाती है। नाट्यदर्पण में इसके कार्य बतलाये गये हैं– सरलता डाट डपट, मोद, हर्ष और धैर्य। इस मनोवृत्ति के अभिव्यञ्जन के ये प्रकार बतलाये गये हैं– विचित्र और गम्भीर कथनों का प्रयोग, प्रारम्भ में किये हुये कार्य का परित्याग करना, नये नये साहसपूर्ण कार्यों को स्वीकार करना, साम इत्यादि के प्रयोग, दैव इत्यादि से शत्रुओं में फूट डालना इत्यादि अनेक उपाय हैं जिनका उपादान इसमें किया जाता है।

भरत मुनि द्वारा सात्वती वृत्ति के चार प्रकार बतलाये गये हैं– (१) **उत्थापक**– जहां स्वयं युद्ध के लिये सन्नद्ध होकर दूसरे को ललकारा जाय वहां उत्थापक होता है। (२) **परिवर्तक** किसी कार्य के लिये उठकर तैयार होकर और उसमें लगकर भी संयोगवश किसी दूसरे कार्य को स्वीकार कर लेना परिवर्तक कहलाता है। उदाहरण के लिये महावीर चरित में परशुराम राम को उखाड़ फेंकने आते हैं। किन्तु उनसे प्रभावित होकर आलिंगन करने लगते हैं। दूसरा उदाहरण होगा हनुमान सीता की खोज के लिये लंका को जाते हैं और खोज लेने के साथ ही अशोक वाटिका का विध्वंस, अक्षयवध और लंकादहन जैसे कार्यों को भी कर देते हैं। (३) **संल्लापक**-वीरता पूर्ण तथा एक दूसरे को धीर्षत करने वाले संवाद। जैसे वेणी संहार में अश्वत्थामा और कर्ण का संवाद अथवा महानाटक में अंगद रावण एवं लक्ष्मण परशुराम संवाद। (४) **साङ्घात्य** जहां शत्रु के संघ का भेदन मन्त्र, धन या दैवी शक्ति से अथवा किसी दूसरे उपाय से किया जाय वहां साङ्घात्य कहा जाता है। मुद्राराक्षस, में चाणक्य ने मलयकेतु के सहायकों को मन्त्र या विचार शक्ति से फोड़ लिया। रामायण में विभीषण को राम की दैवी शक्ति का विश्वास दिलाकर फोड़ लिया गया।

कैशिकी वृत्ति

इस शब्द की निष्पत्ति केश शब्द से हुई है। भरत ने इसका सम्बन्ध केस से ही माना है। नाट्यदर्पण में सुन्दर केशों के अर्थ में केशिक शब्द बनाया गया है और फिर केशिक से सम्बन्धित इस अर्थ में कैशिकी की निष्पत्ति की गई है। सौन्दर्य का सर्वोत्कृष्ट उपकरण प्रसाधित केश ही होते हैं (तुलसी के शब्दों में अवलाकच भूषण) जिस प्रकार केशों का शृङ्गार सामान्य शृङ्गार की अभिवृद्धि के कारण होता है उसी प्रकार जो वृत्ति सौन्दर्य और शृङ्गार को लक्ष्य बनाकर चलती हैं उसे कैशिकी वृत्ति कहा जाता है। इस शब्द का एक अन्य अर्थ और है– बढ़े हुये केश स्त्री सौन्दर्य में कारण होते हैं, किन्तु

केशों की बढवार में स्त्री के भावों की अपेक्षा नहीं होती उसी प्रकार काव्य का जो सौन्दर्य भावों की बिना अपेक्षा किये बढ़ता है उस सौन्दर्य में कारण कैशिकी वृत्ति होती है। केशों की अधिकता और उसका सौन्दर्य स्त्रियों में होता है। अतः केशिक शब्द का अर्थ है स्त्रियां। विचारकों नें स्त्री की परिभाषा में केश की विशेषता मानी है– 'स्तन केशवती नारी।' जिस वृत्ति में स्त्री सौन्दर्य उपमान होता है उसे कैशिकी वृत्ति कहते हैं।

भरत ने कैशिकी का परिचय इस प्रकार दिया है– 'जिसमें वस्त्र माला इत्यादि की ऐसी सुन्दरता विद्यमान हो जो मन को वरवस आकृष्ट कर ले और मन में चिपक जाय तथा बहुत ही मनोरम प्रतीत हो, जिसमें स्त्रियों के कार्य कलाप और लीलायें विद्यमान हों, जिसमें नृत्य और गीतों की बहुतायत हो, जिसमें कामोपभोग (रति) से उद्‌भूत समस्त व्यवहार हों ऐसी वृत्ति कैशिकी वृत्ति कही जाती है। इसमें वाद्य और गीत बहुत बहुत अधिक होते हैं, नृत्य की बहुतायत होती है, शृङ्गार परक अभिनय के अनुकूल चित्र विचित्र वेषभूषा बनाई जाती है, शरीरशृङ्गार की विशेषता होती है। यह वृत्ति विचित्र प्रकार के पदों वाक्यों और प्रबन्धों (रचनाओं) वाली, हंसना, रोना, क्रोध करना इत्यादि से परिपूर्ण स्त्री पुरुषों की काम वासना से संवलित समझी जानी चाहिये।'

शृङ्गार रस की सभी प्रकार की चेष्टायें इसके अन्तर्गत आती हैं जिनमें संयोग शृङ्गार भी होता है और वियोग शृङ्गार भी। सौन्दर्य का अधिष्ठान स्त्रियां होती हैं अतः इसमें स्त्रियों की प्रधानता रहती है। कहीं हास्य, कहीं भय, कहीं मान्, कहीं सापराध पति के प्रति उचित व्यवहार आदि असंख्य तत्व इस वृत्ति के अन्तर्गत आते हैं; जिसमें कायिक वाचिक मानसिक तीनों प्रकार के व्यापार आ जाते हैं।

अभिनव गुप्त के अनुसार कैशिकी वृत्ति सभी वृत्तियों और सभी काव्यों का प्राण तत्व है। आनन्द वर्धन का कहना है कि किसी विरोधी भाव के संस्पर्श से शृङ्गार रस दबता नहीं जबकि शृङ्गार रस किसी अन्य रस में अपना सिक्का जमा लेता है। नाट्य दर्पण के अनुसार कहीं मान, कहीं हास्य, कहीं शृङ्गार हास्य, कहीं भय हास्य कहीं सापराध पति का स्नेह भेदन, कहीं पूर्व नायिका की ओर से भय, इत्यादि अनेक कारणों से कैशिकी वृत्ति उद्‌भूत होती है। इसमें कायिक, वाचिक और मानसिक तीनों प्रकार के व्यापारों का उपादान होता है। शृङ्गार से मानस व्यापार, हास्य तथा नर्म भेद से वाचिक और अभिनय से कायिक व्यापार संगृहीत होता है। केशों के भाव हीन स्वतः बढने की भी उपमा यहां लागू होती है– नृत्य, गीत इत्यादि अनुरञ्जक उपकरण बिना अर्थ ज्ञान की अपेक्षा किये अपनी सत्ता से ही चमत्कृत कर आनन्द देने वाले होते हैं।

भरत ने कैशिकी वृत्ति के चार अंग माने हैं– नर्म, नर्मस्फूर्ज, नर्मस्फोट और नर्मगर्भ। नर्म का अर्थ है परिहास वचन जिससे प्रिय का अभिमुखी करण हो। यह नर्म तीन प्रकार का होता है– केवल हास्य, सशृङ्गार हास्य और सभय हास्य। शृङ्गार हास्य के तीन उपभेद होते हैं– आत्मोपक्षेप नर्म, संभोग नर्म और मान नर्म। भय नर्म के दो भेद होते हैं–

शुद्ध और संकीर्ण। इस प्रकार शुद्धहास्य का एक प्रकार, शृङ्गार हास्य के तीन प्रकार और भय हास्य के दो प्रकार मिलकर नर्म ६ प्रकार हो जाता है। (१) केवल हास्य (शुद्ध हास्य) में कोई मजाक करते हुये प्रेम पैदा कर लिया जाता है; (२) आत्मोपक्षेप नर्म में व्यञ्जना वृत्ति से प्रणय निवेदन किया जाता है। इस प्रकार के अनेक उदाहरण शृङ्गारिक कविताओं में मिलते हैं। (३) सम्भोग नर्म में सम्भोगेच्छा प्रकाशन परक चेष्टायें रहती हैं जिसमें हास्य का पुट भी मिला रहता है। (४) मान नर्म में मानवती की क्रियायें रहती है जिसके उदाहरण शृङ्गारिक काव्यों में अनेकशः मिलेंगे। (५) शुद्ध भय नर्म– जहां मजाक में भय दिखलाया जाता है। उदाहरण के लिये– रत्नावली में सुसंगता (मजाक में) 'मैंने तुम्हारा सब हाल जान लिया है, अब मैं चित्र फलक ले जाकर देवी से सारी बातें कहूंगी।' (६) संकीर्ण भय नर्म में भय के साथ शृङ्गार भी मिला रहता है जैसे अपराध प्रकट हो जाने पर रूठी हुई किसी नायिका को सर्प इत्यादि का भय दिखलाकर आलिंगन के लिये विवश कर देना। इन छः प्रकार के नर्मों में प्रत्येक का वाणी, वेष और चेष्टा इन तीन तीन प्रकारों से अभिनय किया जाता है। इस प्रकार नर्म के १८ प्रकार होते हैं। नर्म स्फूर्ज में नायक नायिका का प्रथम सम्मिलन सुख पूर्वक हो जाता है किन्तु बाद में दूसरों के जान लेने का भय उत्पन्न हो जाता है। नर्म स्फोट में भय क्रोध इत्यादि अन्य भावों के संस्पर्श से शृङ्गार की अभिव्यक्ति होती है और नर्म गर्भ में कौशल पूर्वक अपने स्वरूप को छिपाकर शृङ्गार का उपभोग किया जाता है।

आरभटी वृत्ति

यह शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है– आर और भट। इस प्रकार इसका अर्थ है ऐसी वृत्ति जिसके भट (योद्धा) आर के समान हों। नाट्य दर्पण में आर का अर्थ किया गया है– चाकू और रामचन्द्र गुण चन्द्र ने इसका अर्थ किया है चावुक। कोश ग्रन्थों में लोहे पीतल या किसी अन्य धातु के बने काटने वाले किसी अस्त्र को आर कहा जाता है। भटों के चाकू इत्यादि चलाने की क्रिया की प्रधानता में आरभटी वृत्ति होती है। कोश में आर का अर्थ परीक्षा करना भी दिया गया है। अतः इसका एक अर्थ यह भी होता है जिस वृत्ति (व्यवहार) में योद्धाओं के अस्त्रशस्त्र चलाने की और उनकी वीर वृत्ति की परीक्षा होती है उसे आरभटी कहा जाता है। भरत ने इसका परिचय इस प्रकार दिया है– 'जिसमें आरभटों के क्रोध इत्यादि गुण अत्यधिक रूप में विद्यमान हों, अनेक प्रकार के कपट और वञ्चनायें भरी हों, दम्भ और झूठ जिसमें प्रधान हो वह आरभटी वृत्ति होती है। इसमें बनावटी व्यक्तित्व, लकड़ी, चमड़े इत्यादि के बने हाथी इत्यादि दिखलाकर धोखा दिया जाता है, माया, इन्द्रजाल इत्यादि का प्रयोग किया जाता है, छेद और भेद प्रायिक होते हैं, युद्ध और झगड़े रोज होते रहते हैं। राजनीति के दांव पेंच, सामदान इत्यादि नीतियां और सन्धि विग्रह इत्यादि उपायों का प्राधान्य होता है, हठ पूर्वक जो अतिचार और मर्यादातिक्रम किये जाते हैं उनसे अनेक उपद्रव उत्पन्न होते हैं। इसमें

विजय, पराजय, लाभ हानि ये सब तत्व सम्मिलित रहते हैं।

इसकी प्रवृत्तियां अनेक प्रकार की होती हैं; कभी कोई व्यक्ति दूसरे व्यक्ति का रूपधारण कर लेता है; कहीं आग लगती है। उत्तेजित भाषण, भ्रान्ति, व्यर्थ के विवाद, बाहुयुद्ध, शस्त्र प्रहार, कूदना, गिरना, छलांगना इसके सामान्य तत्व हैं।

आरभटी के अंग

भरत ने इसके चार अंग बतलाये हैं- '**संक्षिप्तिका**- किसी उद्देश्य की सिद्धि के लिये किसी की आकृति, अनुकृति बनाकर मुख्य वस्तु के स्थान पर निक्षिप्त कर देना; (२) **अवपात**- किसी विषम परिस्थिति के उत्पन्न हो जाने पर भय इत्यादि किसी भावना के अधिक क्षेत्र में व्याप्त हो जाने पर दौड़ दूध का अधिक बढ़ जाना; (३) **वस्तूत्थापन**- विद्रव किसी विषम स्थिति के उत्पन्न हो जाने पर विभिन्न व्यक्तियों में विभिन्न भावनाओं का उद्भव होना और (४) **सम्फेट**- युद्ध की परिस्थिति जिसमें कपट, निर्भेद, शस्त्र प्रहार, वाग्युद्ध इत्यादि संग्राम विषयक सभी कुछ आ जाता है।

नाटक के पात्र

'रस ही काव्य की आत्मा है' यह कहने का अभिप्राय यही है कि कवि परिशीलकों को रति, क्रोध, भय, उत्साह इत्यादि मनोवृत्तियों का आस्वादन कराना चाहता है। ये भाव सभी के अपने अन्तः करण में विद्यमान रहते हैं। उन्हीं का प्रदर्शन जब रंगमञ्च पर किया जाता है तब वे आस्वादन योग्य बनते हैं। किन्तु ये भाव अपनी सत्ता से ही प्रदर्शित नहीं किये जा सकते। जिस प्रकार कोई वस्तु प्रदान करने के लिये किसी पात्र की आवश्यकता होती है उसी प्रकार रसास्वादन के लिये भावना को समर्पित करने के निमित्त पात्र की आवश्यकता होती है। उदाहरण के लिये यदि कवि रति का आस्वादन कराना चाहता है तो वह प्रेम का प्रदर्शन शकुन्तला और दुष्यन्त पर ढाल कर करेगा और उस प्रदर्शन को इस सीमा तक ले जायेगा कि दर्शक शकुन्तला और दुष्यन्त के व्यक्तित्व को भूलकर रति रूप हो जायेंगे। आशय यह है कि भाव को समर्पित करने के लिये पात्र स्त्री पुरुष होते हैं। इसीलिये रस शास्त्र के आचार्यों ने प्रारम्भ से ही लेकर नायक नायिका भेद उनकी विशेषतायें चेष्टायें इत्यादि का रसोपकरण के रूप में विवेचन किया है। किसी वस्तु के रखने के लिये उस वस्तु के उपयुक्त पात्र चयन की आवश्यकता होती है। यदि अयोग्य तथा असमञ्जस पात्र में कोई वस्तु रख दी जाय तो उसका स्वाद बिगड़ जाता है वह वस्तु अव्यवहार्य एवं फेंक देने योग्य हो जाती है। इस प्रकार किसी भाव को प्रदान करने के लिये उसके अनुकूल ही पात्र चुनना पड़ता है अन्यथा रस के विगड़ जाने की सम्भावना बनी रहती है। इसी वास्तविकता को ध्यान में रखते हुये आचार्यों ने नायक नायिका भेद पर विस्तृत प्रकाश डाला है।

पुरुष पात्र

नाट्यकला विश्व का प्रतिरूप है। अतः नाट्यप्रवृत्त पात्रों के उतने ही प्रकार हो सकते हैं जितने विश्व के मानवों के प्रकार होते हैं और विश्व के मानवों के उतने ही प्रकार होते हैं जितने विश्व के मानव। प्रत्येक मनुष्य अपने में एक इकाई है। अतः शास्त्र केवल दिशा निर्देश करता है। सामान्य मानव, उसकी विशेषतायें, उसकी सफलता, असफलता, उसके व्यवहार क्षेत्र इत्यादि सभी बातों में लोक ही प्रमाण होता है और लोक से ही उनका अध्ययन करना चाहिये। यही भरत इत्यादि आचार्यों का निर्देश है। सभी कुछ विवेचन करने का बाद भरत ने कह दिया है मानवचरित का अध्ययन लोक से ही करना चाहिये।

भरत ने समस्त स्त्री पुरुषों के तीन वर्ग बताये हैं- (१) **उत्तम प्रकृति** के व्यक्ति- इस वर्ग की विशेषतायें होती हैं- जितेन्द्रियता, गम्भीरता, उदारता, लोक और शास्त्र ज्ञान की निपुणता, दाक्षिण्य, धीरता, त्याग इत्यादि। इस वर्ग की स्त्रियां कोमल हृदय, सलज्ज, विनयशील, मधुर, रुपवती स्मितपूर्वाभिभाषिणी, गुणवती, गम्भीर और धीर होती हैं। (२) **मध्यम प्रकृति** के लोग- लोक व्यवहार में निपुण शिल्प शास्त्र में व्युत्पन्न, ज्ञानवान एवं मधुर स्वभाव वाले होते हैं। इस वर्ग की स्त्रियों में प्रथम वर्ग की स्त्रियों के ही गुण होते हैं; किन्तु उनमें प्रथम वर्ग की स्त्रियों के गुणों से वे गुण घट कर होते हैं। (३) **अधम प्रकृति** के लोगों की वाणी रूखी होती है, वे दुश्शील, पिशुन, मित्रद्रोही अकृतज्ञ आलसी, दुराचारी, कलहप्रिय, पापी, परापकारी क्रोधी छलकपट परायण लोते हैं। अधम प्रकृति की नारी में भी यही सब दोष होते हैं। नाटक में प्रधान पुरुष का विशेष महत्व होता है जिस पर आचार्यों ने विशेष विचार किया है। सामान्यतः आधिकारिक कथावस्तु के फल का उपभोक्ता प्रधान नायक कहा जाता है। नायकत्व की दृष्टि से पात्रों को चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता है- (१) नायक जो प्रधान फल का भोक्ता होता है, (२) अनुनायक जो लगभग नायक जैसे गुणों का ही होता है किन्तु उसका महत्व उतना अधिक नहीं होता। रामायण के कथा नायक राम हैं; लक्ष्मण भी उन्ही के जैसे गुणों वाले हैं; किन्तु उनका महत्व घट कर है। इसी प्रकार कृष्ण के सहयोगी बलराम हैं। (३) उपनायक- यह पताका नायक होता है। वह भी किसी सीमा तक फलभोक्ता होता है। राम के साथ सुग्रीव और विभीषण भी फलभोक्ता हैं किन्तु उनका वैसा महत्व नहीं जैसा राम का। (४) प्रतिनायक- यह विरोधी पक्ष नायक होता है जैसे रामायण में रावण या महाभारत में दुर्योधन।

नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थों में नायक के निम्नलिखित गुण बताये गये हैं-

नेता विनीतो मधुरस्त्यागी दक्षः प्रियम्वदः।

रक्तलोकः शुचिर्वाग्मी रुढवंशः स्थिरोयुवा॥

बुद्ध्युत्साहस्मृतिप्रज्ञाकलामानसमन्वितः।

शूरो दृढश्च तेजस्वी शास्त्रचक्षुश्च धार्मिकः॥

ये सब उच्चकोटि के गुण हैं जो किसी नायक में अनिवार्य माने जाते हैं। यहां यह ध्यान रखना चाहिये कि यद्यपि नायकों के चरित्र की दुर्वलता उनके चरित्र में स्वाभाविकता लाने के लिये आवश्यक होती है। न कोई पुरुष गुणरहित होता है न दोषरहित। फिर भी भारतीय साहित्य की अपनी विशेषता आदर्शवाद और आनन्दवाद के कारण नायकों के दोषदर्शन को अधिक महत्व नहीं दिया गया है। इसके प्रतिकूल जहां कहीं दोष की सम्भावना दिखलाई भी दी है वहां उसके परिमार्जन की चेष्टा की गई है।

शास्त्र में नायक चार प्रकार के माने गये हैं- (१) **धीरोदात्त** ये महाप्राण, अति गम्भीर, क्षमाशील, स्थिर, अभिमान के भाव को गुप्त रखने वाले होते हैं, उनका व्रत दृढ होता है। (२) **धीर शान्त-** इनमें उदात्तता के गुण तो होते ही हैं साथ ही ये अभिमान शून्य, कृपालु, विनयी, न्याय परायण और उदासीन स्वभाव के होते हैं। (३) **धीरललित-** इनके चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता होती है कलापरायणता। ये कोमल प्रकृति के तथा चिन्ता रहित होते हैं। ये विलासी, भोग सहित एवं रति प्रिय होते हैं। और (४) **धीरोद्धत-** ये अभिमान और द्वेष से भरे रहते हैं। छल कपट और माया इनके स्वभाव की मुख्य प्रवृत्ति होती है। ये अंहकारी भयंकर घमण्डी, चंचल, क्रोधी तथा आत्म श्लाघा परायण होते हैं।(इस वर्गीकरण में प्रत्येक को धीर बतलाया गया है। इसका आशय यह है कि इन प्रत्येक वर्ग के व्यक्तियों में अपने स्वभाव की दृढता होती है- धीरोदात्त व्यक्ति उदात्तगुणों का अविक्रमण नहीं करता और धीरोद्धत व्यक्ति कभी छल कपट से रहित नहीं हो सकता। धीर ललित व्यक्ति जीवन के आमोद प्रमोद और विषयोपयोग से कभी मुख मोड़ ही नहीं सकता। युद्ध चल रहा है; किन्तु रत्नावली के नायक ने सारे राज्य का भार मन्त्रियों पर डाल रक्खा है, उसे विषयोपयोग छोड़कर दीन दुनिया की कोई चिन्ता नहीं।)

शृङ्गार की दृष्टि से नायकों के चार प्रकार बतलाये गये हैं- (१) **दक्षिण-** जो अनेक पत्नियों और प्रेमिकाओं से प्रेम करता है किन्तु निष्पक्ष रहता है, किसी से प्रति पक्षपात नहीं करता, सर्वदा इस बात का ध्यान रखता है कि सभी प्रेमिकायें सन्तुष्ट रहें। (२) **अनुकूल-** जो नायक एक मात्र अपनी पत्नी से ही प्रेम करता है, कभी स्वप्न में भी किसी अन्य स्त्री की ओर आंख उठाकर भी नहीं देखता। (३) **धूर्त-** जो निश्शङ्क होकर यौन अपराध करता है, डाटे फटकारे जाने पर भी लज्जित नहीं होता। अपराध चाहे सामने देख लिया गया हो फिर बी झूठ बोलता रहता है। (४) **शठ-** इसका प्रेम कहीं होता है; बाहर से प्रेम प्रदर्शन किसी और के प्रति करता है और छिप छिप कर किसी और को धोखा देता है।

शास्त्रकारों ने नायक के ८ गुण बतलाये हैं- (१) **शोभा-** इस गुण का सम्बन्ध शारीरिक सौन्दर्य से तो है ही स्वभावगत सौन्दर्य भी इस गुण में आ जाता है। (२)

विलास चाल तथा दृष्टि में धैर्य और स्मितपूर्वक बातचीत की प्रवृत्ति इस गुण के अन्तर्गत आ जाती है। (३) **माधुर्य**– क्रोध के कारणों के उपस्थित होने पर भी क्रोध न करना माधुर्य कहलाता है। (४) **गाम्भीर्य**– भय शोक इत्यादि तीव्र भावों में भी घबराहट का अनुभव न करना गाम्भीर्य है। (५) **धैर्य** महान विघ्नों के होते हुये भी अपने स्वीकृत कार्य का परित्याग न करना धैर्य नाम का गुण है। (६) **तेज**– यदि कोई व्यक्ति आक्षेप या अपमान करे तो उसको सहन करना और विरोध में प्राण भी दे देना तेज कहा जाता है। (७) **लालित्य** वाणी और वेष की मधुरता तथा शृङ्गार की चेष्टायें ललित गुण में आती है। और (८) **औदार्य**– प्रिय भाषण के साथ दान देना तथा शत्रु मित्र के प्रति समान भाव रखना औदार्य कहलाता है।

नायक के सहायक

नायक के सहायकों में सर्वप्रथम **पीठमर्द** आता है। यह उपनायक भी कहा जा सकता है। यह मुख्य नायक के स्वार्थ साधन में तत्पर रहता है। स्थानापन्न होकर नायक का कार्य भी सञ्चालित रखता है। विभिन्न परिस्थितियों में विभिन्न व्यक्ति नायक के सहायक होते हैं। राजनीति तथा अर्थशास्त्र के चिन्तन में **मन्त्री** सहायता करता है। शासन व्यवस्था तीन प्रकार की होती है– (१) स्वाम्यायत्त शासन जिसमें राजा निर्णायक होता है, मन्त्री केवल परामर्श देता है। (२) सचिवायत्त शासन जिसमें मन्त्री पूरा अधिकारी होता है, (३) उभयायत्त शासन जिसमें दोनों सहयोगी होकर निर्णय लेते हैं। राजदूत का पद भी महत्वपूर्ण होता है। (१) **निसृष्टार्थ**– जिसको राजा की ओर से निर्णय लेने और किसी समझौते पर हस्ताक्षर करने का पूरा अधिकार होता है, (२) **मितार्थ**– इसे सीमित अधिकार होते हैं और अपने शासन की सहमति से ही यह कोई भी निर्णय ले सकता है तथा कार्य बना सकता है। (३) **सन्देशहारक**– इसका कार्य सन्देश वहन करना होता है। उसके क्षेत्र में निर्णय लेना नहीं आता। ये तीनों प्रकार के राजदूत राजा के कूटनीतिक सम्बन्धों के सहायक होते हैं। शत्रुओं और दुष्टों को दण्ड देने में युवराज, दूसरे कुमार, आटविक (वन में छिपने के ठिकानों का ज्ञान रखने वाले) विभिन्न प्रकार की सेनाओं के सेनाध्यक्ष तथा सैनिक सहायक होते हैं। इसी प्रकार राजकार्य सञ्चालन के दूसरे विभागों में अधिकारी भी सहायक होते हैं।

राजा के शृङ्गार के सहायक होते हैं– विट, चेट, विदूषक, इत्यादि। ये सब भक्त होते हैं, हंसी मजाक में निपुण होते हैं और कुपित स्त्रियों के मान भंग करने की कला में निपुण होते हैं। किन्तु स्वयं सभी सच्चरित्र होते हैं। **विट** देशकाल को समझाने वाला कोई धूर्त व्यक्ति होता है जिसे कला के एक देश का ज्ञान होता है, जो नये नये वेष धारण करने में निपुण होता है। यह गोष्ठी में बोलने में चतुर तथा मधुर होता है। **विदूषक** एक ऐसा पात्र होता है जो शरीर, वेष, भाषा तथा कर्म से हंसी उत्पन्न करता है। उसका

नाम कुसुम, वसन्त इत्यादि होता है। यह लड़ाई करने में निपुण होता है और अपने कार्य को समझता है। इसी प्रकार अन्तःपुर में इसके सहायक होते हैं– वामन, कुब्ज किरात, म्लेच्छ, आभीर, शकार कुबड़े इत्यादि। **शकार** का अर्थ है साला. यह बिना व्याही राजा की प्रेमिका का भाई होता है। किन्तु ऐश्वर्य सम्पन्न हुआ करता है तथा अपने मद और मूर्खता के कारण सर्वदा अभिमानी व्यक्ति का अभिनय करता है। अन्तःपुर के सहायकों में **कञ्चुकी** का महत्वपूर्ण स्थान है यह मध्य श्रेणी का पात्र होता है और संस्कृत बोलता है। धर्म में राजा के सहायक होते हैं– ऋत्विक, पुरोहित, ब्रह्मवित् तथा तपस्वी इसी प्रकार अन्य क्षेत्रों में सहायकों के विषय में समझना चाहिये।

स्त्री पात्र

नाट्य शास्त्र में पुरुषपात्रों की अपेक्षा स्त्री पात्रों का चरित्र अधिक महत्वपूर्ण, अधिक जटिल और अधिक विस्तृत होता है। वैसे तो पारिवारिक आदि सम्बन्धों के अनुसार स्त्री पात्र अनेक विध होते हैं जिनको लोक व्यवहार के अनुभव के आधार पर समझा जा सकता है, किन्तु काममूलक विशेषताओं पर आचार्यों ने विवेचनात्मक दृष्टि डाली है। वस्तुतः काम का सम्बन्ध तीनों वर्गों से होता है। अर्थकाम और धर्मकाम का बी प्रयोग किया जाता है। किन्तु शुद्ध काम में और दूसरी कामनाओं में मौलिक अन्तर है। दूसरे काम केवल साथन हैं– साध्य नहीं। धर्म की कामना के मूल में विपत्ति निवारण और अभीष्ट लाभ सन्निहित रहता है; अर्थ की कामना भी सुख लाभ के लिये होती है। उन कामनाओं में प्रयोक्ता को लाभ होता है, प्रयोज्य को नहीं। किन्तु शुद्ध अमिश्रित काम के मूल में काम के अतिरिक्त और कोई तत्व नहीं होता। दूसरी बात यह भी है कामानुभूति में प्रयोक्ता और प्रयोज्य को एक जैसा लाभ होता है। दोनों को समान आनन्द आता है; दोनों को समान तृप्ति होती है और दोनों की समान रूप से अभिलाषा पूर्ति होती है।

कामानुभूति में स्त्री पुरुष दोनों प्रयोज्य प्रयोजक होते हैं किन्तु स्त्रियां तो काम का स्वरूप ही होती हैं। अतः स्त्रियों के भेदोपभेदों पर विशेष विचार किया गया है। काम का मूल होने के आतिरिक्त भी उन पर विशेष विचार करने के कुछ अन्य कारण भी हैं। स्त्रियों पर सामाजिक प्रतिबन्ध अधिक होते हैं। उनका आना जाना मिलना जुलना अधिक स्वच्छन्द नहीं होता। आयु के अनुसार उनके स्वभाव, क्रियाकलाप, चेष्टा इत्यादि के साथ उनकी शरीर रचना में भी जल्दी जल्दी परिवर्तन उपस्थित होते रहते हैं। यही कारण है कि नायिका भेद हजारों की संख्या तक पहुंच गया है जबकि नायक भेद की संख्या दो अंकों का अतिक्रमण नहीं कर सकी है। नायिका भेद में यह देखने का प्रयत्न किया गया है कि विभिन्न अवस्थाओं में विभिन्न प्रकार की स्त्रियों की प्रवृत्ति क्या होती है। विरह में उनकी विचार की दिशा क्या होती है? मिलने के अवसर पर उन पर किस प्रकार का प्रभाव पड़ता है? मिलन के पहले उनकी क्या दशा होती है? प्रथम मिलन के बाद

उनका वियोग क्या कहानी कहता है? प्रेम की प्रतिकूलता, नायक का अपराध इत्यादि अवसरों पर उनकी किस प्रकार की प्रवृत्ति होती है? ईर्ष्या में उनका क्या रूप होता है इत्यादि अनेक तत्व ऐसे हैं जिन पर नायिका भेद के अन्तर्गत विचार किया जाता है।

नायिका भेद पर विचार नाट्यशास्त्र की रचना के पहले ही प्रारम्भ हो गया था। भरत मुनि ने कामसूत्र से नाट्यवस्तु के उपादान का आदेश दिया है। कामसूत्र में स्पष्ट रूप से मनोवैज्ञानिक आधार पर नायिकाभेद का निरुपण नहीं किया गया है क्योंकि उसका मुख्य विषय कामशास्त्र है जिसमें स्त्रियों के शरीर की बनावट, गुप्ताङ्ग की रचना सहवास का कार्यकाल इत्यादि के आधार पर भेदोपभेदों का निरुपण उसके विषय के अधिक अनुकूल पड़ता है। किन्तु इसमें अनेक प्रकरण इस प्रकार के आये हैं कि यदि उन पर विवेकनात्मक दृष्टि से विचार किया जाय तो स्पष्ट हो जाता है कि उन पर मनोविज्ञान का विशेष प्रभाव पडा है। स्त्रियों की सामाजिकता मनोविज्ञान के अनुसार भेदोपभेद कल्पना का मूल आधार अधिक बनी है। सर्वप्रथम वैवाहिक संस्था पर विचार कर स्त्री जाति को तीन वर्गों में विभाजित किया गया है– स्वकीया, परकीया और सामान्या। स्वकीया के अन्तर्गत बहुपत्नीपरक सामाजिक व्यवस्था पर ध्यान देते हुये ज्येष्ठा, कनिष्ठा वृत्त पर विचार किया गया है। इसके साथ ही बालोपक्रम, अनेक कान्तावृत्ति इत्यादि स्वकान्त विषयक अनेक तत्वों पर विचार किया गया है। कन्या प्रकरण, परकीया प्रकरण इत्यादि अनेक तत्वों का आधार वैवाहिक संस्था ही है। भरत ने कामसूत्रों के अतिरिक्त पशुओं के स्वभाव इत्यादि पर भी स्त्रियों के भेदोपभेद की कल्पना की है। उदाहरण के लिये मृग के स्वभाव वाली स्त्री, घोड़ी, भैंस, गाय इत्यादि के स्वभाव वाली स्त्री, इसी प्रकार मछली, गधा, सुअर, ऊंट इत्यादि के स्वभाव वाली स्त्रियों पर विचार किया गया है। पशुओं के अतिरिक्त देवता, असुर, गन्धर्व राक्षस नाग इत्यादि के स्वभाव वाली स्त्रियों का विवेचन भी इसी क्षेत्र में आता है।

परवर्ती आचार्यों ने नाट्य शास्त्र की इस भेदोपभेद कल्पना को नहीं अपनाया है। उनकी दृष्टि में मनोवैज्ञानिक आधार ही प्रमुख रहा है। परवर्ती साहित्यशास्त्रीय ग्रन्थों में धनञ्जय का दशरुपक, भानुदत्त की रसमञ्जरी और विश्वनाथ का साहित्य दर्पण ये तीन ग्रन्थ नायिका भेद की दृष्टि से प्रमुख रहे हैं। हिन्दी रीतिकाल का नायिका भेद इन्हीं पर आधारित रहा जिनमें भानुदत्त की रस मञ्जरी का आश्रय विशेष रूप से लिया गया।

संक्षेप में मौलिक रूप से नायिका के तीन भेद किये गये स्वकीया, परकीया और सामान्या। स्वकीया के भी सभी आचार्यों ने तीन भेद माने हैं– मुग्धा, मध्या और प्रौढा। मुग्धा नायिका में लज्जा की अधिकता और उत्कण्ठा की कमी होती है। मध्या में लज्जा और उत्कण्ठा समान कोटि की होती है और प्रौढा में लज्जा न्यूनातिन्यून अवस्था में पहुंच जाती है, उसमें केवल उत्कण्ठा की अधिकता होती है। कतिपय आचार्यों ने स्वकीया के अतिरिक्त परकीया और सामान्या में भी उक्त मुग्धा इत्यादि तीनों भेद माने हैं। किन्तु

परकीया कन्या केवल मुग्धा होती है, वह मध्या या प्रौढा हो ही नहीं सकती उसे काम कला का ज्ञान ही नहीं होता क्योंकि पुराने समय में छोटी उम्र पर शादी हो जाती थी। परकीया परोढा मुग्धा नहीं होती क्योंकि वह कामकला के ज्ञान से रहित रह ही नहीं सकती। वह प्रौढा भी नहीं होती– यदि वह प्रौढा होगी तो वेश्या बन जायेगी। सामान्या (वेश्या) न मुग्धा होती है न मध्या; क्योंकि ये दोनों भेद उसके व्यवसाय के विरोधी हैं। इस प्रकार स्वकीया में तीनों भेद होते हैं; कन्या केवल मुग्धा होती है; परोढा केवल मध्या होती है और सामान्या केवल प्रौढा होती है।

स्वकीया के मध्या और प्रौढा इन दोनों भेदों में प्रत्येक के तीन तीन भेद होते हैं– धीरा, धीराधीरा और अधीरा। ये भेद इस दृष्टि से किये गये हैं कि नायक के अपराधी होने पर उसके प्रति इनका व्यवहार कैसा रहता है। प्रियतम से रूठ जाने पर वह अपने क्रोध (मान) को किस प्रकार व्यक्त करती है और किस प्रकार उसका मान दूर होता है। मध्यधीरा रूठ जाने पर अपने क्रोध को वक्रोक्ति के द्वारा व्यक्त करती है। मध्या धीराधीरा रोकर और अधीरा कठोर शब्द बोलकर अपने क्रोध को प्रकट करती है। प्रौढाधीरा जब रूठती है तब अपने रोष को छिपाकर और प्रियतम का सीमा से अधिक आदर दिखलाकर अपने रोष को व्यक्त करती है। प्रौढाधीरा धीरा आक्षेप गर्भित शब्द बोलकर प्रिय को पीडित करती है। प्रौढा अधीरा प्रियतम को पीटने लगती है।

मुग्धा के भेदों के विषय में आचार्यों में मतैक्य नहीं है। साहित्यदर्पण में मुग्धा की विशेषतायें बतलाई गई हैं उसके भेद नहीं किये गये और स्पष्ट कह दिया गया है कि मुग्धा एक ही प्रकार की होती है। भानुदत्त ने मुग्धा के तीन भेद किये हैं अंकुरित यौवना, नवोढा और निश्रव्ध नवोढा। हिन्दी के आचार्यों ने इस दिशा में भानुदत्त का ही प्रायः अनुसरण किया है। किसी किसी आचार्य ने दो भेद किये हैं– ज्ञातयौवना और अज्ञातयौवना। वस्तुतः अंकुरित यौवन और अज्ञात यौवना का आशय एक ही है। शेष दो भेद नवोढा और विश्रव्ध नवोढा को ज्ञात यौवना के अन्तर्भुक्त कर दिया गया है। हिन्दी के आचार्यों ने इन्हीं भेदों को घुमा फिरा कर नई व्यवस्था प्रदान की है।

शेष दो भेदों में परकीया और सामान्या में परकीया पर ही कुछ विचार किया गया है; सामान्या का प्रवृत्ति निमित्त तो धन होता है। अतः मनोभाव में विच्छित्ति की विशेषता न होने के कारण उनकी भेदोपभेद कल्पना उचित नहीं कही जा सकती। परकीया के दो भेद तो प्रायः सभी ने किये हैं– कन्या और परोढा। कन्या मुख्य रस की भी नायिका हो सकती है क्योंकि उसका प्रेम स्वकीया प्रेम होने की क्षमता रखता है। उसे परकीया इसीलिये कहा जाता है क्योंकि उसका प्रेम स्वचन्छन्द नहीं होता, वह पिता इत्यादि के दवाव में रहती है। नाटकों और आज की फिल्मों में कन्या का प्रेम दिखलाकर उसे विवाह से परिणत कर दिया जाता है। कन्या प्रेम का प्रदर्शन रस रूप होता है। उसके प्रदर्शन में कोई अनौचित्य नहीं माना जाता। परोढा दूसरे को व्याही होती है। उसको

पति से भिन्न किसी अन्य से प्रेम करने का अधिकार नहीं होता। उसका प्रेम अनौचित्य से उपहत होता है अतः वह रस की नहीं रसाभास की आलम्बन होती है। इसीलिये आचार्यों ने अधिकतर उसके भेदोपभेद की कल्पना नहीं की है। भानुदत्त ने उसके ६ भेद किये हैं- गुप्ता, विदग्धा, लक्षिता, कुलटा, अनुशयाना और मुदिता। कृपाराम ने एक भेद स्वयं दूतिका और जोड़ दिया है।

प्रकृति भेद से नायिकायें तीन प्रकार की मानी गई हैं उत्तमा माध्यमा और अधमा इनका परिचय पहले दिया जा चुका है। सामाजिक प्रतिष्ठा के आधार पर ४ भेद किये गये हैं- दिव्या, नृपपत्नी, कुलस्त्री और गणिका। विक्रमोवर्शी में स्वर्गीय अप्सरा (दिव्या) उर्वशी नायिका है। राजपत्नी वासवदत्ता स्वप्नवादवदत्ता की नायिका है; कुलस्त्री मालती माधव की नायिका और गणिका वसन्तसेना मृच्छकटिक की नायिका है। इसी प्रकार शील इत्यादि अन्य आधारों का भी नायिक भेद के लिये उपयोग किया गया है।

कामदशा की अवस्था के आधार पर भी भरतमुनि ने नायिका भेद का निरुपण किया है जिसका उपादान परवर्ती आचार्यों ने भी किया है। इस विभाजन में पुरुष के नायिकाओं के साथ या नायिकाओं के पुरुष के प्रति व्यवहार में उनकी अवस्था का विचार किया गया है। इन अवस्थाओं का परिचय इस प्रकार है-

(१) **स्वाधीन पतिका**- जिसका पति सर्वदा उसके आधीन रहता है; नायिका प्रयत्न करने पर भी उसके अपराध नहीं ढूंढ पाती। उसे स्वाधीन पतिका कहा जाता है।

(२) **अभिसारिका**- जब कोई सुन्दरी कामवासना से पीडित होकर प्रियतम से संकेत-स्थान पर मिलने जाती है या प्रियतम को अपने पास बुलाती है तब उसे अभिसारिका कहा जाता है। यह नायिका प्रधान रूप से दो प्रकार की होती है- (अ) शुल्काभिसारिका जो चांदिनी रात में सफेद वस्त्र पहल कर अभिसरण करती है। और (आ) कृष्णाभिसारिका जो काली रात में काल कपड़े पहिन कर अभिसरण करती है।

विभिन्न सामाजिक परिस्थितियों के अनुसार नायिकाओं का अभिसरण विभिन्न प्रकार का होता है। कुलजा स्त्री का अभिकरण समाज से छिपकर होता है; बिल्कुल दबकर अपने अंगों में घुसी हुई सी जाती है; अपने सभी आभूषणों को मौन बना देती है और घूंघट में छिपी रहती है जिससे उसे कोई पहिंचान न सके। यदि वेश्या अभिकरण करती है तो आकर्षक साजशृङ्गार से विचित्र उज्ज्वल वेष बनाकर नूपुर और कङ्कणों का शब्द करती हुई आनन्द से मुस्कुराती हुई अभिसरण करती है। कभी कभी ऐसा भी होता है कि नायिका किसी दूती को नायक के पास प्रेम सम्बन्ध जोड़ने के लिये भेजती है। वह प्रेष्या कहलाती है, प्रेष्या स्वयं अपना सम्बन्ध नायक से बना लेती है। यदि वह अभिसरण करती है तो मदिरा या यौवन के नशे में उसकी आवाज स्खलित हो जाली है, विभ्रस से उसके नेत्र प्रफुल्लित हो जाते हैं और चाल लड़खड़ाने लगती है। आचार्यों ने उन स्थानों का भी उल्लेख किया है जो संकेत स्थान के लिये उपयुक्त रहते हैं।

(३) **कलहान्तरिता**– प्रणय कलह में रूठी हुई नायिका को प्रियतम चाटुकारी करते हुये मनाने की चेष्टा करता रहे लेकिन वह क्रोध के साथ उसका परित्याग कर दे और नायक निराश होकर चला जाय तब प्रियतम के परित्याग का पश्चात्ताप करने वाली नायिका कलहान्तरिता होती है।

(४) **प्रोषितपतिका**– जिसका पति अनेक कार्यों से दूरदेश में चला जाय। कामवेदना से पीडित ऐसी स्त्री प्रोषितपतिका कहलाती है। प्रवास में जाने वाले पति की नायिका के तीन प्रकार हो सकते हैं– जिसका पति परदेश जाने की तैयारी कर रहा हो (प्रवत्स्यत्पतिका), जिसका पति चला गया हो (प्रोषितपतिका), और जिसका पति परदेश से आने वाला हो (आगमिष्यत्पतिका) तीनों अवस्थाओं में मनोवृत्तियां भिन्न प्रकार की होती हैं।

(५) **विप्रलब्धा**– जिसका पति संकेत करके भी नहीं आता; अत्यन्त अपमानित वह स्त्री विप्रलब्ध कहलाती है।

(६) **वासकसज्जा**– जिसका पति आने वाला हो और उसे प्रियतम संगम की आशा हो, वह अपना घर सजाती है उसकी सखियां उसका शृङ्गार करती है या वह स्वयं अपना शृङ्गार करती है और इस प्रकार तैयार होकर प्रियतम के आगमन की प्रतीक्षा करती है उस नायिका को वासकसज्जा कहा जाता है।

(७) **विरहोत्कण्ठिता**– जिसका पति आने के लिये तैयार हो किन्तु दैववश किसी आवश्यक कार्य में उलझ जाने के कारण न आ सके। उसके न आ सकने से जो नायिका दुःख से पीडित हो उसे विरहोत्कण्ठिता कहा जाता है।

(८) **खण्डिता**– जिसका पति उसके पास परस्त्री सहवास का चिन्ह लिये हुये आता है– ईर्ष्या से कलुषित मनोवृत्ति वाली ऐसी नायिका खण्डिता कही जाती है।

ये सभी भेद स्वकीया नायिका में ही सम्भव है। परकीया कन्या और परकीया परोढा में केवल तीन भेद होते हैं– (१) जब तक मिलने का संकेत निश्चित न किया गया हो तब तक वे विरहोत्कण्ठिता रहती है। (२) जब विदूषक इत्यादि की सहायता से वे संकेत स्थान पर जाने की या नायक को अपने यहां बुलाने की चेष्टा करती है तब अभिसारिका होती है। अभिसारिका वेश्या भी हो सकती है और (३) यदि नायक किसी कारण संकेत स्थान पर न पहुंच सके तो विप्रलब्धा होती है। शेष भेद परकीया में सम्भव नहीं हैं। कारण यह है कि स्वाधीनपतिका तो स्वकीया ही हो सकती है, प्रोषितपतिका भी स्वकीया ही होगी। परस्त्री न तो खुलकर प्रियतम के सम्मिलन की प्रसन्नता ही प्रकट कर सकती है और न कलह को ही दूसरों को बतला सकती है उसके लिये पर पुरुष के सम्मिलन की तैयारी में न तो घर का सजाना और अपना शृङ्गार करना ही सम्भव होता है और न वह अपनी तैयारी या प्रियतम के आगमन की सम्भावना की बात दूसरों से कह सकती है। इसलिये परकीया न तो वासकसज्जा हो सकती है, और न कलहान्तरिता

हो सकती है। खण्डिता भी वही होती है जिसका पति परस्त्री संभोग से चिन्हित होकर आता है। जब परकीया का पति ही नहीं होता, वह पर पुरुष होता है तब उसका खण्डिता होना भी सम्भव नहीं है।

भरत ने कतिपय अन्य नायिकाओं का उल्लेख किया है वे हैं मदनातुरा, अनुरक्ता, विरक्त, चतुरा, लुब्धा, मानिनी, पण्डिता। ऊपर जो आठ भेद बतलाये गये हैं वे विशिष्ट परिस्थिति के द्योतक हैं। किन्तु ये भेद सामान्य विशेषतायें बतलाने वाले हैं। ये शब्द ही इनकी विशेषतायें बतलाते हैं। विरक्ता भी अनुरक्त ही होती है। वह किसी वस्तु के देने लेने या प्रेम करने से सन्तुष्ट ही नहीं होती निरन्तर रुष्ट ही बनी रहती है। इसके वश में करने के उपाय भी इन्हीं शब्दों में सन्निहित है। पढी लिखी (पण्डिता) विद्वान और कलाभिज्ञ की वशवर्तिनी हो जाती है। लालची (लुब्धा) स्त्री उदार व्यक्ति से प्रसन्न होती है जो कुछ दे सके या उस पर कुछ खर्च कर सके। चतुर स्त्री चतुर व्यक्तियों को चाहने लगती है और जिसको रूठने की आदत होती है वह ऐसे व्यक्ति की वश वर्तिनी हो जाती है जो मनाने में निपुण हो। आचार्य ने सभी भेदों में सामान्य रूप से तीन प्रकार स्वीकार किये हैं– उत्तमा, मध्यमा और अधमा। नायिका भेद का जो विस्तृत विवेचन नाट्यशास्त्र और काव्यशास्त्र पर रचना करने वालों ने किया है उनकी संसृष्टि और संकर से कई हजार भेद हो जाते हैं। प्रदेशों की विशेषताओं का भी नायिकाओं की मनोवृत्ति पर प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार नायिका भेद की संख्या सीमातीत हो जाती है।

नायिकाओं के अंलकार

अलंकार शब्द का अर्थ है अलंकृत करने वाला (रमणीय बनाने वाला) तत्व। 'स्त्री का नाम ही रमणीयता का पर्याय है' (स्त्रीति नामापि पेशलम्)। स्त्री की रमणीयता ही आकर्षण और अनुराग का प्राण तत्व है। वास्त्राभरण इत्यादि तो आभूषण कहलाते हैं, किन्तु वास्तविक अलंकार तो स्वाभाविक सौन्दर्य होता है, उस समय जो कुछ भी धारण कर लिया जाता है वही व्यक्ति को रमणीय बनाने में कारण बन जाता है– 'किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्' स्त्रियों के यौवन विकास के साथ उनके व्यक्तित्व में और वाह्य आकृति में कुछ ऐसी विलक्षण रमणीयता उत्पन्न हो जाती है कि मानव उस रमणीयता की पूजा करने के लिये सर्वस्व निछावर करने को उद्यत हो जाते हैं। इस रमणीयता को आचार्यों ने तीन भेदों में विभाजित किया है– अंगज या सत्वज, अयत्नज और यत्नज।

(१) **सत्वज (सात्विक) अलंकार–** सत्व एक विशेष पारिभाषिक शब्द है; यह मन की एक विशेष शक्ति है जिसका प्रभाव किसी भावना के उद्रेक में आंसू आने, रोंगटे खड़े हो जाने, चेहरे के खिल जाने या मलीन पड़ जाने, पसीना आ जाने, आवाज बदल जाने इत्यादि से प्रत्यक्ष रूप में प्रतीतिगोचर हो जाता है। इसी प्रकार जवानी की दहलीज पर पैर रखते ही चेहरे पर जो चमक आ जाती है, जिसे लावण्य की संज्ञा दी जाती है

वह उस सत्व का ही प्रभाव होता है। यह लावण्य अनेक भावनाओं को आत्मसात् करते हुये अपना स्वरूप बदलता जाता है; सत्व के प्रभाव से जो परिवर्तन अलंकार रूप में उपस्थित होते हैं आचार्यों ने उन अंलकारों की संख्या तीन मानी है–

(अ) **भाव**– बचपन में मन निर्लिप्त होता है; उन पर रजोगुण और तमोगुण का आवरण उस समय तक नहीं होता। तब मन सत्व गुण से परिपूर्ण होता है। इसी अविकारात्मक सत्व से एक अन्दर ही अन्दर विपरिवर्तित होने वाला सूक्ष्म विकार उत्पन्न हो जाता है। यह विकार उसी प्रकार उत्पन्न होता है जिस प्रकार मिट्टी और जल का संयोग प्राप्त कर बीज कुछ फूल आता है। यह प्रथम विकार ही भाव कहलाता है। इसमें शृङ्गार भावना का पहला प्रभाव लक्षित होता है।

(आ) **हाव**– जब उक्त भाव ही बातचीत, चितवन आंख और भौं की गति पर कुछ प्रभाव डालने लगे तब उसे हाव की संज्ञा दी जाती है। निश्चित अंगों में विकार उत्पन्न करने वाला शृङ्गार होता है और उसी के विशेष प्रकारस्वभाव को हाव कहा जाता है।

(इ) **हेला**– जब भाव और हाव बढ कर इस योग्य हो जाते हैं कि आङ्गिक चेष्टाओं से कामवासना पूर्ण रूप से प्रतीति गोचर होने लगे उसे हेला कहा जाता है। इस हेला में विकार अत्यधिक रूप में स्पष्ट हो जाते हैं और इससे शृङ्गार की सूचना स्पष्ट रूप में मिलने लगती है।

(२) **अयत्नज अंलकार**– ऊपर जिन विकृतियों का वर्णन किया गया है वे मन की सात्विक शक्ति से उत्पन्न होती हैं और उनकी अभिव्यक्ति अंगो के माध्यम से होती है। अतः उन्हें अंगज अलंकार कहा जाता है। इनके अतिरिक्त मन में भावना उत्पन्न होने पर कतिपय परिवर्तन बिना प्रयत्न के ही उत्पन्न हो जाते हैं। जिनसे सौन्दर्य में अभिवृद्धि हो जाती है। इनमें चेष्टा नहीं होती। इन सौन्दर्य परक परिवर्तनों को अयत्नज अलंकार कहा जाता है। इनकी संख्या सात है–

(अ) यौवनागम में चेहरे पर नई चमक आ जाती है जो आकर्षण में सबसे बड़ा कारण होती है इस चमक को ही **शोभा** कहा जाता है।

(आ) जब यौवन जन्य लावण्य में कामवासना का संचार हो जाता है तब शरीर के रंगढंग कुछ और ही हो जाते हैं। काम वासना से प्रभावित शोभा **कान्ति** कहलाती है।

(इ) जब कान्ति का अत्यधिक विस्तार हो जाता है तब उसे **दीप्ति** कहा जाता है।

शोभा, कान्ति और दीप्ति के अन्तर्गत कवियों ने नख शिख वर्णन या शिखनख वर्णन अत्यन्त चमत्कारिक ढंग से किया है।

(ई) प्रत्येक अवस्था में विना शृङ्गार के सौन्दर्य की प्रतीति **माधुर्य** अलंकार कहलाता है। जैसे कालिदास का पद्य–

सरजिमनुविद्धं शैवलेनापिरम्यं,
मलिनमपि हिमाशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति ॥
इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी,
किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम् ॥

(उ) मन का संक्षोभ रहित होना। मन के संक्षोभ से अंगो में मलिनता आ जाती है। जब आन्तरिक सात्विक प्रभाव से संक्षोभ की अवस्था में भी मलिनता की प्रतीति न हो तब वह अयलज अलंकार **प्रागल्भ्य** कहलाता है।

(ऊ) **औदार्य**– निरन्तर विनयशीलता। नायिकाओं का रूठना और इठलाना तो आकर्षक होता ही है, उनकी सरलता भी जादू का प्रभाव डालने वाली होती है। वह भी कुलवती ललनाओं का एक आभूषण है। जैसे अमरुक का पद्य–

मुग्धे मुग्धतयैव नेतुमखिलः कालः किमारभ्यते
मानंधत्स्व धृतिं वधान ऋजुतां दूरीकुरु प्रेयसि ॥
सख्यैवं प्रतिबोधिता प्रतिवचस्तामाह भीतानना।
नीचैः शंस हृदि स्थितो हि ननु मे प्राणेश्वरः श्रोष्यति ॥

(ए) सातवां अयलज अलंकार है **धैर्य** नायिकाओं का सटपटाना, चंचल होना इत्यादि जिस प्रकार आनन्द दायक होता है उसी प्रकार उनका धैर्य और दृढता भी आनन्द देने वाली विशेषताये हैं।

(३) उक्त अयलज ७ अंलकारों के अतिरिक्त कतिपय **यलज अलंकार** भी होते हैं। भरत ने उनकी संख्या १० बतालाई हैं और दशरूपककार ने उन्हीं का उल्लेख किया है। किन्तु विश्वनाथ ने उनकी संख्या बढाकर १८ कर दी है। ये १८ अंलकार संक्षेप में इस प्रकार है–

(अ) **लीला**– अंग, वेष, अलंकार, प्रेम और वचनों से प्रियतम की नकल करना लीला कहलाता है।

(आ) दूसरा यलज अलंकार है **विलास**। प्रेयसी का उठना बैठना, चलना-फिरना तथा किसी प्रकार की चेष्टा करना प्रियतम के आकर्षण का कारण बन जाता है। यदि प्रियतम के अवलोकन से इस प्रकार की चेष्टायें प्रवृत्त हों या उनमें विशेषता आ जाय तो प्रियतम के लिये उनमें और अधिक आकर्षण उत्पन्न हो जाता है। इन चेष्टाओं को विलास कहते हैं।

(इ) **विच्छित्ति**– जब थोड़ी सी शृङ्गार रचना से कान्ति का अधिक परिपोष हो तब उस अंलकार को विच्छित्ति कहा जाता है।

(ई) **विब्बोक**– स्त्रियों का स्वाभाविक गुण है कि इष्ट वस्तु का अनादर। कालिदास

के अनुसार 'उत्कट इच्छा होते हुये भी प्रियतम की प्रार्थना में वामाचरण की प्रवृत्ति होती है; सम्भोग सुख की आकाङ्क्षा होते हुये भी अपने शरीर के प्रदान में वे कातर हो जाती है। इस प्रकार केवल कामदेव ही उन्हें पीडित नहीं करता, अपितु समय को बिताकर वे भी कामदेव को पीडित करती है।' गर्व के कारण इष्ट वस्तु का अनादर **बिब्बोक** कहलाता है।

(उ) **किलकिञ्चित**– भावनाओं का संघात जब परस्पर विरुद्ध अनेक भावनायें उद्‌भूत कर हंसी, त्रास, रोदन इत्यादि को उत्पन्न करता है तब वहां पर किलकिञ्चित अंलकार होता है। बिहारी का निम्न लिखित दोहा इसका अच्छा उदाहरण लै–

बालम वारैं सौति के सुनि परनारि विहार।
भौ रसु अनरसु रिस रली रीझ खीझ एक वार॥

अपने प्रिय का सौत की पारी में परस्त्री गमन सुनकर नायिका के अन्दर विरोधी भावनायें उत्पन्न हुई हैं– उसे सुख मिला क्योंकि उसकी सौत को धोखा दिया गया; उसे दुःख हुआ क्योंकि एक नई सौत तैयार हुई; उसे क्रोध हुआ कि यदि प्रियतम को कहीं और जाना था तो मेरे पास क्यों नहीं चला आया; सौत की गुणहीनता पर मजाक करने की प्रवृत्ति उत्पन्न हुई; प्रसन्नता हुई कि प्रियतम मेरी पारी में कहीं नहीं जाता; खीझ इस बात की हुई कि आदत विगड़ी है अब मेरी पारी में भी कहीं और जा सकता है।'

(ऊ) **मोट्टायित**– हाव वहां पर होता है जहां भाव छिपाने के लिये कान खुजलाने जैसा कोई और कार्य करने लग जाया जाय।

(ए) **कुट्टमित**– हाव वहां पर होता है जहां प्रियतम की छेड़ छाड़ से प्रसन्नता का अनुभव होते हुये भी इन्कार किया जाय। उदाहरण के लिये बिहारी का दोहा लीजिये।

भौंहनु त्रासति मुंह नटति आंखिन सोंलपटाति।
ऐंचि छुड़ावति करु इची आगे आवति जाति॥

नायक ने एकान्त पाकर संभोग के लिये नायिका का हाथ पकड़ लिया है; नायिका भौं हों से डर दिखाती है; मुंह से इन्कार करती है लेकिन आंखों से लिपटी जा रही है; खींचकर हाथ छुड़ाने का प्रयत्न करती है किन्तु खिची हुई आगे को सरकती चली आती है।

(ऐ) **विभ्रम**– हाव-जहां प्रियतम के अकस्मात आजाने से हड़बड़ाहट में नायिका ऊट पटांग काम करने लगती है।

(ओ) **ललित**– अंगों के सौकुमार्य की अभिव्यक्ति ललित हाव कहलाती है।

(औ) **मद**– सौभाग्य या यौवन के प्रभाव से जो मतवाला पन आता है वह भी नायिकाओं को सुन्दरता प्रदान करने में कारण होता है।

(अं) **विहृत**– यदि बात करने के अवसर पर अवरुद्ध कंठ के कारण अथवा संकोच

के कारण गला रुंध जाय और बात मुंह से न निकले तो वहां पर विहृत हाव होता है।

(अः) **तपन**– नायिका की उद्दीप्त विरह व्यथा भी नायिका को सुन्दरता प्रदान करती और उसे आकर्षक बनाती है।

(क) **मौग्ध्य**– अल्हड़पन भी सौन्दर्य में कारण बनता है। यह भी प्रेमी को अपना ओर आकर्षित करता है।

(ख) **विक्षेप**– यह कई प्रकार का होता है– आभूषणों की अर्ध रचना, वृथा इधर उधर देखना और थोड़ा-थोड़ा रहस्य कथन।

(ग) **कुतूहल**– किसी अद्‌भुत वस्तु को देखकर उसको जान लेने के लिये सीमातीत उत्कण्ठा।

(घ) **हंसित**– वेमतलव में हंसी की आदत।

(ङ) **चकित**– किसी संल्लग्नता की दशा में प्रियतम के अकस्मात आ जाने पर भय में परेशान हो जाना।

(च) **केलि**– हंसी मजाक की आदत।

नायिका की सहायिकायें

प्राचीन भारतीय नाटकों में अधिकांश राजघराने के भोग विलासमय जीवन का चित्रण किया जाता है जिसमें अनेक रानियां होती हैं जिनके स्तर भी भिन्न भिन्न होते हैं। कोई महादेवी होती है कोई स्वामिनी होती है, उसी के अनुसार उनकी परिचारिकायें भी होती हैं। भरत ने अनेक परिचारिकाओं का उल्लेख किया है जिनमें भोगिनी, शिल्पकारिणी, नाटकीया, अनुचारिका, परिचारिका, संचारिका, महत्तरी, प्रतिहारी, कुमारी स्थविरा आदि इसी प्रकार के नारी पात्र है। परवर्ती नाटकों में प्रतीहारी इत्यादि मध्यम तथा अधम कोटि के पात्रों का समावेश किया गया है।

नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थों में शृङ्गारिक सहचारियों एवं सहायिकाओं में दूती का उल्लेख किया गया है जिसमें किस जाति की और किस व्यवसाय की दूतियां उपयोगी हो सकती हैं इसका विवेचन किया गया है जो अधिक संगत प्रतीत नहीं होता। किसी जाति की कोई स्त्री दूत्य कर्म करे उससे कलात्मक सौन्दर्य में क्या अन्तर आता है। यह तो कामशास्त्र का विषय है जिसमें प्रेम के संयोजन के लिये कौन कौन व्यक्ति उपयोगी हो सकते हैं और किनसे सहायता ली जा सकती है इसका विवेचन करना उस शास्त्र की विषय सीमा में आता है। नाट्यशास्त्र की दृष्टि से दूत्यकर्म कोई भी करे इसका कोई महत्व नहीं। अतः दूती के केवल दो भेद किये जाने चाहियें स्वयं दूती और परदूती। अपना दूत्य कर्म अपने आप करना अधिक अच्छा भी है और निरापद भी। दूसरे के द्वारा दूत्य कर्म करना कभी कभी धोखेबाजी में परिणत हो जाता है।

दूती के गुणों पर भी शास्त्रकारों ने विचार किया है इसकी विशेषतायें हैं– कलाकौशल में प्रवीणता, उत्साह, स्वामिनी के प्रति भक्ति, दूसरे के चित्त को समझने और परखने की योग्यता, स्मरण शक्ति, मधुर व्यवहार, हंसी मजाक की प्रवृत्ति, वस्तुतत्व का विशेष ज्ञान और बोलने की निपुणता। शास्त्रकारों के अनुसार उत्तम, मध्यम और अधम भेद दूतियों के भी होते हैं।

रस के उपकरण

शास्त्रकारों ने रूपक के भेदकों में वस्तु और पात्र के अतिरिक्त रस को भी भेदक माना है। वास्तव में रस ही सभी तत्वों में प्रधान है, दूसरे सभी तत्वों की संयोजना रस निष्पत्ति के निमित्त ही होती है। अभिनव गुप्त ने तो नाट्य का अर्थ ही रस माना है।

मानवों के अन्तः करणों में स्थायी भाव विद्यमान रहता है। 'प्राणी इससे शून्य हो ही नहीं सकता।' ये स्थायी भाव ही उपकरणों के संयोग से रस रूपता में परिणत होते हैं। रस सूत्र में रसोपकरण तीन बतलाये गये हैं– विभाव, अनुभाव और सञ्चारी भाव। इस सूत्र में स्थायीभाव का प्रयोग नहीं किया गया है। स्थायीभाव ही तो रस बनता है। उसका रसोपकरणों में प्रयोग न होना जिज्ञासा उत्पन्न करता है। यदि उसे कारण कोटि में नहीं रखना था तो उसे पृथक् भिन्न विभक्ति में रखा जा सकता था– 'स्थायिनो विभावानुभावव्यभिचारि संयोगाद् रस निष्पत्तिः' ऐसा सूत्र बनाया जा सकता था। दशरूपक कार ने स्थायी भाव को परिभाषा में स्थान दिया भी है–

विभावैरनुभावैश्व सात्विकैर्व्य भिचारिभिः।

आनीयमानः स्वाद्यत्वंस्थायि भावो रसः स्मृतः॥

अर्थात् विभाव, अनुभाव सात्विक भाव और सञ्चारी भाव के द्वारा आस्वादन के योग्य बनाया हुआ स्थायी भाव रस माना जाता है।

स्थायी भाव को रस सूत्र में शामिल न करने का कतिपय आचार्यों ने यह कारण बतलाया है कि अनुभावें और सञ्चारियों में वासना रूप में स्थायी भाव सन्निहित रहता है अतः उसके पृथक् उल्लेख की आवश्यकता नहीं।

स्थायीभाव के अतिरिक्त सात्विक भाव की स्थिति भी कुछ विलक्षण है। धनञ्जय ने स्थायीभाव के समान सात्विक भावों का भी समावेश अपनी रस परिभाषा में किया है। सात्विक भाव बाह्य अभिव्यक्ति रूप होते हैं; अतः उनका समावेश अनुभावों में होना चाहिये। किन्तु उनकी स्थिति अन्तः करण में होती है। अतः वे भावों के अन्तर्गत आते हैं। इस प्रकार उनकी द्विधा स्थिति है और इसीलिये उनका पृथक् प्रयोग सर्वथा उचित है। भरत ने भी किसी न किसी रूप में सात्विकों की पृथक् सत्ता मानी है। उन्होंने ४९ भाव माने हैं– ३३ संचारी, ८ सात्विक और ८ स्थायी। इससे वे यह स्वीकार कर लेते हैं कि सात्विकभाव सर्वथा पृथक् हैं– न वें सञ्चारियों में आते हैं और न पूर्ण रूप से

अनुभावों में।

रस सूत्र के व्याख्याकार लोल्लट ने रस की उत्पत्ति मानी है अर्थात् मिट्टी से बने घड़े के समान सामग्री से रस की भी उत्पत्ति होती है। प्रत्येक कार्य में तीन तत्वों की आवश्यकतापड़ती है– कारण, सहकारी और कार्य। घड़ा के निर्माण में मिट्टी कारण हैं, कुम्हार, दण्ड, चाक इत्यादि सहकारी कारण है और घड़ा कार्य (फल) है। यहां पर भी विभाव कारण है, सञ्चारी भाव सहकारी कारण हैं और अनुभाव कार्य हैं। किन्तु यहां पर भी एक प्रश्न उपस्थित होता है– किसी भी कार्य में फल अन्तिम अवस्था होती है; उसके आगे कुछ और नहीं होना चाहिये। यहां अन्तिम अवस्था रस है और कार्य अनुभाव है। यह परस्पर विरोध दिखलाई पड़ता है। तो क्या रस भी कारण कोटि में आ जाते हैं? इसका उत्तर यह है कि अनुभाव सञ्चारी और स्थायी भावों के कार्य होते हैं और रस को उत्पन्न करने के कारण वे रस की कारणकोटि में ही आते हैं। इसीलिये आचार्य ने उनका समावेश रस के कारणों में ही किया है। वस्तुतः अनुभावों की स्थिति व्यापार की है– व्यापार कारण से उत्पन्न होता है और कार्य को उत्पन्न करता है। विभावादि कारणों से अनुभाव उत्पन्न होता है और रस रूप कार्य को उत्पन्न करता है। अनुभाव भावों के कार्य और रस के कारण हैं। अन्तिम स्थिति रस ही है अतः वास्तविक कार्यरूपता उत्पत्ति वाद में उसी की है।

यहां इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि विभाव अनुभाव और सञ्चारी भाव तो बाह्य होते हैं– इनका या तो काव्य में वर्णन होता है या ये अभिनय के द्वारा प्रदर्शित किये जाते हैं। किन्तु स्थायीभाव सहृदयों के हृदयों में ही विद्यमान होता है। अतः वह आन्तरिक ही होता है बाह्य नहीं। बाह्य विभावदि जब आन्तरिक स्थायिभाव को उकसाकर इस योग्य बना देते हैं कि उनमें स्वाद रूपता आ जाती है अर्थात् सहृदयों की ऐसी चेतना उन्मीलित हो जाती है कि उनमें आनन्दानुभव के अतिरिक्त अन्य समस्त संवेदनीय पदार्थ तिरोहित हो जाते हैं तब वह आनन्द रूपता ही रस कही जाती है। यह रस वस्तुतः सामाजिक के ही अन्तःकरण में विद्यमान रहता है। इसीलिये सामाजिक को रसिक कहा जाता है। सामाजिक में ही स्थायीभाव और रस मानने का कारण यह है कि रस ज्ञान और आनन्द स्वरूप होता है। ये दोनों धर्म चेतना के हैं और काव्य अचेतन होता है। अतः अचेतन काव्य में चेतन धर्म रह ही नही सकता। वे तो चेतन सहृदय के हृदय में ही रह सकते हैं। किन्तु काव्य को भी रसमय कह दिया जाता है। इसका कारण यह है कि काव्य उस रसमयी चेतना का उन्मीलन करता है। इसीलिये औपचारिक रूप में काव्य को रस मय कहा जाता है।

रस और उसके उपादानों की विलक्षणता

आचार्यों ने रस को कार्य मानकर उसके कारणों का विवेचन किया है। किन्तु रस

में अन्य कार्यों की अपेक्षा कुछ विलक्षणता होती है। लोक में समस्त कार्य और कारण मूर्त ही होते हैं; किन्तु न तो रस ही मूर्त होता है और न उसके उपादान स्थायीभाव अथवा सहकारी कारण सञ्चारी भाव मूर्त होते हैं। ये मानव हृदय में विद्यमान अमूर्त तत्व हैं। लौकिक पदार्थों घड़े इत्यादि में उनकी सत्ता बनने के बाद सामने आती है और बन जाने के बाद वे कार्यान्वित हो या न हो तब तक बने रहते हैं जब तक उनके कारणों का लोप नहीं हो जाता। सूत से कपड़ा बनता है। वह तब तक बना ही रहता है जब तक सूत रहता है। आशय यह है कि विलक्षणता के होने से उसे कार्यकारणकोटि में नहीं लाया जा सकता। स्थायी भाव और रस दोनों दृष्टिगोचर नहीं होते। हृदय में पहले विद्यमान एवं सदा रहने वाले प्रेम इत्यादि अस्थायी तत्व नहीं है। रस भी अस्थायी नहीं है। किन्तु रस की अनुभूति हमें तभी तक होती है जब तक उनका आस्वादन किया जाता है। आस्वादन और अनुभूति समाप्त हो जाती है रस समाप्त नहीं होता। अतएव रस के कारण को कारण नहीं कहा जा सकता। वह किसी अमूर्त पदार्थ की रचना नहीं करता बल्कि पहले से ही विद्यमान पदार्थ को प्रतीति गोचर बनाता है। प्रतीति गोचर बनाने के ही हेतु से कारणों को विभाव अर्थात् विभावित करने वाला अर्थात् प्रतीति गोचर बनाने वाला तत्व कहा जाता है। स्थायीभाव रति, क्रोध इत्यादि को विभाव प्रतीति गोचर बनाता है। स्थायी वस्तु के प्रतीति गोचर होने के कारण ही औपचारिक रूप से उसे कार्य कह दिया जाता है।

विचारणीय प्रश्न यह है कि स्थायीभाव किस प्रकार प्रतीति गोचर बनाया जाता है और वे तत्व कौन से हैं जो उसे प्रतीति गोचर बनाते हैं। स्थायी भाव अन्तरात्मा में रहता है। उसे मूर्त पदार्थों के समान मूर्त रूपता देकर दिखलाया जाना असम्भव है। इसलिये रंगमञ्च पर उसे किसी व्यक्ति पर ढाल कर दिखलाया जाता है। उदाहरण के लिये मान लो कवि या नाटककार प्रेम का आस्वादन कराना चाहता है तो वह प्रेम (रति) को किसी व्यक्ति (नट) पर ढालकर दिखलायेगा और उसे वह दुष्यन्त का नाम देगा। इसी प्रकार यदि वह क्रोध को ढाल कर दिखलायेगा और उसे भीमसेन का नाम देगा। किन्तु 'दुष्यन्त प्रेम कर रहे हैं' या 'भीमसेन क्रोध में है' यह बात सामने आने पर प्रश्न पैदा होगा दुष्यन्त किससे प्रेमकर रहे है या भीमसेन किसके प्रति क्रोध मे हैं। तब उत्तर होगा– 'शकुन्तला के प्रति या दुश्शासन के प्रति। इस प्रकार कारण कोटि में दो तत्व आ गये– जिस पर कोई भाव ढाल कर दिखलाया जाता है उसे उस भाव का आश्रय कहा जाता है और जिसके प्रति वह भाव दिखलाया जाता है उसे उस भाव का आलम्बन कहा जाता है। उस भाव को सच्चाई प्रदान करने के लिये परिस्थितियां भी बनानी पड़ती है। प्रेम में आलम्बन का सौन्दर्य और उसकी चेष्टायें सबसे बड़ा कारण हैं। प्रेम की जो अनुभूति एकान्त सुरम्य नदी तट, वसन्तकाल में और चन्द्रमा के प्रकाश में की जा सकती है वह गन्दे दुर्गन्धित स्थान पर नहीं की जा सकती। अतः प्रदर्शन में भाव के अनुकूल वातावरण भी बनाना पड़ता है और आलम्बन की ऐसी चेष्टायें भी दिखलानी पड़तीहैं जिससे आश्रय

का भाव लगातार बढ़ता रहे। शकुन्तला की सत्ता तो दुष्यन्त में प्रेम की भावना जागृत करेगी किन्तु उसका तटस्थ भाव में स्थित रहना दुष्यन्त के भाव को कब तक जीवित रख सकेगा? अतः प्रेम को लगातार जारी रखने के लिये शकुन्तला का हंसना बोलना चलना-फिरना, उठना बैठना भी दिखलाना पड़ेगा। सभी उठते बैठते चलते फिरते हैं किन्तु प्रेमिका के उठने बैठने चलने-फिरने की बात ही कुछ और ही होती है। उसको देख देख कर प्रेमी रीझता है। इस प्रकार सिद्ध होता है कि जिस पर ढाल कर भाव दिखलाया जाता है वह आलम्बन होता है और भाव के अनुकूल परिस्थितियां एवं आलम्बन की चेष्टायें उद्दीपन कही जाती हैं।

प्रश्न यह है कि परिस्थितियां, आलम्बन और उसकी चेष्टायें, एवं आश्रय की सत्ता मात्र से तो भावानुभूति और उससे रस निष्पत्ति नहीं हो सकती। यह कैसे मालूम पड़े कि दुष्यन्त के मन में प्रेम भरा हुआ है? इसके लिये दुष्यन्त का पुनः पुनः घूर कर देखना, वैसी बातें करना, वियोगवेदना का अनुभव करना प्रेम की अभिव्यक्ति करना यह सब भी आवश्यक हो जायेगा। जो व्यापार (कार्यकलाप) भावना के उत्पन्न हो जाने के बाद सत्ता में आते हैं और जिनको देखकर दर्शक समझने लगता है कि अमुक व्यक्ति किसी विशिष्ट भावना से भरा हुआ है वे सभी व्यापार भावना को व्यक्त करते हैं और भाव के उदय के बाद के कार्य कलाप हैं अतः उन्हें 'अनुभाव' कहा जाता है अर्थात् भाव के उत्पन्न हो जाने के बाद की चेष्टायें। इस प्रकार यहां तक रस के इन उपकरणों पर प्रकाश पड़ गया जिस पर ढाल कर भाव दिखलाया जाता है वह आश्रय होता है; जिसके प्रतिभाव दिखलाया जाता है उसे आलम्बन करते हैं। आलम्बन की चेष्टायें भाव को उभाड़ने वाली होती हैं अतः वे उद्दीपन कहलाती हैं; भाव के अनुकूल परिस्थिति भी उद्दीपन ही कही जाती है और आश्रय की चेष्टायें अनुभाव कहलाती है।

किसी भी कार्य में मूल कारण के अतिरिक्त कतिपय सहयोगी कारण भी होते हैं। घड़े के निर्माण में कुम्हार, चाक को चलाने वाला डंडा ये सब सहकारी कारण होते हैं। भाव ही अकेला शक्ति और अनुभूति प्राप्त नहीं कर सकता। प्रेम में कभी लज्जा, कभी हर्ष, कभी शङ्का, कभी दुःख, कभी ईर्ष्या कभी मद इत्यादि अनेक भाव सम्मिलित रह कर प्रेम को प्रतीतिगोचर बनाते हैं। ये भाव आते जाते, प्रकट होते और विलीन होते रहते हैं। सञ्चरण करने (घूमने फिरने) और व्यभिचरण करने (लौट लौट कर वार वार आने) के कारण इन्हें सञ्चारी भाव कहा जाता है। भाव स्थायी भी होता है और सञ्चारी भी दोनों में अन्तर यह होता है कि एक स्थायी भाव से दूसरा स्थायी दब जाता है- प्रेम होने पर क्रोध जाता रहता है; उत्साह के उदय से भय रफू हो जाता है। किन्तु सञ्चारी भाव दूसरे भाव को विलीन नहीं करते अपितु उनसे स्थायी भाव पुष्ट ही होता है। शकुन्तला का लजाकर सामने से निकलना दुष्यन्त के प्रेम को बढ़ायेगा उसे समाप्त नहीं करेगा। ये सब तत्व मिलकर ऐसा वातावरण बना देते हैं कि कोई भाव दर्शकों के अन्तःकरणों में

पहले से विराजमान भाव को आनन्दमय बना देता है और दर्शक तन्मय होकर रसास्वादन करने लगता है अथवा यों कहिये कि उसकी सत्ता ही विलीन होकर उसकी रसमय स्थिति बन जाती है। वह क्या है, कहां है यह सब भूलकर रसमय स्थिति में पहुंच जाता है। आशय यह है कि रस आनन्दमय स्थिति है; रस आनन्द रूप ही होता है। विभाव, अनुभाव और सञ्चारी भाव इस सामग्री से पुष्ट होकर स्थायी भाव ही रस रूपता को धारण करता है और वह भाव बाहरी नहीं परिशीलक के अपने अन्तःकरण में निरन्तर विद्यमान रहता है तथा प्रतीतिगोचर होकर रस रूपता को धारण करता है।

भरत ने नाट्यरस को एक पेय की उपमा दी है। लोक में भी मीठा, खट्टा, चरपरा, इत्यादि ६ रस माने जाते हैं। जिस प्रकार चीनी, काली मिर्च, कपूर इन्यादि डाल कर कोई पेय तैयार किया जाता है उसी प्रकार विभाव, अनुभाव और सञ्चारी भाव मिलाकर नाट्यरस बनता है। पेय में सभी द्रव्यों को मिलाकर एक अलग का ही स्वाद बन जाता है; यही नाट्य रस की भी स्थिति है। रसास्वादन के तैयार हो जाने पर विभावादि की पृथक् प्रतीति समाप्त हो जाती है– केवल आनन्दानुभूति ही शेष रह जाती है जो सभी भावों से पृथक् होती है। कभी कभी किसी द्रव्य के अधिक पड़ जाने से उसका स्वाद पृथक् रूप में उमड़कर सामने आ जाता है तब लोग कहने लगते हैं कि अमुक पेय में अमुक वस्तु का स्वाद अधिक तीव्र है– 'यह शर्वत क्या इसमें तो काली मिर्च भर दी गई है' 'इसमें तो चीनी ही चीनी मालूम पड़ती है' इसी प्रकार काव्य रस में भी लज्जा, ईर्ष्या इत्यादि भाव इतना उमड़कर सामने आ जाते हैं कि आस्वादक को सभी की संघटित अनुभूति नहीं होती। उसे प्रतीत होता है कि वह लज्जा या ईर्ष्या जैसे किसी भाव का आस्वादन कर रहा है। इस प्रकार वह रसानुभूति नहीं भावानुभूति कही जाती है। कभी-कभी कोई भाव शान्त होने की स्थिति में आनन्द देता है कभी उदय होने पर, कभी दो भावों की सन्धि में और कभी भाव संघात में आनन्द देने वाले होते हैं। दो एक उदाहरण–

भाव सन्धि

समरस समर संकोचवस विवस न ठिक ठहराइ।
फिरि फिरि उझकति फिरि दुरति दुरि दुरि उझकति जाइ॥

नायक की उपस्थिति में नवोढा नायिका कामवासनाजन्य समान स्तर की उत्कण्ठा और लज्जा जन्य संकोच के कारण विवश होकर स्थिर हो ही नहीं रही है। वार वार झांकती है, फिर छिपती है, छिप छिप कर वार वार झांकती है। यहां लज्जा और उत्कण्ठा की सन्धि आनन्ददायक है।

भावोदय

विथुरयो जावक सौति पग निरखि रही गहि गांसु।
सलज हंसौही लखि लियौ आधी हंसी उसांसु॥

सौत के पैर में महावर विखर गया है यह देखकर नायिका के मन में एक घृणा की भावना जागृत होती है कि कैसी वेशऊर है इसे महावर लगाना भी नहीं आता। थोड़ी देर में पति की अंगुलियों में लाली देखी और समझ गई कि इसके पैरों में पति ने लाली लगाई होगी और प्रेम में भर जाने से उसके हाथ कांप गये होंगे; इसलिये महावर फैल गया। यह समझकर आधी हंसी में ही उसने गहरी सांस ली। यहां पर विषाद का उदय आनन्द दायक है।

रसोपकरणों का समाहार

आलम्बन विभाव के अन्तर्गत नायक नायिका भेद, दोनों के सहायक इत्यादि पात्र आ जाते हैं। उद्दीपन नें नायिकाओं के अलंकार चन्द्रोदय इत्यादि प्राकृतिक सौन्दर्य सम्मिलित हो जाते हैं। अनुभाव चार प्रकार के होते हैं (१) आंगिक अनुभाव जिनमें हाथ पैर आंख कान इत्यादि की दौड़धूप इत्यादि क्रियायें आती हैं। इनका विस्तृत विवेचन भरत ने नाट्यशास्त्र ने किया है। (२) वाचिक अनुभाव- इनमें संवादों का समावेश होता है। (३) आहार्य अनुभाव पहिरावे उढावे द्वारा भावाव्यक्ति। प्रियतम से संयोग की स्थिति में जो शृङ्गार किया जायेगा वह वियोग में नहीं होगा। पहिरावे उढावे को देख करके भी भाव की अभिव्यक्ति हो जाती है और (४) सात्विक भाव मन में किसी भावना के भर जाने पर शरीर पर जो स्वतः प्रभाव पड़ जाता है वह सत्व (मनोभाव) से उत्पन्न होने के कारण सात्विक कहलाता है। ये भाव ८ होते हैं- (अ) स्तम्भ (किसी समाचार को सुनकर शरीर का स्तब्ध रह जाना उसकी गतिविधि समाप्त होकर जकड़न उत्पन्न हो जाना) (आ) पसीना; (इ) रोंगटे खड़े हो जाना, (ई) आवाज का वदल जाना; (उ) शरीर का कांपने लगाना, (ऊ) चेहरे का रंग उत्तर जाना या बदल जाना, (ए) आंसू आ जाना और (ऐ) मूर्छा। सञ्चारी भाव निम्नलिखित ३३ होते हैं-

निर्वेद (१) ग्लानि (२) शङ्काख्या (३) स्तथासूया (४) मद (५) श्रमा: (६)।

आलस्यं (७) चैव दैन्यञ्च (८) चिन्ता (९) मोहः (१०) स्मृति (११) धृतिः (१२)॥

व्रीडा (१३) विषाद (१४) हर्ष (१५) आवेगो (१६) जडता (१७) तथा।

गर्वो (१८) विषाद (१९) औत्सुक्यं (२०) निद्रापस्मार (२२, २३) एव च॥

सुप्तं (२३) विबोधोमर्शश्चाप्यवहित्थ (२४-२५) मथोग्रता (२७)।

मतिः (२८) व्याधि (२९) स्तथोन्माद (३०) स्तथामरणमेवच (३१)

त्रासश्चैव (३२) वितर्कश्च (३३) विज्ञेयाव्यभिचारिणः।

त्रयस्त्रिंशदमी भावा समाख्यातास्तुनामतः॥

स्थायी भाव-

रति (१) हासश्च (२) शोकश्च (३) क्रोधोत्साहौ (४, ५) भयं (६) तथा।

जुगुप्सा (७) विस्मयश्चेति (८) स्थायिभावाः प्रकीर्तिताः॥

इन्हीं स्थायी भावों के आधार पर मुनि ने ८ रस माने हैं– शृङ्गार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक वीभत्स और अद्भुत। कतिपय आचार्यों ने शान्त, वात्सल्य इत्यादि अतिरिक्त रसों की भी कल्पना की है। किन्तु मुनि ने इन्हीं रसों को स्वीकृत किया है और ये ही अभिनय के अनुकूल होकर नाट्य रस कहे जाते हैं। सर्वाधिक प्रतिष्ठा प्राप्त शान्त रस काव्यरस हो सकता है किन्तु वैराग्य के अभिनय में कोई विलक्षणता नहीं होती। अतः नाट्य में उसका महत्व नहीं है। वात्सल्य इत्यादि में रति स्थायी दशा तक न पहुंचकर भावमात्र होती है। अतः शृङ्गारादि ८ रस ही नाट्य रस कहे जाने के अधिकारी हैं। आचार्यों ने माना है कि इन रसों में भी शृङ्गार और वीर दो ही रस अङ्गी (प्रधान) रस बनने के अधिकारी है। अद्भुत रस निर्वहण में प्रयुक्त किया जाना चाहिये। शेष रस अङ्गी रस नहीं होते वे केवल सहायक (अङ्गरस) ही हो सकते हैं। कुछ लोगों ने भक्ति, अद्भुत इत्यादि अन्य रसों की भी रसराजता स्वीकार की है। किन्तु वह सब विचार काव्य रस के विषय में किया जा सकता है, नाट्य रस के अनुकूल सिद्ध नहीं होता।

कतिपय नाट्य रूढियां

नये प्रवर्तनों में रूचि लेना मानव का स्वभाव हैं। सर्वप्रथम विवेक के साथ मानव नई प्रवृत्ति को जन्म देता है; अपने ही प्रवर्तन पर रीझता है और दूसरों द्वारा उसकी प्रशंसा भी कराना चाहता है तथा प्रशंसा सुनकर प्रसन्न भी होता है। उसकी सफलता से प्रभावित होकर दूसरे लोग भी उसका अनुसरण करने लगते हैं क्योंकि अनुकरण भी मानव स्वभाव का एक अंग है। धीरे धीरे अनेक लोगों के द्वारा अनुकरण किये जाने से एक परम्परा बन जाती है। लोग अपनी या दूसरे की कृतियों को उसी मापदण्ड से तोलते हैं और उसके व्यतिक्रम को दोष कहने लगते हैं। जब यह परम्परा बहुत समय तक चलती रहती है तब वह रूढि का रूप धारण कर लेती है। प्रवर्तन काल में जिस विवेक की प्रेरणा मूल कारण बनी थी वह विवेक सर्वथा तिरोहित हो जाता है और रुढि ही समाज की प्रेरक एवं नियन्त्रक शक्ति बन जाती है। समाज के आचार-विचार, पहिरावा-उढावा खाना-पीना पूजा-पाठ सभी कुछ रुढि पर ही आधारित होता है। रुढियां टकराती भी हैं, उनमें सुधार भी होता है। फिर नई रुढियां जन्म लेती हैं। किन्तु तिरोहित हुई रुढियां भी अपना कुछ प्रभाव छोड़ जाती हैं; यदि नहीं तो भी उनका ऐतिहासिक महत्व तो रह ही जाता है।

नाट्य के क्षेत्र में भी इसी प्रकार की अनेक रूढियां उद्भूत हो गईं थीं जिनका अध्ययन कर भरत तथा दूसरे नाट्यशास्त्रकारों ने उल्लेख किया है। इनका परिपालन भी होता रहा है और अब भी उनका किसी सीमा तक पालन किया जाता है। उनका परिचय मनोरंजक भी है और ज्ञानवर्धक भी।

नाटक का नामकरण

आचार्यों का निर्देश है कि नाटक का नाम उसके कथानक के आधार पर होना चाहिये जिससे नाम सुनते ही नाट्यवस्तु का संकेत प्राप्त हो सके। वेणीसंहार का नामकरण इसी आधार पर हुआ है। द्रौपदी ने सभा में चोटी खींचे जाने के विरोध में प्रतिज्ञा कर रक्खी थी कि वह तब तक चोटी नहीं बांधेगी जब तक दुर्योधन का रक्त उसके केशों पर नहीं पड़ेगा। इस नाटक का विषय है द्रौपदी की चोटी बांधना। इसी आधार पर इसका नाम वेणीसंहार रक्खा गया है जो विषय वस्तु की ओर संकेत करता है। मुद्राराक्षस का विषय है मुद्रा (अंगूठी) के प्रयोग से राक्षस पर अधिकार करना। अतः मुद्राराक्षस नाम विषयवस्तु का संकेतक है। अभिज्ञानशाकुन्तल में शकुन्तला को अंगूठी पहिना कर गन्धर्व विवाह किया गया जो एक अभिज्ञान (निशानी) था। उसके गुम हो जाने से उसका परित्याग सम्भव हुआ। मृच्छकटिक में चारुदत्त की मिट्टी की गाड़ी के स्थान पर सोने की गाड़ी बनाने के लिये वसन्तसेना द्वारा सोने के जेवर दिये जाने की ओर संकेत किया गया है। मिट्टी की गाड़ी से चारुदत्त के उदार चरित्र पर प्रकाश पड़ता है और सोने के जेवर दे देने से वसन्त सेना का सच्चा प्रेम व्यक्त होता है यही नाटक का मुख्य विषय है। उत्तर रामचरित, महावीर चरित; अभिषेक नाटक इत्यादि का नामकरण भी वस्तु निर्देश के सिद्धान्त पर ही हुआ है।

प्रकरण के विषय में शास्त्र की मान्यता है कि नायक और नायिका के नाम के आधार पर नामकरण किया जाना चाहिये। मालविकाग्निमित्र, मालतीमाधव इसी प्रकार के नाम हैं। मृच्छकटिक भी एक प्रकरण ही है; किन्तु इसके विषय में इस नियम की अवहेलना हुई है। विश्वनाथ ने नाटिका और सट्टक इत्यादि का नामकरण नायिका के नाम पर रखने का निर्देश दिया है– रत्नावली, कर्पूरमञ्जरी इत्यादि नाम इसी निर्देश के अनुसार रक्खे गये हैं। इत्यादि से विश्वनाथ का क्या अभिप्राय है ज्ञात नहीं होता। सम्भवतः वे सभी उपरूपकों का नामकरण नायक नायिका के नाम के आधार पर ही रखने के पक्षपाती थे। इसी नियम के अनुसार रैवतमदनिका, देवीमहादेवम्, विक्रमोर्वशी इत्यादि नाम भी रक्खे गये। कुछ उपरूपकों के नाम कथानक वस्तु के आधार पर भी पाये जाते हैं जैसे यादवोदय, वालिवध कहीं कहीं नायिका के नाम पर भी नामकरण हुये है जैसे नर्मवती, विलासवती इत्यादि। इससे सिद्ध होता है कि नाटक के नामकरण के विषय में नियमों के पालन में दृढता नहीं वरती गई।

नाटक के नामकरण में जहां विषय वस्तु के अनुसार नाम रखने के विधान है वहां इस बात का ध्यान रक्खा जाता है कि प्रधानता किस तत्व की है। कहीं कहीं चरित्र चित्रण और पात्र प्रधान होता है जिसके चारो ओर कथावस्तु घूमती है। ऐसे नाटकों में पात्र का नाम किसी न किसी रूप में शामिल किया जाता है जैसे अभिज्ञानशाकुन्तल, मुद्राराक्षस इत्यादि। कहीं उद्देश्यमूलक शब्द के द्वारा नामकरण किया जाता है जैसे उरुभंग, सुभद्राहरण

इत्यादि। कहीं कहीं प्रतीकात्मक नाम रक्खे गये हैं और कहीं रूपकात्मक नाम भी हैं। नाटक के नामकरण में इस बात का विशेष ध्यान रक्खा जाता है कि दर्शक नाट्यवस्तु का कुछ अनुमान लगा सके नाट्य वस्तु के आस्वादन के लिये तत्पर हो सके।

पात्रों के नामकरण

इस विषय में कोई परिनिष्ठित शास्त्रविहित परम्परा विस्तृत रूप में नहीं पाई जाती। नाटकों में प्रतिष्ठित कथानक होता है; अत: उसमें प्रतिष्ठित नामावली का ही प्रयोग किया जाता है। यह दूसरी बात है कि मूल कथानक में ही अन्वर्थता का पालन किया गया हो। रावण का अर्थ है रुलाने वाला। यह चरित्र व्यञ्जक नाम है; इसी प्रकार विभीषण नाम भी राक्षस चरित्र का द्योतक है। इसी प्रकार दुर्योधन इत्यादि भी चरित्र द्योतक नाम हैं। कभी कभी दो पात्रों के नाम सम्बन्ध सूचक रक्खे जाते हैं। उदात्त पात्रों के नाम उदात्त और अनुदात्त पात्रों के नाम अनुदात्त रक्खे जाने चाहिये। प्रहसन में पात्रों के नाम हास्य जनक होने चाहिये और उनके उपनामों में भी हास्य की व्यञ्जना होनी चाहिये। क्रूर तथा दुष्टों के नाम क्रूरता व्यञ्जक रक्खे जाते हैं और सुन्दरता की व्यञ्जना के लिये सुकोमल नाम रखने की प्रथा है।

नामकरण में जहां पात्रों की विशेषता पर ध्यान रक्खा जाता है वहां इस का भी ध्यान रक्खा जाता है कि नाम में स्वाभाविकता बनी रहे। प्रान्तों और प्रदेशों के अनुसार भी नाम रखने की प्रथा है। पञ्जावियों बंगालियों दाक्षिणात्यों के नामों में अपना अपना स्वरूप रहता है; रूसियों, चीनियों और अंग्रेजों के नाम अपनी तरह के होते हैं।

नाट्यदर्पण में कल्पनीय नामों का कल्पना प्रकार यह बतलाया गया है कि शूर का नाम पराक्रम सूचक होना चाहिये जैसे भीम, अरिमर्दन, दुर्योधन इत्यादि। बनिये का नाम दत्तान्त होता है जैसे सागरदत्त समुद्रदत्त इत्यादि। कभी कभी बनिये का नाम व्यवसाय के अनुरूप भी हो सकता है जैसे धनपति। ब्राह्मण का नाम गोत्र के आधार पर रक्खा जाता है जैसे शाण्डिल्य, गार्ग्यायण इत्यादि। स्त्री पात्र का नाम शुभ सूचक होना चाहिये जैसे शीलवती प्रियम्बदा, सुदक्षिणा, सुलक्षणा, विनयवती, विजयवती इत्यादि। सौन्दर्य बोधक नाम रखने की प्रथा है जैसे शृङ्गारमञ्जरी, चन्द्रकला, मदनमञ्जरी आदि। वेश्या का नाम दत्ता या सेना पर रक्खा जाना चाहिये जैसे देवदत्ता, वसन्तसेना। दासी या दूती के पुष्पवाचक नाम होते हैं जैसे मालिनी, मल्लिका इत्यादि। दूत या दास का नाम कार्यसिद्धि सूचक रक्खा जाता है जैसे सिद्धार्थक। विदूषक का नाम कुसुम, वसन्त इत्यादि के सूचक रक्खे जाते हैं।

नाटकों में भाषा प्रयोग

नाटकों में अनेक भाषाओं का प्रयोग पाया जाता है। इस विषय में भरत ने तथा नाट्यशास्त्र के दूसरे आचार्यों ने नियम बनाये हैं। भरत ने चार प्रकार की भाषाओं का

उल्लेख किया है– अतिभाषा, आर्यभाषा, जातिभाषा और योन्यन्तरी। वस्तुतः ये वैकल्पिक चारो प्रकार की भाषायें संस्कृत और प्राकृत रूप ही हैं; केवल वक्ता के भेद से इन भाषाओं का वैकल्पिक रूप बन जाता है। अतिभाषा मनुष्य के स्तर से ऊपर की भाषा होती है। इसमें वैदिक शब्दों का बाहुल्य होता है और इसे देवता प्रयोग में लाते हैं। आर्यभाषा श्रेष्ठजनों की भाषा होती है। इसे विशेष रूप से राजा लोग बोलते हैं। यह संस्कार की हुई (संस्कृत) भाषा होती है। जातिभाषा सामान्य व्यक्तियों की होती है। रंगमञ्च पर इसका प्रमुखं रूप में प्रयोग किया जाता है। इसमें विभिन्न प्रदेशों की अनेक भाषाओं का प्रयोग रहता है और म्लेच्छ प्रदेशों में बोले जाने वाले शब्दों का भी समावेश हो गया है। योन्यन्तरी भाषा दूसरे पशु-पक्षियों की भाषा होती है। इस प्रकार की भाषा के स्वरूप और प्रयोग के विषय में न तो भरत ने, न किन्हीं अन्य नाट्यशास्त्रीय आचार्यों ने कुछ कहा है और न इसका प्रयोग ही उपलब्ध नाटकों में कहीं मिलता है। आजकल बच्चों की फिल्मों में कोई मनुष्य ही पशुपक्षी का रूप धारण कर अभिनय करता है और प्रारम्भ में उस पशु की नकल कर कुछ स्वर निकाल देता है तब सार्थक बातचीत करता है। ज्ञात होता है मानो वह पशु ही अभिनय कर रहा हो और संवाद बोल रहा हो। हो सकता है नाट्यशास्त्र की रचना के समय में भी ऐसी कोई व्यवस्था रही हो जिसका प्रचलन बाद में लुप्त हो गया हो।

अतिभाषा और आर्यभाषा सम्भवतः शुद्धरूप में भारतीय आर्यों की भाषा रही होगी। आचार्य ने इसके लिये संस्कृत शब्द का प्रयोग नहीं किया है। भोजराज ने अतिभाषा को श्रौत (वैदिक) भाषा, आर्य भाषा को पौराणिक और जाति भाषा को लौकिक भाषा कहा है।

जाति भाषा

यह नाटकों की सामान्य भाषा है जिसका प्रयोग नाटकों में किया जाता है। मूल रूप में यह दो प्रकार की होती है– संस्कृत और प्राकृत। वस्तुतः अतिभाषा और आर्यभाषा भी संस्कृत का ही एक रूप है। इन भाषाओं का कोई नमूना वर्तमान उपलब्ध नाटकों में कहीं दिखलाई नहीं देता। पता नहीं इन भाषाओं का कोई स्वरूप स्थिर था और इनका प्रयोग प्राचीन काल के नाटकों में प्रचलित था या ये केवल मुनि की कल्पना प्रसूत भाषायें ही थीं। मुनि (भरत) ने जातिभाषा पर ही विस्तृत प्रकाश डाला है और उसके दो प्रकार बतलाकर उनके प्रयोग स्थलों का परिगणन किया है। वास्तव में रंगमञ्च की प्रमुख भाषा जाति भाषा ही है जिनमें दूसरे द्वीपों और प्रदेशों के निवासियों की भाषा के शब्दों का भी मनमाना समावेश हो गया है।

संस्कृत भाषा

यह एक प्रकार की जाति भाषा है जो विधि निषेधों से जकड़ी होने के कारण

परिनिष्ठित हो गई है और सभी प्रदेशों में बोली और समझी जाती है। भाषाओं के सामान्य नियम के अनुसार विभिन्न प्रदेशों में उच्चारण भेद भले ही हो गया हो स्वरूप भेद नहीं है तथा सामान्य व्यवहार की भाषा (लिंगुआफ्रांका) के रूप में व्यवहार के लिये सर्वथा उपयुक्त है।

संस्कृत साक्षर संस्कृति (Culture Literate) की भाषा है जिसे प्राकृत (ग्राम्य) भाषा से भिन्न नागरिक भाषा कहा जा सकता है। जो लोग धीर हैं अर्थात् जिनका अपनी अन्तरात्मा पर पूर्ण अधिकार है और जो स्वयं नियन्त्रित (self controlled) हैं वे चाहे उदात्त हों, उद्धत हों, ललित हों या शान्त हों मुनि के अनुसार रंगमञ्च पर उनकी संस्कृत भाषा ही होती है। भ्रमणशील परिव्राजकों, मुनियों, बौद्धों, ईमानदार शुद्ध निपुण श्रोत्रियों या जिन लोगों ने वेद इत्यादि का अध्ययन कर लिया है उन सबकी भाषा संस्कृत ही होती है। यद्यपि बौद्धों की धार्मिक भाषा पाली है किन्तु संस्कृत में भी अश्वघोष, नागार्जुन, आर्यदेव वसुबन्धु इत्यादि उच्चकोटि के विद्वान हुये हैं। बौद्ध साहित्य के अनेक. ग्रन्थ संस्कृत में भी लिखे गये हैं और अश्वघोष की खण्डित उपलब्ध रचना शारिपुत्र प्रकरण में भगवान बुद्ध एवं उनके शिष्यों द्वारा संस्कृत का ही प्रयोग किया गया है। श्रोत्रिय किसी पढ़े लिखे विद्वान को ही कहा जाता है। भरत ने उनकी भाषा संस्कृत ही रक्खी है जो स्वाभाविक है, किन्तु उनके लिये भरत ने 'शुद्ध' विशेषण दे दिया है जिसका आशय यह प्रतीत होता है कि जो लोग अपने अध्ययन और ज्ञान विज्ञान के क्षेत्र तक ही सीमित हैं उनकी भाषा संस्कृत ही होती है। जो लोग पढ लिखकर किसी सम्प्रदाय में दीक्षित हो जाते हैं जिनकी भाषा सम्प्रदाय के अनुसार भिन्न होती है। उनको अधिकार है कि वे अपने सम्प्रदाय की भाषा या संस्कृत दोनों में आवश्यकतानुसार किसी भी भाषा का प्रयोग कर सकते हैं।

रानियों, वेश्याओं, महिला कलाकारों को भी अवसर पड़ने पर संस्कृत प्रयोग का अधिकार है। भरत का कहना है कि रानियां राजा का प्रतिरूप होती हैं। उन्हें राजा को परामर्श भी देना होता है, जब वे राजनीति की सन्धि विग्रह इत्यादि समस्याओं पर बात करती हैं, ग्रह, नक्षत्र इत्यादि की गतियों, पक्षियों की वोलियों तथा ऐसे ही शिक्षा सम्बन्धी विषयों पर बातें करती हैं अथवा राजा की उन्नति या विपत्ति में परामर्श देना होता है तब उन विषयों और उन अवसरों पर रानी को संस्कृत बोलने का तभी अधिकार है जब वह पढ़ी लिखी हों और संस्कृत बोल सकती हो। वेश्यायें भी इसी प्रकार संस्कृत यथावसर प्रयोग कर सकती हैं। मृच्छकटिक में वसन्तसेना को संस्कृत की कुछ भुमिका दी गई है।

मनोरंजन के लिये तथा जनता को प्रसन्नता देने के लिये टूटी फूटी संस्कृत बोली जा सकती है। इसी प्रकार जोलोग कला की शिक्षा ग्रहण करते हैं या जो वेश्यायें राजा या दूसरे लोगों को प्रसन्न करना चाहती हैं उन्हें भी ऐसी संस्कृत बोलने की भूमिका दी जाती है जो आसानी से समझी जा सकती हो और जिसमें व्याकरण की जटिलतायें न

हों। (आजकल के उपलब्ध संस्कृत नाटकों में इसके उदाहरण नहीं मिलते।)

अप्सराओं की शुद्ध भाषा संस्कृत ही होती है क्योंकि उनका सम्पर्क देवताओं से होता है। अप्सराओं द्वारा संस्कृत बोले जाने का कोई उदाहरण वर्तमान साहित्य में नहीं मिलता। विक्रमोवर्शीय में उर्वशी की भाषा प्राकृत ही है। ज्ञात होता है भरत के सामने भी इसका कोई उदाहरण नहीं था। क्योंकि उनका कथन है कि अप्सराओं की संस्कृत भाषा आम्नाय (वैदिक इत्यादि पवित्र साहित्य) द्वारा सिद्ध है। इसका आशय यही है कि भरत ने प्राचीन साहित्य में इस विषय का कोई उल्लेख देखा होगा उसी आधार पर इसका उल्लेख कर दिया होगा मुनि का कहना है कि आम्नाय के प्रतिपादन को लोक मानता ही है। किन्तु जब अप्सरायें मृत्यु लोक में विचरण करें या किसी मानव की पत्नी बने तब उन्हें प्राकृत की ही भूमिका दी जानी चाहिये।

प्राकृत भाषा

प्राकृत भाषा ग्रामीणों एवं अशिक्षितों, निम्नकोटि के पात्रों की भाषा है। किन्तु उसके लिये एक नियम यह भी है कि विशेष कारण के उपस्थित होने पर उच्चकोटि के पात्र भी प्राकृत बोल सकते हैं। उदाहरण के लिये महाभारत में अर्जुन जब वृहन्नला के रूप में विराटपुर में रह रहे थे वे प्राकृत ही बोलते थे। अच्छे घराने के पात्र यदि दरिद्रता के कारण शिक्षा प्राप्ति न कर सकें हों तो उन्हें प्राकृत ही बोलनी चाहिये।

जो उच्चकोटि के लोग राजसत्ता के मद में मस्त हैं और पढने लिखने को अनावश्यक मानते हैं या अच्छे घराने के लोग गरीबी के कारण पढ लिख नहीं सके हैं उन्हें प्राकृत भाषा ही बोलनी चाहिये। जो लोग कार्यवश विभिन्न परिस्थितियों और व्यवसायियों के लोगों का रूपधारण कर लेते हैं या जो जैन सन्यासी होते हैं या जो सामान्य तपस्वी होते हैं, जो भिक्षुओं के दल में विचरण करते हैं उनको प्राकृत की ही भूमिका दी जानी चाहिये। विभित्र छलपूर्ण रूप धारण करने वालों से मुनि का अभिप्राय है उच्चकोटि के लोग जो कार्यवश किसी निम्न पात्र का रूप धारण कर लेते हैं वे अपने छलपूर्ण रूप की सच्चाई के लिये उस स्वरूप के अनुकूल निम्न स्तर की भाषा ही बोलते हैं। मुद्राराक्षस में विराध गुप्त सपेरे का रूप धारण करके गुप्तचरी का कार्य करने आया था अतः उसकी भाषा प्राकृत ही थी। इसी प्रकार ब्राह्मण भिक्षु बनकर इन्द्र जब कर्ण से कुंडल कवच की भिक्षा मांगने आये थे तब कर्णाभरण में भास ने उनकी भाषा प्राकृत ही रक्खी थी। सन्यासियों के जो दल गोल बनाकर जनता में घूमा करते हैं, ये आजीविका के लिये सन्यासियों में शामिल हो जाते हैं उनकी भाषा प्राकृत ही होती है। जैनियों की तो धार्मिक भाषा भी प्राकृत ही थी; अतः उनके प्राकृत वोलने का निर्देश दिया गया है। इसी प्रकार जादू का खेल दिखलाने वाले भी प्राकृत भाषा का ही प्रयोग करते हैं। मन्दिरों में पूजा करने वाले (पुजारी लोगों) की भाषा प्राकृत होती है। उन्मत्त, पागल; बालक इन सबका अभिनय करने

वाले इसी प्रकार नीच ग्रहों से ग्रस्त लोगों की (जिन्हें पिशाच इत्यादि कोई नीच ग्रह पकड़े हुये है) भाषा प्राकृत ही होती है। इससे सिद्ध होता है कि जिन पर उत्तम ग्रह देव गन्धर्व इत्यादि का प्रभाव होता है वे लोग संस्कृत ही बोलते हैं। स्त्री, नीच जाति तथा नपुंसकों की भाषा प्राकृत होती है।

प्राकृत की उपभाषायें

उच्च जातियों में संस्कृत भाषा प्रतिष्ठित है। उसके बाद प्राकृत भाषाओं में शौरसैनी का नम्बर आता है। उच्चवर्ग में जहां प्राकृत का विधान है वहां शौरसैनी भाषा बोली जानी चाहिये। यहां यह ध्यान देने वाली बात है कि शौरसैनी उत्तर प्रदेश की भाषा है जो मथुरा के आसपास बोली जाती है। यह संयोग की बात है कि जब बौद्ध साहित्य के लिये पाली अपनाई गई तब शौरसैनी भाषा को ही स्वीकार किया गया। फिर जैन साहित्य के लिये महाराष्ट्री भाषा स्वीकार की गई उसमें भी प्रभुत्व शौरसैनी का ही था। उसका कारण यह था कि बुद्ध और महावीर का प्रचार क्षेत्र प्रारम्भ में उत्तर भारत ही था और उस समय उत्तर भारत की प्रमुख तीन भाषायें ही थीं बिहार में मागधी, उत्तर प्रदेश में शौरसैनी और पश्चिम में पैशाची। शौरसैनी मध्य में पड़ती थी जिसका एक छोर मागधी से और दूसरा पैशाची से मिलता था। अतः प्रचार के लिये शौरसेनी को ही महत्व दिया गया है और उसे उच्चलोगों की भाषा बतलाया गया है। शायद इसका कारण यही था कि यह अधिक क्षेत्र में बोली समझी जाती थी। मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में भक्तिकाल एवं रीतिकाल में ब्रजभाषा का ही महत्त्व रहा और सुदूर प्रदेश में स्थित नानक तथा उनके अनुयायी सिख गुरुओं ने व्रजभाषा को ही अपनाया। जब मुस्लिम शासकों के सामने भाषा का प्रश्न आया तब प्रशासनिक कार्यों के लिये उत्तर प्रदेश की ही एक दूसरी खड़ी बोली को अपनाया जिसने आगे चल कर मुस्लिम शासकों के हाथ में पड़कर उर्दू का रूप धारण किया। हिन्दी में गद्य लेखन और बाद में कविता के लिये भी यही खड़ी बोली हिन्दी के नाम पर अपनाई गई जो स्वतन्त्र भारत में राष्ट्रभाषा के पद पर प्रतिष्ठित हुई। इस प्रतिष्ठा का कारण बहुदेश व्यापी होना ही है। वैसे तमिल और बंगला का साहित्य कम नहीं है। आशय यह है कि प्राचीन काल से उत्तर प्रदेश की भाषा ही प्रतिष्ठित पद की अधिकारिणी रही है; पहले शौरसैनी थी, अब खड़ी बोली है। भरत द्वारा अनुमोदित उत्तर भारत की दो अन्य भाषाये हैं– मागधी और अर्धमागधी। मागधी निम्न स्तर के लोगों की भाषा है और अर्ध मागधी मध्यश्रेणी की है। मागधी भरत के अनुसार राजघरानों में नौकर चाकरों की भाषा मानी गई है। अर्धमागधी भाषा शौरसैनी और मागधी के बीच की भाषा है। इसका प्रयोग राजा के कर्मचारियों, राजपुत्रों और सेठ लोगों द्वारा किये जाने का विधान है।

भरत ने कहा है कि नाटकों की रचना प्रायः प्रत्येक प्रदेश में की जाती है। अतः

विभिन्न प्रदेश के लेखकों को अधिकार है कि वे चाहे उक्त योजना को स्वीकार करें या प्राकृत के विषय में अपने प्रान्तों की भाषा का प्रयोग करें। इस विषय में भरत ने प्राकृत की ७ उपभाषाओं का उल्लेख किया है– मागधी, आवन्ती, प्राच्या, शौरसैनी, अर्धमागधी वाल्हीका और दाक्षिणात्या। शौरसेनी मागधी और अर्धमागधी का स्तर ऊपर बतलाया गया है। अन्य भाषाओं के विषय में भरत का निर्देश है– कि इन भाषाओं का प्रयोग अपने प्रदेश के अनुसार करना चाहिये। खसों (उदीच्यों) की भाषा वाल्हीका है– व्यवसाय के या अपनी भूमिका के अनुसार भाषा विभाग किया गया है– विदूषकों की भाषा प्राच्या; सैनिक, नगर रक्षकों (पुलिस के अधिकारियों) की भाषा दाक्षिणात्या इसी प्रकार विभिन्न व्यवसायों में नियुक्त अनेक लोगों की भाषा का भरत ने निर्देश किया है।

उक्त सात भाषाओं के अतिरिक्त भरत ने विभाषाओं का भी उल्लेख किया। अभिनव गुप्त के अनुसार संस्कृत का अपभ्रंश प्राकृत भाषायें होती हैं जिनको केवल भाषा के नाम से अभिहित किया जाता है। भाषाओं की अपभ्रेश विभाषायें होती है जिनके बोलने वाले उन उन प्रदेशों की खोहों के निवासी निम्नस्तर का व्यवसाय करने वाले होते है।

भरत का निर्देश है कि गंगासागर के आस पास के जो प्रदेश हैं उनके लोगों को 'एकार' बहुल भाषा बोलनी चाहिये सुराष्ट्र, अवन्ति देश और वेतवा के उत्तर के प्रदेशों में 'चकार' बहुल भाषा का प्रयोग किया जाता है। जो लोग हिमालय सिन्धु और सौवीर प्रदेशों में रहते हैं वे भाषा में 'उ' का प्रयोग अधिक करते हैं। जो लोग चंवल के किनारे या अर्वुद पर्वत शृङ्खला में निवास करते हैं उनकी भाषा में 'ओ' की प्रधानता रहती है।

प्रदेशों के अतिरिक्त भरत ने व्यवसायों के आधार पर भी भाषा प्रयोग के नियमों का निर्देश दिया है। जहां जो भाषा बोली जाती है उसी का प्रयोग रंगमञ्च पर करने का निर्देश है। ज्ञात होता है उस समय विभिन्न प्रदेशों में विभिन्न व्यवसाय अनपाये जाते थे। यह एक ऐतिहासिक अध्ययन भी है। इसीलिये प्रदेश विशेष की भाषायें विभिन्न व्यवसायों के लिये बतलाई गई हैं। इस प्रकार साङ्गोपाङ्ग विवेचन कर भरत ने लिख दिया है 'यहां हमने जो कुछ नहीं कहा है उसे (अपने समय की स्थिति के अनुसार) स्वयं समझ लेना चाहिये। भाषाओं को प्रदेशानुसार बोलने का मन्तव्य यही है कि नाटक को जन साधारण का अधिक से अधिक प्रतिनिधि बनाया जाय। यह नाट्यकला का एक बहुत बड़ा उद्देश्य है जिसका प्रत्येक कलाकार को पालन करना चाहिये।

संबोधन के प्रकार

भरत ने नाट्यशास्त्र में और उनके अनुकरण पर दूसरे आचार्यों ने सम्बोधन के उन प्रकारों पर प्रकाश डाला है अभिनेता जिन सम्बोधनों से अपने संबोध्य को पुकारते हैं। साहित्यदर्पण में भरत की स्थापनाओं को समाहृत रूप में प्रस्तुत किया गया है। उसके

अनुसार **राजा को** नौकर चाकर स्वामी कह कर पुकारते हैं; अधम पात्र भट्ट कह कर संबोधित करते हैं। ऋषि लोग राजा को राजन् कह कर पुकारते हैं या वंश परम्परा मूलक संबोधन प्रयुक्त करते हैं जैसे हे राघव! हे दाशरथे! सामान्य स्त्री पुरुष राजा को 'महाराज' कह कर संबोधित करते हैं। ब्राह्मण लोग राजा को 'हे राजन्' कहकर या नाम लेकर संबोधित करते हैं। राजा लोग इसका बुरा नहीं मानते, क्योंकि ब्राह्मण पूज्य होते हैं। राजा को विदूषक तथा दूसरे राजा 'वयस्य' या 'राजन्' कहकर पुकारते हैं। अधम पात्रों द्वारा राजा को भट्टी कहा जाता है तथा दूसरे व्यक्तियों द्वारा देव कहा जाता है। संबोधन में **आर्य शब्द** का प्रयोग बहुत अधिक किया जाता है। छोटा भाई बड़े भाई को तथा अधम पात्र मन्त्री को आर्य कह कर पुकारते हैं। **स्त्रियों के लिये** विभिन्न संबोधन प्रयुक्त होते हैं– द्विज लोगों द्वारा ढलती आयु वाली पत्नी को आर्या शब्द से संबोधित किया जाता हैं। इसी प्रकार सन्यासिनी, जननी, वृद्धा और पूज्या को भी आर्या शब्द से पुकारते हैं। जननी और वृद्धा को अम्बा कहकर भी पुकारा जाता है। और पूज्या को भवती भी कहा जाता है। पुरोहित तथा सार्थवाह अपनी युवती पत्नी को भी आर्या कहते हैं। पुरुष उपभोग्या स्त्री को प्रथम परिचय में भद्रा कहकर पुकारते हैं। पत्नी को प्रिया कहा जाता है अथवा देवी शब्द से भी संबोधित किया जाता है। राजा मुख्य पद पर अभिषिक्त रानी को तथा अन्य व्यक्ति भी पटरानी को देवी कहते हैं। विदूषक रानी या चेटी को भवती कहकर पुकारते हैं। राजा की सभी पत्नियों को परिजन लोग स्वामिनी, भट्टिनी या देवी कहते हैं। नौकर चाकर यौवनवती वेश्याओं को अज्जुका और वृद्धा वेश्याओं को अत्ता कहते हैं। सहेलियां एक दूसरे को हला कह कर पुकारती हैं। दूती या इसी प्रकार की अनुत्तम स्त्री को हंजे कहा जा सकता है। देवता और तपस्विनी को भगवती कहा जाता है। इसी प्रकार पूजनीय, देवर्षि और विद्यावान व्यक्तियों की पत्नियों को भी भगवती कहा जाता है। राजकुमारी को भर्तृदारिका और स्त्रियों को किसी सम्बन्ध से पुकारा जाता है जैसे आमुकको पुत्री आमुक की पत्नी आदि। **स्त्रियों द्वारा** अधिक अवस्था वाले राजा पति को 'आर्य' कहा जाता है और पत्नी अपने ढलती आयु वाले पति को आर्य कहती हैं। अधिक अवस्था वाले राजा पति को पत्नी महाराज कहती हैं। अन्य सभी पत्नियां अपने पतियों को आर्यपुत्र कहती हैं। आर्यपुत्र में आर्य शब्द का अर्थ श्वशुर है। युवा राजा को रानियां 'आर्यपुत्र' कहती हैं। इस शब्द का प्रयोग पति की यौवनावस्था को सूचित करते हुये शृङ्गार के औचित्य को सिद्ध करता है।

दूसरे लोगों के संबोधन– सूत्रधार को उनके अनुचर 'भाव' शब्द से तथा सूत्रधार अपने अनुचरों को मार्ष शब्द से अभिहित करते हैं। नटी और सूत्रधार एक दूसरे को आर्य और आर्या कहकर पुकारते हैं। समान गुण वाले व्यक्ति को मित्र वाचक शब्द से भी अभिहित किया जाता है। तथा उसका नाम भी लिया जाता है। पुत्र, शिष्य तथा छोटे भाई से 'पुत्र', 'वत्स', शब्दों द्वारा संबोधन के साथ बातचीत की जाती है। 'तात' शब्द

का प्रयोग शिष्य पुत्र इत्यादि के लिये भी किया जा सकता है। किन्तु मुख्य रूप से यह संबोधन बड़ों के लिये है। मध्यम प्रकृति के व्यक्ति नीच प्रकृति वालों को 'सौम्य' और 'भद्रमुख' का सम्बोधन करते हैं। नीच व्यक्ति नीचों से बातचीत में हंण्डे शब्द का प्रयोग करते हैं। इसी प्रकार अरे हंहो इत्यादि शब्द भी प्रचलित हैं। मान्य व्यक्तियों का नाम नहीं लिया जाता। उन्हें प्रतिष्ठा मूलक शब्द से अभिहित करने की प्रथा है जैसे मन्त्री जी, सेठ जी इत्यादि। सांसारिक व्यक्ति मान्यों के लिये देव शब्द का भी प्रयोग करते हैं। राजकुमारी के लिये भतृदारिका के समान युवराज को भर्तृदारक कहने की भी प्रथा है। जैन तथा बौद्ध भिक्षुओं को भदन्त कहा जाता है और दूसरे धर्मावलम्बियों को भी उनकी प्रसिद्धि के अनुसार नाम दिया जाता है जैसे- सरदार साहब शेख साहब इत्यादि।

उक्त व्यवस्थाओं के अतिरिक्त कर्म जाति और कुल इत्यादि के द्वारा भी पुकारने की प्रथा है जैसे वैद्य जी, पाण्डे जी, शुक्ल जी, चौहान साहब, मिस्त्री जी इत्यादि।

इन सम्बोधनों में समय समय पर परिवर्तन भी होते रहते हैं। विशेष रूप से जब दो संस्कृतियों का मिलन होता है तब इस प्रकार के परिवर्तन विशेष रूप से प्रयुक्त होने लगते हैं। तपस्वी, इत्यादि को 'साधो' आचार्य को 'उपाध्याय' रथी को 'आयुष्मन्' शब्द का प्रयोग किया जाने लगा है। अनेक अंग्रेजी शब्द भी प्रचलन में आ गये हैं जैसे मां बाप को मम्मी डैडी शब्द।

आज उक्त संबोधनों में अनेक ऐतिहासिक महत्व के रह गये हैं। सामाजिक परिवर्तनों के साथ ऐसा होना स्वाभाविक भी है। इनसे तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था पर प्रकाश पड़ता है इसमें सन्देह नहीं।

नाट्य वर्जनायें

रसास्वादन नाट्य का मुख्य अथवा एक मात्र उद्देश्य है। अभिनव गुप्त ने नाट्य शब्द का अर्थ ही रस माना है। अतः दर्शक ऐसे ही दृश्यों को देखना चाहता है जिससे जनता का अनुरञ्जन हो सके और उनके मन में किसी प्रकार की वितृष्णा उत्पन्न न हो। अतः ऐसे दृश्यों का परिहार अत्यन्त आवश्यक होता है जिनसे आस्वादन के स्थान पर दर्शकों के मन में कोई आतंक, भय, या घृणा उत्पन्न हो और जिसका प्रदर्शन अनुचित प्रतीत हो। उत्तेजक अभिनयों का प्रदर्शन बचाना प्रत्येक कलाकार का कर्तव्य है। सभी प्रकार के दर्शक अभिनय देखने आते हैं जिनमें कोमल मति वाले बच्चे और स्त्रियां, कमजोर मन वाले रोगी इत्यादि भी होते हैं। यदि उनके सामने ऐसे दृश्य उपस्थित कर दिये जायेंगे तो उनके मन में एक प्रकार का उद्वेग उत्पन्न हो जायेगा जिससे वे रसास्वादन नहीं कर सकेंगे। ऐसे दृश्य भी कभी कभी दिखला दिये जाते हैं या उनका दिखलाया जाना सम्भव है जिनके स्मरण मात्र से चित्त आतङ्कित हो जाता है और रात में बुरे बुरे स्वप्न आने लगते हैं। यद्यपि इस प्रकार के दृश्यों का अपना महत्व है और उनका अपना

एक स्वतन्त्र रस होता है। यह सच है कि भारतीय नाटकों में परिणामावस्था सुखमय ही दिखलाई जाती है, किन्तु नाटक का अर्थ केवल चरमावस्था नहीं है। नाटक का मध्य भाग भी दिखलाया जाता है और उसका भी मन पर प्रभाव पड़ता ही है। आचार्यों ने ऐसे दृश्यों के बचाने का निर्देश दिया है। आज इस स्थिति पर ध्यान रखने की विशेष आवश्यकता हो गई है; क्योंकि सिने-मेटोग्राफी के विशेष विकास के कारण ऐसे भयानक और घृणाजनक दृश्यों का दिखलाया जाना सम्भव हो गया है। ऐसे दृश्यों को बचाने का पूरा प्रयत्न किया जाना चाहिये। यदि उनका दिखलाया जाना अनिवार्य ही हो तो ऐसी कुशलता से दिखला दिया जाना चाहिये जिससे वे दृश्य जनता के मन में विक्षोभ उत्पन्न न कर सकें। भारतीय नाट्यकला में तो ऐसे दृश्यों का दिखलाया जाना सर्वथा निषिद्ध ही था क्योंकि उसमें कला की कोमलता पर विशेष बल दिया जाता था। इस प्रकार के वर्जनीय दृश्यों में हत्या भयानक युद्ध, राज्यविप्लव, देशविप्लव, देश ध्वंस इत्यादि का समावेश किया गया है।

यूनानी नाट्यपरम्परा में भी भारतीय परम्परा के समान भयानक हत्या के दृश्य रंगमञ्च पर नहीं दिखलाये जाते थे उनकी सूचना या तो मैसेञ्जर या कोरस के द्वारा दे दी जाती थी। भारतीय नाटकों में यह कार्य अर्थोपक्षेपकों द्वारा सम्पन्न किया जाता है। होरेस ने इस प्रकार के दृश्यों का दिखलाया जाना निषिद्ध माना है। अंग्रेजी नाटकों में इस प्रकार के दृश्य कभी कभी दिखला दिये जाते हैं। सेक्सपियर के नाटकों में कहीं कहीं उत्तेजक दृश्यों का प्रदर्शन करने की योजना प्रस्तुत की गई है। हैमलेट में इस प्रकार के कई दृश्य हैं। मैकवेथ में रंगमञ्च पर हत्यायें दिखलाई गई हैं। इस विषय में मार्जौरी गार्वर के सेक्सपियर के घोष्टराइटर में एक मनोरञ्जक विवरण दिया हुया है– मैकवेथ के विषय में रंगमञ्च पर और रंगमञ्च के बाहर अनेक अन्धविश्वासों ने जन्म ले लिया है। यह नाटक सर्वदा भाग्यहीन नाटक माना जाता रहा है। ऐसे अभिनेता ज्ञात हैं, जो कंचुक (लवादा) पहिनने और वह तलवार हाथ में लेने को मना कर दिया करते थे जिसका प्रयोग मैकवेथ को अभिनय में करना होता था। कहा जाता है इस ओर जाने या नेपथ्य शाला में भी वे इस नाटक का नाम लेने या किसी पात्र का नाम लेने से कतराते थे। वे इस नाटक के नाम के स्थान पर या तो 'स्काटिश प्ले' या 'दैट प्ले' या 'अन् मेशनेबिल प्ले' कहा करते थे। मैकवेथ की मृत्यु को वे 'द डेथ' और लेडी मैकवेथ को 'द क्वीन' कहा करते थे। जो लोग ना समझी या दर्प से इन अलिखित या अकथित नियमों के प्रतिकूल चले जाते थे तथा 'स्काटिश प्ले' से कोई उद्धरण दे देते थे उन्हें उस अभिशाप को दूर करने के लिये एक समय बद्ध विधि का पालन करना पड़ता था। अपराधी को नेपथ्य शाला से बाहर जाना पड़ता था; तीन परिक्रमा करनी पड़तीं थीं, थूकना पड़ता था, तीन बार दरवाजे पर दस्तक देनी पड़ती थी और नेपथ्य में प्रवेश की आज्ञा लेनी पड़ती थी। हो सकता है भूतों से छुटकारा पाने और अपशकुन को दूर करने की इस क्रिया की प्रेरणा

मैकवेथ के उस दृश्य से ली गई हो जिसमें द्वारपाल के दृश्य में दरवाजे पर तीन बार दस्तक दी जाती है या चुडैलों के तीन की संख्या में शाप देने की परम्परा से या उन्हीं चुडैलों की उस समय की अभिचार मन्त्रणा से जब मैकवेथ उनके पास जाते हैं अभिशाप को दूर करने की यह पद्धति अपनाई गई हो। अभिशाप को दूर करने का एक और उपाय बतलाया जाता है– मैकवेथ जितना अभिशाप ग्रस्त माना जाता है उतना ही 'मर्चेण्ट आफ वेनिस' पुण्यदायक समझा जाता है। अतः यदि कभी मैकवेथ का नाम धोखे से मुंह से निकल जाय तो मर्चेण्ट आफ वेनिस की कुछ पंक्तियां दोहरा देनी चाहिये विशेष रूप से लोरेञ्जों की वे पङ्क्तियां जिससे वह प्रस्थान काल में पोर्शिया को आशीर्वाद देता है– 'शुभ विचार और आनन्ददायक घड़ियां सदा तुम्हें प्राप्त होती रहें।' इस प्रकार मैकवेथ की अकल्याण कारिणी शक्ति का मर्चेण्ट आफ वेनिस प्रतिरोधी माना जाता है।

यह भी रंगमञ्च के इतिहास की एक पर्याप्त मनोरञ्जक घटना है– सन् १६७२ में मैकवेथ इंग्लैण्ड से बाहर पहली वार खेला गया था। एक डच अभिनेता मैकवेथ का अभिनय कर रहा था। उसको डंकेन के अभिनय करने वाले के हाथों एक बहुत बड़ी विपत्ति का सामना करना पड़ा था। उस अभिनय में डंकेन के अभिनेता की पत्नी लेडी मैकवेथ का अभिनय कर रही थी। एक शाम को हत्या का दृश्य विशेष रूप में खूनी था। परदे के बुलावे पर डंकेन उपस्थित नहीं हुआ। बाद में ज्ञात हुआ कि उसमें वास्तविक तलवार का प्रयोग किया गया था। मैकवेथ को डंकेन की पत्नी से प्रेम हो गया था अतः उसने डंकेन की वास्तविक हत्या कर दी थी। उस हत्या के अपराध में मैकवेथ को आजीवन कारावास मिला था।

आजकल के सिनेमा चित्रों में तो इस मर्यादा का सर्वथा अतिक्रमण कर दिया गया है और भयानक हत्या, युद्ध, अत्यन्त उत्तेजक दृश्य, राजविप्लव, देशविप्लव इत्यादि का खुलकर प्रदर्शन होता है। लाशों के ढेर के ढेर स्वतन्त्रता पूर्वक दिखलाये जाते हैं। वयस्क (एडल्ट) फिल्म का प्रतिवन्ध निस्सन्देह इस बुराई को रोकने में सर्वथा अक्षम हैं।

दूसरे प्रकार की नाट्य वर्जना अश्लील दृश्य विषयक है जिसमें सेक्स का खुला प्रदर्शन निषिद्ध माना जाता है। इस प्रकार के प्रदर्शनों में साथ सोना, अधरपान, चुम्बन यहां तक कि सुरत व्यापार दिखलाने में संकोच नहीं किया जाता। इस प्रकार के दृश्य लज्जाजनक होते हैं; उनसे एक दबाव पैदा होता है जो रसास्वादन में व्याघात उत्पन्न करता है। कुछ लोगों ने इस प्रकार के दृश्यों की वकालत की है। उनका कहना है कि स्वाभाविकता के लिये इन दृश्यों का दिखलाया जाना अनिवार्य है। उनका मत है कि अश्लीलता वहीं पर होती है जहां इस प्रकार के दृश्य ऊपर से ठूंसे हुये जान पड़ें। इसके प्रतिकूल जहां इस प्रकार के दृश्य कथानक के स्वाभाविक विकास में सहायक होते हैं; स्वाभाविक रूप में आते हैं उनके न दिखलाने से कथानक बिगड़ जाता है वहां इनके दिखलाने में कोई दोष नहीं। दूसरी ओर से कहा जाता है कि यह पाश्चात्य देशों का अन्धानुकण है जिसे

हमारा समाज सहन नहीं कर सकता। इनके प्रदर्शन से युवकों के चरित्र पर बुरा प्रभाव पड़ता है। सबसे बड़ी बात यह है कि माता पिता भी बच्चों के साथ स्वतन्त्रता पूर्वक निस्सङ्कोच इन दृश्यों को देख भी नहीं सकते। जहां तक स्वाभाविकता का प्रश्न है समाज में चुम्बन, आलिङ्गन इत्यादि कभी भी खुले रूप में नहीं किया जाता। लोक में जैसा व्यवहार प्रचलित है वैसा दिखलाना स्वाभाविकता है। इनको खुले रूप में दिखलाना स्वाभाविकता के विरूद्ध है।

नीरसता उत्पन्न करने वाले कुछ दृष्य नाट्य वर्जनाओं में सम्मिलित किये गये हैं; कुछ स्वभावतः समझे जाकर उद्देश्य की पूर्ति कर देते हैं उनका रंगमञ्च पर प्रदर्शन आवश्यक नहीं होता है; ऐसे दृश्यों को या तो दर्शकों की समझ के लिये छोड़ दिया जाना चाहिये या उनकी सूचना दे दी जानी चाहिये। इस प्रकार के दृश्यों में लम्बी यात्रा, विवाह, भोजन इत्यादि आते हैं। वस्तुतः लम्बी यात्रा जहां चमत्कार जनक हो वहां दिखलाई जा सकती है; जैसे पर्वतों के मनोरम दृश्य दिखलाने के लिये इस प्रकार की यात्रायें कुछ लम्बी दिखला दी जाती हैं। विभिन्न आचार विचारों के प्रदर्शन के लिये कभी कभी विवाह और भोजन के लम्बे दृश्य दिखला दिये जाते हैं। वस्तुतः प्राचीनाभिमत नाट्य वर्जनायें अब बहुत कुछ अपना महत्व खो चुकी है। फिर भी औचित्य का ध्यान रखना नितान्त अपेक्षित है; अन्यथा समाज की विशृङ्खलता और सदाचार के पतन के लिये नाट्य जगत उत्तरदायी होगा इसका ध्यान रखना प्रत्येक कलाकार का कर्तव्य है।

नाट्यसिद्धि

सारा उद्योग सफलता के लिये ही किया जाता है। प्रत्येक व्यक्ति का मंशा यह देखना अवश्य होता है कि क्या उसका उद्योग सफल हुआ है या नहीं। सर्वाधिक महत्वपूर्ण तो दर्शकों की सन्तुष्टि है। उसके संतुष्ट हो जाने पर ही यह माना जाता है कि नाटक सफल हो गया है। नाटक के मार्ग में वाधायें भी आती हैं जिससे सिद्धि सदिग्ध हो जाती है। इन वाधायों की ओर आचार्य का ध्यान गया था।

दर्शक के सन्तोष का निर्णय उसकी प्रतिक्रिया से होता है। अभिनय देखते समय, कभी दर्शक मुस्कुराता है, कभी अट्टहास करता है; कभी प्रशंसा वाचक कोई शब्द बोल देता है– जैसे 'बहुत अच्छे', 'क्या खूब' इत्यादि, कभी रोमाञ्चित हो जाता कभी करुण हो जाता है, तथा उसकी आंखों में आंसू आ जाते हैं। जब कोई उस प्रकार का अभिनय होता है तब दर्शकों की ओर से एक ठहाका लगता है, कभी सारी रंगभूमि में प्रतिक्रिया-जन्यशोर मच जाता है। इससे सिद्धि की सीमा जानी जा सकती है। दर्शक बहुत प्रसन्न होकर विशिष्ट अभिनेताओं को चादर, शाल इत्यादि वस्त्र भेंट करते हैं। कभी कभी प्रसन्न होकर रंगमञ्च की ओर रुपये पैसे फेंकने लगते हैं कोई अंगूठी देता है। कभी कभी दर्शक पुरस्कार की घोषणा करते हैं। ये सब सिद्धि की निर्णायक और दर्शकों की सन्तोष सूचक

चेष्टायें हैं।

ऊपर मानुषी सिद्धि का संक्षिप्त परिचय दिया गया। इसके समकक्ष सिद्धि का एक और रूप है- अभिनय के समय किसी प्रकार की आवाज न होना, किसी प्रकार की गड़वड़ी न होना। यह इस बात का सूचक है कि दर्शक अभिनय में गहरी रुचि ले रहा है, दर्शक कक्ष दर्शकों से भरा रहता है, सभी दर्शक मन्त्र मुग्ध होकर रसास्वादन में संलग्न रहते हैं। ऊपर वाणी और शरीर की जिस प्रतिक्रिया का परिचय दिया गया है वह सामान्य मानवों की प्रतिक्रिया है जो लोग शोर शराबे से अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं। अतः उसे मानुषी सिद्धि कहा जाता है। इसके प्रतिकूल गम्भीरता और शान्ति एवं निश्शब्दता दर्शकों के दैवी गुण है। अतः आचार्यों ने इसे दैवी सिद्धि कहा है।

नाट्य में विघ्न

नाट्य में तीन प्रकार के विघ्न बतलाये गये हैं- (१) दैवी विघ्न जो प्राकृतिक तत्वों की ओर से आते हैं (२) आत्मसमुत्थ विघ्न जो स्वयं अभिनेताओं के दोषों से उत्पन्न होते हैं और (३) जो शत्रु की ओर से आते हैं।

दैवी विघ्नों पर मानव का वश नहीं होता। तेज वायु चलने लगे, आग लग जाये, भयानक वर्षा होने लगे दर्शक कक्ष में हाथी, सांप या चीटियां आ जायं, बिजली कड़कने लगे, मण्डप गिर जाय, कोई शिकारी जानवर अपने शिकार का पीछा करते हुये अन्दर घुस आये। इन सारे विघ्नों से दर्शकों में हड़बौंग मच जाता है और अभिनय जम नहीं पाता। (भरत मुनि ने मजबूत एवं टिकाऊ रंगशालाओं के निर्माण का उपदेश दिया है। उन रंगशालाओं में विघ्न अकिञ्चित्कर होते हैं। ये विघ्न वहां लागू होते हैं जहां पर अस्थायी रूप से रंगमञ्च बनाकर दर्शकों को खुले में बैठने की व्यवस्था की जाती है।)

शत्रु के द्वारा उत्पादित विघ्न

महत्ता प्राप्त करने के लिये प्रतिस्पर्धायें तो होती ही हैं। नाटक सिद्धि दर्शकों में उसके जम जाने से होती है। विरोधी पक्ष सर्वदा यही चाहा करते हैं कि किसी प्रकार उसके विरोधी का प्रदर्शन उखड़ जाये। इसीलिये कुछ लोग जानबूझकर अभिनय को उखाड़ने का प्रयत्न किया करते हैं। उसके लिये वे अनेक उपाय निकलाते हैं- चारो ओर जोर जोर से चीखना, फुस्फुसाहट के स्वर में इधर उधर रंगशाला के अन्दर बातचीत करना, रोने लगना, जोर जोर से तालियां बजना, रंगमञ्च की ओर गोबर, घास और छोटे छोटे पत्थर के टुकड़े फेंकना, चीटियां और मक्खियों के छत्ते फेंकना ये सब शत्रु की ओर से आने वाले विघ्न हैं। बुद्धिमान लोग उन विघ्नों को ईर्ष्याद्वेष, विरोध एवं पक्षपात जन्य मानते हैं। इसके लिये रिश्वत भी चलती है। विरोधी पक्ष के लोग पैसे देकर कुछ लोगों को नियुक्त कर लेते हैं जिनका काम शत्रुपक्ष के अभिनय में विघ्न डालना होता है।

आत्मसमुत्थ विघ्न

अभिनेताओं के अपनी ओर से उत्पन्न होने वाले विघ्न भी अनेक होते हैं– अभ्यास की कमी के कारण अभिनय में स्वाभाविकता नहीं आ पाती, चलना फिरना घूमना गलत ढंग से होता है और भूमिका ठीक नहीं बन पाती। पात्र याद किये हुये संवाद को भूल जाते हैं, और का और बोल जाते हैं। (जैसे विक्रमोर्वशीय में लक्ष्मी की भूमिका में उर्वशी को अपने प्रेमी का नाम विष्णु बतलाना चाहिये था जिसके स्थान पर वह पुरूरवा का नाम बोल गई।) स्मृति भ्रंश हो जाता है; इसी प्रकार के अन्य भी विघ्न हैं जैसे जोर से चिल्लाने से आर्तनाद, हाथों का त्रुटिपूर्ण संचालन, अत्यधिक हंसना रोना, त्रुटिपूर्ण स्वर, आभूषणों को ठीक रूप से न पहिनना, चीटी, खटमल इत्यादि कीड़ों की वाधा, मुकुट का गिरना, आभूषणों का गिरना, उच्चारण दोष; इस प्रकार के दोष अभिनय के सौन्दर्य को पूर्ण रूप से नष्ट कर देते हैं। कभी कभी शत्रु पक्ष से मिलकर भी अभिनेता अपने उच्चारण इत्यादि से अभिनय को बिगाड़ देते हैं। अभिनेताओं की शर्मीली आवाज और वाद्यों का गलत प्रयोग अभिनय को पूर्ण रूप से नष्ट कर देते हैं।

दो विघ्न अत्यन्त विघातक होते हैं जिनका कोई उपाय नहीं हो सकता एक तो दैवी प्रकोप दूसरे नालिका से जल का गिर जाना। (प्राचीन काल में घड़ियां नहीं थीं; किन्तु अभिनेताओं का समय बद्ध रूप में अभिनय अनिवार्य था; समय से ही अभिनेताओं का रंगमञ्च पर प्रवेश होता था। यदि सारा जल एक दम वह जाता तो समय का पालन नहीं किया जा सकता था। अतः अभिनय पूर्ण रूप से विगड़ जाता था। मुसल्मानी काल में नालिका का कार्य छोटे घड़े में सुराख कर उससे जल टपकाकर उससे लिया जाता था। छोटे घड़े को घड़ी कहा जाता था। इसीलिये समय निर्देशक की संज्ञा घड़ी पड़ गई।) भरत ने इसी प्रकार आत्मसमुत्थ विघ्नों का विस्तार पूर्वक निरुपण किया है।

भरत ने कतिपय अन्य विघ्नों का भी उल्लेख किया है। कभी कभी पूर्वरंग में अपेक्षित देवता के स्थान पर कियी अन्य देवता की स्तुति की जाने लगती है। कभी वास्तविक नाटककार के स्थान पर किसी दूसरे का नाम बोल दिया जाता है, कभी एक नाटक के अभिनय करने में किसी अन्य नाटक का कोई अंश बोला जाने लगता है। कभी कभी अभिनेता शास्त्रविहित भाषा, वेश और देश के नियमों की अवहेलना कर जाते हैं। कभी अभिनेता ठीक समय पर उपस्थित नहीं हो पाते। अतः भरत का निर्देश है कि इन सभी दोषों को दूर करने के लिये प्रत्येक बात लिखी होनी चाहिये उसी के अनुसार कार्य करना चाहिये। अन्यथा अभिनय निश्चित रूप से बिगड़ जाता है।

भरत ने विस्तार पूर्वक विघ्नों और दोषों का निरुपण किया है। इसके साथ ही उन्होंने यह भी कहा है कि दोष रहित तो कुछ हो ही नहीं सकता। दोषों को बचाने का

प्रयत्न करना चाहिये। थोड़ा बहुत दोषक्षम्य भी होता है। किन्तु इतने दोष नहीं आ जाने चाहिये कि नाटक प्रभाव हीन एवं अनास्वाद्य हो जाय।

परीक्षा

परीक्षक के वाञ्छनीय गुणों का नाट्यशास्त्र में उल्लेख किया गया है जिसको देखने से ज्ञात होता है कि भरत की दृष्टि में सर्वगुण सम्पन्न एवं आदर्श चरित्र वाला व्यक्ति अपेक्षित होता है। उसमें व्यक्तिगत चरित्र की भी विशेषता होनी चाहिये और उसे सभी शास्त्रों का ज्ञान भी होना चाहिये। संक्षेप में जिसका चरित्र बहुत ऊंचा हो, जिसका जन्म उच्च वंश में हुआ हो, शान्त व्यवहार हो, अध्ययन में परिश्रम किया हो, जिन्हें यश और धर्म को प्राप्त करने की उत्कट इच्छा हो जो पक्षपात रहित हो, आयु के अधिक भाग को भोग चुका हों नाट्यकला में और उसके सभी अंगों में निपुण हों, सावधान हों, ईमानदार हों, उत्तेजना के वशीभूत न होते हों अच्छे खिलाड़ी हों, सभी चार प्रकार के वाद्यों में निष्णात हों; बहुत की गुणवान हों, वस्त्राभरण के विषय में विशेषज्ञ हों, शृङ्गार की सभी विधियों से परिचित हों, भाषाओं के नियमों को जानते हों, चारो प्रकार की अभिनय-कला के प्रदर्शन के विशेषज्ञ हों, व्याकरण, छन्द इत्यादि सभी शास्त्रों के विशेषज्ञ हों, विभिन्न कलाओं और दस्तकारी में निपुण हों चित्तवृत्तियों के समझने की उनमें सुन्दर भावना हो, और मनोवैज्ञानिक स्थितियों के पारखी हों, अहापोह में निपुण हों, वाद विवाद में दक्ष हों, दोषों को निकालने और गुणों को महत्ता देने की निपुणता से परिपूर्ण हों, प्रसन्न लोगों को देखकर प्रसन्न, दुःखी लोगों को देखकर दुःखी दीन लोगों को देखकर दीन हो जाता हो ऐसा व्यक्ति नाट्य परीक्षा में पटु हो सकता है, उसे नाट्य परीक्षा का कार्य सौंपना चाहिये। क्या ऐसा कोई व्यक्ति सम्भव है? उत्तर होगा नहीं। विशेष रूप से लोगों की मनोवृत्तियां भिन्न होती हैं। ज्ञान के क्षेत्र असीमित हैं और जीवन की सीमा बहुत छोटी है। उत्तम, मध्यम, अधम सभी प्रकार की प्रकृति के व्यक्ति सभा में उपस्थित होते हैं। कोई एक व्यक्ति सभी का अकेले निर्णय नहीं कर सकता। तरुण लोग काम वासना के प्रदर्शन से, विद्वान लोग दार्शनिक सिद्धान्तों से, धन के इच्छुक धन के दृश्यों से विरागी मोक्ष की बातों से, वीर लोग वीरता के भयानक दृश्यों से युद्ध से, वृद्ध लोग पुराण की कथाओं से, बच्चे स्त्रियां अशिक्षित लोग हास्य जनक दृश्यों से सन्तुष्ट होते हैं। सारांश यह है कि एक ही व्यक्ति सभी का निर्णय नहीं कर सकता।

उक्त स्थिति को ध्यान में रखते हुये भरत ने परीक्षा तथा विवाद निर्णय के लिये अनेक व्यक्तियों को नियुक्त करने का विधान किया है। नाट्य मण्डलियों में अर्थोपार्जन इत्यादि अनेक कारणों से प्रतिस्पर्धा होती ही है। अतः परीक्षक को नाट्यशाला के निकट उचित दूरी पर सुखासन पर बैठकर नाट्यक्रिया का अवलोकन करना चाहिये। निर्णायक उसी को नियुक्त किया जाना चाहिये जो उस विषय का निपुण व्यक्ति हो। यज्ञ क्रिया

का परीक्षक यज्ञवेत्ता, नृत्य का निर्णायक नर्तक छन्दों का छन्दःशास्त्र का ज्ञाता, पाठ्यांश का व्याकरण का विशेषज्ञ निर्णय करे। रंगमञ्च पर अस्त्र शस्त्र के सञ्चालन की परीक्षा अस्त्रशस्त्रज्ञ करे, सौन्दर्य की परीक्षा के लिये चित्रकार, कमोपचार की परीक्षा के लिये वेश्या, स्वरसाधना के लिये गान्धर्व शास्त्र का विशेषज्ञ, व्यक्तिगत शान और ऐश्वर्य प्रदर्शन के लिये राजा, शिष्टाचार प्रदर्शन की परीक्षा के लिये सेवक, सामान्य अभिनय के लिये कुशल अभिनेता, अन्तःपुर की शानशौकत की परीक्षा के लिये राजा, स्वरताल इत्यादि की परीक्षा के लिये कोई विशिष्ट संगीतज्ञ नियुक्त किया जाना चाहिये। भरत ने इस प्रकार की विभिन्न तत्वों की परीक्षा के लिये बड़ी लम्बी सूची दी है। इससे ज्ञात होता है कि वे नाट्यकला को परिपूर्ण बनाने के लिये कितने उत्सुक थे। नाट्य के लिये उपयोगी विभिन्न तत्वों की परीक्षा विभिन्न विशेषज्ञों से कराई जाती थी। उनका आग्रह था कि क्योंकि नाट्य में सभी प्रकार के शास्त्रीय सिद्धान्तों का उपयोग किया जाता है; सभी का निर्णय कोई एक व्यक्ति कर नहीं सकता अतः अलग अलग विभिन्न तत्वों की उत्तमता का निर्णय विभिन्न व्यक्तियों से कराया जाना चाहिये। वे परीक्षक नाटक के अभिनय में आने वाली कमियों का भी निर्णय करे और विशेषतायें भी बतलायें। भरत के निर्देशों को देखने से ज्ञात होता है कि उस समय सभी विषयों के ठीक व्यवस्थापन के लिये अनेक पुस्तकें विद्यमान थीं; क्योंकि उन्होंने विभिन्न विषयों की पुस्तकों के आधार पर नाट्यपरीक्षा का निर्देश दिया है। कमियों और विघ्नों का भी उल्लेख कर दिया जाना चाहिये। किन्तु आकस्मिक दैवी विघ्नों और शत्रु पक्ष द्वारा पैदा किये हुये विघ्नों की उपेक्षा की जानी चाहिये। उनके अभिलेख की आंवश्यकता नहीं है। किन्तु नाटक की और अभिनेताओं की कमियों का ठीक रूप से निष्पक्ष होकर अभिलेख किया जाना अत्यन्त आवश्यक है।

पताका दान

प्रतियोगिता में सफल पक्ष को पताका प्रदान की जाती थी जैसी कि आजकल ट्राफी प्रदान करने की प्रथा है। वाण में भास के नाटकों को पताकाओं से युक्त एक राजमहल की उपमा दी है। इस 'पताका' शब्द का अभिप्राय प्रायः नाटकों में प्रयुक्त होने वाले पताका नामक प्रासङ्गिक कथानक से लिया गया है। किन्तु पताका का प्रयोग भास के नाटकों की कोई पृथग्भूत विशेषता नहीं है। यदि देखा जाय तो भास के नाटकों में अनिवार्यतः पताका का प्रयोग है भी नहीं। वाण का अभिप्राय यही ज्ञात होता है कि भास को प्रतियोगिताओं में पताकायें प्राप्त हुई थीं और उससे भास की नाटककार के रूप में प्रतिष्ठा और यश में अभिवृद्धि हुई थी। इसीलिये कालिदास ने भी अपने से पूर्ववर्ती महान नाटककारों में भास को पहला स्थान दिया है।

पताका प्रदान करने का अधिकार राजा को था। परीक्षक सर्वाङ्गीण परीक्षा कर और पताका के अधिकारी का निर्णय कर राजा के पास अपनी संस्तुति भेज देते थे और तदनुसार

राजा उस निर्णय का आदर कर सम्भवतः किसी आयोजन में पताका प्रदान करता था। अपनी संस्तुति में निर्णायक गुणों और अवगुणों दोनों का उल्लेख कर देता था और पताका उसी को प्रदान करने की संस्तुति करता था जिसके गुणों की अपेक्षा दोष कम होते थे तथा दूसरों की अपेक्षा भी जो अधिक उत्कृष्ट सिद्ध होते थे।

कभी कभी निर्णय करने के समान स्तर के दो नाटक सामने आ जाते थे। अतः निर्णायक मण्डल दोनों नाटकों को अपनी शिफारिश के साथ राजा के पास भेजे देता था, राजा दोनों का प्रदर्शन देखता था तथा उसे अधिकार प्राप्त था कि वह दोनों में जिसको चाहे पताका भेंट कर दे। कभी कभी ऐसा भी हो जाता था कि राजा स्वयं निर्णय नहीं कर पाता था कि पताका किसे दी जाय। ऐसी अवस्था में भरत का निर्देश है कि पताका दोनों को प्रदान कर दी जानी चाहिये।

पताका प्रदान करने के लिये विभिन्न विषयों के विशेषज्ञों की तो राय ली ही जाती थी, विशेष रूप से देखा जाता था कि नाटक के प्रदर्शन में उपलब्धियां क्या हैं; नाटकीय प्रस्तुतीकरण में विभिन्न तत्वों का समन्वय किस मात्रा में हुआ है; अभिनेताओं के चुनने में भूमिका के अनुसार उनके अंगों का आकार प्रकार उपयुक्त है या नहीं; उनकी संवाद बोलने की स्वाभाविकता में कोई कमी तो नहीं, रस निष्पत्ति किस मात्रा में सफल रही है तथा अभिनेता दर्शकों को किस सीमातक सन्तुष्ट कर सके हैं।

भरत ने उन तत्वों पर भी प्रकाश डाला है जिन पर परीक्षकों का विशेष रूप से ध्यान जाना चाहिये। ध्यान देने योग्य सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व है– सामञ्जस्य जिसके लिये भरत ने 'सम' शब्द का प्रयोग किया है। सामञ्जस्य में नाट्याङ्गो, समय की व्यवस्था, नर्तकियों की गतियों, चरणन्यासों; ध्रुवा संगीत, वाद्य, ताल, लय इन सब की संगति तो अनिवार्य है ही साथ ही इन्हीं के मेल में अभिनेताओं की अंगसञ्चालन की क्रिया पर भी ध्यान दिया जाना चाहिये। यह भी देखना चाहिये तबले पर थाप भी समस्त इतर तत्वों के मेल में है या नहीं। समत्व (सामञ्चस्य) के अभाव में अभिनय जमता नहीं। जब सभी तत्वों की समता होती है, संगीत में एक समा सी बंध जाती है जिससे दर्शक रस धारा में स्वयं को खो देता है।

भरत नें नर्तकों के शारीरिक गठन के लिये भी कुछ निर्देश दिये हैं। इसके साथ ही पाठ्य की विशेषताओं तथा रस निष्पत्ति पर भी ध्यान देने का निर्देश दिया है।

सिद्धि प्रकरण में भरत ने जिस दूसरे तत्व का विशेष रूप से उल्लेख किया है वह है कालक्रम का विभाजन। कौन सा रस किस समय उपयुक्त रहता है और किस प्रकार के नाटक का आयोजन दिन के किस भाग में या रात्रि में किस समय करना चाहिये यह सब बतलाकर आचार्य ने कहा है कि समय, स्थान और नाट्यकृति को देखकर तथा मनोवैज्ञानिक अवस्था को देखकर नाटक प्रदर्शन का आयोजन करना चाहिये। किन्तु इसके साथ ही आचार्य के आकस्मिक आवश्यकता पर भी विचार किया है। जब संयोजक या

प्रशिक्षण में गुरु आदेश दे दे तब समय का बिना विचार किये निस्सङ्कोच अभिनय में प्रवृत्त हो जाना चाहिये।

अभिनेता की विशेषतायें

अभिनय में अभिनेता की योग्यता सिद्धि के लिये अत्यन्त महत्वपूर्ण मानी जाती है। प्रदर्शन की समृद्धि उसी पर निर्भर है। आचार्य ने अभिनेता ये गुण बतलाये हैं– बुद्धिमता, शक्ति, शारीरिक सौन्दर्य, समय और लय ताल का ज्ञान, चित्तवृत्तियों और मनोवैज्ञानिक अवस्था को समझना और उसमें रुचि लेना, ठीक आयु, वस्तुओं के ज्ञान के लिये उत्कण्ठा (कौतूहल) ज्ञान और कला से परिचय और उनकी धारणा में रुचि, नृत्य के साथ कंठ संगीत, रंगमञ्च पर जाने से घबराहट को दबाने की शक्ति और उत्साह। इन गुणों वाला अभिनेता उच्चकोटि के अभिनय में समर्थ होता है।

प्रयोग

नाटक को रुचिकर बनाने वाला दूसरा तत्व है प्रयोग की विशेषता। वाद्ययन्त्र अच्छे हों और वादक लोग वाद्यकला में निपुण हों; संगीत का आयोजन उच्च कोटि का हों, संवादों में पात्रों का उच्चारण मनोहर हो और शास्त्रीय कर्म के साथ सामञ्जस्य हो तो निस्सन्देह नाटक प्रतिष्ठा प्राप्त कर लेता है।

समृद्धि

यह तत्व भी नाटक प्रयोग में आवश्य माना जाता है। चमकदमक तो होनी चाहिये। आभूषणों और वस्त्रों की उत्तमता और उनके विन्यास की विलक्षणता एवं बनावट सजावट (मेकअप) प्रदर्शन में भव्यता उत्पन्न कर देते हैं।

जहां अच्छे पात्र, उत्तम प्रयोग और समृद्ध सजावट ये सभी तत्व संघटित हो जाते हैं वहां उच्चकोटि के प्रदर्शन में सन्देह नहीं रह जाता, नाट्यसिद्धि के लिये इस प्रकार का समायोजन सफलता की पहली सीढी है।



